आचार एवं अनुशासन में वे कठोर थे तथा व्यवहार में अत्यन्तमृदु उनके जीवन का हर कोण मधुर, स्निग्ध, और सौरभयुक्त था। ऐसे महामहिम शान्तक्रान्ति के *अग्रदूत पूज्य आचार्यप्रवर श्री गणेशलालजी म.सा. का जीवन इस ग्रन्थ में* आलेखित है।

प्रस्तुत ग्रन्थ पूर्व मे सन् 1970 में संघ द्वरा प्रकाशित हो चुका है जिसका सम्पादन देव कुमार जैन ने किया था। लम्बे समय से यह अनुपलब्ध था, इसकी मांग बरावर बनी हुई थी, परन्तु इसके संशोधन, परिवर्धन और सम्पादन की आवश्यकता महसूस हो रही थी। यह महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व पंडितरत्न श्री नेमीचंद्रजी म.सा. एवं कविरत्न श्री गौतममुनिजी म.सा. को सौंपा गया। दीर्घ अनुभवी श्रद्धेय मुनिवृन्द ने इस उत्तरदायित्व को बखूबी निभाया, अतः संघ उनका ह्रदय से आभारी है।

जीवन-ग्रन्थ के प्रकाशन में दानवीर पीतलिया परिवार, सिरयारी (राजस्थान) भारत विल्डिंग, काच्छीगुड़ा, हैदरावाद (आ.प्र.) एवं स्व. श्रीमती उमराव वाई मूथा, चैन्नई ने आर्थिक सहयोग प्रदान किया है। उनका यह सहयोग-सहकार अभिनदनीय-अनुकरणीय है। आशा है, भविष्य मे उनका सहयोग सदैव इसी प्रकार संघ को उपलब्ध रहेगा।

ग्रन्थ-प्रकाशन में पूर्ण सावधानी रखी गई है, फिर भी स्खलना संभव है। स्खलना की ओर संकेत प्राप्त होने पर भविष्य में सुधार का लक्ष्य रहेगा।

दिव्यात्मा का दिव्य-भव्य जीवन दिव्य-भव्य रूप में प्रकाशित कर संघ गौरवान्वित है। इस ग्रन्थ से किसी एक का भी जीवन रूपान्तरित हुआ तो प्रकाशन-प्रयोजन सार्थक समझा जायेगा।

शान्तिलाल सांड
संयोजक
साहित्य प्रकाशन समिति
श्री.अ.भा साधुमार्गी जैन संघ, बीकानेर (राज.)

शान्त क्रान्ति के श्रीगणेशकर्ता

विश्व के सचेतन प्राणधारियों में मानव एक श्रेष्ठ प्राणी है और श्रेष्ठता का कारण है उसकी विचारशीलता। वह विचारों से प्रेरणा लेता है और उन्हें प्रेरित भी करता है। उसके विचारों की उत्तेजना जगत् में प्रतिशोध और विनाश का दृश्य भी उपस्थित कर सकती है और विचारों के बदलते ही समूचा जगत् बदल सकता है। अतः जब मानव विचारों की इस विलक्षण शक्ति के प्रवाह को अंतर् की ओर मोड़ देता है तो उसमें अदम्य उत्साह, अनुपम शांति, धैर्य एवं विश्वास का विकास होता है और उनसे ऐसी परिस्थितियों का निर्माण करता है कि वह स्वयं अपने लिये ही नहीं, अपितु प्राणिमात्र के लिये आदर्श बन जाता है।

जीवन के इतिहास में मानव एक सर्वोच्च पद है। इसमें अपने-आप को परिस्थिति के अनुकूल ढाल लेने की एक विशिष्ट क्षमता है। जिससे वह अपने अनुभवों और स्मृति से जीवन के नये-नये पाठ सीखता है, जबकि अन्य–अनेक प्राणी जो भी जीवन बिताते हैं, उसे भूलते जाते हैं। उनके जीवन में प्राप्त को भोगना ही समाया हुआ है। अकर्मण्यता या लाचारी से जब जैसा-कुछ भी प्राप्त हो गया, उसमें ही संतोष कर लिया। उनमें न तो अच्छे अवसर प्राप्त करने की आकांक्षा है और न प्रयत्न करने की इच्छा है। उनका जीवन गाड़ी के पहिये के समान घूमते हुए समाप्त हो जाता है।

अतएव मानवजीवन ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा प्राणिमात्र के शाश्वत ध्येय की प्राप्ति होती है। उसमे सारासार, धर्माधर्म और आत्म-अनात्म आदि तत्त्वों का निर्णय करने की बुद्धि है, जिसके द्वारा समस्त बन्धनों से मुक्त होकर सच्ची और सर्वकालव्यापी स्वतंत्रता एवं सर्वदुःखों से मुक्त होकर चिरशांति प्राप्त की जा सकती है, जो प्राणिमात्र का चरम ध्येय है। इसी को परमपद, परमात्मपद या मोक्ष कहते हैं। इस पद को प्राप्त करने की सामर्थ्य मानव के सिवाय अन्य प्राणियों में नहीं है।

अतः मानव-जीवन अपने-आप में महत्त्वपूर्ण है और चराचर विश्व के समस्त प्राणियों को प्राप्त करने योग्य है। इसकी अपनी कुछ ऐसी विशेषताएं हैं जो अन्य प्राणियों में प्राप्त नहीं

होती हैं। विश्व की संस्कृतियो का जन्मदाता मानव ही होता है। इसमें देवत्त्व भी है और दानवता भी है, योग भी है और भोग भी है। यदि सभी प्रकार की अच्छाइयों और बुराइयों को एक स्थान पर ही देखना हो तो मानव-जीवन में देख सकते हैं।

परन्तु जब तक मानव-जीवन का उद्देश्य न समझा जाये, स्वरूप का भान न हो सके, जगत् जिस रूप में है, उस रूप में परख न सके और शाश्वत लक्ष्य—मोक्ष का यथार्थ मार्ग ज्ञात न कर सके, तब तक उसकी सार्थकता नहीं है। इसलिये प्रत्येक मानव का कर्तव्य है कि वह अपने जीवन की उपयोगिता का सदैव विचार करता रहे।

विचार के केन्द्रबिन्दु दो हैं—एक अंतर्जीवन और दूसरा बाह्यजीवन। अंतर्जीवन में वह धर्म का प्रकाश लेकर प्रवेश करता है। मानव अपने जीवन के प्रति जितनी भी धारणाएं और विश्वास बनाता है, वे सब उसके हैं और उनके सहारे ही बाह्य जगत् में पदार्थों को देखने, पाने की इच्छा करता है। उन्हीं के सहारे समाजों का निर्माण होता है, राष्ट्र और विश्व की व्यवस्था बनती है एवं महाविनाश व महाप्रलय की ओर न जाकर अंधकार से प्रकार की ओर बढता है। लेकिन जब कभी भी मानव-जीवन के साथ विश्वासघात किया गया, तब-तब जीवन की उपलब्धियां नष्ट-भ्रष्ट होती रही हैं।

इसलिये यह सिद्ध है कि उसी मानव को महत्त्व दिया जाता है जो अपने शाश्वत लक्ष्य की ओर बढ़ता है, जो सच्चाई और भलाई के अन्वेषण में प्रगति करता रहता है। इस अन्वेषण में जो प्रयत्नशील रहते हैं, वे मानवीय सभ्यता के इतिहास में स्थायी स्थान प्राप्त करते हैं। ऐसे मानव महापुरुष या महामानव के रूप में जनसाधारण के मानस में सदा के लिये अपना स्थान बना लेते हैं। उनकी अनुभूति मानवमात्र के हृदयपटल पर एक विशेष छाप लगा देती है।

महापुरुषों का जीवन पवित्रता और नि:स्वार्थ आस्तिक्य का एक सुस्पष्ट अध्याय होता है। वे आध्यात्मिक सिद्धांतों और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उनकी उपयोगिता का उपदेश देकर, अपने आचार-विचार द्वारा जीवन मे उनका प्रयोग कर मानवता को उत्कर्षोन्मुखी बनाने के लिये जीवित रहते हैं। उनका जीवन जनसाधारण के लिये देन है। उनके जीवन से हमें संसार रूपी सागर से तिरने की प्रेरणा मिलती है। अतएव इसी आशय को लेकर किसी कवि ने कहा है—

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।।

बड़े-बड़े श्रीमानों की निधियों को ठुकरा सके। उनकी वाणी और उपदेश युग-युग तक जनता को मार्गदर्शन कराते रहते हैं। जब तक भव्य पुरुष आत्मविकास के लिये प्रयत्नशील रहेंगे, तब तक उन-उन महापुरुषों की सदैव स्मृति बनी रहेगी।

ऐसे महापुरुष अज्ञानान्धकार का भेदन करते हुए अध्यात्म-गगन में सूर्य के समान चमकते हैं। उनके उपदेश अन्तरात्मा को प्रकाशित कर देते हैं, जिससे पाशविकता के अंधकार में दबी हुई मानवता पुनः चमकने लगती है। ऐसे महापुरुषों का जीवन ही संसार मे आदर्श की स्थापना करता है। उनके उपदेश नये संसार को घड़ते हैं और कार्य नव-निर्माण करते हैं।

यदि विश्व की प्रगति का इतिहास उठाकर देखें तो उसके पन्ने-पन्ने से मालूम होगा कि उसमें कुछ थोडी-सी विभूतियों का लेखा है जिनकी विचारधारा बाह्य रूप धारण करके विश्व की प्रगति का इतिहास बन गई है।

यहां विश्व की एक ऐसी ही विरल विभूति का जीवन-इतिहास अंकित कर रहे हैं, जो आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. के नाम से विख्यात हैं। वे जन-जन के श्रद्धेय और मार्गदर्शक हैं। वे एक संत थे। उन्होंने संसार त्याग दिया था, अंगुलियों पर गिने जाने वाले कुछ एक पारिवारिकजनों को त्याग दिया था, लोकेषणा को त्याग दिया था, गृहस्थी के प्रपंचों को त्याग दिया था, अडोस-पड़ोस में बसने वाले पुरजनों का त्याग कर दिया था, कतिपय व्यक्ति-विशेषों से नेह-नाता तोड़ दिया था। परन्तु कुछ व्यक्तियों के बदले उन्होंने विश्व के प्राणिमात्र से सम्बन्ध जोड लिया था। 'सत्त्वेषु मैत्री', 'सर्वभूतात्मभूत' की भावना सजीव हो गई थी। ईंट-चूने से बने घर की चारदीवारियों का परित्याग कर लाखों मानवों के मनमंदिर में अपना डेरा जमा लिया था। उन्होंने संसार का त्याग कर दिया था लेकिन अपने कर्तव्य से मुख नहीं मोड़ा था। उनकी निवृत्ति में भी प्रवृत्ति का उदार घोष था। उनकी ममता में समता का समावेश हो गया था, स्नेह में रूपान्तरित हो गई थी। परिणामत. उन्होंने संसार का बड़े से बड़ा उपकार किया। उनका जीवन-इतिहास मानवीय जीवन का इतिहास हैं। उनका आत्म-विकास जन-कल्याण का राजमार्ग हैं। उनका विचाप सांस्कृतिक सुरक्षा का प्रयत्न करने वालों को प्रेरणा सूत्र है। उनका आचार साधकों के लिए प्रोत्साहन है और उनका उपदेश प्रगति का शंखनाद है।

हमारे चरितनायक जनवंद्य, श्रमण-संस्कृति के संरक्षक, परमश्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री

गणेशलालजी म. सा. के नाम से प्रख्यात महापुरुष हैं। इन महापुरुष के जीवन को हम कितना अंकित कर सकेंगे—कह नही सकते। हम जो लिखेंगे, उससे जनता को संतोष नहीं होगा और हो भी कैसे, जब हमारे कहने की अपेक्षा उनका महिमायुक्त जीवन और जीवन की घटनाओं के संस्मरण उसकी अपनी मन-मंजूषा में सुरक्षित है। महापुरुषों का जीवन महानता का महासागर है और उसका विशद विवरण लेखनी से लिखे जाने का विषय नहीं होता है। लिखते-लिखते जब अनेक जीवन एक जीवन का संपूर्ण अंकन नहीं कर सकते तो एक व्यक्ति समग्र जीवन का वर्णन करने का दावा भी कैसे कर सकता है ? फिर भी सैद्धान्तिक दृष्टि से यह सत्य है कि अंकित अंश समाज के वास्तविक मूल्यों का संरक्षण एवं आत्मिक चेतना को शिक्षित करने में सहायक होता है।

अतः परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म. सा. का पुण्यस्मरण करते हुए उनके जीवन-इतिहास का श्रीगणेश कर रहा हूं। इसमें जो-कुछ भी श्रेष्ठ और उत्तम है, वही ग्रहण कर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होते रहें। प्रमादजन्य त्रुटियां सदैव उपेक्षणीय है और विद्वद्वर्ग से इसकी अपेक्षा है। विज्ञेषु किमधिकम्।

सं. 2027, आसोज शुक्ला 2
2 अक्टूबर, 1970

चरणचंचरीक
देवकुमार जैन

श्रद्धा के दो प्रारंभिक शब्द

मुनिश्री सुशीलकुमारजी म.सा.

श्रद्धेय आचार्यश्री गणेशलालजी म. की जीवन-गाथा के प्रकाशन का विचार बहुत ही स्तुत्य है। मेरा स्वयं का विचार था कि मैं उनके मानवीय दृष्टिकोण, साधनापरक जीवन एवं उनके विश्व-मंगलमय संस्मरणों को रेखांकित करूं और किसी समय संक्षिप्त रूप में उनके दिव्य जीवन की झाँकी का अभिलेखन भी कर पाया था। किन्तु इस समय मेरी अपनी ही कार्य-व्यस्तताएं लिखने में असमर्थ करती रहीं। मुझे यह जानकर सन्तोष हुआ कि अब श्रद्धेय आचार्यश्री का जीवन प्रकाशित होने जा रहा है। मैं लेखक महोदय का आभारी हूं, जिन्होंने ऐसे पवित्र विचार और एक महात्मा की जीवन-गाथा को सम्पादित एवं प्रकाशित करने का भार अपने ऊपर लिया।

मैं मानता हूं कि संसार में सबसे कठिन काम संस्कृति एवं सभ्यता के क्षेत्र में बिखरे हुए आध्यात्मिक बीजों को वपित एवं पोषित करने का है। विशेषकर जैन संस्कृति की साधना ही सबसे अधिक सहज और दुष्कर है क्योंकि जिस शून्यता में जाकर आत्मा के प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा इस जगत् एवं आत्मतत्त्व का साक्षात्कार करना चाहते हैं, वही सबसे कठिन काम है। वास्तव में जिसे हम सहज कहते हैं वही सबसे कठिन होता है।

आत्मा ही हमारा मुख्य तत्त्व है किन्तु उसे ही जानना सबसे अधिक दुःसाध्य है। निर्विकार मन और विचाररहित अवस्था की प्राप्ति जितनी साहजिक है, उतनी ही अलभ्य है। अहिंसा, संयम और तप की त्रिवेणी में गोता लगाये बिना उस परमशून्य अवस्था को नहीं पा सकते और न ही आत्मा के अपने निज गुणों जो स्वत.प्राप्त हैं, उनको उपलब्ध कर सकते हैं।

सन्तों का जीवन साहजिक जीवन होता है। मन की चंचलता में तो सारा संसार ही डावांडोल हो रहा है, किन्तु सन्त पुरुष निर्विकार, निश्चेष्ट और निश्चिन्तता से उस आत्मगुण को प्राप्त कर लेते हैं।

भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के इस सारे प्रवाह को सन्त पुरुषों ने विवेक की मर्यादा से इस तरह प्रवाहित किया है कि वह मनुष्य के जीवन-विकास के लिए बहुत ही लाभकारी सिद्ध हो सका है। इसीलिए सन्तों की जीवन-गाथाएं लिपिबद्ध करने की आवश्यकता पड़ती है। इससे सन्तों के देहातीत होने पर भी उनके बताए सिद्धान्त, उनके जीवन की अनमोल अनुभूतियां, मार्मिक प्रसंग और आत्मा को उद्बोधन देने वाले संस्मरण स्थायी रूप से रह सकते हैं।

मेवाड़ की वीर वसुन्धरा पर जन्म लेकर इस महापुरुष ने धर्म-दीप को जिस तेजस्विता के साथ प्रज्वलित किया एवं डावांडोल होती हुई भारतीय अन्तरात्मा को अहिंसा एवं संयम का संबल प्रदान किया, वह युग-युग तक अविस्मरणीय रहेगा। साक्षात् आचार्यदेव के सान्निध्य में आने का शुभ अवसर जिन्हें प्राप्त हुआ है, वे उनके गहरे प्रभाव और मार्मिक वचन को कभी भुला नहीं सके हैं। उनकी ताम्रवर्णी काया, उद्दीप्त तेजस्वी ललाट, मुस्कानभरा चेहरा किसी को भी अपनी ओर आकर्षित कर सकता था।

मुझे भी उनके सान्निध्य मे रहने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैं उनके बाल-सुलभ, निष्कपट जीवन, सादगी और प्रेम से भरे हुये वचन कभी भुला नहीं सका। पहले ही साक्षात्कार का मेरे मन पर जो असर हुआ उसको मैं विद्युत के ए.सी. करंट की उपमा दे सकता हूं। मैं जैसे-जैसे निकट होता चला गया, उनकी आत्मीयता और उनके प्रेम ने मुझे सदा के लिए अपना बना लिया। बहुत-सी बातें ऐसी थीं जिनके सम्बन्ध में मेरे और उनके विचार मेल नही खाते थे। वे पुराने विचारों के प्रतिनिधि माने जाते थे और मैं प्रगतिशील नये विचारों का सदा पक्षपाती। दोनों मे कितना वैषम्य, किन्तु मैने यह देखा कि उनका सरल एवं सच्चा प्रेम इतना शक्तिशाली था कि विचारभेद कभी मनभेद का कारण नहीं बनते थे। मैं उनकी बात को कभी टाल नहीं सकता था।

एक बार एक तेरापन्थी सन्त ने मेरे से पूछा कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. और आपके विचारों में पूर्ण समानता है या कुछ अन्तर है ? मैंने कहा कि बहुत-से विचारों में बिल्कुल भी मेल नहीं खाता तो तपाक से वे सन्त बोल उठे, "तो ये आपके उपाचार्य कैसे और आपका संगठन कैसे चलता है ?" मैंने कहा बुद्धि बेचकर अनुशासन का नियम भारतीय संस्कृति ने कभी पनपने नहीं दिया। वैचारिक स्वतन्त्रता और आचार की मर्यादा ही हमारी संयम-साधना की शर्त रही है। हम अपने विचार प्रकट कर सकते है और नितान्त स्वतंत्र रूप से सोच सकते हैं, किन्तु हम करते वह हैं जो हमारे अनुशास्ता का आदेश होता है। अनुशास्ता हमारे उपाचार्य हैं। उनके आदेश में और आज्ञा में सारा संगठन चलता है, किन्तु प्रजातंत्र की तरह विचार-स्वतंत्रता का अपहरण नहीं किया जाता है। मुझे खयाल है, वे साधु सकपका-से गए, किन्तु उन्हें अन्तरात्मा में प्रसन्नता हुई। मैंने कहा कि महात्माओं के जीवन में सच्चरित्रता और निर्भयता ही सब से दिव्य गुण होते है और आप यह मानते ही हैं कि भयग्रस्त जीवन कभी सच्चरित्र नहीं होता और कोई दुश्चरित्र निर्भय नहीं होता। इसका एकमात्र कारण आसक्ति है। आसक्ति से भय पैदा होता है और भय से मानवीय सद्गुणों का नाश हो जाता है। वैराग्य से निर्भयता का सूत्रपात होता है और वही सच्चरित्रता एवं वैचारिक स्वतंत्रता में कारणभूत होता है।

मैं उपाचार्यश्री में देख रहा हूं कि उन्होंने कभी भी वैचारिक स्वतंत्रता का विरोध नहीं किया, क्योंकि वे सच्चे वैराग्यवान संत पुरुष थे। मुझे उनके सात्विक सान्निध्य से जो अनुभूति प्राप्त हुई है और मेरे मानस पर जो उनका उज्ज्वल चित्र खिंचा है, वह संगठन को बनाए रखने में काफी सहायक है।

मुझसे उस संत ने उपाचार्यश्रीजी म. की विशेषताओं की जानकारी चाही तो मैंने कहा कि उनके तपःपूत जीवन में ब्रह्मचर्य की ऊर्जस्विता एवं सत्य की अगाध श्रद्धा का अलौकिक संमिश्रण हुआ है। उनके व्यक्तित्व की स्निग्ध शालीनता और संयम-साधना के प्रति अडिग निष्ठा प्रत्येक आगन्तुक पर प्रभाव डाले बिना नहीं रह सकती। राष्ट्र-प्रेम एवं राष्ट्र-कल्याण की मंगल-भावना उन्हें परमपूज्य जवाहराचार्य से प्राप्त हुई एवं विश्वप्रेम तथा मानवोत्थान की सतत जिज्ञासा वीतरागता के निरंतर चिंतन से उद्भूत हुई है। उनमें वैराग्य की जो अटूट भावगंगा बह रही है, उसी ने उन्हें गंभीर होते हुए भी सरल, कठोर, संयमी होते हुए भी सहिष्णु, परम-विरक्त होते हुए भी अनुशासनप्रेमी और आत्मतत्त्ववेत्ता होते हुए भी समाजहितैषी बना दिया है।

संत कहने लगे कि अनुशासन और संगठन कैसे चलता है ? क्या उसमें विघटनकारी लोग नये-नये प्रपंच नहीं करते ? जब कभी गुटबंदियां संगठन के सामने खडी हो जाती हैं तब उपाचार्यश्री क्या करते हैं ? मैंने कहा कि हमारे उपाचार्यश्री संगठन के बहुत हामी हैं किन्तु संगठन का रथ अनुशासन के पहियों पर चलता है और कभी-कभी संगठन के हित में कड़े अनुशासन की बात की जाती है या व्यवस्था से अनुशासनार्थ कोई कार्रवाई करनी पड़ती है, तो मैं देखता हूं कि उनके चारों ओर भी दुरभिसंधियां होने लग जाती हैं। ऐसे अनेक प्रसंग उनके जीवन के साथ लिपटे पड़े हैं। कितने ही संतजन एवं श्रावक समुदायों का उन्हें कोपभाजन बनना पडा है। किन्तु वे मानते हैं कि जब तक संगठन में पक्षपात नहीं आता है और व्यक्तिगत स्खलनाओं की छिछालेदार न कर आत्मशुद्धि की बात ही की जाती है, तब तक संयम-साधक और संगठन, दोनों ही सुचारु रूप से चलते रहते हैं। किन्तु जब किसी संगठन में पक्षपात घुसता है, बुराइयों को शुद्ध करने की अपेक्षा छिपाने की बात की जाती है, तब मानसिक सद्भाव विकृत होने लगता है।

यह बात 1956 के प्रारम्भ की है। उसी समय थली प्रदेश में मुझे वे संत मिले थे और उनसे गम्भीर विचारणा हुई थी। किन्तु उसके बाद तो कितने ऐसे प्रसंग आये हैं जिन्होंने सारे संगठन को झकझोर दिया, जिसका कुछ स्वरूप आपको इस जीवन-गाथा में पढने को मिलेगा।

मै मानता हूं कि आचार्यश्री गणेशलालजी म आध्यात्मिक महल के खम्भे क
उनके स्वल्पकालिक जीवन ने समग्र मानवजाति के सामने जिन अनावृत सत्य व
उद्घाटित किया है और अनेकांतात्मक समन्वय पद्धति का मार्ग प्रशस्त किया है,
अमर देन है। खादी-प्रेम और वीतरागता की साधना, दोनों का समन्वय ही उनका
है। वैराग्य की उत्कट भावना एवं संगठन-प्रेम ही साधु-समाज के लिए उनका प्र
है। अनुशासन और सच्चरित्रता ही साधु-संगठन के प्राण हैं। अगर विषय-वि
आत्महित साधु जीवन से निकल जाता है तो वह संसार पर कलंकरूप है। जि
उसे धो दिया जायेगा, उतना ही लाभ है। आचार्यश्री गणेशलालजी म. दृढ अध
महाप्राण व्यक्ति थे। जो भी कार्य उन पर डाला गया और जिस कार्य को उन्हे
लिया, उसे सत्संकल्प की तरह पूरा करने मे जुटे रहे। दिवंगत आचार्यश्री गणेश
की प्रतिछवि, प्रतिच्छाया एवं प्रतिकृति वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म. में आभा
मन गद्गद हो जाता है। आशा है कि दिवंगत आचार्यदेव की श्रमण-संगठन के नि
योजनाएं एवं विश्वकल्याण की भावनाएं साकार रूप लेंगी और मानव-जाति उनके
पर चलकर आत्म-लाभ का मार्ग प्राप्त करेगी। इसी मंगलकामना के साथ–

– मुनि सु

निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के सजग प्रहरी

श्रेष्ठतम परमविज्ञाता-स्वरूप की वास्तविक शुद्ध चरमसीमा की उपलब्धि मानव-तन से ही हो सकती है। मानव-तन अनेकानेक प्राणियों को प्राप्त है, पर इसको सार्थक करने वाली विरल ही विभूतियां मिलती हैं। वे विभूतियां प्रारम्भ में साधारण मानव के रूप में होते हुए भी सही ज्ञान के साथ ऐसा पुरुषार्थ करती हैं कि जिससे साधारणजन की पंक्ति से सर्वथा ऊपर उठ जाती हैं, जिसके सहारे वे असाधारण रूप में परिलक्षित होती हैं। वह सहारा रत्नत्रय का होता है।

पंचमकाल में, जो कि ह्रासता की स्थिति के उन्मुख है, अधिकांश दुःख, दौर्मनस्य, स्वार्थान्धता, पदलिप्सा, सत्ता और सम्पत्ति के कुहरे की प्रबलता में मानव की वृत्ति दानवता की ओर शीघ्र-गति से ताण्डव नृत्य कर रही है। महातृष्णा की ज्वाला में नैतिकता एवं धार्मिकता मानो भस्मसात् की स्थिति को प्राप्त हो रही है। व्यक्ति, परिवार, समाज तथा राष्ट्र आदि समग्र विश्व मे प्रायः कामुकता की काली छाया परिव्याप्त हो रही हो, वहां पर वीतराग-वाणी ही एकमात्र जीवनदायिनी बन सकती है। वह वीतराग-वाणी निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की परम्परा में जिनको सहज ही उपलब्ध हो पाई है, अपने इस मानव-तन को सार्थक क्यों नहीं बनायेगा ? क्यों नहीं अपनी आत्मज्योति को परिस्फुटित कर संसार के अज्ञानान्धकार को नष्ट करने की चेष्टा करेगा ? अर्थात् अवश्य वह वैसा करेगा और जनसाधारण की स्थिति में वह एक आराध्यदेव के रूप में उपस्थित होगा।

ऐसे महामानवों के सत्पुरुषार्थों से ही संसार चमका है और भविष्य में भी चमकता रहेगा। ऐसे पुरुष ही संसार में शान्त क्रान्ति को जन्म देकर विश्वशान्ति की अमोघ साधिका निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के गौरव को अक्षुण्ण रखेंगे। भूतकाल मे भी समय-समय पर किसी भी क्षेत्र में शैथिल्य परिव्याप्त हुआ तो महान् विभूतियों ने अपने मानापमान की परवाह न करते हुए उत्क्रान्ति का बिगुल बजाया। उनकी गुणगाथाओं से इतिहास के पृष्ठ स्वर्णाक्षरों में अंकित हैं और उससे इतिहास के अभ्यासी भलीभांति परिचित हैं। लेकिन जिन पुरुषों का कृतित्व आधुनिक इतिहासकारों को लेखनी में लिपिबद्ध नहीं हुआ है, उनका आगम-वाणी आदि अपुष्टवागरणा मे उपलब्ध हो पाया है। ऐसे तो अनेक महापुरुषों की जीवन-घटना का यथास्थान उल्लेख है ही, उन सबको यहां उद्धरण रूप में लेने से विस्तार की स्थिति बढ सकती है। अतः जिज्ञासुओं को यथास्थान ही अवलोकन करने की आवश्यकता है। पर हमारे चरितनायक के जीवन की उत्क्रान्ति का सामंजस्य जिन महापुरुष के साथ किया जा सकता

है, उन महापुरुष का यहां उल्लेख आवश्यक होने से किया जा रहा है। वह हैं गर्ग नाम के आचार्य।

यह गर्गाचार्य बड़े ही क्रान्तिकारी थे। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के सजग प्रहरी थे। इनको शिष्यों का लालच भी नहीं हो पाया था। शिथिलता को बरदाश्त नहीं करते थे। जब कभी भी शिष्यों में शिथिलता का प्रवेश आता हुआ देखते तो उनको सुधारने की कोशिश करते थे। लेकिन उन्होंने अनुभव किया कि ये शिष्य गलियार बैल की तरह शिथिल हो चुके हैं, इनके साथ रहने से मेरी संयम-यात्रा समाधियुक्त नहीं रह सकेगी। संख्या की विपुलता से शासन की शोभा नहीं। शासन की शोभा सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना मे सन्निहित है। वह आराधना सुचारित्री अल्पसंख्या में भी की जा सकती है। उसी में समाधिभाव व निर्ग्रन्थ-संस्कृति की रक्षा है आदि कई दृष्टिकोणो को सन्मुख रख कर दुष्ट शिष्यों का संग छोड़ दिया। इस आशय के भाव उत्तराध्ययन सूत्र के 27वें अध्ययन में परिलक्षित होते है।

उत्तराध्ययन सूत्र अपुट्ठवागरणा के रूप में माना जाता है, जो कि भगवान महावीर ने अपने निर्वाण के पहले अर्थरूप में फरमाया। गर्गाचार्य का समय क्या है, इसका उल्लेख तो नहीं हो पाया है, लेकिन इतना अवश्य सोचा जा सकता है कि भगवान महावीर के पहले के तीर्थकरों के समय में होना चाहिए, क्योंकि भगवान महावीर का शासन तो भगवान महावीर के निर्वाण के पश्चात् रहा और आचार्य की परम्परा के रूप में सुधर्मास्वामी का उल्लेख है। अतः यह अन्य तीर्थंकरों के समय के कहे जा सकते हैं और उनका उल्लेख अन्तिम तीर्थंकर के अन्तिम समय में बिन पूछे होने से तीर्थंकरों के आशय की जो अभिव्यक्ति भलीभांति स्पष्ट हो जाती है वह यह है कि निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति में शुद्ध आचार-विचार को महत्त्व दिया गया है, न कि संख्या को और न आचार-विचार-शून्य संगठन को। मानो इसी बात का द्योतन करने के लिए गर्ग नाम के आचार्य का विना किसी के प्रश्न ही उल्लेख किया गया है।

ऐसे तो यह बात मंगलपाठ के शब्दों से भी भलीभांति व्यक्त हो जाती है। जैसे कि अरिहंत सरणं पवज्जामि, सिद्धे सरणं पवज्जामि, साहू सरणं पवज्जामि, केवली पन्नतं धम्मं सरण पवज्जामि अर्थात् अरिहंत, सिद्ध, साधु और धर्म की शरण बताई गई है, न कि संगठन की शरण।

यदि निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति में आचार-विचार-शून्य संगठन को ही महत्त्व दिया होता तो "संघ शरणं गच्छामि" इस तरह का पाठ, जैसा बौद्ध ग्रन्थों में है, वैसा इस मंगलपाठ में भी प्रयुक्त होता। लेकिन वीतराग परम्परा में आचार-विचार-सम्पन्न संघ, संगठन एवं साधु-संस्था को महत्त्व दिया गया है। यह बात गर्गाचार्य के चरितानुवाद वर्णन से सुस्पष्ट है।

उक्त संकेत से पाठकगण सहज ही यह समझ पायेंगे कि गर्गाचार्य के चरित्र के सा
आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. का चरित्र कितना साम्य रखता है। एक दृष्टि से देखा जा
तो कई बातें अधिक विशिष्टता रखती हैं। अनुमानतः गर्गाचार्यजी ने जितने मुनियो का त्या
किया उससे भी अधिक संख्या को छोड़ने का प्रसंग चरित्रनायक का आया है। उन्होंने शाय
सशक्त अवस्था में यह कार्य किया होगा लेकिन चरित्रनायक ने तो रोगाक्रांत अवस्था में भ
इस प्रकार की शांत क्रान्ति का गंभीर समाधि भावना के साथ कदम उठाया। जहां रोगाक्रान
स्थिति में मानव अपने संयम का भी ध्यान नहीं रख पाता, वहां आचार्यश्री गणेशलालजी म
सा. ने वृद्धावस्था और डाक्टरों को भी आश्चर्य में डालने वाले भयंकर रोग के प्रादुर्भाव रू
असातावेदनीय में भी, शरीर के ध्यान को छोड़कर संयम का पूरा ध्यान रखते हुए, सारे समाज
के सम्मान को पीठ पीछे रखकर, अपमान के कंटीले मार्ग को सामने रखते हुए अनंत
तीर्थंकरों की परम्परा को सुरक्षित रखने वाली निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के संरक्षणार्थ शान्त
क्रान्ति का कदम उठाया। इससे सहज ही उस महानुभाव के अन्तस्तल की प्रगाढ़ साधना की
स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

हमारे चरित्रनायक आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. सुसंगठन के हिमायती थे औ
सुसंगठन का आधार मानते थे सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना। इसके लिये उन्होंने जो
प्रयास किया, वह सर्वविदित ही है।

सादडी वृहत्साधु सम्मेलन में आचार्य पद की नियुक्ति के लिए सर्वप्रथम आचार्यश्री
गणेशलालजी म. सा. का नाम आया और प्रतिनिधि मुनिवर आपश्री को आचार्य पद के स्थान
पर प्रतिष्ठित करने के लिए एकस्वर से समर्थन कर रहे थे तब आपश्री ने उन प्रतिनिधि
मुनियों से कहा कि आप लोगों ने मेरी अनुमति लिए बिना ही जो समर्थन किया है, इसके लिए
मैं आप लोगों के धर्मस्नेह का आभारी हूं। लेकिन मैं इस पद को मेरे लिए पसन्द नहीं करता।
क्योंकि अब मेरी अवस्था ढल रही है और मैं अपने जीवन को अधिक आत्म-साधना में लगाना
चाहता हूं। इसी भावना को ध्यान में रखकर मैं इस स्थल पर आया हूं और चाहता हूं कि
निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा करते हुए संगठन बनाया जाये और मैं उस संगठन के लिए
सबसे पहले अग्रसर होना चाहता हूं, जिसका संकेत मैंने पहले ही कर दिया है। यदि यह
संघ-ऐक्य-योजना अखंड रहे और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा होती हो तो मैं अपना
सर्वस्व त्याग करके वीतराग परम्परा को सुरक्षित रखने के लिए संगठन में तत्पर हूं। बिना

प्रतिष्ठित कर दिया जाये तो मैं अनुशासन के नाते तीर्थंकरों की आज्ञा की तरह उनकी आज्ञा में रहता हुआ विचरण करने को तत्पर हूं, आदि आशय को स्पष्ट करते हुए आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के साथ संगठन का आदर्श उपस्थित किया।

प्रतिनिधि मुनिवर आचार्यश्री के तलस्पर्शी संगठन सम्बन्धी हार्दिक उद्‌गारों को सुनकर गद्‌गद हो गये और कहा कि भगवन् ! इस चुनाव मे आपकी अनुमति हम क्या ले, हम तो सर्वसम्मति से आपका चयन कर चुके हैं। किसी का कहने पर चयन नही होता, वह तो चयन करने वाले के हृदय से चयन होता है आदि विषयक कार्रवाई चलते हुए रात्रि का काफी समय चला गया और आचार्यश्री अपनी ही बात दोहराते हुए उठे तो सभा भी विसर्जित हो गई।

इसके पश्चात् पिछली रात्रि के लगभग तीन बजे से प्रमुख मुनिवरों का एक के बाद एक आचार्यश्रीजी के पास आवागमन हुआ और प्रार्थना की गई कि यदि आप इस पद को स्वीकार नहीं करेंगे तो यह संगठन भी नहीं बनेगा और सारे देश के स्थानकवासी संघ की हंसी होगी कि संघ का नेतृत्व सम्हालने वाला कोई योग्य व्यक्ति ही नहीं है। अतः आपको हर हालत में यह पद स्वीकार करके हमें अनुगृहीत करना चाहिये आदि बातें हुई, जो यथाप्रसंग पाठको को पढ़ने को मिलेंगी।

तदनन्तर आचार्यश्री ने सशर्त श्रमणसंघ में प्रवेश किया। शर्त यह थी कि "संघ-ऐक्य -योजना अखंड रहे तब तक के लिये मैं बाध्य हूं।" इसका तात्पर्य यह है कि संघ-ऐक्य की स्थिति खंडित हो जाये तो मैं इस श्रमणसंघ के अन्दर बंधा हुआ नहीं हूं। यह शर्त आचार्यश्री की दीर्घदृष्टि की सूचक है। सादड़ी में जैसा श्रमणसंघ बना, उसका विभेद (विघटन) मूर्धन्य मुनिराजों द्वारा हो जाने पर आचार्यश्री गणेशलालजी म. अपनी उस शर्त के अनुसार उससे पृथक् हो सकते थे। जिसका उल्लेख आचार्यश्रीजी ने श्रमण संघ से पृथक् हो जाने के बाद अपनी 22, सितम्बर '62 की घोषणा में किया है।

स्वतन्त्र बनने पर भी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धिपूर्वक सुसंगठन की भावना आचार्यश्रीजी ने पृथक् नहीं की। यही कारण है कि आचार्यश्रीजी ने निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग का आह्वान किया कि–

मैं सुसंगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूं। मैं अब भी यह चाहता हूं कि मेरा संतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार, जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूं (जिसको श्रमण संघ ने सादड़ी में स्वीकार किया था), एक के नेतृत्व में श्रमण संगठन साकार रूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरा संतोषजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासंभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर अपने

में से किसी एक शास्त्रज्ञ, श्रद्धावान एवं चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्यपरंपरा आदि सब उन्हीं आचार्य के अधीन रहे। ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूं और अन्य संत, सतियों से भी मैं यही अपेक्षा करता हूं कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें।

इस प्रकार आचार्यश्री ने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ संगठन को महत्त्व दिया और उसके लिये सब-कुछ त्याग करने की भावना स्पष्ट कर दी। पर ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ संगठन के लिये जब तैयारी दृष्टिगत नहीं हुई तो सादड़ी सम्मेलन में स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के सुरक्षार्थ समाचारी के साथ सुसंगठन को साकार रूप दे दिया और दरवाजा सबके लिये खुला रख छोड़ा।

आचार्यपद का चयन प्रायः होता है और उनके चरणों में नेतृत्व के अधिकार भी अर्पण किये जाते हैं। लेकिन इनको जिस ढंग से नेतृत्व प्राप्त हुआ, यह एक अद्भुत घटना-सी है।

पहले जलगांव में आचार्यश्री जवाहरलालजी म. द्वारा सम्प्रदाय का नेतृत्व सम्हालने का प्रसंग आया तो चतुर्विध संघ ने आपको ही अपना नेता चुना। इसके पश्चात् भी वृहत्साधु-सम्मेलन, अजमेर में देश के मूर्धन्य सन्तों में से पांच पंच नियुक्त किये गये थे, उन्होंने भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म. और आचार्यश्री मन्नालालजी म. के पाट पर आपको युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया।

इसके पश्चात् समग्र संप्रदायों के एकीकरण का वायुमंडल चालू हुआ और उसमें वृहत् सम्मेलन की योजना चल रही थी। उसी के बीच कॉन्फरेंस का एक शिष्टमण्डल आचार्यश्री गणेशलालजी म. की सेवा में पहुंचा और उसने निवेदन किया कि वृहत्सम्मेलन के पहले जितनी भी सम्प्रदायों का एकीकरण हो सके, कर लेना चाहिये। उसमें आपश्री के नेतृत्व की आवश्यकता है। तदनुसार पांच सम्प्रदायों का एकीकरण हुआ और आचार्यश्री को नेतृत्व सम्हालने की अर्ज की। उसके पश्चात् सादड़ी (मारवाड़) में वृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन हुआ और उसमें समग्र प्रतिनिधियों ने एक स्वर से आपके चरणों में संघ-संचालन का नेतृत्व सौंपकर आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया। इस पद को स्वीकार कराने के लिये सर्वप्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म. सा. ने जो भाषण दिया वह यथास्थान पाठकों को अवलोकन करने को मिलेगा।

इस प्रकार अखिल भारतवर्ष के लिये आपश्री का चयन हुआ। इसके पश्चात् जब आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के सुरक्षार्थ शांत क्रांति का कदम उठाया तो मारवाड़ में विचरण करने वाले बहुश्रुत पं. र. श्री समर्थमलजी म. भी प्रसन्नतापूर्वक आचार्यश्री गणेशलालजी म. का नेतृत्व स्वीकार कर उनके नेतृत्व में चलने को तत्पर हो गये। यह विवरण यथास्थान दिया गया है।

संयमनिष्ठा की दृष्टि से आचार्यश्री का जीवन अत्यधिक उज्ज्वल था। वीतराग-वाणी को आचार्यश्री ने अपने जीवन में उतारने का प्रयत्न किया। शास्त्रो में उल्लेख आया है कि "विनय मूलो धम्मो" अर्थात् धर्म का मूल विनय बताया गया है। आप उस धर्म के साथ स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलालजी म. के चरणों में लगभग 24 वर्ष तक रहे। उस समय किस तरह स्वर्गीय आचार्यदेव के चित्त की आराधना की, वह तो अनुभवगम्य होने से उसके प्रत्यक्षदर्शी ही विशेष अनुमान कर सकते हैं। संकेत के रूप में एकाध घटना का यहां उल्लेख कर रहे हैं, जिससे समग्र जीवन की विनयशीलता का भलीभांति पता लग सकता है।

स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलालजी म. कभी-कभी भरे व्याख्यान में साधारण-सी बात के लिये भी जोर से बोल देते तो उस समय भी आप शांत और विनयशीलता के साथ गुरुदेव की वाणी को स्वीकार करते, जबकि आजकल के संतों को बड़ी गलती भी एकांत में समझाई जाये तब भी सरलता से स्वीकृत नहीं होती। आपश्री स्वर्गीय आचार्यश्रीजी का ही विनय नहीं रखते थे, बल्कि आप से दीक्षा में जितने भी बड़े संत थे, वे चाहे पढाई की दृष्टि से और समझ की दृष्टि से कम ही होते, तो भी उनका पूरा आदर-सत्कार करते। इसी विनयशीलता को आपने अपने सम्प्रदाय के सन्तों के साथ ही नहीं रखा, बल्कि मारवाड सादड़ी में वृहत्साधुसम्मेलन में उपस्थित विभिन्न सम्प्रदायों के बड़े सन्तों का आपने विनय किया। उसको देख करके एक बड़े विचारवान गंभीर चिंतक सन्त के मुंह से सहसा निकल पडा था कि सम्मेलन की सजीव आत्मा यह है। पृथक् सम्प्रदाय में रहते हुए, जिनकी छाया में खड़े रहना नहीं चाहते थे, उन्हीं का, उसकी भावी समुज्ज्वलता की स्थिति को सन्मुख रखकर, विनय करते हुए, सम्मेलन के नियमो को अंतःकरण से साकार रूप दे रहे हैं।

सेवाभावना भी उनके जीवन में कूट-कूटकर भरी हुई थी। बड़ों और बुजुर्गों को ही नहीं, जवान और छोटे सन्तों की भी, प्रसंग आने पर बड़ी लगन से सेवा करते थे। विद्वत्ता, बडप्पन का अभिमान छू तक नहीं पाया। साधारण अवस्था में तो सभी काम करते ही थे, लेकिन युवाचार्य व आचार्य पद प्राप्त होने के बाद भी छोटे-से-छोटा काम करने को तत्पर रहते थे।

सरलता उनमें इतनी थी, जिसको देखकर कई सन्तों ने कहा कि आपश्री को इतना सरल नहीं होना चाहिये। कई-एक आपकी सरलता का दुरुपयोग कर बैठते हैं। तब आचार्यश्री फरमाते थे कि मैं शुद्धभाव से सरलतापूर्वक जो कार्य करता हूं उसका भी यदि कोई दुरुपयोग करे तो उसमें मेरा कुछ नहीं बिगड़ता। आचार्यश्री का हृदय स्फटिकमणि के समान स्वच्छ था।

इतना सब होते हुए भी अनुशासन-पालन करने-करवाने में आपश्री मिश्री के समान कठोर थे। जब कभी भी सन्तों की संयम वृत्ति में त्रुटि देखते, स्खलना मालूम होती तो उनको सावधानी दिलाते। सुधारने की चेष्टा करते एवं यथास्थान दण्ड व प्रायश्चित्त भी देते। उसमें इस बात का उनको जरा भी भय नहीं रहता था कि ऐसा करने पर सन्त नाराज हो जायेंगे या कम हो जायेंगे।

एक बार उदयरामसर (बीकानेर) में ऐसा ही प्रसंग आया कि सन्तमंडली के सामने आचार्यदेव ने फरमाया कि संयमी नियमों के पालन के साथ आप मेरे हृदय के हार हैं और उनके अभाव में अकेला रहना पसन्द करूंगा, लेकिन संयमी नियमों की स्खलना पसंद नहीं करूंगा।

तात्पर्य यह है कि आचार्यश्रीजी संयमी जीवन में तनिक भी ढिलाई देखना पसंद नहीं करते थे। आपश्री में अनेक ऐसे आध्यात्मिक गुण विद्यमान थे, जिनका वर्णन शक्य नहीं है। फिर भी पाठकों को अनुमान लगाने की दृष्टि से नमूने के रूप में कुछ कथन किया गया है।

समय से पूर्व की सोचने की क्षमता भी आपश्री में अद्भुत-सी थी। उनकी अंतरात्मा में जो-कुछ भी भावित हो जाता, उसको वे दृढ़तापूर्वक संयमी मर्यादा के साथ कहने में जरा भी नहीं हिचकिचाते थे। तत्काल अच्छे-अच्छे समझदार व्यक्तियों को भी वह कथन अच्छा नहीं लगता था, लेकिन जब भविष्य में वह बात साकार रूप धारण करती तो वे ही समझदार लोग मुक्तकंठ से प्रशंसा करते और किसी-किसी के मुंह से तो ऐसा भी निकल पडता कि आचार्यश्री को पहले ही सूझ गया था।

बृहत्साधु-सम्मेलन में प्रायः जनता को यही महसूस हो रहा था कि साधु समाज का सुधार होकरके यह संगठन वृद्धि को प्राप्त होगा, लेकिन आचार्यश्री न मालूम उस समय भी भविष्य को किस रूप में देख रहे थे, यह तो विशिष्ट ज्ञानी ही बता सकते हैं। शर्तपूर्वक आचार्यश्री ने जो प्रतिज्ञापत्र पेश किया और उसके पश्चात् निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का जो क्रान्तिकारी कदम उठाया एवं सादडी सम्मेलन में स्वीकृत उद्देश्य को अमली रूप देते हुए सुसंगठन का निर्माण किया, उस समय प्रायः कई व्यक्ति इस कार्य को अन्तःकरण से अच्छा नहीं मान रहे थे, लेकिन आचार्यश्रीजी म. के स्वर्गवास के पश्चात् अधिकांश वे ही व्यक्ति, और यह कहा जाये कि वे प्रायः सभी व्यक्ति, आचार्यश्रीजी म. के कार्य की अन्तःकरण से भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं और कइयों के मुंह से यह सहसा निकल पडता है कि आचार्यश्री गणेशलालजी म. ने बहुत ही अच्छा कार्य किया।

अनेक व्यक्तियों को आचार्यश्री के संपर्क से विविध प्रकार का अनुभव हुआ। वह अनुभव कभी उन लोगो के मुंह से सुनने का प्रसंग आता है तो वे कहते हैं कि आचार्यश्रीजी

म. को वचन-सिद्धि भी प्राप्त थी। उनके मुंह से अन्तःकरणपूर्वक स्वाभाविक जो भी शब्द निकल पड़ता, वह वैसा सिद्ध होते देखा गया है।

वीतराग श्रमण परंपरा की सुरक्षा के लिये आपश्री समय-समय पर चतुर्विध संघ को भलीभांति सचेत करते रहते थे।

जब आपवादिक स्थिति में आपके आने का प्रसंग आ रहा था, उस समय भी आचार्यश्रीजी म. ने चतुर्विध संघ को शिक्षा देते हुए जो बातें कही, वे मौलिक एवं मार्मिक थीं तथा निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का निचोड़ मानो संक्षिप्त में परिणत हो गया हो। वे निम्न प्रकार हैं :--

रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति, शासनोन्नति में किंचिदपि असावधानी एवं प्रमाद न करें और निम्न अभिप्रायों पर सदा ध्यान रखें :--

(1) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशांति संभावित है। इस आधार के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की शान्ति संभावित नहीं।

(2) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग शान्ति के वातावरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(3) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा प्रयत्न करने की आवश्यकता है।

(4) वीतराग-प्ररूपित सिद्धान्तों का जहां हनन हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम से पंचमहाव्रतधारी मुनि-जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो, वहां किंचिदपि सहयोग न दिया जाये।

(5) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनियों के प्रति शुद्ध श्रद्धा, भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनि-जीवन तो दूर, मानव-जीवन के लिये भी कलंकस्वरूप है। अतः किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छिपाना, न बचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(6) शुद्ध आत्मीय समता के चरम विकास का लक्ष्यबिन्दु अन्तःकरण में सदा बना रहे एवं तदनुरूप सम्यक् ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन में उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(7) श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वयं की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभांति पालन करे और श्रावकवर्ग के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(8) श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरों से अपने-आप को दूर रखने में तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने में अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका

पूज्य गणेशीचार्य के चातुमार्स

क्र.सं.	सन	संवत्	स्थान	क्र.सं.	सन	संवत्	स्थान
1.	6	1963	गंगापुर	30.	35	1992	देवास
2.	7	1964	रतलाम	31.	36	1993	उदयपुर
3.	8	1965	थांदला	32.	37	1994	बीकानेर
4.	9	1966	जावरा	33.	38	1995	जयपुर
5.	10	1967	इन्दौर	34.	39	1996	उदयपुर
6.	11	1968	अहमदनगर	35.	40	1997	फलौदी
7.	12	1969	जुन्नर	36.	41	1998	सरदारशहर
8.	13	1970	घोड़नदी	37.	42	1999	बीकानेर
9.	14	1971	जामगांव	38.	43	2000	देशनोक
10.	15	1972	अहमदनगर	39.	44	2001	सरदारशहर
11.	16	1973	घोडनदी	40.	45	2002	ब्यावर
12.	17	1974	मीरी	41.	46	2003	बगड़ी
13.	18	1975	हिवड़ा	42.	47	2004	बड़ीसादड़ी
14.	19	1976	चिंचवड़	43.	48	2005	रतलाम
15.	20	1977	सतारा	44.	49	2006	जयपुर
16.	21	1978	रतलाम	45.	50	2007	दिल्ली
17.	22	1979	सतारा	46.	51	2008	अलवर
18.	23	1980	घाटकोपर	47.	52	2009	उदयपुर
19.	24	1981	जलगांव	48.	53	2010	जोधपुर
20.	25	1982	जलगांव	49.	54	2011	कुचेरा
21.	26	1983	जलगांव	50.	55	2012	बीकानेर
22.	27	1984	भीनासर	51.	56	2013	गोगोलाव
23.	28	1985	चूरू	52.	57	2014	कानौड़
24.	29	1986	चूरू	53.	58	2015	जावरा
25.	30	1987	ब्यावर	54.	59	2016	उदयपुर
26.	31	1988	फलौदी	55.	60	2017	उदयपुर
27.	32	1989	जोधपुर	56.	61	2018	उदयपुर
28.	33	1990	उदयपुर	57.	62	2019	उदयपुर
29.	34	1991	रतलाम				

आचार्यश्री गणेशीलालजी म.सा. की जीवन की महत्त्वपूर्ण तिथियाँ

जन्म स्थान : उदयपुर

जन्म : सं. 1947, मिती श्रावण कृष्णा 3 शनिवार

पितृनाम : श्री साहवलालजी

मातृनाम : श्रीमती इन्द्रावाई

जाति एवं गोत्र : ओसवाल, मारू

दीक्षातिथि : सं. 1962, मार्गशीर्ष कृष्णा 1

दीक्षागुरु : आचार्य श्री जवाहरलालजी म.सा.

नेश्रायगुरु : तपस्वी मुनि श्री मोतीलालजी म.सा.

युवाचार्यपद-प्राप्ति : सं. 1990, फाल्गुन शुक्ला 3

युवाचार्यपद-प्राप्ति स्थान : जावद

आचार्यपदारोहण : सं. 2000, आपाढ शुक्ला 8

आचार्यपदारोहण स्थान : भीनासर

देहावसान : सं. 2016, माघ कृष्णा 2 शुक्रवार

स्थान : उदयपुर 11/01/63

जीवन का अरुणोदय

मेवाड़ का गौरव

राजस्थान का अपना इतिहास है। मेवाड़ का नाम लेते ही आज भी देशभक्ति की गौरव-गाथा से प्रत्येक भारतीय का भाल उन्नत हो जाता है, बाँहें फडक उठती हैं। मातृभूमि के लिये हँसते-हँसते प्राणों को होम देना यहाँ के जन-साधारण के लिये खेल ही था, तो राजपूतो ने अपनी आन के लिये प्राण दे दिये, परन्तु पीठ नहीं दिखाई। रनवासो की सुन्दरियो ने सतीत्व के सामने संसार के अमूल्य आभूषणों और प्रलोभनों को मिट्टी के समान समझा, किन्तु कुल को कलंकित नहीं किया।

उसमें भी अरावली की उपत्यका में विस्तृत महाराणा का मेवाड़ तो प्रत्येक राष्ट्रप्रेमी को अपनी आन, बान और शान के लिये कुरबान हो जाने वाले सपूतों को श्रद्धांजलि समर्पित करने के लिये लालायित कर देता है। यह वही मेवाड़ है जिसके वीरशिरोमणि महाराणा लक्ष्मणसिंह ने देश की स्वाधीनता के लिये अपने ग्यारह पुत्रो का बलिदान दिया और वीर माता ने प्रसन्नमुख से उन पुत्रों की आरती उतारी थी। यह वही मेवाड़ है जिसमें रूप-लावण्य की खान महारानी पद्मिनी ने अपने पति-प्रेम के सामने बादशाही सुख-ऐश्वर्य पर थूक दिया और कुल-गौरव के लिये चिता पर चढ गई थी। यह वही मेवाड़ है जहाँ दुर्भिक्ष-पीड़ित प्यारी प्रजा के समान ही महाराणा संग्रामसिंह ने भी पेड़ो की छाल खाकर दिन काटे थे। यह वही मेवाड है जिसकी रक्षा के लिये वीरवर जयमल और फत्ता ने प्राणों का कुछ भी मोह नहीं किया था। यही वही मेवाड़ है जिसके भामाशाह जैसे नगरसेठों ने अपने अखूट धन की कुछ भी परवाह न कर अपने स्वामी और जाति के लिये प्राण तक दे दिये थे। यह वही मेवाड़ है जिसका शासक देश की स्वाधीनता और वंश-गौरव के लिये वर्षो पहाडी स्थानों और दुर्गम जंगलों में रहा और सपरिवार घास खाकर दिन निकाले, किन्तु प्रण से च्युत नहीं हुआ था।

मेवाड़ का चप्पा-चप्पा 'प्राण जाहि पर वचन न जाहि' के प्रण से मुखरित है। मेवाड में जन्मा विपन्नावस्था मे भी पराजय स्वीकार नहीं करता है। वह किसी के समक्ष अपेक्षा और आकांक्षा के लिये हाथ पसार कर दीनता नहीं दिखाता है। श्रम के कण ही मेवाड के मोती हैं।

मेवाड की भूमि जहॉं स्वाधीनता के संरक्षक सेनानियों की जन्मदात्री रही है, वहीं इसने आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और अनुकंपा भावना के प्रसारक संत-महापुरुषों की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त किया है।

यही मेवाड हमारे चरितनायक के आदि, मध्य और अंत का रंगमंच है। एक दिन इसकी मिट्टी में आंखें खोलीं–जीवन का प्रारम्भ हुआ। इसी की मिट्टी में लोट-पोट कर बड़े हुए, इसी की मिट्टी में कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए और किसी एक दिन इसी मिट्टी में देखना बन्द कर दिया–जीवन का अंत हुआ।

धर्म-संस्कारी माता-पिता : ओसवाल वंश के रत्न

महाराणा उदयसिंह के समय से ही उदयपुर मेवाड की राजकीय गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था। अपनी प्रतिभा, कुशलता और स्वामिभक्ति के फलस्वरूप अनेक ओसवाल जातीय जैन बंधुओं को राज्याश्रय प्राप्त था और राज्य-संचालन में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थे।

इन्हीं राज्याधिकारियों में देवस्थान विभाग के खजांची श्री साहबलालजी मारू नाम के सद्गृहस्थ भी एक थे। आप स्वभावतः धार्मिक वृत्ति के थे और अधिकारी भी ऐसे विभाग के थे, जिसका कार्य प्रजा की धर्म-प्रवृत्तियों की देखभाल करने से सम्बन्धित था।

आपके दैनंदिन जीवन के सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध आदि व्रताचार का पालन, साधु-संतों के प्रवचन-श्रवण, उनकी सेवा-वैयावच्च करना आवश्यक अंग थे। आपका व्यक्तित्व सर्वत्र मान पाता था। हृदय की सरलता इतनी थी कि सभी को हित-मित और सत्य बात कहते एवं दूसरों की भलाई के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

आपका न्याय-नीतिपूर्वक अर्थोपार्जन में विश्वास था। पितृ-परंपरागत व्यवसाय लेन-देन, साहूकारी था और उसका माध्यम वस्तु का विनिमय वस्तु से एवं रुपयों का लेनदेन गिनती करके लेना-देना नहीं होकर नाप-तौल माना जाता था।

राजकीय सम्मान तो आपको प्राप्त था ही और उसके साथ न्याय-नीतिपूर्ण व्यवहार एवं प्रामाणिकता के कारण जन-साधारण में भी आपको अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गृहस्थ जीवन के लिये तीन चीजों की अनिवार्यरूपेण आवश्यकता होती है–आजीविका, सुयोग्य परिवार एवं सामाजिक प्रतिष्ठा और ये तीनों चीजे श्री साहबलालजी को सहजरूपेण ही प्राप्त थीं।

आपकी धर्मपत्नी का नाम इन्द्राबाई था। आप कुलीन और सुसंस्कारी महिलारत्न थीं। दीन-दुखीजनों की सेवा-सहायता करने में उदार थीं। कोई भी याचक द्वार से निराश होकर नहीं लौटता था। स्नेह की अमीधारा से सभी को आप्लावित करना आपके जीवन की अनेक विशेषताओं मे से एक थी और पति-पत्नी प्रत्येक धर्म-कार्य में एक-दूसरे के पूरक बन

सात्त्विक जीवन व्यतीत करते थे। वात्सल्य की वीणा पर सदैव त्याग और सेवा का नाद गूंजा करता था।

यही सौभाग्यशाली दम्पती हमारे चरित्रनायक के जनक-जननी थे।

संस्कारी पुत्ररत्न का जन्म

श्रावण कृष्णा 3 सं. 1947, शनिवार को श्रीमती इन्द्राबाई की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ।

श्री साहबलालजी मारू उदयपुर निवासी थे अतः बालक का जन्म उदयपुर बताया जाता है। लेकिन सत्य-तथ्य यह है कि बालक गणेश का जन्म उदयपुर राज्य मे मावली जंक्शन के सन्निकट ऊँटाला (वल्लभनगर) मे हुआ। बालक के जन्म के समय श्री साहबलालजी सा. ऊँटाला में देवस्थान विभाग में कार्यरत थे।

जैसे मनभावन सावन प्राकृतिक समृद्धि का प्रतीक है, हरे-भरे खेतों और रिमझिम बरसते कजरारे मेघों की छटा को निहार कर मानवीय मन छन्दों में छलक पडता है और यह छन्दों का सरगम नये-नये तीज-त्योहारों का सर्जन कर अणु-अणु में मोदमयी ममता बिखेर देता है, वैसे ही इस पुत्र के जन्म से पितृहृदय का हुलास उमड़ पड़ा। माता वात्सल्य में भीग गईं और सलोने शिशु को ममता से आच्छादित कर पुलक उठीं। पारिवारिक जन हर्ष और उल्लास से परिव्याप्त हो गये।

सामान्यतया पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिये हर्ष की बात होती है और फिर ऐसे पुत्ररत्न को पाकर कौन निहाल न हो जाता, जो आगे चलकर अपनी ज्ञान और संयम-साधना के द्वारा अगणित नर-नारियों के अज्ञानान्धकार को दूर करने में समर्थ हुआ।

नामकरण

बालक का नाम सुन्दर और प्रिय हो, यह प्रत्येक माता-पिता की आकांक्षा होती है। इसीलिये नाम एवं गुणों का सामंजस्य करने के लिये राशि और नक्षत्रों की गणना कराते हैं। फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुसार नाम का तालमेल क्वचित्-कदाचित् ही दृष्टिगोचर होता है।

परन्तु कौन जाने कि यह अकस्मात् था या विद्वान ज्योतिषी की दीर्घदृष्टि का परिणाम, जिससे नवजात शिशु का नामांकन 'गणेशलाल' किया गया। उस समय शायद ही किसी ने कल्पना की हो कि जिस बालक का नामकरण गणेशलाल किया जा रहा है वह भविष्य मे नाम-निक्षेप से ही नहीं, प्रत्युत साधुओं के गण का ईश बनकर भाव-निक्षेप से भी 'गणेश' नाम

मेवाड की भूमि जहाँ स्वाधीनता के संरक्षक सेनानियों की जन्मदात्री रही है, वहीं इसने आध्यात्मिक जीवन की पवित्रता और सर्वोच्चता, प्राणिमात्र के प्रति प्रेम और अनुकंपा भावना के प्रसारक संत-महापुरुषों की जन्मभूमि होने का भी सौभाग्य प्राप्त किया है।

यही मेवाड़ हमारे चरितनायक के आदि, मध्य और अंत का रंगमंच है। एक दिन इसकी मिट्टी में आंखें खोलीं—जीवन का प्रारम्भ हुआ। इसी की मिट्टी में लोट-पोट कर बड़े हुए, इसी की मिट्टी में कर्तव्य-पथ पर अग्रसर हुए और किसी एक दिन इसी मिट्टी में देखना बन्द कर दिया—जीवन का अंत हुआ।

धर्म-संस्कारी माता-पिता : ओसवाल वंश के रत्न

महाराणा उदयसिंह के समय से ही उदयपुर मेवाड़ की राजकीय गतिविधियों का केन्द्र बन चुका था। अपनी प्रतिभा, कुशलता और स्वामिभक्ति के फलस्वरूप अनेक ओसवाल जातीय जैन बंधुओं को राज्याश्रय प्राप्त था और राज्य-संचालन में उच्च पदों पर प्रतिष्ठित थे।

इन्ही राज्याधिकारियों में देवस्थान विभाग के खजांची श्री साहबलालजी मारू नाम के सद्गृहस्थ भी एक थे। आप स्वभावतः धार्मिक वृत्ति के थे और अधिकारी भी ऐसे विभाग के थे, जिसका कार्य प्रजा की धर्म-प्रवृत्तियों की देखभाल करने से सम्बन्धित था।

आपके दैनदिन जीवन के सामायिक, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण, उपवास, पौषध आदि व्रताचार का पालन, साधु-संतो के प्रवचन-श्रवण, उनकी सेवा-वैयावच्च करना आवश्यक अंग थे। आपका व्यक्तित्व सर्वत्र मान पाता था। हृदय की सरलता इतनी थी कि सभी को हित-मित और सत्य बात कहते एवं दूसरों की भलाई के लिये सदैव तत्पर रहते थे।

आपका न्याय-नीतिपूर्वक अर्थोपार्जन में विश्वास था। पितृ-परंपरागत व्यवसाय लेन-देन, साहूकारी था और उसका माध्यम वस्तु का विनिमय वस्तु से एवं रुपयों का लेनदेन गिनती *करके लेना-देना नहीं होकर नाप-तौल माना जाता था।*

राजकीय सम्मान तो आपको प्राप्त था ही और उसके साथ न्याय-नीतिपूर्ण व्यवहार एवं प्रामाणिकता के कारण जन-साधारण में भी आपको अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। गृहस्थ जीवन के लिये तीन चीजों की अनिवार्यरूपेण आवश्यकता होती है—आजीविका, सुयोग्य परिवार एवं सामाजिक प्रतिष्ठा और ये तीनों चीजें श्री साहबलालजी को सहजरूपेण ही प्राप्त थीं।

आपकी धर्मपत्नी का नाम इन्द्राबाई था। आप कुलीन और सुसंस्कारी महिलारत्न थीं। दीन-दुखीजनो की सेवा-सहायता करने में उदार थी। कोई भी याचक द्वार से निराश होकर नहीं लौटता था। स्नेह की अमीधारा से सभी को आप्लावित करना आपके जीवन की अनेक विशेषताओं में से एक थी और पति-पत्नी प्रत्येक धर्म-कार्य में एक-दूसरे के पूरक बन

सात्त्विक जीवन व्यतीत करते थे। वात्सल्य की वीणा पर सदैव त्याग और सेवा का नाद गूंजा करता था।

यही सौभाग्यशाली दम्पती हमारे चरित्रनायक के जनक-जननी थे।

संस्कारी पुत्ररत्न का जन्म

श्रावण कृष्णा 3 सं. 1947, शनिवार को श्रीमती इन्द्राबाई की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ।

श्री साहबलालजी मारू उदयपुर निवासी थे अतः बालक का जन्म उदयपुर बताया जाता है। लेकिन सत्य-तथ्य यह है कि बालक गणेश का जन्म उदयपुर राज्य में मावली जंक्शन के सन्निकट ऊँटाला (वल्लभनगर) में हुआ। बालक के जन्म के समय श्री साहबलालजी सा. ऊँटाला में देवस्थान विभाग में कार्यरत थे।

जैसे मनभावन सावन प्राकृतिक समृद्धि का प्रतीक है, हरे-भरे खेतों और रिमझिम बरसते कजरारे मेघों की छटा को निहार कर मानवीय मन छन्दों में छलक पडता है और यह छन्दों का सरगम नये-नये तीज-त्योहारों का सर्जन कर अणु-अणु में मोदमयी ममता बिखेर देता है, वैसे ही इस पुत्र के जन्म से पितृहृदय का हुलास उमड़ पड़ा। माता वात्सल्य में भीग गईं और सलोने शिशु को ममता से आच्छादित कर पुलक उठीं। पारिवारिक जन हर्ष और उल्लास से परिव्याप्त हो गये।

सामान्यतया पुत्र की प्राप्ति माता-पिता के लिये हर्ष की बात होती है और फिर ऐसे पुत्ररत्न को पाकर कौन निहाल न हो जाता, जो आगे चलकर अपनी ज्ञान और संयम-साधना के द्वारा अगणित नर-नारियों के अज्ञानान्धकार को दूर करने में समर्थ हुआ।

नामकरण

बालक का नाम सुन्दर और प्रिय हो, यह प्रत्येक माता-पिता की आकांक्षा होती है। इसीलिये नाम एवं गुणों का सामंजस्य करने के लिये राशि और नक्षत्रों की गणना कराते हैं। फिर भी नाम के अनुसार गुण और गुण के अनुसार नाम का तालमेल क्वचित्-कदाचित् ही दृष्टिगोचर होता है।

परन्तु कौन जाने कि यह अकस्मात् था या विद्वान ज्योतिषी की दीर्घदृष्टि का परिणाम, जिससे नवजात शिशु का नामांकन 'गणेशलाल' किया गया। उस समय शायद ही किसी ने कल्पना की हो कि जिस बालक का नामकरण गणेशलाल किया जा रहा है वह भविष्य में नाम-निक्षेप से ही नहीं, प्रत्युत साधुओं के गण का ईश बनकर भाव-निक्षेप से भी 'गणेश'

सार्थक करेगा। कौन जानता था कि अज्ञानता की घोर निशा में एक ज्योति प्रदीप्त करके प्रकाशपुंज सिद्ध होगा। संयम-साधना से चतुर्विध संघ—साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका—का सिरमौर बनेगा और पथ-भूलों को सदैव ध्रुवतारे की तरह मार्ग-दर्शन कराता रहेगा।

शैशव के सुनहरे पथ पर

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' उक्ति के अनुसार शिशु गणेश ममतामयी माँ की गोद और दुलार के हिंडोले में झूलते हुए बड़ा होने लगा। पितृ-स्नेह पुत्र पर केन्द्रित होने लगा। मस्तिष्क में पुत्र को सुखी, शिक्षित करने के चित्र उभरने लगे।

माता इन्द्रा इस ममता के मेरु को जब हँसते-खेलते, भागते-गिरते, रोते और मीठी नींद में सोते देखतीं तो उल्लास से भर जाती थी। कलोल और किलकारियों से तिमंजिली तीज की हवेली का कोना-कोना गूंज उठता था और जब इस अनूठे दुलारे को देख-देखकर भी मन नहीं भरता तो गोदी में ले मीठी-मीठी लोरियां सुनाने में अपने-आप को तल्लीन कर लेती थीं।

पुण्यमयी माता की गोद और पितृत्व के स्नेह से पगे हुए हमारे चरितनायक का शरीर के साथ-साथ मानसिक विकास होने लगा। वाणी की मृदुता और स्वभावजन्य चपलता स्वतः ही जनमानस को आकर्षित कर लेती थी। चार वर्ष के होते-होते तो पाठशाला मे विद्याध्ययन का श्रीगणेश करा दिया गया था।

किशोरावस्था में चहुंमुखी विकास

शैशव की पगडंडियों को पार करने के साथ-साथ बौद्धिक विकास प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिये उत्तरोत्तर विकासमान होने लगा। अर्थोपार्जन के पितृ-परंपरागत व्यवसाय में निपुणता-प्राप्ति हेतु तत्कालीन प्राप्त शैक्षणिक सुविधाओं के अनुसार हिन्दी, उर्दू, फारसी, अंग्रेजी भाषा और महाजनी का अध्ययन करने लगे और 12-13 वर्ष के होते-होते तो स्वतंत्र रूप में शासन से संबंधित पत्रादि लिखना और पिताश्री के कार्यो में हाथ बंटाने के लिये कचहरी का कामकाज सीखना भी प्रारंभ कर दिया था।

विनीत पुत्र के विकास को देख श्री साहबलालजी को जितना संतोष था, उससे बढ़कर आत्म-गौरव से विभोर हो उठते थे। सुयोग्य पुत्र को पाकर वे तृप्त थे।

महापुरुषों के जीवन में सुसंस्कारों की प्रबलता साहजिक होती है, जो समय के साथ पल्लवित होकर विशाल रूप धारण कर लेते है एवं अन्यान्य अवसरों को भी अपने निर्दिष्ट पथ में सहायक बना लेते हैं। यही कारण है कि हमारे चरितनायक जिस ओर झुके, सफलता उनकी चेरी बनती गई और यही उनकी सम्पूर्ण सफलता का मूलमंत्र है।

धार्मिक संस्कारों का अर्जन

चरितनायक के पिताश्री साहबलालजी धार्मिक आचार-विचार के व्यक्ति थे। वे जानते थे कि धर्म का निवास मनुष्य की आत्मा में है, धर्म मानव-स्वभाव का अंग है। धर्म का अस्तित्व मनुष्य की आत्मा में है, धर्म मानव-स्वभाव का अंग है। धर्म का अस्तित्व सृष्टि के अस्तित्व की तरह सनातन है और अपनी वास्तविकता से मानवीय आत्मा को प्रभावित करता रहता है। उस वास्तविकता का परीक्षणात्मक तालमेल एवं निष्पक्षता की भावना का विकास तदनुकूल आचार-विचार के माध्यम से होता है।

इन्हीं विचारों को अपने पुत्र में देखने के लिए वे उत्सुक थे और हमारे चरितनायक भी शिशु-अवस्था से पिताश्री के साथ-साथ धर्म-स्थानों में जा पहुँचते और कभी-कभी सामायिक, दया आदि धार्मिक क्रियाएं भी करते थे। कुछ धार्मिक भजन भी सीख लिये थे। कंठ सुरीला था और जब आप भजन बोलना प्रारम्भ करते तो श्रोताओं के मन मुग्ध हो जाते थे।

श्री साहबलालजी यह सब देखते, सुनते और एक प्रकार का आत्म-गौरव अनुभव करते थे और ऐसा होना स्वाभाविक ही था। क्योंकि प्रत्येक माता-पिता स्वयं अपने जीवन-व्यवहार में धार्मिक आचार-विचारों का आचरण कर अपनी सन्तान को भी शैशवावस्था से ही धार्मिक-संस्कारों से सुसंस्कृत करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं, जिससे वे भी सत्य को हृदयंगम करने की योग्यता अर्जित करने में समर्थ हों।

आपकी यह धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम नहीं थी, किन्तु वह निश्चय ही पूर्वजन्म के संस्कारों का सुफल मानी जायेगी। इसका ज्वलन्त प्रमाण यही है कि वह धर्मश्रद्धा दूज के चंद्र की तरह निरंतर वृद्धिंगत होती गई और उसके फलस्वरूप एक महान् संत का गौरव प्राप्त हुआ, संघशिरोमणि की प्रतिष्ठा पाई और आत्मशुद्धि के अधिकारी बने।

कौमार्य और गृहस्थाश्रम का दायित्व

शिशु गणेश क्रम-क्रम से एक के बाद दूसरी विकास की परिधि पार करते हुए बढ़ रहे थे। उदीयमान योग्यता, प्रतिभा और पारिवारिक कुलीनता को देखकर कई कन्याओं के पिताओं का अपनी-अपनी कन्या से सगाई-सम्बन्ध करने के लिये श्री साहबलालजी से आग्रह रहा। परिणामतः चार वर्ष के बालक गणेशलाल की मेहता परिवार की समवयस्का कन्या के साथ सगाई हो गई।

मेहता परिवार और आपके मारू परिवार में बहुत घनिष्ठता थी। यही कारण था कि श्री साहबलालजी को मेहता वंश के आग्रह के समक्ष झुकना पड़ा और अल्पवयस्क बालक-बालिका अज्ञात रूप में सगाई-सम्बन्ध में जुड़ गये।

नये-नये अनुभव, लौकिक कार्यो में चातुर्य और अर्जन के क्षेत्र में सफलता के साथ बढ़ते हुए आप चौदह वर्ष की कुमारावस्था में प्रविष्ट हुए। भारतीय आश्रम-व्यवस्था के अनुसार यह अवस्था विद्यार्थी जीवन की थी, जब भविष्य के उत्तरदायित्वों को समझने और निर्वाह करने के लिये नवीन-नवीन ज्ञान प्राप्त किया जाता है। किन्तु तत्कालीन समाज-व्यवस्था के अनुसार स्वास्थ्य व शारीरिक विकास की दृष्टि से विवाह का उचित अवसर न होने पर भी चौदह वर्ष की अविकसित अवस्था में ही धूमधाम से विवाह करके आपको गार्हस्थिक दायित्व भी सौंप दिये गये।

लेकिन आपके व्यक्तित्व में कुछ ऐसा अनूठापन था कि चौदह वर्ष की अवस्था में ही सामान्यतया विद्याभ्यास, अर्थोपार्जन तथा गृहस्थजीवन का दायित्व सफलता के साथ निबाहना प्रारम्भ कर दिया और क्रमशः विकास के सोपानों पर अग्रसर होते जाना मानो अपने दायित्वों को सफलता के साथ सम्पन्न करके नियति द्वारा निर्दिष्ट पथ पर आरूढ़ होने की तैयारी चल रही हो।

किन्तु उस समय अदृष्ट की प्रेरणा को कौन समझ सकता था ! आपके जीवन में एक ऐसी उल्लेखनीय विशेषता दृष्टिगोचर होती है कि आपका जीवन परिस्थितियों की प्रेरणा से स्वयमेव ढलता गया। आकस्मिक संयोग, साहचर्य और वातावरण आपको निरन्तर उन्नति की ओर अग्रसर करने में सहायक होते गये और इन्हीं के बीच आपके लोकोत्तर विकास का रहस्य गर्भित है। आपके जीवन में प्रगति एवं नवनिर्माण का जो विहान प्रस्फुटित हुआ, उसका निष्कर्ष निकालना मानवीय बुद्धि से परे की बात है, किन्तु उसमें साहजिक व्यवस्था परिलक्षित होती है।

वैराग्य का क्रमशः ऊर्ध्वारोहण

पिता की वैराग्य भावना का पुत्र पर अदृश्य रूप से संस्कार

पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म. सा. का उदयपुर में चातुर्मास था। पूज्यश्री श्रमण संस्कृति के जाज्वल्यमान नक्षत्र थे। आप में तप के तेज एवं संयम के ओज का अनूठा सामंजस्य था।

जहाँ भी ऐसे पूज्य पुरुषों का पदार्पण होता है, वहाँ वे जनसाधारण को ज्ञान और चारित्र की शक्ति प्रदान कर और सद्धर्म के मर्म को शास्त्र-नीति एवं विज्ञान-नीति और युक्ति-प्रयुक्तिपूर्वक समझाकर मानव-समष्टि को धर्मनिष्ठ बनाते हैं।

पूज्यश्री के प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति हेतु प्रतिदिन श्री साहबलालजी प्रवचन के समय उपस्थित होते और उपदेश-श्रवण से जीवन की महान् उपलब्धि के प्रति सतत जागरूक रहने

के आदर्शों से समृद्ध होकर घर लौटते थे और जो सुनते, उसे हृदयंगम करने के लिये चिन्तन-मनन की कसौटी पर कसते थे।

चरितनायक भी कभी मातुश्री के साथ, तो कभी पिताश्री के साथ पूज्यश्री के प्रवचन-श्रवण के लिये जाते थे। उस समय करीब आठ-नौ वर्ष की वय हो चुकी थी और वयोपार्जित अनुभवों से जो-कुछ भी समझ सकते थे, समझ लेते और जो नहीं समझ पाते, उसको समझने के लिए जिज्ञासु हो पिताश्री से समाधान प्राप्त करते थे।

प्रवचनों के श्रवण एवं चिन्तन-मनन से श्री साहबलालजी की भावनाओं में मंथन का सूत्रपात हुआ। जो सोचते, उससे अन्तर् की छानबीन की उत्सुकता तीव्र से तीव्रतर होने लगी। इन्हीं विचारों में डूबे हुए आप एक दिन पूज्यश्री के दर्शनार्थ पहुँचे और तात्त्विक चर्चा का रसास्वादन करते-करते वैराग्य के भावोद्रेक से तन्मय होकर बोले–भगवन् ! मैं ससांर से मुक्ति चाहता हूँ। चारों ओर उलझनें और समस्याएं बिखरी पडी हैं। यद्यपि मैं पारिवारिक और कौटुम्बिक दायित्वों से भयभीत होकर भागना नहीं चाहता, तथापि अन्तर् में एक नाद उठ रहा है–जीवन पानी के बुलबुले के समान है। काल का एक हलका-सा झोंका उसे कभी भी समाप्त कर सकता है। फिर भी मनुष्य न जाने किन-किन आशाओं से प्रेरित होकर कल्पनाओं के किले बनाता है। अब यह परिवार, प्रतिष्ठा और उत्तरदायित्व भव-विमुक्ति में सहायक प्रतीत नहीं होते हैं। ये तन, धन, स्वजन, भवन सभी यहाँ रह जाते हैं और आत्मा–हंस-निकल जाता है। न जाने आत्मा शरीर की कितनी-कितनी व्यथाएं भोग रहा है, फिर भी उसी को सजाने-संवारने में संलग्न है। इस मूर्खता का अन्त होना ही चाहिये।

इन्हीं विचारों के अन्तराल में श्री साहबलालजी ने यह भी संकेत दिया कि वैराग्य के राजमार्ग पर मैं अकेला ही नहीं, साथ मे पत्नी, पुत्र, पुत्री भी पथिक बनें तो मुझे प्रसन्नता होगी। लेकिन पुत्र, पुत्री अवयस्क हैं, अतः उनके वयस्क होने तक मेरी भावना में विलंब होना स्वाभाविक है।

आचार्यप्रवर ने इन विचारों की गहराई में झांका। अनुभूतियों के उच्छ्वास में विवेक-समन्वित जीवन का विलास देखा और मानवीय जीवन की विशेषताओं का विशद विवेचन करते हुए समझाया कि कर्मरहित अवस्था प्राप्त करना अपने ही हाथ की बात है। संयम-साधना आनन्ददायक है। यदि विवेकपूर्वक संयम का पालन किया जाये तो संयम इहलोक में सुखदायक है और परलोक में भी। साध्वाचार–पांच महाव्रत, तीन गुप्ति, पांच समिति, द्वादश तप–के स्वरूप का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि साध्वाचार का पालन करना तलवार की धार पर चलना है। पग-पग पर विषमाओं, कठोरताओं एवं परीषहों का अनुभव करना पड़ता है। अतः सुदृढ़ संकल्प और सहिष्णुता के बिना इसका यथावत् आचरण होना शक्य नहीं है।

आचार्यश्री द्वारा बालक के उज्ज्वल भविष्य का संकेत

तात्त्विक चर्चाओं एवं ऐसे ही अन्य प्रसंगों पर कुमार गणेशलाल भी पिताश्री के साथ उपस्थित रहते और जो सुनते उसे हृदय में उतारने का प्रयत्न करते थे। आपने पिताश्री के विचारों को ध्यान से सुना और विचारों के बीच एक नई धारा का प्रादुर्भाव हुआ।

आचार्यश्री ने बालक की ओर देखा और चेहरे पर अंकित भावों को पढ़ते हुए पूछ लिया–क्या तुम भी दीक्षा लोगे ?

बालक ने सुना और अपनी सहमति जताते हुए कहा कि क्यों नहीं, मै भी दीक्षा लूंगा। जब महावीर संयम-मार्ग की विषमताओं और परीषहों से भयभीत नहीं हुए तो हम महावीर की सन्तानें दुखों और संकटों से कैसे भयभीत हो सकती हैं ? यदि वीर बनना है और महावीर के अनुयायी कहलाने में गौरव मानना है तो हमें महावीर के मार्ग का अनुगमन करना चाहिये।

आचार्यदेव ने बालक के इन आत्मविश्वास से परिपूर्ण शब्दों को सुना और मानसपटल पर बालक के भावी महत्त्व का एक चित्र अंकित हो गया। दो-चार शब्दों में भावी जीवन की झांकी झलक उठी।

आचार्य भगवान बालक की ओजस्वी वाणी, साहस, तर्क एवं स्फूर्ति से इतने प्रभावित हुए कि उन्हें स्वयं अपने अनुमान ज्ञान द्वारा बालक के भविष्य के बारे में सोचना पडा। कुछ तथ्य और मान्यताएं ऐसी है कि जिनकी विशद व्याख्या तो नहीं की जा सकती है, परन्तु अनुमान ही लगाया जा सकता है।

इस प्रकार मनोमंथन और तर्क-वितर्क से कुछ निश्चय-सा करते हुए आचार्यदेव श्री साहबलालजी की ओर अभिमुख होकर बोले–साहबलालजी ! आपका यह बालक किसी दिन समाज का नेतृत्व संभालेगा। मेरा मन इसका और समाज का उज्ज्वल भविष्य देख रहा है। बालक होनहार है। इसके शरीर-लक्षण, हाव-भाव, बोलचाल और बौद्धिक प्रतिभा आदि व्यक्तित्व की विशेषता को व्यक्त करते हैं।

श्री साहबलालजी ने यह सब सुना और सुपुत्र के लिये ऐसी भविष्यवाणी सुनकर अत्यन्त आनन्दित हुए। मातुश्री की प्रसन्नता का पारावार न था। किन्तु वह भविष्य वर्तमान कब बनेगा और यह सब-कुछ देखने के लिये क्या उनकी जिन्दगी इजाजत देगी ? क्या इतना अवकाश मिल सकेगा ? कुदरत की करामात को कौन समझ सकता है ? विश्व के नाट्यमंच पर किस अभिनेता को कितना-क्या अभिनय करना शेष है, यह किसी को ज्ञात नहीं है।

बहन का वियोग वैराग्य को उत्तेजित करने में ईंधन बना

सामाजिक संरचना में परिवार एक आवश्यक तत्त्व है। परिवार के आधार से ही मनुष्य अपने में विद्यमान सच्चेतना की, सुकुमारता की, विचारों के आदान-प्रदान की और बौद्धिक आनन्द में हिस्सा बंटाने की लालसा की तृप्ति करता है।

केवल पति-पत्नी और बच्चों के होने से ही कोई घर, घर नहीं बन जाता। परन्तु वंशानुक्रम से प्राप्त भाई, बहिन, माता-पिता आदि से संबोधित किये जाने वाले मानवों के समूह को परिवार कहा जाता है। इनके प्रति अपने दायित्वों का पालन करने के द्वारा हम सामाजिक कर्तव्यों का पालन करने के साथ-साथ मानवीय मन की अच्छाइयों और नैतिक कार्यों के विधान को प्रस्तुत करते है।

हमारे चरितनायक का भी इसी प्रकार का एक परिवार था। सबके अपने-अपने उत्तरदायित्व थे, कर्तव्य थे और अधिकार थे। एक-दूसरे के प्रति ममता थी, मान-सम्मान की भावना थी और कुल-धर्म की प्रतिष्ठा रखने की कामना थी। जीवन शांति और सुख मे बीत रहा था कि यकायक तूफान आया और वह तब शांत हुआ जब आपका अपना कहा जाने वाला कोई न रहा। सब उस पथ पर चल दिये जिस पर जाने वाला कभी भी वापस नहीं लौटता है।

तूफान का प्रारंभ हुआ बहिन की मृत्यु से। आपको वह अत्यधिक प्रिय थी। भाई का बहिन के प्रति और बहिन का भाई के प्रति स्नेह साहजिक है। आपकी अवस्था चौदह वर्ष की अवश्य हो गई थी लेकिन अभी तक पारिवारिक प्रियजन की मृत्यु का अनुभव नहीं हुआ था। अतः उस समय आप भलीभांति नहीं समझ पाये कि मेरी बहिन को क्या हो गया है ? अभी तक उछल-कूद करने वाली लाड़ली बहिन को अकस्मात् यह क्या हो गया है ? जिन्दगी की मुस्कराहट में पलने वाले सुकुमार बालक को यह भान भी कैसे हो सकता था कि जीवन का अंतिम रूप मौत है ! बहिन की मौत विचारधारा के बीच विरामचिह्न-सी आ खड़ी हुई।

पारिवारिक जनों में सभी स्वस्थ और प्रसन्न थे। अतः उस रोज प्रातः श्री साहबलालजी दयाव्रत अंगीकार करके धर्मस्थानक में रहकर धर्माराधना में संलग्न थे। निर्दोष और निरतिचार व्रत पालन करने के लिये श्रावक दयाव्रत की मर्यादाओं को अंगीकार करके गार्हस्थिक प्रवृत्तियों से विरक्त रहता है और धर्मस्थानक में रहकर संयम, तप, त्याग, साधना के द्वारा आत्म-शुद्धि के लिये ही तत्पर रहता है।

सूर्यास्त होने का समय था और उसी समय बच्ची की मृत्यु हुई थी। अतः साहबलालजी तो शव-दाह करने जा नहीं सकते थे। उन्होंने विचार किया कि मृत बालिका वापस जीवित तो हो नहीं सकती है, अतः अंगीकृत व्रत में अतिचार लगाना उचित नहीं है।

हमारे चरितनायक भी दयाव्रत के विधान को जानते थे। अतः उन्होने सोचा कि आस-पास के पडौसियों को लेकर शव-दाह कर देना चाहिये। पिताजी के व्रत में दोष लगने से क्या लाभ है ? अतः आप पड़ौसियों के साथ शव को उठाकर श्मशान की ओर चल पड़े।

श्मशान तक पहुँचते-पहुँचते रात्रि पड गई थी। रात्रि में श्मशान वैसे ही काल्पनिक विचारों से भयावह प्रतीत होता है और यह तो कृष्ण पक्ष की रात्रि थी। चारों ओर सन्नाटा था, लेकिन बीच-बीच में सियारों की बीभत्स आवाजें और वृक्षों की झुरमुराहट उस सन्नाटे को और भी भयंकर बना रही थी।

शव-दाह के लिये ईंधन कुछ दूर से लाना था और साथ में गये व्यक्ति इने-गिने थे। किसी-न-किसी को शव की रखवाली के लिये बैठना भी जरूरी था। लेकिन कौन बैठे, इसका निश्चय नहीं हो पा रहा था।

यद्यपि बाल्यावस्था के कारण हमारे चरितनायक को ऐसे कार्यों और परिस्थिति का परिचय नहीं था। फिर भी साथ आने वालों की असमंजसता को समझकर बोले–आप लोग ईंधन लेने जायें, मैं यहाँ बैठकर देखभाल करता हूँ। आप लोग किसी भी प्रकार की चिन्ता न करें।

फिर भी साथ में आने वालों की दुविधा दूर नहीं हो सकी और उनकी दुविधा का कारण था चरितनायक की कुमारावस्था, जिसे अभी तक ऐसी परिस्थिति का अनुभव नहीं हुआ था। साथियों के मनोभावों को समझकर आपने पुनः कहा कि आप लोगों को अधिक सोच-विचार करने की जरूरत नहीं है। आप लोग ईंधन लेने जायें, मै यहां बैठकर शव की देखभाल करता रहूँगा। आप मेरे लिए किसी प्रकार की चिंता न करें।

बार-बार का आग्रह देखकर साथ वाले ईंधन लेने तो अवश्य चले गये और आवश्यक ईंधन भी लिया। किन्तु उनके मनों में विचार उठते रहे कि इस प्रकार बालक को अकेला नहीं छोड़ना चाहिये था और हम में से किसी एक को वहीं बैठना जरूरी था। यदि हमारे पीछे बालक भयभीत हो गया या और कोई बात हो गई तो लोग क्या कहेंगे और श्री साहबलालजी अपने मन में क्या सोचेंगे ?

लेकिन इधर हमारे चरितनायक निर्भीक और निश्चल भाव से शव के निकट बैठ उसकी रखवाली करते रहे। उनके मन में उस समय क्या-कैसी विचार-लहरियां उत्पन्न हुई होंगी, यह अवश्य ही जनसाधारण के लिये एक कुतूहल का विषय है। लेकिन उन्हें मालूम होना चाहिये कि मेवाड़ के वीरों के दिल इस्पात से निर्मित होते हैं और आपकी निर्भीकता उसका एक संकेतमात्र था।

ईंधन लेकर वापस आने पर पूर्ववत् आपको बैठा देखकर साथियों को संतोष हुआ और

आपके साहस की सराहना करने लगे। दूसरों ने भी जब इस घटना को सुना तो आश्चर्यान्वित होकर आपकी प्रशंसा करते हुए उज्ज्वल भविष्य के अनुमान लगाने लगे।

यद्यपि श्री साहबलालजी को पुत्री की मृत्यु से दुःख तो हुआ किन्तु पुत्र के साहस की जानकारी मिलने पर खुशी की एक झलक दिखाई पडी। उन्होंने सोचा कि जो बालक अपने प्रारंभिक जीवन में इतना साहसी है, वह भविष्य में न जाने कितना ओजस्वी, तेजस्वी होगा। पूज्यश्री द्वारा पूर्व में कहे गये कथन का पुनः-पुन. स्मरण हो आया कि यह बालक अपने कर्तव्य में रत रहकर न केवल अपने ही, वरन् अपने वंश के नाम को भी उज्ज्वल करेगा।

पूज्य माता-पिता प्लेग की चपेट में

यह घटना आपके भावी जीवन की महत्ता का बोध कराते हुए समय के साथ धूमिल पड़ गई और पूर्ववत जीवनक्रम चलने लगा। पारिवारिक प्रतिष्ठा और पारिवारिक व्यवस्था के प्रति अपने उत्तरदायित्व का निर्वाह करते हुये जीवनप्रवाह बह रहा था। उसमे किसी प्रकार के द्वन्द्व-दुःख का आभास नहीं था। लेकिन अकस्मात् उसमें पुनः दुःख की काली घटाएं घिर आईं। अब जो तूफान उठा वह लौकिक दृष्टि से मर्माहत करने वाला था। अच्छे-से-अच्छे धीर, वीर, गंभीर व्यक्ति भी उस स्थिति में संतुलन बनाये रखने में असमर्थ-से हो जाते हैं। परन्तु अदृश्य शक्ति महापुरुषों के निर्माण के लिये किस प्रकार का वातावरण निर्मित करती है, यह एक ऐसा रहस्य है जो मानवीय बुद्धिगम्य नहीं है।

न्याय-नीतिपूर्वक पारिवारिक जनों का पोषण और गृहस्थ-धर्म का पालन करते हुए हमारे चरितनायक की अवस्था करीब सोलह वर्ष की रही होगी कि समस्त देश मे प्लेग का प्रकोप हुआ। देश का ऐसा कोई गांव और नगर नहीं बचा था जिसमें इस भयानक रोग ने अपना रूप न दिखाया हो। इसकी भीषणता अपने ही ढंग की थी।

वैसे तो भारतवर्ष ने अनेक बार दुर्भिक्ष और महामारी के प्रकोप सहन किये हैं। लेकिन इस समय होने वाली प्लेग की भीपणता की स्मृति जनता को आज भी है और जो भी उस समय की स्थिति का वर्णन भुक्तभोगियों से सुनता है तो कलेजा थर्रा जाता है। कहते हैं कि तत्कालीन सिर्फ जयपुर राज्य में 76000 मकानो की चाबियां राज्यकोष में जमा होने आई थीं, जिनके परिवारों में से एक भी व्यक्ति शेष नहीं रहा था। देश का कोई विरला ही परिवार बचा होगा, जिस पर इस महामारी की छाया न पडी हो और अपने किसी-न-किसी प्रियजन को इसे न सौंप दिया हो।

उदयपुर में भी प्लेग की भयानक लहर फैली। प्रतिदिन सैकड़ों की संख्या में लोग काल के गाल में समाते, फिर भी आंखों मे आंसू नहीं आते थे। किस-किस के वियोग के लिये आंसू

बहायें, यह निर्णय नहीं कर पाते थे। एक अपनी जीवन-लीला समाप्त नहीं कर पाता कि दूसरा उसका स्थान लेने की तैयारी में होता। सभी को अपनी-अपनी रक्षा की पड़ी थी और औषधोपचार भी करते थे, लेकिन जिसकी जीवन-डोर खंडित हो गई, उसे जोड़ने का सामर्थ्य तो किसी में भी नहीं था। घर-घर और मौहल्ले-मौहल्ले में मौत का तांडव हो रहा था और जो इसके पंजे में आ फंसा वह तो गया ही और जो बचे, वे हृदय मसोस कर इस लीला को देखते रह जाते थे। आंखों के आंसू भी अब मनोवेदना को व्यक्त करने में असमर्थ हो गये थे।

इस महामारी ने श्री साहबलालजी और श्रीमती इन्द्राबाई को भी अपना लक्ष्य बनाया। औषधोपचार भी किया गया लेकिन सब व्यर्थ रहा और मौत के मुँह में समा गये। मां की ममता और पिता के वरद हस्त से वंचित हमारे सोलह वर्षीय किशोर चरितनायक और उनकी पत्नी अकस्मात् आगत जिम्मेदारियों का निर्वाह करने के लिये शेष रह गये थे। लौकिक दृष्टि से उन्होंने गृहस्थाश्रम में डग अवश्य रख दिया था, लेकिन माता-पिता की मौजूदगी से अभी तक उसके दायित्व का भार आप पर नहीं था। अतीत के प्रति उपेक्षा, वर्तमान के प्रति निरपेक्षता और भविष्य के प्रति भावुकता किशोरावस्था की विशेषताएं हैं और इन्हीं के बीच आपका दैनंदिन जीवन व्यतीत हो रहा था।

जीवन में ऐसे अवसर अधिकांशतः आया करते हैं जब एक ओर तो हम शोक के आवेग से दबे रहते हैं और दूसरी ओर उत्तरदायित्वों का भार आ पड़ता है। उस समय शोक के आवेग को मन-ही-मन दबाकर इच्छा या अनिच्छा से कर्तव्य-मार्ग पर अग्रसर होना पड़ता है। मन मसोसकर, विवश होकर परिस्थिति को स्वीकार करने का यह अवसर बड़ा ही करुणाजनक होता है, मानव-बुद्धि को कसौटी पर कसने का समय होता है।

पत्नी-सहयोग भी वियोग के रूप में परिवर्तित

ऐसा ही अवसर चरितनायक के समक्ष उपस्थित था। अब किशोर पति-पत्नी ही एक-दूसरे के सुख-दुःख के साथी रह गये थे। मन में घुमडते विचारों को एक-दूसरे से कह-सुन अपने भार को हलका करने की कोशिश करते थे। लेकिन यह भी सच है कि पुरुष को व्यापार, आजीविका सम्बन्धी कार्यों को करने के लिये घर से बाहर जाना-आना पड़ता है और उन कार्यों के प्रति मन के केन्द्रित होने के समय तक दु.ख-विस्मृति का अवसर भी मिल जाता है और शनैः-शनैः समय के साथ दुःख के भार से अपने-आप को विलग कर देता है। किन्तु स्त्री का कार्यक्षेत्र उसका घर और उसके कार्यों तक सीमित है एवं उन्हीं के बीच दैनिक जीवन का समय व्यतीत होता है। अतः समय-समय पर असमय में दुःख-प्राप्ति मार्मिक होती

है और उसमें ही अनुभूति के क्षण अधिक प्राप्त होते रहते है। नारी-हृदय की सुकुमारता, दयालुता, भावुकता आदि सद्गुण स्वयं उसे ऐसे अवसरों पर और अधिक दु.खी, खेदखिन्न बना देते हैं।

आप तो अन्यान्य कार्यो की ओर विचारो को केन्द्रित करने के फलस्वरूप धीरे-धीरे वियोगजन्य दुःख को भूलते जा रहे थे। लेकिन आपकी पत्नी इस आकस्मिक वज्राघात से घबरा-सी गई। भरे-पूरे परिवार में रहने के कारण यह घर भयावना-सा, सूना-सूना-सा लगता था। आप स्वयं धैर्य रखते और पत्नी को भी दिलासा देते हुए नये वातावरण के अनुकूल बनाने की कोशिश करते और उद्विग्नता दूर करने के लिये आस-पास के पडौसियों के पारिवारिक जनों को अपने घर में बुलाने का ध्यान रखते थे। फिर भी इतनी बडी तिमंजिली हवेली में एक अटपटापन-सा अनुभव होता रहता था।

जीवन में रिक्तता आ गई और अब उसकी पूर्ति संभव नही थी। अतः जो-कुछ हो गया उसे बदला नहीं जा सकता और न कोई बदलने मे समर्थ था। इसलिये भविष्य के प्रति अपने दायित्व का निर्वाह करना जरूरी था। इसलिये जब कभी कार्यवशात् चरितनायक घर से बाहर जाते अथवा व्यापार के निमित्त दूसरे गांव जाना-आना होता तो पत्नी की उदासीनता एवं एकाकीपन में सांत्वना देने, दूसरी ओर ध्यान बटाये रखने के लिये पास-पड़ौस की परिचित बडी-बूढ़ी महिलाओं, बच्चों आदि को घर पर छोड़ जाते अथवा उसके मायके भेज देते और साहस के साथ नये जीवन में अग्रसर होने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दिया।

संसार में मानवीय जीवन विशेषतः आशाओं पर निर्भर है। यदि एक क्षण के लिये भी आशा मनुष्य का साथ छोड दे तो संभवत. मनुष्यों की जीवन-नौका पार लगना ही कठिन हो जाये। जीवन मरुस्थल की तरह शुष्क और काल्पनिक भय, दुःखों का केन्द्र बन जाये। प्रत्येक मनुष्य अंधेरे के बाद उजाला, आपत्ति के अनन्तर संपत्ति और दुःख के पश्चात् सुख की आशा करता है। यदि ऐसा न हो तो स्वयं उसे अपना जीवन भाररूप प्रतीत होने लगेगा। निराशा-ही-निराशा दिखलाई देगी। लेकिन आशावादी दुःखों के बीच निराश न होकर भविष्य को सुखमय बनाने के प्रयत्नों में लगे रहते हैं।

चरितनायक आकस्मिक प्राप्त नये वातावरण में अपने-आप को ढालने के लिये प्रयत्नशील थे तो विधि का विधान कोई दूसरा ही ताना-बाना बुन रहा था। उसने ऐहिक बंधन के प्रबल कारणों को हटा देने के अनन्तर पत्नी रूपी रहा-सहा बंधन भी हटा देना उचित समझा। उसे यह बंधन भी स्वीकार्य नहीं था।

प्लेग महामारी का पूर्ववत् प्रचंड प्रकोप प्रवर्तमान था और आपकी पत्नी को भी उसने उदरस्थ कर लिया।

माता, पिता और पत्नी के वियोग से आपकी जिन्दगी में रिक्तता, शून्यता ने स्थान ले लिया। मायावी प्रपंच का नग्न रूप आपके समक्ष झलक उठा–संसार असार है, जन्म और मरण के किनारों के बीच फंसा मानव कभी इसकी तो कभी उसकी टक्कर से थपेड़े-पर-थपेडे खा रहा है। किसी को भी यह ज्ञात नहीं है कि यह जीवन पानी के बुलबुले की तरह कब समाप्त हो जायेगा, अगला श्वास आयेगा या नहीं ? फिर भी व्यक्ति इस सत्य की उपेक्षा कर मायावी मृग-मरीचिका में भटकने को तत्पर हो रहा है।

पत्नी के वियोग से आपके समक्ष संसार का विकृत क्षणिक रूप उपस्थित हो गया। सांसारिक यथार्थता के काल्पनिक चित्र धूमिल होकर वास्तविकता को व्यक्त करने लगे। लेकिन ऐसे कारुणिक प्रसंग भी आपकी चित्त-वृत्ति को चंचल करने में असमर्थ ही रहे और 'कालाय तस्मै नमः' काल को नमस्कार है, काल बलवान है, इस लोकोक्ति को लक्ष्य में रखते हुए कभी घबराये नहीं, किन्तु जो-कुछ होता है, अच्छे के लिये होता है, मानकर आप आध्यात्मिक साधना की ओर मनोवृत्ति को केन्द्रित करने के प्रयास में संलग्न रहने लगे। प्रतिदिन सामायिक-स्वाध्याय करना, चिन्तन-मनन में रत रहना, धर्मस्थानक में जाकर साधु-संतों के प्रवचन-श्रवण करना आदि अब दैनिकचर्या के आवश्यक, अनिवार्य अंग बन गये थे।

राग और विराग का अन्तर्द्वन्द्व

लेकिन पड़ौसियों और सगे-सम्बन्धियों के विचारों में कोई दूसरी ही बात घूम रही थी। उनके विचारों में पुनः उजड़ा घर बसाने का द्वन्द्व चल रहा था। वे चाहते थे कि इस अंधेरे घर में पुनः उजाला हो, बिखरे तिनकों को इकट्ठा कर फिर से घोंसला बनाया जाये, बाजे बजाये जायें और सूने घर में कुलवधू के नूपुरों की रुन-झुन, रुन-झुन हो और आशा व इच्छा के तूफानों की माया में पुनः विहार किया जाये !

अब आपको समझाया जाने लगा। नये-नये रूपों में पारिवारिक प्रतिष्ठा और जीवन के लुभावने दृश्य आपके समक्ष उपस्थित किये जाने लगे। कुल-परम्परा को बनाये रखने के दायित्व पर भार देते हुए आपके मन में यह धारणा बैठाई जाने लगी कि सुयोग्य कन्या से विवाह कर गृहस्थी बसाना जरूरी है। कन्या के पिताओं की ओर से भी परोक्षरूपेण इसी प्रकार का वातावरण बनाया जा रहा था।

पारिवारिक प्रियजनों की मृत्यु और शून्यता के कारण आपके मन को जो आघात लगा था, वह समय के साथ शांत होने लगा। आस-पास के वातावरण और सगे-सम्बन्धियों के बार-बार समझाने-बुझाने से आप भी कुछ ऐसा सोचने लगे कि इन लोगों का आग्रह मुझे टालना नहीं चाहिये। ये सब मेरे हितैषी ही तो हैं। मुझे सुखी देखने की ही तो इनकी आकांक्षा

है। यदि गृहस्थी के साथ धर्म-साधना हो सकती है तो मुझे इनकी आज्ञा मानने में कोई असुविधा नहीं है।

अब मन में राग-विराग का अन्तर्द्वन्द्व चलने लगा। राग संसार का मनोरम रूप बतलाते हुए प्रेरित करता कि धर्म संसार में कभी भी कायरता नहीं सिखाता। प्रियजनों का वियोग हो जाने मात्र से अपने उत्तरदायित्व से भागना कायरता होगी। गृहस्थाश्रम बहुत बडी जिम्मेदारी का पद है। इसमें रहकर धर्म-साधना की जा सकती है और धर्म, अर्थ, काम पुरुषार्थ का अविरोध रूप से सेवन करते हुए भी मोक्ष के लिये पुरुषार्थ किया जा सकता है।

विराग संसार की क्षणभंगुरता का यथार्थ चित्रण करते हुए बोध देने लगा कि गृहस्थी एक जंजाल है। धन-दौलत और संसार के अन्य सुख-साधन इन्द्रधनुष की मानिन्द क्षणक्षयी हैं। आयु का क्या विश्वास ? आज है, कल नहीं। माता-पिता परलोक सिधार गये, पत्नी ने भी उन्हीं का अनुगमन किया। ये सब घटनाएं तुम्हारे समक्ष हैं। ऐसी स्थिति में जीवन पर क्या भरोसा किया जा सकता है ? अतः पुनः संसार की ओर मुख करना उचित नही है। जितनी जल्दी हो सके आत्मसाधना में लग जाओ, उतना ही श्रेयस्कर होगा।

लेकिन सगे-सम्बन्धियों ने आपके भावुक मन में संसार का एक काल्पनिक चित्र अंकित कर रखा था। अतः इस विचार-द्वन्द्व में राग द्वारा निर्मित वातावरण की कुछ विजय हुई। विराग-भावना कुछ धूमिल-सी पड़ गई और दुनियादारी के चक्कर में फंसने एव जिन्दगी के अधूरे स्वप्न पूरे करने की बात मन में बैठ गई। विराग, राग से आच्छादित हो गया, योग पर भोग की विजय हुई और सगे-सम्बन्धियों के पुनः-पुनः आग्रहवश विवाह की स्वीकारोक्ति देने का निश्चय-सा कर लिया।

लेकिन राग की यह विजय क्षणिक थी, भावुकता का क्षणिक आवेश था और भावी की प्रेरणा, तो किसी और ही दिशा का संकेत कर रही थी–जहॉं जीवन का स्वर्णिम प्रभात उदित होने वाला था, आत्म-विकारों को क्षय करने की प्रबल प्रेरणा विद्यमान थी, उज्ज्वल उच्च विचारों के आदर्श विद्यमान थे। अतः विवाह की तैयारियां रुक गई और असंयम पर संयम की विजय हुई। राग की वीणा पर विराग के स्वर झंकृत हो उठे। जीवन के दृष्टिकोण में आमूलचूल परिवर्तन आ गया।

दृढ़ वैराग्य की पगडंडी पर

दृष्टिकोण के बदलते ही एक नया उत्साह, स्फूर्ति जीवन में आ गई। ऐन्द्रिक विषय विषधर-से विषाक्त प्रतीत होने लगे। चिन्तन की धारा–मैं कौन हूँ और मेरा क्या कर्तव्य है ? पर आकर केन्द्रित हो गई। मन मे बार-बार विचार उठते कि हृदय के शांत और मन के स्थिर

रहने पर ही मनुष्य को आनन्द प्राप्त होता है। इसकी प्राप्ति के लिये योगी योग-साधना करते हैं, एकान्त-वास करते हैं और उससे वे सांसारिक झंझटों से दूर होकर स्वात्म-रमण में सुखानुभूति करते हैं। चिन्ताओं के कारण ही मानव-मन अशांत और अस्थिर रहता है। अतः मन की स्थिरता के लिये चिन्ताओं का नाश होना आवश्यक है और उनके पूर्णतया नाश होने पर आत्मा सच्चिदानंद बन जाती है और मैं बहिर्मुखीवृत्ति कर सुखप्राप्ति की आकांक्षा कर रहा हूँ, जो पुरुष के पौरुष को कलंकित करने जैसी है। मेरे पुरुषार्थ को हेय, प्रेय, श्रेय का विवेक करके अभीप्सित-प्राप्ति की ओर प्रयत्नशील होना चाहिये। यही मेरा कर्तव्य है और इसकी पूर्ति के लिये मैं प्रयास करूँ।

अतः आप सूर्योदय से पूर्व ही शैया त्यागकर, स्वस्थ मन हो, परमात्मा के ध्यान में लीन हो जाते थे और आत्म-चिन्तन करते हुए विचार करते कि :

जीवन-प्राप्ति का अलभ्य अवसर मनुष्य-जीवन है। आज मुझे यह प्राप्त हुआ है तो इसका सर्वोत्तम उपयोग कर अपने इष्ट को प्राप्त करूँ। जिसने जन्म लिया है, एक दिन उसका मरण निश्चित है। बड़े-बडे राजा, राणा, छत्रपति भी इससे नहीं बच सके तो मेरी उनके समक्ष क्या गिनती है ? सबको अपने-अपने समय पर मरना है। इसमें समय-मात्र का भी परिवर्तन करना शक्य नहीं है। अतः इस जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त होने के लिये मेरे प्रयत्न हों।

यह कुटुम्ब, परिजन तो समय के साथी हैं। सभी का अपने-अपने स्वार्थों के वश एक-दूसरे से नाता-रिश्ता है। लेकिन प्रत्येक प्राणी को अपने कृत-कर्मों को स्वयं भोगना पड़ता है। उनको कम करने या सहायता देने में कोई भी सहायक नहीं हो सकता है।

अतः पूर्ण स्वतंत्रता की राह पर आगे बढ़ने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुख-दुःख के रहस्य को समझें। यह सुनिश्चित तथ्य है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है और प्रत्येक प्राणी इसी कारण अपने समस्त प्रयासों को भी इसी दिशा में नियोजित करना चाहता है कि उसे सुख-ही-सुख प्राप्त हो।

जब तक मनुष्य निज की मनोवृत्तियों को नहीं समझ पाता और उनकी सही प्रगति-दिशा का निर्धारण नहीं कर सकता, दासता की काली छाया नहीं हट सकती। जहाँ इच्छा और इन्द्रियों की दासता है, वहां आत्मा का पतन है और आत्मा के गिरने पर कभी भी सुख और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती है।

सुख और दुःख की काल्पनिक अनुभूतियों के परे ही आत्मानन्द का निवास है एवं जब आत्मानन्द का संचार होता है, तभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मंजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है। अतः हम अपनी प्रवृत्तियों को सीमित और वृत्तियों को संयमित रखें।

मनुष्य-जीवन की यही गौरवमयी सार्थकता है कि जब तक मानव-मानस में इस भावना का कि आत्मद्रव्य के अतिरिक्त संसार में रहा हुआ एक भी परमाणु मेरा नहीं, जन्म नहीं होगा तब तक मानव-जीवन में सुख की कल्पना आकाशकुसुमवत् ही परिलक्षित होती रहेगी।

स्वेच्छापूर्वक तृष्णा का त्याग करके सादगी को अपनाने वाला ही महापराक्रमी होता है। प्राप्त साधनों का व्यापक लोक-हित के लिये परित्याग कर देने में ही त्याग की वास्तविक महत्ता रही हुई है। जो व्यक्ति निर्भयतापूर्वक संसार की किसी भी कठोरतम शक्ति का सफलतापूर्वक प्रतिरोध कर सकता है, वही धर्म के आंतरिक रहस्य को भी प्रकाशित करने में सफलीभूत हो सकता है। अतः तृष्णा का त्याग ही वीर मानव का भोजन है, परमात्मा का प्रसाद है तथा अध्यात्मधर्म का प्रमुख आधार है।

प्रतिदिन इन्हीं विचारों और ऐसे ही अन्यान्य विचारों का चिन्तन-मनन एवं संयम-साधना -पूर्वक चरितनायक का जीवनक्रम चलने लगा और आत्मलक्षी जीवन की अनुभूतियों के अन्तरतम में प्रवेश करने के लिये प्रयास करते। विचारों को आचार में उतारते हुए साधु-सन्तों की सेवा करना, उनके प्रवचन सुनना और अधिक-से-अधिक ज्ञान-ध्यान में लीन रहना दैनिक चर्या बन गई।

प्रवचन श्रवण से वैराग्य को उत्तेजन

इस प्रकार से जीवन का क्रम चल रहा था कि वि. सं. 1962 में आचार्यदेव पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. का चातुर्मास उदयपुर में हुआ।

आचार्यश्री साधु-परंपरा के एक महान क्रांतिकारी आचार्य थे। आपश्री की विचारधारा क्रांति के पंखो पर उड़ा करती थी। विचारो में जनसाधारण के जीवन में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने की शक्ति थी और वाणी के ओज-माधुर्य में आकर्षण ही नहीं, वरन् तदनुकूल जीवन बिताने की शक्ति प्रदान करने की क्षमता थी। श्रमण-परंपरा मे राष्ट्र और धर्म का क्रांतदर्शी आचार्य इस शताब्दी में आपकी तुलना में दूसरा कोई नहीं हुआ है। आपश्री प्रखर प्रतिभा, जाज्वल्यमान तेज और प्रबल संकल्प-शक्ति के धनी थे।

आचार्यश्री के पदार्पण से नगर के वातावरण में अनोखा परिवर्तन आ गया था। मुमुक्षु भव्य-जन आपश्री के प्रवचनों को सुन अपने-आप को धन्य समझने लगे। उस समय का जन-जीवन राष्ट्रीय चेतना एवं सामाजिक कुरूढियों के उन्मूलन के दौर से गुजर रहा था। जनता धर्मानुमोदित सात्त्विक जीवन अंगीकार करने के लिये उत्सुक थी।

आचार्यश्रीजी अपने प्रवचनों में जनसामान्य को उन बातों का दिग्दर्शन कराते थे जो युगानुकूल होते हुए भी शाश्वत सत्य का दर्शन कराती थीं। श्रोताओं को नित नया बोधपाठ

मिलता और वे तदनुकूल जीवन बिताने की प्रेरणा लेकर आचार में उतारते थे। उन्हीं में हमारे चरितनायक श्री गणेशलालजी का नाम उल्लेखनीय है। प्रतिदिन वे जो-कुछ सुनते, उसे अपने अंतरंग में उतार लेते थे। यद्यपि उम्र सोलह वर्ष की थी किन्तु उनके धार्मिक संस्कार जन्मजात थे और आचार्यश्री के सान्निध्य में उनका और अधिक विकास हुआ। आप प्रतिदिन धर्मोपदेश सुनते और उसकी विमल धारा आपके हृदय में लहराने लगी।

आचार्यश्री का यह चातुर्मास धार्मिक और सामाजिक विकास की दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण रहा। आपके साथ 9 संत थे। जिनमे से 6 संतों ने इस प्रकार तपस्याएं कीं–

1. मुनिश्री मोतीलालजी म. सा.	41 उपवास
2. मुनिश्री राधालालजी म. सा.	30 उपवास
3. मुनिश्री पन्नालालजी म. सा.	61 छाछ के पानी से
4. मुनिश्री धूलचंदजी म. सा.	35 छाछ के पानी से
5. मुनिश्री उदयचंदजी म. सा.	31 छाछ के पानी से
6. मुनिश्री मयाचंदजी म. सा.	41 छाछ के पानी से

इनके अतिरिक्त श्रावकों ने भी अनेक प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान, तपस्याएं आदि की थीं। श्रावकों ने सामायिकों की इक्कीसरंगी की। इसमें 441 व्यक्ति सम्मिलित होते हैं और विधि इस प्रकार है–

इक्कीस व्यक्ति	21-21 सामायिक करते हैं	441
इक्कीस व्यक्ति	20-20 सामायिक करते हैं	420
इक्कीस व्यक्ति	19-19 सामायिक करते हैं	399
इक्कीस व्यक्ति	18-18 सामायिक करते हैं	378
इक्कीस व्यक्ति	17-17 सामायिक करते हैं	357
इक्कीस व्यक्ति	16-16 सामायिक करते हैं	336
इक्कीस व्यक्ति	15-15 सामायिक करते हैं	315
इक्कीस व्यक्ति	14-14 सामायिक करते हैं	294
इक्कीस व्यक्ति	13-13 सामायिक करते हैं	273
इक्कीस व्यक्ति	12-12 सामायिक करते हैं	252
इक्कीस व्यक्ति	11-11 सामायिक करते हैं	231
इक्कीस व्यक्ति	10-10 सामायिक करते हैं	210
इक्कीस व्यक्ति	9-9 सामायिक करते हैं	189

इक्कीस व्यक्ति	8-8	सामायिक करते हैं	168
इक्कीस व्यक्ति	7-7	सामायिक करते हैं	147
इक्कीस व्यक्ति	6-6	सामायिक करते हैं	126
इक्कीस व्यक्ति	5-5	सामायिक करते हैं	105
इक्कीस व्यक्ति	4-4	सामायिक करते हैं	84
इक्कीस व्यक्ति	3-3	सामायिक करते हैं	63
इक्कीस व्यक्ति	2-2	सामायिक करते हैं	42
इक्कीस व्यक्ति	1-1	सामायिक करते हैं	21

इस प्रकार 441 व्यक्तियों द्वारा निर्धारित समय में कुल 4851 सामायिक संपन्न की जाती हैं। यह सामायिक की इक्कीसरंगी है।

श्रमण धर्म की साधना के चौराहे पर

दीक्षा की भावना का स्फुरण

आचार्यश्रीजी का चातुर्मास सानंद संपन्न हो रहा था। प्लेग महामारी पर काबू पा लिया गया था और इधर आध्यात्मिक प्रवचनों, आचार-विचारों से जनसाधारण को भी आत्मिक शांति का अनुभव हुआ। चिन्ताग्रस्त मानस में पुनः आशा का सचार हुआ और भूत को भूल भावी को सुखप्रद बनाने की भावनाएं जाग्रत् होने लगी थी।

आसौज महीने की बात है। व्याख्यान-समाप्ति के अनन्तर श्री गणेशलालजी पूज्य जवाहराचार्य के वंदनार्थ गये तो उन्होंने सामान्यतः परिचय के लिये आपसे पूछ लिया कि तुम्हारा नाम क्या है ? माता-पिता, भाई आदि पारिवारिक जन कितने-क्या हैं ? इस पर चरितनायक ने अपना साधारण-सा परिचय देते हुए कहा कि मेरा नाम गणेशलाल है। माता-पिता, पत्नी आदि का प्लेग से देहावसान हो गया है और मेरे सिवाय अन्य कोई भाई आदि नहीं है।

बात साधारण-सी थी और आई-गई हो गई। परिचय, परिचय के लिये था एवं अन्य कोई विशेष बात नहीं थी। किसी एक दिन आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. को किसी से यह मालूम हुआ कि माता, पिता, पत्नी के देहावसान के पश्चात् यह सोलह-वर्षीय कुमार गणेशलालजी त्यागमय जीवन व्यतीत करने के इच्छुक हैं। सतत ज्ञानाभ्यास और संयम-साधना में संलग्न रहते हैं। लेकिन कुटुम्बीजन पुनः गार्हस्थिक झंझट में उलझाने के लिये प्रयत्न कर रहे हैं।

समय मिलने पर आचार्यश्रीजी ने अपने व्याख्यान में प्रसंगानुकूल संसार की क्षणभंगुरता का चित्र खींचा और मार्मिक एवं हृदयग्राही शब्दों में कामभोगों की विडम्बना का वर्णन करते हुए फरमाया कि मित्रो ! तुमने मनुष्य जन्म पाया है। स्मरण रखो, यह जन्म सरलता से नहीं मिलता। न जाने कितने जन्म धारण करने के बाद, कौन-कौनसी भयंकर यातनाएं भुगतने के पश्चात्, कौन-से प्रबल पुण्य के उदय से यह जन्म पाया है। अगर यह यों ही व्यतीत हो गया, विकारों मे ग्रस्त रहकर इसे वृथा बरबाद कर दिया, तो कौन जाने फिर कब ठिकाना लगेगा ?

यौवन की मादकता और भोगाभिलाषी मन के रंगीन स्वप्न मनुष्य को ले उडते हैं। हाड-मांस के पुतले पर निर्भर भोग किस क्षण धोखा दे जायेंगे और कब मनुष्य को पछताना पड जायेगा, कहा नहीं जा सकता है। सच्चे सुख की यदि कोई कुंजी है तो वह स्वात्मरमण ही कही जा सकती है।

आचार्यश्री के इन शब्दों ने 'मन भावे और वैद बताये' की उक्ति को चरितार्थ कर दिया। श्री गणेशलालजी स्वयमेव विरक्ति के मार्ग पर बढ़ने का प्रयास कर ही रहे थे और इनको सुनते ही उनकी आत्मा प्रबुद्ध हो उठी। अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्पों ने स्वयमेव शांति का मार्ग प्राप्त कर लिया। अन्तर्द्वन्द्वों से निर्द्वन्द्व होने पर इन्द्रिय-विषयों की निस्सारता और उन्हें भोगने की अभिलाषा करने वाले चित्त की क्षुद्रता आपकी दृष्टि के सन्मुख आ गई। सुषुप्त वैराग्य पुनः जाग्रत् हो गया और जो भावना शांत हो गई थी वह उपदेश रूपी प्रभंजन से पुनः उद्वेलित हो उठी।

वैराग्य-वासित आत्म-निवेदन

अब विचारों में एक नवीन स्फूर्ति पैदा हो गई थी। आप जितना सोचते, उतने ही नये-नये विचार प्रत्यक्ष होने लगे। प्रत्येक बात को तर्क की कसौटी पर परखने की चेतना जाग्रत् होने लगी और अन्त.करण में एक नया तेज उद्भासित होने लगा। मन में एक संकल्प प्रादुर्भूत हुआ। किन्तु प्रवचन के अवसर पर तत्काल अपनी भावना व्यक्त न कर एकान्त में बैठकर अपना निश्चय बतलाना उचित समझा।

अनन्तर आप एकान्त मे आचार्यश्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुए। मन में विचार चल ही रहे थे, अतः अपनी स्थिति, मनोभावना एवं प्रवचन के अवसर पर उत्पन्न हुई विचारधारा को आचार्यश्री के सन्मुख व्यक्त किया। आचार्यश्री ने आपके विचारों की यथार्थता और दृढ़ता का परीक्षण कर पुनः संक्षिप्त किन्तु सारगर्भित शब्दों में संसार की वास्तविकता से परिचित कराते हुए वैराग्य का उपदेश दिया। उक्त उपदेश का आपके मानस-पटल पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि संकल्प को साकार रूप देने की दिशा में कुछ नये निश्चय करके

भागवती दीक्षा अंगीकार करने की भावना व्यक्त की। भागवती दीक्षा अंगीकार करने की पूर्व तैयारी के रूप में आपने उसी समय भादवा सुदी 9 को ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा ली और चौविहार का खंध कर लिया। एक बार आपने एक साथ 41 सामायिक कर दृढ़ संकल्पशक्ति का परिचय दिया।

साधुचर्या के अनुरूप मार्गदर्शन, तैयारी और अभ्यास

आचार्यश्रीजी ने आपके मनोभावों की परीक्षा करके साध्वाचार और उसकी प्रारंभिक संयमात्मक क्रियाओं का निर्देशन किया और आप निर्धारित लक्ष्य की ओर प्रवृत्ति करने के लिये उनका दैनंदिन आचरण में अभ्यास करने लगे। वैसे तो आपने पहले ही प्रतिक्रमण पाठ, थोकडों आदि का अध्ययन किया था किन्तु अब आचार्यश्रीजी की सेवा में रहकर प्रतिक्रमण पाठ, पच्चीस बोल का थोकडा, तेतीस बोल का थोकड़ा, लघुदंडक आदि का विशेष रूप से अध्ययन प्रारंभ कर दिया और वैरागी जीवन में साधुचर्या के अनुरूप ही संयम-साधना का अभ्यास करने के लिये प्रयत्नशील रहने लगे।

समय-समय पर आचार्यश्रीजी आपकी भावना को परखते रहते थे और एक के अनन्तर दूसरी, तीसरी आदि कसौटियों पर परीक्षित हो जाने के उपरान्त अंतिम परख और दीक्षा के लिये कुटुम्बीजनों की अनुमति प्राप्त हो जाने के अनन्तर आचार्यश्रीजी ने मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा को उदयपुर में ही आपको भागवती दीक्षा प्रदान करने का निश्चय कर लिया।

चरितनायक ने लौकिक दृष्टि से जहाँ संपन्न परिवार, बाल्यकाल में गार्हस्थिक दायित्व, सामाजिक प्रतिष्ठा आदि की अनुभूतियां प्राप्त कीं, वहीं अपने प्रियजनों के वियोग की विडंबनाएं भी देखी थीं, लेकिन आप उनसे भयभीत नहीं हुए और न आपदाएं आपको भयभीत करने में समर्थ हो सकीं। उनके बीच जलकमलवत् निर्लिप्त रहकर मूक-दर्शकवत् मौन बने रहे। अब तो ऐहिक भोग आपको अपनी ओर आकर्षित करने में असमर्थ-से हो गये थे। अतः आवश्यकता थी आध्यात्मिक सुख और तात्त्विक विचारों के साक्षात्कार की। उसके लिये आपको श्री जवाहराचार्य जैसे क्रांतिकारी विद्वान आचार्य के समागम का सौभाग्य प्राप्त हो गया और यह समागम 'सोने में सुगंध' की उक्ति को चरितार्थ करने वाला सिद्ध हुआ।

साधु-दीक्षा का संकल्प क्रियान्वित हुआ

दीक्षा के माने हैं परीषहों पर विजय प्राप्त कर अध्यात्म की पाठशाला में जीवन का पहला पाठ पढना, जो ससीम से असीम की ओर गमन करने के शुभ संकल्प, विराट् विश्व को अपनी आत्मचेतना से अनुप्राणित करने और जीवन के मंगल प्रभात के स्वागत की तैयारी का स्वतःप्राप्त अवसर है।

दीक्षा के द्वारा व्यक्ति ऐहिक विषय-भोगों की मृग-मरीचिका में झंपापात न करके, अपनी आत्मा की रक्षा करके उस परमपद की प्राप्ति के लिये सदैव प्रयत्नशील रहता है जो अनंत ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाध सुख आदि का आस्पद है और जहाँ सत्यम्-शिवम्-सुन्दरम् की पूर्ण अभिव्यक्ति होती है।

हमारे चरितनायक को इस दिशा में प्रयत्न करने और बढ़ने के लिये ही दीक्षा अंगीकार करने की स्वीकृति प्राप्त हो चुकी थी।

अतः पूर्व निश्चयानुसार मार्गशीर्ष कृष्णा प्रतिपदा, सं. 1962 को चतुर्विध संघ की उपस्थिति में पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने शास्त्रविधि अनुसार साधु का स्वरूप, चर्या आदि समझाकर आपको साधु-दीक्षा दे दी और अपने गुरुभाई मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. की नेश्राय में शिष्य घोषित किया। अर्थात् आपके दीक्षादाता पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. हुए और दीक्षागुरु हुए पूज्य मुनिश्री मोतीलालजी म. सा.।

साधुत्व का उद्देश्य आत्मिक अभ्युदय-प्राप्ति की साधना करना होता है। जगत् के जंजालों को त्यागकर व्यक्ति साधुत्व इसलिये अंगीकार करता है कि वह सभी प्रकार के लौकिक संयोगों से विमुक्त होकर आत्मा के चरम विकास के लिये प्रयास कर सके।

दीक्षा से हमारे चरितनायक की यह अभिलाषा पूर्ण हुई। आपने अपने को धन्य समझा और आपके लिये मानव-जीवन की सफलता का द्वार खुल गया।

दीक्षादाता और दीक्षागुरु का संक्षिप्त परिचय

व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व होते हुए भी उसके विकास के लिये सहकारी कारणों की अपेक्षा होती है। जैसे बालक में विकसित होने की शक्ति है, लेकिन उसके विकास के लिये सहायक चाहिये और सहायक वही हो सकता है जो अनुभवी हो। ऐसे अनुभवी ही गुरु के सम्माननीय पद से विभूषित होते हैं।

विकास के लिये एक अनिवार्य उपाय है—जीवन-निरीक्षण। जो अपने जीवन-व्यवहार का सावधानी से निरीक्षण कर सकता है, अपने मानसिक भावों को देखता रहता है, उसके जीवन का अल्पकाल में ही आश्चर्यजनक विकास हो जाता है। यदि विकास में प्रमादवश अवरोध पैदा हो जाये तो ऐसे अवसर पर पुनः सन्मार्ग की ओर मोड़ने का कार्य गुरु करते हैं।

जीवन के साथ जिज्ञासा, कल्पनाशक्ति, सर्जकता, संकल्प और श्रद्धामय आशा—इन पांच बातों का सम्बन्ध है। इन शक्तियों की अनियंत्रित प्रवृत्ति सुख, शांति या संतोष-प्राप्ति का सही उपाय नहीं है। इसके लिये संयम की आवश्यकता है और संयम के लिये विवेक की

आवश्यकता होती है और इस विवेक की प्राप्ति में गुरु सहायक होकर उस परमतत्त्व व परमगति का संकेत करते हैं जो संयम एवं विवेक का साध्य है। ऐसे गुरु वंदनीय और पूजनीय होते हैं एवं उनकी धर्मानुमोदित आज्ञाओ का पालन करने में विकास-इच्छुक का कल्याण है।

गुरु संयम और विवेक की महिमा का संकेत करते हैं कि जीवन के निःश्रेयस-प्राप्ति का यही मार्ग है और साधना के मार्ग पर मित्र की तरह साथ रहकर अहर्निश प्रमादजन्य भयस्थानों से सावधान करते रहते हैं।

हमारे चरितनायक को ऐसे ही गुरुओं के समागम का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उन महाभाग पुण्यस्मरणीयों के नाम हैं–आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. और मुनिश्री मोतीलालजी म. सा.। यहाँ उनका संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं।

परमश्रद्धेय श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की स्मरणीय गौरवगाथा जन-जन के हृदय में सुरक्षित है और 'आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की जीवनी' के रूप में जीवनवृत्त पुस्तकाकार प्रकाशित भी है। अतएव पुनरावृत्ति न करते हुए संक्षेप में कह सकते हैं कि आचार्यश्रीजी ने व्यक्ति, समाज, धर्म, दर्शन, राष्ट्र और विश्व को नई देन दी एवं प्रत्येक क्षेत्र का मंथन कर अमृत निकाला है।

आचार्यश्रीजी अनोखे शिल्पी थे, कलाकार थे, कलापारखी थे। अपनी साधना द्वारा सतत मौलिक निर्माण में रत रहे और जो-कुछ भी निर्माण किया, वह सदैव मौलिक और नित-नूतन है।

हमारे चरितनायक के साधनामय जीवन-निर्माण का समस्त श्रेय आपश्री को ही है और जो-कुछ भी आप में था, वह समग्ररूपेण चरितनायक मे अवतरित हुआ था। इसी का परिणाम है कि चरितनायक निर्भय, निर्द्वन्द्व होकर साधना के सोपानो पर बढ़ते रहे, प्रगति करते रहे।

पूज्य जवाहराचार्य के परिचय के पश्चात् अब उन महापुरुष का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करते हैं जो हमारे चरितनायक और उससे भी पहले पूज्य जवाहराचार्य के जीवन-निर्माण में निकटतम सहयोगी रहे हैं। जिनकी सेवा-भावना ने एक अनूठा आदर्श उपस्थित किया है और जिनकी सतत संयम-साधना साधकों के लिये अनुकरणीय रहेगी। उनका नाम है महाभाग मुनिश्री श्री मोतीलालजी म. सा.। ये महाभाग हमारे चरितनायक के दीक्षागुरु थे और आपके शुभाशीर्वाद ही गणेश की जीवन-वाटिका में नित-नूतन आदर्शो का श्रीगणेश करते रहे। संक्षेप में कहें तो आप गुरुणांगुरु थे।

तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. का जन्म सिंगोली (मेवाड) में हुआ था। आप कटारिया-गोत्रीय श्री उदयचंदजी के सुपुत्र थे और मातुश्री का नाम विरदीबाई था। माता-पिता

के धार्मिक, नैतिक आचार-विचारों को अपने जीवन मे उतारते हुए आपने आयु के अठारहवे वर्ष में प्रवेश किया। यह अवस्था यौवन-वसंत का प्रवेशकाल है। इस काल में कामना रूपी कोकिलाओं की कुहू-कुहू मानव को मदोन्मत्त वना देती है। रसलोलुपी भंवरे की तरह मन भोगों पर मंडराता रहता है। विषय-वासना में अनुरक्त इन्द्रियां आम्रमंजरियों की तरह बौरा उठती हैं और जीवन-उद्यान में अनुराग का साम्राज्य व्याप्त हो जाता है।

उस समय विरक्ति–भोगों के प्रति वैराग्य–होना सहज बात नहीं है। ऐसे समय में भोगों की मृग-मरीचिका और अठखेलियों को पराजित किये विना वैराग्य का बाना नहीं पहना जा सकता है। किन्तु इस युवावय में ही मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. ने राग की वीणा पर विराग के स्वर झंकृत कर संसार का त्याग कर दिया था और मुनिश्री राजमलजी म. सा. के सान्निध्य में प्रव्रजित होकर आध्यात्मिक साधना के साधक बन गये थे।

उनके साधक बनने का काल भी जीवन के वसंत की तरह प्रकृति के वसन्त का था। वसन्त-पंचमी के लगभग सं. 1932 के माघ शुक्ल पक्ष में आपने भागवती दीक्षा अंगीकार की थी।

दीक्षित होने के साथ ही आपने अपने ओज को तपस्या द्वारा तेज में रूपान्तरित कर दिया था और आपकी यह तप-साधना जीवन-पर्यन्त चलती रही। एक से अड़तालीस (सैंतालीस को छोड़कर) दिन तक की तपस्या के थोक आपने किये थे और मास-खमण एवं बेला, तेला आदि की तपस्याएं तो अनेक बार कर चुके थे। आप जैसे उच्च कोटि के तपस्वी थे वैसे ही उत्कृष्ट ज्ञानी और सेवाभावी थे। आपकी सेवापरायणता साधुओं के सामने एक आदर्श उपस्थित करती है।

'सेवाधर्मः परम गहनो योगिनामप्यगम्यः' सेवाधर्म परम गहन है, जो योगियों के ज्ञान द्वारा भी नहीं जाना जा सकता है। लेकिन आपने अपनी साधना द्वारा सेवा के आदर्श को साक्षात् कर दिखाया था। आपकी सेवा-भावना किसी व्यक्ति-विशेष तक सीमित न होकर सर्वहिताय से परिपूर्ण थी। आपके करुणार्द्र जीवन के क्षण-क्षण और पल-पल में सेवा-परायणता का एक-एक प्रसंग अंकित है और उन अनगिनत प्रसंगों से एकाध को यहाँ प्रस्तुत करते हैं–

प्रसंग आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के मुनि-जीवन के समय का है। दीक्षित होने के कुछ दिनों बाद ही मुनिश्री जवाहरलालजी म. सा. विक्षिप्त हो गये तो श्रावकों ने निवेदन किया कि नवदीक्षित मुनिश्री की सेवा-परिचर्या में आपको काफी कष्ट सहना पड़ता है और श्रम भी करना पड़ता है, अतः जब तक वे निरोग न हो जायें तब तक के लिये हमें सौंप दें और स्वस्थ होने पर आपकी सेवा में उपस्थित कर देंगे। लेकिन आपने उत्तर दिया कि जब तक मेरे तन मे ताकत है, तब तक इनकी सेवा-संभाल करता रहूँगा। आप इसके लिये

चिन्तित न हों और पूर्ण मनोयोग से सेवा-परिचर्या करके उन्हें निरोग कर लिया। इस स्थिति में भी आपने साधु-मर्यादानुसार दैनिक कृत्य करते हुए अपनी साधना में कोई व्यवधान नहीं आने दिया था।

विकट-से-विकट परिस्थितियां भी आपको अपने मार्ग से विमुख नहीं कर पाती थीं, किन्तु सफलता के लिये नया साहस और बल प्रदान करती थीं।

आपके चातुर्मास अधिकतर पूज्य जवाहराचार्य के साथ ही होते रहे हैं। आप दोनों में से किसी एक का नाम लेते ही दूसरे की स्मृति स्वयमेव हो जाती है। नाम दो अवश्य थे, किन्तु एक मन, एक वचन और एक भावना के जीवन्त प्रमाण थे।

इन्हीं कारणों से समय-समय पर पूज्य जवाहराचार्य आपके असीम उपकारो को बहुत ही प्रमुदित होकर हृदयग्राही शब्दों में व्यक्त किया करते थे और अपने जीवन की साध्य-वेला तक मुनिश्री के प्रति कृतज्ञ रहे। आप अकसर कहा करते थे--तपस्वी मुनिश्री मोतीलालजी महाराज के मेरे ऊपर असीम उपकार हैं।

दीक्षागुरु का दुःसह वियोग

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. को जब कारणवशात् महाराष्ट्र से मालवा की ओर विहार करना पडा तब आप काफी वृद्ध हो गये थे और चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. के साथ जलगांव विराजते थे। वही आपको दस्तों की बीमारी हो गई। काफी औषधि, उपचार किये गये। लेकिन रोग बढ़ता गया और फाल्गुन कृष्णा एकादशी सं. 1983 को आपका जलगांव में स्वर्गवास हो गया।

उक्त दोनों महापुरुषों के संरक्षण में चरितनायक का विकास हुआ था और इन दोनों की विशेषताओं को सर्वात्मना आत्मसात् करने में सफलता प्राप्त की। इसी का परिणाम है कि इन महाभागों की अनूठी विशेषताओं का समन्वित रूप आपमें पूर्णरूपेण प्रतिभासमान है--जो आबाल-वृद्ध जनसमूह को सदा-सदा के लिये श्रद्धावनत बना देता है।
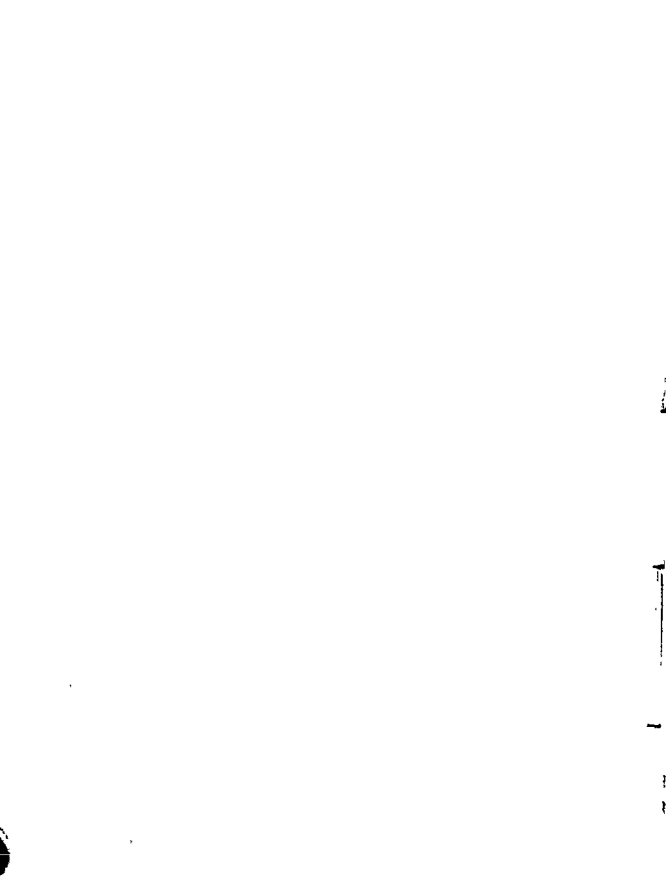
साधु-दीक्षा का चरम लक्ष्य

चरितनायक अब दीक्षित हो गये थे। दीक्षित होने का अर्थ है—मानव जीवन के महान् और चरम लक्ष्य का साक्षात्कार करना। लेकिन जब-जब इस तथ्य को भुला देने की कोशिश की गई, मानव में शिथिलता एवं अकर्मण्यता का वातावरण फैला और जब-कभी एवं जहां-कहीं भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया तो विकास का मार्ग अवरुद्ध हो गया।

सत्, चित् और आनन्द का तादात्म्य जीवन की परिभाषा है। सत् का अर्थ है तीन काल में स्थायी रहना अर्थात् भूतकाल मे था, वर्तमान में है और भविष्य में रहेगा। चित् अर्थात् दीपक की तरह स्वयं प्रकाशमान होकर दूसरों को भी प्रकाशित करना। हम हैं और हम अनुभव करते हैं, इससे निकलने वाले परिणाम का नाम आनन्द है। आनन्द की चरम स्थिति तभी प्राप्त होती है जब इन्द्रियों व मन का व्यापार बंद होकर केवल आत्मा सजग रहती है। जैसे-जैसे मन और इन्द्रियों की गुलामी छूटकर जीवन का क्रम आत्मा की आन्तरिक आवाज की ओर उन्मुख होता है, वैसे-वैसे निरन्तर बढती हुई अनुभूति में आत्मा का पावन स्वरूप निखरता जाता है।

इसी पवित्र आकांक्षा की पूर्ति हेतु एवं विराट् विश्व के कण-कण में इसी का संदेश मुखरित करने, अणु-अणु मे आत्म-दर्शन करने और जन्म-जरा-मरणोर्मियों से परिव्याप्त संसार पारावार से पार होने के लिये आपने अनगार धर्म को अंगीकार किया था और साधना के श्रीगणेश के साथ ही संयम-तप-त्याग की कसौटी पर अपने-आप को कसना प्रारम्भ कर दिया।

मुनि-जीवन में प्रशस्त विहारचर्या और सम्यक् बोध

साधु-संतों की यह दैनंदिनी सामान्य चर्या है कि आत्म-निर्भरता के प्रबल हिमायती होने से साधनोपयोगी उपकरणों का भार स्वयं ही उठाते हैं। ग्राम या नगर में जाकर मधुकरीवृत्ति का परिचय देते हुए गृहस्थों के घरों से निर्दोष भिक्षा तथा प्रासुक जल की स्वयं ही गवेषणा

करते हैं। प्राणिसंयम के लिये वर्षा ऋतु के चार मास किसी एक स्थान पर विश्राम करने के सिवाय वर्ष के शेष आठ माह किसी भी प्रकार के यान, वाहन आदि का उपयोग न करके सतत पैदल विहार करते हैं और कांटों, कंकड़ों से बचाव के लिये पैरो मे जूते, चप्पल या मोजे आदि नहीं पहनते हैं और न धूप आदि से बचने के लिये सिर पर छतरी आदि ही लगाते हैं।

जीवन-निर्माण में पैदल विहार को बहुत महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यह शिक्षा का प्रधान अंग माना गया है। इसका सबसे बडा लाभ आध्यात्मिक विकास है। एक स्थान से दूसरे स्थान तक पैदल भ्रमण करने से मार्ग की परिस्थितियों का अनुभव होता है। विस्तृत वनराजि के बीच, कहीं पहाड़ों और उनकी उपत्यकाओं मे निर्द्वन्द्व विचरण करने वाले बनैले व्याघ्रादि तो कहीं कुलांचें लगाते हुए मृग-शावक दृष्टिगत होते हैं। कहीं कल-कल करते झरने तो कहीं शतदल कमलों से सुशोभित सरोवरों के दर्शन होते हैं। कहीं हरे-भरे खेत तो कहीं बीहड़ जंगल और कहीं सघन वृक्षावली तो कहीं विशाल रेतीले मैदानों की झांकी देखने को मिलती है। कहीं श्रद्धा-भक्ति के भार से नम्र-भद्र ग्रामजनों का स्नेहपूरित स्वागत प्राप्त होता है तो कहीं क्रूरकर्मा डाकू-लुटेरे ताकते मिलते हैं। कहीं प्रकृति की रमणीयता, कमनीयता के दर्शन होते हैं तो कहीं उसके प्रलयंकारी प्रकोप का भी सामना करना पड़ता है। यह सब देखने से प्रकृति का ज्ञान होता है और समभाव रखने का अभ्यास बढता है एवं उससे प्राप्त संस्कार जीवन-विकास में प्रेरणादायी सिद्ध होते हैं।

पैदल विहार करने वालों को ही प्रकृति के पर्यवेक्षण का अनुपम आनन्द नसीब होता है। रेल, मोटर या वायुयान द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर जा पहुँचने वाले प्रायः इस आनन्द से वंचित-से रहते हैं। मार्ग के दृश्य उन्हें स्वप्न के समान भागते हुए-से प्रतीत होते हैं और उनके साथ हृदय का कोई सम्बन्ध स्थापित नहीं हो पाता है।

ज्ञानवृद्धि में भी पद-विहार से बहुत सहायता मिलती है। मानवीय प्रकृति एवं आचार-विचार-व्यवहार का परिचय प्राप्त करने और विभिन्न भाषाओं, बोलियों व सभ्यताओं को समझने के लिये भी इसकी आवश्यकता है। प्रचार की दृष्टि से तो इसका महत्त्व सर्वोपरि है। श्रमण भगवान महावीर और महात्मा बुद्ध जैसे विश्व-कल्याणक महापुरुषों ने भी पैदल भ्रमण करके ही जनता में धर्म-जागृति की, शांतक्रांति का मंत्र फूंका और युगीन लोकरूढ़ियों के स्थान पर यथार्थ कर्तव्य का प्रतिबोध किया।

चारित्ररक्षा की दृष्टि से भी साधु के लिये एक नियत स्थान पर न टिककर विहार करना आवश्यक है। अधिक समय तक एक स्थान पर टिके रहने से मोहोद्रेक होने का भय रहता है। इसी दृष्टि से जैनागमों में साधु के लिये विहार करना आवश्यक माना है। चातुर्मास के अतिरिक्त किसी भी स्थान पर 29 रात्रि से अधिक ठहरना साधु के लिये निषिद्ध है। भविष्य

में आचार्य होने वाले के लिये तो यह और भी जरूरी है कि उसे विभिन्न प्रांतों मे भ्रमण क
चाहिये।

प्रथम दिवस की विहारचर्या : सहिष्णुता की परीक्षा

सं. 1962 मार्गशीर्ष कृष्णा 1 को चरितनायक ने भागवती दीक्षा अगीकार की थी
चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर यही दिन संत-मुनिराजों के विहार का होता है। अत नवदी
मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. गुरुदेव का पदानुसरण करते हुए साथ चल पड़े। इससे
आपने पदविहार के लिये एक भी डग नहीं रखा था। देह सुकुमार थी और विहार मार्ग
लंबा नहीं था, करीवन कोस, सवा कोस का होगा।

लेकिन इतने-से पदविहार ने भी नवदीक्षित मुनिश्री के कोमल शरीर पर अपना प्र
दिखलाया। तलवों में फफोले पड़ गये, पिंडलियों में दर्द हो गया, कंधो में गठानें पड गई
हाथ भी अकड गये आदि। अर्थात् थकान-सम्बन्धी जितने भी वाह्य चिह्न हो सकते थे
प्रतीत होने लगे। लेकिन आपने उन सबको मौन भाव से सहन किया। आत्मा बलवान
और जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ही दीक्षित हुए थे। अतः आप घबराये न
विचलित नही हुए और सोचने लगे—संयमी जीवन की परीक्षा का यह प्रथम अवसर है। भवि
किसने देखा है और कौन जाने अभी कितने व कैसे-कैसे कष्ट उपस्थित होगे ! ऐसे अव
ही तो आत्मा को सबल बनाते हैं। मुझे तो यह सब सहर्ष सहन करना है।

लेकिन अन्य संतों से आपकी यह स्थिति छिप न सकी। उन्होंने आपके पैर दब
पिंडलियो को सहलाया, मालिश की, जिससे वेदना कुछ कम हुई। धीरे-धीरे आप भी अ
मुनियों की भांति इन परीपहों को सहन करने के अभ्यस्त हो गये।

आचार्यदेव के दर्शन और शुभाशीर्वाद

गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए चरितनाय
नाथद्वारा पधारे और वहां विराजित मुनिश्री मुन्नालालजी म. सा. आदि मुनिराजों के दर्शन कि
गुरुदेव के साथ आपको देखकर उन्होंने अपना प्रमोद भाव व्यक्त करते हुए शुभाशीर्वाद दिय

नाथद्वारा में कुछ दिन विराजने के पश्चात् अन्यान्य क्षेत्रों की ओर विहार होने वाला
कि आचार्यश्री श्रीलालजी म. सा. के नाथद्वारा की ओर पधारने के समाचार ज्ञात कर वि
स्थगित कर दिया गया और आचार्यश्री के आगमन पर गुरुदेव के साथ सामने जा
भक्तिभावपूर्वक दर्शन किये।

आपके बारे में आचार्यदेव की बहुत ऊंची धारणा थी। आपको देखते ही गुरुदेव

जवाहरलालजी म. सा. से बोले--जवाहर ! गणेश को खूब पढाओ, शास्त्र-पारंगत बनाओ। इन्हें पढाना तो कल्पवृक्ष को सींचना है !

गुरु-सन्निधि में ग्रहण शिक्षा और आसेवन शिक्षा

गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. को आचार्यदेव का यह कथन इतना उपयुक्त प्रतीत हुआ कि अपने 23 चातुर्मासों में साथ रखकर आपको अपना अगाध ज्ञान, तार्किक प्रतिभा और चारित्रनिष्ठा विरासत में प्रदान की। इसी का सुफल है कि आपका जीवन महान से महानतम की ओर सदैव गतिमान रहा।

इस तेईस वर्ष के लम्बे काल में आपने भी दत्तचित्त होकर विभिन्न शास्त्रों का तलस्पर्शी अध्ययन किया। संस्कृत, प्राकृत भाषाओ एवं न्याय, व्याकरण, काव्य आदि साहित्य के सभी अंगों में पांडित्य प्राप्त किया। साथ ही चारित्रविधि को प्रयोगात्मक रूप से जीवन में उतारा। जिनका सुन्दर समन्वय आपके दैनंदिन व्यवहार मे स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। आपके जीवन में जो विद्या, ज्ञान, समन्वयकारी बुद्धि का आलोक और सदाचार, विनयशीलता का सौरभ व्याप्त था, वह इस महत्त्वाकांक्षी युग के लिए एक सुन्दर वरदान है।

आज के युग में सुदीर्घ काल तक गुरु के प्रति विनय, श्रद्धा-भक्ति से युक्त साहचर्य एक बड़ी चुनौती है और जिसे हरएक शिष्य स्वीकार नहीं कर पाता है। परन्तु असाधारण पुरुषों के व्यवहार में असाधारणता ही होती है। शास्त्रों मे उल्लेख है कि नवदीक्षित मुनि को 12 वर्ष तक उपाध्याय और 12 वर्ष तक आचार्य के सान्निध्य में रख कर अध्ययन कराया जाये। इस शास्त्रीय कथन को आपने अक्षरशः साक्षात् कर दिखाया और आचार्य जैसे महनीय पद पर प्रतिष्ठित होने के अनंतर भी आप एक विनीत शिष्य की तरह ज्ञानाभ्यास के लिए अहर्निश उत्सुक रहे। जिसके ज्वलंत प्रमाण आपके प्रवचनों में यत्र-तत्र परिलक्षित होते हैं।

नाथद्वारा में आचार्यदेव पूज्यश्री श्रीलालजी म. सा. से साधना में सफलता-प्राप्ति का शुभाशीर्वाद पाकर आपने गुरुदेव के साथ विहार कर दिया।

मार्ग में उपलब्ध अनुभवों से बोध लेते हुए, अध्ययन द्वारा विविध शास्त्रों में पांडित्य प्राप्त करते हुए और जन-जन को मानवता का पाठ पढाते हुए करीबन आठ माह हो चुके थे। किन्तु यह आठ माह का सुदीर्घ समय कब बीता, कैसे बीता, पता ही नहीं चला। समय की गतिशीलता का अनुमान लगाना बुद्धिगम्य नहीं है। वैसे तो संपूर्ण जगत् ही गतिशील है, उसके अणु-अणु में गतिशीलता है। आज जो शिशु है वही कल युवा और युवा से वृद्धावस्था की ओर बढ़ते हुए दिखलाई दे रहा है। क्षण-क्षण की नित-नूतनता अतीत में विलीन होकर भविष्य का आलिंगन करने के लिए गतिमान है। यह परम्परा अनाद्यनंत है। इसमें विराम के लिए अवकाश नहीं है। उसका संकेत है कि प्रगति के लिए सदैव गतिशील रहो। इसकी

महत्ता के सन्मुख अनेक महिमावन्त भी नतमस्तक हो गये है। लेकिन कतिपय कालविजेता मृत्युंजयी महापुरुष इस चक्र का भेदन करके सदा-सदा के लिए चिरजीवी वन गये हैं और उनके आदर्श दूसरों को प्रगति के लिए प्रेरणा देते रहते है।

वैसे तो चरितनायक के चातुर्मास अधिकतर गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. एवं श्री मोतीलालजी म. सा. के साथ ही हुए हैं। किन्तु यहां आपसे सम्बन्धित प्रसंगों वाले कतिपय चातुर्मासों का ही विवरण प्रस्तुत है।

प्रथम चातुर्मास में शास्त्राध्ययन और तपस्या का दौर

आपका प्रथम चातुर्मास (सं. 1963) गंगापुर मे हुआ। इस चातुर्मास मे आपके दीक्षागुरु मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. ने 33 दिन की तपस्या की और अन्यान्य मुनिराजो ने भी शक्त्यनुसार तपस्याएं की थीं। तपस्याओं के पूर के अवसर पर श्रावक-श्राविकाओं में भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान हुए थे।

आपने भी तपस्याएं करने के साथ-साथ 40 थोकड़े, दशवैकालिक सूत्र मूल तथा सात अध्ययन के शब्दार्थ और उत्तराध्ययन सूत्र के 9 अध्ययन कंठस्थ किये।

इसी चातुर्मास-काल में मुनिश्री लक्ष्मीचंदजी म. सा. के संसार पक्ष के पुत्र श्री पन्नालालजी, पुत्रवधू और श्री रतनलालजी की भागवती दीक्षाए संपन्न हुई थी।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मेवाड़ के विभिन्न ग्रामों में विहार करते हुए आप गुरुदेव के साथ-साथ बड़ी सादडी पधारे। वहां पुनः पूज्य आचार्यदेव श्री 1008 श्री श्रीलालजी म. सा. के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त हुआ और आचार्यदेव ने आपके अध्ययन, तपस्याओं आदि के लिए हार्दिक संतोष व प्रसन्नता व्यक्त की।

आदर्श गुरुसेवा

सं. 1965 का चातुर्मास थांदला था। चातुर्मास समाप्ति के अनंतर पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. आदि ठा. वहां से विहार करके रंभापुर पधारे। वहां से महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. ने कोद की ओर विहार किया और पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा. विहार करके करीव दो कोस पहुँचे होंगे कि उन्हें बुखार हो गया। अतः वापस रंभापुर लौट आना पडा।

बुखार तो था ही, साथ में कै और दस्त भी होने लगे और वढते-वढ़ते उनकी संख्या प्रतिदिन 150-160 तक पहुंच गई। कोई इलाज कारगर सावित नहीं हो रहा था। नौ दिन तक यही स्थिति रही, जिससे जीवन वचने की भी आशंका होने लगी।

इस विकट स्थिति में चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. और मुनिश्री राधालालजी

म. सा. साथ थे। दोनों संत दवा लाते, मलदूषित वस्त्रों को धोते और वैयावच्च में लगे रहते थे। फिर भी स्वास्थ्य में सुधार नहीं होने से दिनोंदिन चिन्ता बढ़ती जा रही थी। आस-पास के श्रीसंघों को बीमारी की जानकारी मिलने से बहुत-से भाई-बहिन रंभापुर आ गये थे।

उन्हीं दिनों थांदला के वैद्य श्री नाहरसिंहजी बुंदेला निजी काम से रंभापुर आये। उन्होने यह सब स्थिति देखी और कहा कि यदि आप किसी तरह थांदला पहुंच सकें तो मैं इन्हें निरोग कर सकूंगा।

रंभापुर से थांदला करीब चार कोस था और गुरुदेवश्री का जीवन इतना बहुमूल्य था कि उसकी रक्षा करने के लिये कोई भी कष्ट झेलना बडी बात नहीं थी। मगर प्रश्न यह था कि थांदला किस प्रकार पहुंचा जाये ? साथ में सिर्फ दो सन्त थे, मगर दोनों सेवापरायण और कर्तव्यनिष्ठ थे। उन्होंने साहस करके थांदला ले जाने का निश्चय कर लिया और धीरे-धीरे थांदला की ओर विहार करना प्रारम्भ कर दिया।

मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. और मुनिश्री राधालालजी म. सा. गुरुदेव को सहारा देकर चलाते। कुछ दूर चलने में ही थकावट बढ़ जाती थी। अतः विश्राम हेतु किसी वृक्ष की छाया में बिछौना बिछाकर आपको लेटा देते थे और हाथ-पैर दबाने लगते। इस तरह करते-करते दिन-भर में ढाई मील की यात्रा हो सकी और दूसरे दिन थांदला आ गये। वहां श्री नाहरसिंहजी बुंदेला के उपचार और शिष्यों की सेवा-शुश्रूषा के फलस्वरूप पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. करीब डेढ माह में पूर्ण स्वस्थ हो गये और धीरे-धीरे कमजोरी भी दूर हो गई। लेकिन इस विकट परिस्थिति में आप दोनों संतो ने साधु-मर्यादा सम्बन्धी दैनिक चर्या में किसी प्रकार से व्यवधान नहीं आने दिया और जागरूक होकर साधना के मार्ग पर आगे-ही-आगे बढ़ते रहे।

निर्धन के दान की प्रशंसा

सं. 1966 का चातुर्मास जावरा हुआ। चातुर्मास समाप्ति के अनंतर मालवा के विभिन्न क्षेत्रों में धर्मप्रभावना करते हुए सं. 1967 के चातुर्मासार्थ इन्दौर पधारे।

इन्दौर मालवा का उद्योग-प्रधान नगर तो है ही किन्तु शिक्षा और विद्वद्गोष्ठी से भी समृद्ध है। वहां पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के दैनिक प्रवचनों के अवसर पर विद्वानों के अतिरिक्त जनसाधारण की उपस्थिति हजारों की संख्या में हो जाती थी। व्याख्यानों का विषय तत्कालीन स्थिति और उसमे धर्म की उपयोगिता का संकेत मुख्य रूप से रहता था। आप प्रत्येक समस्या के समाधान में बहुत ही गहराई तक पहुंचते, जिससे जनता को नया बोध मिलता और अपने कर्तव्य का निश्चय करती।

इस चातुर्मास-काल में महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. ने 36 दिन की तपस्या

की। तपस्या के पूर दिवस पर आचार्यश्री ने प्रवचन मे अहिसा धर्म का विशद विवेचन किया। उस दिन श्रोताओं में बहुत-से कसाई भाई भी आये थे, जिन पर प्रवचन का बहुत ही गहरा असर हुआ और उनमे से एक ने तो चतुर्दशी को जीवहिंसा करने का त्याग कर दिया। इसके अतिरिक्त अन्य भाई-बहिनों ने भी यथाशक्ति त्याग-प्रत्याख्यान किये। इस दिवस की स्मृति-रूप में जीव-दया के कार्यो को करने के लिये तत्काल छह हजार रुपये का चन्दा एकत्रित हो गया।

एक सरल, भद्र-परिणामी सज्जन भी इस अवसर पर उपस्थित थे। उन्होने दत्तचित्त होकर यह व्याख्यान सुना और अपनी कुल दस रुपये की पूजी में से, जिससे प्रतिदिन चने, मूंगफली आदि लाते और अपनी आजीविका चलाते थे, इस शुभ कार्य के लिए 1 रुपये का दान देना चाहा। लेकिन गरीब समझकर, कुछ मार्मिक बात कहकर उनकी उपेक्षा कर दी। इससे उन्हें इतनी मनोवेदना हुई कि जो आंसुओ के रूप मे बह निकली।

मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. की उनकी ओर दृष्टि गई और कारण पूछने पर उन्होने अपनी भावना का मर्म बतलाया। मुनिश्री ने गुरुदेव से यह वृत्तात निवेदन किया तो गुरुदेव ने तत्काल प्रवचन में उन सज्जन की प्रशंसा करते हुए फरमाया कि ये सज्जन अपनी पूजी मे से दसवां भाग देने को उत्सुक हैं। क्या आप लोगों में से है कोई, जो अपनी संपत्ति का दसवां भाग जीवकल्याण की शुभ प्रवृत्ति में देने को तैयार हो ? इनकी भावना का सत्कार करो, इनके कार्य की प्रशंसा करो। संख्या का मूल्य न समझकर भावों का मूल्य समझना चाहिए।

श्रोताओं व चन्दा एकत्रित करने वालो को अपनी भूल-ज्ञात हुई और उनके 6000.00 पर यह 1.00 रुपया कलश बन गया।

चरितनायक की करुणा भावना किस-किस रूप में प्रवाहित हुई है, यह तो उनके समग्र जीवन के दर्शन से यथास्थान दिखलाई देगी। लेकिन पूर्वोक्त घटना तो उसका संकेत-मात्र ही है। विकटतम प्रसंगों में भी आपकी जीव-कल्याण की भावना सदैव सचेष्ट रही है और संघर्ष व उसकी आशंका भी आपकी करुणा भावना के मार्ग में अवरोधक नहीं बन सकी। यही आपके जीवन की सुन्दरता और भव्यता का रहस्य है और उसकी स्मृति से हमारा हृदय गद्गद हो उठता है एवं मस्तक श्रद्धा से नत हो जाता है।

योग्य अधिकारी विद्वानों से अध्ययन का क्रान्तिकारी कदम

इन्दौर चातुर्मास समाप्ति के बाद गुरुदेव के साथ आपका विहार दक्षिण (महाराष्ट्र) की ओर हुआ।

इन दिनों भारतीय इतिहास में एक नया स्वर्णिम पृष्ठ लिखा जा रहा था। राष्ट्रीय

स्वाधीनता-आन्दोलन अपने प्रवल वेग से चल रहा था। देशवासी देश को दासता से मुक्त करने के लिये कृतसंकल्प होकर प्रयत्नशील थे और उधर विदेशी शासक इस आंदोलन का दमन करने पर उतारू थे। ब्रिटिश सरकार प्रत्येक भारतीय और उसमें भी अपरिचित वेश वालों को संदेह की दृष्टि से देखती थी। दक्षिण की ओर विहार करने वाले इस सन्तमण्डल को भी अनेक स्थानों पर सन्देह का शिकार होना पडा। फिर भी अटल निश्चय के अनुसार अनेक कठिनाइयों की उपेक्षा करते हुए विहार निर्बाध गति से चलता रहा और सं. 1968 का चातुर्मास अहमदनगर हुआ।

उस समय तक स्थानकवासी संप्रदाय में संस्कृत-प्राकृत भाषा का पठन-पाठन बहुत कम था। व्याकरण, साहित्य आदि का अध्ययन करके ठोस पांडित्य प्राप्त करने की ओर समाज में वातावरण ही नहीं था। इसके बारे में जितनी साधुवर्ग मे उदासीनता थी, उतनी ही श्रावक वर्ग में थी। कतिपय तो संस्कृत भाषा के पठन-पाठन का विरोध भी करते थे।

परन्तु गुरुवर्यश्री जवाहरलालजी म. सा. यह स्थिति समाज के लिये श्रेयस्कर नहीं समझते थे। आप विद्याभिलाषी समाज और समर्थ विद्वान एवं चारित्रशील साधु-सन्त देखना चाहते थे। अतएव सामाजिक विरोध होते हुए भी आपने अपने शिष्यद्वय मुनिश्री घासीलालजी म. व चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. को संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं व भारतीय वाङ्मय पढाने का निश्चय किया।

आप मानते थे कि जो व्यक्ति पूर्णरूपेण और नियमानुसार साधु के आचार को भलीभांति नहीं जानता, वह उसका समीचीन रूप से पालन करने में असमर्थ है। अपने आचार को भलीभांति समझने वाला ही उसका पालन कर सकता है। ज्ञान के अभाव में साधुता की भी शोभा नहीं है। समाज के उत्थान के लिये भी ज्ञान की आवश्यकता है। 'हतं ज्ञानं क्रियाहीनं हता चाज्ञानिनां क्रिया'— यदि क्रियाहीन ज्ञान व्यर्थ है तो अज्ञानी के द्वारा की जाने वाली क्रिया भी अनुपयोगी है।

आपने शिष्यों को ज्ञानाभ्यास कराने का निश्चय तो कर लिया था, लेकिन निश्चय के साथ ही एक कठिनाई सामने आई कि उस समय तक समाज में ऐसा कोई साधु या श्रावक नजर नहीं आया जो इन मुनियों को नियमित रूप से पढा सके एवं वेतन देकर पंडित नियुक्त करने में बहुतों को आपत्ति थी। उनका विचार था कि 'अपढ रह जाना अच्छा लेकिन वेतन देकर गृहस्थ विद्वान से साधुओं को पढाना अच्छा नहीं है।'

चातुर्मास-काल में समाज के कुछ प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने यह प्रश्न पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की सेवा में प्रस्तुत किया। उन्होंने पूछा— त्यागियों को गृहस्थों से पढना चाहिये या नहीं, और साधु के निमित्त वैतनिक पंडित रखने से मुनियों को दोष लगता है या नहीं ?

व्यक्तिगत चर्चा के प्रसंग में उक्त प्रश्न का उत्तर देने की अपेक्षा गुरुदेवश्री ने

सार्वजनिक रूप में प्रवचन के अवसर पर उत्तर देना उचित समझा। अतः दूसरे दिन प्रवचन में इस प्रश्न के स्पष्टीकरण एवं समाधान के लिये उदाहरण दिया कि एक समझदार गृहस्थ ने अपने अन्तिम समय में पुत्र को शिक्षा दी– तुम किसी से ऋण मत लेना और न भूखे ही रहना। इतना कहने के बाद पिता की मृत्यु हो गई। भाग्यवशात् पुत्र निर्धन हो गया और ऋण लेने की भी नौबत आ गई। लेकिन पिता के अन्तिम शब्द याद आ गये कि ऋण लेना मत और भूखे रहना नहीं। विचित्र संकट था कि इधर कुआं तो उधर खाई। पुत्र किंकर्तव्यविमूढ हो गया कि क्या करे ? अन्त में अन्तर् के नाद से उसे प्रकाश मिला और स्वस्थ मन से विचारा कि पिताजी की दोनों आज्ञाओं का उद्देश्य सुखी जीवन व्यतीत करने का है। ऋण लेने से सुख नष्ट होता है और भूखों मरने से जीवन की समाप्ति। अतएव ऐसी स्थिति में थोडा ऋण लेकर जीवन बचाये रखना श्रेयस्कर है और बाद में कठिन परिश्रम कर ऋण उतार दूंगा। ऐसा सोचकर उसने थोड़ा-सा ऋण ले लिया, जिसे बाद में अपने श्रम से चुका दिया और आत्मघात के भयंकर पाप से अपने को बचा लिया।

अब आप लोग विचारें कि पुत्र का उक्त निर्णय उचित था या नहीं ?

यही बात साधुओं के अध्ययन के बारे में भी समझना चाहिये। यह ठीक है कि साधुओं को गृहस्थ से कोई काम नहीं लेना चाहिये, लेकिन क्या धर्मगुरुओं को मूर्ख ही बना रहना चाहिये ? क्या उन्हें धर्म पर होने वाले मिथ्यारोपो का निवारण करने में समर्थ नहीं बनना चाहिये ? शास्त्रों में ज्ञान की महिमा का वर्णन निष्कारण नहीं किया गया है। दशवैकालिक सूत्र में उल्लेख है–

'अन्नाणी किं काही, किं वा नाही सेयं पावम्।'

अर्थात् अज्ञानी बेचारा क्या कर सकेगा ? वह भले-बुरे को, कल्याण-अकल्याण को, धर्म-अधर्म को क्या समझ सकेगा ?

अध्ययन-अध्यापन कोई सावद्य कार्य नहीं है। मर्यादा मे रहते हुए अगर गृहस्थ से अध्ययन किया जाये तो मूर्ख रहने की अपेक्षा बहुत कम दोप है और उसकी प्रायश्चित्त द्वारा शुद्धि भी की जा सकती है। भगवान ने गृहस्थ से काम लेने का निषेध किया है तो अल्पज्ञ रहने का भी निषेध किया है। आप स्मरण रखें कि युग की विशेषताओं पर ध्यान दिये बिना धर्म और समाज की रक्षा होना कठिन है। धर्म और समाज की रक्षा के लिये अज्ञान-निवारण करना प्राथमिक आवश्यकता है।

इस विवेचन से श्रोताओं की धारणाओं का उन्मूलन हुआ और आपके निश्चय की सराहना की।

योग्य अधिकारी विद्वानों के सान्निध्य में चरितनायक अध्ययन करके शनैः-शनैः, क्रम-क्रम

से न्याय, व्याकरण, दर्शन, साहित्य आदि विषयों एवं संस्कृत, प्राकृत भाषाओं में पांडित्य प्राप्त करने लगे। साथ ही महाराष्ट्र के श्रावक संघों को भी धार्मिक प्रवृत्तियों के विकास का सुयोग प्राप्त हुआ।

किये हुए अध्ययन की परीक्षा में सर्वोत्कृष्ट अंक से उत्तीर्ण

गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. का सं. 1974 का चातुर्मास भी यहीं हुआ। शिष्यद्वय अध्ययन कर ही रहे थे। किसी एक दिन वार्तालाप के प्रसंग में श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया और श्री माणिकचन्दजी मूथा वकील ने गुरुदेव से प्रार्थना की कि आपके दोनों शिष्य अध्ययन कर रहे हैं, यह आनन्द की बात है। किन्तु उनका अध्ययन कैसा-क्या चल रहा है और उन्होंने उसमें कितनी प्रगति की है, यह बात हम श्रावको को कैसे मालूम हो ?

प्रश्न उचित था और गुरुदेवश्री भी नहीं चाहते थे कि समाज की शक्ति, धन का अपव्यय हो। अध्ययन संतोषजनक है या नहीं, यह जानने का उपाय परीक्षा लेना है। अतः उन्होंने अपने दोनों शिष्यों से परीक्षा देने के लिये पूछा और दोनों ने तत्काल इसके लिये स्वीकृति दे दी।

विचार-विमर्श के अनन्तर अहमदनगर में परीक्षा लेने का निश्चय किया गया। जिसके लिये प्रसिद्ध विद्वान पं. श्री गुणेशास्त्री एम.ए. पी-एच. डी. और म. म. पं. अभ्यंकरजी शास्त्री परीक्षक नियुक्त किये गये। परीक्षकों ने श्रीसंघ और दर्शकों की उपस्थिति में परीक्षा ली। व्याकरण, साहित्य विषयक प्रश्न पूछे गये। जिनमें मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. को व्याकरण में 82 प्रतिशत एवं साहित्य में 64 प्रतिशत प्रथम श्रेणी के अंक प्राप्त हुए। मौखिक प्रश्नों में तो सौ में से सौ अंक प्राप्त हुए।

परीक्षा के परिणाम को देखकर उपस्थिति ने अध्ययन की सराहना की और परीक्षकों ने अध्यापक एवं अध्येता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए प्रोत्साहन दिया।

सं. 1975 का चातुर्मास हिवड़ा हुआ। यहाँ पर श्री सूरजमलजी कोठारी ने भाद्रपद शुक्ला 7 को भागवती दीक्षा ली।

पूज्यश्री श्रीलालजी म. सा. द्वारा उत्तराधिकारी का चयन

इन्हीं दिनों पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म. सा. का चातुर्मास उदयपुर हुआ। अकस्मात् आश्विन मास में आपश्री इन्फ्लूएंजा रोग से ग्रस्त हो गये। रोग की वेदना तीव्र थी। फिर भी आपश्री ने साध्वोचित क्रियाओं में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आने दी और नियमित रूप से साधना में संलग्न रहे।

इस रोग-वेदना के समय पूज्यश्री ने संघहित की दृष्टि से विचार किया कि जीवन क्षण-भंगुर है। आचार्य होने के नाते मेरे ऊपर समस्त सम्प्रदाय का भार है। अतः अब मुझे

योग्य उत्तराधिकारी का चयन कर लेना चाहिये जिससे चतुर्विध संघ की धर्मसाधना निर्विघ्न रूप से व्यवस्थित रहे।

पूज्यश्री ने इस दृष्टि से अपने आज्ञानुवर्ती समस्त मुनियो पर दृष्टि डाली और उसमें चरितनायक के गुरुश्री जवाहरलालजी म. सा. पर ध्यान केन्द्रित हो गया। पूज्यश्री ने अपना विचार श्रीसंघ के समक्ष रखा। जिसका श्रीसंघ ने अनुमोदन करते हुए कार्तिक शुक्ला द्वितीया को श्री जवाहरलालजी म. सा. को युवाचार्य घोषित करके उन्हें इसकी जानकारी कराने के लिये हिवडा श्रीसंघ को तार दे दिया गया। किन्तु पद उत्तरदायित्वपूर्ण था अतः स्वीकृति देने से पूर्व उन्होंने आचार्यश्रीजी से मिलना उचित समझा और तत्काल कोई उत्तर नहीं दिया।

उत्तर में विलम्ब होते देख सेठ श्री बालमुकुन्दजी तथा श्री चंदनमलजी मूथा हिवड़ा आये। उन्होंने श्रीसंघ की स्थिति और आचार्यश्रीजी की भावना को व्यक्त किया। अतएव आपने उत्तर में कहा कि मुझे पूज्यश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन मैं बहुत दिनों से महाराष्ट्र में हूँ। उधर की परिस्थितियों से अपरिचित हूँ। इधर दोनों शिष्यों का अध्ययन चल रहा है, जिसे बीच में स्थगित कर देना उचित नहीं है। इनका अध्ययन पूर्ण होने पर मैं पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होकर एतद्विषयक अपनी भावना व्यक्त करना चाहता हूँ। इसी प्रकार के भाव आपने उदयपुर से आगत शिष्टमण्डल को भी बतलाये।

शिष्टमण्डल के वापिस उदयपुर लौट जाने के अनंतर समाज के अग्रणी सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया, रतलाम एवं सेठ श्री बहादुरमलजी बांठिया, भीनासर निवासी हिवडा आये और समस्त स्थिति का दिग्दर्शन कराया। इसलिये अध्ययन करने वाले अपने शिष्यों को महाराष्ट्र में छोड़कर गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. ने मालवा की ओर विहार कर दिया और रतलाम में युवाचार्य पद समारोह सम्पन्न हुआ।

चरितनायक में सेवा, अध्ययन और विद्वत्ता का संगम

चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. के साथ वहीं महाराष्ट्र में अपना अध्ययन चालू रखने के लिये रह गये और सं. 1976 व 1977 के चातुर्मास क्रमशः चिंचवड व सतारा में किये।

इन दोनों चातुर्मासों में समाज को आपकी वाणी, विद्वत्ता और शास्त्रीय अध्ययन का परिचय मिला। सरल से सरल भाषा में आप गम्भीर शास्त्रीय विषय को समझाने में प्रवीण थे। आपकी विद्वत्ता जनमानस को स्पर्श करती थी। श्रोतागण आपके प्रवचनों को सुनकर गद्गद हो उठते और गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. की सूझबूझ का अभिनन्दन करते हुए सराहना करने लगते।

गुरु-चरणों में उदयपुर संत-सती-सम्मेलन में सहायक

महाराष्ट्र की जनता आपके पांडित्य से प्रभावित हो चुकी थी और महाराष्ट्र में विराजने के लिये विनती कर रही थी। लेकिन आप चाहते थे कि गुरुदेव की छत्रछाया में ज्ञान और संयम-साधना के संस्कारों का सिंचन हो और आपके गुरुदेवश्री भी अभी उन्हें अपने निकट रखना चाहते थे। अतः आप गुरु-आज्ञापूर्वक दो दाणा से महाराष्ट्र से विहार करके उदयपुर पधार गये। गुरुदेवश्री भी बीकानेर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् उदयपुर पधारे।

आषाढ़ शुक्ला द्वितीया, सं. 1977 को पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म. सा. के जयतारण में कालधर्म को प्राप्त होने पर चतुर्विध संघ का नेतृत्व आपके गुरुश्री जवाहरलालजी म. सा. के हाथों में आ गया था।

आचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के उपरांत संप्रदाय और समाचारी को व्यवस्थित रूप देने की दृष्टि से उदयपुर में संप्रदाय के समस्त सन्त-सतीवृन्द का सम्मेलन हुआ। इसमें चालीस सन्त एकत्रित हुए और उन्होंने समाचारी आदि को व्यवस्थित रूप देकर पूज्य आचार्यश्री की आज्ञा को शिरोधार्य किया।

संकटापन्न स्थिति में भी सेवा और धृति नहीं छोड़ी

सं. 1978 का चातुर्मास रतलाम में सम्पन्न होने के पश्चात् आपने अधूरे अध्ययन को पूर्ण करने के लिये गुरुदेव के साथ दक्षिण की ओर विहार कर दिया। खुर्रमपुरा पहुंचने पर रात्रि-विश्राम-योग्य स्थान न मिल सका और एक खुले मन्दिर में ठहरना हुआ। पौष मास था और उन दिनों कड़ाके की सर्दी पड़ रही थी कि अकस्मात् शाम को मुनिश्री हणुतमलजी म. सा. को छाती में दर्द उठा और ज्वर हो गया। रात्रि का समय था और साधु-मर्यादा के अनुसार रात्रि में उपचार आदि के लिये उपाय भी नहीं किया जा सकता था। जो कुछ भी सेवा-शुश्रूषा सम्भव थी, वह सब की गई लेकिन रोग काबू में नहीं आया। अतः उसी समय उनको आलोयणा आदि करादी गई और उन्होंने शुद्ध हृदय से अपने जीवन की आलोचना की।

जैसे-तैसे प्रातःकाल होने पर मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. दूसरे कुछ सुविधाजनक स्थान की खोज में निकले और एक कच्ची कोठरी मिली। वहां रुग्ण मुनिश्री को ले जाया गया। मगर आहार, उपचार और बीमारी की समस्या अधिकाधिक कठिन होती जा रही थी। बीमारी के कारण विहार होना भी सम्भव नहीं था। स्थिति विकट थी और उसका सामना करने के लिये आचार्यश्री आदि सभी सन्तों ने एकान्तर उपवास करना प्रारम्भ कर दिया। रुग्ण मुनिश्री को रोग-मुक्ति के लिये तीन दिन का उपवास कराया गया। इससे रोग में कुछ अन्तर तो पड़ा, किन्तु निर्बलता ज्यादा बढ़ गई।

खुर्रमपुरा छोटा-सा गांव था अतः वहां बीमार मुनि की चिकित्सा के साधनों का अभाव देखकर उपचार के लिये किसी दूसरे योग्य गांव में ले जाने का निश्चय किया गया। करीब चार कोस पर एक गांव था और वहां जैसे-तैसे आवास-योग्य स्थान भी मिल गया। लेकिन पांच मुनियों के योग्य आहार आदि की असुविधा और रोगी की परिचर्या के साधनो का अभाव देखकर वापिस खुर्रमपुरा लौट आये।

समय की स्थिति को देखते हुए खुर्रमपुरा में रोगी मुनिश्री के उपचार के लिये जो-कुछ शक्य था, किया गया। श्रावकों को खबर मिलने पर जावरा से श्री प्यारचन्दजी डफरिया और दूसरे एक-दो सज्जन भी खुर्रमपुरा पहुंच गये। किन्तु रोग का प्रकोप तीव्र था अतः रोगी मुनिश्री के जीवन की कोई आशा न देखकर उन्हें संथारा करा दिया गया और संथारे की स्थिति में उनका देहावसान हो गया।

योग्य स्थान न मिलने पर भी शान्ति

इस प्रकार के कष्टमय समय को व्यतीत करके पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. आदि सन्त खुर्रमपुरा से विहार कर बालसमंद पहुँचे। वहां भी स्थान आदि की कठिनाइयां आईं। एक धर्मशाला मिली किन्तु डांस मच्छरों और चूहों के कारण रात्रि व्यतीत करना असंभव जान मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. आदि सन्तों को किसी अन्य स्थान को देखने के लिये भेजा। उन्हें एक गृहस्थ के मकान के बाहर का चबूतरा योग्य दिखलाई दिया। मुनिश्री ने गृहस्वामी की पुत्रवधू से चबूतरे पर रात्रि-विश्राम करने की आज्ञा मांगी, लेकिन उसने इसके लिये आनाकानी की। वहां के निवासियों की धारणा थी कि चोर-लुटेरे साधु के वेश मे फिरते हैं और मौका पाकर हाथ साफ करके चल देते हैं।

मुनिश्री ने उस बहिन को बहुत समझाया और अपनी सब स्थिति एवं साधुचर्या का परिचय दिया तो उसका दिल पसीज गया और बोली– महाराज हमें तो कोई एतराज नहीं, किन्तु हमारे ससुर आते ही आपको हटा न दे, यह विचार आ जाता है।

अनुमति पाकर चारों सन्त अभी अपने पात्रोपकरण रखकर बैठे ही थे कि गृहस्वामी आ गया और दूर से ही चबूतरे पर सन्तों को देखकर क्रोधाभिभूत हो अपशब्दों से स्वागत करना प्रारम्भ कर दिया। निकट आते ही उसने तत्काल हटने के लिये आदेश दिया और चेतावनी दी कि यहां से शीघ्र उठो, नहीं तो यह सब पात्र आदि फोड फेंकूंगा।

परीषहों के आक्रमण के समय भी साध्वाचार का पालन

सामयिक स्थिति को देख सन्तों ने पुनः धर्मशाला में आकर रात्रि-विश्राम किया और प्रातः

होते ही वहां से विहार कर सेंधवा एवं वहां से पुनः ग्यारह कोस का उग्र विहार कर चौकी पधारे। मार्ग में आहार-पानी का संयोग तो न-कुछ-सा मिला। यद्यपि उग्र विहार और अल्प आहार के कारण शरीर अवश्य कुछ निर्बल हो गया था, परन्तु मन अधिकाधिक प्रबल बनता गया और परीषहों का प्राबल्य सतत जाग्रत् रहने के लिये प्रेरित करता रहता था।

साध्वाचार का पालन करना कितना कठिन है, यह उल्लिखित प्रसंग से ज्ञात होता है। संयम-साधना करना कोई दूध-पताशे का कौर नहीं है, वरन् तलवार की धार पर चलना है। ऐसी परिस्थिति में भी बिना किसी क्षोभ के सब-कुछ सहन करना बहुत बड़ी बात है। प्रतिदिन का लगातार लम्बा विहार, सूर्योदय से सूर्यास्त तक पैदल चलना, कई दिनों तक भरपेट आहार न मिलना और उसमे भी यह कटुक व्यवहार, रात्रि-विश्राम के लिये भी साधारण-सा स्थान नहीं। डांस मच्छरों को अपना शरीर समर्पित करना आदि ! हे साधना के पथिक मुनिराज ! तुम्हारा मार्ग तुम्हीं को शोभा देता है।

महाराष्ट्र-विहार और उपकार

चौकी से विहार कर शीरपुर, वागजी होते हुए सभी सन्त मांडल पधारे और वहां पांच-छह दिन विराजकर धूलिया पहुंचे। धूलिया में पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. को ज्वर हो जाने से एक सप्ताह रुकना पड़ा। किन्तु स्वास्थ्य ठीक होते ही पारौली की ओर विहार कर दिया।

पारौली में मुनिश्री लालचन्दजी म. सा. विराजते थे। वे बहुत दिनों से रुग्ण थे और पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के दर्शनों के इच्छुक थे। आपने उन्हीं की भावना को जानकर इस ओर विहार किया ही था कि चारौली के निकटवर्ती ग्राम राहोरी पहुंचने पर उनके स्वर्गवासी होने के समाचार मिले। अतः चारौली जाना स्थगित करके पुनः मालवा की ओर विहार करने का विचार होने लगा। किन्तु अहमदनगर संघ की विनती से अहमदनगर की ओर विहार हुआ।

विभिन्न क्षेत्रों की ओर से आगामी चातुर्मास के लिये विनतियां हो रही थी, किन्तु विशेष प्रभावना और धर्मोपकार होने की संभावना से सं. 1979 का चातुर्मास सतारा में हुआ। सतारा में श्री भीमराजजी व श्री सिरेमलजी की भागवती दीक्षाएं सम्पन्न हुईं।

चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर पूना आदि सुदूर दक्षिण तक विहार होने से जनसाधारण को जैन धर्म के सिद्धान्तो, विशेषताओ की जानकारी मिलने के साथ-साथ मिथ्या धारणाओं का निराकरण हुआ।

चातुर्मास का समय निकट था और दक्षिण के विभिन्न स्थानों के श्रीसंघ आगामी चातुर्मास के लिये उत्सुक थे। अतः समय और धार्मिक प्रभावना को लक्ष्य में रखते हुए सं. 1980 का चातुर्मास मुंबई के निकट घाटकोपर में किया।

इस चातुर्मास-काल में धर्म-प्रभावना के विभिन्न कार्य होने के उपरांत सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य जीवदया के निमित्त हुआ। मुंबई बडा नगर है और वहां के बूचडखाने में दुधारू गायों, बैलो का कत्ल होता था। यह वहां की अहिंसाप्रेमी जनता के लिये एक कलंक था। पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने इस कुकृत्य की ओर संकेत किया। अतः इन पशुओं को मौत के मुंह मे जाने देने से रोकने के लिए जीवदया खाते की स्थापना करके करीब सवा लाख रुपये का कोष एकत्रित हुआ। वर्तमान में इसके द्वारा हजारों गाय-भैंसों को कसाइयों के हाथों से बचा कर अभयदान का कार्य चल रहा है।

घाटकोपर चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मुंबई के निकटस्थ उपनगरों और नासिक आदि क्षेत्रो मे विहार करके सन्तों का आषाढ कृष्णा नवमी, सं. 1981 को जलगांव पदार्पण हुआ।

जलगांव के प्रसिद्ध सुश्रावक सेठ श्री लक्ष्मणदासजी श्रीश्रीमाल पूज्य आचार्यश्रीजी म. सा. के अनन्य भक्तों में से थे और आप चाहते थे कि आचार्यश्रीजी जलगांव पधार कर चातुर्मास करें। इसके लिये काफी समय से विनती कर रहे थे, जिसकी पूर्ति का सुअवसर अब प्राप्त हो सका और सं. 1981 का चातुर्मास जलगांव में होना निश्चित हुआ।

संघ-नेतृत्व सौंपने का बीजारोपण

आचार्यश्रीजी आदि मुनिराजों का चातुर्मास अपने यहां निश्चित होने से जलगांव निवासी उत्साह एवं भव्य भावनाओं के वातावरण से ओतप्रोत थे। प्रतिदिन श्रोतागण अभूतपूर्व प्रवचनों का आस्वादन करते हुए आत्मशुद्धि के लिये तप-त्याग आदि संयम-साधना में संलग्न रहते थे कि अकस्मात् आषाढ़ कृष्णा अमावस्या को आचार्यश्रीजी की हथेली में दर्द होना शुरू हो गया। दर्द असह्य था और उसके चार दिन बाद हथेली में एक छोटी-सी फुन्सी निकल आई, जिससे दर्द और बढ गया। दर्द को दूर करने के लिये साधारण फुन्सी समझ कर उसे फोड तो दिया गया, लेकिन दो-चार दिन बाद उसने ऐसा भयंकर रूप ले लिया कि उससे आचार्यश्रीजी का जीवन भी संकटापन्न-सा प्रतीत होने लगा।

आचार्यश्रीजी को इस स्थिति में भी अपने शरीर की चिन्ता नहीं थी। लेकिन संघ की भावी व्यवस्था के लिये उन्हें अवश्य ही विचार आया। किसी सुयोग्य उत्तराधिकारी के हाथों संघ का उत्तरदायित्व सौंपे विना यह चिन्ता दूर नहीं हो सकती थी। एतदर्थ आचार्यश्रीजी ने अपने सम्प्रदाय के समस्त सन्तों पर दृष्टिनिक्षेप किया और सुयोग्य उत्तराधिकारी की दृष्टि

से उनका ध्यान चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. पर केन्द्रित हो गया। आपको संघ का शासन सौंप देने के बारे में भली-भांति विचार कर लेने के पश्चात् समाज के उपस्थित अग्रणी श्रावकों और सन्तों को अपनी भावना बतलाई और विचार-विमर्श किया। सम्प्रदाय के अन्यान्य सन्त-मुनिराजों और श्रावकों से राय मंगवाई। सभी ने आचार्यश्रीजी के विचारो का अनुमोदन करते हुए सुयोग्य उत्तराधिकारी के चयन की प्रशंसा की।

इतना सब-कुछ हो रहा था। लेकिन जिनके बारे में यह सब-कुछ था, उन्हें अभी तक कुछ भी पता नहीं चला। वे थे चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा.। अकस्मात् किसी एक दिन सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया आपके पास आये और कहा– महाराज ! मैं आप से एक निवेदन करने आया हूँ। यह तो आप देख ही रहे हैं कि आचार्यश्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आप आचार्यश्रीजी को किसी प्रकार से असमंजस में न डालें और वे आपको जो आज्ञा दें, उसे स्वीकार कर लें।

सेठजी की बात सुनकर मुनिश्री को आश्चर्य हुआ। आपने उत्तर दिया– आज आपको ऐसा कहने की क्यों आवश्यकता हुई ? मैंने तो कभी भी पूज्यश्री की आज्ञा नहीं टाली. मैं तो उनका एक तुच्छ सेवक हूँ और इसी रूप में रहना चाहता हूँ।

श्री पीतलियाजी के वापिस चले जाने के पश्चात् मुनिश्री पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और आचार्यश्रीजी ने समस्त स्थिति को समझाते हुए संप्रदाय का भार स्वीकार करने के लिये कहा। यह सुनकर चरितनायक को श्री पीतलियाजी के वार्तालाप का स्मरण हो आया और इस विलक्षण आज्ञा से असमंजस में पड गये। अपनी सामर्थ्य और दायित्व की तुलना कर इसके लिये अपनी असमर्थता व्यक्त की तो श्री पीतलियाजी ने आपकी ओर देखा, जिसका स्पष्ट संकेत था कि आज्ञाकारी और विनीत शिष्य होते हुए आचार्यश्रीजी के शरीर की इस नाजुक स्थिति में यह अस्वीकृति क्यों प्रगट कर रहे हैं !

विचारों के इस त्रिकोणात्मक द्वन्द्व का परिणाम यह हुआ कि चरितनायक को विवश होकर इस उत्तरदायित्वपूर्ण भार को स्वीकार करने की स्वीकृति देनी पडी। स्वीकृति के अनंतर सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया ने व्यवस्था-पत्र का प्रारूप बनाया और मुनिश्री घासीलालजी म. सा. के द्वारा उसकी प्रतिलिपि कराकर आचार्यश्रीजी ने अपने पास रख ली।

आचार्यश्री जवाहर के स्वास्थ्य में सुधार

आचार्यश्रीजी की अस्वस्थता से चतुर्विध संघ अत्यन्त चिन्तित हो उठा। उपचारार्थ मुम्बई के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. मूलगांवकर को बुलाया गया और निदान से निश्चय हुआ कि फोड़े का कारण मधुमेह है। फोड़े के ऑपरेशन के साथ मधुमेह की भी चिकित्सा की गई

और संघ के प्रबल पुण्योदय से संवत्सरी तक आचार्यश्रीजी इतने स्वस्थ हो गये कि करीब 20 मिनट प्रवचन फरमाया।

शनैः-शनैः आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य प्रगति कर रहा था। अतः तत्काल तो युवाचार्य पदवी प्रदान करने की शीघ्रता नहीं रही थी, किन्तु भावी संघ-नेतृत्व का बीज बोया जा चुका था और समग्र चतुर्विध संघ को भी आचार्यश्रीजी के विचार ज्ञात हो गये थे। अब तो सिर्फ वैधानिक रूप से घोषणा होने के समय की प्रतीक्षा करना शेष था।

चातुर्मास समाप्ति तक आचार्यश्रीजी के रोगमुक्त शरीर में इतनी शक्ति आ गई थी कि थोडा-बहुत विहार हो सके। अन्नपाचन भी ठीक तरह से हो जाता था। अतः जलगांव के आस-पास के क्षेत्रों में विचरण करके पुनः सं. 1982 का चातुर्मास जलगांव में किया। इस चातुर्मास-काल में शारीरिक स्थिति में समुचित सुधार हुआ और लम्बा विहार होने योग्य शक्ति भी प्राप्त हो चुकी थी। अत आचार्यश्रीजी म. सा. ने मालवा की ओर विहार करने का विचार किया।

दीक्षागुरु की अग्लानभाव से सेवा

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. आचार्यश्रीजी के साथ ही रहते थे। अब वे काफी वृद्ध हो गये थे और विहार के योग्य शारीरिक शक्ति भी अत्यल्प रह गई थी। अतः उन्होंने जलगांव में ही स्थिरवास करना उचित समझा। आचार्यश्रीजी म सा. ने मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. आदि चार संतों को उनकी सेवा में छोड़कर चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर मालवा की ओर विहार कर दिया।

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. की सेवा में होने से चरितनायक ने सं. 1983 का चातुर्मास जलगांव में किया। प्रतिदिन स्थविर पद विभूषित गुरुश्री की पूर्ण मनोयोग से सेवा-शुश्रूषा करते हुए शास्त्रीय अभ्यास में निमग्न रहते और गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को अपनी वाणी द्वारा प्रवचन के रूप में श्रोताओं को सुनाते। आपकी चारित्र-साधना का परिचय तो चतुर्विध संघ को पहले से ही प्राप्त हो गया था और अब प्रवचनों से विद्वत्ता, शैली का भी परिचय मिला।

इन्हीं दिनों मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. काफी अस्वस्थ हो गये। दस्तों की बीमारी थी और शारीरिक स्थिति के अतिक्षीण हो जाने से मानसिक संतुलन भी समुचित रूप में स्थिर नहीं रहता था। कभी-कभी वस्त्र भी मल से भर जाते थे। लेकिन चरितनायक पूर्ण मनोयोग से उनकी सेवा करते। मलदूषित वस्त्रो को निर्ग्लान भाव से स्वच्छ करते। कभी-कभी तो ऐसे अवसर भी आ जाते कि अध-बीच में आहार करना छोडकर उठना पडता था। इस स्थिति

से उनका ध्यान चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. पर केन्द्रित हो गया। आपको संघ का शासन सौंप देने के बारे मे भली-भांति विचार कर लेने के पश्चात् समाज के उपस्थित अग्रणी श्रावकों और सन्तों को अपनी भावना बतलाई और विचार-विमर्श किया। सम्प्रदाय के अन्यान्य सन्त-मुनिराजों और श्रावकों से राय मंगवाई। सभी ने आचार्यश्रीजी के विचारों का अनुमोदन करते हुए सुयोग्य उत्तराधिकारी के चयन की प्रशंसा की।

इतना सब-कुछ हो रहा था। लेकिन जिनके बारे में यह सब-कुछ था, उन्हें अभी तक कुछ भी पता नहीं चला। वे थे चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा.। अकस्मात् किसी एक दिन सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया आपके पास आये और कहा– महाराज ! मैं आप से एक निवेदन करने आया हूँ। यह तो आप देख ही रहे हैं कि आचार्यश्रीजी म. सा. का स्वास्थ्य ठीक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में आप आचार्यश्रीजी को किसी प्रकार से असमंजस में न डालें और वे आपको जो आज्ञा दें, उसे स्वीकार कर लें।

सेठजी की बात सुनकर मुनिश्री को आश्चर्य हुआ। आपने उत्तर दिया– आज आपको ऐसा कहने की क्यों आवश्यकता हुई ? मैंने तो कभी भी पूज्यश्री की आज्ञा नहीं टाली, मैं तो उनका एक तुच्छ सेवक हूँ और इसी रूप में रहना चाहता हूँ।

श्री पीतलियाजी के वापिस चले जाने के पश्चात् मुनिश्री पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित हुए और आचार्यश्रीजी ने समस्त स्थिति को समझाते हुए संप्रदाय का भार स्वीकार करने के लिये कहा। यह सुनकर चरितनायक को श्री पीतलियाजी के वार्तालाप का स्मरण हो आया और इस विलक्षण आज्ञा से असमंजस में पड़ गये। अपनी सामर्थ्य और दायित्व की तुलना कर इसके लिये अपनी असमर्थता व्यक्त की तो श्री पीतलियाजी ने आपकी ओर देखा, जिसका स्पष्ट संकेत था कि आज्ञाकारी और विनीत शिष्य होते हुए आचार्यश्रीजी के शरीर की इस नाजुक स्थिति में यह अस्वीकृति क्यों प्रगट कर रहे हैं !

विचारों के इस त्रिकोणात्मक द्वन्द्व का परिणाम यह हुआ कि चरितनायक को विवश होकर इस उत्तरदायित्वपूर्ण भार को स्वीकार करने की स्वीकृति देनी पड़ी। स्वीकृति के अनंतर सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया ने व्यवस्था-पत्र का प्रारूप बनाया और मुनिश्री घासीलालजी म. सा. के द्वारा उसकी प्रतिलिपि कराकर आचार्यश्रीजी ने अपने पास रख ली।

आचार्यश्री जवाहर के स्वास्थ्य में सुधार

आचार्यश्रीजी की अस्वस्थता से चतुर्विध संघ अत्यन्त चिन्तित हो उठा। उपचारार्थ मुम्बई के सुप्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. मूलगांवकर को बुलाया गया और निदान से निश्चय हुआ कि फोड़े का कारण मधुमेह है। फोड़े के ऑपरेशन के साथ मधुमेह की भी चिकित्सा की गई

और संघ के प्रबल पुण्योदय से संवत्सरी तक आचार्यश्रीजी इतने स्वस्थ हो गये कि करीब 20 मिनट प्रवचन फरमाया।

शनैः-शनैः आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य प्रगति कर रहा था। अतः तत्काल तो युवाचार्य पदवी प्रदान करने की शीघ्रता नहीं रही थी, किन्तु भावी संघ-नेतृत्व का बीज बोया जा चुका था और समग्र चतुर्विध संघ को भी आचार्यश्रीजी के विचार ज्ञात हो गये थे। अब तो सिर्फ वैधानिक रूप से घोषणा होने के समय की प्रतीक्षा करना शेष था।

चातुर्मास समाप्ति तक आचार्यश्रीजी के रोगमुक्त शरीर में इतनी शक्ति आ गई थी कि थोडा-बहुत विहार हो सके। अन्नपाचन भी ठीक तरह से हो जाता था। अत. जलगांव के आस-पास के क्षेत्रो में विचरण करके पुनः सं. 1982 का चातुर्मास जलगांव में किया। इस चातुर्मास-काल में शारीरिक स्थिति में समुचित सुधार हुआ और लम्बा विहार होने योग्य शक्ति भी प्राप्त हो चुकी थी। अतः आचार्यश्रीजी म. सा. ने मालवा की ओर विहार करने का विचार किया।

दीक्षागुरु की अग्लानभाव से सेवा

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. आचार्यश्रीजी के साथ ही रहते थे। अब वे काफी वृद्ध हो गये थे और विहार के योग्य शारीरिक शक्ति भी अत्यल्प रह गई थी। अतः उन्होने जलगांव में ही स्थिरवास करना उचित समझा। आचार्यश्रीजी म. सा. ने मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. आदि चार संतों को उनकी सेवा में छोड़कर चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर मालवा की ओर विहार कर दिया।

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म सा. की सेवा में होने से चरितनायक ने सं. 1983 का चातुर्मास जलगांव में किया। प्रतिदिन स्थविर पद विभूषित गुरुश्री की पूर्ण मनोयोग से सेवा-शुश्रूषा करते हुए शास्त्रीय अभ्यास मे निमग्न रहते और गुरुदेव से प्राप्त ज्ञान को अपनी वाणी द्वारा प्रवचन के रूप में श्रोताओं को सुनाते। आपकी चारित्र-साधना का परिचय तो चतुर्विध संघ को पहले से ही प्राप्त हो गया था और अब प्रवचनों से विद्वत्ता, शैली का भी परिचय मिला।

इन्हीं दिनों मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. काफी अस्वस्थ हो गये। दस्तों की बीमारी थी और शारीरिक स्थिति के अतिक्षीण हो जाने से मानसिक संतुलन भी समुचित रूप में स्थिर नहीं रहता था। कभी-कभी वस्त्र भी मल से भर जाते थे। लेकिन चरितनायक पूर्ण मनोयोग से उनकी सेवा करते। मलदूषित वस्त्रों को निर्ग्लान भाव से स्वच्छ करते। कभी-कभी तो ऐसे अवसर भी आ जाते कि अध-बीच में आहार करना छोड़कर उठना पडता था। इस स्थिति

में खेद-खिन्न हो जाना सहज है, लेकिन उस समय भी क्षण-भर का प्रमाद न करते हुए आप पूर्ववत् अग्लान भाव से रोगी मुनिश्री की सेवा-परिचर्या में लग जाते थे।

यद्यपि महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. का अच्छे-से-अच्छा उपचार हो रहा था। लेकिन दिनोंदिन जीवन की आशा क्षीण होती गई और अन्त में सं. 1983, फाल्गुन कृष्णा 13 को उनका देहावसान हो गया।

आपने जिस लगन और अध्यवसाय से मुनिश्री की सेवा की थी उसकी तुलना नहीं की जा सकती। आपकी सेवा-भावना में 'अयं निजः परोवेति गणना लघुचेतसां' की तरह गुरुजनों के लिये पक्षपात नहीं था, किन्तु 'उदार-चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के समान सामान्य सन्तों को भी सेवा के सुअवसर प्राप्त थे।

निर्भीकता और अहिंसा से वनराज भी प्रभावित

चरितनायक सेवा-वैयावच्च करने के लिये जितने तत्पर थे, उससे भी अधिक उपसर्ग और परीषहों की वेला में स्वयं निर्भय और निर्द्वन्द्व रहकर साथी सन्तो को भयमुक्त रखने के लिये भी सन्नद्ध रहते थे। इसके अनेक उदाहरण आपकी जीवन-गाथा में यत्र-तत्र उपलब्ध है। उनमें से एक-दो प्रसंगों का यहां उल्लेख कर देना उपयुक्त है–

एक बार चरितनायक सतपुड़ा पर्वत की तलहटियों में से होकर विहार कर रहे थे। बीच-बीच में बियावान जंगल पडता था। बनैले हिंसक जानवर शेर, चीते आदि की गर्जना से जंगल बड़ा भयावना लगता था। उस समय नवयुवा दो विद्यार्थी सन्त श्री श्रीमलजी म. तथा श्री जेठमलजी म. आपके साथ थे। आगे-आगे आप और पीछे दोनों सन्त चल रहे थे। अकस्मात् आपकी दृष्टि दो खूंखार शेरों पर पड़ी। सिर्फ चालीस-पचास कदम का फासला था। आप तो निर्भय थे। दोनों ओर से आंखें आपस में टकराई। एक ओर तो आंखों में हिंसा का रौद्रभाव झांक रहा था तो दूसरी ओर उन पर भी मैत्री, करुणा और निर्भयता की अमृतवर्षा हो रही थी।

आपको अपने जीवन का मोह नहीं था। किन्तु इस स्थिति में दोनों सन्त भयभीत न हो जाये, अतः निकट आने तक आप ठिठक कर खड़े हो गये। विद्यार्थी सन्तों के निकट आने पर शेर की तरफ स्वयं खडे होकर संकेत द्वारा वनराजाओं को दिखलाया।

कुछ क्षण बीते। मृगेन्द्रों ने महर्षि की महानता को परखा। क्रूरता समता में रूपान्तरित हो गई। 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्याग.' के आदर्श को प्रतिफलित करते हुए चरणारविन्दों में नत-मस्तक होकर वनराजि की ओर वनराजों ने मुख मोड़ लिया कि हे अभय-अद्वेष के पथ पर आरूढ़ साधक ! हे मुनिपुंगव ! हे श्रमणोत्तम ! तेरी साधना का दिव्य

प्रकाश जन-जन को परम कल्याण की ओर गतिशील रहने के लिये प्रेरणादायक हो। तेरी अविचलता विकासोन्मुखी आत्माओं को विकार के कारण उपस्थित होने पर भी अविचलित रहने का सामर्थ्य प्रदान करे। तू धन्य है; तेरी दृढता धन्य है, तेरा साहस धन्य है और तेरे दर्शन कर हम धन्य हैं, अपने सौभाग्य के लिये गर्व है, कृतार्थ हो गये हैं और विजित होकर भी गौरवान्वित हैं।

भवाटवी के भय भी जिन्हें भयभीत नही कर सके, उनके लिये वनाटवी का भय कैसे भयभीत कर सकता था ? अतः सहगामी सन्त-युगल के साथ विहार के पथ पर बढ़ते चरण पुनः मंथरगति से गंतव्य की ओर बढ़ चले। न तो चेहरे पर भय था, न चिन्ता की रेखाए ही ऊभर रही थीं और न जीवन-रक्षा होने की खुशी ही। वहां तो अठखेलियां कर रही थी वीतरागता और समता की अपूर्व प्रभा।

यथासमय विश्रामयोग्य स्थान आया और वहाँ रात्रि-विश्राम करके धर्मदेशना से जन-जन को मुखरित करने के लिये पुनः बढ़ चले।

किसी एक समय की बात है। चरितनायक सन्तों के साथ मरुधरा मारवाड़ के मैदानो में विचरण कर रहे थे। मरुधरा में गांव दूर-दूर बसे हुए हैं और पगडंडियों का तानावाना रेत से व्याप्त होने के कारण अधिकतर दिशा-बोध के सहारे ग्राम से ग्रामान्तर जाना पडता है। लोगों ने कहा कि अमुक गांव पास ही है और सूर्यास्त से पहले-पहले वहां पहुंचा जा सकता है। अतः दिन के तीसरे पहर गंतव्य गांव की ओर विहार कर दिया। अपरिचित होने से रास्ता भटक गये और रास्ता भी लम्बा था। इसलिये आधी दूर पहुंचते-पहुंचते सूर्यास्त हो गया।

सूर्यास्त के बाद विहार न होने की साधु-मर्यादा है अतः सन्तों के साथ एक पेड के नीचे विश्राम हेतु विराज गये। सायंकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आत्मध्यान में लीन हो गये।

सर्पराज भी शांत रहे

ध्यानोपरांत तात्त्विक चर्चा में कुछ समय व्यतीत करने के बाद मार्गजनित शारीरिक थकावट दूर करने के लिये भूमिशयन किया ही था कि कुछ ऐसी आवाज सुनाई दी, जैसे निकट सर्प हो। सोचा जंगल है, इधर-उधर कोई जंगली जानवर होंगे। पास मे अन्य सन्त शयन कर रहे थे अतः उन पर दृष्टि डालकर कपड़े आदि ठीक से ओढा दिये और आपश्री भी चद्दर को ओढ कर पौढ़ गये।

शयनावस्था में कुछ क्षण ही बीते होंगे कि पैरों पर कुछ वजन-सा मालूम हुआ। ऊपर ओढी चद्दर को कुछ हिलाया जिससे वह वजन हट गया और निश्चिंत होकर सो गये और प्रतिदिन की तरह रात्रि के पिछले प्रहर में जागकर स्वाध्याय आदि साधना में रत हो गये। यथासमय दूसरे सन्त भी जागे और उन्होंने भी स्वाध्याय, प्रतिक्रमण आदि किया।

सूर्योदय होने में थोडा-सा विलम्ब था। प्रतिक्रमण, वंदना आदि करने के पश्चात् सब सन्त यथास्थान आपके समक्ष बैठकर अध्ययन करने लगे। यह सब करते हुए भी किसी को यह प्रतीत ही नहीं हुआ कि कोई सर्पराज भी निकट मे स्थित हैं। स्वनिरीक्षण में रत को परनिरीक्षण के लिये अवकाश मिलना असम्भव रहता है।

जैसे ही सूर्योदय हुआ कि समीपस्थ सर्प पर आपकी दृष्टि पड़ी। अन्य सन्तो को भी उसकी ओर देखने के लिये संकेत किया। सर्प अपनी कुण्डली मारे ध्यानस्थ-सा बैठा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि साधना में रत साधुओं के सहवास से वह भी आत्म-समाधिस्थ होने की शिक्षा ले रहा है। आपश्री आदि सन्त प्रतिलेखना को तैयार हुए और वह सन्तों का सत्त्वपरीक्षक करालकाल वहां से रेंगता हुआ अपने बिल की ओर चल दिया। शायद उस समय उसके मन में विचार आया हो कि--स्व-पर-हितकारी, परदुख-कातर, मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ भावना से समृद्ध सन्त-जन 'सर्वभूतहितेरतः' के साकार रूप हैं तो उन्हे सता कर कौन अपने को कलंकित करना चाहेगा !

ऐसे ही और इनसे मिलते-जुलते प्रसंग अनेक हैं। जिन प्रसंगों का यहां उल्लेख किया है, उनसे ही आपकी सेवा-भावना, सरलता, वत्सलता, निर्भयता और आत्मीयता का दिग्दर्शन पर्याप्त रूप से हो जाता है। संक्षेप में कहें तो अपनी कर्तव्यनिष्ठा और सजगता की उपमा आप स्वयं ही हैं।

पुनः गुरुदेव के सान्निध्य में

महाभाग मुनिश्री मोतीलालजी म. सा. के स्वर्गस्थ होने के पश्चात् चरितनायक अपने अन्य तीन सन्तों के साथ जलगांव से विहार करके आचार्यश्रीजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हो गये और आचार्यश्रीजी के साथ ही सं. 1984 का चातुर्मास भीनासर-गंगाशहर में किया।

यह चातुर्मास श्री वाडीलाल मोतीलाल शाह की अध्यक्षता में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस और भारत जैन महामण्डल के अधिवेशन एवं श्री श्वेताम्बर साधुमार्गी जैन हितकारिणी संस्था की स्थापना होने से समाज के इतिहास में तो उल्लेखनीय है ही, किन्तु उसके साथ ही भारत के स्वाधीनता के इतिहास मे भी स्वर्णाक्षरों में अंकित किया जायेगा।

उन दिनों भारत को स्वतन्त्रता देने के बारे में निर्णय करने हेतु लंदन में भारतीय और इंग्लैंड के प्रतिनिधियों के बीच गोलमेज परिषद होने जा रही थी। उसमें भाग लेने के लिये भारतीय प्रतिनिधिमंडल के एक सदस्य के रूप में तत्कालीन बीकानेर राज्य के प्रधानमन्त्री सर मनुभाई मेहता लंदन जा रहे थे। वे आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के दर्शनार्थ एवं भारतीय जनभावना की सफलता के लिये आशीर्वादात्मक दो बोल सुनने के लिये पधारे। उस समय

आचार्यश्रीजी ने उन्हें जो उपदेश दिया था उसमें आपश्री की राष्ट्रहित एवं जनता की भावना का स्पष्ट चित्र अंकित था कि कैसा भी अवसर हो, किन्तु सत्य को सत्य कहने से न झिझकें। स्वतन्त्रता और धर्म एक-दूसरे से जुडे हुए है। पराधीन और अत्याचार-पीडित प्रजा में यथार्थ धर्म का विकास नहीं हो सकता है। धार्मिक और आध्यात्मिक विकास के लिये स्वतन्त्रता अनिवार्य है।

आचार्यश्रीजी के उक्त कथन में भारतीय आत्मा का समवेत स्वर गूज रहा था कि सुख और शान्ति-प्राप्ति के लिये स्वतन्त्र हो जाओ। परतन्त्र प्राणी न तो सुख प्राप्त करने में समर्थ हैं और न प्राप्त का उपभोग करने के अधिकारी हैं।

यह स्मरणीय चातुर्मास अनेक धार्मिक, सामाजिक और आध्यात्मिक विकास के कार्यो के साथ सोत्साह सम्पन्न हुआ।

थली-प्रदेश में दया-दान प्रचार की धूम

थली तेरहपंथियों की रंगस्थली है। वे इसे अपना अभेद्य दुर्ग मानते थे। वे अपने स्वच्छन्द, धर्मविरुद्ध विचारों का धर्म के नाम पर प्रचार-प्रसार करने का इससे अच्छा और दूसरा क्षेत्र नहीं समझते थे। वहां की भोली-भाली जनता धर्म-विरुद्ध बातों को सुनते-सुनते धर्म के शाश्वत सत्य से विमुख-सी हो गई थी। उसकी विवेक-बुद्धि सत्यासत्य का निर्णय करने में कुण्ठित-सी होकर सोचती थी कि साधु महाराज जो-कुछ भी कह रहे हैं, वैसा ही भगवान महावीर ने जीव-दया आदि के बारे में फरमाया है। अपने को तो साधुजी के वचनों को प्रमाण मान लेना चाहिये।

आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. उनके इस अंधविश्वास को देखकर चकित रह जाते थे। आपश्री को इन भावरोग से पीडितों पर दया आती थी और वास्तविकता से परिचित कराने की सद्भावना रखते थे। इसके साथ ही यह भी प्रतीत हो चुका था कि इस किले में प्रवेश करने पर विविध प्रकार की कठिनाइयों और परीषहों को सहना पड़ेगा, लेकिन जब भगवान महावीर ने कठिनाइयों और परीषहों से अपना मार्ग न बदला तो अनुगामी मार्ग-विरत कैसे हो सकते थे ? अतः जन-कल्याण की कामना से प्रेरित होकर आचार्यश्रीजी ने थली-प्रदेश में प्रवेश करने का निश्चय कर मार्गशीर्ष शुक्ला 3 को चरितनायक आदि प्रमुख-प्रमुख 29 सन्तों के साथ चातुर्मास समाप्ति के अनन्तर बीकानेर से थली की ओर विहार कर दिया।

आचार्यप्रवर श्री जवाहरलालजी म. सा. का व्यक्तित्व अनूठा था, दिव्य था। उनकी प्रतिभा असाधारण थी। हृदय को आकर्षित करने वाली ओजस्विता और तर्क की तूलिकाओं से प्रतिपाद्य विषय की साकार तस्वीर अंकित कर देने वाली वाणी के वे धनी थे।

आपश्री ने वैसे तो राजस्थान और मालवा के विभिन्न क्षेत्रों को अपने विहार से पावन किया था। लेकिन राजस्थान का यह भू-भाग अभी तक भी जैन धर्म के यथार्थ सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करने वाले सन्तों के चरणन्यास से वंचित था और जैन धर्म के नाम पर शास्त्र-विरुद्ध मान्यताओं के अनुयायी भी वहां विचरण करने वाले वीतरागी सन्तों को सहन नहीं करते थे।

यद्यपि थली-प्रदेश अनार्य देश नहीं है, तथापि वहां के बहुसंख्यक अपने को भगवान महावीर का अनुयायी कहने में गौरव मानते हुए भी दया, दान, परोपकार, परसेवा आदि भगवान महावीर के सिद्धान्तों में अधर्म मानते हैं। पूज्यश्री इन्हीं मान्यताओं एवं मानवता के लिये कलंक-रूप विचारों का उन्मूलन करना चाहते थे। अतः भगवान महावीर के विहार से प्रेरणा लेकर आपश्री ने सन्त-मण्डली सहित थली-प्रदेश के मुख्य नगर सरदारशहर में पदार्पण किया।

सरदारशहर में आपश्री के प्रभावशाली प्रवचनों एवं दया, दान, परोपकार आदि के सम्बन्ध में भगवान महावीर के सिद्धान्तों की यथार्थ जानकारी देने से जनता में बहुत ही सुन्दर अनुकूल प्रतिक्रिया हुई और शास्त्रविरुद्ध मान्यताओं के भ्रम से मुक्ति पाकर, धर्म के सच्चे स्वरूप को समझकर बहुत-से सज्जनों ने समकित ग्रहण की।

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. आदि सन्तों के सरदारशहर पधारने से तेरहपंथियों में खलबली मच गई थी और प्रतिरोध करने की अनेक योजनाएं बनाई जाने लगीं। मगर खेद है कि उनमें से एक भी ऐसी नहीं थी जो सफल हुई हो और जिसका सभ्य संसार द्वारा अनुमोदन किया जा सके।

साधु-जीवन में आर्थिक या राजनीतिक संकटों के लिये कोई अवकाश नहीं है। लेकिन कभी-कभी विपरीत मनोवृत्ति वाले अज्ञानी लोगों का जमघट अवश्य आत्म-समाधि में विघ्न, विक्षेप और व्याघात उपस्थित कर देता है।

उन दिनों तेरहपंथी संप्रदाय के पूज्य कालूरामजी स्वामी भी सरदारशहर में मौजूद थे। उन्हें आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के ओजस्वी प्रवचनों से अपनी प्रतिष्ठाहानि का भय दिखा और येन-केन-प्रकारेण आचार्यश्रीजी को परेशान करके मैदान मारने का रास्ता अपनाया। लेकिन प्रयास करने पर भी उन्हें सफलता न मिली और 'न्यायात् पथः प्रविचलन्ति पद न धीरा.' धीर-वीर न्याय-मार्ग से विचलित नहीं होते हैं— की उक्ति के अनुसार आचार्यश्रीजी विरोध को विनोद मानते हुए सद्धर्मदेशना के मार्ग पर अग्रसर ही रहे।

तेरहपंथी सरदारों के शहर सरदारशहर को सर करने के पश्चात् पूज्य आचार्यश्रीजी चूरू पधारे। किन्तु चूरू पदार्पण के पूर्व ही आपश्री की कीर्ति वहां पहुच चुकी थी। जब अपनी

शिष्य-मण्डली के सहित आप नगर के निकट पहुंचे तो जनता ने भक्ति-भावपूर्वक अगवानी करके ससमारोह नगरप्रवेश कराया। उन दिनों वहां तेरहपंथियों के माघ महोत्सव की तैयारियां हो रही थीं। सैकड़ो साधु-साध्वियां और हजारों अनुयायी एकत्रित हो रहे थे। यद्यपि वहां भी अनेक प्रकार से उपद्रव करने की चेष्टाएं की गई, किन्तु वे सभी प्रयत्न और चेष्टाएं विफल एवं निरर्थक सिद्ध हुई।

चूरू नगर में आचार्यश्रीजी की ओजस्वी वाणी का गम्भीर प्रभाव पडा। वहुत-से भाई शंका-समाधान करने के लिये सेवा में उपस्थित होते थे और आचार्यश्रीजी आगम-प्रमाणों के साथ उनका सयुक्तिक समाधान करते थे। परिणामतः वहुत-से सज्जन शुद्ध श्रद्धा धारण कर आपश्री के अनुयायी वन गये।

स्वतन्त्र और सफल, यशस्वी चूरू चातुर्मास

एक दिन तात्त्विक चर्चा-विचारणा के बीच चूरू के कतिपय विचारक और धर्म-प्रेमी प्रमुख-प्रमुख भाइयो ने आचार्यश्रीजी से चूरू में आगामी चातुर्मास करने की प्रार्थना की। किन्तु आचार्यश्रीजी समग्र थली प्रदेश में विहार करने के पश्चात् किसी ऐसे स्थान पर चातुर्मास करना उचित समझते थे जहां धार्मिक दृष्टि से विशेष उपकार होने की संभावना हो। अत. वहां के भाइयों की विनती तत्काल स्वीकार न कर सके।

तब उन भाइयों ने अपनी मनोभावना व्यक्त की कि आपको यह तो भली-भांति विदित है कि हमारे घर में भी हमारा कोई समर्थक नही है। लोग हमारा विरोध करने पर तुले हुए हैं और आपने सभी स्थिति परखी ही है। ऐसी स्थिति में आपकी तपस्या ही सफलता का रंग ला सकती है। अतः कदाचित् आपका चातुर्मास होना सम्भव न हो तो अपने जैसे प्रभावशाली सन्तों का चातुर्मास कराने की आज्ञा दीजिये।

चूरू में धर्म-जिज्ञासुओं की अपेक्षा निष्कारण वैर वांधने वालों की संख्या अधिक थी और वे नहीं चाहते थे कि जनता को जैन धर्म के सिद्धान्तों की यथार्थता से परिचित कराने वाले साधु-सन्तों का यहां चातुर्मास हो। वहां अत्यन्त प्रतिभाशाली और शास्त्रज्ञ साधु ही निभ सकता था। अतएव उनके कथन पर गम्भीरता से विचार करते हुए आचार्यश्रीजी की दृष्टि चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. पर गई और विद्वत्ता, शास्त्रीय ज्ञान आदि की प्रौढता को लक्ष्य में रखते हुए चरितनायकजी को चूरू में चातुर्मास करने की आज्ञा फरमाई। इस स्वीकृति से चूरूवासियों को मनचाही मुराद मिल गई थी और उनके हर्ष का पारावार न रहा।

चरितनायकजी तो 'गुरोराज्ञा वलीयसी' अपने जीवन का मूलमंत्र मानते थे और विना ननुनच किये अंगीकार करने में गौरव समझते थे। अतः आचार्यश्रीजी के आदेश को सहर्ष

शिरोधार्य कर लिया। विहार के समय आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने युवाचार्यश्रीजी के साथ विभिन्न प्रकृति वाले सन्तों को चातुमासार्थ भेजा। लेकिन युवाचार्यश्रीजी की व्यवस्थाएँ इतनी बेजोड़ थीं कि उन्होंने बहुत मनोवैज्ञानिक ढंग से उन सन्तों को निभाया और समस्त श्रीसंघ को बतला दिया कि उनकी क्षमता कितनी अद्भुत है। आपश्री के अनुशासन में प्रेम का पुट होता था।

चातुर्मास-काल मे चरितनायकजी की विद्वत्ता, तर्कशक्ति, सरलता आदि अनेक सद्‌गुणों से जनता परिचित हुई। मध्यस्थ जनता ने आपकी महत्ता को समझा। प्रतिदिन हजारों श्रोता आपके तात्त्विक एवं तर्कपूर्ण प्रवचनों का लाभ उठाते थे। आप प्रवचन में शास्त्रीय प्रमाणों एवं मानवीय भावों का विवेचन करते हुए दया-दान के महत्त्व पर प्रकाश डालते थे और जब मध्याह्न में अनेक तत्त्व-जिज्ञासु भाई एवं विद्वज्जन अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त करने के लिये आते तो आपश्री उनके विचारों का प्रमाण-पुरस्सर समाधान करते थे। परिणामतः जिज्ञासु व्यक्ति आपके भक्त बनते गये।

धर्मामृत की वर्षा से चूरू की जनता ने चरितनायकजी को अपने मन-मन्दिर मे आराध्यदेव की तरह प्रतिष्ठित कर लिया था और प्रायः समस्त नगरवासी प्यार और श्रद्धाभरे शब्द 'गणेशनारायण' से सम्बोधित करती थी।

शरीर के प्रति उदासीन : साधना के प्रति सजग

इस चातुर्मास का दो दृष्टियों से महत्त्व है। प्रथम, चरितनायकजी द्वारा स्वतंत्र रूप से चातुर्मास करने और द्वितीय, अन्धश्रद्धा एवं भ्रांतिपूर्ण विचारों से ग्रस्त महानुभावों द्वारा धर्म का यथार्थ बोध प्राप्त किए जाने का श्रीगणेश हुआ था। परिणामतः संवत्सरी के दिन चूरू नगर में लगभग 350 उपवास, पौषध, दया, सामायिक आदि धर्मक्रियाएं गृहस्थों ने की थीं। इसके बाद तो यह धर्माचार की धारा वृद्धिंगत ही होती रही और चरितनायकजी निस्पृह हो तात्त्विक जानकारी देते हुए आध्यात्मिक आनन्द के हिंडोलों मे झूलते रहते थे। शरीर के प्रति भी उतने ही उदासीन थे जितने ऐहिक भोगों के प्रति। इस सम्बन्ध में एक मनोरंजक घटना उल्लेखनीय है।

मोठ, बाजरी, ग्वार थली-प्रदेश का मुख्य भोजन है। चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को यह भोजन बड़े प्रेम से देती, पर घी, दूध, दही संकोचवश नहीं दे पाती कि कहीं महात्माजी नाराज न हो जायें। भक्तजन अपने संकोच से कुछ कह भी नहीं पाते और इधर महात्माजी थे जो मोठ, बाजरी, ग्वार से उदरदरी को भरते हुए जनता को अमृतपान कराते रहते थे।

महात्माजी तो संतुष्ट थे, मगर शरीर, वह तो आखिर जड़—मूर्ख ठहरा। उसे प्रेमरस में पगे हुए अनिर्वचनीय आनन्द की अनुभूति कैसे हो सकती थी ? जड़ में विवेक हो तो वह भी समझे। वह तो अपने स्वार्थ को ही परखता है। अतः इस नीरस भोजन को पाकर रूठ गया। उसने असहयोग का अस्त्र संभाला। मानो चुनौती दे दी कि आप जब मेरी परवाह नहीं करते तो मुझे भी क्या पड़ी है जो मैं अपना सहयोग देता रहूँ। काया कृश हो गई, नेत्रों की ज्योति भी मंद पड़ गई। किन्तु इस शारीरिक असहयोग से मन कृश नहीं हुआ। अन्तर् में निर्बलता नहीं आई, बल्कि आत्मिक तेज और अधिक जाज्वल्यमान हो उठा।

चूरू में गणेशनारायण के रूप में श्रद्धा-भक्ति का ज्वार

सफलता के साथ चातुर्मास समाप्त हुआ और विहार का समय आ पहुँचा। सन्तो ने विहार के लिये पग बढाये कि दृश्य कारुणिक हो उठा। जनता ने उमडते हृदय और अश्रुपूरित आंखों से विदाई दी। सैंकड़ों की संख्या में जनता अपने गणेशनारायण के साथ चल पड़ी।

चूरु से विहार करते हुए चरितनायकजी आदि संत आचार्यदेव के चरणो मे पधारे। युवाचार्यश्री के वन्दन करते ही आचार्यश्री ने उन्हें मंगल आशिषों से अभिषिक्त कर दिया। अपने भावी उत्तराधिकारी की भारी सफलता से आचार्यश्री गद्‌गद थे तो युवाचार्यश्री अपने आराध्य, जीवन-निर्माता आचार्यवर के दर्शन पाकर हर्षोत्फुल्ल थे। कुछ पलों तक आराध्य-आराधक, पूज्य-पूजक, गुरु-शिष्य एक-दूसरे को निर्निमेष दृष्टि से देखते ही रहे ! आखिर आचार्यश्री ने रोमांच को खत्म करते हुए चातुर्मास सम्बन्धी समाचारों के प्रसंग में शारीरिक कृशता और नेत्र-ज्योति की मंदता का कारण भी पूछा। बात दूसरों ने भी सुनी और उडती-उडती चूरू जा पहुंची। जिसे सुनकर वहां के निवासी अपने-आप में अफसोस करने लगे और उससे भी जब उन्हें संतोष नहीं हुआ तो प्रतिनिधिमण्डल बनाकर आप व आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए।

प्रतिनिधिमण्डल ने क्षमायाचना करते हुए पश्चात्ताप के स्वर में अपनी अजानकारी के लिये आपको उपालंभ-सा देते हुए कहा— भगवन् ! चार माह तक आत्मोत्थान के लिये धर्म का सरल, सीधा मार्ग बतलाया, लौकिक जीवन में धर्म-सिद्धान्तों की उपयोगिता आदि बहुत-सी बातें समझाईं, तो एक बात और समझा दी होती। थोडा-सा संकेत भी तो नहीं मिल पाया कहीं से और हम भी संकोचवश अपने-आप कुछ सोच-समझ न सके। हमारी नासमझी का प्रायश्चित्त आपने किया। यह आपकी लोकोत्तर उदारता है, किन्तु हमारे संताप की सीमा नहीं है। आपको जो कष्ट उठाना पडा है, वास्तव में हम ही उसके लिये उत्तरदायी हैं। हमें हमारे प्रमाद के लिये शुद्धि का मार्ग बतलाइये, जिससे कुछ सन्तोष मिले।

चरितनायकजी तो चूरू निवासियों के आध्यात्मिक उत्साह, जिज्ञासा और धार्मिक स्नेहसुधा का पान करके परितृप्त थे। अतः उन्होंने प्रतिनिधिमण्डल को इन बातों की ओर ध्यान न देते हुए उत्तरोत्तर आध्यात्मिक विकास की ओर बढ़ते रहने के लिये समझाया।

लेकिन इन भावों से उन भोले भक्तो का समाधान हुआ या नहीं, किन्तु इतना अवश्य मालूम है कि चूरू की जनता अपने गणेशनारायण को नहीं भुला सकी है और उनके हृदयों में अनेक स्मृतियां आज भी जैसी की तैसी बनी हुई हैं।

आचार्यश्री के साथ पुनः चूरू चातुर्मास : धर्मोद्योत

चूरू निवासियों की तीव्र आकांक्षा थी कि पुनः लाभ-प्राप्ति का मोका मिले। अतः उन्होंने आचार्यश्रीजी की सेवा में चूरू में चातुर्मास करने की अपनी विनती दुहराई। आचार्यश्रीजी समयज्ञ थे। आपश्री ने द्रव्य, क्षेत्र आदि की परिस्थिति को समझकर सं. 1986 का चातुर्मास चूरू में करने की स्वीकृति फरमा दी।

आचार्यश्रीजी ने चरितनायकजी आदि संत-मुनिराजों के साथ चातुर्मासार्थ चूरू में पदार्पण किया। गत वर्ष के चातुर्मास-समय में चूरू निवासियों ने चरितनायकजी के प्रवचनों से चुन-चुनकर अनेक आध्यात्मिक आदर्शो को आत्मसात् किया था और चारितनायकजी द्वारा बोये गये धर्म-श्रद्धा के बीज आचार्यश्रीजी के वाणी-वारिदों की वर्षा से पल्लवित हो उठे। धनतेरस के दिन नगर के अग्रणी और तेरहपंथी समाज के प्रतिष्ठित सज्जन श्री मूलचन्दजी कोठारी ने पूज्यश्रीजी से सम्यक्त्व अंगीकार किया। इस अवसर पर उन्होंने घोषित किया कि मैं सत्य को समझकर यह श्रद्धा ग्रहण कर रहा हूँ। जैन धर्म के सिद्धान्त मानवता का विकास करते हैं। उनमे कभी भी जीवों के प्रति करुणा-दया न करने और दान न देने का उल्लेख नहीं है। इस विषय में मुझे लेशमात्र भी संशय नहीं है। हाँ, अगर किसी को संदेह हो तो पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के सान्निध्य मे आकर शास्त्रार्थ कर ले। अगर मेरा पक्ष पराजित हुआ तो मैं एक लाख रुपये गोशाला के निमित्त दान दूंगा और यदि तेरहपंथी पक्ष पराजित हो जाये तो भले ही वह कुछ न दे। लेकिन किसी ने भी इस चुनौती को स्वीकार करने का साहस नहीं दिखलाया।

उल्लासपूर्ण वातावरण में यह प्रभावक चातुर्मास पूर्ण हुआ। मगसिर कृष्णा 1 को विहार कर थली के विभिन्न क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए आचार्यश्री जवाहर आदि संत-मुनिराज सुजानगढ़ पधारे। उन दिनों वहां तेरहपंथी संप्रदाय के पूज्यश्री कालूरामजी स्वामी विराजते थे और माघ महोत्सव की तैयारियां चल रही थीं। उपस्थित जनता ने आचार्यश्रीजी एवं चरितनायकजी के प्रवचनों का लाभ उठाया और क्रम-क्रम से छापर, पड़िहारा, रतनगढ़,

राजलदेसर आदि थली के विभिन्न क्षेत्रों को अपने विहार से पवित्र किया। थली-प्रदेश में दो वर्ष तक सन्तों का विहार होने से वहां के निवासियो ने अनेक गलतफहमियों और भ्रांत धारणाओं का निराकरण करके जैन धर्म के सिद्धान्तों का सही रूप समझा।

थली-विचरण : ऐतिहासिक उपलब्धि

इस विचरण से जैनेतर लोगों में जैन धर्म के प्रति जो घृणाभाव थे, दूर हो गये। अभिनिवेशी जन-समूह के अलावा प्रत्येक व्यक्ति ने आचार्यश्री, युवाचार्यश्री का पूरा-पूरा लाभ उठाया। दीर्घकालिक अन्तराल के बाद उस विचरण की फलश्रुति देखते हैं तो ज्ञात होता है कि तेरहपन्थियों को स्पष्ट शब्दों में अपने मनगढन्त सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार की हिम्मत नहीं रही। आज प्रवचनों में, चर्चाओं में तथा साहित्य में उन्होंने दूसरा ही मार्ग अपना लिया। जैन सिद्धान्तों का खुले रूप में जो उपहास होता था, वह सदा-सदा के लिये रुक गया, यह युगपुरुष की ऐतिहासिक उपलब्धि है। उन्होंने अपने अनुयायी बनाने के लिये नहीं, वरन् जैन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिये थली मे विचरण किया। वस्तुतः उन्होंने रेगिस्तानी मनों में दया और दान के बीजों का वपन कर जिन-शासन की महान् प्रभावना की। आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री की कठिन साधना का ही प्रभाव कहा जायेगा कि थलियों में, जहां मुनियों के भिक्षा-पात्र में पिल्ले और पत्थर पडते थे, उपसर्ग-परीषह सदैव स्वागत में समुत्सुक रहते थे, वहाँ आज मुनियों के स्वागत में पलक-पॉवडे बिछाये लोग खड़े रहते हैं। मुनियों के निर्विघ्न विचरण एवं चातुर्मास-योग्य क्षेत्र बनाने का श्रेय आचार्यश्री, युवाचार्यश्री को ही है।

इन्हीं दिनों स्थविर तपस्वी मुनिश्री बालचन्दजी म. सा. भीनासर विराज रहे थे। आप काफी दिनों से अस्वस्थ थे। आपकी भावना आचार्यश्रीजी म. सा. के दर्शन करने की थी। इस भावना को जानकर आचार्यश्रीजी म. सा. मार्ग में पड़ने वाले थली-प्रदेश के गांवों को फरसते हुए भीनासर पधारे और तपस्वीजी म. सा. को दर्शन दिये। तपस्वीजी म. सा. की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन निर्बल बनती जा रही थी और उन्होंने ज्येष्ठ कृष्णा 4 को रात्रि के करीब 9 बजे इस भौतिक देह का परित्याग कर दिया।

ब्यावर की ओर

साधु-सन्तों की ज्ञानमयी वाणी के श्रवण के लिये जनसाधारण में एक अनूठी लालसा रहती है। लेकिन सन्तों का पैदल विहार होने से अल्पसमय में सभी स्थानों पर पदार्पण होना सम्भव नहीं है। समयानुसार जिस-किसी भी क्षेत्र मे उनका पदार्पण हो जाता है तो वहां की जनता अपना अहोभाग्य मानती है।

थली-प्रदेश में पूज्य आचार्यश्रीजी म. सा. आदि सन्तों के विहार के पहले से ही बीकानेर श्रीसंघ अपने यहां चातुर्मास करने के लिये विनती करता आ रहा था। अतः सन्तों का पदार्पण होते ही श्रीसंघ को अपनी आशा के सफल होने के आसार दिखाई देने लगे और अपनी विनती को दुहराया। जिस पर आचार्यश्रीजी म. सा. ने आगामी चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

ब्यावर श्रावक संघ भी अपने यहां आचार्यश्रीजी का चातुर्मास कराने के लिये लालायित था और आचार्यश्रीजी भी वहां पर योग्य सन्तों के चातुर्मास होने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे। अतः परिस्थिति को देखकर एवं चूरू चातुर्मास की सफलता से संतुष्ट होकर आचार्यश्रीजी म. सा. ने चरितनायकजी का ब्यावर में चातुर्मास होने की स्वीकृति दे दी।

इस स्वीकृति से ब्यावर संघ बहुत ही प्रमुदित हुआ और जैसे-जैसे चातुर्मास का समय निकट आता जा रहा था, वैसे-वैसे आपश्री के पदार्पण की बाट देखी जाने लगी।

यथासमय चातुर्मास हेतु चरितनायकजी ने अन्य मुनिराजों के साथ ब्यावर नगर में पदार्पण किया। जनता ने बडे उत्साह एवं समारोह के साथ स्वागत किया। आपके प्रवचनों और विद्वत्ता से जनता बहुत ही प्रभावित हुई और साध्वाचार के अनुसार चर्या की महानता के दर्शन किये। तात्त्विक चर्चा और शंका-समाधान के समय आपके पांडित्य और सीधी, सरल भाषा में सत्य-तथ्यों को स्पष्ट करने की अनोखी शैली जहां जनसाधारण को प्रभावित करती थी, वहीं विद्वानों को विद्वत्ता परखने का भी मौका देती थी।

चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ संपन्न हुआ। ब्यावर संघ वैसे भी धार्मिक आचार-विचारों के प्रति श्रद्धावान संघ है, लेकिन इस चातुर्मास-काल में ज्ञान-साधना के साथ-साथ अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने एकान्तर, बेला, तेला, अठाई, मासखमण आदि करके तप-साधना की प्रभावना की। विभिन्न लोककल्याणकारी कार्यों के निमित्त दान देने में तो सभी तत्पर ही रहते थे।

चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् आप राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों को अपनी ज्ञानगंगा के प्रवाह से हरा-भरा बनाने लगे। आप जिस क्षेत्र में पदार्पण करते, उससे पहले ही आपकी कीर्ति वहाँ पहुंच जाती थी और भव्यजन आपके उपदेशों का पान करने के लिये उत्सुक रहते थे। आप जहाँ भी पधारते, वहीं एक अनूठे वातावरण के दर्शन होते थे। किसी से कुछ लेने की आकांक्षा तो थी नहीं जिससे राग-द्वेष पैदा हो। सन्तों का उद्देश्य तो निरीहवृत्ति से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए स्वयं सन्मार्ग पर चलना और दूसरों को भी उसी मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते हुए आध्यात्मिक विकास करना है। इसी में साधु की साधना का आदर्श प्रगट होता है।

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. आदि सन्त बीकानेर चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पुनः थली-प्रदेश के सरदारशहर, रतनगढ़ आदि-आदि मुख्य-मुख्य नगरों में धर्मदेशना देते हुए पंजाब की ओर पधार गये और राजस्थान चरितनायकजी की विहार-भूमि बन गया।

माता के नाम पे पशुबलि बन्द कराई

राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में श्रमण संस्कृति का संदेश मुखरित करते हुए चरितनायकजी ने थली-प्रदेश में पुनः पदार्पण किया। थली के भव्यजन आपकी ज्ञानदेशना का अधिकाधिक संख्या में लाभ उठाते थे। अपने-अपने क्षेत्र में पदार्पण के लिये विनतियां करते और आपश्री भी समयानुसार सभी प्रदेशों को स्पर्श करने की भावना रखते थे। इन्हीं दिनो फलौदी संघ आपके चातुर्मास के लिये विनती कर रहा था। अतः सं. 1988 के चातुर्मास हेतु फलौदी की ओर विहार कर दिया।

विहार-मार्ग में एक ग्राम ऐसा भी आया जहां माता के स्थान पर अन्धश्रद्धा के वशीभूत होकर धर्म के नाम पर अनेक मूक पशुओं की बलि होती थी। धर्म के नाम पर होने वाली इस हिंसा और जनसाधारण की भावना से आपका हृदय द्रवित हो गया। जहां हत्या का ऐसा तांडव नृत्य होता हो और निर्दयता का वास हो, वहां सन्त पुरुषों को शान्ति नहीं मिल सकती है। उनका हृदय कारुणिक हो जाता है। प्राणिमात्र में मैत्री, करुणा, दया भावना को विकसित देखने वाले ऐसे क्रूर कृत्यों को देखकर खेद-खिन्न हों तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है।

चरितनायकजी मानवता के चितेरे थे और हृदय मानवीय भावनाओं से ओत-प्रोत था। आपसे यह दृश्य–मूक पशुओं का कष्ट–देखा नहीं गया। उनकी यह दुर्दशा देख आप विचारने लगे कि मनुष्य–सृष्टि का राजा–इतना घोर स्वार्थी है ? उसके विवेक और बुद्धि का क्या यही सही उपयोग है ? यह मूर्खता जिसमें भरी हुई है, वह मनुष्य राक्षस से किस बात में कम है ?

बलि के नाम पर मारे जाने वाले इन मूक पशुओं की रक्षा के लिये आपका हृदय उमड़ पड़ा और शक्य उपाय सोचने लगे। अतः अन्धश्रद्धालुजनों के बीच आपने अहिंसा धर्म पर प्रवचन फरमाते हुए बतलाया कि प्रभु की जय इसलिये कहते हैं कि हम उसके प्रति वफादार बन सकें। प्रभु के प्रति वफादारी का अर्थ है कि निश्छल साधना की जाये और इस साधना का प्रमुख रूप है कि इस सृष्टि में हम समानता की स्थिति पैदा करें। फिर यह भेदभाव और विषमता क्यों ? अतः परमात्मा की जय बोलते हुए इस सृष्टि में उसके प्रति वफादार रहने का एक ही मार्ग है और वह है अहिंसा का मार्ग। इसीलिये सभी धर्मों में 'अहिंसा परमो धर्मः'- अहिंसा को सर्वश्रेष्ठ धर्म कहा है। अहिंसा को सभी धर्म मान्यता देते हैं। जैन धर्म मान्यता ही

नहीं देता, किन्तु घोषित करता है कि 'अहिंसानिउणादिट्ठा, सव्वभूएसु संजमो'। उन तीर्थंकरों ने सर्वप्राणियों के प्रति संयम के रूप में निपुण अहिंसा का सर्वोत्तम धर्म देखा। प्रत्येक प्रवृत्ति इतनी यतना से होनी चाहिये कि वह किसी भी प्राणी को तनिक-सी भी पीड़ा देने वाली न हो।

अतएव मेरा आप लोगों से कहना है कि यदि आप अपने-आप को परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप से अहिंसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है जिसके द्वारा आत्म-समानता यानी परमात्म-वृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।

इसी प्रसंग में हिंसा से प्राप्त होने वाले दुःखों और अहिंसा से मिलने वाले सुखों का विशद वर्णन करते हुए बतलाया कि विश्व का प्रत्येक प्राणी सुख चाहता है। आप लोग जो-कुछ भी करने आते हैं, वह सुख के लिये ही करते हैं। लेकिन सुख की प्राप्ति दूसरे का नाश करके नहीं हो सकती है। मृत्यु किसी को भी प्रिय नही है, सभी जीवित रहना चाहते हैं। आप इन मूक प्राणियों की आंखों में देखो। वे आपसे अभय चाहते हैं। उन्हें जीने की इच्छा है और इसीलिये बलि की वेदी पर चढ़ने की अपेक्षा पीछे हटने के लिये छटपटाते हैं। उनकी सिहरन हृदय को झकझोर देती है। यदि आप सुख चाहते हैं तो दूसरों को भी सुख पहुंचाओ। आम का फल बोने से आम पैदा होगा, न कि बबूल के बोने से।

यह तो आप जानते हैं कि देवी सबकी माता है। माता वात्सल्य, प्रेम की दायिनी है। वह अपने पुत्रों में किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करती। उसकी गोद में सभी को एक-सा स्थान प्राप्त है। वह अपनी अमीदृष्टि से सभी को सराबोर करने में ही सुख अनुभव करती है। अतः आप लोग माता के कुछ-एक पुत्रो को उसी के नाम पर मार कर उसके विरुद को कलंकित मत करो। इस कार्य से उसे दुःख होता है। आप मातृ-भक्त हैं, इसलिये जिस कार्य से उसे सुख मिले, वैसा कार्य करने का ध्यान रखें।

आपके उपदेशामृत का जनता पर गहरा प्रभाव पडा। बलि देने के लिये आने वालों के हृदय करुणा से आप्लावित हो उठे। धर्म की यथार्थता ज्ञात होते ही सरलपरिणामी अपने कृत्य पर पश्चात्ताप करने लगे। मन का मैल आंखों के द्वारे झर-झर झरने लगा। हृदय ने कुछ हलकापन अनुभव किया और अपने-आप में शांति पाकर तत्काल मूक पशुओं की हत्या करने का विचार त्याग दिया और जीवनपर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा कर ली कि ऐसा कुकृत्य न तो हम करेंगे और न दूसरे को भी करने देंगे। भविष्य में वहाँ पर मिठाइयाँ बाँटी जाने लगी।

सन्तों का माहात्म्य अपूर्व है। उनका एक बोल पत्थर को भी पिघला देता है। दुर्दान्त-से-दुर्दान्त और क्रूर-से-क्रूर प्राणी भी दृष्टिनिपात मात्र से शांत और सरल हो जाते हैं। एक क्षण पहले जिस धर्मस्थान में रौरवता का नंगा नृत्य होने वाला था, वहां क्षण मात्र में दया,

अमारि की सुखद लहरे हिलोरें लेने लगीं। अहिंसा की घोषणा से देवी का जगज्जननी नाम सार्थक हो गया।

तिवरी में पारस्परिक वैमनस्य मिटाया

वहां से विहार कर क्रमश: अनेक स्थानों को पदार्पण से पवित्र कर जब आप तिवरी पधारे, तब तिवरी आपस के वैर-विरोध से तीन-तेरह हो रहा था। वैर-विरोध में समस्त ग्रामवासी रचे-पचे हुए थे। वहां के अग्रवाल, ओसवाल, माहेश्वरी, ब्राह्मण आदि विभिन्न जातीय सज्जनो में किसी सामाजिक विषय को लेकर पारस्परिक संघर्ष चल रहा था। प्रत्येक एक-दूसरे को नीचा दिखाने की ताक में रहता था और मौका मिलने पर अपनी ज्वाला को शांत करने से नहीं चूकता था। सभी एक-दूसरे की जान के ग्राहक बने थे और इसी संघर्ष को लेकर हजारों रुपयों का पानी कर चुके थे।

ऐसे समय में चरितनायकजी का पदार्पण तिवरी के लिये वरदान सिद्ध हुआ। आपने आपस का यह वैमनस्य मिटाने के लिये उपदेश देना प्रारम्भ किया। जिससे निवासियों के रूक्ष हृदयों में ऋजुता का संचार हुआ और मान की कलुषता शनैः-शनैः बहने लगी। दृष्टि के पलटते ही निवासियों को अपने किये पर पश्चात्ताप होने लगा। लोगों के हृदय शांत और निस्ताप हो गये। उनके हृदयों में एक हूक उठी कि क्या अपनों से ही विरोध करना हमें शोभा देता है ? एक ही भूमि में खेले हैं, कूदे हैं और बड़े हुए हैं और उसी को कुरुक्षेत्र बनाना हमारे लिये लज्जा की बात है। सोचते-सोचते सभी एक निर्णय पर आये कि इन महापुरुष के चरणों में हम अपने नये जीवन का श्रीगणेश करें, जो हो गया है, उसे अब भूल जायें।

प्रतिदिन की तरह चरितनायकजी का प्रवचन हो रहा था कि अकस्मात् सभी ग्रामनिवासी एक साथ खडे होकर आपसे प्रार्थना करने लगे कि भगवन् ! हम भूले थे, आपके उपदेशों ने सुमार्ग का दर्शन करा दिया है। हम अपनी द्वेषभावना के लिये शर्मिन्दा हैं। अब आप जो आज्ञा देंगे, हमें स्वीकार है। आपके उपदेश से एक नया प्रकाश पाया है और उसी के सहारे हम सुमार्ग पर बढ़ते रहेंगे। अब हमारा आपस में कोई विरोध नहीं है। हमारी गलती थी कि हम एक-दूसरे के विचारों को नहीं समझ सके।

चरितनायकजी के उदार एवं सकरुण हृदय का ही यह प्रभाव था कि सुबह के भूले शाम को अपनी ठौर लौट आये। विवाद और विरोध का कीचड़ बह गया और शुद्ध प्रेम-नीर मे सभी गोते लगाने लगे एवं 'अहिंसा प्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः', इस विधान की सत्यता प्रमाणित हो गई।

फलौदी चातुर्मास में अपूर्व धर्मोद्योत

विहार-मार्ग में इसी प्रकार के अनेक उपकार करते हुए, सामाजिक कुरीतियों, आपसी मनमुटाव आदि को मिटाते हुए आप सं. 1988 के चातुर्मास हेतु फलौदी पधार गये। आपके उपदेशामृत के प्रवाह से फलौदी ने अपना फलोदधि नाम सार्थक कर दिया।

आप हित-मित भाषा में आध्यात्मिक विकास हेतु विवेचन करते और उसका स्थानीय, आस-पास की जनता लाभ उठाती थी। आपके प्रवचनों में सामाजिक कुरूढ़ियों और आत्मोन्नति के साधनों के बारे में विशेष रूप से संकेत रहता था। कुरूढियों के सम्बन्ध में आपके विचार थे कि ये जीवन को गंदा बनाये हुए हैं, जिससे धार्मिकता पनपने नहीं पाती है। जिस समाज की तह में कुरूढ़ियां चट्टान की भांति जमी हों, वहां धर्म का अंकुर पैदा नहीं हो सकता है। जब तक इनको उखाड़ा न जायेगा, तब तक धर्मवृद्धि के लिये किये जाने वाले प्रयत्न प्रायः निरर्थक हो सकते हैं।

आपकी सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी को श्रवण करने के लिये श्रोताओं की आशातीत उपस्थिति हो जाती थी। जो-कुछ भी आप विवेचन करते थे, वह सुनने वालों को अभूतपूर्व प्रतीत होता और सभी लाभ उठाते थे। अनेकों ने आत्मशुद्धि के लिये व्रत-प्रत्याख्यान लेने के साथ-साथ समाज में स्वस्थ वातावरण बनाने के लिये कुरूढ़ियों का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया।

आपके इस चातुर्मास का सभी क्षेत्रों पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ा। समाज ने आपके लिये जो धारणा बना रखी थी और प्रशंसा सुनी थी, उससे भी बढ़कर समझने व देखने को मिला। अगाध सैद्धान्तिक ज्ञान, गूढ-गंभीर तात्त्विक विचारों को सीधी-सादी भाषा में समझाने वाली वक्तृत्व शैली, साधु-मर्यादा का यथावत् पालन आदि का इतना प्रभाव पड़ा कि सभी आप में आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के ही दर्शन करते थे। ऐसा प्रतीत होता था कि आचार्यश्रीजी ही चातुर्मास हेतु यहां विराजमान हैं।

माउड़ियॉ गांव में धर्म के नाम पे पशुवध बंद हुए

चातुर्मास पूर्ण हुआ। दूर-दूर के क्षेत्रों और स्थानीय निवासियों को यह समय कब बीता, कैसे बीता, कुछ मालूम ही नहीं पड़ा। लेकिन साधु-आचार के अनुसार चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर जब विहार का अवसर आया तो आपने अन्तःकरण को दहला देने वाला एक संवाद सुना। किसी ने आपको बतलाया कि यहीं पास के 'माउड़ियां' ग्राम में प्रतिवर्ष मेला होता है। उस मौके पर देवी के स्थान पर सामूहिक रूप में 500 और व्यक्तिगत रूप में करीब 1500 पशु धर्म के नाम पर मौत के घाट उतारे जाते हैं।

इस भीषण संवाद से आपके सुकोमल हृदय को गहरा आघात पहुंचा। इस प्रकार के कृत्य और अन्धविश्वास की कल्पना-मात्र से आपका अन्तःकरण करुणार्द्र हो गया। आपने सोचा– हा दुर्दैव ! हा मानव की दानवता ! आध्यात्मिक मूल्यो की अन्तिम दशा आन्तरिक ईमानदारी और आन्तरिक जीवन के संस्कार द्वारा प्राप्त की जाती है ? इसी को धर्म कहते हैं ? इसकी सच्ची आवाज एक ही है और वह है मानवीय दया और करुणा की, अनुकम्पा की, प्रेम की और हम सब उस आवाज को अवश्य ही सुन सकते हैं। जब तक हम बहिर्मुखी जीवन बिताते है और अपनी आंतरिक गहराइयों की थाह नहीं लेते, तब तक हम जीवन के अर्थ अथवा आत्मा को नहीं समझ सकते। जो लोग ऊपरी सतह पर जीते है, उन्हे स्वभावत. ही आत्मिक जीवन में कोई श्रद्धा नहीं होती है। यदि किसी को महान बनना है तो सेवा, मैत्री, परदुःखकातरता आदि द्वारा बन सकता है। दुर्बलों की सहायता करने का दायित्व सम्पूर्ण सभ्य जीवन का आधार है।

हिंसा अधर्म है और अधर्म ही रहेगी। लेकिन जो इस तथ्य को भूलकर आत्मिक आवाज को क्षीण कर देते हैं, उनकी विचारशक्ति और आत्मा पर अन्धकार छा जाता है और वे उसके विरुद्ध संघर्ष करने की अपनी इच्छा को भी क्षीण कर लेते हैं।

अतएव मानवजाति के इस कलंक को मिटा देने का प्रयत्न करना मानवता की सबसे बडी सेवा होगी और मारे जाने वाले पशुओं के प्रति अनुकम्पा होगी। धर्म के नाम पर होने वाले ऐसे हत्याकाण्ड मानवीय विवेक के दिवालियेपन को सूचित करते हैं। निरपराध मूक प्राणियों के प्रति भयंकर अत्याचार करने वाला मानव किस आधार पर सभ्य, शिष्ट और समझदार होने का दावा कर सकता है ?

मानव देवी-देवताओ के नाम पर भोले-भाले प्राणियों की हिंसा का खेल खेल रहा है। स्वार्थ और दैविक अनुग्रह की अन्धश्रद्धा इस पाप की जड है। धार्मिक अविवेक और स्वार्थसाधना के निमित्त मनुष्य ने न जाने कितने समुद्र लाल किये हैं और कितनी जमीन को मांस व उसके लोथड़ों का खाद दिया है। मगर अहिंसा हिंसा को परास्त करके ही रहेगी और व्यापक नीति की प्रतिष्ठा होगी। उसी दिन मानव-जाति का समग्र प्राणिजगत् में श्रेष्ठ होने का दावा सच्चा माना जायेगा।

फलौदी और माउड़ियाँ की अहिंसाप्रेमी भक्तमण्डली आपके प्रयत्नों की सफलता के लिये प्राणपण से जुट गई। आपने बडे ही हृदयस्पर्शी, प्रभावशाली ढंग से अहिंसा की व्याख्या की, जिसका इतना और ऐसा गहरा प्रभाव पड़ा कि क्रूरता से पाषाण बने हृदय पिघल गये। उन्हें अपने दुष्कृत्य के प्रति, अपने प्रति ग्लानि उत्पन्न हुई कि क्या हम मनुष्य हैं और यही हमारी मनुष्यता है ? हम कब तक धर्म के नाम पर प्राणिहत्या से अपने हाथ रंगते रहेंगे ? हम

अपने किये का परिणाम कब, क्या, कैसा पायेंगे, पता नहीं, किन्तु हमारी संतान की अवश्य ही बदतर स्थिति होगी। अतः धर्म को कलंकित करने वाली इस हिंसा से विरत होने में ही हमारा कल्याण है।

हिंसकों के हृदय-परिवर्तन की प्रक्रिया में आपके प्रयत्न सफल हुए। ग्राम के समस्त निवासियों ने स्वेच्छापूर्वक इस हिंसा को बंद कर देने का निर्णय किया। इससे तत्काल ही 2000 जीवों को अभयदान मिलने के साथ-साथ मनुष्यता का एक कलंक धुला और अहिंसा की प्रभावना हुई।

'माउड़ियाँ' नाम ही संकेत करता है कि उस ग्राम में माता--देवी--की विशेष रूप से मान्यता होगी। आपके उपदेशों एवं फलौदी आदि आस-पास के गांवों से मेले में आगत जनता तथा माउड़ियाँ के विवेकशील निवासियों की सूझ-बूझ से वहां अहिंसा माता की जो प्राण-प्रतिष्ठा हुई, उससे माउडियाँ ग्राम वास्तव में माउडियाँ नाम का अधिकारी बन सका।

बृहत्साधु-सम्मेलन के पहले

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने दिल्ली चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् जमनापार के क्षेत्रों की ओर विहार किया और भिवानी, हांसी, हिसार, राजगढ़ आदि ग्रामों व नगरों को धर्मदेशना का लाभ देते हुए पुनः राजस्थान के चूरू नगर में पधारे।

इन दिनों किसी केन्द्रस्थान में श्रावकों द्वारा समस्त स्थानकवासी संत-मुनिराजों का सम्मेलन कराने के लिये प्रयत्न किये जा रहे थे। इसके लिये श्रावकों ने विभिन्न साधु-मुनिराजों के पास जाकर विचार-विमर्श कर लिया था। एक प्रकार से बृहत्साधु-सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी। अतः आचार्यश्रीजी ने साधु-सम्मेलन और समाचारी आदि आवश्यक विषयों पर विचार करने के लिये अपने नेश्राय के साधु-मुनिराजों को नागौर में एकत्रित होने का आदेश दिया।

तदनुसार चरितनायकजी अपने साथी सन्तों के साथ यथासमय नागौर पधार गये। उस समय नागौर में आचार्यश्रीजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोड़ीलालजी म. सा., मुनिश्री चांदमलजी म. सा., मुनिश्री हर्षचन्दजी म. सा. आदि-आदि सम्प्रदाय के मुख्य-मुख्य सन्त एकत्रित हुए। उनके सामने आचार्यश्रीजी म. सा. ने अपने द्वारा बनाई गई 'श्री वर्धमान संघ' की योजना रखी और तत्सम्बन्धी विचार-विमर्श किया।

मुनिमण्डल की विचारगोष्ठी के अवसर पर जोधपुर श्रीसंघ आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु आचार्यश्रीजी की सेवा में आया। जिस पर स्थिति को देखकर आचार्यश्रीजी ने आगामी (सं. 1989 का) चातुर्मास जोधपुर मे करने की स्वीकृति फरमाई और

नागौर से गोगोलाव आदि मार्ग में पडने वाले ग्रामों में धर्मोपदेश देते हुए चरितनायकजी आदि 13 सन्त-मुनिराजों के साथ आषाढ शुक्ला 1 को जोधपुर पधारे।

चातुर्मास-समाप्ति के सन्निकट कार्तिक शुक्ला 11 को प्रमुख-प्रमुख श्रावको का एक शिष्टमण्डल अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन के बारे में विचार-विमर्श करने एवं सम्मेलन में पधारने की विनती के साथ आचार्यश्रीजी म. सा. की सेवा मे उपस्थित हुआ। शिष्टमण्डल से सम्मेलन के बारे में विशदरूप से विचार-विमर्श करके आचार्यश्रीजी ने उक्त अवसर पर स्वयं या अपने सन्तों के प्रतिनिधिमण्डल के अजमेर पहुंचने के भाव दर्शाये।

अजमेर में होने वाले साधु-सम्मेलन में सम्मिलित होने से पहले पुनः एक बार आचार्यश्रीजी म. सा. ने तत्काल अपने सम्प्रदाय के सन्तों का सम्मेलन कर लेने की आवश्यकता अनुभव की और इसके लिये ब्यावर को उपयुक्त स्थान समझकर सभी सन्तों को ब्यावर पहुंचने के लिये समाचार भिजवा दिये।

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्रीजी म. सा. के ब्यावर पधारने के पूर्व 42 सन्तों का वहां पदार्पण हो चुका था। कुछ दिनों में 3 संतो के और आने से कुल मिलाकर 45 सन्त हो गये। उनमें चरितनायकजी के अतिरिक्त मुनिश्री मोडीलालजी म. सा., मुनिश्री चांदमलजी म. सा., मुनिश्री हरखचन्दजी म. सा., मुनिश्री गब्बूलालजी म. सा. (बड़) आदि सन्त प्रमुख थे।

आचार्यश्रीजी म. सा. ने उपस्थित सन्त-मुनिराजों से सम्मेलन के सम्बन्ध मे एवं अन्यान्य विषयों पर विचार कर सम्मेलन में अपने सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व करने के लिये पांच मुनिराजो का मण्डल निर्वाचित किया, जिसके चरितनायकजी म. भी एक सदस्य थे।

प्रतिनिधिमण्डल के नामों का निश्चय हो जाने के बाद भी मुनिराजों को यही योग्य प्रतीत हुआ कि प्रतिनिधिमण्डल की अपेक्षा आचार्यश्रीजी का सम्मेलन में पधारना उचित होगा। अतः विनती की कि सम्मेलन में आपका पधारना उचित होगा। अतः सन्तों के आग्रह को देखकर आचार्यश्रीजी म. सा. ने सम्मेलन में पधारने का निश्चय कर लिया।

बृहत् साधु-सम्मेलन अजमेर में

चतुर्विध संघ की धार्मिक स्थिति की सुव्यवस्था के लिये किया जा रहा यह महान आयोजन –बृहत्साधु-सम्मेलन– सं. 1990, चैत्र शुक्ला 10, दि. 5 अप्रैल, 1933 को अजमेर मे प्रारम्भ हुआ।

इसमें 26 सम्प्रदायों के 240 सन्त सम्मिलित हुए। चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. आदि पांच सन्तों के साथ आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. भी 5 अप्रैल, 1933 को प्रातः अजमेर पधार गये।

प्रारम्भिक औपचारिकताओं की पूर्ति होने के पश्चात् सम्मेलन प्रारम्भ हुआ। इसमें साधु-समाचारी आदि-आदि श्रमण वर्ग से सम्बन्धित विषयों पर दि. 5 अप्रैल से 27 अप्रैल, 33 तक चर्चा-वार्त्ता होकर कुछ निर्णय तो अवश्य लिये गये लेकिन चतुर्विध संघ की धर्मकारिणी की सुव्यवस्था हेतु मुनिराजों में उत्साह दिखाई न देने से सम्मेलन का उद्देश्य सफल न हो सका।

चर्चा-वार्त्ता के प्रसंग में आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने भी अपनी 'श्री वर्धमान संघ योजना' प्रस्तुत की। जिसमें मुख्य रूप से सभी संप्रदायो का एकीकरण करके एक आचार्य के नेतृत्व में शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त, विहार आदि की व्यवस्था करने का आशय व्यक्त किया गया था। यद्यपि सभी सन्तों द्वारा योजना का हार्दिक स्वागत भी किया गया और सिद्धान्त रूप में मान्य भी की गई, लेकिन मतैक्य न हो सकने और कार्यान्वयन के प्रति असमर्थता व्यक्त करने से योजना को मूर्तरूप नहीं दिया जा सका।

विभाजित सम्प्रदायों का एकीकरण

चतुर्विध संघ में पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय अपनी संयम-साधना और विद्वत्ता के कारण सम्माननीय मानी जाती है। लेकिन पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म. सा. के समय में कुछ-एक कारणों से सम्प्रदाय के दो विभाग हो गये थे और पृथक् होने वाले सन्तों ने मुनिश्री मुन्नालालजी म. सा. को अपना आचार्य बना लिया था। इन दोनों विभागों का एकीकरण करने के लिये समय-समय पर किये गये प्रयत्न सफल नहीं हुए।

लेकिन दोनो विभागों का एकीकरण करने के लिये प्रयत्न करने वाले हतोत्साह न होकर अपने प्रयत्नों में लगे रहे। चतुर्विध संघ इस सम्प्रदाय में अनैक्य देखने के लिये उत्सुक नहीं था और चाहता था कि श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये तत्पर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय पुनः एक हो जाये।

वृहत्साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री हेमचन्दभाई रामजीभाई मेहता की अध्यक्षता में श्री अ. भा श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस का नौवां अधिवेशन भी अजमेर मे हो रहा था। अतः इन आयोजनों के कारण चतुर्विध संघ के प्रमुख-प्रमुख सन्त-मुनिराजों, गणमान्य श्रावकों के अतिरिक्त आबाल-वृद्ध भाई-बहिन एकत्रित हुए थे। इन सभी की भावना थी कि इस अवसर का लाभ उठाकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय का एकीकरण कराने के लिये प्रयत्न किये जायें।

चतुर्विध संघ की भावना को देखकर एकता के लिये प्रयत्न करने वालों के द्वारा साधु-सम्मेलन में एकता का प्रश्न प्रस्तुत किया गया। पहले किये गये प्रयत्नों की समीक्षा करने के

प्रसंग में प्रश्न उठा कि यह कैसे सम्भव हो ? विचार-विमर्श करके निर्णय किया गया कि पहले रतलाम में आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. एवं पूज्यश्री मुन्नालालजी म. सा. के बीच हुए वार्तालाप व निश्चय का विहंगावलोकन करने के लिये यहां पधारे हुए सन्तों में से पंच मुकर्रर कर दिये जायें और उनके निर्णय को दोनों पक्ष स्वीकार करें।

इसी भूमिका पर एकीकरण के लिये प्रयास किये गये और निर्णय के लिये निम्नलिखित मुनिराज पंच नियुक्त हुए–

1. कविवर्य श्री नानचन्दजी म. सा. 2. मुनिश्री मणिलालजी म. सा. 3 शतावधानी मुनिश्री रत्नचन्दजी म. सा. 4. आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म. सा. 5. पंजाबकेसरी युवाचार्यश्री काशीरामजी म. सा.।

पंच मुनिवरों ने एकता के सम्बन्ध में अभी तक किये गये प्रयत्नों आदि के बारे में मंत्रणा और विचारणा करने के पश्चात् सं. 1990, वैसाख कृष्णा 8, दि. 17.4.33, सोमवार को अपना निर्णय दिया। निर्णय इस प्रकार है–

आज रोज दोनों पक्षों के भविष्य का फैसला पंच निम्न प्रकार से देते हैं–

1. मुनिश्री गणेशलालजी म. को युवाचार्य पद पर नियत करे।
2. मुनिश्री खूबचन्दजी म. को उपाध्याय पद पर नियत करें।
3. अब से जो नये शिष्य हों, वे युवाचार्य की नेश्राय में रहें।
4. भविष्य के धाराधोरण दोनों पूज्य मिलकर बांधें।
5. पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की सम्प्रदाय के चौमासे ठहराने की और दोषशुद्धि करने की सत्ता दोनों पूज्यों की हयाती तक दोनों पूज्यों की रहेगी और एक आचार्य रहने पर एक आचार्य की होगी।
6. फैसला मिलने के साथ ही परस्पर बारह संभोग खुले करे।

द. अमोलक ऋषि   द. मुनि रत्नचन्द   द. मुनि मणिलाल

द. मुनि नानचन्द्र   द. मुनि काशीराम

उक्त निर्णय को स्वीकृत करते हुए आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने फरमाया कि– 'फैसला मंजूर है। अमलदरामद धाराधोरण बनाकर किया जायेगा।'

पूज्यश्री मुन्नालालजी म. सा. ने फरमाया कि– 'फैसला मंजूर है।'

इस निर्णय की बृहत्साधु-सम्मेलन में उपस्थित सन्त-मुनिराजों, श्रावकों आदि सभी ने अनुमोदना की और हृदय उल्लास से भर गये। बहुत दिनों से जो प्रश्न समग्र संघ के लिये चिन्ता का कारण बना हुआ था, उसका समाधान होने से सभी ने साधु-सम्मेलन की आंशिक सफलता मानी और सराहना की।

समस्त स्थानकवासी समाज के इतिहास में यह एक गौरवशाली कार्य हुआ था और उससे चरितनायकजी की महानता ही सिद्ध होती है कि पूज्यश्री हुक्मीचदजी म. सा. की संप्रदाय की दो धाराओं ने आपको अपना केन्द्रबिन्दु मानकर एकीकरण कर लिया।

एकता विषयक निर्णय हो चुका था और उसके कार्यान्वयन के बारे में सम्मेलन के अवसर पर दोनों पूज्यों के बीच विचार-विमर्श भी हुआ। किन्तु उसमें कुछ गत्यवरोध पैदा हो जाने से उपस्थित जनसमूह में एकता के बारे में गलतफहमियां पैदा होने लगीं। अतः उपस्थिति को वास्तविक स्थिति की जानकारी देने के लिये दि. 24.4.33 को प्रातः 8 बजे *निम्नलिखित 17 सज्जनों का एक शिष्टमण्डल ममैयों के नोहरे में विराजित मुनिराजों की सेवा* में उपस्थित हुआ–

1. श्री हेमचन्दभाई मेहता, 2. सेठ श्री अचलसिंहजी, 3. श्री वेलजीभाई लखमसी नपु, 4. दी. ब. श्री बिशनदासजी, 5. रा. सा. श्री मोतीलालजी मूथा, 6. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, 7. श्री पूनमचन्दजी नाहटा, 8. रा. सा. लाला टेकचन्दजी, 9 सेठ श्री वर्धमानजी पीतलिया, 10. सेठ श्री कन्हैयालालजी भण्डारी, 11. श्री सौभागमलजी मेहता, 12. डॉ. श्री बृजलाल डी. मेघाणी, 13. सेठ श्री दुर्लभजीभाई जौहरी, 14. श्री सरदारमलजी छाजेड़, 15. श्री जेठालालभाई रामजीभाई, 16. श्री चिम्मनलाल पोपटलालभाई शाह, *17. श्री शांतिलाल मंगलभाई।*

शिष्टमण्डल ने विराजित मुनिराजों की सेवा में एकता संबंधी पंचफैसले को अमलदरामद *करने के लिये प्रार्थना की। पंचफैसले के बाद जो-कुछ भी विचार-विमर्श हुआ और किन* कारणों को लेकर गत्यवरोध पैदा हो गया आदि सभी के बारे विवेचन होने के बाद आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. एवं पूज्यश्री मुन्नालालजी म. सा. ने निम्नलिखित निश्चय किये–

1. आज से परस्पर बारह सम्भोग, जहां-जहां दोनों सम्प्रदाय के मुनि हों, वहां-वहां खुले किये जाते हैं। दोनों पूज्य अभी ही इस सम्बन्धी संदेश अपने मुनियों को भेज देंगे।

2. धाराधोरण बनाने के लिये निम्नानुसार व्यवस्था की जाती है– पूज्यश्री मुन्नालालजी म., मुनिश्री हजारीमलजी म., मुनिश्री छगनलालजी म. और पूज्यश्री जवाहरलालजी म., मुनिश्री *गणेशलालजी म. तथा मुनिश्री हरखचन्दजी म., इस तरह छह मुनिराज एकत्रित होकर भविष्य* के लिये धाराधोरण बनावें। यदि इसमें कुछ मतभेद हो तो छहों मुनिवर मिलकर एक सरपंच पसन्द कर लें। यदि सरपंच के चुनाव में एकमत न हों तो श्री वर्धमानजी पीतलिया तथा श्री सौभाग्यमलजी मेहता, ये दोनों साथ मिलकर मतभेद का समाधान कर दें। यदि इनके बीच भी मतभेद रहें तो इन दोनों गृहस्थों ने सीलवन्द लिफाफा श्री प्रेसीडेण्ट सा. को दिया है। उसमे लिखे हुए नाम वाला पंच, दोनों गृहस्थों के सरपंच के रूप में जो निर्णय दे, वह अन्तिम निर्णय माना जायेगा।

3. मुनिश्री गणेशलालजी म. को युवाचार्य पद तथा मुनिश्री खूबचन्दजी म. को उपाध्याय पद सं. 1990 की फाल्गुन शुक्ला 15 से पहले ही दे देना निश्चित किया जाता है।

4. फाल्गुन शुक्ला 15 के बाद जो नये शिष्य हों, वे युवाचार्यजी की नेश्राय में रहें।

इस प्रकार पारस्परिक मतभेद के कारणो का समाधान हो जाने से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की विभक्त सम्प्रदाय संयुक्त हो गई और भविष्य के लिये धाराधोरण बनाने का कार्य यथावसर किये जाने की आशा थी।

स्वागत के लिये उत्सुक जन्मस्थान

बृहत्साधु-सम्मेलन होने के पश्चात् आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा. ठाणा 22 अजमेर से मारवाड-मेवाड़ के विभिन्न ग्रामों में विचरण करते हुए उंटाला (मावली के निकट) पधारे। वहां पूज्यश्री मुन्नालालजी म. सा. के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार प्राप्त हुए। समाचार ज्ञात कर आचार्यश्रीजी आदि सभी सन्त मुनिराजों ने ध्यान किया और दिवंगत आत्मा का गुणानुवादपूर्वक पुण्यस्मरण करते हुए अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की।

इसी अवसर पर उदयपुर श्रीसंघ सेवा में उपस्थित हुआ। वह अपने यहां आचार्यश्रीजी म. सा. आदि सभी सन्तों का चातुर्मास कराने के लिये बहुत समय से लालायित था और अनेक स्थानों पर वहां के प्रमुख-प्रमुख श्रावक विनती करने के लिये सेवा में उपस्थित होते रहे थे कि आचार्यश्रीजी हमारे भावी संघशिरोमणि के साथ चातुर्मास हेतु उदयपुर में पदार्पण करने की महती कृपा करावें। अतः इस समय अनुकूल सयोग होने से आचार्यश्रीजी ने आगामी चातुर्मास उदयपुर में करने की स्वीकृति फरमाई, जिससे उदयपुर श्रीसघ के हर्ष का पार न रहा। वह अपने गौरव की अनुभूति से थिरक पडा। अपने प्रांगण मे तेजस्वी सूर्य-से और ओजस्वी चन्द्र-से ज्योतिर्धर जवाहराचार्य एवं भावी गणपति गणेशाचार्य के पदार्पण होने-रूप अलभ्य अवसर-प्राप्ति से प्रमुदित हो उठा।

दिनों की प्रतीक्षा तो एक, दो, तीन आदि गिनते-गिनते पूर्ण हो चुकी थी और अब चातुर्मासार्थ पदार्पण होना दिनों से क्षणों के बीच आ टिका। वह अवसर भी आ गया जब सन्तों ने नगरप्रवेश किया। नगर के महल और मकान, चौराहे और चबूतरे, चौगान और चौमंजिले, देहरी और दरवाजे आबाल-वृद्ध जनो से अटे पडे थे। उनकी आंखो में उत्सुकता थी आचार्यश्रीजी एवं अनुगामी युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तप्रवरों के दर्शन की। वर्षों से संजोयी आशाएं, स्मृतियां आज सफल हो रही थीं। विशेष रूप से उनकी उत्सुकता के केन्द्रबिन्दु थे चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा.।

उदयपुर चरितनायक का जन्मस्थान था। वे यहा की धूल में खेले थे, उछले थे और

लोटे थे। यहां के अन्न-जल से पले थे। यहां के निवासियों ने आपको शिशुरूप में, सद्गृहस्थ के रूप में, एक व्यापारी के रूप में देखा था। इसके साथ ही वे दृश्य भी उभर आये जब माता, पिता और पत्नी के देहावसान के पश्चात् उनका अपना कहने वाला कोई नहीं रहा था। उसके बाद दृश्य बदला और देखा था आगारी से अनगारी होते और फिर संयम-साधना के साहजिक विकास को। आज वही पदार्पण कर रहे थे। कौन ऐसे स्वत.प्राप्त अवसर का परित्याग कर सकता था ? कौन था ऐसा जो भोगविजयी योगी की तेजस्विता, ओजस्विता और मधुरता के दर्शन से वंचित रहना चाहता हो ? कौन था ऐसा जो आकांक्षा और वांछा से विरत वैराग्यमूर्ति के प्रति वंदनार्पण से विमुख होना चाहता हो ? कौन था ऐसा जो जागरण के अग्रदूत और समता के शास्ता की समीपता का लोभ संवरण कर सकता था ?

शनैः-शनैः सीमान्त से सन्तों का नगर में पदार्पण हुआ। राजमार्गों के दोनों ओर की अट्टालिकाओं पर उपस्थित दर्शनोत्सुक नगरजन सन्तपरिमण्डल के बीच चरितनायकजी को निहार कर निहाल हो गये और प्रतिभा से प्रभावित हो प्रमुदित हो उठे।

यह चातुर्मास धर्मपिपासु जनता के लिये कल्पवृक्ष-सा प्रतीत हुआ और उसकी चिरकालीन आकांक्षा पूरी हुई। चातुर्मास में तपस्वी मुनिश्री किशनलालजी म. सा. ने 41 एवं तपस्वी मुनिश्री केसरीमलजी म. सा. ने गरम जल के आधार से 60 दिन की तपस्या की। श्रावक श्री गणेशलालजी गोगुन्दा निवासी ने 45 उपवास किये। इनके अतिरिक्त विभिन्न श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार तपस्या, पचखाण, सामायिक आदि धर्मध्यान किया।

आचार्यश्रीजी म. सा. और चरितनायकजी के ज्ञानगम्भीर, मंगलमय प्रवचनों को श्रवणकर श्रोतागण अपूर्व आध्यात्मिक चेतना का अनुभव करते थे।

शनैः-शनैः चातुर्मास का समय समाप्त हुआ। उदयपुरवासियों ने भरे हुए हृदयों से विदाई दी और धर्मदेशना से आप्लावित करने के लिये सन्तो ने विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार कर दिया।

एकता स्थायी न रही

चातुर्मास के दिनों में कॉन्फरेस के अध्यक्ष श्री हेमचन्दभाई रामजीभाई मेहता सम्मेलन के प्रस्तावों के बारे में जानकारी देने के [illegible] देशव्यापी प्र[illegible] थे। इसी सन्दर्भ में

सन्त-मुनिराजो के साथ विहार कर नाथद्वारा आदि स्थानों में धर्मदेशना देते हुए निम्बाहेड़ा पधारे।

वृहत्साधु-सम्मेलन, अजमेर के अवसर पर चतुर्विध संघ के प्रयत्नों से पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म सा. के सम्प्रदाय की दोनों धाराओं का एकीकरण हो जाने से सभी को सन्तोष और प्रसन्नता थी। लेकिन कुछ सन्तों ने इस एकता के प्रयास को शुद्ध हृदय से अंगीकार करने की तैयारी नहीं बतलाई। वे सिर्फ दिखावे के रूप में इसका पालन करना चाहते थे।

लेकिन पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. अपनी ओर से ऐसी कोई बात नहीं करना चाहते थे, जिससे चतुर्विध संघ का प्रयास विफल बने। अतः विभिन्न बातों को सुनकर भी मौन रखना उचित मानते थे।

पूज्यश्री मुन्नालालजी म. सा. का देहावसान हो जाने से सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. दोनों धाराओं के आचार्य हो गये थे और समस्त सम्प्रदाय की व्यवस्था सम्बन्धी रूपरेखा बनाने के लिये प्रमुख-प्रमुख संतों को चातुर्मास समाप्ति के पश्चात् मिती मगसिर शुक्ला 15 के आस-पास निम्बाहेडा में एकत्रित होने की सूचना करा दी थी।

आचार्यश्रीजी म. सा. तो निश्चित समय पर निम्बाहेड़ा पधार गये, मगर संघ का दुर्दैव ही समझिये कि अनेक उलझनों के बाद जो एकता हुई थी वह स्थायी न रह सकी और निम्बाहेड़ा में उस एकता की इतिश्री हो गई।

आचार्यश्रीजी म. सा. ने जब देख लिया कि एकता की भावना ही नही है तो ऐसी परिस्थिति में कोई भी उपाय सफल नहीं हो सकेगा। अतः निम्बाहेडा में कल्पकाल तक विराजने के पश्चात् विहार करके अनेक स्थानों को फरसते हुए जावद पधारे।

जावद में युवाचार्यपद-प्रदान महोत्सव

वृहत्साधु-सम्मेलन के निर्णयानुसार आचार्यश्रीजी म. सा. फाल्गुन शुक्ला 15 से पहले चरितनायक पं. र. मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. को युवाचार्य पद एवं मुनिश्री खूबचन्दजी म. सा. को उपाध्याय पद प्रदान करने के शुभ कार्य को किसी योग्य स्थान में चतुर्विध संघ के समक्ष कर देना चाहते थे। इसके लिये अनेक स्थानों के श्रीसंघों की विनतियां थीं। जावद श्रीसंघ की भी इस शुभ कार्य को अपने प्रांगण में कराने के लिये पहले से ही आग्रहपूर्ण विनती हो रही थी और जब आचार्यश्रीजी म. सा. जावद पधारे तो पुनः अपनी विनती को दोहराया।

पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म. सा. की संप्रदाय के लिये जावद एक महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। पूज्यश्री शिवलालजी म. सा. आदि अनेक महापुरुषों के युवाचार्यपद-प्रदान महोत्सव एवं आचार्यपद महोत्सव मनाने का सौभाग्य इसी नगर को प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार से सम्प्रदाय के इतिहास में स्मरणीय इस जावद नगर के गौरव में एक नया पृष्ठ जोड़ने के लिये आचार्यश्रीजी म. सा. ने युवाचार्य पद-प्रदान महोत्सव अपने यहां कराने के लिये जावद श्रीसंघ की विनती स्वीकार कर ली और सं. 1990, मिती फाल्गुन शुक्ला 3 को पदवी प्रदान करने का शुभ मुहूर्त निश्चित किया गया।

इस स्वीकृति से जावद श्रीसंघ का उत्साह द्विगुणित हो गया। चतुर्विध संघ में जिस मंगल महोत्सव के होने की प्रतीक्षा की जा रही थी, उसके जावद में होने के समाचार ज्ञातकर सभी को महान हर्ष हुआ और यथासमय अपनी धर्मकारिणी के भावी संघनायक के युवाचार्यपद और उपाध्यायपद महोत्सव के दर्शन एवं श्रद्धा-भक्ति प्रकट करने के लिये चारों तीर्थ –साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका– जावद में एकत्रित होने लगे।

फाल्गुन कृष्णा द्वादशी को आचार्यश्रीजी म. सा. अनेक संत-मुनिराजों के साथ जावद पधारे। देश के इस छोर से उस छोर तक निवास करने वाले हजारों आबाल-वृद्ध भाई-बहिन जावद आने के लिये अपने-अपने स्थानो से चल पडे। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया तक करीब 7000 व्यक्ति जावद आ चुके थे और साधु-मुनिराजों की संख्या 30 एवं महासतियों की संख्या 35, कुल 65 हो गई थी।

इस महोत्सव के अवसर पर विराजमान सन्तों व सतियों की शुभ नामावली इस प्रकार है–

1. पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा.
2. मुनिश्री चांदमलजी म. सा.
3. मुनिश्री हर्षचन्दजी. म. सा.
4. मुनिश्री मांगीलालजी म. सा.
5. मुनिश्री धूलचन्दजी म. सा.
6. मुनिश्री शांतिलालजी म. सा.
7. मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. (चरितनायक)
8. मुनिश्री सरदारमलजी म. सा.
9. मुनिश्री हजारीमलजी म. सा.
10. मुनिश्री पन्नालालजी म. सा.
11. मुनिश्री शोभालालजी म. सा.
12. मुनिश्री श्रीचन्दजी म. सा.
13. मुनिश्री मोतीलालजी म. सा.
14. मुनिश्री वक्तावरमलजी म. सा.
15. मुनिश्री गब्बूलालजी म. सा.

16. मुनिश्री कपूरचन्दजी म. सा.
17. मुनिश्री हेमराजजी म. सा.
18. मुनिश्री हर्षचन्दजी म. सा
19. मुनिश्री हमीरमलजी म. सा.
20. मुनिश्री नन्दलालजी म. सा.
21. मुनिश्री भूरालालजी म. सा.
22. मुनिश्री जीवनमलजी म. सा.
23. मुनिश्री जेठमलजी म. सा.
24. मुनिश्री चांदमलजी म. सा.
25. मुनिश्री सुगालचन्दजी म. सा.
26. मुनिश्री घासीलालजी म. सा.
27. मुनिश्री जवरीमलजी म. सा.
28. मुनिश्री चतुरसिंहजी म. सा.
29. मुनिश्री अम्बालालजी म. सा.
30. मुनिश्री मोतीलालजी म. सा.

महासतियों मे श्री रंगूजी म. सा. की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनीश्री आनन्दकं म. सा. ठा. 25 और श्री मोतांजी म. सा. की सम्प्रदाय की महासती प्रवर्तनीश्री केसरकं म. सा. ठा. 10।

फाल्गुन शुक्ला 3 को एक दिन शेष रह गया। जावद और जावद के आस-पा क्षेत्रों मे एक आह्लादक वातावरण के दर्शन होते थे। फाल्गुन मास तो वैसे ही प्राकृ नवोन्मेष का प्रतीक माना जाता है, जब हेमन्त से छुई-मुई बनी प्रकृति नये-नये पल्लव परिधानों से स्व-वेषभूषा का साज सजा, ऋतुराज वसन्त का स्वागत कर, मानव-मन उत्साह एवं आनन्द से आप्लावित कर देती है। फाल्गुन नये का स्वागत करने का सन सत्य सिद्धान्त है और मानो इसी को चरितार्थ करने के लिये बाल-युवा-वृद्ध का भेद आबाल-वृद्ध नर-नारी सामूहिक रूप में एकत्रित होकर युवाचार्य का अभिनन्दन उपस्थित हो गये थे। अब तो इतनी ही प्रतीक्षा हो रही थी कि कब ऊषा हो और स्वाग लिये चल पडे। तैयारियां तत्परता से पूर्ण हो चुकी थीं। उत्साह का अतिरेक उत्सव में प होने के लिये मचल रहा था। प्रबन्धक व्यवस्था का निरीक्षण करके अपनी त्रुटियों को स रहे थे। लेकिन दर्शकों की विचारधारा तो एक ही केन्द्रबिन्दु पर केन्द्रित थी कि इस महोत्सव का शुभारम्भ शीघ्र ही हो।

युवाचार्य पदवी प्रदान करने के लिये 11 से 1 बजे तक का समय शुभ माना गया था। परन्तु फाल्गुन शुक्ला 3 के सूर्योदय की स्वर्णिम प्रभा के साथ ही समारोह का श्रीगणेश हो गया। सात बजे श्री सुखदेवजी खूबचन्दजी के नोहरे से दीवानबहादुर सेठ श्री मोतीलालजी मूथा के नेतृत्व में आबाल-वृद्ध श्रावक-श्राविकाओं का जुलूस निकला, जो नगर की प्रदक्षिणा देता हुआ करीब 9 बजे पुनः उसी स्थान पर लौट आया।

समारोह के लिये राजकीय शाला के प्रांगण में प्रबन्ध किया गया था। वहां सभी दर्शको के बैठने के लिये एक विशाल पंडाल बनाया गया था। शनैः-शनैः दर्शकों का आगमन प्रारम्भ हुआ और करीब आध घण्टे में विशाल प्रांगण भी उपस्थिति को देखकर छोटा-सा प्रतीत होने लगा। जिधर भी देखते, उधर रंग-बिरंगे परिधानों से परिवेष्टित बाल, युवा, वृद्ध नर-नारी दृष्टिगत होते थे। प्रतीत होता था कि ऋतुराज वसन्त ही स्वयं स्वागतार्थ समुपस्थित हो गये हैं।

आचार्यश्री का युवाचार्यपद की योग्यता सम्बन्धी वक्तव्य

साढ़े दस बजे पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. ने चरितनायकजी आदि सन्त-मुनिराजों के सहित पदार्पण किया। जय-ध्वनि के साथ दर्शको ने स्वागत किया।

ग्यारह बजते ही आचार्यश्रीजी एवं समस्त सन्तों के समवेत स्वर द्वारा किये गये नवकार मन्त्र के पाठ एवं भगवान शांतिनाथ की प्रार्थना से समारोह का मुख्य कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। अनन्तर आचार्यश्रीजी ने सामयिक प्रवचन फरमाया। जिसमें आज के महोत्सव के कारणों, पूर्वकालीन घटनाओं आदि के बारे में संकेत करते हुए आचार्य पद के महत्त्व का उल्लेख किया कि—

यहां भावी आचार्य का प्रसंग है। इसलिये अरिहंत, सिद्ध, उपाध्याय, साधु के विषय में कुछ न कह कर आचार्य के विषय में थोड़ा-सा कहता हूँ।

श्री स्थानांग सूत्र के तीसरे स्थान में तीन प्रकार के आचार्य बतलाये गये हैं— कलाचार्य, शिल्पाचार्य और धर्माचार्य। उनमें से यहां धर्माचार्य से ही सम्बन्ध है अतः धर्माचार्य की व्याख्या की जाती है। धर्माचार्य के भी नामाचार्य, स्थापनाचार्य, द्रव्याचार्य और भावाचार्य, ये भेद हैं। भावाचार्य के लिये तो शास्त्र में यहाँ तक कहा है कि जो भावाचार्य है, वह तीर्थंकर के समान है।

दीक्षा लेने-मात्र से ही कोई व्यक्ति धर्माचार्य नहीं हो जाता। धर्माचार्य पद चतुर्विध संघ द्वारा संस्कार किया हुआ व्यक्ति ही पा सकता है। चतुर्विध संघ ही जिस व्यक्ति को धर्माचार्य पद पर स्थापित कर दे वही व्यक्ति धर्माचार्य है। अपने मन से कोई भी व्यक्ति धर्माचार्य नहीं

हो सकता है। धर्मनीति में बलात्कार सम्भव नहीं है। यहां कोई जबरदस्ती आचार्य नहीं बन सकता।

धर्माचार्य में गीतार्थ, अप्रमादी और संघ में सारणा-वारणा-धारणा कराने में सावधान, ये तीन गुण होने आवश्यक हैं। अर्थात् जो सूत्रार्थ का जानकार हो, प्रमादरहित हो और संघ की सुव्यवस्था करने वाला हो। जिसमें ये तीन गुण नहीं हैं, वह आचार्य नहीं हो सकता है।

स्वर्गीय पूज्यश्री लालजी म. सा. फरमाया करते थे कि आचार्य पत्थर-सा कठोर भी न हो और पानी जैसा नम्र भी न हो। किन्तु बीकानेरी मिश्री के कूंजे की तरह हो। अर्थात् जैसे मिश्री का कूंजा सिर पर मारने से तो सिर फोड़ देता है और मुंह में रखने से मुंह मीठा कर देता है। उसी प्रकार आचार्य भी अन्याय का प्रतिकार करने के लिये कठोर-से-कठोर रहे और सत्य तथा न्याय के लिये मुंह में रखी मिश्री के समान मीठा और नम्र रहे।

इसके पश्चात् बृहत्साधु-सम्मेलन, अजमेर मे पंच-मुनियों के निर्णय का संकेत करते हुए फरमाया कि सातवें पाट पर मुनिश्री गणेशलालजी को युवाचार्य पद देने का ठहराव किया था और जिसका समर्थन समाज की कॉन्फरेंस ने भी किया और कॉन्फरेंस के अध्यक्ष एवं सोलह सदस्य, इस प्रकार 17 व्यक्तियों के शिष्टमण्डल ने भी व पूज्यश्री मुन्नालालजी म. सा. की स्वीकृति से यह ठहराव किया था कि युवाचार्य पद की चादर फाल्गुन शुक्ला 15 से पहले करने का निश्चय किया जाता है। इस प्रकार युवाचार्य पद के लिये मुनिश्री गणेशलालजी का चुनाव केवल मेरे या इसी संप्रदाय के संघ द्वारा ही नहीं हुआ वरन् भारतवर्ष के समस्त चतुर्विध संघ द्वारा हुआ है। तदनुसार ही आज यह युवाचार्य की चादर देने का कार्य किया जा रहा है।

मुनिश्री खूबचन्दजी को उपाध्याय पद की चादर देने का भी निर्णय मे उल्लेख है। इसके लिये उन्हें जावद आने की सूचना करवा दी गई थी और जावद संघ ने शिष्टमण्डल भेजकर श्री खूबचन्दजी म. से जावद आने की प्रार्थना भी की थी। लेकिन वे नहीं आये, इसलिये आज युवाचार्य पद की चादर देने की एक ही क्रिया की जा रही है।

विशिष्ट मुनिवरों द्वारा समर्थन व सहयोग

आचार्यश्रीजी म. सा. के प्रवचन-समाप्ति के बाद मुनिश्री चांदमलजी म. सा. (बड़े), मुनिश्री हरखचन्दजी म. सा. और मुनिश्री पन्नालालजी म. सा. (सादड़ी वाले) ने पूज्यश्री के व्याख्यान व मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. को युवाचार्य पद देने का समर्थन किया। अन्य उपस्थित सन्तों की ओर से मुनिश्री गब्बूलालजी म. सा. ने तथा महासतियांजी की ओर से

प्रवर्तनीश्री आनन्दकंवरजी म. सा. व प्रवर्तनीश्री केशरकंवरजी म. सा. ने समर्थन, अनुमोदन करते हुए प्रसन्नता व्यक्त की।

अनन्तर समारोह के लिये बाहर से आगत विभिन्न सन्त-सतियांजी, श्रावक-प्रमुखों और श्रावक संघों की शुभकामनाएं व सन्देश रूप में आये हुए पत्र व तार हितेच्छु मण्डल के सेक्रेटरी श्री बालचंदजी श्रीश्रीमाल ने पढकर सुनाये।

इस प्रकार चतुर्विध संघ की अनुमोदना हो जाने के बाद चरितनायक मुनिश्री गणेशलालजी म. सा. पूज्य आचार्यश्री जाहरलालजी म. सा. के सामने आज्ञा की प्रतीक्षा में विनीत शिष्य-से खड़े हुए। आचार्यश्रीजी ने नन्दीसूत्र का पाठ कर अपनी चादर उतार कर चरितनायक को ओढाई और उपस्थित सन्तों ने चादर के कोने पकडकर अपना सहयोग, समर्थन व्यक्त किया।

उस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो सहस्ररश्मि सूर्य तमसावृत रजनी के गहन अन्धकार को भेदन करने का दायित्व लघु दीप को सौंप कर अपने अनिवर्चनीय सन्तोषानुभव में लीन हो।

सवा बारह बजे यह कार्य सम्पन्न हुआ। दर्शकों ने जय-जयकारों से आचार्यश्रीजी म. सा., युवाचार्यश्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा, भक्ति, प्रमोद व्यक्त करते हुए अभिनन्दन किया एवं युवाचार्यश्री की वन्दना की। अनन्तर आचार्यश्रीजी म. सा. ने एक छोटा-सा प्रवचन फरमाया–

आचार्यश्री का नवयुवाचार्य को उदबोधन

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. के सातवें पाट पर श्री गणेशलालजी आचार्य नियुक्त हुए हैं। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध संघ का कर्तव्य है कि इनके वचनों को 'सद्दहामि', 'पत्तयामि', 'रोइयामि' रूप में स्वीकार करे। युवाचार्यजी का कर्तव्य है कि धर्ममार्ग में सदा जाग्रत् रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध संघ को धर्ममार्ग में प्रवृत्त कराते रहें। मुझे विश्वास है कि युवाचार्यजी इस पद की जिम्मेदारी दक्षतापूर्वक निभायेंगे। इनका नाम गण+ईश = गणेश है। यह नाम इस पद के कारण सार्थक हुआ है। आशा है, ये उत्तरोत्तर संघ की उन्नति करेंगे।

नवयुवाचार्यश्री का सहयोग-प्रार्थनात्मक वक्तव्य

आचार्यश्रीजी के प्रवचन की समाप्ति के अनन्तर युवाचार्यश्री ने फरमाया–

अकामी यो भूत्वा निखिल मनुजेच्छां गमयति,
मुमुक्षं संसाराम्बुनिधितरि वत्तारय विभो।
महारागद्वेषादि कलहमल हारिन्नामृतदाम्,
सुबुद्धिं मह्यं हे जिन ! गणपते ! देहि सततम्।।

मैं परमात्मा से प्रार्थना करता हूँ कि मुझे वह शक्ति प्रदान करे जो शक्ति सारे ससार का कल्याण करने वाली है। आज मुझे जो गुरुतर उत्तरदायित्व सौंपा गया है, उसे मैं ऐसी शक्ति के सहारे ही वहन कर सकता हूँ। मैं सदैव भावना रखता था कि जीवन-भर आचार्यश्री द्वारा प्राप्त आज्ञा का पालन करता हुआ सन्तों की सेवा करता रहूँ। मेरी इस भावना के विपरीत पूज्य आचार्यश्री एवं चतुर्विध संघ ने मुझ अल्पशक्ति वाले को यह भार सौंपा है। इसलिये मैं नम्रतापूर्वक आचार्य महाराज से भी ऐसी शक्ति प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ जिसके द्वारा मैं इस महान् बोझ को उठाने में समर्थ होऊं।

पूज्यश्री के साथ ही सन्तों ने हाथ लगाकर मुझे जो चादर प्रदान की है, वह चादर तंतुओं की बनी हुई है। संस्कृत में तन्तु का दूसरा नाम गुण है। अर्थात् यह चादर गुणमयी है। मुझे आशा है कि इस गुणमयी चादर के साथ ही मुझे गुणों की भी प्राप्ति होगी, जिससे मैं इसकी रक्षा करने में समर्थ होऊं। यद्यपि यह गुणमयी चादर मेरी रक्षा करने में समर्थ है, तथापि इस चादर की रक्षा होना भी आवश्यक है। मुझे यह चादर आचार्य महाराज सहित सब सन्तों ने प्रदान की और चतुर्विध संघ ने इसका अनुमोदन किया है। इस कारण मुझे विश्वास है कि चतुर्विध संघ भी इसका रक्षक है। चतुर्विध संघ ऐक्यबल से इसकी रक्षा करता रहेगा, तभी इस चादर का गौरव सुरक्षित रहेगा और तभी यह संघ की उन्नति करने मे भी समर्थ होगा। मैं शासननायक और गुरु महाराज से यही याचनापूर्वक प्रार्थना करता हूँ कि इस चादर के गौरव की रक्षा करने की शक्ति मुझे प्राप्त हो।

पद-समर्थन, आभार-विधि

अनन्तर समारोह-समापन विधि के रूप में विभिन्न संत-मुनिराजों और महासतियांजी म. सा. ने अपने-अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये और जावद श्रीसंघ की ओर से इस शुभ समारोह हेतु पूज्य आचार्यश्रीजी म. सा. की स्वीकृति के लिये कृतज्ञता-ज्ञापन एवं श्रद्धांजलि समर्पण तथा विराजमान सन्त-सतियांजी म. सा. की सविधि वंदना करते हुए आगत सज्जनों को धन्यवाद दिया गया और आगत सज्जनो की ओर से इस गौरवमयी अवसर का लाभ प्राप्त कराने के लिये जावद श्रीसंघ का आभार मानने के बाद समारोह सम्पन्न हुआ। बीकानेर श्रीसंघ के सज्जनों की ओर से प्रभावना बांटी गई।

आचार्यश्री की प्रेरणाएं, बिहार भूकम्प सहायतार्थ कॉन्फरेंस की तत्परता

इन्हीं दिनों बिहार प्रान्त में भयंकर भूकंप आने के कारण हजारों व्यक्ति बेघरबार होकर कष्ट का अनुभव कर रहे थे। हजारों व्यक्ति अपने प्रियजनों के कालकवलित हो जाने से अनाथ हो गये थे और उनकी डबडबाई आंखें अपने आश्रय एवं अभय के लिये टुकुर-टुकुर देख रही थीं। हृदय ऐसी करुणापूर्ण स्थिति की अवहेलना नहीं कर सकता था और अपने प्रवचन में आपश्री ने बिहार प्रान्त की कष्ट-कथा का संकेत कर श्रावकों को उनके कर्तव्य का स्मरण कराया।

इस कारुणिक प्रवचन के फलस्वरूप समारोह के उपलक्ष्य में श्री नथमलजी चोरडिया ने 'कॉन्फरेन्स भूकंप रिलीफ फंड' खोलने और उसमें यथाशक्ति सहायता, दान देने के लिये विनम्र निवेदन किया। परिणामतः क्षण-मात्र में ही लगभग दो हजार रुपये एकत्रित हो गये और शनैः-शनैः एक बहुत बड़ी धनराशि सहायता कार्यों में व्यय करने के लिये प्राप्त हुई।

युवाचार्यश्री का मालवा की ओर प्रस्थान

समारोह सोल्लास सम्पन्न हो चुका था। दर्शनार्थी सुविधानुसार श्रद्धेयों के मांगलिक-श्रवण-रूप पाथेय के साथ अपने-अपने गंतव्य स्थानों की ओर प्रस्थान करने लगे।

आचार्यश्रीजी म. सा. ने कुछ दिन जावद विराजने के अनन्तर ठाणा 12 से बेगूं की ओर तथा युवाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने ठाणा 6 से रामपुरा की ओर विहार किया। आचार्यश्रीजी म. सा. बेगूं के निकटस्थ स्थानों को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए रामपुरा पधारे।

रतलाम चातुर्मास में युवाचार्यश्री के प्रवचनों की धूम

चातुर्मास-काल निकट ही था और विभिन्न क्षेत्रों की विनतियों पर द्रव्यक्षेत्रादि की अनुकूलता से विचार करके युवाचार्यश्रीजी म. सा. का सं. 1991 का चातुर्मास रतलाम में निश्चित किया।

विक्रम सं. 1991 का चातुर्मास रतलाम में हुआ।

यद्यपि पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के साथ आपश्री का पहले भी रतलाम में पदार्पण हुआ था और सं. 1964 एवं 1978 में चातुर्मास-समय भी यहीं व्यतीत किया था। लेकिन युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित होने के पश्चात् का यह प्रथम चातुर्मास होने से विशेष उल्लेखनीय है।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की सम्प्रदाय के बडे-बड़े महोत्सवों के मनाने से महनीय

एवं पूज्यो के पादपद्मों से पवित्र, प्रभावक प्रवचनों से प्रभावित पुण्यस्थली रतलाम – रत्नपुरी – में युवाचार्य पद-प्राप्ति के पश्चात् चरितनायकजी का प्रथम पदार्पण रतलाम के लिये गौरव की बात थी। उसे सदैव पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. सा. की पाट-परम्परा के प्रमुखो की देशना-प्राप्ति में अधिकतर प्रथम स्थान प्राप्त हुआ है।

युवाचार्यश्री रामपुरा से मन्दसौर होते हुए वर्षावास हेतु यथासमय रतलाम पधार गये। जनता ने जय-जय घोषों से सरलात्मा, संयमनिष्ठ, सन्तशिरोमणि, श्रमणोत्तम का ससम्मान स्वागत करते हुए नगर मे प्रवेश कराया। सन्त-मुनिराजों के साथ युवाचार्यश्री का प्रवचन-स्थल पर पदार्पण हुआ। प्रवचन प्रारम्भ हुए, जिनमें विरासत से प्राप्त शाश्वत सत्य को हित-मित वाणी में व्यक्त कर विवेक को विकसित करने की बलवती प्रेरणा दी।

प्रतिदिन होने वाले प्रवचनो से भविकजनों के भावों में आत्मा का सगीत गुनगुनाने लगा। सत्य की शोध मे आत्मशक्ति केन्द्रित होने लगी। आत्ममथन से उद्‌भूत वाणी आध्यात्मिक, लौकिक, पारलौकिक प्रश्नों का सम्यक् समाधान कर भौतिक पाश से प्रताडित मानवजाति को नई चेतना से अनुप्राणित करने लगी। जैनागमों के अगम्य आशय सरल-सुबोध भाषा में प्रतिपादित होने लगे।

भव्यात्माओं ने आपश्री की माधुर्यमयी वाणी का महत्त्व समझा। शुद्धि और सिद्धि, जीवन का सत्य, धर्म का मर्म, मानव की मानवता और तत्त्वचिन्तन आदि की झांकियां प्राप्त कीं, जो आज भी हमारे मनों में गूंज रही हैं कि आत्मा के सम्बन्ध में मनन और चिन्तन करना ही हमारी जिज्ञासा का चरमबिन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहचानना ही परमात्मपन को उपलब्ध करना है, जहां से संसार के बदलते हुए भावों का अवलोकन किया जा सके। आत्म-स्वरूप को न पहचानने के कारण ही आज संसार में इतना अज्ञानान्धकार व दुःख छाया हुआ है।

श्रोताओं में दान, शील, तप-भाव की लहर

आपश्री की इस माधुर्यमयी अमृतवाणी का रसास्वादन करने के लिये दूर-दूर के क्षेत्रों से प्रतिदिन सैकड़ों अबाल-वृद्धजनों का आगमन होता रहता था। आपके उपदेश से प्रभावित होकर अनेक धार्मिक आचार-विचार के श्रद्धालु भाई-बहिनों ने आत्मशुद्धि के लिये तपस्याएं कीं। अनेकों ने स्वधर्मी बन्धुओं के सहायतार्थ एवं पारमार्थिक कार्यों में सहयोग देने के लिये यथाशक्ति दान दिया। जीवदया के कार्यों को सम्पन्न किया एवं अपने-अपने जीवन को संयमित बनाने के लिये व्रत-पचखाण ग्रहण किये। सारांश यह कि स्व-पर-कल्याण अथवा सर्वोदय के सन्देश को साक्षात् करने के लिये तन-मन-धन से सहयोग देने का निर्णय किया तथा जनसाधारण ने भी उपदेशों के श्रवण एवं संयम-वैराग्यमयी वाणी से प्रभावित होकर

मांस-मदिरा आदि अभक्ष्य पदार्थों के खान-पान का त्याग किया और यथाशक्य नियम-प्रतिज्ञा लेकर जीवन को नैतिक बनाने का लाभ उठाया।

पर्युषण पर्व धर्माराधना एवं संयम-साधना का सुअवसर है। अतः इन पुण्य दिवसों में साधु-मुनिराजों ने विविध प्रकार की तपस्याएं कीं एवं श्रावक-श्राविकाओं ने भी बेला, तेला, पचौला, अठाई आदि अनेक प्रकार की तपस्याएं शक्त्यनुसार कीं। पूर के दिन बिना किसी प्रकार के बाह्य दिखावे के पारणे हुए और इन तपस्याओं की स्मृति में सामाजिक सुधार एवं निर्माण के कतिपय महत्त्वपूर्ण निश्चय किये कि जहां कन्या या वर का विक्रय हुआ हो, उस विवाह में न तो सम्मिलित होना और न भोजन करना। मृत्यु-भोज प्रथा भी समाज में कम होती जा रही थी लेकिन कहीं-कहीं हो जाते थे, अतः उनको अपने-अपने क्षेत्रों में पूर्ण रूप से बन्द करने के लिये, उनमें शामिल न होने की प्रतिज्ञाएं तो सैकड़ों में हुईं।

अस्पृश्यों के साथ समानता के व्यवहार की प्रेरणा

दलित जातियों के उत्थान और उनके नैतिक विकास के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की तरह आपश्री भी अपने प्रवचनों में संकेत करते थे। बहुत-से अछूत समझे जाने वाले भाई-बहिन भी आपका प्रवचन सुनने आते थे। आप उनको जीवन का वास्तविक उद्देश्य समझा कर सन्मार्ग पर चलने का उपदेश देते और अपने को उच्च कहने वालों के प्रति संकेत करते कि मानव समाज का असीम उपकार करने वालों को अस्पृश्य, घृणास्पद या नीच समझने वाले बन्धुओं ! आप अपने को उच्च वर्ग का कहते हो तो समझ मे नहीं आता कि उच्चता का अर्थ क्या ? क्या उनसे मानवता का व्यवहार न करना ही उच्चता है या मानवता के नाते अपने समान समझना उच्चता है ? याद रखो कि यह नीच कहलाने वाले आपके समान प्राणधारी हैं, मनुष्य हैं, इनकी इच्छा, आकांक्षा, अनुभूति आपके समान हैं। इन्हे धिक्कार मत दो। इनका अपमान मत करो।

आपकी वाणी का उच्चवर्ग और अछूतों पर अनूठा प्रभाव पडता था और वे अपनी-अपनी कमियों या भूलों को सुधारने की ओर अभिमुख होते थे।

आपश्री के प्रवचनों का लाभ लेने के लिये सुदूर क्षेत्रों से आगत बन्धुओं की यथायोग्य व्यवस्था के लिये रतलाम संघ के भाई-बहिनों में अपूर्व उत्साह था। वे अपने उत्तरदायित्व के प्रति इतने सजग थे कि प्रत्येक स्वधर्मी बन्धु के आतिथ्य-सत्कार, व्यवस्था आदि में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं आने देते थे। सभी का एक ही लक्ष्य था कि आगत सज्जनों को किसी प्रकार की परेशानी अनुभव न हो। वे जिस भावना को लेकर आये हैं, उसमें किसी भी रूप से व्यवधान न आये। नवयुवकों में इतना उत्साह था कि स्वधर्मीजनों की सेवा का प्रत्येक कार्य स्वयं करने में अपना गौरव मानते थे।

चातुर्मास-पूर्णाहुति : विदाई का भावपूर्ण दृश्य

दिन के अनन्तर दिन आते रहे और चातुर्मास के चार मास ऐसे बीत गये मानो कल चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था और आज उसका अन्तिम दिन आ पहुंचा है। यह अनुभव ही नहीं हुआ कि चार मास का समय कब सरक गया। लेकिन समय के सरकने के साथ चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् सन्तों के विहार का दिवस -- मार्गशीर्ष कृष्णा 1 भी आ पहुंचा। इस दिवस जिधर भी देखो, उधर अपार जनमेदनी दृष्टिगोचर होती थी। स्थानीय सज्जनो के अतिरिक्त बाहर से आगत श्रावक-श्राविकाओ की सख्या करीब 5000 की रही होगी। प्रवचन-मंडप मे सहस्रों जन थे। लेकिन उनके मुख-मण्डल पर प्रफुल्लता नहीं थी। कुछ उदासीनता झलक रही थी। मनों में द्वन्द्व चल रहा था कि आज आपश्री का विहार होगा।

अनन्तर वह क्षण भी आ गया जब आपश्री ने सन्तो के साथ विहार किया। विदाई का दृश्य बडा ही भावूपर्ण था। उपस्थिति ने जयघोष किया लेकिन उसमें भरे मन की गूंज थी। हजारो साथ-साथ पैदल चल दिये और सैकड़ों तो दो-दो, चार-चार मील तक साथ रहे। आपश्री ने रतलाम के आस-पास के कुछ क्षेत्रों में विहार कर पूज्यश्रीजी की सेवा में पहुंचने के लिये मेवाड़ की ओर विहार कर दिया।

मार्ग के जिन ग्रामों या नगरों में आप पधारते थे कि वहां के और उनके निकटस्थ प्रदेशवासियों की ओर से दो-चार दिन विराज कर धर्मामृत का पान कराने की विनतियां होना प्रारम्भ हो जाता था। उनके मनो में 'यस्य देवस्य गंतव्यं स देवो गृहमागतः' का भाव छलकने लगता था। आपश्री भी समयानुसार दो-चार दिन विराज कर धर्मोपदेश फरमाते थे और सीधी-सादी भाषा में होने वाले आपश्री के उपदेश जनता के अन्तर्मन तक पैठ जाते थे।

आचार्यश्रीजी की सेवा में जावरा-पदार्पण

आपश्री ने आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की सेवा में उपरिथत होने के लिये मेवाड की ओर विहार किया गया था। उधर आचार्यश्रीजी म. सा. का भी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् मालवा की ओर विहार हुआ और फाल्गुन शुक्ला चतुर्थी को जावरा पधारे। उसी समय चरितनायकजी मुनिश्री चांदमलजी म. सा. (बड़े) आदि सन्तों सहित जावरा पधार गये और आचार्यश्रीजी के साथ ही नगर-प्रवेश किया। नगरवासियों ने बड़े ही उत्साह और उमंग से अगवानी की।

धर्मप्रवर्तकों के पदार्पण से प्रत्येक स्थल तीर्थ के विरुद को प्राप्त कर लेता है। आचार्यश्रीजी, युवाचार्यश्रीजी एवं अन्यान्य ज्ञान-ध्यान-तप-संलीन सन्त-मुनिराजों के पदार्पण

से जावरा नगर तीर्थ बन गया। भव्य जीवों के उत्कर्ष के लिये वीतराग-वाणी की देशना मुखरित होने लगी और होली चातुर्मास तक सभी मुनिराजों का जावरा में विराजना हुआ।

देवास का यशस्वी चातुर्मास

इन दिवसों के अन्तराल में मालवा और मेवाड़ के विभिन्न श्रीसंघों का आचार्यश्रीजी एवं युवाचार्यश्रीजी के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने हेतु जावरा में आगमन हुआ। उनमें देवास श्रीसंघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्यश्रीजी म. सा. का आगामी चातुर्मास देवास में होने की स्वीकृति फरमाई जाये। इससे पूर्व भी समय-समय पर देवास श्रीसंघ का शिष्टमण्डल आचार्यश्रीजी म. सा. की सेवा में अपनी विनती लेकर उपस्थित हुआ था और इस बार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए आचार्यश्रीजी म. सा. ने युवाचार्यश्रीजी के आगामी चातुर्मास (सं. 1992) के लिये देवास श्रीसंघ को स्वीकृति फरमाई।

मालवा और मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों में जैनदर्शन, आचार-विचार से समृद्ध धर्मोपदेश देते हुए और त्याग-प्रत्याख्यान कराते हुए चरितनायकजी सं. 1992 के चातुर्मासार्थ देवास पधारे।

देवास पर्वतीय उपत्यका के मध्य बसा हुआ हरा-भरा, धन-धान्यसम्पन्न एक सुरम्य नगर है। चारों ओर शांत वातावरण, हरे-भरे पर्वतों और दूर-दूर तक खेतों, वनराजि से घिरा होने से तपोभूमि की कल्पना को साकार कर देता है। मध्यभारत के रजवाड़ों में देवास भी एक राज्य था और वहां के राजा छत्रपति शिवाजी के वंशज थे।

देवास श्रीसंघ चरितनायकजी की प्रतिभा एवं विद्वत्ता से पहले ही परिचित हो चुका था और चातुर्मास की स्वीकृति से उसका उत्साह द्विगुणित हो गया। भव्य स्वागत-समारोह के साथ श्रीसंघ ने सन्तों का नगर प्रवेश कराया। सन्तों का समागम सत्पुरुषों के लिये प्रेरणादायक होता है।

प्रतिदिन आपके प्रवचन होते थे। घर आई इस प्रवचन-गंगा की पवित्र धारा से पावन होने के लिये यथासमय श्रोताओं का समूह एकत्रित होता, तत्त्वचर्चा के अवसर पर विद्वानों का जमघट लग जाता और त्याग, प्रत्याख्यान करने वालों का तो एक मेला-सा ही जुड़ा रहता था।

इसका लाभ सिर्फ साधारणजन ही लेते हों, सो बात नहीं थी। श्रोताओं एवं जिज्ञासुओं में राज्य के उच्च पदाधिकारियों की उपस्थिति भी उल्लेखनीय रहती थी। आपके उपदेश, आचार-विचार का विवेचन सबके लिये समान रूप से हितकर था एवं उसे श्रवण करने का अधिकार भी सभी के लिये सुलभ था। किसी वर्ग या जाति-विशेष तक उपदेश सीमित नहीं थे। जो भी आता, उपदेश सुनता और अंतर् में एक नई चेतना, नई स्फूर्ति एवं प्रेरणा प्राप्त कर लौटता था।

आपके प्रवचनों का इतना व्यापक प्रभाव हुआ कि अनेक राज्याधिकारियों, सरदारों ने मद्य-मांस आदि अभक्ष्य-भक्षण आदि के कुव्यसनों का त्याग कर दिया। उनका ऐसा करना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। जहां पर भी प्रभावशाली और सहृदय सन्त विराजमान होते हैं, वहां ऐसी बातें होना सहज ही हैं। मानव-मात्र में उज्ज्वल आत्मा विद्यमान है और उसकी उज्ज्वलता का प्रकाशन भी करना चाहता है। लेकिन योग्य संयोग पाकर ही सफलता प्राप्त होती है।

आपश्री के देवास विराजने से बहुत उपकार हुए। दया, पौषध, उपवास आदि तपस्याए बडी संख्या में हुईं। संक्षेप में कहा जाये तो आपश्री का यह चातुर्मास सब प्रकार से सफल हुआ।

युवाचार्यश्री को संघ-व्यवस्था का समग्र भार सौंपने की घोषणा

चरितनायकजी का सं. 1992 का चातुर्मास देवास था और पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. चातुर्मासार्थ रतलाम में विराजमान थे। इस प्रकार दो-दो सन्त-शिरोमणियों की धर्मदेशना से मालव-मेदनी में मधुरता का प्रसार हो रहा था। दोनों महान थे और उनके महान् उपकारी, मनोहर, मंगल वचनों को सुनकर मुमुक्षु मानवीय आत्माओ को मनन-चिन्तन के लिये नित-नूतन अनुभूतियां प्राप्त होती थीं।

दोनों महान् अनुपमेय थे। यदि एक सूर्य था तो दूसरा चन्द्रमा। यदि एक संघ-शिरोमणि था तो दूसरा संयम-शिरोमणि। यदि एक तेजस्वी था तो दूसरा ओजस्वी। यदि एक संगठन का प्रस्तावक था तो दूसरा उसका प्रतीक। यदि एक दीपक था तो दूसरा उसकी दीप्ति। यदि एक जीवन का साहित्य था तो दूसरा उसका भाष्य। एक त्यागी था तो दूसरा संयमी। यदि एक संस्कृति का रक्षक था तो दूसरा उसका प्रसारक। इस प्रकार दोनो अपने-अपने रूप मे महान् थे और अपनी महानता से मालवमेदनी में मानवता की विवेचना करते हुए मुमुक्षुओं को प्रतिबोधित कर रहे थे।

चरितनायकजी युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित हो गये थे, लेकिन अभी तक पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. स्वयं संप्रदाय के चातुर्मास, विहार, प्रायश्चित्त आदि की व्यवस्था का भार संभाल रहे थे। आचार्यश्रीजी को युवाचार्यश्री की प्रतिभा, प्रबन्धपटुता से सन्तोष था और चतुर्विध संघ की आशा के केन्द्रबिन्दु हो चुके थे। आचार्यश्री का मनोमंथन चल रहा था कि अब युवाचार्यजी को संघीय व्यवस्था का दायित्व सौंपदूं, जिससे सम्बन्धित अनुभव हो जायेगा और जो भविष्य के लिये सुविधाजनक रहेगा।

आचार्यश्रीजी ने अपने विचारों को मूर्तरूप देने के लिये सं. 1992, आसोज कृष्णा 11,

सोमवार, दिनांक 23 सितम्बर, 35 को प्रवचन के अवसर पर युवाचार्यश्री को अधिकार प्रदान करने की घोषणा करते हुए अपना अनुभव व्यक्त किया कि संघ-व्यवस्था सम्बन्धी जिम्मेदारी आते ही पूज्यश्री श्रीलालजी म. सा. स्वर्ग सिधार गये और अचानक संप्रदाय की समग्र व्यवस्था का भार मुझ पर आ पड़ा। तब मुझे अनुभव हुआ कि अगर पूज्यश्री की मौजूदगी में ही मैं कार्य करने लगा होता तो यह अकस्मात् आया हुआ भार मुझे दुस्सह प्रतीत न होता। इसी अनुभव से मेरी वृद्धावस्था ने मुझे प्रेरित किया है कि प्राप्त अवसर का उचित उपयोग कर लिया जाये। तदनुसार आज मैं चतुर्विध संघ की उपस्थिति में संप्रदाय का कार्यभार, जैसे दंड-प्रायश्चित्त देना, चातुर्मास निश्चित करना, संघ-व्यवस्था सम्बन्धी अन्य कार्य आदि-आदि युवाचार्यश्री गणेशलालजी का सौंपता हूँ। साथ ही यह भी स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि संघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौप देने का कोई यह आशय न समझें कि मैं व्याख्यान देना बन्द करके मौन ग्रहण कर लूंगा। कुछ भाइयो का ऐसा खयाल है, लेकिन संघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्य सौंपना अलग है और व्याख्यान देना अलग है।

अनन्तर आचार्यश्रीजी की आज्ञा से मुनिश्री जौहरीमलजी म. सा. ने युवाचार्यश्रीजी को संघ-व्यवस्था सम्बन्धी कार्यभार सौंपने विषयक आचार्यश्रीजी का निम्नलिखित अधिकारपत्र पढ़कर सुनाया–

'सम्प्रदाय के आज्ञावर्ती सन्तश्री बड़े प्यारचन्दजी म. आदि सन्तों, रंगूजी महसतीजी की संप्रदाय की प्रवर्तनीजी आनन्दकंवरजी आदि आज्ञावर्ती सतियां, मोताजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनीजी केशरकंवरजी, महतावकंवरजी आदि उनकी सब सतियां एवं खेतांजी महासतीजी की सम्प्रदाय की प्रवर्तनीजी राजकुंवरजी आदि उनकी सब सतियां, उसी तरह पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के हितेच्छु सब श्रावकों और श्राविकाओं से मेरी यह सूचना है कि–

1. अखिल भारतवर्षीय श्रीसंघ और मैंने श्री गणेशलालजी को सम्प्रदाय के युवाचार्य पद पर स्थापित कर दिया है।

2. अब मैं अपनी वृद्धावस्था व आन्तरिक इच्छा से प्रेरित होकर आपको सूचित करता हूँ कि मेरे पर सम्प्रदाय की जो जिम्मेदारी है अर्थात् सारणा-वारणा करना, सब सन्त-सतियो को आज्ञा मे चलाना, सम्प्रदाय सम्बन्धी कार्यो की योजना करना एवं सम्प्रदाय सम्बन्धी नियमो का पालन करने के लिये संघ को प्रेरित करना आदि, यह सब कार्यभार अब मैं युवाचार्यश्री गणेशलालजी के ऊपर रखता हूँ। अतः आप चतुर्विध संघ आज से सम्प्रदाय के कुल कार्य की देखरेख, पूछताछ, आज्ञा लेना आदि सब कार्य उन्हीं से लेवें। मैं आज से सम्प्रदाय का पूर्ण अधिकार उन्हीं को देता हूँ। केवल मेरी सेवा में जिन्हें उचित समझूंगा उन सन्तों को अपने पास रखूंगा और उन सन्तों पर मेरी देखरेख रहेगी।

3. आप श्रीसंघ ने मेरी आणा, धारणा मानकर जैसा मेरा गौरव रखा है, वैसा ही युवाचार्यश्री गणेशलालजी का भी रखेंगे, यह मुझे पूर्ण विश्वास है। युवाचार्यश्री गणेशलालजी भी श्रीसंघ के विश्वासपात्र हैं। अतएव श्रीसंघ ने उन्हें युवाचार्य पद प्रदान किया है। इसलिये इस विषय में मुझको विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

4. युवाचार्यश्री गणेशलालजी के प्रति मेरी हार्दिक सूचना है कि अब आप सम्प्रदाय के पूर्वजों के गौरव को ध्यान में रखते हुए सम्प्रदाय का और श्रीसंघ का कार्य विवेक के साथ इस प्रकार करें कि जिससे श्रीसंघ संतुष्ट होकर किसी प्रकार की त्रुटि का अनुभव न करे।

श्री शासनाधीश श्रमण भगवंत महावीर स्वामी एवं शासन श्रेयस्कर श्रीमन् हुक्ममुनि आदि पूज्यपाद महानुभावों के तपोमय तेज-प्रताप से श्री युवाचार्य गणेशलालजी इस विशाल गच्छ को सुचारु रीति से चलाकर पूर्वजों के यश:शरीर की रक्षा करते हुए शोभा बढ़ायेंगे, ऐसा मेरा ही नहीं, श्रीसंघ का भी पूर्ण विश्वास है।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

आचार्यश्रीजी की उक्त घोषणा से चतुर्विध संघ के हर्ष का पार न रहा। जहां-तहां धन्य-धन्य की ध्वनि गूंज उठी। आचार्यश्री ने रतलाम में ही अपने दायित्वों का हस्तान्तरण करना क्यों उचित समझा ? इसके बारे में हमारा अनुमान है कि पूज्यश्री ने यहीं पर युवाचार्य पद के दायित्वों की प्राप्ति की थी और साधु की मर्यादा है कि जो वस्तु जहां से ली जाये या लाई जाये उसे कार्यपूर्ति के बाद उसी स्थान पर लौटा देना चाहिये। सम्भवतः इसीलिये उन्होंने अपने दायित्वों की धरोहर चतुर्विध संघ के समक्ष रतलाम में लौटा देने का निर्णय किया हो।

युवाचार्यश्री के मुखमण्डल पर गंभीरता झलक उठी

आचार्यश्रीजी के घोषणापत्र को लेकर रतलाम श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख अग्रणी श्रावक युवाचार्यश्रीजी की सेवा में देवास उपस्थित हुए और चतुर्विध संघ के समक्ष आचार्यश्रीजी की घोषणा के बारे में विस्तृत जानकारी दी। सभी ने इस के प्रति अपना उल्लास व्यक्त किया और गौरव माना।

घोषणा विषयक समाचारों को सुनकर युवाचार्यश्रीजी के मुखमण्डल पर गम्भीरता झलक उठी और अपनी शक्ति की तुलना करने लगे। लेकिन 'गुरोराज्ञा बलीयसी' के प्रति श्रद्धाशील आप आदेश को शिरोधार्य कर संयम-साधना के साथ-साथ संघ-साधना के विस्तृत राजमार्ग पर विवेक एवं पूर्व-महापुरुषों के अनुभवों के सहारे अग्रसर हुए।

देवास से ब्यावर की ओर

विविध प्रकार के धार्मिक समारोहों, त्याग, तपस्याओं से आपश्री का देवास चातुर्मास सानन्द सम्पन्न हुआ। चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर देवास व देवास के निकटस्थ श्रीसंघो ने भावभीनी विदाई दी। कुछ दिन आस-पास के क्षेत्रों में विहार करने के पश्चात् आपने आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होने के लिये रतलाम की ओर विहार किया। आचार्यश्रीजी म. सा. रतलाम से विहार कर सैलाना पधारे। परन्तु वहां कान में पीड़ा हो जाने से वापिस उनका रतलाम पदार्पण हुआ। उपचार से पीड़ा के शांत हो जाने के पश्चात् युवाचार्यश्री आदि 14 सन्तों के साथ जावरा, मंदसौर, निम्बाहेड़ा भीलवाड़ा, गुलाबपुरा, विजयनगर आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए ब्यावर पधारे।

आचार्यश्री हस्तीमलजी म. सा. से मिलन

उन्हीं दिनों पूज्यश्री हस्तीमलजी म. सा. ने मारवाड़ में विचरण करते हुए पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. से मिलने की इच्छा प्रकट की। तदनुसार अजमेर आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए पूज्यश्री हस्तीमलजी म. सा. चैत्र शुक्ला 5, मंगलवार को प्रात:काल जेठाणा पधारे और पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा., युवाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. आदि ठाणा 11 भी ब्यावर से विहार कर उसी दिन शाम को जेठाणा पधार गये। वहां दोनों आचार्यों का मिलन हुआ और दो दिनो तक परस्पर तात्त्विक चर्चा-वार्त्ता एवं सामूहिक प्रवचन होते रहे। इस सुअवसर का श्रावक-श्राविकाओं ने लाभ उठाया और अनेक श्रीसंघों की ओर से सम्मिलित चातुर्मास करने की विनतियां हुईं, लेकिन पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की सेवा में काठियावाड़ के श्रीसंघों की ओर से काठियावाड़ पधारने की विनती होने से और पूज्यश्री हस्तीमलजी म. सा. द्वारा ज़यपुर फरसने का संकेत वहां के श्रीसंघ को दिये जाने से सम्मिलित चातुर्मास होने की संभावना न बन सकी।

आचार्यश्री काठियावाड़, युवाचार्यश्री मेवाड़ की ओर

काठियावाड़ के श्रीसंघों की ओर से श्री चुन्नीलाल नागजीभाई वोरा, राजकोट निवासी पुनः उधर के श्रीसंघों को सम्मिलित विनती लेकर पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की सेवा में उपस्थित हुए और उस ओर पदार्पण करने की स्वीकृति चाही। आचार्यश्रीजी ने युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तों से विचार-विमर्श कर [illegible] ओर विहार करने का श्री

काठियावाड़ को लक्ष्य कर आचार्यश्रीजी म. सा पाली आदि क्षेत्रों को फरसते हुए सांडेराव पधारे। यहां तक युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त भी साथ थे। युवाचार्यश्री ने काठियावाड़ की ओर पदार्पण कराने के लिये आचार्यश्रीजी म. सा. आदि ठा. 9 को भावांजलि अर्पित करते हुए विदाई दी और वरद आशीर्वाद के रूप में आचार्यश्रीजी म. सा की मंगलकामनाएं प्राप्त कर आपश्री ने अन्य मुनिराजों के साथ मेवाड की ओर विहार कर दिया। उस समय का दृश्य ऐसा प्रतीत हो रहा था कि धर्मदेशना का पीयूषवर्षी प्रवाह विशाल जनमेदनी को समृद्ध, सम्पन्न बनाने के लिये दो धाराओ में प्रवाहित हो रहा है।

मेवाड़ की जनता में धर्म-संस्कारों को सुदृढ़ किया

चरितनायकजी अपने विहार से मेवाड वसुन्धरा को महाप्रभु महावीर के महनीय उपदेशों से पवित्र करने लगे। मेवाड़ में शौर्य था, सरलता थी, आत्मीयता थी लेकिन शिक्षा का यथेच्छ प्रसार न होने से वहां के निवासियों के आचार-विचार रूढियों और अन्धश्रद्धा से आवृत थे। कन्याविक्रय, वरविक्रय, बाल-वृद्ध-विवाह, मृत्युभोज आदि-आदि कुरूढियों ने जन-जीवन को आक्रान्त कर रखा था। जनता इस तथ्य से अनभिज्ञ-सी थी कि ज्ञानविहीन धर्माचरण हाथी के स्नान की तरह है। अतः आपश्री अपने प्रवचनों में इन विषयों पर प्रभावक संकेत करते थे, जिनका श्रोताओं पर प्रभाव पड़ता था और अब तक जहां व्यावहारिक जीवन को ही महत्त्व देने की स्थिति चल रही थी, वहां लोगों ने व्यावहारिक जीवन मे धार्मिकता का मूल्यांकन किया तथा धर्म को मुख्यता देने लगे।

इस प्रकार मेवाड़ की जनमेदनी को जीवन की यथार्थता से परिचित कराते चरितनायकजी ने सं. 1993 के चातुर्मास हेतु मेवाड़ के मुख्य नगर उदयपुर मे पदार्पण किया और आबाल-वृद्ध नगरवासियों ने अगवानी करके अपने को धन्य माना।

चातुर्मास-समय में आपके उपदेशों से जनता में धर्म, नीति और सत्-आचार-विचारों के संस्कारों का सिंचन हुआ और आपश्री नित-नूतन शास्त्रों का अवलोकन करते, विविध दार्शनिक विचारो का तुलनात्मक शैली से अध्ययन कर विवेचन की गहराई तक पहुंचते हुए 'ज्ञान-ध्यान-तपोरत तपस्वी स प्रशस्यते' की उक्ति को चरितार्थ कर रहे थे।

आपश्री की धर्मदेशना का लाभ उठाने के लिये श्रोताओं की उपस्थिति काफी संख्या में होती थी एवं प्रतिमा और आत्मानुभूति से समृद्ध आपश्री की वाणी ने श्रोताओं को अपनी ओर आकर्षित कर लिया था और आपका उपदेश सुनने के लिये लोगों में उत्सुकता बनी रहती थी।

पूर्वभव का संस्कार कहिये या ज्ञानावरण कर्म का क्षयोपशम कहिये, चरितनायकजी की यशदुन्दुभी चतुर्दिक् में गूंज उठी। आपके उपदेशों से प्रभावित होकर अनेकों ने यावज्जीवन

के लिये कुव्यसनों का त्याग कर दिया। जनसाधारण ही नही, किन्तु राज्य के उच्च-से-उच्च पदाधिकारी भी आपकी प्रवचन-वाणी-श्रवण का अवसर नहीं चूकते थे। आप जो-कुछ भी कहते थे, वह जनता की भाषा में, जनता के लिये था और जो कहते थे तदनुसार करनी में भी उतारते थे, अतः सभी को अपनी ही जीवनोपयोगी बात लगती थी। ज्ञान और संयम का सुमेल सोने मे सुगन्ध की उक्ति को चरितार्थ कर रहा था। इसी कारण राजा और रंक, समान रूप से आपके प्रति अटूट श्रद्धा-भक्ति प्रदर्शित करते थे।

संघ-व्यवस्थापक की दृष्टि से आप युवा थे, इसीलिये आप युवाचार्य पद पर विभूषित माने जाते थे लेकिन अनुभव, ज्ञान, चिन्तन, मनन की दृष्टि से प्रौढ़ थे। आपकी इस प्रौढता की परीक्षा के लिये अनेक व्यक्ति विविध विचारों, दृष्टिकोणों को लेकर सेवा में उपस्थित होते थे, अतः बच्चों को बच्चों की बोली में, युवकों को युवकों की शैली मे और बूढ़ों को बूढ़ों की भाषा में समझाकर समाधान करते थे। एतदर्थ सभी आभार मानते हुए श्रद्धावनत होते और अपने को धन्य मानते थे।

चातुर्मास आशातीत सफलता से समाप्त हुआ। लेकिन इसके पूर्व ही विभिन्न श्रीसंघों की ओर से अपने-अपने क्षेत्रों में पधारने, आगामी वर्ष का वर्षावास बिताने के लिये विनतियां होनी प्रारम्भ हो गई थीं। लेकिन ऐसा सम्भव नहीं था कि सभी को स्वीकृति दी जा सके। अतः आप उनके बारे में मौन रहकर समयानुसार फरसने के विचारो में मग्न रहते थे। चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर उदयपुर-निवासियों ने भरे हुए हृदयों से आपको विदाई दी।

राजस्थान के महत्त्वपूर्ण केन्द्र बीकानेर में पदार्पण

श्रद्धेय आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की भावना थी कि युवाचार्यश्री उन सभी क्षेत्रों का विहार कर लें जिनमें श्रद्धालु श्रावकों की गृहसंख्या अधिक है। इस भावनानुसार आपश्री ने मेवाड, मारवाड़ के विभिन्न स्थान स्पर्शे।

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा. के श्रद्धालु श्रावको की सख्या मारवाड़ में अधिक है और बीकानेर उनका प्रमुख केन्द्र माना जाता है। युवाचार्य पदवी-प्राप्ति के पश्चात् अभी तक बीकानेर की ओर आपका पदार्पण नहीं हुआ था और वहां के श्रीसंघ की हार्दिक भावना थी कि युवाचार्यश्रीजी बीकानेर में चातुर्मास-काल में विराज कर दर्शन, प्रवचन-श्रवण, सेवा-भक्ति का सुअवसर प्रदान करें। इसके लिये समय-समय पर आचार्यश्रीजी म. सा. एवं आपश्री की सेवा में विनती लेकर बीकानेर संघ उपस्थित होता रहा था और सौभाग्य से उदयपुर चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् आपश्री का मारवाड़ की ओर विहार हुआ।

मारवाड़ की ओर विहार होने से बीकानेर श्रीसंघ को आशा बंधने लगी कि बीकानेर को

आपके चातुर्मास का सौभाग्य अवश्य ही प्राप्त होगा और प्रत्येक स्थान पर पुनः-पुनः अपनी विनती आपश्री की सेवा में प्रस्तुत की। सोजत, विलाडा, बड़लु, कुचेरा आदि क्षेत्रों को पावन करते हुए आपश्री ने चैत्र शुक्ला 14 को नागौर पदार्पण किया। मार्ग में आपके उपदेशों से काफी त्याग-प्रत्याख्यान हुए। दीक्षा पर्याय में ज्येष्ठ होते हुए भी बडे चाँदमलजी महाराज सर्वत्र आपके साथ रहे तथा शासन-प्रभावना में सहभागिता निभाते रहे। बीकानेर की प्रबल भावना के फलस्वरूप सं. 1994 का चातुर्मास बीकानेर में करने की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस स्वीकृति से बीकानेर और आस-पास के श्रावक-श्राविकाओं के हर्ष का पार न रहा।

यद्यपि आपश्री का आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के साथ बीकानेर में पदार्पण हो चुका था, लेकिन उस समय आपकी विद्वत्ता, महत्ता, प्रभावकता और तेजस्विता का समग्र परिचय श्रोताओं को प्राप्त नही हो सका था। यद्यपि आपके यशसौरभ से यह क्षेत्र व्याप्त था लेकिन सौरभ के केन्द्र को निकट से देखने का यह प्रथम अवसर ही प्राप्त हो रहा था। यही कारण था कि जब सन्तमण्डल सहित आपश्री ने बीकानेर मण्डल के श्रद्धाशील भव्य, भावुक, भक्त आबाल-वृद्ध नर-नारीगण आपके दर्शन एवं अगवानी के लिये उमड़ पड़े।

शनैः-शनैः आपके चरण बीकानेर की ओर बढ रहे थे लेकिन अब तो बीकानेर और आपश्री के बीच क्षेत्रकृत दूरी ही शेष रह गई थी। यदि आप जंगल में विश्राम कर लेते थे तो वहीं बीकानेर बस जाता था, कोई गांव पड़ता तो बीकानेर बन जाता और कोई चौराहा पड़ता तो बीकानेर दिखता। जहां भी देखो वहीं बीकानेरवासी ही दिखलाई देते थे। बीकानेर के एक होने पर भी 'एकोऽहं बहुस्याम्' की प्रतीति कराता था।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट आ गया था और आपश्री बीकानेर के निकटस्थ देशनोक ग्राम में पधारे तो वहां के वासियों ने अन्यान्य स्थानों से आगत सज्जनों के साथ बहुत दूर तक सामने जाकर अगवानी करते हुए स्वागत किया और अपनी भावना को सफल बनाया। युवाचार्यश्री यहां 13 ठाणों से विराजे। जेठ का महीना और प्रचण्ड गर्मी ! फिर भी व्याख्यानों मे जनता उमड़ती थी। त्याग-प्रत्याख्यान भी भारी मात्रा में हुए।

देशनोक से विहार कर आपश्री बीकानेर पधारे। नगर की सीमा पर स्थानीय गणमान्य सज्जनों के साथ जनसाधारण ने स्वागत किया। जिधर देखो उधर ही चहल-पहल दृष्टिगोचर होती थी। वातावरण में रमणीयता प्रतीत होती थी। उस समय का वर्णन कल्पनागम्य है। लेकिन उसके लिये इतना ही संकेत पर्याप्त है कि उमंगों से महकते मानव-मनों मे माननीय के आगमन से असीम उत्साह था, जिसे कोई जय-जय के घोषो से व्यक्त कर रहा था तो कोई गीतों के सुर में, कोई वंदन से अभिनन्दन करता तो कोई चरणो में नमन करता। बालको ने तो अपनी भक्ति की अभिव्यक्ति का एक अनूठा ही तरीका अपनाया था। वे पंक्तिबद्ध टोली

के रूप में आगे-आगे चलते हुए अपने सलोने स्वरों से दिग्मण्डल को मुखरित कर रहे थे-

हम लाये हैं इन पूज्य को, अपने ही प्रेम से।
पायेंगे धर्मलाभ को, सुन लो ये ध्यान से।

उनके इस कार्य से प्रेरणा लेकर जन-समूह ने एक जुलूस का रूप ले लिया। जिसमे सबसे आगे उछलता-कूदता शिशुसमूह, मध्य में सन्त-मण्डल और पश्चात् श्रावक-श्राविकाओं का समूह था।

नगर के मुख्य-मुख्य मार्गो से होता हुआ जुलूस चातुर्मास-काल में सन्तों के विश्रामार्थ विराजने वाले स्थान पर आया और प्रवचन-सभा के रूप में परिवर्तित हो गया एवं चरितनायकजी ने प्रासंगिक प्रवचन फरमाया। जिसके भाव थे-

जैन सिद्धान्तों के सक्रिय आचरण का उपेदश

मित्रो ! तुम क्षत्रिय वंशज हो। वीर क्षत्रिय वंश ने अपने कर्तव्य मे रत रहकर केवल अपने ही वंश का नहीं, वरन् चारों ही आश्रमों को देदीप्यमान कर दिया था। देवाधिदेव तीर्थंकरों ने क्षत्रिय वंश में जन्म लिया था और आप उनके ही अनुयायी हो। क्षत्रिय त्याग में विश्वास करता है। उसका त्याग अनेक रूपों में प्रगट होता है। दीन-दुःखी की आततायी से रक्षा के लिये अपना सर्वस्व त्याग करने में उसे झिझक नहीं होती है। त्याग का साक्षात् रूप उपस्थित कर देना ही उसके जीवन की सबसे बड़ी अभिलाषा होती है।

लेकिन आज उन क्षत्रिय वंशजों में बनियापन दिख रहा है। त्याग का स्थान संग्रह ने ले लिया है और उस पर ममत्व भाव रखकर स्वामित्व जता रहा है। इस कारण अनके बुराइयां घर करती जा रही हैं। दुनिया में चारों ओर देखा जाता है कि सम्पत्ति पर व्यक्ति का स्वामित्व होने से सैकड़ों प्रकार से कलह एवं झगडों की उत्पत्ति होती रहती है। इस सारी विषमता और कलुषिता से त्राण पाने एवं समाज में सुव्यवस्था के साथ आत्मा की उन्नति करने का अबाध-मार्ग है असंग्रह भाव- भगवान महावीर द्वारा प्ररूपित अपरिग्रहवाद, जिसकी ओर आप लोगों का ध्यान जागे और उस मार्ग पर चलें तथा इसका प्रकाश सारे संसार मे फैलाएं। यह आज के युग की मांग है।

आप एक ओर बड़ी-बड़ी तपस्याएं करते हैं और दूसरी ओर परिग्रह के पीछे दौड़ते रहते हैं। तो क्या यह उस तपस्या को लज्जित करना नहीं है ? निष्परिग्रही महावीर के अनुयायियों का यह कार्य क्या स्वयं महावीर की आज्ञा को ठुकराने जैसा कार्य नहीं है ?

यदि त्याग और अपरिग्रह के क्रियात्मक रूप को आप अपने जीवन में उतारें तो आप

अपने जीवन में आनन्द का अनुभव करेंगे ही, साथ ही सारी दुनिया में एक नई रोशनी, नया आदर्श उपस्थित कर सकेंगे। क्योंकि अपरिग्रह का सिद्धान्त चारित्र एवं संयम की आधारशिला पर नागरिको को खड़ा करके पनपने का अवकाश देगा।

इसलिये मैं आपसे कहता हूँ कि आप अपरिग्रही या परिग्रह-परिमाणव्रती बनिये। अपने बनियापन के विचारों को अपने हृदय से निकाल दो। आपकी धमनियों में वही शुद्ध क्षत्रिय-रक्त दौड रहा है जो त्याग को अपना आदर्श मानता है। उठो ! तुम्हारे उठे बिना बेचारा रक्त भी क्या करेगा ? महावीर के अनुयायी कहलाने के गौरवान्वित नाम के गौरव को और अधिक बढ़ाइये। यह बाहर का वैभव बाहर और अन्दर,, दोनों को डुबाने वाला है। अत अन्दर के वैभव को बढ़ाइये और उसको समृद्ध कीजिये और उस रोशनी की मशाल फिर से ऊपर उठाइये तो आप देखेंगे कि आपकी उन्नति का निष्कंटक पथ स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

वस्त्राभूषणों से अलंकृत, बाह्य वैभव से समृद्ध, हवेलियों के निवासी श्रावक-श्राविकाओं ने संयम, तप, त्याग के आंतरिक वैभव से अलंकृत, ज्ञानसमृद्ध सन्त के प्रभावक, अर्थगम्भीर प्रवचन को सुना और मनोमंथन द्वारा तदनुसार जीवन में परिवर्तन लाने का निर्णय किया। क्योंकि मानवीय जीवन का उद्देश्य अन्धकार से प्रकाश की ओर बढ़ते जाना है और चरम विकास के रूप में एक दिन स्वयं के जीवन को परम प्रकाशमय बना लेना है। यदि उच्चता की ओर बढ़ना है और भारहीन होना है तो इस भौतिक भार का, जिसे अपना मान रखा है, अवश्य परित्याग कर देना चाहिये।

योग्य क्षेत्र और उचित समय पर बोये गये बीज अंकुरित होकर जैसे पल्लवित होते हैं, वैसे ही इन सन्तप्रवर के ये वाणी-बीज भी यथासमय अंकुरित हुए और कालान्तर में अनेक श्रावक-श्राविकाओं ने वैभव को शक्त्यनुसार मर्यादित करने के नियम, व्रत, प्रतिज्ञा लिए।

बीकानेर विवेक-वैभव से भी समृद्ध है। उसने प्रथम दिन के प्रथम प्रवचन में ही आपश्री की प्रतिभा को परख लिया और प्रमोद व्यक्त करते हुए कहा कि युवाचार्यश्री यथानाम तथागुण के प्रतीक बन योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्य सिद्ध होंगे। उसने परखा था कि आप श्रमण धर्म के साक्षात् रूप हैं। उसने आप में देखे थे श्रमणतत्व के तीनों रूप—श्रमण, समन और शमन। आप आन्तरिक शत्रुओ— कर्मों एवं मनोविकारों को नष्ट करने हेतु श्रमसाधना-तपसाधना के लिये सदैव तत्पर रहते थे। आपका आचार 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का साकार रूप था और कुविचारों और कुवृत्तियों का शमन करने की साधना के प्रति सतत जाग्रत् थे।

जहां साधु-सन्तों, महापुरुषों का आगमन होता है तो उनके आचार-विचार का प्रभाव अन्यान्य साधारण जनों पर भी पडता है और तदनुरूप जीवन-व्यवहार बनाने की प्रेरणा लेकर वे साधना में रत हो जाते हैं। आपश्री प्रतिदिन प्रवचनों में आगमानुकूल विवेचन के साथ

राष्ट्रधर्म, नारी-जागरण, हिंसाजनक व्यापारों का निषेध, सादगी और सरलता आदि विषयो-पर अधिकारपूर्ण भाषा में प्रकाश डालते थे। जैन सिद्धान्तों एवं आगम साहित्य की सर्वांगीणता के बारे में आपकी धारणा बहुत उच्च थी और उसके अध्ययन-मनन पर विशेष भार दिया करते थे। एतद्-विषयक आपके विचारों को समझने के लिये समय-समय पर हुए प्रवचनों में से सम्बन्धित एवं महत्त्वपूर्ण अंश संगृहीत करके यहां प्रस्तुत कर रहे हैं।

तात्त्विक प्रवचनों का सार

जिन महापुरुषों ने अपने जीवन में उच्चतम विकास प्राप्त किया है, उन्होंने अपने ज्ञान और अनुभव के सफल सहयोग से उत्थान की जो ठोस बातें बताईं, वे ही आज हमारे सामने शास्त्रोक्त सिद्धान्तो के रूप में उपस्थित हैं। शास्त्रों की पूर्ण प्रामाणिकता, वास्तविकता एवं वैज्ञानिकता में अटल व अटूट विश्वास करने का यही कारण है कि इनके निर्माताओं का ज्ञान व अनुभव उतना ही विशाल, सजग एवं सुदृढ़ था। इसीलिये हजारों वर्ष बाद भी वह शास्त्रोक्त ज्ञान हमें हमारे घनान्धकार से प्रकाश की ओर उन्मुख करने में ज्योतिर्मय प्रेरणा प्रदान करता रहता है।

प्रधानतया धार्मिक सिद्धान्तों का लक्ष्य आत्मविकास करना होता है इसलिये ज्ञान, वैराग्य, तप आदि वैयक्तिक साधना के साधनों का इसमें सविस्तार वर्णन भी होता है। इन सिद्धान्तों की कसौटी भी यही है कि कौन सिद्धान्त विकास के लिये कितनी बलवती प्रेरणा दे सकता है और पतन के समय उसे जाग्रत् कर सत्य-मार्ग पर ले आता है। इस दृष्टि से मैं कहना चाहूँगा कि जैन सिद्धान्त व्यक्ति के हृदयपटल की सूक्ष्म गहराइयों में प्रवेश करते हैं और उसे अपने पतन से सावधान करते हुए उत्थान की ओर अग्रसर बनाते हैं। इन विकासोन्मुखी परिस्थितियों का जैन शास्त्रों में बड़ी ही सुन्दर रीति से विवेचन किया गया है।

जैन शास्त्रों में ऐसी किसी भी क्रिया का विधान नहीं किया है, जिसमें किसी भी रूप में मानसिक, वाचिक या कायिक हिंसा होती हो। द्रव्ययज्ञ, द्रव्यपूजा आदि का तो भगवान महावीर ने खंडन किया है। शुद्ध चैतन्य के ध्यानस्वरूप भावयज्ञ और भावपूजा का ही विधान सर्वत्र पाया जाता है। आत्म-विकाससहित गति करने की विभिन्न श्रेणियां हमारे यहां कायम की गई हैं और तदनुसार ही विवेचन किया गया है।

जीव या आत्मद्रव्य का वर्णन जैन दर्शन में अति स्पष्ट एवं असंदिग्ध रूप से किया गया है। जीव की पर्याय– अवस्थाएं बदलती रहती हैं अतः उसका पूर्वपर्याय की दृष्टि से विनाश होता है व नवीन पर्याय की दृष्टि से नई उत्पत्ति, परन्तु इन पर्यायों में परिवर्तन के बावजूद भी अपने रूप में आत्मा ध्रौव्य रहता है।

इसके सिवाय आत्मा में अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख व अनन्तशक्ति का अपार तेज रहा हुआ है, किन्तु वह तेज उसी प्रकार ढका हुआ है जिस प्रकार काले वादलों से ढक जाने पर सूर्य का ज्वलंत प्रकाश भी छिप-सा जाता है। आत्मा की इन तेजोमयी किरणों पर कर्ममैल की परतें चढी हुई हैं। ये कर्म नित्य नहीं हैं। आत्मा जैसे कार्य करता है, तदनुरूप ही कर्मों का बंध होता है। पूर्वकर्मों की निर्जरा व नये कर्मो के बन्ध होने का यह क्रम इस सृष्टि में चलता ही रहता है, जव तक सारे कर्म खपाकर, आगे के वन्ध को रोककर, आत्मा का सर्वोच्च उत्थान प्राप्त नहीं कर लिया जाता।

जैन धर्म में किसी भी पदार्थ या तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को समझने के लिये नयवाद व स्याद्वाद की दृष्टि से देखना होता है, क्योंकि इनकी सहायता के बिना उसके विभिन्न पहलू नजर नहीं आयेगे तथा प्राप्त ज्ञान सिर्फ ऐकान्तिक दृष्टिकोण वाला होगा।

जैन दर्शन ज्ञान का एक विशाल भण्डार है, उसकी मैं आपको सिर्फ एक झलक मात्र दिखा सका हूँ और इसके बाद मैं आशा करूं कि विचक्षण श्रोता इसके गहन अध्ययन और तत्त्व-चिन्तन की ओर अपना ध्यान केन्द्रित करेंगे।

राजनीतिक नेताओं को सत्प्रेरणा और अलिप्तता

इसी चातुर्मास-समय में तत्कालीन बीकानेर नरेश सर गंगासिंहजी वहादुर की स्वर्णजयन्ती मनाई जा रही थी। इन दिनो बीकानेर में भौतिक वैभव की रंगरेलियां यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती थीं, जिनको देखने के लिये दूर-दूर से दर्शक आते और दर्शनीय दृश्य देखकर प्रसन्न होते थे। इस समारोह मे सम्मिलित होने के लिये अनेक राज्यों के शासक, राज्याधिकारी भी आमन्त्रित किये गये थे। उनमे से वहुत-से आपश्री के प्रभावक प्रवचनों की प्रसिद्धि सुनकर प्रवचन-श्रवण करने आये और उन्होंने धर्मानुमोदित राजनीति, राष्ट्रनीति से सम्वन्धित आपके स्पष्ट विचारों का लाभ लिया।

उनमें से कुछ-एक तो अपनी मनोभावना आपश्री के समक्ष निवेदन कर देते थे। लेकिन आप सुनकर मौन रहते और मुख-मण्डल पर अभिमान की एक रेखा भी परिलक्षित नहीं होती थी। प्रायः देखा जाता है कि कुछ-एक साधुओं में राजनीतिक नेताओं या समाज के विशिष्ट व्यक्तियो से मिलने की उत्सुकता रहती है और मिलने पर अभिमान आदि की वृत्तियाँ वढ जाती हैं। इन वृत्तियों के फलस्वरूप विविध प्रकार के उत्सव, महोत्सव करने-कराने, देखने आदि की भी कामना होने लगती है। लेकिन चरितनायकजी का इन सब बातों से लेशमात्र भी लगाव नहीं था। न तो उन्हें किसी से मिलने की आकांक्षा थी और न किसी प्रकार के समारोह आदि में अभिरुचि रखते थे। सिर्फ जलकमलवत् जीवन की धारा प्रवाहित होती थी।

यह भावना सिर्फ आपकी ही नहीं, वरन् आपके साथ के अन्य सन्त-मुनिराजों की भी थी। वीतराग-मार्गानुगामी तो राग-प्रवृत्तियों से विलग ही रहते हैं। यह एक तत्कालीन प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है-

बीकानेर नरेश के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के प्रसंग में विविध प्रकार के उत्सव आदि प्रतिदिन हो रहे थे। इसके मुख्य दिवस पर बीकानेर नरेश सर गंगासिंहजी बहादुर की शानदार शोभायात्रा निकली, जिसमें राजसी वैभव-प्रदर्शन की अनेक झांकियां थीं। इनको देखने के लिये हजारों दर्शक नगर के राजमार्गों पर खडे थे। प्रत्येक घर के द्वार, चौराहे, अट्टालिकाएं दर्शकों से अटे पड़े थे। जब यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ आपके विराजने के स्थान– श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया कोटड़ी– के सामने से गुजरा तब न तो आप में इस ऐहिक विलास-वैभव को देखने की उत्सुकता थी और न आपके साथ के अन्य सन्तों में भी। हर्ष-विषाद में समान सन्तजन तो अपने आत्म-चिन्तन में ही तल्लीन थे।

जहाँ ऐहिक आकर्षण रागी को सांसारिक वासनाओं की ओर प्रेरित करते हैं, वही विरागी की वृत्ति में विकृति लाने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

बीकानेर चातुर्मास की पूर्णाहुति

चातुर्मास-काल में सन्तों और श्रावक-श्राविकाओं ने ज्ञान, ध्यान आदि आध्यात्मिक चिन्तन के साथ-साथ आत्मशुद्धि के लिये विविध प्रकार की तपस्याएं कीं। श्रावकवर्ग ने जीवदया, स्वधर्मी-सहयोग आदि लोकोपकारी कार्यों में दान दिया एवं धर्म-प्रभावना के कार्य किये।

चातुर्मास बड़े ही उत्साह और भव्य धार्मिक आचार-विचारों की प्रभावना से पूर्ण हुआ। उपदेशामृत से तृप्त मानवों को चार माह के समय का पता ही न चला कि कब पूरा हो गया। उनके मन में यही लालसा थी कि हम उपदेश श्रवण करते रहें और धार्मिक आचार-विचार-साधना से आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर बढ़ते रहें। लेकिन साध्वाचार की मर्यादा चरैवेति, चरैवैति के आदर्श में गर्भित है। जनकल्याण की भावना ही सन्तों को विहारपथ में गतिमान रहने को प्रेरित करती रहती है।

थली-प्रदेश की ओर विहार तथा धर्म-प्रचार

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को आपश्री ने सन्त-मण्डल सहित विहार किया। वर्ष का एक तृतीयांश– चारमाह का समय– तो ऐसे बीत गया प्रतीत हो रहा था मानों सन्तों का आगमन

कल ही हुआ। किसी को भी समय की इस गति का भान ही नहीं हुआ था कि एक-एक दिन करके चार माह बीत गये और आज सन्त-मुनिराजों की विहार-वेला आ गई। लेकिन समय अपने परिणमन में अपेक्षा की आकांक्षा न रखते हुए बहता जाता है। यदि कोई प्राणी इस समय का सदुपयोग कर ले तो वह भी अनन्तता प्राप्त कर लेता है।

आज सन्तशिरोमणि, संघाधिपति का विहार है, इस विचार से सभी के मन में विषाद का वातावरण व्याप्त हो गया था। सभी अपने-अपने मन की कहने के लिये मूक थे और फिर कहें भी तो कहें क्या ? सभी के एक भाव थे, एक बोल थे और एक-से विचार का ताना-बाना बुना जा रहा था।

आखिर सन्तों के विहार का क्षण आ गया। सभी ने भावोर्मियों की विदाई-भेंट दी और आपश्री ने बीकानेर के समीपस्थ क्षेत्रों को फरसते हुए थली-प्रदेश की ओर विहार किया। थली-प्रदेश ने आपके पुनः आगमन की सुनी तो हर्षविभोर हो उठा। वह आपश्री से पूर्व एवं पूर्ण परिचित था। वहाँ के निवासियों ने आपश्री की दयामयी वाणी का लाभ प्राप्त किया था और मानवीय भावनाओं को सबल बनाया था।

थली-प्रदेश में विचरण करते हुए आपश्री ने पुनः सरलहृदय मानवों में श्रद्धा के बीज बोये, जो धर्म को समझना चाहते थे लेकिन धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले विद्वानों का अभी तक समागम प्राप्त नहीं कर सके थे। अनेक सार्वजनिक व्याख्यानों में आपने जैन धर्म के सार्वभौम स्वरूप को अभिव्यक्त किया।

आपश्री के प्रभावक प्रवचनों का प्रभाव देखकर बहुत-से ईर्ष्यालुजन आपश्री को और आपके सहगामी सन्तों को परेशान करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। लेकिन परीषह ही साधक की कसौटी होती है और उनके उपस्थित होने पर साधुता में नया निखार आता है। अतएव ये छोटे-मोटे उपद्रव आपश्री की कीर्ति को बढाने में ही सहायक हुए। आपश्री की निडरता, शांतिप्रियता, धीरता एवं तत्त्वनिरूपण-शैली से वहां की जनता अधिक-से-अधिक प्रभावित हुई एवं सत्य को समझने की ओर उन्मुख ही हुई।

जौहरियों के नगर जयपुर में

इस प्रकार विविध परीषहों को सहते हुए, विरोध का परिहार और भ्रम का विध्वंस करते हुए आपश्री का सं. 1995 के चातुर्मास हेतु जयपुर नगर में पदार्पण हुआ।

जयपुर के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह जौहरियों का नगर है। वहां अच्छे-अच्छे पारखी बसते हैं, जो अपनी एक नजर में ही अच्छों-अच्छों को परख लेते हैं और उनके द्वारा की गई परख निर्णय की अमिट रेखा होती है। इन्हीं पारखियों के बीच चरितनायक सन्तरत्न का चातुर्मास हुआ था।

यह भावना सिर्फ आपकी ही नहीं, वरन् आपके साथ के अन्य सन्त-मुनिराजों की भी थी। *वीतराग-मार्गानुगामी* तो राग-प्रवृत्तियों से विलग ही रहते हैं। यह एक तत्कालीन प्रसंग से स्पष्ट हो जाता है-

बीकानेर नरेश के स्वर्ण-जयन्ती समारोह के प्रसंग में विविध प्रकार के उत्सव आदि प्रतिदिन हो रहे थे। इसके मुख्य दिवस पर बीकानेर नरेश सर गंगासिंहजी बहादुर की शानदार शोभायात्रा निकली, जिसमें राजसी वैभव-प्रदर्शन की अनेक झांकियां थीं। इनको देखने के लिये हजारों दर्शक नगर के राजमार्गो पर खड़े थे। प्रत्येक घर के द्वार, चौराहे, अट्टालिकाएं दर्शकों से अटे पड़े थे। जब यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ आपके विराजने के स्थान– श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया कोटड़ी– के सामने से गुजरा तब न तो आप में इस ऐहिक विलास-वैभव को देखने की उत्सुकता थी और न आपके साथ के अन्य सन्तों में भी। हर्ष-विषाद में समान सन्तजन तो अपने आत्म-चिन्तन में ही तल्लीन थे।

जहाँ ऐहिक आकर्षण रागी को सांसारिक वासनाओं की ओर प्रेरित करते हैं, वहीं विरागी की वृत्ति में विकृति लाने में सक्षम नहीं हो सकते हैं।

बीकानेर चातुर्मास की पूर्णाहुति

चातुर्मास-काल में सन्तों और श्रावक-श्राविकाओं ने ज्ञान, ध्यान आदि आध्यात्मिक चिन्तन के साथ-साथ आत्मशुद्धि के लिये विविध प्रकार की तपस्याएं कीं। श्रावकवर्ग ने जीवदया, स्वधर्मी-सहयोग आदि लोकोपकारी कार्यों में दान दिया एवं धर्म-प्रभावना के कार्य किये।

चातुर्मास बड़े ही उत्साह और भव्य धार्मिक आचार-विचारों की प्रभावना से पूर्ण हुआ। उपदेशामृत से तृप्त मानवों को चार माह के समय का पता ही न चला कि कब पूरा हो गया। उनके मन में यही लालसा थी कि हम उपदेश श्रवण करते रहें और धार्मिक आचार-विचार-साधना से आध्यात्मिक विकास के मार्ग पर बढते रहें। लेकिन साध्वाचार की मर्यादा चरैवेति, चरैवैति के आदर्श में गर्भित है। जनकल्याण की भावना ही सन्तों को विहारपथ में गतिमान रहने को प्रेरित करती रहती है।

थली-प्रदेश की ओर विहार तथा धर्म-प्रचार

मार्गशीर्ष प्रतिपदा को आपश्री ने सन्त-मण्डल सहित विहार किया। वर्ष का एक तृतीयांश-- चारमाह का समय– तो ऐसे बीत गया प्रतीत हो रहा था मानों सन्तों का आगमन

कल ही हुआ। किसी को भी समय की इस गति का भान ही नहीं हुआ था कि एक-एक दिन करके चार माह बीत गये और आज सन्त-मुनिराजों की विहार-वेला आ गई। लेकिन समय अपने परिणमन मे अपेक्षा की आकाक्षा न रखते हुए बहता जाता है। यदि कोई प्राणी इस समय का सदुपयोग कर ले तो वह भी अनन्तता प्राप्त कर लेता है।

आज सन्तशिरोमणि, संघाधिपति का विहार है, इस विचार से सभी के मन में विषाद का वातावरण व्याप्त हो गया था। सभी अपने-अपने मन की कहने के लिये मूक थे और फिर कहें भी तो कहें क्या ? सभी के एक भाव थे, एक बोल थे और एक-से विचार का ताना-बाना बुना जा रहा था।

आखिर सन्तों के विहार का क्षण आ गया। सभी ने भावोर्मियों की विदाई-भेंट दी और आपश्री ने बीकानेर के समीपस्थ क्षेत्रों को फरसते हुए थली-प्रदेश की ओर विहार किया। थली-प्रदेश ने आपके पुनः आगमन की सुनी तो हर्षविभोर हो उठा। वह आपश्री से पूर्व एवं पूर्ण परिचित था। वहॉ के निवासियों ने आपश्री की दयामयी वाणी का लाभ प्राप्त किया था और मानवीय भावनाओं को सबल बनाया था।

थली-प्रदेश में विचरण करते हुए आपश्री ने पुनः सरलहृदय मानवों में श्रद्धा के बीज बोये, जो धर्म को समझना चाहते थे लेकिन धर्म के वास्तविक स्वरूप का ठीक-ठीक प्रतिपादन करने वाले विद्वानों का अभी तक समागम प्राप्त नहीं कर सके थे। अनेक सार्वजनिक व्याख्यानों में आपने जैन धर्म के सार्वभौम स्वरूप को अभिव्यक्त किया।

आपश्री के प्रभावक प्रवचनों का प्रभाव देखकर बहुत-से ईर्ष्यालुजन आपश्री को और आपके सहगामी सन्तों को परेशान करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। लेकिन परीषह ही साधक की कसौटी होती है और उनके उपस्थित होने पर साधुता में नया निखार आता है। अतएव ये छोटे-मोटे उपद्रव आपश्री की कीर्ति को बढ़ाने में ही सहायक हुए। आपश्री की निडरता, शांतिप्रियता, धीरता एवं तत्त्वनिरूपण-शैली से वहां की जनता अधिक-से-अधिक प्रभावित हुई एवं सत्य को समझने की ओर उन्मुख ही हुई।

जौहरियों के नगर जयपुर में

इस प्रकार विविध परीषहों को सहते हुए, विरोध का परिहार और भ्रम का विध्वंस करते हुए आपश्री का सं. 1995 के चातुर्मास हेतु जयपुर नगर में पदार्पण हुआ।

जयपुर के लिये यह प्रसिद्ध है कि वह जौहरियों का नगर है। वहां अच्छे-अच्छे पारखी बसते हैं, जो अपनी एक नजर में ही अच्छों-अच्छों को परख लेते हैं और उनके द्वारा की गई परख निर्णय की अमिट रेखा होती है। इन्हीं पारखियों के बीच चरितनायक सन्तरत्न का चातुर्मास हुआ था।

चातुर्मास प्रारम्भ होते ही आपश्री के प्रवचन प्रारम्भ हुए। आप अपने प्रवचनों में आध्यात्मिक विकास हेतु तात्त्विक विवेचन करते थे, जिनका श्रोतागण लाभ उठाते और उनमें परीक्षकों का भी जमघट होता था। लेकिन उनमें से कोई तो आपके प्रवचन-प्रभाव की प्रशंसा करता तो कोई तात्त्विक विवेचना की, कोई शास्त्रीय ज्ञान की, तो कोई समाधान की शैली की। किसी को वाणी की मधुरता पसन्द आई, तो किसी को संयम की सुघड़ता। किसी ने जिज्ञासा का समाधान चाहा, तो किसी ने तर्क का उत्तर।

इस प्रकार सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणों से आपश्री को परखा। लेकिन आपश्री उन सबकी परख से भी परे दिखाई दिये। अन्त में उन सबको सामूहिक रूप में निर्णय करना पड़ा कि हम सिर्फ जड़-रत्नों की ही परीक्षा कर सकते हैं, लेकिन नररत्नों की नहीं। ऐसे नररत्न तो अमूल्य होते हैं। जिसे 'जवाहर' ने परखा हो, उसे हम परख नहीं सकते हैं।

प्रतिदिन श्रोताओं की संख्या में वृद्धि होने के साथ-साथ संयम-साधना के साधक आपश्री से नित-नूतन प्रतिबोध प्राप्त कर आत्मशुद्ध्यर्थ तत्पर होकर जप-तप-त्याग-साधना में रत रहते थे। लालभवन का विशाल प्रांगण साधना-स्थल बन गया था और योग में उपयोग लगाने से, तप में तत्पर होने से, साधना में समाधिस्थ होने आदि से जो जितना लाभ प्राप्त कर सकता था, उसने अपनी योग्यतानुसार प्राप्त किया।

जयपुर से कोटा की ओर

चरितनायकजी का जयपुर चातुर्मास आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। इधर कोटा में स्वामीजी श्री हरकचन्दजी महाराज काफी समय से अस्वस्थता के कारण विराजमान थे। आपके दर्शन करने एवं सांप्रदायिक आवश्यक विचार-विनिमय करने हेतु आपश्री ने कोटा जाना तय किया। सम्प्रदाय के अन्य खास-खास सन्तों को भी कोटा पहुंचने के निर्देश-आदेश दे दिये गये। तदनुसार आपश्रीजी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् जयपुर से विहार कर मिगसर वदी 9 को पूज्यश्री लालजी म.सा. की जन्मभूमि टोंक पधारे। प्रवर्तिनीजीश्री आनन्दकंवरजी म. सा. ठाणा 13 पूर्व से ही यहां विराजमान थे। प्रवर्तनीजी एवं अन्य कई सतियां ज्वर-पीड़ित थीं। पूज्यश्रीजी के दर्शन, वाणी, सेवा से उन्हें संतुष्टि मिली। महासतीवृन्द एवं संघ के अत्याग्रह पर पूज्यश्रीजी मिगसर सुदी 3 तक यहां विराजे। तत्पश्चात् सवाईमाधोपुर, चौथ का बरवाड़ा, बणजारी, भगवन्तगढ़ आदि गांवों में पधारे, जहां काफी उपकार के कार्य हुए। इस क्षेत्र मे पूज्यश्री का प्रथम बार ही पदार्पण हुआ था। पूरे क्षेत्र के संघों में चेतना आ गई। गांव-गांव से विनतियाँ हुईं परन्तु कोटा का लक्ष्य होने के कारण ज्यादा विचरण संभव नहीं हो सका। हाड़ौती प्रदेश के सवाईमाधोपुर आदि गांवों को धर्मदेशना से मुखरित करते हुए आप

पौष सुदी 15 को कोटा पधारे। आगे-पीछे वडे चांदमलजी म., श्री मोडीलालजी म., श्रीपन्नालालजी म. आदि काफी सन्त कोटा पधार गये। जैन सन्त-परम्परा में कोटा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। आपश्री के वहां पधारने से कोटा सन्त-दर्शनों का धाम वन गया। श्रावक-श्राविकाओं के धर्मोत्साह को भी वेग मिला।

निस्पृहता से प्रभावित एक मुमुक्षु युवक

चरितनायकजी कोटा में विराज रहे थे। विभिन्न स्थानों से आगत भव्य मुमुक्षुजन आपकी व्याख्यान-वाणी का सर्वात्मना लाभ उठा रहे थे कि इसी समय एक वड़ी दिलचस्प घटना घटित हुई। एक तेजस्वी विनीत नवयुवक ने आपकी सेवा में उपस्थित होकर अति-विनम्रभाव से निवेदन किया—भंते ! मुझे अपना शिष्य वना लेने का अनुग्रह कीजिये। मैं आपके श्रीचरणों में रहकर संयम-साधना करना चाहता हूँ।

ऐसा प्रश्न आपके लिये नया नहीं था। पहले भी अनेक मुमुक्षु आत्माओं द्वारा आपकी नेश्राय में रहकर संयम-साधक होने की भावना व्यक्त की जा चुकी थी। लेकिन शिष्य वनाने के सम्वन्ध में आपको उदासीनता थी। शिष्य-व्यामोह को आप साधना में अवरोधक मानते थे, लेकिन गुरुदेव के आदेश को अंगीकार करके आपने शिष्य बनाने का त्याग नहीं किया था। अतएव जो मुमुक्षु शिष्य वनने की अभिलाषा लिये आपके निकट आता, उसे आप आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का शिष्य वनाते और पूर्ववत् निर्लिप्त रहते थे। जव तक आप युवाचार्य पद पर प्रतिष्ठित नही हुए थे, आपने किसी को अपना शिष्य नहीं वनाया था। लेकिन अव आत्महित के साथ-साथ संघहित का भी ध्यान रखना आवश्यक हो गया था। अविच्छिन्नरूपेण चली आ रही गुरुशिष्य-परम्परा को चालू रखना एक प्रकार से पूर्वाचार्यों के ऋण से मुक्त होना है। फिर भी शिष्यलोभ आपश्री को कभी भी व्यामोहित नहीं कर सका। इस सम्वन्ध मे आप सदैव तटस्थ एवं सतर्क रहे।

शिष्य विषयक उदासीनता आपके मन मे गहरी पैठी हुई थी, जो इस मुमुक्षु के प्रश्न करने पर झलके विना न रही और प्रत्युत्तर में फरमाया—भाई ! साधु वनना हंसी-खेल नहीं है। पहले से ही साधु बनने की वात मत करो, वरन् साधुता को समझने का प्रयत्न करो, ज्ञानोपार्जन करो, त्याग और वैराग्य की भावना को सवल वनाओ, आत्मा के अन्तरंग शत्रुओं—काम, क्रोधादि का प्रतिरोध करने की शक्ति वढाओ, आत्मिक शुद्धि प्राप्त करने की आकांक्षा को वेग दो, उलझनों से उद्विग्न मन को शांत वनाने का अभ्यास करो, विचारों में मौलिकता प्राप्त करो, संयम-साधना में आने वाली कठिनाइयों को समझने की कोशिश करो। अन्यथा चित्त की चंचल लहरों में वहने से जीवन-क्रम अव्यवस्थित हो जाता है। अतएव कल्याण करना है तो आत्मा को तप से तपाओ, संयम से साधो। गुरु की परीक्षा कर लो।

इसके पश्चात् ही साधु-दीक्षा अंगीकार करने का प्रसंग आ सकता है। समताभाव, ध
और परमात्मा में आत्मार्पण की भावना जाग्रत् हुए बिना जीवन में पवित्रता का भाव पै
हो सकता है।

इस निस्पृहतापूर्ण निखालिस उत्तर को सुनकर नवयुवक चकित रह गया। उस
में अतीत के अनेक चित्र साकार हो उठे कि मैं कितने ही सन्तों के पास पहुंचा,
आश्वासन दिये, आकर्षण बतलाये और प्रलोभनों के सरसब्ज बाग भी दिखलाये, परन
यथार्थ पथप्रदर्शक उत्तर किसी ने भी नहीं दिया। इन विचारों से उसके मन में ए
प्रकाश का प्रादुर्भाव हुआ, उसके संस्कारों को नवजीवन प्राप्त हुआ। उनके अन्तर् की
चमकने लगी। अन्तःकरण उद्‌भाषित होने लगा और वैराग्य की भावना प्रबल हो उ

नवयुवक आपकी निस्पृहता की ओर विशेष रूप से आकर्षित हुआ। श्रद्धा-भ
उसका मन गद्‌गद हो उठा। साथ ही कुतूहल भी उत्पन्न हुआ कि एक वे साधु हैं औ
ये महाराज हैं जो शिष्य बनाने के पहले साधुता को समझने और गुरु की परीक्षा कर
परामर्श दे रहे हैं, और फिर साधु बनने की बात कह रहे हैं। इसलिये उसने पुनः नि
किया– भंते ! सभी साधु बनने वालों के सामने आप ऐसी ही कठोर शर्तें रखेंगे तो फिर
आपका शिष्य कैसे बनेगा ? क्या आत्म-कल्याण के साधक की शुद्धि का मार्ग अवरुद्ध
होगा ? परीक्षा की प्रतीक्षा में ही वह अपने सत्संकल्प को कैसे चरितार्थ कर सके
विकासोन्मुखी आत्माएं अपनी प्रतिभा, साहस और मनोयोग का समन्वय कैसे कर सकें
श्रद्धा और संकल्प को साकार रूप कैसे दिया जा सकेगा ?

नवयुवक के इस प्रकार के तार्किक प्रश्नों को सुनकर आपने फरमाया– कोई मेरा शि
नहीं बनेगा तो मेरी क्या हानि हो जायेगी ? मेरे आत्म-कल्याण में कौन-सी बाधा
जायेगी ? मुझे चेलों की जमात खड़ी नहीं करनी है। आत्म-साधना के पथ पर वही व
चल सकता है जो वास्तविक वैराग्य-भावना से विभूषित हो, तपःपूत हो, जिसका
अगाधता की ओर अभिमुख हो, श्रद्धा अडिग और चारित्र आगमानुकूल व निष्ठापूर्ण हो।
ले लेना तो सरल है, मगर उसे निभाना कठिन होता है। उससे आत्मा का कल्याण होत
किन्तु अंगीकार करने से पहले शांतचित्त होकर सोचना चाहिये कि प्रतिज्ञा निभ सकेगी
नहीं ? आत्मबल को जांचे बिना जोश में आकर ली गई प्रतिज्ञा के लिये बाद में पछ
पडता है। भाई ! मुझे साधु-संख्या नहीं, किन्तु साधुता चाहिये। पारस्परिक सहका
संयम-साधना में अग्रसर होने के लिये ही गुरु-शिष्य-सम्बन्ध स्थापित किया जाता है।
इस उदेश्य की पूर्ति नहीं हो सकती हो, वहां वह सम्बन्ध निरर्थक ही नहीं, वरन् हानिक
भी सिद्ध होता है।

आपश्री के ये मार्मिक शब्द नवागन्तुक नवयुवक साधक के चित्त में गहरे पैठ गये। उसकी धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम न थी, किन्तु अनुभवो से अर्जित संस्कारों का परिणाम थी। अतः इन स्पष्ट विचारों से वह समझ गया कि यही वह विभूति है, जिसके नेश्राय मे निर्देशन पाकर मैं अपना जीवन सफल व धन्य बना सकूंगा। मेरे आत्म-कल्याण का पथ इन्हीं से प्रशस्त होगा। ऐसे निस्पृह, निःस्वार्थ एवं विरक्त महाभाग महापुरुष ही मेरे जीवन को पावन बना सकेंगे। दुविधा में विंधा मन निष्कर्ष पर आ पहुंचा था और विवेक से अनुप्राणित होकर लक्ष्य की ओर बढ़ चला।

विरक्त नवयुवक ने युवाचार्यश्रीजी के उपदेश को सर्वात्मना स्वीकार किया। अन्तरात्मा से उठे नाद को अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया था। जो पूर्णनिष्ठा के साथ संकल्प करते हैं, उन्हें कोई भी प्रलोभन विचलित नहीं कर पाते हैं। वह उसी दिन मे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में तल्लीन हो गया और प्रयत्नों के फलस्वरूप त्याग के पथ पर अग्रसर होता गया।

नवयुवक की अखण्ड वैराग्य-भावना और ज्ञानोपार्जन की तन्मयता ने आपश्री को आकर्षित किया। आपकी धारणा बन गई कि यह खरा सोना है और संयम-साधना की ओर अग्रसर कराने में योग देना चाहिये। अतः आप उसे त्याग-वैराग्य-वर्धक उपदेश देने लगे।

इस प्रकार एक लम्बी परीक्षा और प्रतिज्ञा की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात् आपश्री ने नवयुवक को यथावसर दीक्षित कर अपना अन्तेवासी बनाने का निश्चय किया। उस समय किसे ज्ञात था कि आध्यात्मिक साधना के मंगल द्वार में प्रविष्ट होने वाला यह नवयुवक आगे चलकर आपश्री की नेश्राय का महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकारी और पाट-परंपरा में आपका उत्तरवर्ती होकर संघ-शासन को दिपायेगा।

वह नवयवुक और कोई नहीं, हमारे परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री 1008 श्री नानालालजी म.सा. हैं, जो नाना-जनों की श्रद्धा-भक्ति के केन्द्रविन्दु वन कर आध्यात्मिक साधना करते हुए चतुर्विध संघ को आत्म-कल्याण के मार्ग का निर्देशन कर रहे हैं।

उदयपुर में चातुर्मास

कोटा, बूंदी और उसके आस-पास के क्षेत्रों को धर्मदेशना से पवित्र करते हुए आप पुनः ठाणा 6 से मेवाड के मुख्य नगर गुलाबपुरा में पधारे। केकड़ी से पधारते समय मार्गवर्ती गाँवों में अहिंसा एवं व्यसनमुक्ति के अच्छे कार्य हुए। भिणाय में कानोड़ संघ विनती लेकर उपस्थित हुआ। कानोड़ संघ अत्याग्रहभरी विनती करने लगा तो युवाचार्यप्रवर ने उन्हें सन्तुष्ट करते हुए फरमाया–

1. आचार्य प्रवर की अन्य आज्ञा प्राप्त हो जाय,
2. शासन प्रभावना का कोई बड़ा कार्य हो जाय और मेरे गये बिना न चलता हो,

आपश्री के ये मार्मिक शब्द नवागन्तुक नवयुवक साधक के चित्त में गहरे पैठ गये। उसकी धर्मश्रद्धा तात्कालिक भावावेश का परिणाम न थी, किन्तु अनुभवों से अर्जित संस्कारों का परिणाम थी। अतः इन स्पष्ट विचारो से वह समझ गया कि यही वह विभूति है, जिसके नेश्राय में निर्देशन पाकर मैं अपना जीवन सफल व धन्य बना सकूंगा। मेरे आत्म-कल्याण का पथ इन्हीं से प्रशस्त होगा। ऐसे निस्पृह, निःस्वार्थ एवं विरक्त महाभाग महापुरुष ही मेरे जीवन को पावन बना सकेंगे। दुविधा मे विधा मन निष्कर्ष पर आ पहुचा था और विवेक से अनुप्राणित होकर लक्ष्य की ओर बढ़ चला।

विरक्त नवयुवक ने युवाचार्यश्रीजी के उपदेश को सर्वात्मना स्वीकार किया। अन्तरात्मा से उठे नाद को अनुकूल अवसर प्राप्त हो गया था। जो पूर्णनिष्ठा के साथ संकल्प करते हैं, उन्हें कोई भी प्रलोभन विचलित नहीं कर पाते हैं। वह उसी दिन में ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में तल्लीन हो गया और प्रयत्नों के फलस्वरूप त्याग के पथ पर अग्रसर होता गया।

नवयुवक की अखण्ड वैराग्य-भावना और ज्ञानोपार्जन की तन्मयता ने आपश्री को आकर्षित किया। आपकी धारणा बन गई कि यह खरा सोना है और संयम-साधना की ओर अग्रसर कराने में योग देना चाहिये। अतः आप उसे त्याग-वैराग्य-वर्धक उपदेश देने लगे।

इस प्रकार एक लम्बी परीक्षा और प्रतिज्ञा की कसौटी पर कसे जाने के पश्चात् आपश्री ने नवयुवक को यथावसर दीक्षित कर अपना अन्तेवासी बनाने का निश्चय किया। उस समय किसे ज्ञात था कि आध्यात्मिक साधना के मंगल द्वार में प्रविष्ट होने वाला यह नवयुवक आगे चलकर आपश्री की नेश्राय का महत्त्वपूर्ण उत्तराधिकारी और पाट-परंपरा में आपका [illegible] होकर संघ-शासन को दिपायेगा।

वह नवयवुक और कोई नहीं, हमारे परमश्रद्धेय आचार्यश्री श्री 1008 श्री नानालालजी म.सा. हैं, जो नाना-जनों की श्रद्धा-भक्ति के केन्द्रबिन्दु बन कर आध्यात्मिक साधना करते हुए चतुर्विध संघ को आत्म-कल्याण के मार्ग का निर्देशन कर रहे हैं।

उदयपुर में चातुर्मास

कोटा, बूंदी और उसके आस-पास के क्षेत्रों को धर्मदेशना से पवित्र करते हुए [illegible] ठाणा 6 से मेवाड़ के मुख्य नगर गुलाबपुरा में पधारे। केकड़ी से पधारते [illegible] में अहिंसा एवं व्यसनमुक्ति के अच्छे कार्य हुए। भिणाय में कानोड़ संघ [illegible] हुआ। कानोड़ संघ अत्याग्रहपूर्वक विनती करने लगा तो युवाचार्यप्रवर ने [illegible] करते हुए फरमाया–

1. आचार्य प्रवर की अन्य आज्ञा प्राप्त हो जाय,
2. शासन प्रभावना का कोई बड़ा कार्य हो जाय और मेरे गये

भावी उत्तराधिकारी, विरक्त शिष्य का दीक्षा-महोत्सव

वैरागी श्री नानालालजी को दीक्षा देने के समय सं. 1996 मिती पौष शुक्ला 8 व स्थान कपासन की जानकारी समस्त श्रीसंघों को हो चुकी थी। सभी श्रीसंघों मे उक्त महोत्सव के दर्शन करने की उत्सुकता थी और श्रावक-श्राविकाओं के उत्साह में वृद्धि होती जा रही थी।

दीक्षा-समारोह के अवसर पर बड़े चांदमलजी म.सा. ठाणा 3 विशेष रूप से दीक्षा-समारोह पर पधारे। महासतीवर्याएं भी 23 के लगभग थीं। इनके अलावा बाहर के हजारों भाई-बहिन उपस्थित हुए। मेवाड़ का ऐसा कोई ग्राम न था जिसके दो-चार सज्जन दीक्षा-महोत्सव के अवसर पर कपासन न पहुंचे हों। विभिन्न संघों की ओर से दीक्षार्थी का मान-सम्मान किया गया और जुलूस के साथ दीक्षार्थी का दीक्षास्थल पर पदार्पण कराया। आपने दीक्षार्थी के पारिवारिक जनों की स्वीकृति एवं चतुर्विध संघ की अनुमतिपूर्वक वैरागीजी को दीक्षा प्रदान की और नवयुवक श्री नानालालजी पोखरना मुनिश्री नानालालजी म.सा. बन गये।

भावी उत्तराधिकारी शिष्य नानालालजी म.सा. का परिचय

आप द्वारा नानालाल मुमुक्षुजन संयम-साधना के लिये दीक्षित हुए और उन नानाओं में से भी जो नाम से भी नाना हैं, उनका यहां नाना-सा (संक्षिप्त) परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

आपके उत्तराधिकारी मुनिश्री नानालालजी म.सा. का जन्म मेवाड प्रेदशान्तर्गत उदयपुर राज्य के जागीरदारी गांव दांता में ओसवालजातीय, पोखरनागोत्रीय श्रीमान् मोड़ीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती श्रृंगारकंवरबाई की कुक्षि से सं. 1977 में हुआ था।

लगभग 8 वर्ष की बाल्यावस्था में ही, जो माता-पिता के लाड-प्यार, खेलकूद का समय मानी जाती है, आपको पिताश्री के वरदहस्त से वंचित हो जाना पड़ा और उस समय से लेकर दीक्षा-तिथि तक अपने भाई, मातुश्री आदि पारिवारिक जनों की छत्रछाया में आपने जीवन -विकास का मार्ग प्रशस्त बनाया। उन दिनों ग्रामीण क्षेत्रों में जैसा विद्याध्ययन का प्रबन्ध था, तदनुरूप आपने शिक्षण प्राप्त किया और पारिवारिक परिस्थितियोंवश बाल्यावस्था में ही आपको जीवकोपार्जन हेतु व्यापार में प्रवृत्त होना पड़ा। प्रारम्भ में गांव की परिस्थिति के अनुसार साधारण परचूण सामान की दूकान की और कुछ समय पश्चात् कपडे का व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार सामान्य रूप से जीवनक्रम चलने लगा।

आपने विद्याभ्यास तो प्राप्त सुविधानुसार ही किया था। लेकिन बौद्धिक प्रतिभा प्रखर एवं तार्किक होने से प्रत्येक विचार के बारे में सयुक्तिक समाधान-प्राप्ति के लिये उत्सुक रहती थी।

सरल भाव से आचार्यश्री शांतिसागरजी म. ने इसके विषय में कहा कि परिग्रह की परिभाषा मूर्च्छा के रूप में ली जाती है। कमंडलु, मोरपीछी–ये सब साधन हैं। इन पर मूर्च्छा नहीं रखी जाती है तो निष्परिग्रही बन सकते हैं। तब आपने कहा कि 'मुच्छा परिग्गहो वुत्तो' शास्त्र में यही परिग्रह की वास्तविक परिभाषा कही गई है। इस परिभाषा के अनुसार जैसे कर्म, शरीर आदि के अतिरिक्त कमंडलु, मोरपीछी साधन के रूप में रखे जाते हैं, वैसे ही मर्यादित पात्र, वस्त्र भी संयम की साधना के लिये रखे जाते हैं। ये भी धर्मोपकरण साधन हैं। इनमे मूर्च्छा नहीं रखने वाले भी निष्परिग्रही, निर्ग्रन्थ साधु हैं और इसी परिभाषा के अनुसार चतुर्विध संघ की व्यवस्था भी बैठ सकती है एवं छठे गुणस्थान से लेकर सिद्धों के पहले-पहले मूर्च्छारहित शास्त्रोल्लिखित मर्यादित वस्त्र-पात्र रखने वाले सभी साधक निष्परिग्रही निर्ग्रन्थ श्रमण कहलाते हैं। दिगम्बर समाज-मान्य जयधवला, महाधवला नामक ग्रन्थो में भी संयती शब्द से साध्वी को लिया है और वह वस्त्र बिना नहीं रह सकती हैं। अतः मर्यादित वस्त्रों के रखने पर भी उसमें साधुत्व स्वीकार किया गया है।

इसी प्रकार साधु-भिक्षाचरी विषयक वार्त्तालाप के प्रसंग में आपने कहा कि श्वेताम्बर समाज में साधु की भिक्षाचरी के 47 दोष बताये गये हैं, वैसे ही दिगम्बर समाज की मान्यता के मूलाचार आदि ग्रन्थों में साधु की भिक्षाचरी के 46 दोष माने गये हैं। उनमें साधु के निमित्त बनाया हुआ आहार आधाकर्मी माना जाता है और साधु को ग्रहण करना निषिद्ध है। तो फिर जो साधु के लिये विशिष्ट रूप से ताजा घी, आटा, पानी आदि सब चीजों की तैयारी करके आहार-पानी बनाकर मुनि को दिया जाता है और मुनि ग्रहण करते हैं, उसमें आधाकर्मी दोष लगता है या नहीं ? आचार्यश्री शांतिसागरजी म. ने सरलतापूर्वक स्वीकार किया कि इस प्रकार मुनि के निमित्त बनाये हुए आहारादि को लेने से आधाकर्मी दोष लगता है। यह साधु-जीवन नहीं, बल्कि स्वादु-जीवन है।

आपने यह भी पूछा कि आप आचार्य हैं और आचार्य को अकेला रहना कल्पता है क्या ? उन्होंने कहा कि आचार्य का अकेला रहना उपयुक्त तो नहीं है लेकिन मुनि सब काल कर गये हैं, इसलिये मैं अकेला हूँ। एक प्रश्न यह भी उठा कि गृहस्थों से सेवा लेना, घास मंगवाना, घास की कुटिया बनवाना, पाट मंगवाना तथा कमंडलु में पानी मंगवाना आदि साधु के योग्य हैं ? आचार्यश्री शांतिसागरजी म. ने सरलता से कहा कि यह साधु के योग्य नहीं है। इसी तरह गृहस्थ से सेवा लेना उपयुक्त नहीं है, आदि विभिन्न विषयों के बारे में सौहार्दपूर्ण वातावरण में वार्त्तालाप समाप्त होने के पश्चात् दोनों अपने-अपने स्थान पर गये।

कुछ दिन वहां विराजने के पश्चात् वहां से विहार कर मार्ग में आने वाले ग्रामों मे धर्मोपदेश देते हुए वैरागी श्री नानालालजी को दीक्षा देने के लिये आपश्री कपासन पधारे।

भावी उत्तराधिकारी, विरक्त शिष्य का दीक्षा-महोत्सव

वैरागी श्री नानालालजी को दीक्षा देने के समय सं. 1996 मिती पौष शुक्ला 8 व स्थान कपासन की जानकारी समस्त श्रीसंघों को हो चुकी थी। सभी श्रीसंघों मे उक्त महोत्सव के दर्शन करने की उत्सुकता थी और श्रावक-श्राविकाओं के उत्साह में वृद्धि होती जा रही थी।

दीक्षा-समारोह के अवसर पर बड़े चांदमलजी म.सा. ठाणा 3 विशेष रूप से दीक्षा-समारोह पर पधारे। महासतीवर्याएं भी 23 के लगभग थीं। इनके अलावा बाहर के हजारों भाई-बहिन उपस्थित हुए। मेवाड़ का ऐसा कोई ग्राम न था जिसके दो-चार सज्जन दीक्षा-महोत्सव के अवसर पर कपासन न पहुंचे हों। विभिन्न संघों की ओर से दीक्षार्थी का मान-सम्मान किया गया और जुलूस के साथ दीक्षार्थी का दीक्षास्थल पर पदार्पण कराया। आपने दीक्षार्थी के पारिवारिक जनों की स्वीकृति एवं चतुर्विध संघ की अनुमतिपूर्वक वैरागीजी को दीक्षा प्रदान की और नवयुवक श्री नानालालजी पोखरना मुनिश्री नानालालजी म.सा. बन गये।

भावी उत्तराधिकारी शिष्य नानालालजी म.सा. का परिचय

आप द्वारा नानालाल मुमुक्षुजन संयम-साधना के लिये दीक्षित हुए और उन नानाओं में से भी जो नाम से भी नाना हैं, उनका यहां नाना-सा (संक्षिप्त) परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

आपके उत्तराधिकारी मुनिश्री नानालालजी म.सा. का जन्म मेवाड़ प्रेदशान्तर्गत उदयपुर राज्य के जागीरदारी गांव दांता में ओसवालजातीय, पोखरनागोत्रीय श्रीमान् मोड़ीलालजी की धर्मपत्नी श्रीमती शृंगारकंवरबाई की कुक्षि से सं. 1977 में हुआ था।

लगभग 8 वर्ष की बाल्यावस्था में ही, जो माता-पिता के लाड़-प्यार, खेलकूद का समय मानी जाती है, आपको पिताश्री के वरदहस्त से वंचित हो जाना पडा और उस समय से लेकर दीक्षा-तिथि तक अपने भाई, मातुश्री आदि पारिवारिक जनों की छत्रछाया में आपने जीवन -विकास का मार्ग प्रशस्त बनाया। उन दिनों ग्रामीण क्षेत्रों में जैसा विद्याध्ययन का प्रबन्ध था, तदनुरूप आपने शिक्षण प्राप्त किया और पारिवारिक परिस्थितियोंवश बाल्यावस्था में ही आपको जीवकोपार्जन हेतु व्यापार में प्रवृत्त होना पड़ा। प्रारम्भ में गांव की परिस्थिति के अनुसार साधारण परचूण सामान की दूकान की और कुछ समय पश्चात् कपड़े का व्यापार भी प्रारम्भ कर दिया और इस प्रकार सामान्य रूप से जीवनक्रम चलने लगा।

आपने विद्याभ्यास तो प्राप्त सुविधानुसार ही किया था। लेकिन बौद्धिक प्रतिभा प्रखर एवं तार्किक होने से प्रत्येक विचार के बारे में सयुक्तिक समाधान-प्राप्ति के लिये उत्सुक रहती थी।

बाल्यावस्था का एक प्रसंग है कि एक दिन आपकी मातुश्री श्रृंगारकुंवरबाई सतियांजी म.सा. से किसी व्रत का पचखाण करके घर लौटी। लेकिन बालक नानालालजी को यह पचखाण करना-कराना अच्छा नहीं लगा। बालबुद्धि इन सब बातों का ढकोसला और व्यर्थ समझती थी। ऐसा क्यों समझा होगा ? इसके बारे में हमारा अनुमान है कि तार्किक बुद्धि में ज्ञान बिना की क्रिया की उपयोगिता नहीं है और इसके योग्य समाधान के अभाव में मन विद्रोही बन जाता है, जो असंतोष के रूप में प्रगट होता है। फलतः नियम से इतने क्रोधित हो उठे कि और कुछ न सूझा तो मातुश्री जब सामायिक लेकर बैठीं तो अपने मन की खीज मिटाने के लिये उनके सामने रखी हुई रेत की घडी को फोडने को उद्यत हो गये। किन्तु स्नेहमयी माता के प्रयत्न ने उन्हें वैसा नहीं करने दिया।

बालक नानालालजी को उस समय इसका भान नहीं था कि वे क्या कर रहे हैं। समय आया और चला गया। कालप्रवाह में रुकावट नहीं आई। बात आई-गई-सी हो गई और जीवन-क्रम पुनः अपनी गति से बहने लगा। यदि हम वर्तमान के साथ उस समय के बालक नानालालजी की तुलना करें तो आभास होगा कि उस समय आवरण से आच्छादित आत्मिक गुणों का प्रकाश विकसित होने के लिये अनुकूल अवसर चाहता था। परन्तु उचित संयोगों के अभाव में मार्ग भूला हुआ था और जिसका विकृत रूप वह आवेश था।

आपके बाल्यकाल की एक दूसरी घटना है। आपकी बहिन श्रीमती मोतीबाई ने, जो श्रीमान् सवाईलालजी लोढ़ा, भादसोड़ा निवासी को ब्याही थीं, पर्युषण पर्व में पचोले की तपस्या की। लौकिक प्रथा के अनुसार ऐसी तपस्या के प्रसंग पर तपस्विनी बहिन के लिये पितृगृह (पीहर) से वस्त्रादि भेजने का नियम है और यह शुभ कार्य प्रायः घर के मुखिया द्वारा सम्पन्न होता है। परन्तु उस समय कार्यवशात् बालक नानालालजी के ज्येष्ठ भ्राता को भादसोडा पहुंचने की सुविधा न हो सकी। अतः यह कार्य आपको सौंपा गया। यद्यपि ऐसे कार्यों में आपको रस नहीं था लेकिन पारिवारिक प्रतिष्ठा के खयाल से आप वस्त्र आदि लेकर भादसोड़ा पहुंचे।

भादसोड़ा में मेवाड़ी मुनिश्री चौथमलजी म.सा. चातुर्मासार्थ विराज रहे थे। पर्युषण पर्व होने से उन दिनो व्याख्यान में अन्तकृत सूत्र का वांचन होता था। आप भी व्याख्यान सुन गये। प्रसंगवश उस समय पांचवें और छठे आरे का वर्णन चल रहा था, जो आपके कर्णगोच हुआ और कथा सुनने का शौक होने से कुछ कथाभाग याद रह गया। लेकिन उसका हृद पर कुछ भी असर नहीं हुआ।

बहिन को वस्त्रादि देकर आपने अपने ननिहाल भदेसर जाने का विचार किया अ संवत्सरी महापर्व का दिन होते हुए भी आप ननिहाल की ओर चल पडे। बहिन आदि ने उ ...न न जाने के लिये समझाया भी, लेकिन रुके नहीं और अश्वारूढ़ हो चल पड़े।

मार्ग मे चारों ओर हरी-भरी वनराजि व्याप्त थी। वर्षाऋतु की समाप्ति और शरद् के सुहावने मौसम एवं मंद-मंद बहने वाली बयार ने आपको मनोमंथन के योग्य अवसर प्राप्त करा दिया। अश्व अपनी गति से चल रहा था लेकिन मन-अश्व की गति पूरे वेग मे थी। व्याख्यान में सुनी छह आरों की व्याख्या आपकी स्मृति में घूम गई। मंथन करते-करते ही मार्ग मे आपके मन में बिजली-सी कौध गई। ज्ञान के सम्यक् प्रकाश की किरण झलक उठी और मन मे एक झटका-सा लगा और एक क्षण पहले जो मन धर्मविमुख था, वह धर्माभिमुख हो गया।

प्रकाशप्राप्ति के साथ ही आपको अपने पूर्व विचारों एवं कार्यो के प्रति पश्चात्ताप होने लगा। अतीत में मातुश्री को धर्म-ध्यान न करने देना, त्याग-प्रत्याख्यान करने से रोकना, संवत्सरी दिवस होने से बहिन आदि के द्वारा रोके जाने पर भी चल देना आदि अपने बालकृत्यो का इतना पश्चात्ताप हुआ कि अन्तरंग पर आवृत मल नेत्रो द्वारा बह निकला। ग्लानि आंसुओं के साथ गलित होने लगी। बूंद-बूंद में टपकने वाले आंसू चौधारा मे रूपान्तरित हो गये और जब इतने से भी परिताप शात न हो सका तो आवेगों ने आक्रंदन का रूप अपना लिया। यह कितने समय तक चलता रहा, पता ही न पडा। खूब बहा, खूब बहा और माता धरित्री ने उस मैल को अपने आंचल मे समेट लिया। क्योंकि वह मा थी और मां की ममता सदैव मंगलमयी होती है।

आखिर मन को शांति मिली और उसी समय संकल्प किया कि मैं स्वयं धर्म-करणी करूंगा और करने वालो को सहायता दूंगा। इसी सत्संकल्प के साथ आपके जीवन का नया अध्याय प्रारम्भ हुआ, सोने का सूरज उगा। दृष्टि के बदलते ही सृष्टि भी बदल गई। धर्म-मार्ग पर चलने के निश्चय के साथ ही अब जिज्ञासाएं बढने लगीं– धर्म क्या है ? धर्म क्यों करना चाहिये ? धर्माचरण के लिये क्या करना पडता है ? इस क्या और क्यों के समाधान के लिये मन उत्सुक रहने लगा। गृहकार्यो से मन उचटने लगा। अब तो दूसरे मार्ग पर चल पड़ने के विचार आने लगे। आप धर्म की गहराई तक पहुंचना तो चाहते थे, लेकिन सुयोग्य मार्गदर्शक का सुयोग उपलब्ध नहीं होने से अपने मन में सोचते, तर्क करते, समाधान का प्रयत्न भी करते; लेकिन सन्तोष नहीं होता था। अर्न्तद्वन्द्वो की निवृत्ति के लिये अब आपने सन्तो की सेवा में रहने का निश्चय कर लिया। इस समय आपकी आयु करीब 15-16 वर्ष की रही होगी, जबकि किशोर मन मे नये-नये अनुभवों, विचित्रताओं एवं आकर्षणों का कोषसंग्रह करने की उद्दाम भावनाएं हिलोरें लेती रहती हैं।

अतः आप चल पड़े योग्य गुरु के सुयोग की खोज में। प्रारंभ मे पूज्यश्री मोतीलालजी म.सा. (मेवाड़ी) का संयोग मिला। उन दिनों पूज्यश्री चातुर्मास हेतु बदनौर विराज रहे थे। अत. आप बदनौर पहुंचे। वहाँ 3-3 मास रहे और समाधान के लिये प्रयत्न करते रहे, लेकिन

जितना समाधान कर पाते उससे जिज्ञासाओं की संख्या दुगुनी होती जाती थी। इस प्रकार की मन.स्थिति के बीच आपको कारणवशात् बदनौर से ब्यावर जाना पड़ा।

उन दिनों ब्यावर में आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के सुशिष्य पं. र. मुनिश्री जौहरीमलजी म.सा. विराज रहे थे। उनके सान्निध्य में धार्मिक आचार-विचारों आदि का अध्ययन-मनन किया और अपनी जिज्ञासा के समाधान का भी प्रयत्न किया। वहीं पर विभिन्न सन्त-मुनिराजों की थोड़ी-बहुत जानकारी के साथ यह भी मालूम हुआ कि पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. की एक अलग सम्प्रदाय है और वर्तमान में इस सम्प्रदाय की व्यवस्था युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. संभालते हैं। पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. खादी पहनते हैं और दूसरों को भी विदेशी वस्त्र या चर्बी लगे वस्त्र न पहनने का उपदेश देते हैं।

यह युग गांधीयुग कहलाता था और स्वदेशी आंदोलन नगरों से होता हुआ भारत के गांव-गांव में फैल चुका था। आप भी म.स. द्वारा स्वावर्त सूत्रोक्त राष्ट्रधर्म के अनुरूप इससे प्रभावित थे। अतः बुद्धि तुलना करने लगी कि जिस संप्रदाय में खादी का उपयोग हो और जिसके आचार्य राष्ट्रधर्म का उपदेश देते हों, वे अच्छे ही होने चाहिये। इस विचार से आपकी जिज्ञासा बढ़ी और उनके निकट सम्पर्क में पहुंचने की भावना भी संजोयी। लेकिन बदनौर वापस आना आवश्यक होने से आप ब्यावर से बदनौर आकर अपने गांव दांता लौट आये।

आपका मन अब घर में नहीं लगता था। उसकी वृत्ति 'गेही पै गृह में न रचै, ज्यों जल में भिन्न कमल है' जैसी हो चुकी थी। पारिवारिक जनो को भी इसका स्पष्ट आभास मिल चुका था। अतः बढते चरणों को अवरुद्ध करने के लिये उनकी ओर से प्रयत्न होता, उतना ही प्रगति के लिये प्रयास करने का बल आपको प्राप्त हो रहा था। सन्तों के सहवास से आप यह भलीभांति ज्ञात कर चुके थे कि सन्त-सतियों में लम्बी-लम्बी तपस्याएं होती हैं। कोई-कोई तो केवल छाछ के आधार पर महीनों निकाल देते हैं। इन वृत्तान्तों को सुनकर आपने भी इन्हें अपने आचरण में उतारने का निराला संकल्प लिया। आपने सोचा, यदि कोई तपस्या करके कुछ दिनों निराहार रह सकता है अथवा कोई छाछ के आधार पर महीनों गुजार देता है तो फिर मैं केवल पानी पर ही क्यों नहीं रह सकता ? अजीब सूझ थी यह, अपूर्व संकल्प था यह, जिसे आपने अपने भावी जीवन में साकार रूप दिया। किन्तु आप जैसे आत्मबली के लिये यह कुछ विशेष महत्त्व नहीं रखता है।

त्याग के मार्ग पर बढ़ने के लिये कठिनाइयों पर विजय पाने की सामर्थ्य प्राप्त करना आवश्यक है और उसमें भी रसनेन्द्रिय का संयम रखना तो विशेष आवश्यक होता है। अतः अपने संकल्प को साक्षात् करने के लिये आप प्रातः आधी [illegible] और सायं पाव रोटी पर रहने लगे। यह क्रम कई महीनों तक चलता [illegible] कृश हो गया। एक दिन

ऐसा भी प्रसंग आया कि शारीरिक कृशता के कारण चक्कर आने से गिर पडे। लेकिन आप तो निर्धारित लक्ष्य की ओर बढने का संकल्प कर चुके थे। अतएव यह कसौटी आपको अपने संकल्प से विचलित नहीं कर सकी।

आप बाल्यकाल से ही तार्किक थे, यह बात पहले स्पष्ट हो चुकी है। जिज्ञासाओ के समाधान के लिये आपकी ज्ञान-पिपासा गुरुगम की चाह में बढने लगी। पारिवारिक जनों की ओर से व्यवधान तो डाले ही जा रहे थे कि अकस्मात् इन्हीं दिनों एक सामाजिक भोज के प्रसंग में आपको कपासन जाना पडा। वहां मुनिश्री इन्द्रमलजी म.सा. की सेवा का अवसर मिला। इसके पूर्व पूज्यश्री काशीरामजी म.सा. तथा दिवाकरजी म.सा. के सन्तों एवं अन्यान्य सन्तो की सेवा, वाणी-श्रवण का भी प्रसंग प्राप्त हो चुका था और उन्होंने आपकी दिनचर्या से अनुमान लगाया था कि आप भावी संत हैं। अतः अपनी ओर आकृष्ट करने के लिय अनेकानेक प्रलोभन प्रस्तुत किये जाते थे। एक ने कहा– हमारे पास साधु बनने से किसी प्रकार का कष्ट नहीं होगा। दूसरे ने फरमाया– चेला बन जा, हम अपनी सब विद्याएं तुझे समर्पित कर देंगे। तीसरे ने उससे भी दो कदम आगे बढकर कहा कि मेरा शिष्य बनेगा तो तुझे सम्प्रदाय का मुखिया बना दूंगा। चौथे ने अपना महत्त्व जताते हुए बताया कि ज्यादा सोच-विचार में पड़ने की जरूरत नहीं, हमारे जैसे सन्त और हमारे जैसा सम्प्रदाय नहीं मिलेगा आदि-आदि। परन्तु आपको आत्म-तुष्टि नहीं हुई और सोचते रहे कि अन्यान्य सन्तों को भी देख लेना चाहिये।

विचारानुसार आपने युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा में पहुंचने का निश्चय किया और एक दिन घर पर बिना कुछ कहे-सुने कपासन पहुंचे। वहां से श्री मीठालालजी चंडालिया के सहयोग से रतलाम होते हुए उस समय कोटा विराजित युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा में जा पहुंचे।

युवाचार्यजी से आपका प्रथम परिचय कपासन के वैरागी के रूप में कराया गया। बाद में आपने अपना पूर्ण परिचय स्वयं दिया और युवाचार्यश्री के प्रथम दर्शन, मधुर वाणी, तप, तेज से ऐसे प्रभावित हुए कि बस, यही महापुरुष मेरे गुरु बन सकते हैं।

मन में ऐसा संकल्प कर प्रार्थना की कि मैं आपसे भागवती दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ। लेकिन स्वीकृति के बदले साधुता क्या है ? और गुरु की परीक्षा करने के बाद दीक्षा लेने की बात सोचो, यह संकेत मिला। यह बात आप को अपूर्व प्रतीत हुई और संकेत का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मन-ही-मन आपने दृढ संकल्प कर लिया कि शिष्य बनना है तो इन्हीं का बनना है।

अब साथ-साथ पैदल विहार, ज्ञान व संयम-साधना का अभ्यास प्रारम्भ हो गया। इस

प्रकार पदयात्रा करते हुए भावी गुरु के साथ आप सं. 1996 में उदयपुर आये। संकल्प सुदृढ़ हो गया था। अतः उसको साक्षात् करने के लिये पारिवारिक जनों से स्वीकृति-पत्र प्राप्त करने हेतु उदयपुर से दांता आये। परन्तु जब आपको सहज ही आज्ञा-पत्र नहीं मिला तो आपको तेले का तप करना पड़ा और जब तक आज्ञा-पत्र प्राप्त न हो जाये तब तक घर पर भोजन न करने का संकल्प कर लिया।

अन्त में आपके संकल्प को देख पारिवारिक जनों को स्वीकृति देना उपयुक्त प्रतीत हुआ और पारिवारिक जनों की स्वीकृति एवं चतुर्विध संघ की सहमति से सं. 1996, मिती पौष शुक्ला 8, गुरुवार को प्रातः 9.30 बजे कपासन में आपने युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा में भागवती दीक्षा अंगीकार करके अपने को धन्य माना।

दीक्षित होते ही आपने गुरुगम से अध्ययन करना आरम्भ कर दिया। सुयोग्य शिष्य की ओर उन्मुख गुरु की ज्ञानगरिमा ने शिष्य को सिद्धान्त, व्याकरण, षड्दर्शनों का गहन अध्ययन कराया। और शिष्य की धारणा-शक्ति एवं तार्किक-बुद्धि जिस किसी भी साहित्य को देखती तो उसके अन्तर् तक पहुंच कर विराम लेती थी और जिज्ञासावृत्ति ने प्रतिभा को विकसित करने में पूरा-पूरा योग दिया।

दीक्षा-क्षण से लेकर गुरु के जीवनान्त तक परछाईं की तरह साथ रहकर आज आप उनके आदर्शों को साकार रूप देकर मानव-समाज के हितार्थ साधना में तत्पर हैं। गुरु गणेश से जीवन का श्रीगणेश कर, गण-ईश बन, नामतः नाना होकर भी भावतः गणेश हैं एवं 'हुशिउचौश्रीजगनाना' जो जगत् में नम्रता से लघु से लघुतर हो, वही सबसे उच्च गौरव को प्राप्त करता है, को सार्थक सिद्ध कर रहे हैं।

यह है चरितनायक के भविष्य में उत्तराधिकारी मुमुक्षु शिष्य का संक्षिप्त परिचय।

आचार्यश्री और युवाचार्यश्री का मधुर मिलन

दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् युवाचार्यश्रीजी ने सन्त-समूह के साथ पौष शुक्ला 10 को विहार किया। कपासन से भदेसर, बड़ी सादड़ी, छोटी सादड़ी, नीमच होते हुए जावद पधारे। जावद में माघ शुक्ला 11 को निंबाहेड़ा निवासी वैरागी श्री मगनमलजी चौपड़ा की दीक्षा सम्पन्न हुई। फिर निंबाहेड़ा, चित्तौड़ आदि मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों को विहार और धर्मदेशना से पावन करते हुए मारवाड़ की ओर पधारे। जैसे मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्र आपकी प्रतिभा और विद्वत्ता का लाभ उठाने के लिये उत्सुक रहते थे, उसी प्रकार मारवाड़ की ओर आपका पदार्पण होने के सामाचार ज्ञात कर मारवाड़ के श्रीसंघ भी अपने-अपने क्षेत्र में पधारने व चातुर्मास कराने के लिये उत्कण्ठित हो उठे। विभिन्न श्रीसंघों की ओर से आगामी चातुर्मास

हेतु विनम्र विनतियां आपकी सेवा में प्रस्तुत की जाने लगीं। लेकिन अभी चातुर्मास के लिये काफी समय था।

इन्हीं दिनों सं. 1996 का अहमदाबाद चातुर्मास पूर्ण होने के बाद पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. भी सौराष्ट्र, गुजरात में जैन धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते हुए मारवाड़ की ओर पधार रहे थे। उन क्षेत्रों की जलवायु शारीरिक स्वास्थ्य के अनुकूल न होने और वृद्धावस्था के कारण आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य मे निर्बलता आ गई थी। जिससे अब स्थिरवास की आवश्यकता विशेष रूप से अनुभव होने लगी थी।

वैसे तो अहमदाबाद में ही स्वास्थ्य उत्तरोत्तर क्षीण होता जा रहा था, फिर भी आचार्यश्रीजी बेला, तेला, उपवास आदि तपस्याएं करके स्वास्थ्य को टिकाये रहे, लेकिन सुस्ती और कमजोरी में वृद्धि होती ही गई। यथासमय चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पालनपुर, मेहसाना आदि स्थानों को फरसते हुए मारवाड़ सादड़ी मे पदार्पण किया। इधर से चरितनायकजी भी फाल्गुन शुक्ला 13 को आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हो गये।

वर्षों के पश्चात् गुरु-शिष्य के मिलन का यह दृश्य अलौकिक था। आचार्यश्री के चरणों मे अपने को पाकर विनीत शिष्य आत्म-विभोर थे तो शिष्य की विद्वत्ता, प्रतिभा, ऋजुता एवं मृदुता का अवलोकन कर गुरु आत्मगौरव से पुलकित थे।

ब्यावर संघ की भावभरी विनती

यहाँ नयानगर (ब्यावर) का संघ पूज्य आचार्यश्री एवं युवाचार्यश्री की सेवा में उपस्थित हुआ। संघ के आगीवान श्रावकों ने गुरु-चरणों में भावभरी विनती प्रस्तुत की कि ब्यावर में हितेच्छु श्रावक मण्डल का अधिवेशन हो रहा है। इसी अवसर पर सम्प्रदाय के सन्त-महात्माओं का भी एक सम्मेलन हो जाए तो संगठन की दृष्टि से उचित होगा। पूज्यप्रवर साम्प्रदायिक संत-सम्मेलन करने का विचार कर ही रहे थे, ब्यावर संघ के अत्याग्रह को देखते हुए एवं सन्त-महासतियाँजी की अनुकूलता को दृष्टिगत रखते हुए ब्यावर संघ को क्षेत्र स्पर्शने की स्वीकृति प्रदान कर दी गई। ब्यावर संघ इस स्वीकृति से बाँसों उछलने लगा।

सम्प्रदायस्थ संत-सती सम्मेलन

आचार्यश्री, युवाचार्यश्री का मार्गवर्ती क्षेत्रों को वीर-वाणी से आप्लावित करते हुए चैत्र शुक्ला 5 को ब्यावर शुभागमन हुआ। हजारों की संख्या में जन-सैलाब उमड पड़ा। वर्षों के पश्चात् सूर्य और चन्द्र को एक साथ देखने के लिए श्रद्धालु अपना लोभ संवरण नहीं कर सके।

स्थविर सन्त श्री बोथलालजी म., श्री मोड़ीलालजी म. ठाणा 6 यहाँ पूर्व से ही

विराजमान थे। बड़े श्री चाँदमलजी म. ठाणा 3 पार्श्ववर्ती क्षेत्रों को स्पर्शकर पुनः ब्यावर पधार गये। श्री बख्तावरमलजी म. ठाणा 3 भी स्वास्थ्य की प्रतिकूल परिस्थितियों में भी रायपुर से विहार कर पधार गये। महासतीश्री खेतांजी महाराज के सम्प्रदाय की प्रवर्तनीश्री राजकुंवरजी महाराज, श्री सुगनकँवरजी महाराज ठाणा 15, महासतीश्री रंगूजी महाराज के सम्प्रदाय की श्री सोनाजी महाराज, श्री सोहागांजी महाराज, ठाणा 23 महासती श्री मोतांजी महाराज के सम्प्रदाय की महासतीश्री सुन्दरजी महाराज, महासतीश्री सिरहकँवरजी महाराज ठाणा 7 भी उपस्थित थे। इस प्रकार 29 सन्त महापुरुष एवं 73 महासतीवर्याओं की विद्यमानता के अलावा महासतीश्री नन्दकंवरजी महाराज के सम्प्रदाय की महासतियाँ, पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. के सम्प्रदाय की महासतियों की मौजूदगी भी ब्यावर के आध्यात्मिक माहौल को सुरम्य बना रही थी।

हितेच्छु मण्डल का अधिवेशन और सम्प्रदाय के सन्तों का सम्मेलन आकर्षण का कारण था। अतः हजारों की तादाद में दर्शनार्थियों का ताँता लग गया। बीकानेर-भीनासर तो मानों उठकर ब्यावर ही आ गया। ब्यावर तीर्थ-स्वरूप बन गया।

पूज्य युवाचार्यश्रीजी के नियमित प्रवचन चलते थे। चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को ब्यावर निवासी श्री किसनलालजी कर्णावट ने सपत्नीक शीलव्रत स्वीकार किया।

दिनांक 18 अप्रैल 1940 से सन्तो की बैठक प्रारंभ हुई जो 24 अप्रैल तक निराबाध चली। सम्प्रदाय के संगठन की सुदृढ़ता, सन्तों के पारस्परिक प्रेम-संवर्धन एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि-इन तीन विन्दुओं पर गहन चर्चा चली और सर्वानुमति से विभिन्न निर्णय हुए।

सम्प्रदाय की चली आ रही समाचारी का दृढता के साथ पालन करने की सभी सन्तों को हिदायत दी गई। आचार-क्रान्ति की दृष्टि से यह सम्मेलन हुक्म-संघ-सम्प्रदाय में मील का पत्थर साबित हुआ।

सम्प्रदाय की सुव्यवस्था बराबर कायम रहे, जिसके लिए सभी सन्तों ने पूज्य युवाचार्यश्रीजी की आज्ञानुसार प्रवृत्ति, चातुर्मास, विहार, वैयावच्च करते रहने की स्वीकृति प्रदान की तथा प्रतिज्ञा की कि युवाचार्यश्री की आज्ञा की अवेहलना नहीं करेंगे।

संतों के स्थानापन्न (ठाणापति) होने के लिये बीकानेर और ब्यावर क्षेत्र नियत रखे गये। सभी सन्तो को यह निर्देश दिये गये कि आचार्य/युवाचार्य की बिना आज्ञा कोई भी सन्त अन्यत्र कहीं ठाणापति होंगे तो उनका उत्तरदायित्व सम्प्रदाय के आचार्य और साधुओं पर नहीं रहेगा।

युवाचार्यश्री की हृदय-परिवर्तन की कला

युवाचार्यश्री हृदय-परिवर्तन पर विश्वास रखते थे। शास्त्रीय नियम हो अथवा साम्प्रदायिक

नियम, वे उसकी अनुपालना के लिये साधक की मनोभूमि को तैयार करते। ब्यावर-बैठक मे 'एक शिष्य परम्परा' पर चर्चा चली। बहुमत एक शिष्य परम्परा के पक्ष मे था, पर कुछ सन्त चाहते थे कि शिष्य अपने-अपने हो। काफी लम्बी चर्चा के पश्चात् आचार्यवर की आज्ञा प्राप्त कर युवाचार्यश्री ने उदारता का परिचय देते हुए फरमाया–"जिन-जिन सन्तो की इच्छा अपनी नेश्राय में शिष्य करने की हो, वे साधु-सम्मेलन के दीक्षा सबंधी नियमो का पालन करते हुए अपने द्वारा उपदिष्ट मुमुक्षु को खुशी-खुशी अपनी नेश्राय में दीक्षा प्रदान कर सकते हैं।

युवाचार्यप्रवर के मुखारविंद से ये उदारताभरे विचार सुनकर अपनी नेश्राय में शिष्य करने के इच्छुक सन्त जहां हर्षित हुए वहां अन्य सन्त आश्चर्यित हो उठे। मन शंकित हो उठा कि यह 'एक शिष्य परम्परा' कैसे चलेगी !

दीर्घद्रष्टा युवाचार्यश्रीजी ने हर्ष और आश्चर्य से मिश्रित वातावरण में अपनी अभिव्यक्ति को आगे बढाया–"उन शिष्यों को निभाने का भार उनके गुरु (दीक्षा-दाता) पर रहेगा।"

युवाचार्यप्रवर का स्पष्ट मत था कि जिसके शिष्य नही होगा तो उनकी सेवा की जवाबदारी सम्प्रदाय की नही रहेगी तथा जिसका शिष्य नहीं निभेगा उसकी जिम्मेदारी भी सम्प्रदाय पर नहीं रहेगी।

यह सुनते ही बैठक में नीरवता का वातावरण व्याप्त हो गया। उन सन्तों के पास भी 'एक शिष्य परमपरा' मानने के अलावा कोई चारा नहीं था। धीरे-धीरे सभी संत एक विचारधारा में ढल गये। युवाचार्यप्रवर के गहन चिन्तन ने संगठन को बचा लिया और विवादास्पद स्थिति भी नहीं होने दी।

अजमेर में अक्षय तृतीया और समाजसुधार पर प्रवचन

अजमेर श्रीसंघ एवं वहां के प्रमुख श्रावक सेठ श्री गाढमलजी लोढा की साग्रह विनती को लक्ष्य में रखते हुए आचार्यश्रीजी का ब्यावर मे विराजित सभी सन्तों के साथ अजमेर मे पदार्पण हुआ। महासती रंगूजी म. की सम्प्रदाय की सतीश्री केसरजी, राजकॅवरजी, विदीजी महाराज आदि काफी सतियॉजी का भी पदार्पण हुआ। चतुर्विध संघ के विराजने से अजमेर एक तीर्थक्षेत्र-सा हो गया।

वैशाख शुक्ला 3 (अक्षय तृतीया), दि. 10 5.40 को वर्षीतप महोत्सव होने से अनेक क्षेत्रो के आगत श्रोताओं की उपस्थिति मे चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने भगवान ऋषभदेव के पारणे का सरस वर्णन करते हुए भगवान के जीवन पर विशद प्रकाश डाला, जिसका श्रोताओं पर बहुत ही गहरा प्रभाव पडा।

वैशाख शुक्ला 4, दि: 11.5.40 को व्याख्यान के प्रसंग में युवाचार्यश्रीजी ने वृद्धविवाह की हानियों, सामाजिक रूढ़ियों आदि का विवेचन किया। इसका यह प्रभाव हुआ कि बहुत-से भाइयों ने 40 वर्ष से अधिक उम्र वाले व्यक्ति के विवाह में सम्मिलित न होने और बहिनों ने विवाहादि प्रसंगों पर अश्लील गीतों के न गाने की प्रतिज्ञा ले ली। इसके अतिरिक्त तप-त्याग आदि विविध धार्मिक आचरण किये जाने से अजमेर में अनेक उपयोगी कार्य सम्पन्न हुए।

अजमेर में विभिन्न श्रीसंघो की ओर से अपने-अपने क्षेत्र में चातुर्मास करने हेतु पुनः विनतियां दोहराई गईं। सभी अपने-अपने यहां आगामी चातुर्मास होने के लिये आशा लगाये हुए थे। लेकिन द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को ध्यान में रखते हुए सं. 1997 के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का बगड़ी और युवाचार्यश्रीजी का फलौदी चातुर्मास स्वीकृत हुआ।

फलौदी चातुर्मास

अजमेर से यथासमय विहार करके आपश्री ब्यावर,, जोधपुर आदि मार्गवर्ती क्षेत्रों में धर्मोपदेश देते हुए खीचन पधारे। खीचन में पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की संप्रदाय के वयोवृद्ध स्थविर श्री रतनचन्दजी म.सा. आदि मुनिवरों के साथ वात्सल्यपूर्वक व्यवहार बहुत ही प्रशंसनीय रहा। व्याख्यान इत्यादि के अलावा धर्म-ध्यान-त्याग-तप का भी अच्छा वातावरण रहा।

पूज्य युवाचार्यप्रवर ठाणा 6 खीचन से विहार कर आषाढ शुक्ला 9 को चातुर्मासार्थ फलौदी पधारे। चतुर्विध संघ में हर्ष की लहर व्याप्त हो गई। पूज्यश्री के पदार्पण के साथ ही धर्म-ध्यान का अद्भुत वातावरण बन गया। त्याग-तप की झड़ी लग गई। ओजस्वी प्रवचनों की ऐसी धूम मची कि जनता का प्रवाह बढता ही गया।

26 अगस्त, कृष्ण जन्माष्टमी को आम बाजार में प्रवचन हुआ। कर्मयोगी श्रीकृष्ण के विषय मे जैनाचार्य के मुखारविन्द से ढाई घण्टे तक विस्तृत प्रभावोत्पादक प्रवचन सुनकर जनता हर्षविभोर हो गई। स्थानीय एवं जोधपुर आदि बाहर की हजारों की संख्या में उपस्थिति थी। राज्य कर्मचारी, ऑफिसर इत्यादि ने भी प्रवचन का लाभ लिया। श्री दौलतरूपचन्दजी भण्डारी के जोशीले भजनों का भी जनता ने लाभ उठाया।

पर्युषण में त्याग, तप तथा पौषध की होड़ लग गई। आसोज सुदी 10, गुरुवार को कानोड के श्री नारायणलालजी धींग की 18 वर्ष की आयु में ओसवालों के नोहरे में दीक्षा सम्पन्न हुई। श्री अलसीदासजी कंवरीलालजी चौरड़िया के यहां से दीक्षा का जुलूस निकला। पूरे फलौदी में श्रद्धा का ज्वार उमड़ पडा। इस अवसर पर श्री सिरहमलजी महाराज, पं. श्री

समर्थमलजी म.सा. एवं महासतीवृन्द भी खीचन से पधारे। दीक्षा के माहात्म्य पर युवाचार्यश्रीजी एवं पं. श्री समर्थमलजी म.सा. का व्याख्यान हुआ। कार्तिक बदी 4 को सदर बाजार मे 'अहिंसा' पर प्रभावक प्रवचन हुआ। श्री हाकिम साहब, राज कर्मचारी आदि भारी संख्या मे उपस्थित थे। अहिंसा पर मार्मिक प्रवचन सुनकर श्रोताओं के दिल में हिसा से स्वतः नफरत हो गई। अनेकविध त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

वगड़ी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा सीधे रास्ते से बलुन्दा पधारने वाले थे परन्तु सेवाज में परम गुरुभक्त श्री माणकचन्दजी म. सा. उपस्थित हुए और निवेदन करने लगे कि भगवन ! सोजत रोड मे मेरे यहा शादी का प्रसग है। आपके पदार्पण से सभी को दर्शन-सेवा आदि का लाभ प्राप्त होगा। आप कृपा कीजिए ! परम कारुणिक जवाहराचार्य भक्त की भावना के मद्देनजर सोजत रोड पधारे तथा वहाँ 10-12 दिन विराजे। तत्पश्चात् पूज्य युवाचार्यश्रीजी का फलौदी चातुर्मास सम्पन्न कर सोजत सिटी की तरफ पधारने का आभास होने से आचार्यश्रीजी ने सोजत सिटी की तरफ विहार किया। अपने उत्तराधिकारी के आगमन की प्रतीक्षा में रत आचार्यश्री की सेवा मे 17 संत एवं 27 सतियो का संगम हो गया।

पूज्य युवाचार्यप्रवर सालावास में ज्वराक्रान्त हो जाने से सोजत सिटी कुछ विलम्ब से पौष वदी एकम को पधारे। सोजत तीर्थ-स्वरूप बन गया।

वगड़ी में पूज्य आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य में सुधार नहीं हुआ और अब रोग-जर्जरित देह विहार में असहयोग-सा एवं स्थिरवास की आवश्यकता व्यक्त करती थी। स्थिरवास के लिये भीनासर, बीकानेर, अजमेर, ब्यावर, रतलाम, उदयपुर, जलगांव आदि स्थानों की काफी समय से विनतियां हो रही थीं, लेकिन बीकानेर-भीनासर श्रीसघो के सौभाग्य से आचार्यश्रीजी ने उनकी विनती स्वीकार करली और तदनुसार युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तो के साथ सोजत से बीकानेर की ओर विहार कर दिया।

आचार्यश्री, युवाचार्यश्री आगे-पीछे साथ-साथ विहार करते रहे। सोजत से सोजत रोड, वगडी, जयतारण होते हुए दोनों महापुरुषों ने ठाणा 19 से बलुन्दा पदार्पण किया। बलुन्दा में प्रवर्तनीश्री केशरकंवरजी आदि काफी साध्वियाँ भी पधारीं। सेठ श्री छगनमलजी मुथा लम्बे समय से गुरु-सेवा के लिये बलुन्दा ही रुके हुए थे। उन्होंने गुरु-सेवा के साथ स्वधर्मी वात्सल्य का भरपूर लाभ उठाया।

आचार्यश्रीजी आदि सन्तों के जोधपुर के निकट पधारने पर वहां के भाई अपने यहा पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए सीधे बीकानेर की ओर विहार होना उचित समझा गया। बलुन्दा में आचार्यश्री का

पुन. स्वास्थ्य खराब हो गया और जैसे-तैसे स्वास्थ्य में कुछ सुधार होने पर मेड़ता होते हुए आचार्यश्री, युवाचार्यश्री कुचेरा पधारे। कुचेरा में पूज्यवरों के पधारने से संघ मे नई चेतना का संचार हो गया। श्री ताराचन्दजी सा. गेलडा, मोहनमलजी सा. चौरड़िया, इन्दरचन्दजी सा. गेलड़ा प्रभृति संघ-प्रमुखों ने पूज्यश्री की सेवा का खूब लाभ उठाया। यहाँ से नागौर होते हुए गोगेलाव, अलाय होते हुए नोखामण्डी पधारे। यहां से आचार्यश्रीजी सीधे देशनोक होते हुए बीकानेर एवं युवाचार्यश्री पॉचू, रासीसर होते हुए देशनोक पधारे।

तपस्वी हमीरमलजी म. का स्वर्गारोहण

बालेसर में जन्मे घोर तपस्वी, वैय्यावची श्री हमीरमलजी म. को कुछ दिनों से बुखार चल रहा था, बाद में निमोनिया हो गया। आपने पूज्य युवाचार्यश्रीजी के समक्ष आत्म -आलोचना की। फिर चैत्र शुक्ला नवमी को दिन के 3 30 बजे संथारा ग्रहण किया और रात्रि को 11 बजे पूर्ण समाधि के साथ नश्वर शरीर का परित्याग किया। पूज्य युवाचार्यश्री ने आत्म-समाधि में अंतिम समय अच्छा सहयोग प्रदान किया। मुनिश्री के अंतिम परिणाम अत्यन्त विशुद्ध रहे।

उदयरामसर में बकरे को अभयदान दिलाया

युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त विहार करते हुए बीकानेर के निकटस्थ उदयरामसर पधारे। वहां शौचादि के निमित्त कुछ मुनिवर जंगल गये। रास्ते में उन्होंने देखा कि कुछ लोग मन्दिर पर एक बकरे को मारने के लिये तैयारी कर रहे हैं। इस दृश्य को देखकर उन मुनिवरों में से मुनिश्री सुन्दरलालजी म.सा. ने तत्काल वापस लौटकर युवाचार्यश्रीजी की सेवा में स्थिति का निवेदन किया और तत्काल युवाचार्यश्री घटनास्थल की ओर चल पड़े। घटनास्थल की कुछ दूरी से ही युवाचार्यश्री ने मारने वाले को आवाज दी– 'मत मारो'। अहिंसा के मसीहा की वाणी ज्यों ही मारने वाले के कानों में पड़ी, त्योंही तलवार गरदन पर गिरते-गिरते रुक गई। पूज्य युवाचार्यश्री उसके नजदीक पहुँचे और बडे प्रेम से उसे पूछा– भाई-क्यों मारता है इस बकरे को ? इसने क्या अपराध किया ? मारने वाले ने कहा– मेरी पत्नी बीमार थी अतः मैंने 'बोलमा' (मिन्नत) की है। बोलमा बकरे की करी अतः बकरे की बलि देऊंगा। युवाचार्यश्री ने फरमाया– माताजी बलि नहीं चाहते, यदि चाहेंगे तो वे स्वयं ले लेगे। तुम माताजी के पास बकरा छोड़ जाओ। पहले तो उसने आनाकानी की, फिर अहिंसा का स्वरूप समझाने पर वह समझ गया। उसने बलि का इरादा त्याग कर बकरे को 'अमर' कर दिया। दूसरे दिन व्याख्यान के समय वे सभी युवाचार्यश्रीजी का व्याख्यान सुनने के लिये आये। त्याग-नियम ग्रहण किये। इसके सिवाय समयानुसार और भी त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

उदयरामसर से भीनासर, गंगाशहर होते हुए आचार्यश्रीजी आदि सभी सन्तो ने वीकानेर में पदार्पण किया। आचार्यश्री, युवाचार्यश्री आदि ठाणा 20 तथा महासतीश्री रगूजी म. की संप्रदाय की महासतीश्री सोहनकंवरजी म. ठाणा 5 महासतीश्री नन्दकंवरजी म. की सप्रदाय की महासतीश्री मानकंवरजी, अनोपकंवरजी म. ठाणा 14, महासतीश्री सुन्दरकंवरजी म. ठाणा 3 का सान्निध्य बीकानेर के श्रद्धालुओं के लिए अपार हर्ष का हेतुभूत वना।

बीकानेर नगर बड़ा है। बाहर के दर्शनार्थियों का तो मेला-सा ही लगा रहता था। बीकानेर श्रीसंघ ने उनके सम्मानादि की समुचित व्यवस्था की थी, किन्तु गर्मी की अधिकता आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं पड़ी।

आचार्यश्री दिन में सेठिया कोटड़ी में तथा सायंकाल को श्री अजीतमलजी पारख के बंगले में, जो शहर के बाहर है, विराजते थे। प्रतिदिन युवाचार्यश्रीजी अपनी वाणी से धर्मामृत का पान कराते, जिससे श्रोताओं के हृदय गद्‌गद हो उठते थे। प्रवचन-समय के सिवाय चरितनायक शेष समय गुरुदेव की सेवा, वैयावच्च में पूर्ण मनोयोग से तत्पर रहते थे। आपका भी स्वास्थ्य अनुकूल नहीं था, घुटनों में दर्द वना रहता था। परन्तु अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करके सदैव गुरु-सेवा में संलग्न रहना आप अपना सर्वोपरि लक्ष्य मानते थे।

सं. 1998 ज्येष्ठ शुक्ला एकम को रतलाम में जन्मे स्थविर सन्तश्री हुकमीचन्दजी म.सा. ने पूज्य जवाहराचार्यजी के मुखारविन्द से तिविहार संथारा ग्रहण किया। सत्तर-वर्षीय तपस्वी सन्त का ज्येष्ठ शुक्ला दूज, वुधवार को प्रातः साढे पॉच वजे स्वर्गवास हो गया। तपस्वीजी की दीक्षा-पर्याय करीव तैयालीस वर्ष की थी। वृद्धावस्था के कारण काफी वर्षो से आप वीकानेर ही विराजते थे। आप काफी सौभाग्यशाली थे जो पूज्य युवाचार्यश्रीजी ने स्वयं आपको संयम में खूब साज दिया। अंत तक परिणाम वहुत उच्च और विशुद्ध रहे।

गुरु-आज्ञा बेहिचक शिरोधार्य की

नीति कहती है– 'आज्ञा गुरुणां ह्यविचारणीया'–गुरुओं की आज्ञा अवश्य ही मानना चाहिये। चाहे वह आज्ञा रुचिकर हो या अरुचिकर, लेकिन गुरुजनो की आज्ञा के औचित्य-अनौचित्य पर विचार करने का हमें अधिकार नहीं है।

चरितनायक के रोम-रोम में यह मंत्र रमा हुआ था। आपके जीवन की धारा अनुप्राणित थी 'गुरोराज्ञा वलीयसी' के आदर्श से। सेवाधर्मो परमगहनो योगिनामप्यगम्यः की उक्ति को आपने सर्वथा झुठलाया था और अपने आचार से सर्वगम्य वना दिया था।

पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. द्वारा स. 1998 का चातुर्मास युवाचार्यश्रीजी आदि सन्तों सहित भीनासर में करने का फरमा देने से भीनासर, गंगाशहर, उदयरामसर, बीकानेर, उदासर आदि आस-पास के क्षेत्रों में हर्षोल्लास छा गया था।

आषाढ मास का समय था। चातुर्मास-स्थापना के दिवस इने-गिने रह गये थे। उन दिनों पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. बीकानेर में श्री सेठिया जैन धार्मिक भवन में विराज रहे थे और सरदारशहर श्रीसंघ की अपने यहां सन्तों के चातुर्मास के लिये अत्याग्रहभरी विनती हो रही थी। वहां के श्रीसंघ का प्रतिनिधिमण्डल पहले भी अपनी स्थिति की जानकारी कराने के लिये आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हो चुका था और परिस्थिति को देखते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी भी विद्वान सन्तों का सरदारशहर में चातुर्मास होना आवश्यक समझते थे।

लेकिन सन्तों की शारीरिक स्थिति और समय की अल्पता के कारण कुछ निश्चयात्मक स्थिति नहीं बन रही थी। युवाचार्यश्री गेणशलालजी म.सा. के घुटनों में दर्द बना रहता था और दूसरे सन्त भी आचार्यश्रीजी की सेवा में रहने के लिये उत्सुक थे।

आचार्यश्रीजी की यह दुविधा देखकर चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने सेवा में निवेदन किया कि आपकी जो भी आज्ञा होगी मुझे शिरोधार्य होगी। आपश्री इस दुविधा की स्थिति का मन पर असर न होने दें। आपके मन की समाधि रहना हमारे लिये श्रेयस्कर है। भावों के पारखी आचार्यश्रीजी ने विनीत शिष्य की अन्तर्ध्वनि को सुना और फरमाया– अभी तुम्हारा स्वास्थ्य अनुकूल नहीं है, ग्रीष्मऋतु प्रचंड है और समय भी कम है अतः ऐसी स्थिति में यथासमय सरदारशहर पहुंचना कठिन-सा है। बस, यही विचार मेरे मन में बार-बार उठ रहा है।

युवाचार्यश्रीजी ने अर्ज की कि जब सरदारशहर में चातुर्मास होना जरूरी है तो आपश्री मेरे स्वास्थ्य का विचार न करें। आपके आदेश, आज्ञा और आशीर्वाद से सब अनुकूल ही रहेगा। आपकी आज्ञा मेरे लिये नन्दनवन है। आपके आशीर्वाद से शरीर स्वस्थ और सशक्त हो जाएगा। बस, अपना आशीर्वाद प्रदान कर प्रस्थान को प्रशस्त बनायें और आचार्यश्रीजी ने शिष्य के गौरव को ध्यान में रखते हुए युवाचार्यश्रीजी को सरदारशहर चातुर्मास हेतु प्रस्थान करने की आज्ञा प्रदान की।

उस समय उपस्थित जनसमूह यह सब देख रहा था। उसके मनोभाव आंखों से बह निकले, कंठ भर आये, मुख मुरझा गये और शून्य आंखें एक-दूसरे के अन्तर् की टोह लेने के लिये अपलक-सी रह गईं। उन्हें आशा थी कि आचार्यश्रीजी एवं युवाचार्यश्रीजी के उपदेशामृत-पान का सुअवसर हमें सहज ही प्राप्त होगा। लेकिन अब यह आशा निराशा में रूपान्तरित हो गई थी।

विनीत शिष्य तो आदेश के साथ ही आशीर्वाद ले प्रस्थान-पथ पर अग्रसर होने के लिये चल पड़े। समय मध्याह्न वेला का था। सहस्ररश्मि प्रचंडता से प्रकाशमान था। आगे-आगे सन्त-मण्डल और पीछे-पीछे श्रावक-श्राविकाओं का समूह आंखों में आंसू भरे चल रहा था और मौन वेदना बारम्बार व्यक्त करती थी कि आपश्री यहां विराजें।

चरितनायकजी ने उन सबको सांत्वना दी, समझाया और फरमाया—आपका धर्मोत्साह सराहनीय है। गुरुदेव की आज्ञा ही मेरे लिये मंगलप्रद है। मेरे पास अपना कुछ नहीं है, मुझ अकिंचन ने गुरुचरणों के प्रताप से जो-कुछ विरासत मे प्राप्त किया है, उसे ही वितरित कर रहा हूँ और निजानन्दरसलीन हो सुखानुभव करता हूँ। रही प्राकृतिक वातावरण की, सो आप उसका विचार न करें। मेरे लिये गुरुदेव का वरद आशीर्वाद सभी स्थिति में शांतिप्रद है। मैं अकेला नहीं हूँ, मेरे साथ गुरुदेव का आशीर्वाद है। उसकी मंगलमयी किरणे मेरे लिये सदैव सहायक रही हैं, और रहेंगी। आपकी भक्ति एवं धर्मप्रेम मुझे गुरुदेव की आज्ञा-पालन मे सहायक होगा। आप लोग अपने को महावीर का अनुयायी मानते हैं, लेकिन आश्चर्य है कि आज अपनी वीरता को आंखों से बहा रहे हो ! वीर तो बढते हुओं को वीरता का बोध देते हैं। इस आशय के भावों से उपस्थित जनसमुदाय को भली प्रकार आश्वस्त करके श्रमणसरदार युवाचार्यश्रीजी ने संतमण्डल के साथ सरदारशहर की ओर प्रस्थान कर दिया।

युवाचार्यप्रवर ने प्रथम पडाव भीनासर किया। यहां की जनता तो आराध्य के सान्निध्य से वंचित होने के कारण कारण बेहद व्यथित थी। आपश्री ने उन्हें मधुर वचनों से सांत्वना प्रदान की। फिर आषाढ वदी 13 को लक्ष्य की ओर विहार कर दिया।

विनयशीलता और अनुशासनप्रियता तो आपकी रग-रग में समाई हुई थी। कभी-कभी प्रवचन करते समय गुरुदेव कभी टोक देते तो उसी समय असावधानी के लिये क्षमायाचना के साथ कृतज्ञतापूर्वक उनकी सूचना अंगीकार करते थे। चाहे फिर श्रोताओं की उपस्थिति सैकडों में हो और श्रोताओं को सावधानी दिलाते हुए फरमाते कि गुरुदेव की शिक्षा प्रबल पुण्योदय से मिलती है और शिष्य के जीवन-विकास के लिये आवश्यक है।

चरितनायक ने सदैव गुरु-आज्ञा के अनुसार चलना सर्वोपरि माना था। यही कारण है कि आप पूर्णरूपेण गुरु का प्रसाद पाने में सफल हुए। आपकी विनम्रता, भक्ति और कर्तव्यपरायणता इतनी उच्चकोटि की थी कि आपके जीवन का आदर्श युग-युग तक स्मरणीय रहेगा।

श्रीडूंगरगढ के निकट मुनि मोतीलालजी का अकस्मात् स्वर्गवास

सरदारशहर थली-प्रदेश का प्रमुख नगर है और थली प्रदेश मारवाड का मध्य क्षेत्र है एक तो मारवाड की मरुधरा वैसे ही शुष्क होती है और उसमें भी थली-प्रदेश की शुष्कता तो अपने ही प्रकार की है। वहां की भौगोलिक स्थिति ही ऐसी नहीं है, किन्तु वहां का बहुजनवर्ग हृदय से भी शुष्क है। इसके साथ ही वहां तेरहपन्थियों का ही विशेष रूप से आवागमन हुआ है जो अपने उपदेशों में—मरते जीव को बचाना पाप है, प्यासे को पानी पिलाना पाप है, माता

द्वारा बालक का पालन-पोषण होना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना एकान्त पाप है, माता-पिता की सेवा करना पुत्र के लिये पाप है आदि-आदि—मानवता विरोधी और अविवेकता से भरी हुई बातों का प्रचार करते हैं। लेकिन यह सब कहा जाता है परमकारुणिक भगवान महावीर के नाम पर कि हे भगवन्! तेरा पंथ यह है। ऐसों ने धर्म को तीन-तेरह करके तेरे के स्थान पर मेरे-मेरे का ढिंढोरा पीट रखा है।

यद्यपि ऐसे शुष्क जनमानस को स्नेहसिक्त करने के लिये चरितनायकश्री का पहले भी पदार्पण हो चुका था, लेकिन गरम लोहे पर दो-चार बूंद पानी डालने से शीतलता नहीं आती है, किन्तु उसको शीतल करने के लिये जलधारा के सतत प्रवाह की आवश्यकता होती है। अतः शुष्क मानवों को आर्द्र करने के लिये परमकरुणा के दयासागर की धारा का प्रवाह बहाने के लिये हमारे चरितनायक बढ़े जा रहे थे, बढ़े जा रहे थे।

थली-क्षेत्र में गांव दूर-दूर बसे हुए हैं और मानवतायुक्त मानवों की बस्ती भी कहीं-कहीं पर है। बीकानेर से शिवबाड़ी, नापासर आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए आप तीन सन्तों के साथ श्रीडूंगरगढ़ पधारे और तीन सन्त एकाध रोज के अन्तर से पीछे-पीछे आ रहे थे। श्रीडूंगरगढ पधारने पर आपश्री आशारामजी झंवर की बगीची में विराजे और दोपहर-बाद व से आगे के लिये विहार कर दिया।

तीन सन्त, जो एक मंजिल पीछे-पीछे आ रहे थे, श्रीडूंगरगढ़ से तीन कोस पह हेमासर नामक गांव में पहुंचे। वहां आहार-पानी का संयोग नहीं बना और विशेष रूप से पा का। गरमी का मौसम था अतः कम से कम तीन पात्र पानी चाहिये था, लेकिन मिला एक जो तीनों सन्तो के लिये पर्याप्त नहीं था। उससे कुछ पिपासा शांत करके उन्होने सोचा यहां से श्रीडूंगरगढ़ तीन कोस है। और वहां युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त विराज रहे हैं बादल होने से धूप भी कुछ कम है। अतः ऐसा विचार कर दोपहर के करीब उन्हें श्रीडूंगरगढ़ की ओर विहार कर दिया।

लेकिन थोड़ी देर बाद बादल बिखर गये। सूर्य के प्रचंड ताप के साथ लू के झोंके अ लगे। रास्ते में कोई छायादार वृक्ष नहीं था अतः एक खेजडी के नीचे बैठकर किसी तर मध्याह्न का समय व्यतीत किया और पुनः करीब तीन बजे वहां से विहार कर दिया।

इन तीन सन्तों में मुनिश्री मोतीलालजी म.सा. वयोवृद्ध थे और श्रीडूंगरगढ़ करीब डे मील रहा होगा कि उनको चक्कर आने लगे। साथ के सन्तों से आपने कहा कि चक्कर आ र हैं, घबराहट हो रही है और कण्ठ सूख रहा है, जिससे चलने में कठिनाई मालूम पड़ती है इस स्थिति को देखकर साथ के मुनि करणीदारजी म. और मगनमुनिजी, इन दोनों सन्तों ने सहा देकर उनको एक खेजड़ी के नीचे बैठा दिया और मुनि मगनलालजी वहीं सेवा-वैयावच्च लिये ठहर गये एवं दूसरे मुनि करणीदानजी जल लेने के लिये श्रीडूंगरगढ की ओर चल दिये

श्रीडूंगरगढ की ओर जाने वाले सन्त ने गांव के निकट आकर किसी राहगीर से जाकर पूछा कि यहां ओसवालों का मोहल्ला किधर है। उसने मोहल्ले की ओर जाने वाले रास्ते का संकेत कर दिया। संकेतित रास्ते से होते हुए सन्त बाजार में पहुंचे और ओसवाल भाइयों से पूछा कि यहां युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. किधर विराज रहे हैं। किन्तु उन्होंने कुछ पता-ठिकाना न बताकर हंसी-मजाक में बात उड़ा दी। इस पर पुन. सन्त ने बताया कि यहां से करीब डेढ मील पर एक वयोवृद्ध सन्त को तकलीफ है, प्यास के कारण कण्ठ सूख रहे हैं और घबराहट है। यहां कोई योग्य मकान बता दीजिये जिसमें पात्रादि भंडोपकरण रखकर और आप लोगों के यहां से साध्वोचित जल की गवेषणा करके, उनके पास पहुंचूं।

फिर भी उन्होंने बात पर ध्यान नहीं दिया और न रास्ता ही बताया। बाजार के इस छोर से उस छोर तक घूमने पर भी सन्त को कुछ भी जानकारी न मिल सकी। अकस्मात् श्री आशारामजी झंवर के घर के सामने से गुजरना हुआ। वहीं झंवरजी मिल गये। बातचीत करते हुए सन्त ने पूछा कि *यूवाचार्यश्रीजी किधर विराज रहे हैं ?* उत्तर में *श्री झंवरजी ने बताया* कि अभी कुछ देर पहले ही उन्होंने बगीचे से विहार किया है, आप सामान बगीची में रखिये और मेरे घर से जल ले जाकर प्यासे सन्तों को शान्ति पहुंचाइये।

सन्त पानी लेकर वापस सेवा में आने के लिये चल पड़े। करीब फर्लांग, डेढ़ फर्लांग दूरी रही होगी कि वयोवृद्ध सन्त मुनिश्री मोतीलालजी म.सा. ने सथारा-पूर्वक सं. 1998, आषाढ़ सुदी 7 को प्राण त्याग दिये। रास्ता बताने के लिये जो भाई साथ में थे, उन्होने वापस आकर सब घटना श्री झंवरजी को सुनाई और बीकानेर के भाइयों को भी, जो युवाचार्यश्रीजी के दर्शन कर बीकानेर जाने के लिये स्टेशन गये थे, वृद्ध मुनिश्री मोतीलालजी म. सन्त के देहावसान की खबर दी।

इस दारुण दुर्घटना को सुनकर सभी जाने वालों ने टिकिट वापस कर स्वर्गस्थ संत के दाहसंस्कार की तैयारी की। बाजार में चंदन, नारियल आदि की तलाश की, किन्तु मुंहमांगे दाम देने पर भी उपलब्ध नहीं हो सके। उन्हीं दिनों श्री झंवरजी के यहां विवाह की तैयारी हो रही थी और इसके लिये नारियल आदि उन्होंने ले रखे थे। लेकिन मांगने में सकोच हो रहा था। दुविधा का पता चलते ही श्री झंवरजी ने नारियल आदि की बोरियां दीं और दाहसंस्कार करके बीकानेर के भाई वापस बीकानेर लौटे।

जब इस दारुण दुर्घटना के समाचार चरितनायकजी को प्राप्त हुए तो श्रीडूंगरगढ से विहार कर जहां पहुंचे थे, वहीं रुक गये और स्वर्गस्थ आत्मा की शान्ति के लिए चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। श्री [illegible] अनुगामी [illegible]। पूज्य युवाचार्यप्रवर ने सलाहकार के रूप में उन्हें साथ [illegible] की [illegible] कहें कि युवाचार्यप्रवर सहित सन्तों ने धैर्य रखा।

द्वारा बालक का पालन-पोषण होना और गर्भस्थ बालक की रक्षा करना एकान्त पाप है, माता-पिता की सेवा करना पुत्र के लिये पाप है आदि-आदि—मानवता विरोधी और अविवेकता से भरी हुई बातों का प्रचार करते हैं। लेकिन यह सब कहा जाता है परमकारुणिक भगवान महावीर के नाम पर कि हे भगवन् ! तेरा पंथ यह है। ऐसों ने धर्म को तीन-तेरह करके तेरे के स्थान पर मेरे-मेरे का ढिंढोरा पीट रखा है।

यद्यपि ऐसे शुष्क जनमानस को स्नेहसिक्त करने के लिये चरितनायकश्री का पहले भी पदार्पण हो चुका था, लेकिन गरम लोहे पर दो-चार बूंद पानी डालने से शीतलता नहीं आती है, किन्तु उसको शीतल करने के लिये जलधारा के सतत प्रवाह की आवश्यकता होती है। अतः शुष्क मानवों को आर्द्र करने के लिये परमकरुणा के दयासागर की धारा का प्रवाह बहाने के लिये हमारे चरितनायक बढ़े जा रहे थे, बढ़े जा रहे थे।

थली-क्षेत्र में गांव दूर-दूर बसे हुए हैं और मानवतायुक्त मानवों की बस्ती भी कहीं-कहीं पर है। बीकानेर से शिवबाड़ी, नापासर आदि क्षेत्रों में विहार करते हुए आप तीन सन्तों के साथ श्रीडूंगरगढ़ पधारे और तीन सन्त एकाध रोज के अन्तर से पीछे-पीछे आ रहे थे। श्रीडूंगरगढ पधारने पर आपश्री आशारामजी झंवर की बगीची में विराजे और दोपहर-बाद वहां से आगे के लिये विहार कर दिया।

तीन सन्त, जो एक मंजिल पीछे-पीछे आ रहे थे, श्रीडूंगरगढ़ से तीन कोस पहले हेमासर नामक गांव में पहुंचे। वहां आहार-पानी का संयोग नहीं बना और विशेष रूप से पानी का। गरमी का मौसम था अतः कम से कम तीन पात्र पानी चाहिये था, लेकिन मिला एक ही जो तीनों सन्तों के लिये पर्याप्त नहीं था। उससे कुछ पिपासा शांत करके उन्होंने सोचा कि यहां से श्रीडूंगरगढ़ तीन कोस है। और वहां युवाचार्यश्रीजी आदि सन्त विराज रहे हैं एवं बादल होने से धूप भी कुछ कम है। अतः ऐसा विचार कर दोपहर के करीब उन्होंने श्रीडूंगरगढ की ओर विहार कर दिया।

लेकिन थोडी देर बाद बादल बिखर गये। सूर्य के प्रचंड ताप के साथ लू के झोंके आने लगे। रास्ते में कोई छायादार वृक्ष नहीं था अतः एक खेजड़ी के नीचे बैठकर किसी तरह मध्याह्न का समय व्यतीत किया और पुनः करीब तीन बजे वहां से विहार कर दिया।

इन तीन सन्तों में मुनिश्री मोतीलालजी म.सा. वयोवृद्ध थे और श्रीडूंगरगढ करीब डेढ़ मील रहा होगा कि उनको चक्कर आने लगे। साथ के सन्तों से आपने कहा कि चक्कर आ रहे हैं, घबराहट हो रही है और कण्ठ सूख रहा है, जिससे चलने में कठिनाई मालूम पड़ती है। इस स्थिति को देखकर साथ के मुनि करणीदारजी म. और मगनमुनिजी, इन दोनों सन्तों ने सहारा देकर उनको एक खेजड़ी के नीचे बैठा दिया और मुनि मगनलालजी वहीं सेवा-वैयावच्च के लिये ठहर गये एवं दूसरे मुनि करणीदानजी जल लेने के लिये श्रीडूंगरगढ की ओर चल दिये।

श्रीडूंगरगढ की ओर जाने वाले सन्त ने गांव के निकट आकर किसी राहगीर से जाकर पूछा कि यहां ओसवालों का मोहल्ला किधर है। उसने मोहल्ले की ओर जाने वाले रास्ते का संकेत कर दिया। संकेतित रास्ते से होते हुए सन्त बाजार में पहुंचे और ओसवाल भाइयों से पूछा कि यहां युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. किधर विराज रहे हैं। किन्तु उन्होंने कुछ पता-ठिकाना न बताकर हंसी-मजाक में बात उडा दी। इस पर पुनः सन्त ने बताया कि यहां से करीब डेढ मील पर एक वयोवृद्ध सन्त को तकलीफ है, प्यास के कारण कण्ठ सूख रहे हैं और घबराहट है। यहां कोई योग्य मकान बता दीजिये जिसमे पात्रादि भडोपकरण रखकर और आप लोगो के यहां से साध्योचित जल की गवेषणा करके, उनके पास पहुंचूं।

फिर भी उन्होंने बात पर ध्यान नहीं दिया और न रास्ता ही बताया। बाजार के इस छोर से उस छोर तक घूमने पर भी सन्त को कुछ भी जानकारी न मिल सकी। अकस्मात् श्री आशारामजी झंवर के घर के सामने से गुजरना हुआ। वहीं झंवरजी मिल गये। बातचीत करते हुए सन्त ने पूछा कि यूवाचार्यश्रीजी किधर विराज रहे हैं ? उत्तर में श्री झंवरजी ने बताया कि अभी कुछ देर पहले ही उन्होने बगीचे से विहार किया है, आप सामान बगीची में रखिये और मेरे घर से जल ले जाकर प्यासे सन्तों को शान्ति पहुंचाइये।

सन्त पानी लेकर वापस सेवा में आने के लिये चल पड़े। करीब फर्लांग, डेढ फर्लांग दूरी रही होगी कि वयोवृद्ध सन्त मुनिश्री मोतीलालजी म.सा. ने संथारा-पूर्वक सं 1998. आषाढ सुदी 7 को प्राण त्याग दिये। रास्ता बताने के लिये जो भाई साथ में थे, उन्होने वापस आकर सब घटना श्री झंवरजी को सुनाई और बीकानेर के भाइयों को भी, जो युवाचार्यश्रीजी के दर्शन कर बीकानेर जाने के लिये स्टेशन गये थे, वृद्ध मुनिश्री मोतीलालजी म सन्त के देहावसान की खबर दी।

इस दारुण दुर्घटना को सुनकर सभी जाने वालों ने टिकिट वापस कर स्वर्गस्थ सात के दाहसंस्कार की तैयारी की। बाजार में चंदन, नारियल आदि की तलाश की, किन्तु मुंहमागे दाम देने पर भी उपलब्ध नहीं हो सके। उन्हीं दिनों श्री झंवरजी के यहां विवाह की तैयारी हो रही थी और इसके लिये नारियल आदि उन्होने ले रखे थे। लेकिन मांगने मे संकोच हो रहा था। दुविधा का पता चलते ही श्री झंवरजी ने नारियल आदि की बोरियां दीं और दाहसंस्कार करके बीकानेर के भाई वापस बीकानेर लौटे।

जब इस दारुण दुर्घटना के समाचार चरितनायकजी को प्राप्त हुए तो श्रीडूंगरगढ से विहार कर जहां पहुंचे थे, वहीं रुक गये और स्वर्गस्थ आत्मा की शान्ति के लिए चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। श्री मोतीलालजी म. वयोवृद्ध थे। अनुभवी थे। पूज्य युवाचार्यप्रवर ने सलाहकार के रूप में उन्हें साथ लिया था परन्तु विधि की विडम्बना कहें कि युवाचार्यप्रवर सहित सन्तों ने धैर्य रखा।

बाधाएं विचलित न कर सकीं

जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर के अनार्य देश की ओर बढते चरणों को लाख बाधाएं विचलित नहीं कर सकीं, तो उनके अनुयायी श्रमणों को बाधाएं कैसे विचलित कर सकती थीं ? दुर्जन अपनी दुर्जनता नहीं छोड़ सकते हैं तो सज्जन भी अपने आरम्भ किये हुए जनकल्याण के कार्यों से कभी भी विरत नहीं होते हैं। एक कवि ने कहा है-

त्यजति न विदधानः कार्यमुद्विज्य श्रीमान्।
खलजन-परिवृत्ते स्पर्धते किन्तु तेन।।

दुष्टजनों की चेष्टाओं से घबरा कर बुद्धिमान पुरुष अपने आरंभ किये हुए कार्य का त्याग नहीं कर सकता, वरन् स्पर्धा करता है। अर्थात् जैसे दुष्ट अपनी चेष्टाओं से बाज नहीं आता, वैसे ही ज्ञानी पुरुष भी अपने कार्य को पूरा किये बिना विश्राम नहीं लेता है।

जब पीछे आने वाले शेष दो सन्त आपके पास आ गये तो उन्हें साथ लेकर पुन सरदारशहर की ओर विहार कर दिया और यथासमय सरदारशहर के निकट पधार गये।

सरदारशहर चौमासा और दो दीक्षाएँ

सरदारशहर के बन्धुओ ने चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश के लिये ज्योतिषियों से मुहूर्त निकलवाया था। इसका संकेत उन्होंने चरितनायकजी की सेवा में भी किया तो फरमाया– मैं तो गुरुदेव की आज्ञा से चातुर्मास करने के लिये आया हूँ, अतः गुरु-आज्ञा ही सबसे अच्छा मुहूर्त है और क्षयतिथि आषाढ शुक्ला 10 के दिवस ही सरदारशहर में प्रवेश किया।

चातुर्मासार्थ नगर में प्रवेश करने के लिये मुहूर्त आदि देखने की परिपाटी श्रावकों तक ही सीमित नहीं है, लेकिन कुछ-एक साधु-सन्त भी चातुर्मास के निमित्त नगर-प्रवेश करते समय मुहूर्त आदि देख लिया करते हैं। मगर आपने सदैव गुरु-आज्ञा को ही मुहूर्त समझा चाहे तिथि क्षय हो या रिक्ता तिथि हो, चौघड़िया अनुकूल हो अथवा न हो, नक्षत्र और योग प्रतिकूल हो, चन्द्रमा और योगिनीवास पीठ पीछे हो, आपने इसकी कभी चिन्ता नहीं की। न कभी मुहूर्त निकाला और न इसका हिसाब लगाया। आपकी तो धारणा थी– गुरु-आज्ञा ही मेरे लिये शुभ मुहूर्त और सन्मुख चन्द्रमा है।

आपका यह चातुर्मास सरदारशहर के लिये ही नहीं, वरन् समस्त थली-प्रदेश के लिये वरदान सिद्ध हुआ। आत्मशुद्धि के लिये विभिन्न प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान और तपस्याएं होने के साथ-साथ अनेक व्यक्तियों ने धर्म के स्वरूप को समझकर सत्य का अनुकरण करने की प्रतिज्ञा ली।

श्री हुकमचन्दजी और श्री सुमेरमलजी की भागवती दीक्षा सरदारशहर के इसी चातुर्मास मे आपके द्वारा सम्पन्न हुई थी। महासतीश्री हुलासकंवरजी म. ठाणा 4 के सान्निध्य से बहनो ने साध्वाचार-श्रावकाचार का विशुद्ध ज्ञान अर्जित किया। बहनों के लिये साध्वीवर्याओं का सान्निध्य धर्म-ध्यान का दृष्टि से उपयोगी रहा।

पुनः अस्वस्थ गुरुदेव की सेवा में

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् थली-प्रदेश के विभिन्न क्षेत्रों में विचरण करते हुए चरितनायकजी सुजानगढ पधारे ! यहां तत्त्व-चर्चा में लोगों ने काफी लाभ लिया। यहां से लाडनूं पधारना हुआ जहां कुछ दिन विराजना रहा। प्रवचन आदि में अच्छी उपस्थिति होती। फाल्गुन शुक्ला द्वितीया को यहां से विहार किया और बीकानेर पूज्य आचार्यश्रीजी म. सा. की सेवा में पधार गये। इस विहार से थली-प्रदेश मे काफी उपकार हुए और सरलहृदय जनों ने धर्म के अंतरंग रहस्य को समझकर जड़ मान्यताओं के त्याग का संकल्प किया।

युवाचार्यश्री के सं. 1999 के चातुर्मास की स्वीकृति बीकानेर संघ को प्राप्त होने से श्रद्धालुओं मे हर्ष का वातावरण छा गया। बीकानेर में कुछ दिन गुरु-सान्निध्य में सेवा का लाभ लेकर पूज्य गुरुदेव की आज्ञानुसार युवाचार्यप्रवर ने उदयरामसर, देशनोक, रासीसर होते हुए नोखा पदार्पण किया। नोखा में प्रवचनों में काफी जनता इकट्ठी होती थी। तेरहपन्थी भाइयों ने प्रवचन-श्रवण का खूब लाभ उठाया। नोखा मण्डी स्कूल के कतिपय तेरहपन्थी छात्रों ने शुद्ध श्रद्धा ग्रहण की। आस-पास नागौर आदि संघ विनत्यर्थ उपस्थित हुए। झज्झू, पाँचू आदि क्षेत्रों को अपने सान्निध्य का लाभ प्रदान कर आपश्रीजी देशनोक पधारे।

उन दिनों भीनासर, आचार्यप्रवर की सेवा में सेवाभावी श्री बक्तावरमलजी म., पं. मुनिश्री श्रीमल्लजी म., श्री सुन्दरलालजी म., श्री मगनमुनिजी म. आदि सन्त अग्लान भाव से पूज्यवर की सेवा में रत थे। आपश्रीजी ने जब भीनासर से विहार किया था तब पूज्य जवाहराचार्य का स्वास्थ्य वृद्धावस्था को देखते हुए साधारणतया ठीक था। कमजोरी और घुटनों में दर्द तो था, लेकिन अन्य कोई ऐसे लक्षण नहीं दिखते थे जो चिन्ताजनक हों कि अकस्मात् जेष्ठ शुक्ला 15 को आचार्यश्रीजी को पक्षाघात (लकवा) हो गया। इन दिनों चरितनायक युवाचार्यश्री देशनोक विराज रहे थे। सूचना मिलने पर आपश्री देशनोक से विहार कर यथाशीघ्र पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में पधार गये।

अस्वस्थ पूज्य जवाहराचार्य द्वारा सभी जीवों से क्षमायाचना

शरीर में विविध व्याधियों के प्रकोप और उनका प्रतिरोध करने वाली शारीरिक शक्ति की असमर्थता को देखकर आचार्यश्रीजी ने प्राणिमात्र से क्षमायाचना कर लेना उचित समझा।

अतः आचार्यश्रीजी ने भीनासर में जीवन की आलोयणा, प्रायश्चित्त करने के पश्चात् दि. 21.6.42 को चतुर्विध संघ के समक्ष 84 लाख जीवयोनि से क्षमायाचना की।

युवाचार्यश्री को कार्यभार सौंपा

क्षमायाचना सम्बन्धी विचारों के साथ ही चरितनायक युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के बारे में फरमाया— "लगभग आठ वर्ष से शारीरिक अशक्ति के कारण मैंने सांप्रदायिक शासन का भार युवाचार्यश्री गणेशलालजी को सौंप रखा है। उन्होने जिस योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ इस कार्य को निभाया और निभा रहे हैं, वह आपके समक्ष है। मुझे इस बात का परम संतोष है कि युवाचार्यश्री गणेशलालजी ने अपने को इस उत्तरदायित्वपूर्ण पद का पूर्ण अधिकारी प्रमाणित कर दिया है और कार्य अच्छी तरह संभाल लिया है। साथ में इस बात की भी मुझे प्रसन्नता है कि श्रीसंघ ने भी इनको श्रद्धापूर्वक अपना आचार्य मान लिया है। इनके प्रति आपकी भक्ति, आप सभी का पारस्परिक प्रेम उत्तरोत्तर वृद्धिंगत होता रहे और इसके द्वारा भव्य प्राणियों का अधिकाधिक कल्याण हो, यही मेरी हार्दिक अभिलाषा है।"

आचार्यश्रीजी के लकवा की शिकायत अभी दूर भी नहीं हो पाई थी कि कमर के बायीं ओर जहरीला फोड़ा (कार्बंकल) उठ आया। फोड़े के कारण दुस्सह वेदना थी और बुखार भी हो गया था। शल्य-चिकित्सा से भी जीवन बचना असम्भव-सा प्रतीत होने लगा कि अकस्मात् फोड़ा अपने-आप फूट गया और 15-20 दिन बाद फोड़े में कुछ सुधार दिखाई देने लगा। करीब छह माह में फोड़ा तो ठीक हो गया लेकिन दायीं करवट लेटे रहने के कारण बायें अंगों में इतनी कमजोरी आ गई कि उठना-बैठना कठिन हो गया।

आषाढ़ शुक्ला द्वितिया को बीकानेर निवासी श्री कन्हैयालालजी भँवरलालजी कोठारी की मातुश्रीजी पार्वतीबाई की दीक्षा का कार्यक्रम था। रात्रि से ही भारी वर्षा चल रही थी। जल-थल एक हो रहे थे, फिर भी प्रातः 6.15 बजे अपार उत्साह के साथ दीक्षा निर्विघ्न सम्पन्न हुई।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण आचार्यश्रीजी का 1999 का चातुर्मास पुनः भीनासर ही हुआ तथा युवाचार्यश्रीजी का चातुर्मास बीकानेर हुआ। आपश्री पूज्य आचार्यवर की सेवा मे समय-समय पर भीनासर पधारते रहते थे ! वैसे आपश्री के नियमित प्रवचन आदि कार्य बीकानेर में ही चलते थे। युवाचार्यश्री के व्याख्यान की रोचकता व प्रभावोत्पादकता इस चातुर्मास में चरम पर पहुंच चुकी थी। प्रवर्तिनीश्री सुगनकंवरजी म. तथा महासतीश्री हुलासकंवरजी म., संयुक्त ठाणा 13 की उपस्थिति श्राविकाओं में धर्म-जागरणा की दृष्टि से बेहतर सिद्ध हुई। त्याग-तप प्रचुर मात्रा में हुए।

युवाचार्यश्रीजी बीकानेर चातुर्मास सम्पन्न कर पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में भीनासर पधार गये। भीनासर में आचार्यश्री का चातुर्मास भी धार्मिक प्रभावना की दृष्टि से वडी सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

भीनासर चातुर्मास और दो दीक्षाएँ

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर मार्गशीर्ष कृष्णा 4 को देशनोक निवासी श्री ईश्वरचन्दजी सुराना और श्री नेमीचन्दजी सेठिया गंगाशहर निवासी की भागवती दीक्षाएं आचार्यश्रीजी द्वारा सम्पन्न हुई। आचार्यश्रीजी के वरदहस्त से ये दो अन्तिम दीक्षाएं हुई थीं। आचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ पंजाव सम्प्रदाय के मुनिश्री ताराचन्दजी म., पं. श्री शुक्लचन्दजी म. आदि सन्तों का आगमन हुआ। प्रवचन पंजावी सन्तों के हुए, फिर भी युवाचार्यप्रवर प्रवचन-सभा मे विराजते। वडा मधुर प्रेमपूर्ण व्यवहार रहा। लगभग 2 माह तक युवाचार्यश्री ने देशनोक इत्यादि क्षेत्र स्पर्श कर पुनः भीनासर पदार्पण किया।

आलोचना-प्रायश्चित्त द्वारा आत्मशुद्धि और महाप्रयाण

आचार्यश्रीजी का पहले हुआ फोडा तो ठीक हो गया था और स्वास्थ्य सुधार पर भी था कि अकस्मात् जुलाई, 43 के प्रारम्भ में पुनः गर्दन पर एक जहरीला फोडा उठ आया और उसी तरह के छोटे-छोटे फोडे शरीर के दूसरे भागों में उठ आये। घोर वेदना थी, अतः रात्रि के समय सेवा के लिये सन्तों का वारी-वारी से जागरण रहता था। स्वर्गवास होने के दिन की पूर्व-रात्रि मे प्रथम प्रहर तक स्वास्थ्य कुछ ठीक-सा प्रतीत होता था। युवाचार्यश्री अपने नित्य-नियम करके प्रहर-रात्रि वाद पौढ गये और करीव 11 वजे, जो सन्त सेवा मे थे, उनमे से मुनिश्री नानालालजी म.सा. को आचार्यश्रीजी म.सा. की श्वासगति मे परिवर्तन प्रतीत हुआ और युवाचार्यश्रीजी को आचार्यश्रीजी की श्वासगति के वारे मे वतलाया कि अव गति के लक्षण दूसरे प्रकार के हैं। युवाचार्यश्रीजी आचार्यश्रीजी के पास आये और नाडी की गति देखी, उसके परिस्पन्दन में परिवर्तन और निर्वलता प्रतीत हुई। लेकिन आचार्यश्रीजी होश-हवास मे थे और उसी समय सवसे क्षमत-क्षमापना करने के पश्चात् औपधोपचार आदि के कारण लगे हुए साधारण दोषों की भी आलोचना युवाचार्यश्रीजी के समक्ष कर ली। इस समय युवाचार्यश्रीजी ने विनम्र भाव से प्रार्थना की कि आप स्वयं समर्थ हैं अतः स्वयं ही प्रायश्चित्त लेने की कृपा करें और मेरे लिये क्या आज्ञा है, सो फरमावें। आचार्यश्रीजी ने इस प्रसंग पर इस आशय के भाव फरमाये कि आप सव तरह से योग्य हैं, शास्त्रीय दृष्टि को सन्मुख रखते हुए अपनी अन्तरात्मा को जैसा जान पड़े, वैसा करना। आचार्यश्री ने प्रसन्नमुद्रा में युवाचार्यश्री को

प्रतिदिन प्रातः प्रवचनों में अथवा सायंकाल प्रतिक्रमण के अनंतर होने वाली तात्वि चर्चा में आपश्री धर्म के यथार्थ चिन्तन-मनन और वस्तु-स्वरूप का विवेचन करते थे औ जो-कुछ कहते थे, उसमें किसी प्रकार की स्वार्थ-भावना या आत्म-प्रशंसा नहीं होती थी आपकी उदारता का द्वार सबके लिये खुला था। आपके कथन में दुराग्रह नहीं, किन्तु सरलत रहती थी और सदैव यही कहते थे कि उचित एवं युक्तिसंगत बातों को आचरण में उतारो ऐसे अनाग्रही महात्माओं के बारे में किसी कवि ने कहा हैं-

निर्गुणेष्वपि सत्त्वेषु दयां कुर्वन्ति साधवः।
नहि संहरते ज्योत्स्नां चन्द्रश्चाण्डालवेश्मनः।।

गुणहीन जनों पर भी साधुजन दया ही करते हैं। चन्द्रमा चांडाल के घर से भी अपन चांदनी को नहीं हटा लेता है।

चातुर्मास-काल में जनता ने धर्म के कल्याणकारी आदर्शों को समझकर अपूर्व बोध प्राप किया। सैकड़ों व्यक्तियों ने यथायोग्य त्याग-प्रत्याख्यान किये और सम्यक् श्रद्धा को ग्रहण कर आपको अपना गुरु माना।

कार्तिक कृष्णा 9 को सवाईमाधोपुर निवासी श्री गोपीलालजी पुत्र श्री भूरालालज पोरवाल की 31 वर्ष की भरपूर जवानी में आपश्रीजी के वरद हस्तों से दीक्षा सम्पन्न हुई

श्री गोपीलालजी ने लगभग 6 माह पूर्व ही अपनी धर्मपत्नी श्री कंचनबाई को ब्यावर महासतीश्री राजकुंवरजी म. की नेश्राय में दीक्षा दिलवाई थी। विवाह के कुछ समय पश्चात दोनों को वैराग्य उत्पन्न होना और दीक्षित होना एक आदर्श था।

चातुर्मास-समाप्ति और सरदारशहर से विहार

चातुर्मास-समाप्ति के अनन्तर आपश्री ने अपने अन्तिम प्रवचन में फरमाया कि मैं आपर एक वस्तु मांगना चाहता हूँ कि धर्म को समझकर अपने कर्तव्य का निर्णय कीजिये औ तदनुसार आचरण बनाइये। शुद्ध धर्म पर श्रद्धा रखिये और अहिंसा भावना को ही विश्व के लिये हितकर मानिये। सत्य को व्यक्त करते समय बहुत-सी कठोर प्रतीत होने वाली बातें कहने में आ जाती हैं, लेकिन उनमें हित-भावना रही हुई है। फिर भी किसी का मन क्षुब्ध हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

प्रवचन-समाप्ति के अनन्तर यथासमय विहार हुआ। विहार के अवसर पर विदाई के लिये विविध क्षेत्रों के आबाल-वृद्ध जन उपस्थित थे। ऐसे समय में स्थानीय जनसमूह की भावोर्मियां अनुभूतिगम्य थीं और भरे मन से श्रद्धेय शास्ता को विहार के लिये विदाई दी और मीलों तक साथ-साथ चले और मांगलिक श्रवण कर अपने-अपने आवास पर आये।

सरदारशहर निवासियों का सद्भाग्य था कि पूज्यप्रवर के विहार के पश्चात् भी उन्हें सन्तों की सेवा का अकल्पित लाभ मिलता रहा। चूंकि मुनिश्री नेमीचन्दजी म. की अस्वस्थता के कारण तीन सन्तों का काफी समय तक चातुर्मास उपरान्त भी सरदारशहर विराजना रहा।

आचार्यप्रवर सरदारशहर से क्रमशः बीकानेर एवं गंगाशहर पधारे। वहाँ कुछ दिनों तक चतुर्विध संघ को सेवा-सान्निध्य का लाभ प्रदान कर भीनासर, उदयरामसर होते हुए माघ कृष्णा 6 को ठाणा 8 से देशनोक की भूमि को पावन किया। देशनोक पधारते समय विहार-मार्ग में ही बालेसर वाले मुनिश्री हंसराजजी म.सा. के लघु भ्राता आत्मार्थी मुनिश्री हरकचन्दजी म.सा. चलते-चलते गिर गये और वहीं पर स्वर्गवास हो गया। मुनिश्री महाभाग्यवान सरल-आत्मा थे ! विधि की विडम्बना के आगे विवश हो आचार्यप्रवर सह-मुनिवृन्द चार-चार लोगस्स का कायोत्सर्ग कर गन्तव्य की ओर चल पडे।

मुनिश्री जवरीमलजी म. एवं मुनिश्री नानालालजी म. ब्यावर से आपश्रीजी की सेवा में पधारे एवं महासती प्रवर्तनीश्री सुगनकंवरजी म. आदि भी आपके दर्शनार्थ पधारे। देशनोक में धर्म-ध्यान का ठाट लगा कर पूज्यश्री नोखामण्डी, गोगोलाव होते हुए नागौर और डेह पधारे। नागौर तथा डेह में कुछ दिनों तक विराजना हुआ और प्रवचन-प्रभावना का ठाठ रहा।

गोगोलाव में दो दीक्षाएँ

आचार्यप्रवर दीक्षा प्रसंग से पुनः गोगोलाव पधारे। वैशाख शुक्ला 6, गुरुवार को गुरुदेव के हाथों प्रातः 10.30 बजे श्री इन्दरचन्दजी चौरड़िया (माड़पुरा-नागौर) एवं श्री हनुमानमल सिपानी (गंगाशहर) की दीक्षा सम्पन्न हुई। श्री दुलीचन्दजी किशनलालजी कांकरिया ने दीक्षा और आगत दर्शनार्थियों का समस्त प्रबन्ध कर अनूठा लाभ कमाया।

कुचेरा, जोधपुर, बगड़ी, ब्यावर, गोगोलाव आदि संघों ने आचार्यप्रवर के चातुर्मास की आग्रहभरी विनती की। आचार्यवर ने ब्यावर संघ को चातुर्मास की स्वीकृति प्रदान की। ब्यावर संघ को स्वीकृति मिलते ही मेवाड, मालवा, मारवाड़, मेरवाडा आदि से आगत सभी दर्शनार्थियो के हर्ष का पारावार नहीं रहा।

गोगोलाव मे दीक्षा सम्पन्न कर आचार्यप्रवर कुचेरा, मेडता, जसनगर, बलुन्दा होते हुए जयतारण पधारे। ब्रह्मयोगी आचार्य पूज्य श्रीलालजी म.सा. की पुण्यस्थली जयतारण में धर्म का ठाठ लगाकर पिपलिया कलाँ, निम्बाज होते हुए ब्यावर की दिशा में विहार किया। पूरे मार्ग में ब्यावर एवं अन्य स्थलों के श्रद्धालुओं ने सान्निध्य-लाभ प्राप्त किया।

मारवाड के चप्पे-चप्पे में धर्म के उत्तम बीजों का वपन कर सं. 2002 के पावन वर्षावास हेतु आषाढ शुक्ला तृतीया को ब्यावर नगर में पदार्पण किया।

ब्यावर में चातुर्मासार्थ यथासमय नगर-प्रवेश

नगर-प्रवेश के समय जनता के उत्साह का पार नहीं था। नगरजन अगवानी के लिये उमड़ पड़े थे। उनके हृदय की उमंगें समाती न थीं। यद्यपि पहले भी आपश्री का कई बार ब्यावर नगर में पदार्पण हो चुका था और जनता ने आपके हृदयस्पर्शी उपदेशों से अपने जीवन को संयमित बनाने के लिये अनेक प्रकार की प्रतिज्ञाएं, नियम आदि लिये थे। उक्त अवसरों पर आपका थोड़े-से समय के लिये पदार्पण होता रहा था, लेकिन अबकी बार चार माह तक आपश्री की वाणी का पूरा-पूरा लाभ मिलने वाला था। अतः बड़ी उत्सुकता और उमंग के साथ जनता ने स्वागत किया, अगवानी की।

नगरवासियों की भावना थी कि अभी प्रातःकाल आपश्री शंकरलालजी मुणोत की बगीची में पधार जायें और तीसरे पहर करीब 4 बजे धूमधाम के साथ नगर में पदार्पण कराया जाये।

इस तरह की भावना को मन में रखते हुए ब्यावर श्रीसंघ ने श्री शंकरलालजी मुणोत की बगीची में विराजने की आग्रहभरी विनती की। लेकिन जब आपने बाहर से ही बगीची की ओर दृष्टि डाली तो चौक के अन्दर मकान में प्रवेश करने के मार्ग में हरी दूब थी। इसलिये यह सोचकर कि लोगों का इस पर आवागमन होगा, उससे वानस्पतिक जीवों की एवं इसमें छिपे हुए अन्यान्य सूक्ष्म जीवों की विराधना होगी। अतः बगीची में न विराज कर राजमार्ग से नगर की ओर विहार कर दिया और धर्मस्थानक में प्रवेश किया।

साधारण जन तो तीसरे पहर चार बजे स्वागत करने के विचार में थे और उन्हें इस स्थिति की जानकारी भी नहीं मिल सकी थी। अतः उनके मन में विविध विचार आने लगे और उनके समाधान के लिये उत्सुक थे। जैसे ही चार बजने का समय हुआ कि मुसलाधार वर्षा प्रारम्भ हो गई। उसमें स्वयमेव ही समाधान मिल गया कि यदि प्रातःकाल आचार्यश्रीजी म.सा. का नगर में प्रवेश न होता तो इस समय नगर-प्रवेश की स्थिति बनना तो अशक्य ही था और विचारों का द्वन्द्व शांत होकर गाढ़ श्रद्धा के रूप में परिणत हो गया।

प्रारंभिक शुभ-शकुन के रूप में श्रीमान शेषमलजी ओस्तवाल ने सजोड़े ब्रह्मचर्य व्रत अंगीकार किया।

चातुर्मास में आचार्यप्रवर एवं स्थविर सन्त 14 ठाणा से एवं प्रवर्तनीश्री आनन्दकंवरजी म.सा. भी 14 ठाणा से थे। 28 सन्त-सतियों का पावन सान्निध्य ब्यावर नगर के आध्यात्मिक उत्कर्ष के लिये वरदान बन गया। आचार्यप्रवर के प्रवचनों ने जैन-जैनेतर जनसामान्य के अलावा नगर के प्रतिष्ठित लोगों एवं विद्वानों के हृदयों को भी झकझोर दिया। इस चातुर्मास में बाहर से जनता का अत्यधिक आना हुआ।

मुनिश्री किशनलालजी म. ने 33, मुनिश्री ईश्वरचन्दजी म. ने 9, श्री फोजमलजी महाराज ने बेले-बेले तथा घोरतपस्वी श्री धूलचन्दजी म. ने छः-छः की तपस्या की। इन सन्तों ने अन्य विशिष्ट तप भी किये। प्रवर्तनीश्री आनन्दकंवरजी म. ने श्रावण माह में ग्यारह की *तपस्या करके सतीवृन्द एवं श्राविकाओं के लिए तपस्या का मार्ग खोल दिया। अन्य सन्त-*सतियों एवं श्रावक-श्राविकावर्ग में भारी तपस्याएं हुईं।

श्री जैन मित्र मण्डल एवं ब्यावर संघ का उत्साह प्रशंसनीय रहा। चातुर्मास में तपस्या के प्रसंग से जीव-दया हेतु अच्छी मात्रा में राशि इकट्ठी हुई।

श्री जैन मित्र मण्डल के मंत्री श्री उग्रसिंहजी मेहता की अपील पर श्रीमद्‌जवाहराचार्य के प्रवचनों के सम्पादन-प्रकाशन हेतु 13914 रुपये श्री जवाहर स्मारक फण्ड में इकट्ठे हुए।

त्याग, तप, धर्म, ध्यान एवं साम्प्रदायिक गतिविधियों के विकास के साथ यह चातुर्मास *यादगार रहेगा। इस चातुर्मास में 24-25 चतुर्थव्रत के सजोडे खन्द हुए।*

नवीनता और प्राचीनता का समन्वय सुनकर विरोधी मानस शान्त

ब्यावर और उसके आस-पास के क्षेत्रों मे विवेकशील व्यक्तियों की बस्ती होने से स्थानीय और समागत सज्जन आपके प्रभावक प्रवचनों का लाभ लेते थे। लेकिन कुछ *विघ्नसंतोषी व्यक्ति भी थे।* वे समय-समय पर अशांति फैलाने और रूढिवादी, पुरातनपंथी, दकियानूसी आदि शब्दों द्वारा मनघडन्त आरोप लगाने के प्रयत्न करते रहते थे। उन्हें दोषदर्शन के सिवाय और कुछ करने की सूझती ही नहीं थी। कुछ-न-कुछ अफवाह फैलाना मानो उनकी दैनिक जीवनचर्या ही थी। लेकिन उनके सभी प्रयास आपके असीम शांतिसागर में विलीन होते गये।

आप तो वीतराग-वाणी के माध्यम से मानव-जीवन के महत्त्व, विशेषताओं, कर्तव्यों आदि का अपने प्रवचनों में विशद विवेचन करते थे। इनके सम्बन्ध मे आपश्री की महत्त्वपूर्ण विचारधारा का कुछ अंश यहां प्रस्तुत करते हैं—

'मनुष्य एक ऐसा विकासशील जीव है जिसने अपने मस्तिष्क की अत्यधिक प्रगति प्राप्त की है। उसका ज्ञान केवल बाह्य पदार्थों तक ही सीमित नहीं है, बल्कि उसने वैचारिक व आध्यात्मिक क्षेत्र में भी आश्चर्यजनक उन्नति की है। उसकी जिज्ञासा वृत्ति इन क्षेत्रों में और भी अधिक उग्र हो उठती है — जिसका सबूत है बड़े-बड़े दार्शनिक और विचारक इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत नवीन-नवीन विचारधाराओं को जन्म देते हैं तथा बड़े-बड़े आध्यात्मिक साधक स्वकीय दिव्य शक्ति को प्राप्त कर संसार को सही रास्ते पर उद्बोध देते हैं। यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्म-ज्योति का रूप हृदय से संलग्न होकर आकर्षण का

केन्द्रबिन्दु बनता है, जिससे मनुष्य स्वयं सोचता है, जानता है, सीखता है और स्व-पर के लिये वस्तुतः कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क, स्वतन्त्र व्यक्तित्व व शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन-निर्माण कर सकता है।

'मनुष्य की सभी शक्तियाँ नवीन सत्कर्म से उद्बोधित रहती हैं, जीवन के सम्यक् विकास में जुट जाती हैं। मनुष्य अपने सही लक्ष्य की ओर आगे बढ़े, इसके लिये उसकी सबसे पहले अनिवार्य आवश्यकता होती है। यही कारण है कि आचार और विचार की दृष्टि से पिछड़ा नहीं रहना चाहता, उसे नहीं रहना चाहिये। वे इस बात की कोशिश करें कि ज्ञान के विशाल भंडार में वे प्रवेश करें, महान मनीषियों के तत्त्व-चिन्तन व आचरण को जानें, किन्तु उन सबको सम्यग्ज्ञान व आचरण में रमाकर ग्रहण करें, अपनी शुद्ध बुद्धि की कसौटी पर कसकर उसका मनन करें और यह मनोवृत्ति वास्तविक नवीन विचार तथा आचार-क्रांतियों का कारण बनती है।

'प्रचलित परिपाटियों में इधर-उधर से विकार आ जाते हैं, उनको हटाने और चेतना जाग्रत् करने के लिये मूलस्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते हैं उन्हें भी नवीनता की संज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों में नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिये कि जो परिवर्तन और एकरूपता को संतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को संतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने में जाग्रत् रखती है, ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कंटक बनाती है।

यहां 'नवीन' व 'प्राचीन' शब्दों के अर्थ व अन्तर को समझ लेना चाहिये। इन दोनों शब्दों का अर्थ अपेक्षाकृत लेना चाहिये। जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों, शुद्ध संयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूंकने वाले हों, वे बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एवं आत्मज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिक भावहीन सुन्दर शब्दों में नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम क्यों न हों, वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिये। इन शब्दो में समय का मापदंड ठीक नहीं हो सकता, किन्तु संयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

'इस दृष्टि से तत्त्वों का चयन किया जाना चाहिये, न कि आज के किन्हीं जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजें त्याज्य हैं। मैं उन नवयुवकों को कहना चाहूँगा कि हठाग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्वक समझना अलग बात है एवं मेरा खयाल है, सही समझ के लिये प्राचीन एवं नवीन का जो ऊपर मापदंड बताया गया है, वह सभी दृष्टियों से काफी समुचित जान पड़ेगा।

'नवीनता के असली महत्त्व को नहीं समझने के लिये मैं केवल नवयुवकों के लिये ही नहीं कहता, वल्कि उतने ही अंशों में विचारपोषक प्रथाओं के समर्थकों के लिये भी कहता हूँ कि वे कई समाजघातक रीति-रिवाजों से चिपके रहने पर भी सभ्यता का अनुपालन करने का घमण्ड करते हैं और उन्हें जो-कोई उन सामाजिक कुप्रथाओं को छोड़ने का कहता है, उसे वे कुल-परम्पराओं की मर्यादाओं को तोड़ने वाले, उच्छृंखल आदि कहकर तिरस्कृत करना चाहते हैं। अतः दोनों वर्ग ही इसी मर्ज के बीमार हैं। हठवाद को छोडकर संयमी जीवन की उपयोगिता और शुद्ध पवित्र अन्तरात्माओं की प्रेरणा के मापदंड से किसी सिद्धान्त व नीति को परखना नवीनता के महत्त्व को भलीभांति समझना है।

'अतः इस अवसर पर निष्कर्ष रूप में मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें, ताकि जीवन को सच्चे अर्थो में सफल बना सकें। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन, दोनों का सम्यक् संतुलन और सही अर्थों में जीवन में समन्वय स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सकें।'

आपके इन विचारों के प्रकाश में आक्षेपकर्ताओं को मालूम होना चाहिये कि आप न तो रूढियों के पक्षपाती थे और न नवीनता का अन्धानुकरण ही उचित मानते थे। जो व्यक्ति शास्त्रीय मर्यादाओं की अजानकारी एवं सत्यनिर्णय करने में अपनी अक्षमता के कारण सत्य बात को बिगाडकर कहने से नहीं हिचकते एवं दोषारोपण करने से भी नहीं चूकते, उन्हें चाहिये कि आपके विचारों को समझें, चिन्तन करें, मनन करें।

आपका यह चातुर्मास धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से उस क्षेत्र के लिये उपकारक सिद्ध हुआ। श्रावक-श्राविकाओ ने दया, पौषध, उपवास आदि विविध प्रकार की तपस्याएं की और त्याग-प्रत्याख्यान किये। आस-पास के क्षेत्रों के श्रीसंघों एव स्वधर्मी बंधुओं के आपसी मनमुटाव, वैमनस्य का निराकरण हुआ और अनेक मूक प्राणियों को अभयदान मिला।

ब्यावर की जनता की तरफ से श्रद्धाञ्जलि

आचार्यश्री के प्रवचनों का प्रभाव था कि समग्र जातियों के लोग प्रवचन श्रवणार्थ उपस्थित होते थे। समग्र जातियों की ओर से पूज्यचरण में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के लिये ब्यावर के सुप्रसिद्ध वकील एवं नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति श्रीमान् मुकुटबिहारीलाल भार्गव तथा श्रीमान् ब्रजमोहनलाल वकील आदि प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने बडी भक्ति एव श्रद्धापूर्वक भाषण दिये। श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए वकील साहब ने कहा– बयालीस वर्ष के मेरे जीवन में मुझे अनेक मजहबों के आचार्यों से भेंट करने तथा व्याख्यानादि सुनने का

केन्द्रविन्दु बनता है, जिससे मनुष्य स्वयं सोचता है, जानता है, सीखता है और स्व-पर के लिये वस्तुतः कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क, स्वतन्त्र व्यक्तित्त्व व शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन-निर्माण कर सकता है।

'मनुष्य की सभी शक्तियाँ नवीन सत्कर्म से उद्‌बोधित रहती हैं, जीवन के सम्यक् विकास में जुट जाती हैं। मनुष्य अपने सही लक्ष्य की ओर आगे बढ़े, इसके लिये उसकी सबसे पहले अनिवार्य आवश्यकता होती है। यही कारण है कि आचार और विचार की दृष्टि से पिछड़ा नहीं रहना चाहता, उसे नहीं रहना चाहिये। वे इस बात की कोशिश करें कि ज्ञान के विशाल भंडार में वे प्रवेश करें, महान मनीषियों के तत्त्व-चिन्तन व आचरण को जानें, किन्तु उन सबको सम्यग्ज्ञान व आचरण में रमाकर ग्रहण करें, अपनी शुद्ध बुद्धि की कसौटी पर कसकर उसका मनन करें और यह मनोवृत्ति वास्तविक नवीन विचार तथा आचार-क्रांतियों का कारण बनती है।

'प्रचलित परिपाटियों में इधर-उधर से विकार आ जाते हैं, उनको हटाने और चेतना जाग्रत् करने के लिये मूलस्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते हैं उन्हें भी नवीनता की संज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों में नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिये कि जो परिवर्तन और एकरूपता को संतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को संतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने में जाग्रत् रखती है, ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कंटक बनाती है।

यहां 'नवीन' व 'प्राचीन' शब्दों के अर्थ व अन्तर को समझ लेना चाहिये। इन दोनों शब्दों का अर्थ अपेक्षाकृत लेना चाहिये। जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों, शुद्ध संयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूंकने वाले हों, वे बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एवं आत्मज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिक भावहीन सुन्दर शब्दों में नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम क्यों न हों, वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिये। इन शब्दों में समय का मापदंड ठीक नहीं हो सकता, किन्तु संयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

'इस दृष्टि से तत्त्वों का चयन किया जाना चाहिये, न कि आज के किन्हीं जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजें त्याज्य हैं। मैं उन नवयुवको को कहना चाहूँगा कि हठाग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्वक समझना अलग बात है एवं मेरा खयाल है, सही समझ के लिये प्राचीन एवं नवीन का जो ऊपर मापदंड बताया गया है, वह सभी दृष्टियों से काफी समुचित जान पड़ेगा।

'नवीनता के असली महत्त्व को नहीं समझने के लिये मैं केवल नवयुवको के लिये ही नहीं कहता, बल्कि उतने ही अंशों में विचारपोषक प्रथाओं के समर्थकों के लिये भी कहता हूँ कि वे कई समाजघातक रीति-रिवाजों से चिपके रहने पर भी सम्यता का अनुपालन करने का घमण्ड करते हैं और उन्हें जो-कोई उन सामाजिक कुप्रथाओं को छोडने का कहता है, उसे वे कुल-परम्पराओं की मर्यादाओं को तोड़ने वाले, उच्छृंखल आदि कहकर तिरस्कृत करना चाहते हैं। अतः दोनों वर्ग ही इसी मर्ज के बीमार हैं। हठवाद को छोड़कर संयमी जीवन की उपयोगिता और शुद्ध पवित्र अन्तरात्माओं की प्रेरणा के मापदंड से किसी सिद्धान्त व नीति को परखना नवीनता के महत्त्व को भलीभांति समझना है।

'अतः इस अवसर पर निष्कर्ष रूप में मैं यही कहना चाहता हूँ कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें, ताकि जीवन को सच्चे अर्थों में सफल बना सकें। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन, दोनों का सम्यक् संतुलन और सही अर्थों में जीवन में समन्वय स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सकें।'

आपके इन विचारों के प्रकाश में आक्षेपकर्ताओं को मालूम होना चाहिये कि आप न तो रूढ़ियों के पक्षपाती थे और न नवीनता का अन्धानुकरण ही उचित मानते थे। जो व्यक्ति शास्त्रीय मर्यादाओं की अजानकारी एवं सत्यनिर्णय करने में अपनी अक्षमता के कारण सत्य बात को विगाड़कर कहने से नहीं हिचकते एवं दोषारोपण करने से भी नहीं चूकते, उन्हें चाहिये कि आपके विचारो को समझें, चिन्तन करें, मनन करें।

आपका यह चातुर्मास धार्मिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से उस क्षेत्र के लिये उपकारक सिद्ध हुआ। श्रावक-श्राविकाओं ने दया, पौषध, उपवास आदि विविध प्रकार की तपस्याएं की और त्याग-प्रत्याख्यान किये। आस-पास के क्षेत्रों के श्रीसंघो एवं स्वधर्मी बंधुओं के आपसी मनमुटाव, वैमनस्य का निराकरण हुआ और अनेक मूक प्राणियों को अभयदान मिला।

ब्यावर की जनता की तरफ से श्रद्धाञ्जलि

आचार्यश्री के प्रवचनो का प्रभाव था कि समग्र जातियों के लोग प्रवचन श्रवणार्थ उपस्थित होते थे। समग्र जातियों की ओर से पूज्यचरण में श्रद्धाञ्जलि समर्पित करने के लिये ब्यावर के सुप्रसिद्ध वकील एवं नगर कांग्रेस कमेटी के सभापति श्रीमान् मुकुटबिहारीलाल भार्गव तथा श्रीमान् ब्रजमोहनलाल वकील आदि प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियो ने बड़ी भक्ति एव श्रद्धापूर्वक भाषण दिये। श्रद्धाञ्जलि समर्पित करते हुए वकील साहब ने कहा— बयालीस वर्ष के मेरे जीवन में मुझे अनेक मजहबों के आचार्यो से भेंट करने तथा व्याख्यानादि सुनने का

प्रसंग अनेक वार आया, किन्तु जो खूबी पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के व्याख्यान में मैंने पायी, वह कहीं नहीं पायी है, और मेरे जीवन को बहुत उज्ज्वल बनाने की जो शिक्षा पूज्यश्री के व्याख्यान मे हासिल हुई तथा शहर की बहुत-सी जातियो, जैन-अजैन को आपके व्याख्यान से जो शिक्षा मिली है, वह अवर्णनीय है।

बहुत-से लोगों ने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया। सट्टेबाजों ने सट्टे के, नशेबाजो ने नशे के व मांसभोजियों ने मांस-मदिरा के त्याग किये हैं। यह सब पूज्यश्री के सदुपदेश का ही प्रताप है और इससे नगर की जनता का बडा उपकार हुआ है। अतः मैं सारे शहर की तरफ से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि भेंट करता हुआ पूज्यश्री का उपकार मानता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि इसी प्रकार ब्यावर पर पूर्ण कृपादृष्टि रखकर समय-समय पर संभाल लेते रहें।"

सारा ब्यावर नगर आपश्री की विदाई-वेला पर भावविह्वल था। आचार्यप्रवर ससंघ मिगसर वदी एकम को विहार कर नगर के बाहर शंकरलालजी मुणोत के बगीचे में पधारे। वहाँ आचार्यश्री के प्रांसगिक वक्तव्य के पश्चात् भारी हृदयो से दस हजार जनता ने अपने-अपने घरो की ओर कदम बढ़ाये। दूज के दिन आचार्यश्री गुरुकुल पधारे। छात्रो के मध्य जीवन-निर्माणकारी प्रवचन हुआ। ब्यावर नगर की धर्मप्राण जनता भी प्रवचन-श्रवणार्थ उलट पड़ी। आचार्यश्री के पैर में दर्द हो जाने से लगभग 20 दिन गुरुकुल परिसर में डॉक्टरों की राय से विराजना पडा। ब्यावर के साथ देश-भर से श्रद्धालुओ ने आकर पूज्यश्री के सान्निध्य का लाभ उठाया।

स्वास्थ्य-लाभ के पश्चात् आपश्रीजी ने मिगसर सुदी 5 को श्री जैन गुरुकुल से विहार किया। हजार-बारह सौ के लगभग जनता विहार में सम्मलित हुई। पूज्यश्री खेडाजेवाणे पधारे। वहाँ आपश्री के सदुपदेश से 20-25 पाड़ो को अभयदान मिला तथा बहुत-से मीणा लोगों ने भविष्य में जीवहिंसा तथा मदिरा-मांस-सेवन के त्याग किये। जीवदया का उल्लेखनीय कार्य करने के पश्चात् आपश्री रामगढ हनूतिया पधारे।

रामगढ़ में साधुमार्गियों (स्थानकवासी) के 50-60 घर थे, जिनमें 20 वर्षो से दो धड़े थे। आपश्री के चरणों का प्रताप था कि वहाँ शांति का वातावरण बन गया। सारे संघ में प्रेम की लहर फैल गयी। रामगढ में रामराज्य की-सी स्थिति हो गई। एकता के साथ त्याग, प्रत्याख्यान भी अच्छे हुए।

रामगढ़ से मसूदा पदार्पण हुआ। मसूदा की जनता ने सन्त-समागम का लाभ उठाया और त्याग-प्रत्याख्यान की झड़ी लगी दी। मसूदा से आचार्यवर जेठाना पधारे। जेठाना में ओसवाल समाज में धड़ेबन्दी थी, जो आपश्रीजी के मंगल उद्‌बोधन से समाप्त हो गई और शांति का साम्राज्य स्थापित हो गया। आपश्री का जेठाना से बगडी की तरफ विहार का विचार

था, परन्तु अजमेर सघ के गणमान्य श्रावक जेठाना आ गये और आग्रहभरी विनती करने लगे। अजमेर संघ की आग्रहभरी विनती को आचार्यप्रवर नहीं ठुकरा सके और अजमेर की तरफ विहार करना ही पड़ा।

आपश्री ठाणा 10 से अजमेर पधारे। पौष का महीना, कड़ाके की ठण्ड, फिर भी प्रवचनों में जनता का प्रवाह उमड पड़ता था। धर्म की गहरी जागृति हुई। ओसवाल बिरादरी में जो धड़े थे, वे आपके भावमय उपदेशों से मिट गये। अजमेर में संगठन का बिगुल बजाकर माघ शुक्ला छठ को विहार किया और किसनगढ़ संघ के आग्रह पर वहाँ पधारे। फिर नागेलाव होते हुए मारवाड के छोटे-छोटे गाँवों को अपनी अमृतदेशना से लाभान्वित किया।

ब्यावर चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर इस विहार यात्रा के क्षेत्रों में आपश्री ने अहिसा की व्यापकता और धर्म के यथार्थ स्वरूप को बतलाया जिससे देवी-देवताओ के नाम पर होने वाली मूक प्राणियों की हिंसा बंद होने से जीवरक्षा की प्रवृत्ति को वेग मिला। बहुत-से व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि के सेवन का त्याग करके जीवन-शुद्धि की ओर बढने का निश्चय किया।

इस क्षेत्र में विहार करके आपने समाज के आपसी वैमनस्य, कुरूढ़ियों के प्रति लगाव आदि का उन्मूलन किया। आप अपने प्रवचनों में उन विषयों का विशेष रूप से संकेत करते थे जो जीवन को अनैतिकता की ओर बढ़ाने में जाने या अनजाने सहकारी कारण बन जाते हैं, जैसे धूम्रपान, विवाहादि अवसरों पर वारांगना-नृत्य, दीपावली आदि अवसरों पर जुआ खेलना आदि।

समाजसुधार के विषय में आपका स्पष्ट मत था कि ऐसा आचारण लाभकारी नही होगा, जिसमें मानवीय गौरव, स्वतन्त्रता और न्याय की रक्षा के लिये मौलिक आधार न हो। परिवर्तित परिस्थितियों के नाम पर अपने आधारभूत सिद्धान्तो में संशोधन करने या छूट देने की सोचना अपनी परम्परा के सिद्धान्तो में विश्वास की कमी का द्योतक होगा। कई वार ऐसा होता है जब मानव अपनी थकान के कारण विचारों के वात्याचक्र में फंसकर सोचता है कि अतीत को त्याग दें और पूर्णरुपेण नये सिरे से प्रारम्भ करें। लेकिन इस स्थिति मे उसके द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था स्वयं मानव की रक्षा नहीं कर पाती और नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने में रुकावट बनती है। अतः समाजसुधार का यथार्थ आशय है कि मानव-संस्कृति के मौलिक आदर्शो का त्याग न कर अनुष्ठानों एवं आचरणों द्वारा उनको साकार कर ऊपर उठाएं। नूतन की उपलब्धियों को अतीत के प्रामाणिक सिद्धान्तों के साथ एकता के सूत्र में गूथें।

आपके ओजस्वी प्रवचनों के फलस्वरूप अनेक सामाजिक कुरूढ़ियों की जडें हिल चुकी थीं और समाज में एक आशा की किरण चमकने लगी थी। वैसे तो कुरूढिग्रस्त समाज में आदर्श की ओर कदम बढ़ाने में सत्कार नहीं, वरन् तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति में आदर्श समाज-रचना के प्रयत्न करना बडे साहस का कार्य माना जाता है। लेकिन आपके उपदेशों ने समाज में असीम स्फूर्ति, साहस और उत्साह का संचार कर दिया था।

प्रसंग अनेक बार आया, किन्तु जो खूबी पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के व्याख्यान में मैंने पायी, वह कहीं नहीं पायी है, और मेरे जीवन को बहुत उज्ज्वल बनाने की जो शिक्षा पूज्यश्री के व्याख्यान में हासिल हुई तथा शहर की बहुत-सी जातियों, जैन-अजैन को आपके व्याख्यान से जो शिक्षा मिली है, वह अवर्णनीय है।

बहुत-से लोगों ने आजीवन ब्रह्मचर्य धारण किया। सट्टेबाजों ने सट्टे के, नशेबाजों ने नशे के व मांसभोजियों ने मांस-मदिरा के त्याग किये हैं। यह सब पूज्यश्री के सदुपदेश का ही प्रताप है और इससे नगर की जनता का बडा उपकार हुआ है। अतः मैं सारे शहर की तरफ से हार्दिक श्रद्धाञ्जलि भेंट करता हुआ पूज्यश्री का उपकार मानता हूँ और प्रार्थना करता हूँ कि इसी प्रकार ब्यावर पर पूर्ण कृपादृष्टि रखकर समय-समय पर संभाल लेते रहें।"

सारा ब्यावर नगर आपश्री की विदाई-वेला पर भावविह्वल था। आचार्यप्रवर ससंघ मिगसर वदी एकम को विहार कर नगर के बाहर शंकरलालजी मुणोत के बगीचे में पधारे। वहाँ आचार्यश्री के प्रासंगिक वक्तव्य के पश्चात् भारी हृदयों से दस हजार जनता ने अपने-अपने घरों की ओर कदम बढ़ाये। दूज के दिन आचार्यश्री गुरुकुल पधारे। छात्रों के मध्य जीवन-निर्माणकारी प्रवचन हुआ। ब्यावर नगर की धर्मप्राण जनता भी प्रवचन-श्रवणार्थ उलट पडी। आचार्यश्री के पैर में दर्द हो जाने से लगभग 20 दिन गुरुकुल परिसर में डॉक्टरों की राय से विराजना पड़ा। ब्यावर के साथ देश-भर से श्रद्धालुओं ने आकर पूज्यश्री के सान्निध्य का लाभ उठाया।

स्वास्थ्य-लाभ के पश्चात् आपश्रीजी ने मिगसर सुदी 5 को श्री जैन गुरुकुल से विहार किया। हजार-बारह सौ के लगभग जनता विहार में सम्मलित हुई। पूज्यश्री खेड़ाजेवाणे पधारे। वहाँ आपश्री के सदुपदेश से 20-25 पाड़ों को अभयदान मिला तथा बहुत-से मीणा लोगो ने भविष्य में जीवहिंसा तथा मदिरा-मांस-सेवन के त्याग किये। जीवदया का उल्लेखनीय कार्य करने के पश्चात् आपश्री रामगढ हनूतिया पधारे।

रामगढ में साधुमार्गियों (स्थानकवासी) के 50-60 घर थे, जिनमें 20 वर्षों से दो धड़े थे। आपश्री के चरणों का प्रताप था कि वहाँ शांति का वातावरण बन गया। सारे संघ में प्रेम की लहर फैल गयी। रामगढ़ में रामराज्य की-सी स्थिति हो गई। एकता के साथ त्याग, प्रत्याख्यान भी अच्छे हुए।

रामगढ से मसूदा पदार्पण हुआ। मसूदा की जनता ने सन्त-समागम का लाभ उठाया और त्याग-प्रत्याख्यान की झडी लगी दी। मसूदा से आचार्यवर जेठाना पधारे। जेठाना में ओसवाल समाज मे धडेबन्दी थी जो आपश्रीजी के मंगल उद्बोधन से समाप्त हो गई और शांति का साम्राज्य स्थापित हो गया। आपश्री का जेठाना से बगड़ी की तरफ विहार का विचार

था, परन्तु अजमेर संघ के गणमान्य श्रावक जेठाना आ गये और आग्रहभरी विनती करने लगे। अजमेर संघ की आग्रहभरी विनती को आचार्यप्रवर नहीं ठुकरा सके और अजमेर की तरफ विहार करना ही पड़ा।

आपश्री ठाणा 10 से अजमेर पधारे। पौष का महीना, कड़ाके की ठण्ड, फिर भी प्रवचनों में जनता का प्रवाह उमड पड़ता था। धर्म की गहरी जागृति हुई। ओसवाल विरादरी मे जो धड़े थे, वे आपके भावमय उपदेशों से मिट गये। अजमेर में संगठन का विगुल बजाकर माघ शुक्ला छठ को विहार किया और किसनगढ संघ के आग्रह पर वहाँ पधारे। फिर नागेलाव होते हुए मारवाड़ के छोटे-छोटे गाँवों को अपनी अमृतदेशना से लाभान्वित किया।

ब्यावर चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर इस विहार यात्रा के क्षेत्रों में आपश्री ने अहिंसा की व्यापकता और धर्म के यथार्थ स्वरूप को वतलाया जिससे देवी-देवताओं के नाम पर होने वाली मूक प्राणियो की हिंसा बंद होने से जीवरक्षा की प्रवृत्ति को वेग मिला। बहुत-से व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि के सेवन का त्याग करके जीवन-शुद्धि की ओर बढने का निश्चय किया।

इस क्षेत्र में विहार करके आपने समाज के आपसी वैमनस्य, कुरूढ़ियों के प्रति लगाव आदि का उन्मूलन किया। आप अपने प्रवचनों में उन विषयों का विशेष रूप से संकेत करते थे जो जीवन को अनैतिकता की ओर बढ़ाने में जाने या अनजाने सहकारी कारण बन जाते है, जैसे धूम्रपान, विवाहादि अवसरों पर वारांगना-नृत्य, दीपावली आदि अवसरों पर जुआ खेलना आदि।

समाजसुधार के विषय में आपका स्पष्ट मत था कि ऐसा आचारण लाभकारी नही होगा, जिसमें मानवीय गौरव, स्वतन्त्रता और न्याय की रक्षा के लिये मौलिक आधार न हो। परिवर्तित परिस्थितियों के नाम पर अपने आधारभूत सिद्धान्तों में संशोधन करने या छूट देने की सोचना अपनी परम्परा के सिद्धान्तों में विश्वास की कमी का द्योतक होगा। कई बार ऐसा होता है जब मानव अपनी थकान के कारण विचारों के वात्याचक्र में फंसकर सोचता है कि अतीत को त्याग दे और पूर्णरूपेण नये सिरे से प्रारम्भ करें। लेकिन इस स्थिति में उसके द्वारा उत्पन्न अव्यवस्था स्वयं मानव की रक्षा नहीं कर पाती और नये सिरे से जीवन प्रारम्भ करने मे रुकावट बनती है। अतः समाजसुधार का यथार्थ आशय है कि मानव-संस्कृति के मौलिक आदर्शो का त्याग न कर अनुष्ठानों एवं आचरणों द्वारा उनको साकार कर ऊपर उठाएं। नूतन की उपलब्धियों को अतीत के प्रामाणिक सिद्धान्तों के साथ एकता के सूत्र में गूंथे।

आपके ओजस्वी प्रवचनों के फलस्वरूप अनेक सामाजिक कुरूढियो की जडे हिल चुकी थीं और समाज मे एक आशा की किरण चमकने लगी थी। वैसे तो कुरूढिग्रस्त समाज में आदर्श की ओर कदम वढ़ाने में सत्कार नहीं, वरन् तिरस्कार का पुरस्कार मिलता है। ऐसी स्थिति में आदर्श समाज-रचना के प्रयत्न करना बड़े साहस का कार्य माना जाता है। लेकिन आपके उपदेशों ने समाज में असीम स्फूर्ति, साहस और उत्साह का संचार कर दिया था।

चातुर्मास के पूर्व पूज्यश्री सहसमलजी म.सा. की परम्परा के मुनिश्री नगराजजी म. (ताल-मेवाड़) ने आपश्री का चरणाश्रय ग्रहण किया।

आपश्री की संयम-साधना और धर्मदेशना से भव्यजन परिचित थे ही और समय-समय पर वाणी-श्रवण का लाभ भी उठाते रहते थे। अतः चातुर्मास हेतु बगडी में आपश्री का पदार्पण होते ही हजारों बंधुओ का बगड़ी में जमघट होने लगा।

साधु-सन्तों का चातुर्मास उस स्थान के समस्त निवासियों की भावनाओं का प्रतीक होता है। अतः बगड़ीवासियों ने धर्मलाभ लेने के लिये आने वाले बंधुओं की सेवा, व्यवस्था का प्रत्येक कार्य स्वयं करने में अपना गौरव माना।

पर्युषण पर्व के अवसर पर खूब तपस्याएं हुईं। सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी साहब धाड़ीवाल एवं सेठानी श्री लक्ष्मीबाई ने क्रमशः 8 एवं 12 की तपस्या करते हुए बाहर से आगन्तुकों की तन-मन-धन से सेवा करके स्वधर्मी वात्सल्यता का लाभ लिया। शासन-प्रभावना की दृष्टि से आपकी सेवाएं उल्लेखनीय रहीं। पर्युषण एवं पूरे चातुर्मास-काल में बाहर से भारी संख्या में लोगों का आवागमन रहा। चातुर्मास में अछूत माने जाने वाले बहुत-से स्त्री-पुरुष भी आपके प्रवचन सुनने के लिये आया करते थे। उन्होंने आपके उपदेशों से प्रभावित होकर मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों का सेवन न करने की प्रतिज्ञा ली और सामाजिक सुधार की दृष्टि से भी कई महत्त्वपूर्ण कार्य सम्पन्न हुए।

बगड़ी का यशस्वी चातुर्मास सम्पन्न कर आपश्री ने तेरहपन्थियों के विशेष आग्रह पर मुरालिया गाण्डा, दुधौड़, मारवाड़ जं., राणावास, चौपारी, सारण, सिरियारी, काछबली आदि अनके छोटे-छोटे गाँवों में पर्दापण किया। आपश्री ने दया-दानमय जैन सिद्धान्तों का प्रतिपादन करके भव्य जनों को बोध दिया, फलस्वरूप कई-एक सरल हृदय प्रकृति वालों ने सत्य श्रद्धा ग्रहण की तथा अन्य अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान भी हुए।

सारण और सिरियारी में बहुत वर्षों से धडे चले रहे थे। समाज मे वैमनस्यता का वातावरण बना हुआ था। आपश्री के प्रभावक वचनामृतों से एकता स्थापित हुई और सामाजिक समरसता का निर्माण हुआ। इन क्षेत्रों में अधिकांश तेरहपन्थी भाइयों ने बहुत भक्ति एवं प्रेम प्रदर्शित किया। आचार्यश्री के विचरण से इन गाँवों में अपूर्व क्षेत्रशुद्धि हुई।

दयादान का परचम फहराते हुए तथा भव्य प्राणियों को सत्यपथ पर आरूढ करते हुए आपश्री ने पौष शुक्ला ग्यारस को मेवाड के मुख्य क्षेत्र देवगढ में प्रवेश किया। पूरा मेवाड़ हर्ष से झूम उठा। आचार्यश्री के देवगढ में 6 प्रवचन हुए जिनमें प्रतिदिन कुव्यसन-बीडी, तम्बाकू, मदिरा आदि के त्याग होते थे। जमीकन्द एवं हरी के खन्द भी हुए। श्रीयुत् मूलचन्दजी श्रीमाल ने सजोड़े शीलव्रत ग्रहण किया। आचार्यश्री के आचार-विचारों प्रभावित होकर अनेक भाई-बहनों से सत्य श्रद्धा ग्रहण की।

श्रीमान् रावजी साहब आचार्यश्री के प्रवचनो से बहुत प्रभावित हुए। उन्होने रणवास में पधार कर व्याख्यान देने की प्रार्थना की परन्तु राजा और रंक को एक दृष्टि से देखने वाले निस्पृह आचार्य ने रावजी की विनती स्वीकार नहीं की। आचार्यश्री के विनती स्वीकार नहीं करने पर रावजी किंचत् भी अप्रसन्न नहीं हुए प्रत्युत् आपकी सरलता, सादगी एवं साधुता से प्रभावित हो संघ को डेरा-तम्बू आदि आवश्यकता की पूर्ति की।

देवगढ से गंगापुर, नाथद्वारा एवं छोटे-मोटे गॉवों को माघ माह की भीषण सर्दी के बावजूद अपने सान्निध्य से कृतार्थ करते हुए उदयपुर पदार्पण किया। जन्मभूमि पर चरण न्यास होते ही यहॉ का कण-कण पुलकित हो उठा। आबाल-वृद्ध धर्म की गंगा में डुबकियां लगाने लगा। तप-त्याग की होड लग गई। 27 दिनों तक मेवाड़ की राजधानी को धर्मामृत से अभिसिंचित कर 24 मार्च, 47 को विहार किया। विहार में मानों पूरा उदयपुर आपश्री के साथ बेभान हो चल पडा। सहेलियों की वाड़ी में आपश्री विराजे। यहॉ महाराणा साहब भूपालसिंहजी आपके प्रवचन-श्रवणार्थ पधारे। आधे घण्टे तक जैन आचार्य के मुखारविन्द से वीर क्षत्रियोचित प्रवचन श्रवण कर महाराणा सा. गदगद हो गये।

पूज्यश्री ने यहॉ से देबारी, कुराबड होते हुए बम्बोरा पदार्पण किया। यहॉ ब्यावर निवासी जुगराजजी बोहरा ने 30 वर्ष की युवावस्था में वैशाख सुदी 8 को दीक्षा अंगीकार की। यहाँ से आचार्यवर कानोड़ पधारे। बडे श्री चाँदमलजी म. इत्यादि 14 सन्तों के साथ आचार्यश्री कुछ दिनों तक कानोड़ विराजे। यहॉ तप-त्याग-दया-पौषध की धूम मच गई। गर्मी को झुठलाते हुए कानोड़वासियों ने जो धर्म आराधना की। वह उनकी गुरुभक्ति का उदाहरण था।

मुक्ति के चरम और परम लक्ष्य को ओझल कर प्रचारप्रधान विचारकों ने जैन समाज में काफी समय से ध्वनिवर्धक यंत्र की अनावश्यक चर्चा चला रखी थी। श्री श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेंस के कार्यकर्ताओं ने पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर ध्वनिवर्धक यंत्र विषयक विचार जानने का प्रयत्न किया। आचार्यश्री ने कॉन्फरेंस-कार्यकर्ताओं के सन्मुख अपने स्पष्ट विचार प्रगट किये-

"मै इस प्रवृत्ति को शास्त्रविरुद्ध समझता हूँ क्योंकि अग्निकायादि जीवों का आरम्भ प्रत्यक्ष रूप से होता है और यही मूल व्रतों का विनाशक है। अतएव जैन मुनियों के लिए यह शास्त्रविरुद्ध आचरण अशोभनीय है। अतः आरंभ के कार्यों का मैं समर्थक नहीं हूँ। यही मेरी स्पष्ट सम्मति है।"

श्रमण संस्कृति-सरंक्षक आचार्यप्रवर के श्रीमुख से ध्वनिवर्धक यंत्र के विषय में एकदम स्पष्ट विचार सुनकर आगत कार्यकर्ताओं के पास प्रतिप्रश्न रहा ही नहीं। आचार्यश्री प्रारंभ से ही आचार-रक्षक के रूप में रहे। ढुलमुल नीति को उन्होंने कभी प्रश्रय नहीं दिया। इस आचार-रक्षक नीति पर वे जीवन के अंतिम श्वास तक दृढ़ रहे।

देकर सुख की खोज करता है और स्वार्थ के वशीभूत होकर अमानवीय क्रियाओं की ओर झुक जाता है, उसका परिणाम बहुसंख्यक अशक्तों की असह्य पीड़ा के रूप में प्रगट होता है।

अगर इस आत्मविस्मृति के विरुद्ध आत्मानुभव की भावना जाग सके और प्रत्येक कार्य को स्वानुभव की कसौटी पर कस ले तो मानव किसी भी प्राणी को किसी भी प्रकार से दुःखी करने, उनके प्राणों को हरने का प्रयत्न नहीं करेगा। इसके लिये आवश्यक है मानवीय नीतियों में स्वार्थ-त्याग की धर्ममय नीति के प्रवेश करने की।

आपश्री के प्रवचनों को सुनकर ठाकुर श्री भीमसिंहजी की अन्तर्चेतना जाग्रत् हुई और धर्म के वास्तविक स्वरूप की जानकारी प्राप्त की। दृष्टि के बदलते ही अभी तक जो-कुछ किया या धर्म के नाम पर जीवहत्या का कलंक लगाया, वह सब उन्हें घृणित और निन्दनीय जंचने लगा और मन में विचार पैदा हुआ कि जगदम्बा के महान् गौरवशाली पद पर आसीन भवानी अपने सपूतों के खून से कैसे खुश हो सकती है ? यह सब तो धर्म को कलंकित करने वाले स्वार्थियों और धर्मद्रोहियो का पाखंड है, धर्म के साथ द्रोह करना है। मैं अंधेरे में था, आज ही मुझे सद्गुरु का समागम हुआ है और उन्होंने सद्बुद्धि देकर सन्मार्ग के दर्शन कराये हैं।

ठाकुर सा. के मन में ये विचार कितने ही दिन तक चलते रहे और उनके समाधान के लिये विचारों की गहराई में उतरते, उतना ही हृदय पश्चात्ताप से भर जाता था। मूक प्राणियों की आकृतियाँ आंखों के सामने झलक उठती थीं। अपने मनोभावों को व्यक्त करने के लिये अनेक बार सोचा भी, लेकिन मानसिक द्वन्द्व के कारण आत्मा की आवाज कहते-कहते हिचक जाते थे।

एक दिन मन में कुछ निश्चय-सा करते हुए प्रवचन के समय अपने द्वन्द्व को निवेदन करते हुए ठाकुर सा. ने कहा कि मैं बहुत ही अन्धकार में था। भ्रान्त धारणाओं और अन्धश्रद्धा के वश होकर मेरे द्वारा अनेक निरीह प्राणियों की हत्या हुई है। इसके लिये मुझे हार्दिक दुःख है और जीवनपर्यन्त के लिये प्रतिज्ञा करता हूँ कि देवी-देवताओं के नाम पर होने वाली बलि नहीं करूंगा और न शिकार ही खेलूंगा। आपके सद्बोध से मेरा जन्म सुधर गया है।

इस प्रकार की प्रतिज्ञा करने के साथ-साथ ठाकुर श्री भीमसिंहजी शुद्ध श्रद्धा धारण करके जैन धर्म के अनुरागी और आपके भक्त बन गये और पहले तो नवरात्रि के दिनों में प्रतिदिन एक-एक बढ़ाकर पैंतालीस बकरों की बलि दी जाती थी, उसके बजाय प्रतिदिन एक-एक बढ़ाकर पैतालीस बकरों को अभयदान देकर अमारिया घोषित करने की आज्ञा दे दी और दशहरे (विजयादशमी) के दिन भैंसे के वध को तो सदा के लिये बंद कर दिया गया। आपके साथ में ठाकुर मोड़सिंहजी साहब झाला, ठाकुर अर्जुनसिंहजी साहब भामा, तेजदानजी चारण सरदार, कुंवर साहब आदि सज्जनों ने भी मद्य-मांस का त्याग किया।

इस अहिंसा और करुणा की क्रांति के अतिरिक्त अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान, धर्म-ध्यान व प्रभावना के कार्यो के साथ चातुर्मास सम्पन्न हुआ। बड़ी सादड़ी श्रीसंघ के हर्ष का पार न था कि बहुत समय से चली आ रही अन्धश्रद्धा-जन्य पाशविक प्रथा सदा-सदा के लिये बंद हो गई।

कार्तिक बदी 7 को श्रीडूंगरगढ-देशनोक के श्री तोलारामजी सेठिया की दीक्षा आपकी नेश्राय में सानन्द सम्पन्न हुई।

ठाकुरों में जीव-दया की लहर पैदा हुई

अहिंसा परमो धर्मः का बिगुल बजाकर आचार्यश्री ने बड़ी सादड़ी से विहार किया। बड़ी सादड़ी के श्रद्धालुओं के मन विरह की व्यथा से व्यथित थे तो अपार जनसमूह को देखकर प्रफुल्लित भी थे।

हजारों श्रद्धालुओं के जयघोषों के साथ आचार्यश्री बोहडा पधारे। बोहड़ा के रावतजी साहब एवं कामदार साहब आदि भी आचार्यश्री के स्वागतार्थ पधारे। रावतजी साहब, कामदार साहब आदि जनसमूह ने विविध त्याग-प्रत्याख्यान किये।

पूज्यश्री बोहडा से वानसी पधारे। वानसी के रावत साहब आदि आपश्रीजी के प्रवचन से अत्यधिक प्रभावित हुए। प्रवचन सभा में रावतजी साहब ने घोषणा की– 1. वैशाख, श्रावण और कार्तिक माह में पूरा अगता पलाया जायेगा। 2. नवरात्रि में जो बलिदान होते थे वे बन्द किये जाते हैं।

इस घोषणा से अहिंसाप्रेमियों के हर्ष का पार नहीं रहा। बोहड़ा और वानसी में श्री जवाहर स्वाध्याय मण्डल की स्थापना हुई। मण्डल को रावतजी साहब की तरफ से पुस्तकें भेटस्वरूप प्रदान की गईं।

आपश्री ने वानसी से कानोड, निकुम, डुंगला, सनवाड, फतहनगर आदि छोटे-मोटे कई गाँवों में व्यसनमुक्ति एवं अहिंसा का सिंहनाद कर कपासन पदार्पण किया। कपासन में महासतीश्री दीपकंवरजी, महासतीश्री सुहागांजी आदि साध्वियों सहित 40 के करीब चारित्रात्माओं का सम्मिलन सुखद रहा।

स्थिरवासी सन्तों की सेवा में बीकानेर एवं ब्यावर की तरफ सुयोग्य संतों को विहार कराकर पूज्यवर ने गंगापुर, भीलवाड़ा होते हुए चितौड़गढ़ पदार्पण किया। चितौड़ में ठाणा 17 से काफी दिनों तक विराजना रहा और प्रवचन-प्रभावना का ठाठ रहा। कानोड़ तथा रतलाम के संघ-प्रमुखों ने आचार्यश्री के चरणों में चातुर्मास हेतु विनतियॉं प्रस्तुत कीं। आचार्यप्रवर ने फरमाया– "जावरा विराजमान प्रवर्तनीश्री केसरकंवरजी म.सा. को दर्शन दिये विना चातुर्मास की स्वीकृति देने का भाव नहीं है।"

बड़ी सादड़ी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् यथासमय अन्यान्य स्थानों में भी आपके पधारने से ठाकुरों, जागीरदारों ने भी धर्मोपदेश को सुनकर शिकार, मांसाहार, सुरापान और माता के स्थान पर बलि देने आदि का यावज्जीवन के लिये त्याग कर दिया। बडी सादडी में हुई अहिंसा-प्रसार की क्रांति की ऐसी लहर फैली कि विनाश की विचारधारा विकास में रूपान्तरित हो गई। गांव-गांव में ये प्रतिज्ञाएं दुहराई गईं कि हम लोग अपने-अपने गांव में नवरात्रि, दशहरे के दिनों मे बकरों, भैंसों की बलि नहीं देंगे और दूसरे-दूसरे स्थानों पर भी ऐसा न होने देने के लिये प्रयत्न करेंगे।

मन्दसौर में सिंधी भाइयों में धर्म-जागृति

इस प्रकार मेवाड में अन्धश्रद्धा का उन्मूलन और धार्मिकता के बीज वपन करते हुए आपके मालव भूमि की ओर विहार की जानकारी जैसे ही मालव श्रीसंघों को मिली तो उनमे एक अपूर्व उत्साह व्याप्त हो गया। सभी श्रीसंघों में होड़-सी चल पड़ी कि हमारे क्षेत्र में तो आपका अवश्य ही पदार्पण हो और अपने-अपने क्षेत्र में पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित होने लगे।

यथासमय विहारमार्ग में आने वाले नीमच, नगरी आदि क्षेत्रों में विचरण करते हुए आपने मंदसौर में पदार्पण किया और राजकीय शाला में विराजे।

मंदसौर में होने वाले प्रवचनों का समस्त नगरवासियों ने लाभ लिया। वे सभी ऐसे प्रभावित हुए कि आप यहां विराजकर हमें धर्म के मर्म से परिचित कराते रहें। फलस्वरूप सभी ने आगामी चातुर्मास के लिये सामूहिक रूप में विनती करने का निश्चय किया। उनमें सिन्धी भाई भी थे जो अपने जन्मस्थानों को हजारों मील दूर छोड़कर शरणार्थी के रूप में इस नगर में आकर नये-नये ही बसे थे। उनकी भावना थी कि धर्म के दो शब्द सुनेंगे तो हमारे मन शांत होंगे।

अभी चातुर्मास का समय दूर था अतः निश्चित रूप से प्रत्युत्तर न देकर इस सामूहिक विनती को आपश्री ने अपनी झोली में डाल कर मंदसौर से जावरा की ओर विहार कर दिया।

आचार्यश्री ने अपार जन-उत्साह के साथ आषाढ़ कृष्णा 3 को जावरा में पदार्पण किया। जावरा में दर्शनातुर प्रवर्तनीजी की भावना सफल हुई। एक इच्छा के पूर्ण होते ही दूसरी इच्छा प्रबल हो उठी कि पूज्यश्री का चातुर्मास भी जावरा हो ताकि सेवा-सान्निध्य का लाभ प्राप्त हो सके। प्रवर्तनीजी की भावना के साथ जावरा संघ की भी प्रबल भावना थी कि पूज्यवर का चौमासा जावरा हो। इस प्रकार आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने की विनती लेकर जावरा एवं जावरा के अलावा रतलाम, कानोड, मन्दसौर आदि श्रीसंघों के सदस्य भी

उपस्थित हो गये और आगामी चातुर्मास के लिये पुन: अपनी-अपनी विनती दोहरायी और द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को देखते हुए आपने कई आगारों के साथ सं. 2005 का चातुर्मास रतलाम करने की स्वीकृति फरमायी।

इस अवसर पर विनती करने वाले श्रीसंघो में मदसौर श्रीसंघ के साथ वहां के और दूसरे नागरिक व सिन्धी भाई यह विश्वास लेकर आये थे कि आपश्री हमारी विनती पर अवश्य ही ध्यान देंगे और वर्षावास के चार माह विराजकर धर्मोपदेश सुनाने के साथ-साथ हमें जैन धर्म में दीक्षित करने की कृपा करेंगे। लेकिन स्वीकृति न मिलने से उन्हें बड़ी निराशा हुई।

अकिंचन अनगार की दृष्टि में राजा-रंक सभी समान हैं। जिन्होंने ऐहिक भोगों की निस्सारता को परख लिया है, उन्हें सांसारिक वैभव, मान-सम्मान, पूजा-प्रतिष्ठा आदि प्रलोभन किंचिन्मात्र भी आकर्षित नहीं कर पाते हैं। लेकिन वे श्रद्धालुओं की श्रद्धा और धार्मिकजनों की धर्म-भावना के विकास में सहकार देने के लिये सदैव तत्पर रहते हैं। अतः आपश्री को मंदसौर श्रीसंघ के सदस्यों और विशेषतः सिन्धी भाइयों के विश्वास और आन्तरिक भावना को ठेस पहुंचाना उचित प्रतीत नहीं हुआ। इसी के साथ-साथ यह विचार भी पैदा हुआ कि जब आगामी चातुर्मास के लिये स्वीकृति दे दी है। तो अब अपने वचन से मुकरना साधु-मर्यादा नही है।

कई कारणों से चातुर्मास मन्दसौर न होकर रतलाम में हुआ

आपश्री इस दुविधा के बारे में जितना भी सोचते और समाधान का प्रयत्न करते, उतना ही उलझन बढ़ती जा रही थी। अतः आपने यह अन्तर्द्वन्द्व रतलाम श्रीसंघ के श्रावकों के समक्ष रखा और फरमाया कि चातुर्मास की स्वीकृति के समय विशिष्ट धार्मिक उपकार होने की सम्भावना से अन्यत्र चातुर्मास किये जाने का आगार रखा है। फिर भी आप लोगों की भावना से परिचित होना चाहता हूँ। आप लोग इस उलझन का समाधान बतायें।

रतलाम संघ के सदस्यों ने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को लक्ष्य में रखते हुए और विशेष उपकार होने की आशा में आपस में विचार-विमर्श करके प्रार्थना की कि आपश्री अपने आगारों के अनुसार विशेष परिस्थिति में कहीं भी चातुर्मास में विराज सकते हैं और मंदसौर की जनता की भावना को देखते हुए वहां धर्म-प्रभावना होने की सम्भावना है। यद्यपि पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के समय में राजाओं द्वारा अपने नगर के लिये चातुर्मास मांगने का प्रसंग आ चुका है लेकिन किसी नगर के नागरिको द्वारा सामूहिक रूप में चातुर्मास की प्रार्थना होना पहली ही बार हम देख रहे हैं। अतः भविष्य के लिये अपना अधिकार सुरक्षित रखते हुए प्रार्थना करते हैं कि आपश्री इस वर्ष का चातुर्मास मंदसौर करने की स्वीकृति फरमावें। साथ ही

मंदसौर संघ से आशा करते हैं कि आपकी धर्म-भावना दिनोंदिन वृद्धिंगत हो और गुरुदेव के उपदेशों का लाभ उठायें।

रतलाम श्रीसंघ की स्वीकृति मिलने पर आपने मंदसौर के उपस्थित नागरिकों और उनके अग्रणी प्रमुख सज्जनों से कहा कि आपकी धर्म-भावना को समझकर रतलाम संघ ने भी अपनी उदारता दिखलाई है और मैं भी चातुर्मास की स्वीकृति के समय रखे हुए आगारो के अनुसार अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये खुला हुआ हूँ। कदाचित् मंदसौर में चातुर्मास की स्थिति बने तो साध्वाचार के अनुरूप विश्राम-स्थान के बारे में आप लोग बताइये।

सिन्धी भाइयों ने इस बात को सुनकर कहा कि आपश्री तो अपनी स्वीकृति फरमावें। योग्यस्थान की व्यवस्था करने में हमें कोई कठिनाई नहीं होगी। सिर्फ आपकी स्वीकृति हमारे लिये महान् प्रसन्नता और गौरव की बात होगी।

इस बात को सुनकर आपने फरमाया कि जब साधु अपने निमित्त बना हुआ भोजन भी नहीं ले सकता तो यह स्थिति कैसे संभव है कि आप लोग साधु के निमित्त मकान की व्यवस्था करें। साधु अपने निमित्त किसी को कष्ट दे तो उसमें संयम-साधना निरतिचार कैसे पल सकेगी ? इसलिये आप लोग ऐसा कोई स्थान बतायें, जिसमें किसी को भी कठिनाई न हो एवं साधु-मर्यादा का पालन करते हुए साधु-संत वर्षावास कर सकें। आप यह सोचें कि किराया देकर मकान ले लेंगे, तो भी यह साधु के लिये नहीं कल्पता है।

इस परिस्थिति को देखकर मंदसौर की जनता विवश हो गई और प्रार्थना की कि भगवन् ! आपकी दयालुता महान् है लेकिन साधु-मर्यादा को देखते हुए हम विवश हैं। आपश्री जैसा निर्दोष स्थान फरमा रहे हैं, वैसी स्थिति अभी हमारे यहां नहीं है एवं अपनी विवशता के लिये हमें दुःख है।

आपने पुनः फरमाया कि अब आप ही अपना निर्णय दे दीजिये कि संयम-स्थिति का सरंक्षण करते हुए हमें चातुर्मास में कहां रहना उपयुक्त हो सकता है। साधु तो साधुता की रक्षा को ही सर्वोपरि मानता है।

इस समग्र परिस्थिति के विशद विवेचन से मंदसौर के निवासियों को संतोष हुआ और बड़े ही हर्ष के साथ प्रार्थना की कि आपश्री अपनी साध्वोचित मर्यादा के अनुसार संयम-संरक्षणार्थ आगामी चातुर्मास रतलाम करने की कृपा करावें। आप जहां भी विराजेंगे, वहीं आकर दर्शन, व्याख्यान-वाणी का लाभ ले लेंगे। लेकिन सिर्फ अपने लाभ के लिये हम आपके साध्वाचार में किसी भी प्रकार से अतिचार नहीं आने देना चाहते हैं। अतः सं. 2005 का चातुर्मास रतलाम घोषित हुआ।

जावरा में 10 दिन विराज कर आचार्यश्री ने सैलाना आदि आस-पास के क्षेत्रों में

धर्मोपदेश देते हुए आषाढ़ सुदी 7 को ठाणा 11 से चातुर्मासार्थ रतलाम पदार्पण किया। इस चातुर्मास में महासतीश्री सूरजकंवरजी, महासती श्री सुगनकंवरजी (बीकानेर वाले) ठाणा 8 एवं महासतीश्री भूराजी म. ठाणा 5 का सान्निध्य भी धर्मप्राण जनता को प्राप्त हुआ।

रतलाम में अध्यात्म तत्त्वज्ञान की झड़ियाँ

चातुर्मास-काल में स्थानीय एवं आस-पास के क्षेत्रों के श्रावक-श्राविकाओ ने आध्यात्मिक विकास एवं धर्म-प्रभावना का लाभ प्राप्त किया। अनेक प्रकार के त्याग, प्रत्याख्यान हुए।

आपकी तात्त्विक विवेचना की अपनी अनूठी शैली थी कि जो-कुछ विवेचन करना, वह शास्त्रसम्मत एवं जैन सिद्धान्तो के आधार पर करना। आपके प्रवचनों की छटा अलौकिक थी और उनका संबंध मानव-जीवन, धर्म, समाज-संगठन, जैनतत्त्वों की विशालता से रहता था। इनके सम्बन्ध में आपके विचार मनन करने योग्य हैं। प्रसंगानुसार आप फरमाया करते थे–

'ग्रन्थों में धर्म की विभिन्न व्याख्याएं की गई हैं। उनमें विभिन्न दृष्टिकोण होते हुए भी किसी दृष्टि से तात्पर्य की समता दिखाई देती है। जैन शास्त्रों में साध्यागत धर्म की एक व्याख्या की गई है, वह अतीव संक्षिप्त है किन्तु सारगर्भित भी कम नहीं है। धर्म के वास्तविक एवं मूल रूप को सरलतापूर्वक समझने की दृष्टि से उस व्याख्यान का कुछ विशेष महत्त्व भी है। वह व्याख्या कहती है- वत्थु सहावो धम्मो- जो वस्तु का (मूल) स्वभाव है, वही उसका लक्ष्यगत धर्म है।

धर्म कोई विशिष्ट प्रक्रिया या पद्धति ही नहीं, बल्कि एक स्थिति भी है, अर्थात् विशिष्ट प्रक्रिया-पद्धति लक्ष्यगत धर्म को प्राप्त करने में साधन-रूप धर्म है। लेकिन वह साधनरूप धर्म लक्ष्य को सामने रखकर चलता है तभी वस्तुगत स्थिति पर पहुंच सकता है या अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो वही सनातन स्थिति है, जिसे हम निर्विकार, वीतराग या ऐसी ही उच्चतम स्थिति के रूप में स्वीकार करते हैं। 'दुर्गतो प्रपतान् जनान् धारयतीति धर्मः'– इस कथन का यही अभिप्राय है कि जब आत्मा विकार की दशा में फंसकर अपने विकासशील स्वभाव से अलग हो जाता है, गिरने लगता है तब उससे सजग होकर जिस वास्तविक मूल स्थिति को वह प्राप्त करने के लिये आगे बढता है और साधना के द्वारा आत्मगत स्वभाव मे प्रतिष्ठित हो जाता है, वही धारणा करने की स्थिति, धर्म की मंजिल कहलाती है।'

'मानव-जीवन की विशिष्टता का तभी अनुभव हो सकेगा कि आत्मा को पतन से बचाकर अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अनुकम्पा, सहानुभूति, उदारता, विशालता, विशुद्धता आदि प्रगतिशील वृत्तियों को ग्रहण करके विकास मार्ग पर कदम बढ़ाये जाते हैं, क्योंकि इन वृत्तियों को अपनाने की शक्ति के फलस्वरूप ही संसार के अन्य प्राणियों में मानव का विशिष्ट

स्थान है और यदि मानव ही इन वृत्तियों से हीन रहता है तो वह 'पुच्छविषाणहीनः पशुभिः समानः' ही है। परन्तु मेरी दृष्टि में तो कर्तव्यहीन मानव को पशु की उपमा देना भी पशुत्व का अपमान है, क्योंकि पशु तो ज्ञान के दर्जे में नीचे गिरा हुआ होता ही है लेकिन ज्ञान का ठेकेदार बना आज के वैज्ञानिक युग का मानव जब पशु से भी अधिक बर्बर, अमानुषिक व अज्ञानी हो जाता है तब पशु से भी अधिक निकृष्ट ही हुआ। आज के शोषक मानव की राक्षसी जिह्वा रात-दिन निर्दोष प्राणियों के रक्त-शोषण-हित लपलपाती रहती है और यही विकृत वृत्ति उसे मानवता से गिराये हुए है।

'अतः मानव जीवन को विशिष्टता प्राप्त करने के लिये यह आवश्यक है कि आप प्राणिमात्र के सरल प्रेम से अपने हृदय को आप्लावित कर जीवन के प्रत्येक आचरण को अहिंसा के तराजू पर तोलें और यह जानने की चेष्टा करें कि कितने अंशों में आपका जीवन अहिंसामय और त्यागमय बन सका है, उसमें मानवता की प्रधानता स्थापित हो सकी है।

'आत्मा से परमात्मा तक के विकासक्रम का जिन्होंने ज्ञान प्राप्त किया है और ज्ञानी होकर उसमें अपनी आस्था जुटाई है, उन्हें सुज्ञानी कहा जायेगा। धर्म और उसके दर्शन की जो धुरी है वह है आत्मा का परमोत्कृष्ट विकास, इसलिये इस विकास का मूल है आत्मा। कैसी आत्मा ? जोकि इस संसार के गतिचक्र में भ्रमण कर रही है अर्थात् जड़पुद्गलों के संयोग से जन्म-मरण करती हुई बन्धानुबन्ध करती रहती है। तो उस आत्मा का विकास कैसे हो ? कौनसे कार्य हैं जिनसे आत्मा की भूमिका में उत्थान पैदा होगा और वह उत्थान ऊपर-से-ऊपर चढ़ती हुई सांसारिक संकट की जड़ को ही काट डालेगा, जड़ और चेतना का सम्बन्ध समाप्त हो जायेगा ?'

'यह जो समस्त ज्ञान है, वही आत्मा की विकासगति को पूर्णतया स्पष्ट करता है और यही आधारभूत ज्ञान है, जिसकी रोशनी में अन्य सारी विचारसरणियां विश्लेषित होती हैं। इसलिये जैन दर्शन मे इस ज्ञान को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। उसे तत्त्वज्ञान कहते हैं।

'जैन शास्त्रों मे इस तत्त्वज्ञान का बड़ा विशद विवरण है और उसमे विस्तार से बताया गया है कि तत्त्वों पर ही आत्मा-परमात्मा और संसार की धुरी घूमती रहती है। यह तत्त्वज्ञान संसार के मूल से लेकर मुक्ति के मुख तक समाहित माना गया है।'

इस प्रकार के मननीय विचारों से परिपूर्ण प्रवचन श्रोताओ के अन्तर् तक पैठ जाते थे। साथ ही प्रतिदिन सायंकालीन प्रतिक्रमण के पश्चात् चर्चा-विचारणा होती थी, जिसमें मुनिश्री नानालालजी म. सा. (बाद में आचार्यश्री) आदि सन्तों एवं अन्य जिज्ञासुओं के तात्त्विक प्रश्नों का समाधान करते थे।

रुग्ण मुनि की सेवा में तत्पर

इसी चातुर्मास-समय की बात है। मुनिश्री आईदानजी म का शरीर रोगाक्रांत हो गया। मुनिश्री कृशकाया थे, किन्तु रोग का दौरा होने पर बेहोश हो जाते और हाथ-पैर पछाडने लगते थे। दो-चार संत उन्हें संभालने का प्रयत्न भी करते, लेकिन उनके भी काबू से बाहर होते देख आपश्री रोगी की सेवा-शुश्रूषा, परिचर्या के लिये पधार जाते थे।

आप अपने प्रारम्भिक जीवन से ही सेवाभावी रहे थे और रोगी की परिचर्या कैसे करना चाहिये आदि को भलीभांति समझते थे। आपकी करुणा और सेवाभावना मे पद बाधक नहीं बनता था और अन्य सन्तों द्वारा प्रत्येक प्रकार से परिचर्या करने का विश्वास दिलाये जाने पर भी रोगाक्रांत सन्त को संभालने के लिये आ ही जाते थे। बेभान अवस्था में संत के हाथ-पैर फड़फड़ाने से आपको पैर आदि से टक्कर भी लग जाती थी, लेकिन इस स्थिति से आपका मन द्रवित एवं कर्मविपाक की विडंबना से चिन्तित हो उठता था और करुणाभावना रोगशमन के उपाय करने के लिये बार-बार प्रेरित करने लगती थी।

अन्धविश्वास का प्रहर

योग्य उपचार होने पर भी रोग काबू में नहीं आ रहा था। अतः कई बंधुओं ने मकान में खडे पीपल के वृक्ष की ओर इशारा करते हुए कहा कि इसमें भूत का वास है। शायद मुनिश्री इसके नीचे समय-बेसमय बैठ गये होंगे। अतः इसके लिये झाड़-फूंक कराना चाहिये।

आपने इस भूत-प्रेत की बात सुनकर फरमाया कि यह प्रेतबाधा नहीं है, वरन् शारीरिक रोग है जो किसी अनुभवी चिकित्सक के उपचार से दूर हो जायेगा। धर्मश्रद्धालु मानस को इस प्रकार के अन्धविश्वासो में नहीं फंसना चाहिये।

आपका जादू-टोना, नजर, भूत-प्रेतबाधा आदि के बारे में कोई विश्वास नहीं था और सबको व्यर्थ की बातें समझते थे। इस सम्बन्ध में आपके स्पष्ट विचार थे कि शास्त्रीय दृष्टि से देवयोनियां हैं अवश्य, लेकिन जहां कोई अपूर्व बात बने, उसे देवयोनि का प्रकोप नहीं समझना चाहिये। मूर्च्छा आदि आना कोई अपूर्व बात नहीं है, यह तो शारीरिक निर्बलता और वात आदि का विकार है। भूत-प्रेत की कल्पना करके बालकों मे जो भय के संस्कार डाले जाते हैं, वे भविष्य में बड़े हानिकर होते हैं और बालक भीरु बन जाते हैं। कभी-कभी इन संस्कारों के फलस्वरूप आत्म-विश्वास की भावना पनप ही नहीं पाती है। जंतर-मंतर, टोना-तावीज आदि कोई करामात नहीं हैं, यह सब तो वहम हैं। इन के वहम में पड़कर आप लोग अपनी धर्म-श्रद्धा से च्युत न होओ। अपने कृतकर्मों के सिवाय कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता है। भ्रमित मान्यताओं के वश होकर, कपोल-कल्पनाओं में फंसकर अपनी आत्मा का

पतन मत करो। धर्म पर दृढ़ श्रद्धा रखो। देवी-देवताओं, जादू-टोना, नजर आदि किसी से डरने की जरूरत नहीं है। ऐसी निराधार कल्पित घटनाओं का सम्बन्ध देवी-देवताओं से जोड़ना मनुष्य की मनोभावना पर आधारित है।

देशी चिकित्सा से रोग-निवारण

आपके इन विचारों का प्रभाव उपस्थित सज्जनों पर पड़ा। आपने कहा कि यदि कोई अच्छे चिकित्सक हों और वे निदान करें तथा रोगी की परिचर्या से जो मैंने समझा है, उसे समझाऊं तो रोग के काबू में आने की आशा है। तदनुसार रोगी संत को वैद्य को दिखाया गया और आपने भी रोग के लक्षणों को बताया। परामर्श के अनुसार नियमित रूप से 15 दिन तक एरंडी का तेल, सूखे ब्राह्मी के पत्ते और साधारण देशी काष्ठौषधि देने से रोगी सन्त स्वस्थ हो गये।

आचार्यश्री अध्यात्म-विज्ञानी के साथ शरीर-विज्ञानी

आप प्रकृतिविरुद्ध आहार, विहार और निहार से शारीरिक मलों— वात, पित्त, कफ—के कुपित होने को रोगोत्पत्ति का कारण मानते थे तथा इनके शमन के लिये प्राकृतिक चिकित्सा—उपवास, योगासान, प्राणायाम आदि— मे विश्वास करते थे। इस विश्वास का आधार यह था कि शरीर का सौन्दर्य एवं स्वास्थ्य उसे समरस व समतोल बनाये रखने मे है। शिशु जब मां का दूध पीता है तो न दूध में मीठा घोलता है, न दूसरे स्वाद लेता है, न घूमने जाता है और न व्यायाम-कुश्ती करता है। फिर भी शिशु का सौन्दर्य, मस्ती और स्वास्थ्य कितना प्रिय व मनोहर होता है। शिशु जगत् का सर्वाधिक मनोरम रूप है। इसका कारण यही है कि शिशु अपने आहार—दूध—को पचाना जानता है। कभी उलटा होकर, कभी पैर फैलाकर, फड़-फड़ाकर, कभी इधर-उधर लोटपोट कर या ऐसी ही अन्यान्य हलचलें करके अपने आहार को पचा लेता है। लेकिन जब अपनी आयुवृद्धि के साथ यह सब बाल्यकालीन नैसर्गिक व्यायाम भूल जाता है तो फूल-सा सुकुमार देह रसनिसृत वस्तु के समान तेजोहीन हो जाता है।

चिन्तनशील व्यक्ति को प्रतिदिन अपने शरीर और मस्तिष्क के मज्जातंतुओं व सूक्ष्म शिराओं को आसनों द्वारा बल देना चाहिये, जिससे उसे आत्मशांति के लिये मानसिक शांति का भी सहयोग प्राप्त होता रहे। मन की एकाग्रता के लिये आसन, प्राणायाम की आवश्यकता है। अगर मनुष्य सिद्धासन आदि आसन लगा सके तो निश्चित है कि उसका मन कदापि चंचल नहीं होगा।

मानव जाति का स्वास्थ्य यदि रोगो ने नष्ट किया है तो औषधियों ने भी अधिकांश रोगों को जन्म दिया है। आत्मघात करके या स्वयं विषपान करके उतने व्यक्ति नही मरे हैं जितनो को औषधियों की बलिवेदी पर अपने प्राणों का उत्सर्ग करना पडा है। विष की अपेक्षा औषधियों के विष ने अधिक कहर ढाया है। वस्तुतः आज की चिकित्साप्रणाली समाज के रोगी देह के लिये सफल सिद्ध नहीं हुई है। विजातीय द्रव्यों से भरी औषधिया यदि रोगों का उन्मूलन करती हैं तो अनेक नये रोगों को पैदा भी कर देती है।

प्रत्येक व्यक्ति स्वयं अपने शरीर का सुयोग्य उपचारक है। प्रत्येक व्यक्ति को स्वयं अपनी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि यह संभव न हो तो योग्य वैद्य से परामर्श करना चाहिये।

आप अपनी दैनिक चर्चा में इन विचारों का उपयोग करते थे। चाहे आप कितने ही व्यस्त हों, विहार में हों या वर्षावास के निमित्त किसी एक स्थान पर विराज रहे हों, लेकिन शारीरिक अंग-प्रत्यंगों को कतिपय आसनों द्वारा अवश्य ही श्रम प्रदान करते थे। आध-पौन घंटे तक योगासनों का प्रयोग करते थे और शीर्षासन, उत्तानपादासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन और मयूरासन आदि आसन शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से योग्य मानते थे।

लेकिन कभी-कदाचित् वातादिजनित साधारण व्याधि का प्रकोप भी होता तो सर्वप्रथम आप उपवास का अवलंबन लेते और यदि औषधि का सेवन भी करना पडे तो ऐसी सामान्य काष्ठौषधि लेते थे कि जिसके लिये न तो चक्कर लगाना पड़े, गृहस्थ को निमित्त न जुटाना पडे और न डाक्टरों के आगे-पीछे ही घूमना पडे।

इन स्वानुभूत प्रयोगों से आप रुग्ण संत को साधारण-सी औषधियों के प्रयोग द्वारा निरोग करने में सफल बने। आप जितने अध्यात्मविज्ञानी थे उतने ही शारीरिक विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे। यही कारण था कि स्थूल शरीर होने पर भी आपके अंग-प्रत्यंग में वही लचक और स्फूर्ति दृश्यमान होती थी, जो युवावस्था में किसी-किसी को प्राप्त होती है। यदि हम भी अपने शारीरिक स्वास्थ्य के लिये आप सदृश सन्तों के पथ का अनुसरण कर सकें तो तन, मन, धन को सुरक्षित रखने के साथ-साथ अभक्ष्य पदार्थों के भक्षण से बच सकते हैं।

संघ-ऐक्य के हेतु आचार्य पद-त्याग के लिए तत्पर

इन्हीं दिनों श्रमण संगठन के लिये समाज में वातावरण बनाया जा रहा था। अग्रणी श्रावक मूर्धन्य संतों के साथ हुए विचार-विमर्श को ध्यान में रखते हुए योजना निर्माण में सक्रिय थे। उनके प्रयत्नों से प्रतीत होता था कि निकट भविष्य में यह योजना कार्यान्वित हो सकेगी।

आपके पास भी चर्चा के लिये श्रावकों का शिष्टमंडल उपस्थित हो चुका था और समय-समय पर प्रगति की सूचना मिलती रहती थी।

आप संगठन के हामी थे। संघ-ऐक्य के निर्माण में योग देने का आश्वासन पहले ही दे चुके थे। आपको साम्प्रदायिक समाचारी का कट्टर पोषक समझा जाता था लेकिन संघ के निमित्त बड़े-से-बडा उत्सर्ग करने के लिये भी तत्पर रहते थे। संघ की एकता के निमित्त प्रयत्नशील रहने के संस्कार आपको गुरु-परम्परा से विरासत मे प्राप्त हुए थे। क्षण-भर के लिये भी आपके अन्तःकरण मे आचार्य जैसे महनीय पद के लिये अनुराग नहीं रहा और इसीलिये संघ की एकता के लिये अपनी आचार्य पदवी का परित्याग कर देने की घोषणा करने में भी नहीं झिझके। जबकि अन्य अनेक आचार्य या अन्य पदवीधारी संत इस स्थिति को उचित नहीं मान रहे थे।

रतलाम का स्वर्णिम चातुर्मास सम्पन्न

यह चातुर्मास बडी रस्साकसी एवं प्रतिस्पर्धा में हुआ। कानोड़ और मन्दसौर वाले निरुत्साह होकर लौटे थे, फिर भी उनकी गुरु-भक्ति किंचित् भी न्यून नहीं हुई। रतलाम का यह चातुर्मास संघ में नवीन चेतना का संचार करने वाला सिद्ध हुआ। पूज्यवर की ओजस्वी एवं प्रतिभाशाली वाणी के प्रभाव से बहुत-से स्थानीय एवं बाहर के सज्जनों ने सजोडे शीलव्रत ग्रहण किये तथा भारी मात्रा में श्रावक-श्राविकाओ ने चौविहार, वनस्पति, जमीकन्द, सचित्त पानी (खंद) के त्याग किये। नित्य सामायिक करने तथा वर्ष में 12, 25 या इससे भी अधिक दया करने की प्रतिज्ञाएं भी भारी संख्या में हुईं। कुव्यसन-त्याग का सिलसिला लग गया। पूज्यश्री के चुम्बकीय व्यक्तित्व से जैन और जैनेतर जनता अत्यधिक प्रभावित हुई।

गणेश जैन मित्र मण्डल के नवयुवकों में अपार उत्साह था। आगत दर्शनार्थियों की सेवा में उन्होंने रात-दिन एक कर दिये। पारस्परिक परिचय बढ़ाने, सामाजिक एकता, संगठन को सुदृढ बनाने तथा प्रेमभाव की अभिवृद्धि के लिए बाहर से आये दर्शनार्थियों के साथ गणेश मित्र मण्डल ने अनेक बार स्नेह सम्मेलन आयोजित किये।

दया-दान-रूप धर्म के प्रचारार्थ ठोस और बुनियादी कार्य हुए। कार्तिक पूर्णिमा को धर्मप्राण लोकाशाह जयन्ती होने से हनुमान रुण्डी में बीकानेर निवासी श्रीमान् जयचन्दलालजी रामपुरिया की अध्यक्षता में जाहिर सभा का आयोजन हुआ।

इस वर्षावास में आचार्यश्री के एकान्तर तप, अनेक बेले-बेले एकान्तर तथा अन्य तपस्याएं हुईं। महासतीश्री सूरजकंवरजी ने 33 एवं अन्य सतियों ने एकान्तर अट्ठाइयां पंचोले आदि विभिन्न तप कर चातुर्मास को तपमय बना दिया। संत-सतियों के तप से प्रेरित हो श्रावक-श्राविकाओं ने भी भारी तपस्याएं कीं।

आपश्री के त्याग, निर्ममत्व भाव एवं उच्च चारित्र की ख्याति समुद्रतट तक जा पहुँची।

मुम्बई (घाटकोपर) का शिष्टमण्डल अगामी चातुर्मास कराने की विनती लेकर उपस्थित हुआ। विनती भावपूर्ण थी परन्तु अनेक कारणों से मुम्बई चातुर्मास न हो सका।

इस प्रकार रतलाम का स्वर्णिम चातुर्मास लोकोपकारी प्रवृत्तियों, धर्म-ध्यान के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ। मार्गशीर्ष कृष्णा एकम, बुधवार को दिन के साढे ग्यारह बजे पूज्यश्री ने स्टेशन रोड की तरफ विहार किया। लगभग दस हजार की विशाल जनता ने शहर-स्टेशन मार्ग जयघोषों से गूंजा दिया। जनता के अत्याग्रह से पूज्यश्री स्टेशन रोड़ में दो दिन विराजे और अपनी अमिय वाणी से श्रद्धालुओं को परितुष्ट किया। यहा से आचार्यश्रीजी खाचरोद होते हुए जावरा पधारे। विहार मार्ग में आचार्यश्री के घुटनों मे वायु प्रकोप के कारण असमाधि हो गई थी। धैर्य एवं समता की मूर्ति ने दर्द की उपेक्षा कर विहार कायम रखा और जावरा पदार्पण किया। मुनिश्री चॉदमलजी (बडे) एवं श्री शान्तिलालजी म. आदि ठाणा 19 तथा प्रवर्तनीजी श्री केसरकंवरजी एवं महासतीश्री छोटाजी, महासती ससालांजी (रंगूजी वाले) कुल ठाणा 14 से युक्त आचार्यश्री का जावरा में अनुपम समवसरण दर्शनीय था।

संघ-एक्य-योजना के शिष्ट-मण्डल को उद्बोधन

जावरा में समाज के प्रमुख श्रावकों का एक शिष्टमंडल, जिसमें सर्वश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, मुम्बई विधानसभा के अध्यक्ष चिमनलाल चकुभाई शाह आदि के नाम उल्लेखनीय हैं, संघ-ऐक्य-योजना की पूर्वभूमिका लेकर सेवा में उपस्थित हुआ।

शिष्टमंडल ने अपने द्वारा किये गये प्रयत्नों, मुनिराजो से हुए वार्त्तालाप और उसके परिणाम से आपको अवगत कराते हुए संघ-ऐक्य-योजना की रूपरेखा प्रस्तुत की एवं आपश्री से यह प्रार्थना की कि जब तक संघ-ऐक्य-योजना कार्यान्वित न हो, तब तक यह व्यवस्था रहे कि एक गांव में एक ही चातुर्मास हो, एक ही व्याख्यान हो और प्रसंग आने पर समान समाचारी वाले सन्तों के साथ बैठकर व्याख्यान दिया जाये।

शिष्टमंडल की धारणा थी कि ऐसा होने पर पृथक्-पृथक् संप्रदायों में विभक्त साधु एक-दूसरे के निकट आयेंगे। विचारों का आदान-प्रदान होने से एक-दूसरे की भावना को समझ सकेंगे और संघ-ऐक्य के लिये प्राथमिक भूमिका का निर्माण होने के साथ-साथ ऊपरी तौर पर एकता भी प्रतीत होगी।

आचार्यश्रीजी ने शिष्टमण्डल के विचारों को ध्यानपूर्वक सुना। उस समय कई-एक संप्रदायों के साधुओं की विचित्र स्थिति हो रही थी। यदि स्वच्छन्द प्रवृत्ति को भी गौण मान ले तो भी कुछ-एक घटनाएं साधुओं द्वारा ऐसी हो चुकी थीं जो संयम-साधना के विपरीत और अनाचार को वढावा दे रही थीं। कुछ स्थानो पर तो ऐसी घटनाएं भी हो चुकी थीं कि जिनसे

साधु-सन्तों के प्रति श्रावकों की श्रद्धा ही डिग चुकी थी। आचार्यश्रीजी को इन सब घटनाओ की कुछ जानकारी समय-समय पर मिलती रहती थी, लेकिन आचार्यश्रीजी अपनी पृथक् संप्रदाय होने के कारण उनके बारे में कुछ न कहकर मौन रहना उपयुक्त समझते थे।

अतः आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि आप लोग संघ-ऐक्य-योजना की भूमिका तैयार करने आये हैं और मेरे सामने ऐसे प्रसंग हैं जिनमें कुछ-एक सन्तों को पृथक् करने की स्थिति है। अतः आप ही बतलाये कि मैं संघ-ऐक्य-योजना को आगे बढाने के लिये आपको आश्वासन दूं या अनुशासनहीन प्रवृत्ति करने वाले छद्मवेशी संतो को पृथक् करूँ ?

शिष्टमंडल के सदस्यों ने वास्तविक बातों को सुनकर आचार्यश्रीजी से प्रार्थना की कि आपको जो भी शिथिलाचारी, छद्मवेशी ज्ञात होते हों, उनको पृथक् कर दीजिये। ऐसों को छिपाये रखना या साधुवेश में अनाचार की प्रवृत्तियों को चलने देना संघ-ऐक्य-योजना का उद्देश्य नहीं है। श्रमण संस्कृति की पवित्रता की रक्षा होना सर्वोपरि है और इसी को लक्ष्य में रखकर हमारे प्रयत्न हो रहे हैं कि एक आचार्य के नेतृत्व में समस्त साधु, साध्वियां धर्म-साधना में प्रवृत्त हों, साधु-मर्यादा के विपरीत प्रवृत्ति करने वालों से संघ को बचाया जाये। अतः हमारा विनम्र निवेदन है कि ऐसे साधुओं को पृथक् कर दीजिये और सुदृढ धरातल पर ऐक्य-योजना को कार्यान्वित कराने में स्वीकृति फरमावें।

शिष्टमंडल के मनोभावों को समझकर पुनः आचार्यश्रीजी ने अपने अनुभव बताते हुए फरमाया कि कई साधुओं की ऐसी स्थिति है कि वे कहते कुछ हैं और करते कुछ हैं। अपनी भूल को भूल मानकर सुधारने का प्रयत्न न कर छिपाने की तरकीबें सोचते रहते हैं। एक ओर तो संघ-ऐक्य की उपयोगिता समझते हैं और उसे स्वीकार भी करते हैं लेकिन दूसरी ओर चालाकी से एक गांव में एक चातुर्मास स्वीकृत होने पर भी दूसरे चातुर्मास की स्वीकृति दे देते हैं। कई संत ब्रह्मचर्य महाव्रत का भंग करने वालों को पहले तो दंड-प्रायश्चित्त ही नहीं देते और देते भी हैं तो दोष के अनुसार दंड-प्रायश्चित्त न देकर अपने साथ दोषी व्यक्ति को रख रहे हैं। प्रसंग मिलने पर अन्य क्रियापात्र संतो के साथ स्वयं बैठ या उन व्यक्तियों को बैठाकर श्रावक-श्राविकाओ को धोखा देने की चेष्टा करने से भी नहीं चूकते और अकसर ऐसे मौकों की तलाश में रहते हैं। कई-एक रुपये-पैसे एकत्रित करने का प्रपंच रचते हैं तथा संघ-ऐक्य-योजना का बड़ी लच्छेदार भाषा में अनुमोदन कर वाह-वाही लूटने से नहीं चूक रहे हैं। ऐसी स्थिति में क्या यह संभव है कि एक स्थान पर एक ही व्याख्यान और एक चातुर्मास होगा ? इसके अलावा एक बात और स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि दीक्षा लेने के बाद मैंने जिन पूज्य गुरुदेव के नेश्राय में संयम-साधना की है, निर्ग्रन्थ श्रमण-संस्कृति के अनुसार आत्मविकास की ओर अग्रसर हुआ हूँ, साध्वाचार का ज्ञान प्राप्त किया है, आचरण किया है

और अनुभव किया है, तदनुसार तो ऐसे साधु-साध्वी वर्ग से बचे रहने में ही अपना और संघ का श्रेय समझता हूँ।

साधुओं और श्रावकों के सम्बन्धों के बारे में स्पष्ट उल्लेख है कि साधुओं के लिये श्रावक अम्मा-पिया–माता-पिता हैं। यद्यपि साधु महाव्रतधारी और श्रावक अणुव्रतधारी होते हैं, लेकिन श्रावकों को माता-पिता की उपमा इसलिये दी है कि जिस प्रकार माता-पिता संतान *का लालन-पालन कर उसके जीवन को सुसंस्कारी बनाने में सहायक होते हैं, उसी प्रकार श्रावक साधुओं की संयम-साधना में सहायक बनें। यदि साधु की भूल की श्रावक उपेक्षा करते* हैं तो उसका आशय यह हुआ कि वे साधुओं को स्वच्छन्द प्रवृत्ति करने में सहायता देते हैं और फिर एक बार आदत बिगडने पर सुधार की आशा कम दीखती है।

शिष्टमण्डल का निवेदन : आचार्यश्री की स्वीकृति

शिष्टमंडल के सदस्यों ने इन विचारों के प्रति अपनी सहमति व्यक्त करते हुए कहा कि आपका फरमाना उचित है और इतने दिन जो-कुछ हुआ, सो हुआ। परन्तु हम आपको यह विश्वास दिलाते हैं और भावना व्यक्त करते हैं कि अब ऐसी स्थिति नही रह पायेगी। हम अभी जिन सन्तों के पास होकर आये हैं, उन्होंने जिस प्रकार से प्रेरणाप्रद आश्वासन दिये हैं, वैसे ही आपश्री भी स्वीकृति फरमावें। यदि आपश्री की स्वीकृति प्राप्त न कर सके तो शिष्टमंडल को यहीं निरस्त कर देंगे। आपश्री की भावना के बारे में हम इतना ही निवेदन कर देना चाहते हैं कि आपको जिन साधु-सन्तों की *क्रियापात्रता और संयम-साधना की निर्दोषता* में विश्वास हो, उनके साथ बैठकर व्याख्यान दें किन्तु संघ-संगठन की योजना के लिये कम-से-कम इतनी छूट दीजिये कि एक गांव में एक चातुर्मास हो।

शिष्टमंडल के मनोभावों को समझकर आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि परीक्षण के रूप मे तीन वर्ष तक एक चातुर्मास होगा। आप लोग इस विषय में निष्पक्ष रहें और जहां जिनकी त्रुटि-स्खलना हो, उनसे सत्य बात कहने और परिमार्जन करने की स्थिति बनायेंगे तो शायद कुछ सुपरिणाम निकलेगा।

आचार्यश्रीजी से स्वीकृति प्राप्त कर शिष्टमंडल ने उद्देश्य की पूर्ति के लिये दूसरे-दूसरे साधु-सन्तों की सेवा में जाने के लिये प्रस्थान किया और आपश्री भी जावरा से विहार करके फ्रीगंज (रतलाम), दिलीपनगर, धराड, पिपलखूटा, विरमावल, मुलथान होते हुए बदनावर पधारे। यहाँ पर 21 सन्त-सतियों का कुछ दिनों तक विराजना रहा जिससे धर्म की अच्छी जागृति हुई।

आचार्यप्रवर बदनावर से बखतगढ़, कोद, विडवाल, कानवन, नागदा होते हुए धार

पधारे। धार मे पूज्यश्री धर्मदासजी महाराज की सम्प्रदाय के वयोवृद्ध मुनिश्री ताराचन्दजी म. सा. आदि सन्त विराजते थे।उन्होंने पूज्यश्री से निवेदन किया कि हम आपश्रीजी के प्रवचन सुनना चाहते हैं। पूज्यप्रवर ने फरमाया—आप की इच्छा हो तो सुन सकते हैं। उन सन्तो ने साम्प्रदायिक मर्यादाओं के साथ पधार कर आचार्यप्रवर के प्रवचन श्रवण किये। पूज्यश्री के वैदुष्यपूर्ण प्रवचन एवं सरल, सादगीमय जीवन से वे बड़े प्रभावित हुए। आचार्यश्री धार से अनेक ग्रामों को स्पर्श करते हुए इन्दौर पधारे।

सर्वोदयी नेता विनोबा से वार्त्तालाप

इन्दौर भूतपूर्व होलकर राज्य की राजधानी का नगर है। अपनी भौगोलिक स्थिति और उद्योग-व्यापार का केन्द्र होने के कारण धनधान्य-सम्पन्न है तथा जैन समाज की दृष्टि से इन्दौर जैनियों का गढ माना जाता है। शैक्षणिक संस्थाओं और विद्वानों की संख्या भी काफी अच्छी है।

इन्दौर में आपश्री महाराज तुकोजीराव क्लोथ मार्केट के सभाभवन में विराजे और प्रतिदिन वहीं आपके प्रवचन होते थे। जिनका नगर-निवासी लाभ लेते थे और तात्त्विक-चर्चा के समय विद्वानों का जमघट लग जाता था।

इन्हीं दिनों इन्दौर से करीव तीन कोस की दूरी पर स्थिति राऊ ग्राम में सर्वसेवा संघ का अधिवेशन हो रहा था। उसमें अनेक सर्वोदयी कार्यकर्ताओं के अतिरिक्त भूदान आन्दोलन के प्रेरक विनोबाजी भी आये हुए थे। विनोबाजी को आपश्री के इन्दौर में विराजने की जानकारी मिली तो वे अपने कुछ सहयोगी कार्यकर्ताओं को साथ लेकर आपसे मिलने आये और करीव पौने घंटे तक अहिंसा, सत्य, समाजवाद, सर्वोदय आदि के बारे में वार्त्तालाप होता रहा।

वार्त्तालाप का उपसंहार करते हुए विनोबाजी ने कहा— महाराज ! भूल जाइये कि जैनियों की संख्या कम है। जैनों के आचार-विचार के सिद्धान्त विश्व की समस्त विचारधाराओं मे मिश्री की तरह घुल-मिल रहे हैं। लेकिन एक बात मेरे मन में सदा खटकती रहती है कि जैनियों ने जिस दृढ़ता के साथ अहिंसा को पकड़ा है, उसी लगन और निष्ठा से वे सत्य को नहीं पकड़ पाये हैं। अगर जैन समाज ने सत्य और अहिंसा, दोनों को अपने जीवन का पाया वना लिया होता तो निश्चित है कि मानसरोवर से निकलने वाली गंगा की धारा की तरह वह पृथक् ही दिखाई देता।

सत्य और अहिंसा के समन्वय पर ही गंगा और यमुना के संगम के समान दिव्यतीर्थ की प्रतिष्ठा हो सकती है। विश्व के मानव-समुदाय में निरामिष भोजन और व्यसनविहीन

जीवन के लिये जैसे जैन समाज आदर्श है, वैसे ही मैं उसे सत्य और सरलता में, स्वालंबन और स्वाधीनता के विषय में भी आदर्श देखना चाहता हूँ।

आचार्यश्रीजी और विनोबाजी का यह संमिलन बहुत सौजन्यपूर्ण और मधुर रहा। यही कारण है कि आज भी विनोबाजी समय-समय पर आचार्यश्रीजी को स्मरण करते रहते हैं।

श्री विनोबाजी के विचार जैन समाज के लिये चिन्तन का अवसर प्रदान करते हैं और सत्य व अहिंसा के जीवनव्यापी प्रयोग के लिये प्रयत्नशील होने का आह्वान करते हैं। क्योकि सत्य से ऊंचा कोई धर्म नहीं और अहिंसा से बढकर कोई कर्तव्य नहीं है। आज विश्व इन्हीं दोनों की असीम परिधियों के चारों ओर घूम रहा है। मानव-मात्र इनकी प्रेरणा से जीवन-यापन करने के लिये उत्सुक है, लेकिन दो समानान्तर रेखाओं के समान जीवन में सत्य और अहिंसा के गतिमान होने से अधिकतर उन दोनों का समन्वय होने का अवसर नहीं दिख रहा है। यद्यपि मानव-मात्र में सुख की आंतरिक आकांक्षा तो है, लेकिन सुख के कारणों की अवहेलना कर या गौण समझ कर। परिणामतः जीवन में शून्यता है, उदासीनता है और क्षण-प्रतिक्षण विनाश की ओर अग्रसर हो रहे है।

लेकिन इस स्थिति में भी यदि जैन बंधुओं में जो यत्किंचित् भी मानवता के दर्शन हो रहे हैं, उसका कारण है धर्माचार्यों के उपदेश, अहिंसा, सत्य के प्रति लगाव और सत्साहित्य के अध्ययन-मनन के लिये पाई जाने वाली अभिरुचि।

जैनियों की संख्या लाखों से करोड़ों या उससे भी अधिक हो सकती है। किन्तु इसके लिये आवश्यक है कि हम अपने विचारों को वाणी से नही, किन्तु आचरण द्वारा व्यक्त करे और उन अवसरों की उपयोगिता समझें, जब मानवीय करुणा के लिये एकाकी रहकर भी बार-बार प्रयत्न करना जरूरी हो। ऐसा करने में कठिनाइयां भी आयेंगी और आनी भी चाहिये, लेकिन अहिसा के धरातल पर, सत्य के प्रकाश मे, समता के माध्यम से समन्वय के लिये सतत सजग और सचेष्ट रहें।

सर्वोदयवाद और सर्वोदयतीर्थ की विचारधारा में अंतर

श्री विनोबाजी गांधीवादी विचारधारा के प्रसारक जननेता है और सत्य, अहिंसा के सिद्धान्तों पर एक ऐसे मानव-समाज के निर्माण में संलग्न हैं जिसमें मानव, मानव के नाते अपनी जीवनोपयोगी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये न्याय-निष्ठापूर्वक कर्तव्यशील रहकर दूसरे मानवों के प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह करे। वर्गसंघर्ष, जातिवाद, आर्थिक विषमता और अनैतिक आचार-विचार की सीमा से परे रहकर अपने-अपने विकास के लिये अवसरों की अनुकूलता प्राप्त हो। व्यक्ति की गरिमा का सदुपयोग हो। साम्यभाव के धरातल पर

सर्व-धर्म-समन्वय का आदर्श अवतरित हो। सर्वतोमुखी जीवन के विकास के लिये सर्वसत्तासंपन्न विश्वराष्ट्र का निर्माण हो। इस भावना की अभिव्यक्ति का नाम सर्वोदयवाद है।

लेकिन जैन दृष्टि से सर्वोदय की सीमा मानव-जाति तक सीमित नहीं है। उसमें मानव के अतिरिक्त मानवेतर समस्त सचेतन प्राणियों का भी समावेश है। अतः वह प्राणिमात्र के उदय का उदार दृष्टिकोण उपस्थित करती है। उसमें न तो मनुष्य मुख्य है और न अन्य प्राणधारी गौण। सभी को समान स्तर पर रखकर उत्कर्ष की भावना व्यक्त की गई है-

सर्वापदामन्तकरं निरंतं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव

भगवन् ! समस्त आपदाओं का अन्त करने वाला शाश्वत सर्वोदयतीर्थ आप का ही है।

परस्पर समाजसेवा के सन्दर्भ में सर्वोदय समाज

पूज्यश्री इसी प्रकार के सर्वोदय में विश्वास करते थे और अपनी निष्ठा को आचार के माध्यम से व्यक्त किया है। सर्वोदय के सम्बन्ध में आपके मननीय विचार इस प्रकार हैं—

'जय जय जगत् शिरोमणि.....' इसमें कवि ने परमात्मा की जय का जो नारा लगाया है उसमे परमात्मा के साथ सारे संसार की ही जय का नारा उठता है। लोकरूपी शरीर में सिद्धात्माएं शिरोमणि स्वरूप हैं, क्योंकि उनके ज्ञान-रूपी प्रकाश में समस्त लोक 'हस्तामलकवत्' प्रतिभासित होता है। जहां मस्तिष्क की जय है वहां सारे शरीर की भी जय हो ही जाती है, क्योंकि मस्तिष्क की जय में भी सारे शरीर के कार्य का सहयोग छिपा हुआ है तथा छिपी है मस्तिष्क के स्वसंचालन के हेतु शरीर को प्राप्त होने वाली सजग प्रेरणा।

'जिस प्रकार भारत के विषय मे केवल उस पर शासन करने वाली सरकार की ही विजय नहीं होती है, किन्तु उसके समस्त निवासियों की विजय होती है, उसी प्रकार परमात्मा की जय में संसार के सभी प्राणियों की जय है। इस भावना का नाम ही सर्वोदयवाद है। सबका उदय हो, सब मानवता के रहस्य को समझ कर अपनी अन्यायपूर्ण नीति को छोड़ और विश्वबंधुत्व की स्थापना करें— इसी में परमात्मा की जय बोलने का सार रहा हुआ है।

'तात्पर्य यह है कि समाज के सहयोग से ही व्यक्ति का विकास होता है और वह उन्नत अवस्था को प्राप्त होता है। जैसे सभी अंगों के कारण से मस्तिष्क विचारक्षम व गंभीर चिन्तन करनेवाला होता है, उसी तरह समाज के सरल सौहार्दमय वातावरण से ही महान विभूतियों और महात्माओ का जन्म होता है। और जैसे मस्तिष्क अधिक विचारक्षम होने के पश्चात् अन्य अंगों का विशेष रूप से रक्षण व पोषण करता है, उसी प्रकार वे महान विभूतियां और महात्मा अपना सब-कुछ समाज के हितार्थ बलिदान कर देते हैं।

'सभी अंगों के समुचित सहयोग का प्रश्न समाज के अपने सामूहिक विकास के लिये भी

उतना ही महत्त्वपूर्ण है। जब तक अन्न, वस्त्र आदि जीवनोपयोगी पदार्थों का समाज में विनिमय होता रहता है तब तक सामाजिक जीवन में शांति रहती है। किन्तु जब यह विनिमय बंद हो जाता है या रुक जाता है, चाहे वह समाज में हो या शरीर में, तभी स्वास्थ्य बिगड़ने लग जाता है। जब समाज की उपेक्षा करके व्यक्ति के हृदय में संग्रह की भावना उत्पन्न होती है। तब समाज में संघर्षपूर्ण विषमता पैदा होती है और वह सामाजिक अशांति का मूल कारण बन बैठती है।

'संग्रहवृत्ति की राक्षसी मदान्धता ने ही चोरबाजारी, रिश्वत आदि अमानुषिक प्रवृत्तियों को जन्म दिया है। अतः जब तक अपनी संचय-बुद्धि को त्याग कर अपने द्रव्य का आवश्यकतानुसार संपरित्याग करने की ओर नहीं झुकेगे तब तक राष्ट्र और समाज में विषमता का नाश होकर शांति की स्थापना होना दुष्कर है।

'अब मैं समाज की वर्तमान व्यवस्था के बारे में बतलाना चाहता हूँ कि समाज में विभिन्न अंगो में क्यों भेद उत्पन्न कर दिया गया और इसके कारण किस प्रकार एक अंग पोषण और दूसरा अंग पोषण के अभाव में विकृत हो चला ?

'जैसे शरीर के चार प्रमुख अंग होते हैं, उसी प्रकार समाज मे कर्तव्यों का दृष्टि से रखकर चार वर्णों की स्थापना हुई। समाज की सुव्यवस्था को लक्ष्य में रखकर ही संभवतः यह वर्ण-विभाग हुआ होगा, किन्तु समय प्रवाह के साथ यह वर्ण-विभाग विकृति की ओर बढ़ चला। कर्तव्य की अपेक्षा जातिवाद को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। अपने को श्रेष्ठ बताकर अपनी ही पूजा-प्रतिष्ठा कराने के लिये अन्य वर्णों का तिरस्कार और निरादर किया जाने लगा। जबकि जैन संस्कृति का स्पष्ट दृष्टिकोण है कि-

कम्मुणा बंभणो होई, कम्मुणा होई खत्तियो।
कम्मुणा वइसो हवेई, सुद्दो हवई कम्मुणा।।

— उत्तराध्ययन सूत्र

'कर्म अर्थात् कार्य (आचार-विचार) से ही ब्राह्मणत्व आदि का आरोप किया जा सकता है। जैन संस्कृति वर्ण को बपौती के रूप में नहीं मानती। जैन संस्कृति के सामने जन्मना वर्ण का कतई दृष्टिकोण नहीं है, उसने तो आत्मिक विकास की दृष्टि से कर्मणा चार वर्ण की व्यवस्था प्रस्तुत की है।

'मेरे कहने का निष्कर्ष यही है कि सर्वोदयवाद के महत्त्व को समझे और परमात्मा की जय बोलने मे सब प्राणियों के साथ साम्यदृष्टि को अपनाएं। वैभव और ये शरीर आदि सब नश्वर हैं, एक दिन नष्ट हो जायेंगे और साथ रह जायेगा वही, जो-कुछ किया है। जैन शास्त्रों में परदेशी राजा का उदाहरण आता है, जिसके हाथ निर्दोषों के खून से सने रहते थे। वह

भी केशीश्रमण के उपदेश से त्यागपथ की ओर अग्रसर हुआ। आज भी उसी त्याग की आवश्यकता है, समाज की संघर्षमय विषमता को मिटाने के लिये। शोषण का हमेशा के लिये खात्मा कर दिया जाये, इसके लिये अपनी वासनाओं और आवश्यकताओं को सीमित करना चाहिये और अपने वैभव का अमुक हिस्सा दानादि शुभ कार्यों के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये।

'अन्त में यही कहना चाहता हूँ कि समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझें, सबसे प्रेम करें, सबकी रक्षा करें, यही सर्वोदय समाज का मूलाधार है और इसी में परमात्मा की जय यथार्थ रूप से बोली जा सकती है।'

आचार्यश्रीजी के इन विचारों से वर्तमान के जितने भी राजनी-नैतिकवाद—समाजवाद, साम्यवाद, प्रजातंत्रवाद, अधिनायकवाद आदि प्रचलित हैं, सबका संकलन हो जाता है। इन सबका दृष्टिकोण मानव को सुख-सम्पन्न, समृद्ध बनाना है। लेकिन जैन दृष्टि प्राणिमात्र के उत्कर्ष में अपना विश्वास व्यक्त करते हुए प्रयत्न करने का आदर्श उपस्थित करती है।

आज नही तो कल, विश्व की विवेकशील जनता को इन विचारों को कार्यान्वित करने में संकोच नहीं करना पड़ेगा और जैसे-जैसे विश्व भौतिकता की चरम सीमा की ओर बढ़ेगा, उसी तरह से अध्यात्मवाद की ओर उन्मुख होकर वास्तविक सर्वोदय की ओर बढना आवश्यक बनता जायेगा। समय की प्रतीक्षा तो करनी पड़ेगी, लेकिन यह निश्चित है कि व्यक्ति का व्यक्तित्व समूह के समुत्थान में ही विकसित होता है और उस विकास का नाम सर्वोदय समाज होगा।

संघ-ऐक्य-विरोधी कार्यों को बढ़ावा

आपश्री के इन्दौर विराजने के अवसर पर श्रीसंघ, जावरा का शिष्टमण्डल आगामी चातुर्मास जावरा में करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और विशेष उपकार होने की दृष्टि से आपश्री ने अनेक आगारों के साथ आगामी चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति फरमायी और वहां से चैत्र वदी 13 को विहार किया एवं हातोद आदि गांवों को स्पर्शते हुए चैत्र शुक्ला 7 को उज्जैन पधारे।

आपश्री के आगामी चातुर्मास की स्वीकृति से समस्त श्रीसंघों को जानकारी हो चुकी थी और मालवा प्रदेश में तो अनोखा उत्साह, उल्लास दृष्टिगोचर हो रहा था। लेकिन सभी जगह कुछ-न-कुछ विघ्नसंतोषी और समष्टि का कल्याण न होने देने में प्रसन्न होने वाले होते हैं, वैसे ही जावरा श्रीसंघ में भी कुछ व्यक्ति थे। उन्होंने संघ-ऐक्य-योजना के मूल पर कुठाराघात करने के लिये छलपूर्वक आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के चातुर्मास खुलने की तारीख से पहले की तारीख लगाकर दूसरे संतो से भी आगामी चातुर्मास जावरा में करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली।

उज्जैन पधारने पर आपश्री को जब यह बात मालूम पडी तो विचार किया कि क्या ऐसी स्थिति में संघ-संगठन की योजना सफल हो सकेगी ? संतों का चातुर्मास होना विचारणीय नहीं था, लेकिन संघ-ऐक्य-योजना की दृष्टि से एक गॉव में एक चातुर्मास हो–को लेकर समाज के अग्रणी श्रावकों का प्रतिनिधिमंडल विभिन्न संप्रदायों के मूर्धन्य मुनिराजों से स्वीकृति प्राप्त कर चुका था। यह संघ-ऐक्यविरुद्ध कृत्य अवश्य था। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया था कि संघ-संगठन के विघातक तत्त्व, चाहे वे मुनि हों या श्रावक, अपनी कुटिलवृत्ति के प्रदर्शन में सदैव तत्पर रहे हैं और रहेंगे एवं संघ-ऐक्य उनके लिये खिलवाड़ मात्र है।

लेकिन संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करने वाली संस्था– श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस और उसके पदाधिकारियों तथा संगठन के लिये विभिन्न सन्तों से संपर्क साधने वाले प्रतिनिधिमण्डल के सदस्यों ने इस स्वच्छन्द प्रवृत्ति का विरोध नही किया, डरपोक बनकर बेठै रहे और समाज के समक्ष वास्तविक स्थिति रखने के प्रति भी उदासीनता बरती।

आचार्यश्रीजी ने इस स्थिति का मूल्यांकन करते हुए निर्णय किया कि दूसरे चाहे जैसा करे और अपने आश्वासन का पालन करें या न करें, लेकिन मुझे तो वैसा कुछ नहीं करके संघ-ऐक्य-योजना की सफलता के लिये प्रतिनिधिमण्डल को दिये गये अपने वचन का पालन करना उपयुक्त है।

जयपुर का शिष्टमण्डल श्रीचरणों में

आपश्री का आगामी चातुर्मास जावरा में होने तथा एकता-विरोधियों की अनुचित प्रवृत्ति की जानकारी मालवा एवं देश के विभिन्न श्रीसंघों को हो चुकी थी। सभी इस स्थिति को संघहित में योग्य नहीं समझते थे और भविष्य में इसकी पुनरावृत्ति रोकने के लिये यथासमय कार्य भी करना चाहते थे कि इसी समय श्रीसंघ, जयपुर का प्रतिनिधिमण्डल श्री विनयचन्द जौहरी के नेतृत्व में अपने यहां चातुर्मास करने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। उज्जैन संघ भी आपश्री के चातुर्मास हेतु लालायित था। उसके भी प्रथम विनती थी।

जयपुर की विनती के पीछे यह एक विशेष हेतु था कि इस वर्ष जयपुर में भिक्षु-परम्परा के मानने वाले दया-दान-विरोधी तेरहपंथ के आचार्यश्री तुलसी का चातुर्मास होने वाला था और उस अवसर पर धर्म के नाम पर होने वाली स्वच्छन्द प्रवृत्तियों के लिये अन्दर-ही-अन्दर जोर-शोर से तैयारियां हो रही थीं। फिर भी ये तैयारियां जयपुर जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सज्जनों से छिपी नहीं रह सकीं और समाज के अन्यान्य व्यक्तियों को भी कुछ-न-कुछ जानकारी मिल चुकी थी। लेकिन उस समय तो यह तैयारियां पूर्ण रूप से स्पष्ट हो गई जब दया-दान-विरोधी संप्रदाय (तेरहपंथ) के आचार्य का जयपुर में आगमन हुआ।

जनता ने देखा कि उनके साथ में एक ओर अबोध बालकों और दूसरी ओर बालिकाओं व नवयुवतियों की टोली चल रही है और इनमें से बहुतों को यहां दीक्षित किये जाने का निर्णय हो चुका है और इसी आयोजन के लिये यह प्रच्छन्न रूप में तैयारियां हो रही थीं।

इस बात को जानकर नागरिकों में रोष व्याप्त हो गया था और जैन समाज भी अपने यहां ऐसे कार्यों के होने की कल्पना-मात्र से आशंकित था कि यदि यहां भी मानवता-विरोधी मान्यताओं व प्रवृत्तियों की पुनरावृत्ति हुई तो निश्चित ही स्थानीय जैन समाज की प्रतिष्ठा को हानि पहुंचेगी और जैन धर्म के नाम पर कलंक लगने की स्थिति बन सकती है।

श्रीसंघ, जयपुर ने अपने यहां की इस स्थिति का विश्लेषणात्मक विवेचन करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में निवेदन किया कि आपश्री जयपुर में ही चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमावें। आपश्री के विराजने से हमें धर्म-विध्वंसक हरकतों के उन्मूलन का साहस प्राप्त होगा और जैन धर्म व समाज की प्रतिष्ठा को सुरक्षित रखने के प्रयास में सफलता प्राप्त होगी।

श्रीसंघ, जयपुर के प्रतिनिधिमण्डल के विवेचन से आचार्यश्रीजी ने वहां की स्थिति और उसके परिणाम का अनुमान लगा लिया था। लेकिन समय की कमी, शारीरिक निर्बलता और घुटनों में पीडा के कारण अधिक लंबा विहार न हो सकने की स्थिति को देखते हुए आपश्री ने फरमाया कि आप लोग मेरी शारीरिक स्थिति को जानते ही हैं और ग्रीष्मऋतु के प्रचंड ताप के कारण इतने अल्प समय में उज्जैन से जयपुर पहुंचना शक्य नहीं दिखता है। मैं जयपुर पहुंचने की भावना भी रखूं। लेकिन पहुंचना तो इस शरीर को है। अतः आप अन्य बहुत-से सन्त हैं, आचार्य हैं, उनका चातुर्मास करने की चेष्टा कीजिये।

आपश्री द्वारा व्यक्त भावों के उत्तर में प्रतिनिधिमण्डल ने निवेदन किया कि शारीरिक स्थिति, समय की न्यूनता और भौगोलिक दूरी के कारण आपश्री ने जो-कुछ फरमाया, वह उचित है। लेकिन जब हम अपने यहां की स्थिति की कल्पना करते हैं तो घबराहट होने लगती है कि हमारे यहां एक ओर तो धर्मनिन्दा के कार्यों की तैयारियाँ हों, जनसाधारण में जैन धर्म के प्रति अन्यथाभाव बनने की स्थिति बन रही हो और दूसरी ओर हम परवश होकर उसके प्रतिकार के लिये कुछ भी न कर सकें। इस परिस्थिति में आपश्री के सिवाय हमें अन्य कोई उबारने वाला नहीं दिखता है। आपश्री के जयपुर पधारने से ही हमें सन्तोष मिल सकेगा।

शिष्टमण्डल ने आगे कहा– आपके पास आने से पूर्व हम कई सन्तों के पास गए, लेकिन वे आचार्य तुलसीजी के साथ चातुर्मास करने में हिचकिचाते हैं। हम आचार्यश्री हस्तीमलजी म.सा. के पास भी पहुंचे। जयपुर उनके श्रद्धालुओं का गढ है फिर भी वे इस

प्रसंग पर जयपुर चातुर्मास करना नहीं चाहते है। हमने अनुभव कर लिया है कि आपके सिवाय किसी का भी जयपुर चातुर्मास करने का साहस नहीं है। शारीरिक स्थिति निर्बल होते हुए भी संघहित में आपश्रीजी को जयपुर पधारना होगा।

धर्म-विरोधी मान्यताओं के निराकरणार्थ जयपुर चातुर्मास

परमकारुणिक, परदुःखकातर आपश्री ऐसी धर्मविरोधी प्रवृत्तियों को सहन करने के सर्वथा विरुद्ध थे। तथा अन्य सन्त कोई तैयार नहीं थे अतः शारीरिक स्थिति की अवगणना करके भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव को ध्यान में रखते हुए सं. 2006 का चातुर्मास जावरा न करके जयपुर करने की स्वीकृति श्रीसंघ, जयपुर के प्रतिनिधिमण्डल को दे दी।

इस स्वीकृति के साथ ही आचार्यवर्य ने स्पष्ट कर दिया था कि जयपुर के मध्यवर्ती क्षेत्र अपरिचित हैं, कठिन हैं, मेरा शरीर अस्वस्थ रहता है, साथी सन्तों की परिस्थिति भी विचारणीय है, फिर भी चैत्र पूर्णिमा तक अन्य परिस्थिति पैदा न हुई तो जयपुर की तरफ विहार करने के भाव हैं। साथ-साथ यह भी स्पष्ट कर दूं कि कुछ दूर पहुंचने पर द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव अनुकूल नही लगा और पहुंचना अशक्य या कठिन प्रतीत हुआ तो विचार बदलने के लिये स्वतन्त्र हूँ।

आचार्यश्री द्वारा अनेक आगार रखकर चातुर्मास स्वीकृत करने पर भी जयपुर का शिष्ट-मण्डल प्रमुदित हो गया। वह आपके अदम्य आत्मबल से परिचित था, उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह फक्कड योगी अवश्य जयपुर पहुँच जायेगा। शेरों की दर्दरी में जाकर दहाडने वाला श्रमणकेसरी जयपुर आने से कभी नहीं कतरायेगा।

जयपुर में ससमारोह पदार्पण

सं. 2006 का चातुर्मास जयपुर करने की स्वीकृति के साथ ही आपश्री ने जयपुर को लक्ष्य बनाकर उज्जैन से महीदपुर आदि की ओर विहार कर दिया और ग्रीष्मऋतु एवं मार्गजन्य क्षुधा, पिपासा आदि विविध परीषहों को सहन करते हुए कोटा पधारे। शारीरिक अस्वस्थता और घुटनों में दर्द तो पहले से ही चल रहा था लेकिन मार्ग में आने वाले परीषहों से पीड़ा कुछ विशेष बढ गई। अतः कुछ दिन कोटा में विश्राम कर आगे विहार करने का विचार किया।

कुछ दिन विश्राम कर आपने कोटा से जयपुर की ओर विहार किया तो कुछ दूर बढने पर आपकी शारीरिक वेदना ने उग्ररूप ले लिया। जब यह खबर कोटा श्रीसंघ ने सुनी तो उसने कोटा विराजने का विनम्र निवेदन करते हुए वापस कोटा की ओर विहार करवा दिया। वेदना की शांति और शारीरिक स्वास्थ्य में कुछ परिवर्तन होने पर पुनः कोटा से विहार कर दिया और आषाढ शु. 12 को जयपुर पधार गये।

आपके पदार्पण से विवकशील जैन बंधुओं के हर्ष का पार न रहा और बड़े ही उत्साह से अगवानी करते हुए नगर के प्रसिद्ध राजमार्ग सवाई मानसिंह हाइवे (चौडा रास्ता) पर स्थित लालभवन में ससमारोह पदार्पण कराया।

अस्वस्थ होते हुए भी जीवन-निर्माण सम्बन्धी प्रवचन

आपका स्वास्थ्य ठीक नहीं था और मार्ग में रुग्ण हो जाने से कमजोरी बढ़ गई थी। कुछ समय विश्राम करने की जरूरत थी, लेकिन जिज्ञासुओं की भावना को देखकर आपश्री ने प्रवचन फरमाना प्रारम्भ कर दिया, जिनका जयपुर के नागरिक लाभ उठाते थे। आपके प्रवचनों के भाव इस प्रकार होते थे–

'आज मानव अज्ञान एवं स्वार्थ के अन्धकार में भटक रहा है। उसका तेज, प्रतिभा एवं प्रकाश क्षीण होता हुआ-सा लग रहा है। उसने अधिकांशतः अपने जीवन की महत्ता स्वार्थपूर्ति में ही समझने की चेष्टा करनी शुरू कर दी है। वह नहीं देखना चाहता है कि उसकी इस स्वार्थपूर्ति की चेष्टा में कितना अन्याय, शोषण एवं उत्पीडन उसके हाथो से हो रहा है।

'व्यावहारिक जीवन को संयमपूर्वक सफल बनाने की कुछ कुंजियां बताई गई है कि समय की अव्यवस्था मिटाकर प्रत्येक कार्य में विवेकपूर्वक नियमितता लाना, आत्मनिर्भर होकर गृहस्थाश्रम में भी स्वलक्ष्यानुरूप उत्तरदायित्व का ध्यान रखना, चारित्र की महत्ता को दैनिक जीवन में उतारना, आय और व्यय को असंतुलित नहीं रखना, कुसंगति से दूर रहने का खयाल रखना, सबके साथ शिष्ट व शोभनीय व्यवहार का उपयोग रखना, पूर्ण विचारपूर्वक सही दिशा में सोचे बिना कोई भी कार्यारम्भ नहीं करना आदि। इन्हें प्रयोग में लाकर लौकिक जीवन में भी संयम का एक सरल संतुलन पैदा किया जा सकता है।

'आज आप लोग देखते हैं कि कई व्यर्थ के लोक-व्यवहारों एवं रीति-रस्मों में लाखों रुपयों का पानी कर दिया जाता है, किन्तु सत्साहित्य-प्रसार व धर्म-प्रचार के नाम पर खर्च करने में नाक-भौं सिकोडे जाते हैं। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि मनुष्य के जीवन-निर्माण में सत्साहित्य के अध्ययन एवं मनन का कितना अमूल्य योगदान है। साहित्य मस्तिष्क का विकास करता है और मस्तिष्क उस आधार पर विचारश्रेणी को उच्च बनाकर सत्कार्यों में प्रवृत्ति का मार्ग खोलता है।

'आज देखा जाता है कि चेतन-संसार जड़-अर्थ से शासित हो रहा है। मानव जी रहा है मानवता खोकर। इस अर्थमोह के पीछे जहां मानवता को विस्मृत किया जाता है वहां मर्यादा-रक्षा और साधुता की आशा करना दुराशा-सी जान पड़ती है। अर्थसंग्रह की भट्टियों में ईर्ष्या, द्वेष, कलह, स्वार्थ, माया और लोभ की ऐसी भीषण आग जलती है कि आत्मोत्थान के

पथ पर भयंकर विस्फोट होते हैं, जो जन्म-जन्मान्तर तक आत्मा को विनाश एवं पतन के अन्धकूप में ढकेल देते हैं।'

श्रोतागण ऐसे विचारों से प्रेरणा लेकर स्वयं के द्वारा स्वयं को समझने के लिये उन्मुख होते थे। आपश्री के चातुर्मास से जैन धर्म, जैनत्व और जैनाचार के प्रति जनता में सम्मान भावना विकसित हुई।

अयोग्य दीक्षाओं के विरोध में ललकार

तेरहपंथ के प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के आगमन और दीक्षार्थियों के नाम पर छोटे-छोटे बालको, बालिकाओं व नवयुवतियों की टोली को साथ मे लाने के दृश्य को देखकर जनमानस मे व्याप्त रोष समय के साथ कुछ शांत-सा दिखलाई देने पर पुन. दीक्षा के नाम पर उन अबोध बालक-बालिकाओं को मूंडने के प्रयत्न चालू हो गये। जनता पहले भी इस अयोग्य कृत्य के लिये अपना विरोध व्यक्त कर चुकी थी और पुनः अपने नगर की प्रतिष्ठा के विपरीत इस कार्य को किये जाने की तैयारी देखकर भडक उठी। उसके क्षोभ और रोष का पार नही रहा एवं विश्वासघात का प्रत्युत्तर देने के लिये आन्दोलन प्रारंभ कर दिया।

बालकों को मूडने की सब तैयारियाँ हो चुकी थीं और कार्यक्रम, समय आदि की भी घोषणा की जा चुकी थी। अतः इस जनआंदोलन ने तेरहपंथियों और उनके प्रमुखश्री को असमंजस में डाल दिया और अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया। अतः अपने कृत्य के समर्थन में स्वयं को असमर्थ मानकर येन-केन-प्रकारेण जनसाधारण को प्रभावित करने के लिये देश के राजनीतिक दलों के नेताओ को जयपुर लाना व उनके सार्वजनिक रूप में भाषण करवाना चालू किया। प्रतिदिन अनचाहे मेहमान की तरह कोई-न-कोई नेता आते और अनुचित कृत्य से जनता का ध्यान बटाने के लिये वाक्चातुर्य प्रदर्शित कर चल देते थे। परन्तु उन नेताओं की तथ्यहीन भाषा जनता को विचलित करने में सफल नहीं हुई।

जनता की प्रतिक्रिया से तेरहपंथियों में दिनोंदिन भय और चिन्ता बढ़ रही थी और अपने भक्तों को इस भयावह स्थिति की जानकारी देते हुए अधिक संख्या में जयपुर आने और चन्दा-चिट्ठा करने के समाचार तार व पत्रों द्वारा पहुंचाये जा रहे थे और कहीं-कहीं तो प्रतिनिधियों को भी भेजा गया। फलस्वरूप अनके व्यक्तियों का जमघट जयपुर में होना शुरु होगया और जनबल, धनबल या साम, दाम, दंड, भेद की कूटनीति से जनता को प्रभावित करने की तजबीजें सोची जाने लगीं। लेकिन इनका जनता पर उलटा ही प्रभाव पडा और वातावरण दिनोदिन उग्र-से-उग्रतर बनता गया।

इन होने वाली अनुचित बाल-दीक्षाओं के बारे में आपश्री का मंतव्य जानने के लिये

प्रवचनों और तत्त्वचर्चाओं के समय स्थानीय विवेकशील विद्वान सेवा में उपस्थित होकर अपने प्रश्न रखते थे।

आपश्री दीक्षा के विरोधी नहीं थे और फरमाया करते थे कि मैं शास्त्रीय दृष्टि से दीक्षा का विरोधी नहीं हूँ। लेकिन वर्तमान समय में अबोध बालकों को दीक्षा देना उपयुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि तत्त्वज्ञान का अधिकारी वही हो सकता है जो हेयोपादेय का विवेक करने में सक्षम है। जिसे अभी सीधा-सादा जीवन-व्यवहार भी चलाना नहीं आता, वह परमार्थ की विशेष स्थिति कैसे साध सकता है ? ऐसे व्यक्ति भी तत्त्वज्ञान एवं जीवनशुद्धि के क्षेत्र में आने के प्रायः योगय नहीं होते हैं जिन्होंने जीवन में असफलताओं के कारण पलायनवादी मनोवृत्ति को अपनाया है। सही मायने मे ऐसे उदासीन, अबोध और अतृप्त मानव तत्त्वज्ञान का विकास नहीं कर सकते और न ही शुद्धि के मार्ग पर बढने का अध्यवसाय कर सकते हैं।

दीक्षा लेना अति गंभीर उत्तरदायित्व है और उसका जीवनान्त तक निर्वाह करना पड़ता है। अतः दीक्षा अंगीकार करने वाले की क्षमता को परख लेना जरूरी है। दीक्षा जीवन का मौलिक परिवर्तन है, इसमें क्षणिक आवेश के लिये अवकाश नहीं है, किन्तु जीवनपर्यन्त स्थायी रहने वाला मानसिक, वाचनिक और कायिक त्याग का मार्ग है और वैसा त्याग सर्वांगरूप से अन्तर् में व्याप्त वैराग्य के बिना नहीं टिक सकता है। सिर्फ वेश-परिवर्तन से ही कोई प्रतिष्ठा-प्राप्ति का अधिकारी नहीं बन सकता है। अतः दीक्षा अंगीकार करने वाला सक्षम और समर्थ और विवेकबुद्धि युक्त होना चाहिये। तभी वह भलीभांति दीक्षा के महत्त्व को समझ सकता है और उसके प्रति समाज की आदर-सम्मान की भावना विकसित होगी।

क्रमिक विकास के अनंतर मुमुक्षु को स्वाधीन भाव से सोचने और अपने श्रेय का मार्ग निश्चित करने का अवसर दिया जाना चाहिये। ज्ञान और वैराग्यभावना आदि की पूरी तरह से परीक्षा हो जाने के पश्चात् दीक्षा देने की बात पर विचार करना चाहिये।

कुछ-एक शिष्य-लोभ से, जो आये उसे ही मूंडने की वृत्ति रखते हैं, तो कुछ-एक की ऐसी भी धारणा है कि वैराग्य का आवेश आने पर तत्काल ही दीक्षित कर देने में उसका कल्याण है। लेकिन ऐसा समझना ठीक नहीं है, क्योंकि आवेग के शांत होने पर विचारा संसार के जंजाल में पुन. फंस सकता है और भोग-लालसा का गुलाम बन सकता है। अतः सामान्य मानव की तुलना मे दीक्षा लेने वाले में महत्त्वपूर्ण आंतरिक परिवर्तन की अपेक्षा है। तभी वह तत्त्व का तलस्पर्शी चिन्तन और सदाचरण करने मे सफल होगा एवं अधिक विनम्र बनने का प्रयत्न करेगा।

आपश्री के उक्त मंतव्यों के अनुरूप ही जयपुर के विचारक और जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग के विचार थे। उनका यही कहना था कि योग्य दीक्षार्थी को अवश्य दीक्षा दी जाना चाहिये

और इस पुनीत कार्य के लिये मनसा, वाचा, कर्मणा हमारी सहमति है। लेकिन सिर्फ आडंबर और प्रदर्शन के लिये इन अबोध बालको व किशोरियों की भावुकता का लाभ लेकर चेले मूंडने की प्रक्रिया के बारे मे हमारा विरोध है और ऐसे कृत्य से हम अपने व अपने नगर के नाम को कलंकित नहीं होने देंगे। लेकिन इतनी सीधी और सरल बात भी इन अनुचित दीक्षाओ के कराने के लिये उतावले सज्जनों और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी की समझ में नही आ रही थी।

आखिर नागरिकों के रोष से परास्त होकर तेरहपंथियो ने एक नईं पैंतरेबाजी चालू की और प्रचार के लिये मनघडन्त आरोपों के साथ पैंफलेट प्रकाशित करना प्रारंभ किया और उनमें आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. पर आरोप लगाना शुरू कर दिया।

तेरहपंथियों के लिये यह परंपरा नई नहीं थी। पहले भी जब पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. एवं उसके पश्चात् चरितनायकजी विचरण करते हुए थली-प्रदेश में पधारे थे तो उस समय इससे भी अधिक निन्दनीय वृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके थे। कई-एक पाषाण-हृदयों ने तो गोचरी हेतु पधारे संतों के पात्रों में आहार के बदले पत्थर रखने मे भी संकोच नहीं किया था। कतिपय कृत्य तो इसकी अपेक्षा भी गर्हणीय हैं, जिनका उल्लेख करने से मानवता कलंकित और सभ्यता लांछित होती है तथा साधारण समझदार व्यक्ति भी उन कार्यो का अनुमोदन नहीं कर सकता है।

इस प्रकार से प्रचार और छींटाकशी ने आग मे घी का काम किया। जनता का रोष भडक उठा और उसकी जो प्रतिक्रिया हुई, उससे ऐसा मालूम होने लगा कि यह चिनगारी न जाने कितने घरों को फूंक डालेगी। जब इस बात के लिये अयोग्य कार्य करने वालों और उनके प्रमुख आचार्यश्री तुलसी से स्पष्टीकरण चाहा तो उत्तर देना दूभर हो गया और नये-नये उपाय सोचे जाने लगे।

मगर आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. इस भ्रांत प्रचार से किंचिन्मात्र भी विचलित नहीं हुए। विचलित वही होते हैं जिनकी आत्मा पक्षपात से भरी हुई हो और अपने अहम् के पोषण के लिये प्रतिपल प्रयत्नशील हो। आपश्री तो 'माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ' के साधक थे।

आपका लक्ष्यबिन्दु था– मुनियो ! तुम पृथ्वी के समान क्षमाशील बनो और निन्दा-प्रशंसा के भेदभाव में न पडकर अपने-आप को देखो। निन्दा करने वाला निर्मल बना रहा है, साधना में सहायक हो रहा है। अत. उसके प्रति किसी प्रकार का द्वेषभाव न रखकर उसका कल्याण करो, उसको सुबुद्धि-प्राप्ति की सत्कामना और सद्भावना रखो।

तेरहपंथी अपनी सुरक्षा के लिये विविध चक्रव्यूहों की रचना में लगे हुए थे। नेताओं को लाने का तांता तो चालू ही था, लेकिन सफलता की आशा नहीं दिख रही थी। अतः इसी शृंखला के बीच स्वार्थसाधना में तन, मन, धन से सहयोग देने वाले कोलकाता निवासी

कतिपय धनिकों के द्वारा दौड़धूप कराकर तत्कालीन जनता में विशेष रूप से प्रसिद्ध नेता श्री जयप्रकाशनारायण को भी जयपुर लाया गया। वायुयान से उतरते ही श्री जयप्रकाशनारायण को बड़े आदर-सत्कार के साथ अपने प्रमुख आचार्यश्री तुलसी के पास ले गये और काफी समय तक एकान्त में बातचीत होती रही। ऐसा भी सुना जाता है कि उनके समक्ष अनेक सांकेतिक प्रस्ताव भी रखे गये। लेकिन उन्होंने तत्काल ही अपना मंतव्य व्यक्त न करते हुए कहा कि विश्रामस्थल पर पहुंचने के पश्चात् ही शांति से सोच-समझकर कुछ कहा जा सकता है।

अनंतर जब श्री जयप्रकाशनारायण को उनके विश्राम-स्थल की ओर ले जाने के लिये कार को बढ़ाया तो उन्होंने लालभवन में विराजित आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के पास चलने के लिये कार-चालक को संकेत किया और वहां आकर काफी देर तक आचार्यश्रीजी से वार्त्तालाप करते रहे।

बाल-दीक्षा विषय जयप्रकाशनारायण की आचार्यश्री से चर्चा

वार्त्तालाप के प्रसंग मे बाल-दीक्षा विषयक चर्चा भी चल पड़ी और श्री जयप्रकाशनारायण ने सम्बन्धित विषय में आचार्यश्रीजी के विचारों को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। अतः आचार्यश्रीजी म.सा. ने अपने पूर्व में व्यक्त किये गये भावों को पुनः स्पष्ट करते हुए फरमाया कि—

जैन दीक्षा के माने हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह— इन पॉच महाव्रतों का सर्वांशतः शुद्ध पालन करने का जीवन-व्रत। इस व्रत का पालन करने की गंभीरता के बारे में दो मत नहीं हो सकते हैं। इस व्रत को अंगीकार करने के पश्चात् छोड़ देने की कोई व्यवस्था ही नहीं है। अर्थात् दीक्षित होने के अनंतर कोई गार्हस्थिक जीवन में पुनः आने की आकांक्षा करे तो उसे शासकीय कानून की दृष्टि से तो कोई जबरदस्ती नहीं रोक सकता है, परन्तु ऐसा करने वाले की धार्मिक और सामाजिक क्षेत्र में अप्रतिष्ठा होती है, सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता है, विश्वास का पात्र नहीं रहता है और प्रायः उससे कोई किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखता अर्थात् समर्थन नहीं देता है। इसका दीक्षार्थी को भान करा देना चाहिये। लेकिन अपरिपक्व बौद्धिक विकास की स्थिति में ऐसा ज्ञान होना संभव नहीं दीखता। इसलिये परिस्थिति की जानकारी न देकर किसी को भ्रम मे रखना योग्य नहीं माना जा सकता है।

मानव की शैशवावस्था संस्कारों के सम्मार्जन की सर्वोत्तम स्थिति है। चाहे फिर वे संस्कार जीवन को विकास की ओर ले जाने वाले हों या ह्रास की ओर ले जाने वाले हों। दीक्षा—यह एक उच्चस्तरीय संस्कार है और इस संस्कार की वास्तविक स्थिति साकार रूप ले

तो विश्व में अभूतपूर्व आध्यात्मिक विज्ञान का आदर्श उपस्थित हो सकता है। यह एक वैज्ञानिक तथ्य है और मानव कल्याणार्थ ऐसे आदर्शो की आवश्यकता है। अतः शैशवास्था की मनावैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक शक्ति की दृष्टि से पूर्णरूपेण परीक्षा की जाये और परीक्षक को तटस्थ, निःस्वार्थ एवं अनासक्त वृत्ति वाला होना चाहिये एवं परीक्षार्थी की स्थिति भी साहजिक होनी चाहिये। वर्तमान में ऐसी स्थिति का प्रायः अनुभव नही हो रहा है। अत. शास्त्रीय दृष्टि से बाल-दीक्षा का निषेध नहीं होने पर भी द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि परिस्थितियों का ध्यान तो अवश्य ही रखना चाहिये। साधुओं की संख्या बढाने के लिये येन-केन-प्रकारेण किसी को भी साधु-संस्था में प्रविष्ट करा देना साधु-संस्था, समाज और स्वयं व्यक्ति के लिये भी हितकर प्रतीत नहीं होता है।

दूसरी बात यह भी है कि दीक्षा देना सिर्फ व्यक्तिगत प्रश्न नहीं है किन्तु सामाजिक क्षेत्र को भी अतिनिकट से छूता है। यदि इससे भी आगे बढकर विचार करें तो ज्ञात होगा कि साधु-संस्था का यथार्थ उत्कर्ष अयोग्य दीक्षाओं को पोषण या उत्तेजन देने से नहीं हो सकता। साधु-संस्था के बारे में ममत्व रखने वालों का आग्रह होना चाहिये कि हमारे साधुओ में ऐसा एक भी व्यक्ति न हो, जिसे देखकर जनता हंसी उड़ाये और उससे जैन धर्म को भी उपेक्षापात्र बनना पड़े।

इसलिये साधु-संस्था के गौरव को अक्षुण्ण बनाये रखने या उसे नष्ट करने का निर्णय विवेकशील, गंभीर चिन्तकों को करना है। दीक्षाएं हो, साधु-संस्था के प्रभाव, उत्कर्ष में वृद्धि हो और दीक्षार्थी अपने अंगीकृत व्रत-प्रतिज्ञा की साधना मे पूर्ण निष्ठा, निर्भयता से तत्पर हों, इसी में दीक्षार्थी और दीक्षागुरु का गौरव है।

सम्बन्धित प्रश्नों के बारे में श्री जयप्रकाशनारायण के भी ऐसे ही विचार थे और आचार्यश्रीजी के उक्त उदार विचारों को जानकर वे काफी प्रभावित हुए। वार्त्तालाप-समाप्ति के अनंतर श्री जयप्रकाशनारायण ने वंदना करते हुए कहा कि मैं जनता का विनम्र सेवक हूँ और उसके हितार्थ ही मेरी कार्य-प्रवृत्ति है। उसमे आपका आशीर्वाद चाहिये।

एतदर्थ आचार्यश्रीजी ने इस आशय के भाव व्यक्त किये कि सार्वभौम महाव्रतों को स्वीकार करके साधुवृत्ति की भूमिका प्राप्त की जाती है। उस साधुवृत्ति में विश्वकल्याण की भावना समाहित होती है और उसी वृत्ति के अनुरूप मानव-कल्याण के शुभ कार्यों में सदा आशीर्वाद रहता ही है।

तत्पश्चात् उपस्थित जनसमूह के समक्ष पूज्य आचार्यश्रीजी के प्रति आभार प्रदर्शित कर श्री जयप्रकाशनारायण ने अपने विश्रामस्थल की ओर प्रस्थान किया।

बाल-दीक्षा के बारे में अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने और सम्मति देने के लिये श्री

जयप्रकाशनारायण द्वारा निर्धारित समय के पूर्व ही बाल-दीक्षा के सम्बन्ध मे अनुकूल सम्मति प्राप्त करने के लिये कतिपय व्यक्ति उनके पास पहुंचे और उसी समय सम्मति देने के लिये दवाव डाला। किन्तु इस प्रक्रिया से श्री जयप्रकाशनारायण का मानस क्षोभ से भर गया और असम्मानजनक कार्य के लिये आने वालों की भर्त्सना करते हुए अपने कक्ष में चले गये और अन्दर आने की भी मनाही कर दी।

निर्धारित समय पर जनसमूह के समक्ष आकर श्री जयप्रकाशनारायण ने व्यक्ति, समाज और धर्म की दृष्टि से बाल-दीक्षा की हानियां बतलाते हुए बाल-दीक्षा के विरुद्ध अपना मत व्यक्त किया। वक्तव्य प्रकाशित होते ही दया-दान-विरोधियों एवं बाल-दीक्षाओं के आयोजकों में खलवली मच गई और अपने विचारों को कार्यान्वित करने का पुनः साहस न कर सके।

जयप्रकाश नारायण के भाषण से तेरहपंथी मुंह लेकर रह गये। निष्पक्ष सभ्य और प्रबुद्ध समाज ने तेरहपंथ की कभी तरफदारी नहीं की। हम दैनिक लोकवाणी जयपुर 28/11/49 में प्रकाशित जैन समाज के अधिकारिक विद्वान पंडित सुखलालजी के आलेख से पाठकों को बता देना चाहते हैं कि तेरहपंथ की उस समय क्या स्थिति रही है। नमूने से समग्रता को जाना जा सकता है।

पंडित सुखलालजी का मन्तव्य

हर एक नये फिरके की तरह तेरापंथ में भी अपने प्रचार का जोश देखा जाता है जो न तो अस्वाभाविक है और न अनुचित है। पर मेरी समझ में इकसी मुख्य त्रुटि आधारहीनता या आधार की निर्वलता है। किसी भी धर्म का आचार ज्ञान की विशालता और दृष्टि की व्यापकता है, जो तेरापंथ के प्रचार लत्ती साहित्य में और अन्यायन्य प्रवृत्तियों में देखा नहीं जाता। जो जो हिंदी या अंग्रेजी पुस्तकें तथा पत्र-पत्रिकायें प्रसिद्ध हुई उनको देख कर कोई भी समझदार तेरापंथ हितैपी दुःखित हुए बिना रह नहीं सकता। उनमें वहीं पुराना चर्वित और पिष्ठपेषण है जो आज तक अन्य जैन फिरकों में भी निकम्मा सिद्ध हुआ है। केवल नये लेखक और नये मुद्रण का कोई महत्त्व नहीं, जव तक उसमें सूक्ष्म चिन्तन और व्यापक अध्ययन न हो। कई उत्साही मित्रों ने मुझको पहले भी तेरापंथी साहित्य भेजा था और इस समय जुयपर में भी कुछ मित्रों ने लेकर ऐसा साहित्य मुझको दिया। इस साहित्य को देखने से पता चलता है कि तेरापंथ के उत्साही गृहस्थ और त्यागियों की अध्ययन दिशा बिलकुल प्राथमिक है और यथार्थ भी नहीं है। इस नींव पर कभी तेरापंथ तेजस्वी बन नहीं सकता।

दूसरी कमी जो वहुत अखरनेवाली है, वह है स्वावलम्बन की। तेरापंथी गृहस्थ हमेशा इस प्रयत्न में लगे रहते हैं कि कोई विद्वान, प्रतिष्ठित, सत्ताधारी या धनिक, तेरापंथी साधुओं

के परिचय में आवे और उन साधुओं की या तेरापंथ की कुछ न कुछ सराहना करे। इसके लिए तेरापंथी गृहस्थ इतना अधिक पैसा खर्च करते है जिसको देख कर मनमें यह भाव आता है कि आखिर ऐसा परावलम्बन क्यों ? जो पैसा वाहर के अन्य व्यक्तियो को बुला कर या उनके प्रवास आदि का प्रवन्ध कर उनसे कुछ न कुछ प्रशंसा पूर्ण वात कहलाने या लिखाने में खर्च किया जाता है, वह पैसा अपने ही तेरापंथी समाज के गृहस्थयों को उतनी ऊंची और व्यापक शिक्षा देने में योग्य रीति से खर्च किया जाय तो तेरापंथ का ज्ञान सम्बन्धी धरातल कितना ऊँचा उठे और कितना स्वावलम्बी हो ? इस पर विचारक मित्र गौर करें। यों तो मैं लम्बें समय से तेरापंथी परावलम्बी प्रयत्न से परिचित था ही, पर जयपुर आने से इस वार मैंने जो अनुभव किया वह सुखद न था। अक्टूबर 16 तारीख की दी जानेवाली दीक्षा के प्रसंगपर तेरापंथी भाइयों ने बाहर से अनेक जैनेतर विद्वानों और कुछ अन्य प्रभावशाली व्यक्तियों को बहुत बडा खर्च करके बुलाया था। उद्देश्य यह रहा कि वे वाल दीक्षा का समर्थन करें और साथ ही साथ तेरापंथ के सिद्धान्तों की व वर्तमान आचार्यश्री की प्रशंसा भी करें। कोई भी साधारण बुद्धि का व्यक्ति यह समझ सकता है कि जो सज्जन या विद्वान् दूसरे के खर्च से या दूसरे की दक्षिणा के लोभ से उसका अतिथि वना हो वह बुलाने वाले को ऐसा सत्य् क्यों कहेगा जो उसको सुहाता न हो। फल यह होता है कि जैन और जैनेतर परम्परा की दृष्टि वाले एवं प्रभावशली व्यक्तियों को बुलाने में, उनके वास्ते प्रवास तथा अन्यान्य विषयक प्रबन्ध करने में जो बहुत बडा धन व्यय होता है उससे कुछ प्रचार पोषक अभिप्राय तो मिल जाते हैं पर वास्तव में न तो साधुओं की विद्याभूमि उन्नत आती है और न गृहस्थों मे ही स्वनिरीक्षण करने की बुद्धि आती हैं एक तरह से सारा प्रचार परावलम्वी बन जाता है जो किसी भी समझदार की दृष्टि से खुद प्रचारक का ही घातक सिद्ध है, इस बारे मे कुछ उदाहरण दूं तो अधिक स्पष्टता होगी। बाल दीक्षा क निमित्त से श्री जयप्रकाश नारायण को कई सज्जनों के साथ मुम्बई से प्लेन के द्वारा बुलाया गया। उन्होंने श्री तुलसीराम गणिजी की मुलाकात भी की। बातें कुछ भी हुई हों पर उनका जयपुर के अखबारों में जो निवेदन गया। उससे क्या जाहिर होता हैं ? सारा खर्च पानी में, और ऊपर से तेरापंथ की प्रतिष्ठा की हानि भी। क्या श्री जयप्रकाशनारायण को यह समझने में देरी लग सकती है कि जो लोग हम से कुछ अनुकूल कहलाना चाहते हैं वे ज्ञान और अध्यात्म की दृष्टि से कितने पामर हो सकते हैं ? बुलानेवाले को यह भी ख्याल नहीं आया कि जयप्रकाशनारायणजी सच्चे समाजवादी हैं और वे समाजवादी की दृष्टि से वालदीक्षा या अकर्मणय साधुसंस्था का समर्थन कैसे कर सकते हैं ? हां वे बुलाने वालों का अनुसरण करके या अपने समाजवाद के प्रचार में उपयोगी मदद की इच्छा से आ सकते हैं, कुछ न कुछ लिख बोल सकते हैं पर इससे

तेरापंथ या किसी पन्थ के आकर्मणय देह में खून तो भर नहीं सकता। मान लीजिये कि उकना अभिप्राय कुछ अनुकूल होता तो भी क्या यह कम तेजोवध है कि एक धर्म का आचार्य या आध्यात्मिक गुरु आध्यात्मिक प्रवृत्ति के वरे मे दुनयबी व्यक्ति के अभिप्राय का महत्व समझे। दूसरा उदाहरण तो और भी अपमान सूचक हे।

कलकत्ते से कई बंगाली व्यक्तियों को बुलाया गया था। जिनमें से कुछ प्रोफेसर भी थे। क्या इन जैनेतर ब्राह्मण प्रोफेसरोंको श्री तुलसीराम गणिके प्रति या बालदीक्षा के प्रति कोई भक्ति उभड माई थी। जो उनको खींच लाती ? साफ बात यह थी कि पैसे का बल उनको खींच लाया थां सात कोडी बाबू जैसे गम्भीरतम प्रोफेसर की विद्या ग्रहण करने के लिये तो श्री तुलसीरामगणी खुद भी शुभी योग्यता नहीं रखते। ऐसी स्थिति में कोई भी ब्राह्मण सुविद्वान जैन वेषमात्र से या निर्जीव क्रियाकाणड से जैनधर्म की या उसके साधुश्रावक की हार्दिक सराहना की तो भी हमसे उस पंथ के अपढ साधुश्रावक समाज में विद्या का संचार कैसे होगा ? उस मौके पर आये हुए जैनेतर विद्वानों में से कुछ मुझे मिले जो मुझसे विशेष परिचित थे उनका तेरापंथ के बारे में सच्चा अभिप्राय जानकर मुझको इतनी व्यथा हुई कि जिससे मैं यह लिखने की विवश हुआ।

कितनी ही दूर से ट्रेन या प्लेन में जाने का पूरा आथिक प्रबन्ध हो और दूसरी भी सुविध ा मिले तो तेरापंथी श्रावक चाहें उतने विद्वानों को दूर-दूर से बुला सकते हैं। विद्वानों क लिये तो यह एक बगैर खर्च की यात्रा ही है। थोड़े से मीठे शब्दों के द्वारा ऐसा लाभ मिलता हो तो उसे छोड़ने वाले शायद ही विद्वान् मिले। इस तरह तेरापंथ व्यर्थ का खर्च कर रहा है। विद्वानों के अनुकूंल अभिप्राय आये तो भी उससे उसकी असली शक्ति नहीं बढ़ती है। उलटे आने वालो के मन पर विपरीत छाप पडती है कि यह पंथ और पंथ के मुखिया कैसे हैं ? कोई भी पंथ जो विद्या या आध्यात्मक दृष्टि से शक्तिशाली हो वह दूसरों के अभिप्राय की परवाह नहीं करता है। जो दूसरों के अभिप्राय का संग्रह करने की कोशिश करता है वह कभी स्वावलम्बी या आध्यात्मिक तो ही नहीं सकता।

मैं अपनी बात कहूं तो कोई मित्र बुरा न माने। मुझसे कलकत्ता में अनेक मित्रों ने अनेकवार कहा कि आप हमारे पूज्यश्री के पास चलिये, एक बार मिलिये, हम ट्रेन या प्लेन का सुप्रबन्ध करदें। मैंने साफ कहा कि अगर मैं आपके खर्च से जाऊंगा तो इसमें न तो मेरा श्रेय है और न आपका। अगर मैं आपके खर्च से गया तो खरी-खरी बात कहने में सकुचाऊंगा। आप लोग मेरे अर्धस्तव या खुशामदी अभिप्राय से आत्मवंचना में पड़ेगे, मैं खुद गिरूंगा और तेरापंथ का कुछ भी भला न कर सकूंगा।

जयपुर में मेरे निवास पर कुछ सहृदय तेरापंथी मित्र आये उनमें एक जयपुर वासी

ब्राह्मण पंडित भी थे। सबका आग्रह मुझे पूज्यजी के पास ले जाने का था। मैंने फिर वही बात कहीं। जो पंडित तेरापंथी श्रावकों की ओर से मुझको लिवाने जाने का आग्रह करते थे। उन्होंने मुझको संस्कृत में कहा कि असल में बात वही हैं जो आप कहते हैं। पर हम आजीविका वश आपसे आने का आग्रह करते हैं। वह संस्कृत में इसलिए बोले कि साथवाले तेरांपथी श्रावक समझ न सकें।

आगे की घटना तो और भी दुःखद है तो भी मैं इसलिए लिखता हूं कि विचारक तेरापंथी जल्दी समझ जाय। एक व्यक्ति मेरे और आचार्यश्री जिन विजयजी के पास आया, जो अपने को जमनालाल बजाज का सम्बन्धी कहता था, उसने हम दोनों को तुलसीराम गणि के पास लेजाने के लिए न जाने क्या क्या मीठी और लुभावनी बातें कहीं। आखिर आचार्यश्री जिन विजयजी जाने के लिए सहमत हुए इस शर्त पर कि कहीं शहर के बाहर एकान्त में मुलाकात हो। उक्त महाशय का मुलाकात कराने का आशय यह था कि पूज्यजी समयानुसार परिवर्तन करना चाहते हैं इस बारें में आपसे सलाह लेंगे। मैं तो साफ-साफ जानता थ कि कुछ होन का है ही नहीं। अन्त में शहर के बाहर पूज्यजी और श्री जिन विजयजी के ऊपर जो असर पड़ा और मुलाकात के समय उपस्थित छोटे-छोटे साधुओं के चेहरे और हावभाव से उनकी तेजस्विता के बारे में जो छाप पड़ी उसकी विशेष वर्णन न करना ही अच्छा है। अन्त में बीच में ही दलाल महाशय ने मुनि श्री जिन विजयजी को कहा कि मैं धोख में ही रहा। वह महाशय इतना शर्मिन्दा हुआ होगा कि फिर मुझ से तो मिलने तक न आया। मुनि श्री जिन विजयजी ने आकर मुझसे कहा कि आप न आये तो अच्छा ही हुआ, पूज्यजी (तुलसीगण) भले हैं पर भीरू और मामूली समझ वाले हैं। छोटे-छोटे साधुओं के चेहरे पर कोई तेज नहीं है और उनकी बातें कोई काम की भी न थी।

तेरापंथ वैसे धोखे में है और लोभी को कैसे धूर्त मिलता हैं इसका एक उदाहरण तो प्रस्तुत है। तेरापंथी श्रावको ने मुम्बई से धीरजलाल टोकरसी नामक जैन व्यक्ति को बुलाया कितनी था, धीरजलाल की कितनी प्रतिष्ठा है कितनी ईमानदारी है कितनी सच्चाई है ये बातें तेरापंथी भाई जानते है तो अच्छा होता। शायद थोड़ा बहुत जानते भी हो, पर पन्थ की सराहना और दीक्षा की पुष्टि की आशा से उन्होंने उतना बडा खर्च किया होगा। जो कुछ हो मेरा तेरापंथी भाइयों से निवेदन इतना ही है कि वे इस तरह व्यर्थ का खर्च न करे। जहां पैसे होगा स्वार्थी आप ही जायेंगे। उनकी प्रशंसा का कोई मूल्य नहीं। जो कुछ खर्च किया जाता है और करना सम्भव है वह सारा खर्च योग्य दिशा में योग्य रीति से किया न गया तो जैसा तेरापंथ आज है वैसा ही लगभग अपढ़-कमपढ़ और जड़ होगा। उसकी तटस्थ विचारक विद्वानों में प्रतिष्ठा तभी बढ़ेगी जब उसके अध्ययन की दिशा और अभ्यास का मानदंड

बदलेगा। अभी तो केवल तोते जैसी पढ़ाई होती है और नन्हें साधु-साध्वी उसी भंवर में फंसे हैं। मारवाड़ और थली के धन सम्पन्न व्यापारी भले श्रावक इस बात की कैसे समझेंगे कि विद्या शास्त्र क्या है और उसकी गहराई धर्म और पंथ की प्रगति के लिए कितनी जरूरी है।

आचार्य तुलसी से क्षमापना

यद्यपि आचार्यश्री तुलसी और उनके *अनुयायियों* को *जयपुर* में होने वाली *अबोध* बालक-बालिकाओं को दीक्षा न देने के लिये विवश होना पड़ा था और अपना आत्म-विश्वास भी खो बैठे थे, लेकिन दया-दान के सम्बन्ध में बनाई गई भ्रांत मान्यताओं के समान ही यह धारणा बना ली कि इस जन-आन्दोलन में पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का संकेत है। *पूर्वाग्रह से ग्रस्त मानस की प्रतिक्रिया* ऐसी ही होती है *और* उस *स्थिति* में *सत्य को समझने* का प्रयत्न होना असम्भव हो जाता है।

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के प्रवचन पूर्ववत् लालभवन में होते थे। इनका आबाल-वृद्ध जनसमूह लाभ लेता था और दिनोंदिन उपस्थिति बढने से पर्युषण पर्व के दिनों में प्रवचनों के लिये सुबोध हाईस्कूल के प्रांगण में व्यवस्था की गई।

पर्युषण पर्व संयम-साधना और धर्मप्रभावना के विविध आयोजनों के साथ सम्पन्न हुआ। सांवत्सरिक प्रतिक्रमण पर्व के अवसर पर गतवर्ष के प्रमादजन्य कार्यों के लिये प्रतिक्रमण कर चौरासी लक्ष जीवयोनि से खमतखामणा की गई।

संवत्सरी के अगले दिन सहयोगी सन्तों के साथ आचार्यश्रीजी म.सा. प्रातःकालीन चर्या के निमित्त रामनिवास बाग की ओर पधारे। वहीं बाग में आचार्यश्री तुलसी से साक्षात्कार हुआ। दोनों आचार्यों ने परस्पर क्षमापना की।

आचार्य तुलसी की मानवता-विरुद्ध मान्यताओं का स्पष्टीकरण

पारस्परिक खमत-खमापना के दौरान ही अप्रांसगिक रूप में आचार्यश्री तुलसी ने कहा—'देखो गणेशलालजी, मैं थांने एक बात कहूँ हूँ के थारो रवैयो ठीक नईं।'

इस अप्रासंगिक बात को सुनकर आचार्यश्रीजी ने फरमाया— कैसा रवैया ?

प्रत्युत्तर में आचार्यश्री तुलसी ने कहा— थारी तरफ से छींटाकशी हुई, पंपलेट बंटावो हो, आ ठीक कोइनी, इने बंद कर देनी चाहिये।

तब आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि यह आपका और आपके अनुयायियों का भ्रम है। न तो मैं छींटाकशी करता हूँ और न वैसे पेंफलटो को छपवाता या बंटवाता हूँ और न पेंफलेटों में मेरा कोई सहयोग ही है। हां, श्रावकों द्वारा लाये हुए कुछ पर्चे देखे जरूर हैं परन्तु उनमें ऐसी कोई बात मेरे ध्यान में नहीं आई है जो निन्दाजनक हो या व्यक्तिगत आक्षेप किये गये

हो। उनमें जो-कुछ भी लिखा गया है, आपके द्वारा प्रकाशित पुस्तकों के उदाहरण मात्र हैं और उनमें छींटाकशी मानना आपकी भूल है।

इस बात को सुनकर आचार्यश्री तुलसी पसीना-पसीना हो गये और अपने समीप में खडे शिष्य के कंधे का सहारा लेकर खड़े होकर बोले– थे मने बदनाम करो।

इसके प्रत्युत्तर में आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि बदनाम करने जैसी कौनसी बात है ? सैद्धान्तिक सत्य को स्पष्ट रूप से कहना प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। तदनुसार तात्त्विक दृष्टि से प्रतिपादन मैं भी करता हूँ किन्तु विपरीत प्ररूपणा करने से जनता की गलत धारणाएं बनती हैं और वह जैन धर्म को उपेक्षणीय समझे तो ऐसा किसी भी जैन धर्मानुयायी को अभीष्ट नहीं हो सकता है। आप भी ऐसा ही मानते हैं और मैं भी जैन धर्म के आचार-विचारों का अनुसरण करनेवाला हूँ, अतः यदि मैं शुद्ध तत्त्व का प्रतिपादन नही करता या तदनुसार आचार-विचार नहीं रखता हूँ तो अपने कर्तव्य से गिरता हूँ।

दूसरी बात यह है कि आपको बदनामी का भय क्यों ? आपके मान्य ग्रन्थ भ्रमविध्वसन में लिखा हुआ है– 'साधुथी अनेरो ते कुपात्र छे। अन्यने दीधां अन्य प्रकृतिनो बंध छे। अन्य प्रकृति पापनी छे।' इस उल्लेख के अनुसार अभीप्सित के अतिरिक्त जितने भी मनुष्य हैं, उनको उनके योग्य आहार-पानी देने, सेवा-सहायता करने आदि में आप एकान्त पाप बताते हैं और ऐसी मान्यता का प्रतिपादन करते हैं। यदि यह मान्यता आपकी व्यक्तिगत होती तो भी उपेक्षा कर देते, लेकिन जब जैन धर्म के नाम पर इन मानवता-विरोधी बातो का प्रतिपादन होता है तो जैन धर्म के बारे में घृणा, भ्रांति फैलना संभावित है। और उस घृणा व भ्राति को मिटाना प्रत्येक जैन धर्मावलंबी का कर्तव्य है।

यदि आप भूखे को भोजन, प्यासे को पानी, रोगी को औषधि देने एवं अन्य परोपकारी कार्य करने में पाप नहीं मानते हैं तो स्पष्ट घोषणा कर दीजिये कि मैं इन या ऐसे ही अन्यान्य दया-दान-सम्बन्धी कार्यो में पुण्य व धर्म मानता हूँ। मेरे पूर्ववर्तियों ने जो दया-दान-विरोधी मान्यताएं प्रतिपादित की हैं, वे सब मिथ्या हैं, भूलभरी हैं और जैन धर्म के सिद्धान्तों के विपरीत हैं।

यदि इन सब बातों के बारे में आप और मैं यहीं किसी स्थान पर बैठकर निर्णय कर लें कि शुद्ध सिद्धान्त क्या है, यह स्पष्ट हो जाये और आपके भ्रम का विध्वंस हो जाये तो आप व आपके अनुयायी जैन धर्म के सिद्धान्तों के वास्तविक प्रतिपादन करने वाले कहला सकेंगे और स्थानकवासी समाज में रही हुई संप्रदायो की तरह आपकी भी एक संप्रदाय मानी जाने लगेगी।

अनंतर अपने साथ के संतों की ओर संकेत करते हुए आचार्यश्रीजी ने फरमाया कि ये मेरी नेश्राय में रहकर साध्वाचार का पालन कर रहे हैं, तो आप इनको सुपात्र मानते हैं या नहीं ?

पूज्य आचार्यश्रीजी के इस ओजस्वी और अर्थगंभीर कथन को सुनकर आचार्यश्री

तुलसी कुछ उत्तर न दे सके। चेहरे का रंग क्षण-क्षण में बदल रहा था। अतः बिना कुछ कहे ही अपने समीपवर्तियों के कंधों का सहारा लेकर आगे बढ़ने का उपक्रम किया।

शिष्टजनोचित भाषा के सम्बन्ध में संकेत

वार्त्तालाप के प्रसंग में पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. साधुमर्यादानुसार अपने कथन में आचार्यश्री तुलसी को शिष्टजनोचित समानसूचक 'आप' शब्द से सम्बोधित कर रहे थे, जबकि आचार्यश्री तुलसी 'थें, थांने' आदि ग्राम्य बोली के संकेतों से सम्बोधित कर रहे थे।

इस प्रकार बिना कुछ उत्तर दिये आचार्यश्री तुलसी और उनके सहयोगियों को चलते देखकर आचार्यश्रीजी म.सा. ने उन्हें रुकने का संकेत करते हुए फरमाया कि आप अपने पंथ के आचार्य माने जाते हैं। यह शिष्ट और संस्कृत जनों में उच्च पद माना जाता है। अतः उस पद पर स्थित व्यक्ति को वार्त्तालाप करते समय शिष्ट और सभ्यजनोचित वचनोच्चारण करने की जरूरत है। मुझसे वार्त्तालाप करते समय आप मुझे थें, थांने या नाम लेकर या अन्य किसी शब्द से सम्बोधित करें, उसके लिये कुछ नहीं कहना है, परन्तु अन्यत्र वार्त्तालाप का प्रसंग आने पर समक्ष बैठे व्यक्ति को सभ्य, शिष्ट भाषा में सम्बोधित करने का ध्यान रखें। अभी आप आज वार्त्तालाप के प्रसंग में 'थें, थें' से सम्बोधित कर रहे हैं, यह शिष्टजनोचित भाषा नहीं है।

इस पर आचार्यश्री तुलसी ने कहा कि 'या तो म्हारे थली री ऊंची बोली है।'

हो सकता है, यह थली की ऊंची बोली हो। परन्तु अभी आप थली से बाहर निकल आये हैं और अपने संप्रदाय के आचार्य माने जाते हैं। इसलिये देश-काल के अनुकूल भाषा का प्रयोग करें—पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया।

हमारे-आपके बीच तात्त्विक दृष्टि से सैद्धान्तिक एवं आचार-विचार का भेद है। मतभेद हो सकता है, किन्तु मनभेद नहीं होना चाहिये। आत्मिक दृष्टि से आपकी आत्मा, मेरी आत्मा के समान है। इसलिये तात्त्विक विवेचना हेतु कुछ कहा गया है और उससे यदि आपकी आत्मा को कष्ट हुआ हो तो क्षमा चाहता हूँ।

इस संकेत पर आचार्यश्री तुलसी ने थली की ऊंची भाषा का प्रयोग न कर शिष्टजनोचित आप शब्द से सम्बोधित करना प्रारंभ किया और कहा कि आपकी तरफ से 'सुपात्र व कुपात्र चर्चा' पुस्तक प्रकाशित हुई है। जिसके मुखपृष्ठ पर छपा है कि- 'तेरहपंथी साधु अपने साधु के सिवाय सबको कुपात्र समझते हैं'— क्या यह छींटाकशी नहीं मानी जायेगी ?

आप ऐसा ही तो मानते हैं, आचार्यश्रीजी ने फरमाया। यदि ऐसी मान्यता नहीं है तो मैं आपसे पूछता हूँ कि मेरे अनुशासन में ये मुनिराज पंचमहाव्रतों का पालन और संयमसाधना कर रहे हैं। इनकी श्रद्धा किसी जीव को बचाने में तथा साधु के सिवाय अन्य को दान देने

में पाप मानने की नहीं है और न भगवान महावीर स्वामी को छद्मस्थ अवस्था में चूका (भूला) मानते हैं। तो क्या इन्हें आप साधु एवं सुपात्र मानते हैं ?

अपनी मान्यता की यथार्थता को प्रकट होते देखकर आचार्यश्री तुलसी बगलें झांकने लगे और उत्तर देते न बना तो खमतखामणा, खमतखामणा जोर-जोर से बोलते हुए चल दिये।

इस दृश्य को देखने के लिये दर्शकों का समूह एकत्रित हो गया था। आचार्यश्री तुलसी को जाते देखकर उन्होंने आवाज लगाई कि बिना उत्तर दिये क्यों जा रहे हैं, समाधान करने से क्यों झिझकते हैं ? लेकिन जब स्वयं अपने को संभालना ही कठिन हो रहा था तो आचार्यश्री तुलसी उत्तर क्या देते ? अतः अगल-बगल में खडे साधुओं के कंधों का सहारा लेकर कांपते हुए-से चल ही दिये।

नागरिकों के सत्य-आग्रह के कारण तेरहपंथियों द्वारा अपरिपक्व वय के अबोध बालको की दीक्षाओं के रुकने और पूज्य आचार्यश्रीजी से हुए वार्त्तालाप से आचार्यश्री तुलसी के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ था, लेकिन वे अहं के वश होकर वैसा न कर सके। अगर वे वैसा कर लेते तो आगरा में पुन. उनकी पोल नहीं खुलती। 14 मार्च को आगरा के प्रबुद्ध व्यक्तियों ने जब आचार्य तुलसी से पूछा– किसी मरते हुए प्राणी को बचा लेना, वर्तमान में दीन-हीन बने शरणार्थियों की सहायता करना, सती-साध्वी स्त्री को किसी लम्पट के चंगुल से बचाना, माता-पिता की सेवा करना आदि बातों में आप पुण्य या धर्म मानते हैं या नहीं ? इसका उत्तर देते समय पहले तो वे इधर-उधर की बातों में टालते रहे, पर जब अन्त में सब तरह से मार्ग अवरुद्ध हो गया तो स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि "हम उपर्युक्त बातों में एकान्त पाप मानते हैं"। बाद में प्रतिकूल वातावरण बनते देख आगरा से भी वे चलते बने।

पल्लीवाल पोरवाल क्षेत्र में जैनाचार-प्रचार

आचार्यश्री का जयपुर चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हुआ। जयपुर के वातावरण का प्रभाव देश के समग्र जैन संघों पर पड़ा। अलवर श्रीसंघ की हार्दिक भावना थी कि चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर आचार्यश्रीजी म.सा. का अलवर और उसके आस-पास के क्षेत्रो में पदार्पण हो। इस आकांक्षा को लेकर अलवर श्रीसंघ चातुर्मास-काल के प्रारम्भ से ही विनती करता आ रहा था और समाप्ति के अन्तिम दिनों में पुनः उसने अपनी विनती दुहराई।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पूज्य आचार्यश्रीजी के अलवर की ओर विहार होने की सम्भावना थी कि इसी समय पल्लीवाल जैनों के अग्रणी सेठ श्री ऋद्धिचन्दजी जगन्नाथजी, गंगापुर, श्री नारायणलालजी, जयपुर आदि-आदि के प्रतिनिधिमण्डल ने विनती की कि अनेक वर्षों से हमारे उधर के क्षेत्रों में सन्तों का पदार्पण न होने से हम अपने धार्मिक आचार-विचारों

को भूलते जा रहे है। नई पीढ़ी का तो साधु-सन्तों से संपर्क बिल्कुल रहा ही नहीं है। आपश्री का अलवर की ओर विहार होने की संभावना है, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि सवाईमाधोपुर, हिंडौन, महुवारोड़, मंडावर आदि क्षेत्रों को, जहां हमारी समाज के घर है, स्पर्श करते हुए पधारें तो बड़ा उपकार होगा।

आचार्यश्रीजी ने परिस्थिति का विचार कर चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर जयपुर से सवाईमाधोपुर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। मार्गजन्य परीषहों की पग-पग पर संभावना रहती थी, किन्तु आपश्री का लक्ष्य ही था कि मानवीय आत्मा में जीवन की यथार्थता को समझने की शक्ति प्राप्त हो एवं धार्मिक श्रद्धा और आचार-विचार की सुदृढ़ता से विश्व का वातावरण संदेह, अनिश्चय एवं भय से मुक्त बने। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु पल्लीवाल प्रदेश में पदार्पण किया और ग्राम-ग्राम और नगर-नगर को पावन बनाया।

सवाईमाधोपुर से करोली, गंगापुर, हिन्डौन, भरतपुर और अलवर तक का क्षेत्र पूज्य माधवमुनिजी म. के समय साधु-साध्वियों के विचरण से निरन्तर लाभान्वित रहता था, परन्तु इन वर्षो में साधु-साध्वियों का एकदम विचरण बन्द हो गया था। साधु-साध्वियों की संगति के अभाव में हजारों पल्लीवाल जैन पथच्युत हो गये। जैसी-जैसी संगति मिली, वैसे-वैसे बनते गये।

पूज्य गणेशाचार्य ने 3½ माह तक पल्लीवाल क्षेत्र में व्यापक विचरण कर एक नूतन क्रान्ति का संचार किया। हजारों व्यक्तियों ने सम्यक् धर्म का बोध प्राप्त किया। अलवर के सुश्रावक श्री रतनलालजी संचेती का सेवा-श्रम उल्लेखनीय था।

बृहत्साधु-सम्मेलन की पूर्वभूमिका

पल्लीवाल प्रदेश को धर्मदेशना से प्रभावित करते हुए आचार्यश्रीजी म.सा. हिन्डौन के आस-पास विराज रहे थे। बृहत्साधु-सम्मेलन किये जाने की भूमिका बन रही थी और इस संबंध में आपश्री से चर्चा-वार्त्ता करने के लिये श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरेंस का एक शिष्टमंडल पुनः सेवा मे उपस्थित हुआ।

इन्हीं दिनो ब्यावर में भी स्थानकवासी जैन सन्तों के पांच-छह संप्रदायों का सम्मेलन होने जा रहा था। शिष्टमंडल ने विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री उक्त अवसर पर ब्यावर पधारें और आपके नेश्राय में उसका कार्य-संचालन हो, ऐसी हमारी आकांक्षा है।

शिष्टमंडल के निवेदन पर विचार व्यक्त करते हुए आपने फरमाया कि जब बृहत्साधु-सम्मेलन होने के लिये आप प्रयत्न कर रहे हैं और उसके होने की सम्भावना भी दिख रही है तो यह पांच-छह संप्रदायों का अलग से संगठन बनाना महत्त्व नहीं रखता है।

हा, यह बात जरूर है कि जो भी सन्त इस अवसर पर एकत्रित हों और वे सुसंगठन की भूमिका तैयार करें तो कोई हर्ज की बात नहीं है। मैं अभी इन क्षेत्रों में आ गया हूँ और इधर सन्तों के विहार की विशेष आवश्यकता है। अगर मैं इन क्षेत्रों से विहार कर गया तो सम्भवत. पुन. इधर आना नहीं हो सकेगा। अत. अभी मारवाड की ओर आने की स्थिति वनना संभव नहीं दिखता है।

शिष्टमण्डल जिस उद्देश्य को लेकर आया था, वह पूर्ण नहीं हो सका। आपश्री इस प्रकार के आयोजनों द्वारा एकता के कार्यों को वेग मिलने की संभावना नहीं मानते थे। विशाल उद्देश्य की पूर्ति मनसा-वाचा-कर्मणा एकरूपता और शुद्धि के धरातल पर ही सम्भव है।

पल्लीवाल क्षेत्रों में धार्मिक शिक्षण की प्रेरणा

पल्लीवाल प्रदेश के ग्रामों को स्पर्श करते हुए आप महुआरोड, मंडावर पधारे। जनता के उत्साह का पार न था। स्थानीय और आस-पास के क्षेत्रों के श्रोतागण प्रवचनों का लाभ उठाते थे। प्रथम दिन के प्रवचन में आपने धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता के बारे में फरमाया कि जैन धर्म की स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य स्वयं ही अपने जीवन-विकास का आप विधाता होता है। उसका ही सद्‌गुणमय जीवन, त्याग व पराक्रम उच्चतम विकास के रूप में प्रतिविम्बित होता है। सरल शब्दों में कहें तो जीवन-विकास की इस दौड में सभी हिस्सा ले सकते हैं, आत्म-विकास कर सकते हैं और अपनी दौड़ने की सत्पुरुषार्थवृत्ति के आधार पर प्रतियोगिता में जीत हासिल कर सकते हैं। ऐसी अवस्था में विकास के लिये जो प्रयास करने की आवश्यकता होती है वह यह कि छिपी हुई शक्ति आत्म-विकास की रचनात्मक कर्मठता के तेज से प्रदीप्त व प्रकाशित की जाये और इस शक्ति को तेजवती वनाने का प्रवल साधन है– संस्कारयुक्त सद्‌शिक्षा। शिक्षा या विद्या की प्राचीन परिभाषा है-

सा विद्या या विमुक्तये

अर्थात् वही शिक्षण वास्तविक विद्या है जो जीवन की विकृति के सारे वन्धनों से मुक्त कर दे। यही शिक्षण का स्वरूप है। केवल अक्षरज्ञान कर लेने और पुस्तकीय वृत्ति को पनपा लेने में ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। पुस्तकीय शिक्षा तो सच्ची शिक्षा की साधिका मात्र हो सकती है, क्योंकि विवेकपूर्वक प्राप्त शिक्षा मस्तिष्क को सही दिशा में सोचने के लिये समर्थ व योग्य बनाती है। इस प्राप्त शिक्षा द्वारा तदनन्तर मस्तिष्क एवं हृदय को परिष्कृत तथा विकसित करना होता है। अतः शिक्षा के साथ संस्कार-निर्माण के विषय में सावधान रहना अति आवश्यक है।

को भूलते जा रहे हैं। नई पीढ़ी का तो साधु-सन्तों से संपर्क बिल्कुल रहा ही नही है। आपश्री का अलवर की ओर विहार होने की संभावना है, अतः हमारी यह प्रार्थना है कि सवाईमाधोपुर, हिंडौन, महुवारोड, मंडावर आदि क्षेत्रों को, जहां हमारी समाज के घर हैं, स्पर्श करते हुए पधारें तो बड़ा उपकार होगा।

आचार्यश्रीजी ने परिस्थिति का विचार कर चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर जयपुर से सवाईमाधोपुर आदि क्षेत्रों की ओर विहार किया। मार्गजन्य परीषहों की पग-पग पर संभावना रहती थी, किन्तु आपश्री का लक्ष्य ही था कि मानवीय आत्मा में जीवन की यथार्थता को समझने की शक्ति प्राप्त हो एवं धार्मिक श्रद्धा और आचार-विचार की सुदृढता से विश्व का वातावरण संदेह, अनिश्चय एवं भय से मुक्त बने। इसी लक्ष्य की पूर्ति हेतु पल्लीवाल प्रदेश में पदार्पण किया और ग्राम-ग्राम और नगर-नगर को पावन बनाया।

सवाईमाधोपुर से करोली, गंगापुर, हिन्डौन, भरतपुर और अलवर तक का क्षेत्र पूज्य माधवमुनिजी म. के समय साधु-साध्वियों के विचरण से निरन्तर लाभान्वित रहता था, परन्तु इन वर्षो में साधु-साध्वियों का एकदम विचरण बन्द हो गया था। साधु-साध्वियों की संगति के अभाव में हजारों पल्लीवाल जैन पथच्युत हो गये। जैसी-जैसी संगति मिली, वैसे-वैसे बनते गये।

पूज्य गणेशाचार्य ने 3½ माह तक पल्लीवाल क्षेत्र में व्यापक विचरण कर एक नूतन क्रान्ति का संचार किया। हजारों व्यक्तियों ने सम्यक् धर्म का बोध प्राप्त किया। अलवर के सुश्रावक श्री रतनलालजी संचेती का सेवा-श्रम उल्लेखनीय था।

बृहत्साधु-सम्मेलन की पूर्वभूमिका

पल्लीवाल प्रदेश को धर्मदेशना से प्रभावित करते हुए आचार्यश्रीजी म.सा. हिन्डौन के आस-पास विराज रहे थे। बृहत्साधु-सम्मेलन किये जाने की भूमिका बन रही थी और इस सबंध में आपश्री से चर्चा-वार्ता करने के लिये श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कान्फरेंस का एक शिष्टमंडल पुनः सेवा में उपस्थित हुआ।

इन्हीं दिनों ब्यावर में भी स्थानकवासी जैन सन्तों के पांच-छह संप्रदायों का सम्मेलन होने जा रहा था। शिष्टमंडल ने विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री उक्त अवसर पर ब्यावर पधारें और आपके नेश्राय में उसका कार्य-संचालन हो, ऐसी हमारी आकांक्षा है।

शिष्टमंडल के निवेदन पर विचार व्यक्त करते हुए आपने फरमाया कि जब वृहत्साधु-सम्मेलन होने के लिये आप प्रयत्न कर रहे हैं और उसके होने की सम्भावना भी दिख रही है तो यह पांच-छह संप्रदायों का अलग से संगठन बनाना महत्त्व नहीं रखता है।

हां, यह बात जरूर है कि जो भी सन्त इस अवसर पर एकत्रित हों और वे सुसंगठन की भूमिका तैयार करें तो कोई हर्ज की बात नहीं है। मैं अभी इन क्षेत्रो में आ गया हूँ और इधर सन्तों के विहार की विशेष आवश्यकता है। अगर मैं इन क्षेत्रों से विहार कर गया तो सम्भवतः पुनः इधर आना नहीं हो सकेगा। अतः अभी मारवाड की ओर आने की स्थिति बनना संभव नहीं दिखता है।

शिष्टमण्डल जिस उद्देश्य को लेकर आया था, वह पूर्ण नहीं हो सका। आपश्री इस प्रकार के आयोजनों द्वारा एकता के कार्यों को वेग मिलने की संभावना नही मानते थे। विशाल उद्देश्य की पूर्ति मनसा-वाचा-कर्मणा एकरूपता और शुद्धि के धरातल पर ही सम्भव है।

पल्लीवाल क्षेत्रों में धार्मिक शिक्षण की प्रेरणा

पल्लीवाल प्रदेश के ग्रामों को स्पर्श करते हुए आप महुआरोड, मंडावर पधारे। जनता के उत्साह का पार न था। स्थानीय और आस-पास के क्षेत्रों के श्रोतागण प्रवचनो का लाभ उठाते थे। प्रथम दिन के प्रवचन में आपने धार्मिक शिक्षण की आवश्यकता के बारे में फरमाया कि जैन धर्म की स्पष्ट मान्यता है कि मनुष्य स्वयं ही अपने जीवन-विकास का आप विधाता होता है। उसका ही सद्गुणमय जीवन, त्याग व पराक्रम उच्चतम विकास के रूप में प्रतिविम्बित होता है। सरल शब्दो में कहें तो जीवन-विकास की इस दौड में सभी हिस्सा ले सकते हैं, आत्म-विकास कर सकते हैं और अपनी दौड़ने की सत्पुरुषार्थवृत्ति के आधार पर प्रतियोगिता मे जीत हासिल कर सकते हैं। ऐसी अवस्था मे विकास के लिये जो प्रयास करने की आवश्यकता होती है वह यह कि छिपी हुई शक्ति आत्म-विकास की रचनात्मक कर्मठता के तेज से प्रदीप्त व प्रकाशित की जाये और इस शक्ति को तेजवती बनाने का प्रबल साधन है– संस्कारयुक्त सद्शिक्षा। शिक्षा या विद्या की प्राचीन परिभाषा है-

सा विद्या या विमुक्तये

अर्थात् वही शिक्षण वास्तविक विद्या है जो जीवन की विकृति के सारे बन्धनों से मुक्त कर दे। यही शिक्षण का स्वरूप है। केवल अक्षरज्ञान कर लेने और पुस्तकीय वृत्ति को पनपा लेने में ही शिक्षा का उद्देश्य पूरा नहीं हो जाता। पुस्तकीय शिक्षा तो सच्ची शिक्षा की साधिका मात्र हो सकती है, क्योकि विवेकपूर्वक प्राप्त शिक्षा मस्तिष्क को सही दिशा में सोचने के लिये समर्थ व योग्य बनाती है। इस प्राप्त शिक्षा द्वारा तदनन्तर मस्तिष्क एवं हृदय को परिष्कृत तथा विकसित करना होता है। अतः शिक्षा के साथ संस्कार-निर्माण के विषय में सावधान रहना अति आवश्यक है।

वर्तमान समय में ऐसी संस्कारयुक्त सद्शिक्षा का सब ओर प्रसार हो—ऐसे प्रयास की जरूरत है।

आचार्यश्रीजी के ऐसे विचारों का स्थानीय संघ और आस-पास के क्षेत्रों पर प्रभावक प्रभाव पड़ा था और सद्शिक्षा के प्रसार के लिये स्थान-स्थान पर धार्मिक शालाएं स्थापित हुईं। स्थानीय संघ के द्वारा भी धार्मिक शिक्षण के लिये शाला स्थापित हुई।

आगरा संघ के आग्रह से आगरा की ओर विहार

जिस-किसी ग्राम या नगर में आपश्री का पदार्पण होता तो आस-पास के सैकड़ों बंधु प्रवचनों का लाभ लेने के लिये उपस्थित हो जाते थे। अलवर श्रीसंघ के सज्जन तो पल्लीवाल जैनों के क्षेत्रों में विहार होने के समय से ही प्रत्येक क्षेत्र में उपस्थित होकर लाभ उठा रहे थे। आचार्यश्रीजी के मंडावर मे विराजने के अवसर पर श्रीसंघ, आगरा का शिष्टमण्डल आगरा की ओर विहार कर वहां विराजित ठाणापति पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म.सा. आदि सन्तों को दर्शन देने की विनती लेकर उपस्थित हुआ कि पूज्यश्री पहले इधर पधार कर वाद में अलवर पधारने की कृपा करावें।

इधर के क्षेत्रों में अभी आचार्यश्रीजी का विहार होना आवश्यक था और श्रीसंघ, आगरा अपने यहां पदार्पण कराने की अभिलाषा व्यक्त कर चुका था। अतः इस स्थिति के सम्बन्ध में स्थानीय क्षेत्रों से परिचित सज्जनों से विचार करना आवश्यक समझ प्रात.कालीन चर्या के लिये जंगल की ओर जाते हुए आपश्री डाकबंगला में पधारे और वहां ठहरे हुए अलवर श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख गणमान्य सज्जनों-श्री रतनलालजी संचेती आदि से पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म सा. एवं उपाध्याय अमरमुनिजी म. के आग्रहभरे अनुरोध को लेकर आये हुए आगरा श्रीसंघ के प्रतिनिधिमण्डल की भावना के बारे में विचार किया और विचार-विमर्श द्वारा किये गये निर्णय के अनुसार आपश्री ने आगरा की ओर विहार करने के भाव प्रतिनिधिमण्डल को बतलाये और आगरा की ओर विहार कर दिया। आपश्री भरतपुर क्षेत्र के विभिन्न क्षेत्रों को स्पर्शते हुए आगरा पधारे।

पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म.सा. से मिलन

श्रीसंघ, आगरा स्वागत-समारोह के साथ अपने नगर में आपश्री का पदार्पण कराने का इच्छुक था लेकिन आप इस प्रकार के लौकिक प्रदर्शनों के प्रति उदासीन थे और इस प्रकार के आर्कषणों को साधु व साधुता के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे। अतः किसी प्रकार का संकेत किये विना अकस्मात लोहामंडी स्थानक में पधार गये।

आपश्री के पदार्पण की खबर सुनकर श्रद्धालु जनसमूह को आश्चर्य हुआ और परोक्ष में अपने-अपने स्थान पर चरणारविन्दों की वंदना कर लोहामंडी पहुंचने का तांता लग गया और पूज्यश्री पृथ्वीचन्दजी म.सा. आदि सन्तों के मध्य आपश्री को विराजित देखकर दर्शनार्थियो के मुखमण्डल हर्षविभोर हो उठे। दोनों पूज्यों के सम्मेलन का दृश्य अपूर्व था।

अभिनव बसन्त

उपाध्याय अमरमुनिजी म. ने गद्‌गद होकर भाव व्यक्त किये-

आज आगरा शहर में भी बसन्त खिल रहा है। वह प्रकृति का बसन्त नही, अपितु एक महान ज्योतिर्धर आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज का पावन पदार्पण ही उस अभिनव बसन्त का प्राण है। आपके प्रवचनों का अमृतपान करके जनता आनन्दविभोर हो रही है।

आपके शहर में भी आचार्यश्रीजी पधारे हुए हैं और पंजाब से आर्यिकाजी भी। इस प्रकार चतुर्विध संघ-रूप बसंत अपनी पूर्ण आभा के साथ खिल रहा है। आप इस संक्रान्तिकालीन युग में सुपुप्त जनता को नयी जागृति, नयी उमंगें तथा नये उत्साह का दिव्य सन्देश दे रहे हैं, मुरझाई हुई कलियों मे ज्ञान का प्रकाश, नवचेतना का मधुर संचार कर रहे हैं।

इस सुवर्ण अवसर पर आप सवका यह कर्तव्य हो जाता है कि अन्य समस्त कार्यों से अवकाश पाकर आचार्यश्रीजी के प्रवचनों से तथा इतर समय में ज्ञानचर्चा से अधिकाधिक लाभ उठावें। यदि आप उनके अमृतमय उपदेश को श्रवण कर उसे जीवन का स्थायी अंग वनायेगे तो आपके जीवन में एक अभिनव बसन्त खिल उठेगा।

20 दिन लोहामंडी, मानपाड़ा आदि आगरा नगर के विभिन्न क्षेत्रों की जनता को जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों से अवगत कराया। अल्पकालीन प्रवास के बावजूद आगरा मे अपूर्व जागृति का संचार हो गया।

अलवर पदार्पण और धर्माधारित सभ्यता पर प्रवचन

आगरा श्रीसंघ की आकांक्षा थी कि आपश्री का कुछ समय यहां ही विराजना हो, लेकिन अभी पल्लीवाल जैन क्षेत्रों में अनेक गांवों को फरसने की भावना होने से आगरा श्रीसंघ ने आभार मानते हुए विदाई दी।

आपश्री आगरा से विहार कर भरतपुर, बयाना आदि आस-पास के क्षेत्रों का स्पर्श करते हुए अलवर पधारे। समग्र जैन समाज और नागरिकों ने भावभीना स्वागत करते हुए नगर में प्रवेश कराया और श्री महावीर भवन में विराजे। पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. पूर्व से ही यहां विराजमान थे। आचार्यवर के दर्शन प्राप्त कर वे प्रमुदित हो गये।

श्री महावीर भवन में प्रतिदिन होने वाले प्रवचनों का जनता लाभ उठाती थी। श्रोताओं

की उपस्थिति की अधिकता से बहुत-से श्रोताओं को बाहर बैठना पडता था। आपश्री सादा जीवन और उच्च आचार-विचार के प्रबल हिमायती थे अतः अपने प्रवचनों में जीवन को सादा, सरल और धर्मानुकूल बनाने के बारे में बार-बार संकेत करते थे। आदर्श जीवन के बारे में आपके विचारों का सारांश इस प्रकार है–

'प्रायः सभ्यता को आचार-विचार का विषय माना जाता है और इस दृष्टि से वही देश सभ्य कहलाने का अधिकारी है, जहां के निवासी सत्कर्म-निष्ठा, नैतिक जीवन बिताने वाले और इन्द्रियों एवं आवश्यकताओं का दमन करने वाले होते हैं। संक्षेप में, जो भौतिकता के गुलाम नहीं, किन्तु भौतिकता जिनकी दासी है, वे ही सभ्य हैं और इन्हीं स्रोतों से सुसभ्यता के मधुर प्रवाह प्रवाहित हुआ करते हैं। कोरा भौतिक विकास, चाहे बाह्य रूप में विकास प्रतीत होता हो, किन्तु उसमें आध्यात्मिकता की उच्चता आये बिना आत्मोत्थान का मार्ग प्रशस्त नहीं हो सकता।

'यही कहा जा सकता है कि चूंकि जीवन-विकास की दीवार नीति, धर्म और चारित्र की नींव पर टिकी हुई रह सकती है, अतः उस नींव को उखाड कर कोरी दीवार खड़ी नहीं रखी जा सकती है। इसलिये यांत्रिक प्रसार और व्यवस्था को सही मानव-विकास के अनुकूल नहीं बनाया गया तो उससे निर्गत सभ्यता विकृति का विषैला वातावरण ही बनायेगी। यांत्रिक सभ्यता जीवन-विकास की दिशा में सहायक बन सके– इसके लिये आध्यात्मिकता को जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनाना कल्याणकारी हो सकेगा।'

अलवर श्रीसंघ चातुर्मास करने के लिये पहले भी अनेक बार विनती कर चुका था और उस अवसर पर समस्त नगरवासियों ने सामूहिक रूप में अपनी भावना आपके श्रीचरणों मे रखी और आपश्री ने भी विशेष उपकार होने की संभावनाओं को लक्ष्य में रखते हुए सं. 2007 का चातुर्मास अलवर में करने की स्वीकृति फरमाई।

दिल्ली संघ के आग्रह से दिल्ली पदार्पण

जब अलवर से आस-पास के क्षेत्रों में आपश्री के विहार होने की संभावना दिख रही थी तो उसी समय दिल्ली के प्रमुख श्रावक श्री लाला कुन्दनलालजी जौहरी के नेतृत्व में श्रीसंघ, दिल्ली का एक शिष्टमण्डल दिल्ली पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुआ और अपने यहां की परिस्थितियों की विशद जानकारी दी।

आपश्री ने समग्र परिस्थिति का पर्यालोचन करते हुए फरमाया कि चातुर्मास प्रारम्भ होने के पहले-पहले इधर के क्षेत्रों को फरसने की भावना है, उसमें दिल्ली क्षेत्र भी मेरे ध्यान में है। लेकिन समय पर क्या-कैसी परिस्थिति बनती है, अभी से कुछ निश्चियात्मक रूप में नहीं कहा जा सकता है।

आस-पास के क्षेत्रों को फरसते हुए आपश्री ने दिल्ली की ओर विहार कर दिया। जब दिल्ली के भाइयों को यह जानकारी मिली तो उनके आने-जाने का तांता-सा लग गया। वे सोचते थे यदि दिल्ली पधारने के समय का कुछ संकेत मिल जाये तो ठीक रहेगा। लेकिन आपश्री इस प्रकार की प्रवृत्ति से साधु का विलग रहना ही श्रेयस्कर मानते थे। अतः दिल्ली संघ के आग्रह को देखकर आपने फरमाया कि साथ के सन्तो के विहार आदि के अनुसार ही स्थिति बन सकती है।

इस उत्तर से दिल्ली श्रीसंघ ने विचार किया कि अपने को ही कुछ ऐसी व्यवस्था कर लेनी चाहिये, जिससे प्रतिदिन विहार-स्थिति मालूम होती रहे और वैसी जानकारी के लिये संघ ने अपनी व्यवस्था कर ली।

जब आपश्री का दिल्ली की ओर विहार हो रहा था तो उन्हीं दिनों महावीर भवन (बारादरी) में स्थविरपदविभूषित मुनिश्री जग्गूमलजी म.सा. एवं उनकी सेवा में व्याख्यानवाचस्पति पं.र. मुनिश्री मदनलालजी म.सा. के सुशिष्य पं. र मुनिश्री सुदर्शनमुनिजी म.सा. आदि ठा. विराजते थे। बाद में उपाध्याय कवि श्री अमरचंदजी म. आदि ठा. भी आगरा से विहार कर दिल्ली पधार गये थे। आपके शिष्य पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. ठाणा 3 भी पूर्व मे पधार चुके थे।

अभूतपूर्व अगवानी : अभूतपूर्व स्वागत

आपश्री ने गुड़गॉव के क्षेत्रों मे विचरण करते हुए 23 अप्रैल, 50 को दिल्ली में पदार्पण किया। आचार्यश्री का दिल्ली आने का प्रथम मौका था। श्रीसंघ के हर्ष का पार न था और नगर की सीमा पर उल्लास एवं उत्साहपूर्वक स्वागत किया। जिन राजमार्गो से आपका पदार्पण हो रहा था, वहां जनता की इतनी भीड हो गई कि कही-कहीं मोटर-कार आदि का यातायात भी रुक जाता था। चांदनी चौक में आते-आते तो आबल-वृद्ध जनों की संख्या इतनी हो गई कि ट्राम-मोटरगाड़ियों आदि का आवागमन बिल्कुल ही रुक गया।

विशाल जनसमूह के साथ आपने महावीर भवन (बारादरी) में प्रवेश किया और प्रतिदिन होने वाले आपके तात्त्विक प्रवचनों से श्रोतागण लाभान्वित होने लगे।

प्रसिद्धि के लिए आडम्बर या सादगी के प्रति स्वतः आकर्षण ?

आपश्री के प्रवचनों को सुनकर जनता में जिज्ञासा पैदा हुई कि अभी कुछ दिन पहले आचार्यश्री तुलसी नामक जैन साधु आये थे और उनके साथ करीब पचास साधु और साध्वी थे। अनके धनी-मानी व्यक्तियों की मोटरें भी आगे-पीछे दोड़ रही थीं और कई लारियो में सामान लदा आ-जा रहा था। प्रचार के लिये प्रचारकों की काफी बड़ी संख्या साथ में थी और

दिल्ली में विद्यमान हैं तो दया-दानसम्बन्धी प्रश्नों के बारे में चर्चा करके निर्णय कर लिया जाये, जिससे सही स्थिति सामने आ जाये और जनसाधारण में भ्रांत धारणाएं न फैलें।

उक्त विचारानुसार 11 मई, 1950 को प्रातः कुछ प्रमुख विचारक जैन बंधु श्री रामकृष्णजी डालमिया के बंगले पर पहुंचे। यहां आचार्यश्री तुलसी द्वारा भाषण दिये जाने का कार्यक्रम बनाया गया था। भाषण में इने-गिने व्यक्तियों के अतिरिक्त विशेष रूप से आमंत्रित सर्वश्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन, पं. राजेन्द्रकुमारजी शास्त्री, लाला राजकृष्णजी जैन उपस्थित थे। इन सज्जनों के पहुंचने पर श्री रामकृष्णजी डालमिया को भी बुला लिया गया।

भाषण-समाप्ति के अनन्तर आचार्यश्री तुलसी की अनुमति लेकर आने वालों में से एक सज्जन ने आचार्यश्री तुलसी को संबोधित करके स्पष्ट शब्दों में घोषित किया कि महाराज आप भी दिल्ली में विद्यमान हैं और आचार्यश्री गणेशलालजी म. भी। अतः आप दोनों की दया-दान के सम्बन्ध मे धार्मिक और मानवीय दृष्टिकोण से स्पष्ट आशय व्यक्त करने के लिये चर्चा-वार्त्ता हो जाये, ताकि जनता को सही बात की जानकारी मिल सके।

इसके अतिरिक्त उन्होंने उपस्थित महानुभावों के समक्ष यह भी स्पष्ट कर दिया कि आचार्यश्री तुलसी जीव-रक्षा एवं सहायता कार्य में पाप मानते हैं। यदि कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिये तैयार है और कोई तीसरा दयालु व्यक्ति उपदेश देकर या हाथ पकड़ कर उसे हिंसा करने से रोकता है एवं मारे जाने वाले की रक्षा करता है तो इस रक्षारूप पवित्र कार्य को पापयुक्त और हिंसामय कार्य बताते हैं एवं रक्षा करने वाले को पाप-रूप फल होना बताते हैं। इसी प्रकार शरणार्थियों और रेल दुर्घटना-ग्रस्त व्यक्तियों की मरहम-पट्टी या भोजनादि द्वारा सहायता करने में पाप मानते हैं। साधु के अलावा सब प्राणी असंयती हैं, अतः उनकी रक्षा करना या उनको कुछ भी सहायता पहुंचाना पापकार्य है, आदि– आचार्यश्री तुलसी की ऐसी प्ररूपणा और मान्यता है।

जबकि आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. इन कार्यों में धर्म, पुण्य मानते हैं। शुभनिष्ठा या शुभयोग तो प्रत्येक कार्य में होना ही चाहिये, तभी वह धर्म, पुण्य की कोटि में गिना जाता है। किन्तु आचार्यश्री तुलसी तो शुभनिष्ठा या शुभयोगपूर्वक भी उक्त कार्य किये जायें, तो भी इनका फल पाप होना बताते हैं। इनकी राय मे केवल साधु ही रक्षा और दान या सहायता का पात्र है और इसके अलावा अन्य सब कुपात्र हैं।

आचार्यश्री तुलसी तो मौन रहे किन्तु श्री जैनेन्द्रजी, श्री राजेन्द्रकुमारजी और श्री डालमियाजी ने श्री शुभकरणजी सुराणा के लेख की निन्दा करते हुए पारस्परिक सौजन्यपूर्ण बरताव की अपील की। अनंतर चर्चा या सम्मिलित व्याख्यान कराने के बारे में विचार करने

के लिये दोनों ओर के कुछ सज्जनो को श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर सायंकाल इकट्ठे होने का तय किया गया।

पूर्व निश्चयानुसार श्री राजकृष्णजी जैन के निवासस्थान पर दिल्ली जैन समाज के प्रतिष्ठित अग्रगण्य सर्वश्री आनन्दराज सुराना, मोहनलाल कठोतिया, कुन्दनलाल पारख, जगन्नाथ नाहर, भीखनलाल, गिरधरलाल सेठ, पूर्णचन्द टेक, बद्रीप्रसाद जैन, मोतीलाल रांका बगड़ी वाला, गंगाराम जैन, मोतीलाल बरडिया, जयचन्दलाल दफ्तरी, रतनलाल पारख, राजकृष्ण जैन, राजेन्द्रकुमार जैन, सोहनलाल, प्रेमचन्द भीमा तथा जैनेन्द्रकुमार जैन आदि सज्जन एकत्रित हुए। गोष्ठी में स्थानकवासी जैन बंधुओं ने इस बात के लिये तत्परता बताई कि दया-दान सम्बन्धी बातों के लिये दोनों आचार्यों में चर्चा हो जाये, जबकि तेरहपंथी सज्जन इस बात पर अड़े रहे कि हमें किसी बात की शंका नही है। और जिसे शंका हो वह हमारे आचार्यश्री के पास आकर पूछ ले। उन्हें काफी समझाया गया, लेकिन वे अपने दुराग्रह से टस-से-मस नहीं हुए। अन्त में श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने सुझाव रखा कि एक मध्यस्थ समिति बनाकर उसके माध्यम से सम्बन्धित बातो का स्पष्टीकरण हो जाये। ऐसा करने से चर्चा और शास्त्रार्थ में एक-दूसरे को विजित करने की भावना नहीं बनेगी और सैद्धान्तिक तथ्यों का स्पष्टीकरण भी हो जायेगा कि दया-दान के सम्बन्ध में किस आचार्य की क्या मान्यता है और जनता को समझाने में सुविधा होगी।

श्री जैनेन्द्रकुमारजी के इस सुझाव को स्थानकवासी जैन बंधुओं ने तत्काल स्वीकार कर लिया किन्तु तेरहपंथी भाई तो अपने दुराग्रह पर ही अडे रहे कि हमें कुछ शंका ही नहीं है और न कुछ पूछना ही है। अत. इस प्रकार के आयोजन की आवश्यकता नहीं है। जिसे शंका हो, हमारे आचार्यश्री से पूछ ले।

इस सरल, सीधी-सादी बात के लिये भी तेरहपंथी सज्जनों के दुराग्रह को देखकर श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने कुछ रोष प्रकट करते हुए कहा कि मेरे सुझाव में कुछ त्रुटि होगी, इसीलिये स्वीकार नहीं किया जा रहा है। अच्छा हो कि इस बात को यहीं पर समाप्त कर दिया जाये और जैसा समझें, कर लें। इस दो-टूक बात को सुनकर तेरहपंथी सज्जनों ने विवश होकर सोचा कि अगर हम अब भी दुराग्रह पर जमे रहे तो स्पष्ट हो जायेगा कि हमारी मान्यताएं कपोलकल्पित एवं भ्रमोत्पादक हैं और जैन धर्म के सिद्धान्तों के प्रतिकूल हैं। अतः अन्य कोई उपाय न देखकर उन्हें समिति-निर्माण के सुझाव को मानना ही पडा।

जैसे-तैसे समिति के निर्माण की बात को स्वीकार भी कर लिया तो उसमें अपने एक सदस्य को शामिल करने की बात पर पुनः तेरहपंथी भाई अड गये। उपस्थित सज्जनों का स्पष्ट मत था कि तेरहपंथी सदस्य के बिना समिति का निर्माण पूर्ण और सर्वमान्य न होगा।

सदस्य होने से समिति द्वारा किया गया कार्य तेरहपंथियों के लिये भी बंधनकारी होगा तथा इससे सबका प्रतिनिधित्व सिद्ध हो जायेगा। अंत में जब पुनः बात टूटने को ही थी कि तेरहपंथी भाई अपना एक सदस्य समिति में रखने के लिये राजी हुए और चर्चा की व्यवस्था करने के लिये निम्नलिखित सदस्यों की समिति गठित की गई- 1. श्री जैनेन्द्रकुमार जी, 2. श्री राजेन्द्रकुमारजी, 3. श्री राजकृष्णजी जैन, 4. लाला कुन्दनमलजी पारख (स्थानकवासी) 5. श्री मोहनलालजी कठौतिया (तेरहपंथी)। समिति के कार्य-संचालन के लिये श्री जैनेन्द्रकुमारजी संयोजक नियुक्त किये गये।

चर्चा हुई तो सही, प्रतिपक्ष सरलता से पेश नहीं आया

समिति का कार्य निश्चित किया गया कि चर्चा दया और दान से सम्बन्धित प्रश्नों तक सीमित रहेगी और एक-दूसरे के प्रश्न दोनों आचार्यों को पहुंचा दिये जायें। और उनसे जो उत्तर प्राप्त हों, प्रश्नों सहित प्रकाशित कर दिये जायें। जिससे जनसाधारण निर्णय कर सके कि सम्बन्धित प्रश्न के बारे में किस आचार्य का क्या मंतव्य है। समिति के पास दोनो आचार्यो की ओर से जो प्रश्न आयेंगे, समिति के प्रश्न माने जायेंगे और उनका उत्तर दोनों आचार्यो को देना होगा।

उक्त निश्चयानुसार स्थानकवासियों की ओर से 9 और तेरहपंथियों की ओर से 6 प्रश्न समिति को प्राप्त हुए, जिन्हें दोनों आचार्यों के पास उत्तर देने के लिये भेजा गया। दोनों ओर से प्राप्त उत्तरों पर समिति ने अपनी ओर से 8 प्रतिप्रश्न बनाकर पुनः दोनों आचार्यों के पास उत्तर के लिये भेजे। उत्तर प्राप्त होने के बाद समिति ने एक पूरक प्रश्न और किया। इन सब प्रश्नोत्तरों का सही दिग्दर्शन 'दिल्ली चर्चा' नामक पुस्तक में किया गया है।

तत्त्वचर्चा में भाव, भाषा या शाब्दिक छलक-पट नहीं होना चाहिये। लेकिन इन प्रश्नोत्तरों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि तेरहपंथी संप्रदाय ने कभी भी सरलता के साथ अपनी मान्यता स्पष्ट नहीं की। यद्यपि शब्दाडंबर के माध्यम से अपने उत्तरों की अपूर्णता को छिपाने का प्रयत्न करने से चर्चा से निर्धारित लक्ष्य-पूर्ति नहीं की जा सकी, तो भी तटस्थ जिज्ञासुजनों को यथार्थता समझ में आ गई।

इस प्रकार की चर्चाएं उनके लिये ही लाभदायक होती हैं जो दुराग्रह और कदाग्रह से परे रहकर सत्य तथ्यों को समझना चाहते हैं, सत्य को सर्वोपरि मानते हैं, सत्य की आराधना को परम पुनीत कर्तव्य समझते हैं और सत्य की वरद छाया के आकांक्षी हैं।

प्रस्तुत दिल्ली प्रवास के दौरान दिल्ली के प्रमुख समाजसेवक श्री आनन्दराजजी सुराणा एवं श्री रतनलालजी पारख ने 17.5.50 को श्री महावीर जैन लायब्रेरी हॉल में एक प्रेस-कॉन्फरेंस का आयोजन किया। पूज्य आचार्यश्रीजी ने प्रेरक प्रवचन दिया तथा प्रेस प्रतिनिधियों को सत्य

और अहिंसा का सन्देश सुनाया। दिल्ली की प्रबुद्ध जनता के मध्य आपके मौलिक विचार काफी सराहे गये।

मंत्र भारी पड़ेगा

एक दिन आचार्यवर्य के पास एक व्यक्ति आकर चरणों में गिर गया। गिड़गिड़ाने लगा– अन्नदाता ! दुखी हूँ, अर्थाभाव के कारण मुसीबत में हूँ। एम. ए. पास हूँ, पत्नी भी एम. ए. पास है। नौकरी नहीं मिल रही है, कमाई का कोई जरिया नजर नहीं आ रहा है। चार बाल-बच्चे हैं। एक और होने वाला है। आप सेठों के महाराज है, बडे सन्त है, कुछ व्यवस्था हो जाए तो कम से कम गर्भ से आने वाले के लिए कुछ सामान जुट जाय ! आगत व्यक्ति एक ही श्वास में सब-कुछ कह गया।

आचार्यवर ने कहा– भाई मैं साधु हूँ, तेरी समस्या को मिटा सकू या नही, परन्तु सुरसा की तरह बढती हुए समस्या को रोकने का उपाय जरूर बता सकता हूँ। पर ध्यान रहे, मेरा मन्त्र तुम्हें भारी पडेगा।

दुःखो से संत्रस्त आगत ने कहा– महाराज ! कृपा कर बता दीजिए।

आचार्यप्रवर– चार बच्चे तुम्हारे पहले हैं और पाँचवाँ आने वाला है। अब नियम ले लो कि ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करोगे। दोनो पति-पत्नी भाई-बहन की तरह रहोगे।

पूज्यप्रवर के मुखारविन्दु से यह सुनकर वह गहरी निश्वास छोड़ते हुए बोल पडा– नहीं, महाराज ! यही तो नहीं होगा।

उपस्थित जनो के चेहरे पर मुस्कान बिखर गई।

लोकैषणा के प्रति अनासक्त

सांसारिक वैभव, मान-संमान को निस्सार समझकर तज देने वाले अकिंचन, अनगार भिक्षु की दृष्टि में राजा-रंक समान हैं। आध्यात्मिक वैभव से विभूपित, भौतिक वैभव की विविधता और विचित्रता से विलग ही रहते है। उनके लिये राजा होने से, शासन का उच्चाधिकारी होने से अथवा धनसम्पन्न होने से कोई व्यक्ति स्पृहणीय नहीं होता है और न रंक होने के कारण कोई उपेक्षणीय हो जाता है।

राष्ट्रपति भवन में पधारने की प्रार्थना

दिल्ली श्रीसंघ के अग्रणी श्रावको ने एक दिन सेवा में निवेदन किया कि कुछ दिन पहले महामहिम राष्ट्रपति श्री राजेन्द्रप्रसादजी से मिलने का अवसर मिला था तो उस समय

साधु-सन्तों के उल्लेख के प्रसंग में आपश्री के दिल्ली विराजने की जानकारी उन्हें दी। उन्होंने आपश्री से मिलने की भावना दर्शाई थी। उन्हें आपश्री के उपदेश-श्रवण की आकांक्षा है, अतः आपश्री राष्ट्रपति भवन पधारने की कृपा करावें।

दिल्ली श्रीसंघ के उन अग्रणी श्रावकों की वात सुनकर आपश्री ने फरमाया– मुझे वहाँ जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है। राष्ट्रपति महोदय को शासन-सम्बन्धी वहुत जरूरी कार्य रहते हैं, अतः उनके कार्यक्रम में व्यवधान डालना उचित नहीं समझता हूँ। राष्ट्रपतिजी को जब सुविधा होगी और मिलने की इच्छा होगी तो कहीं पर भी मिल सकेंगे। उनको परेशानी में डालना मेरी दृष्टि से उचित नहीं है।

आपश्री के लिये ऐसे प्रसंग कई वार आ चुके थे जब विभिन्न स्थानों के राजा, जागीरदारों की ओर से अपने राजमहलों में आमन्त्रित कर वार्त्तालाप या प्रवचन फरमाने का निवेदन किया गया था। लेकिन न तो आपको ऐसी लौकिक एषणाओं की आकांक्षा थी और न राजमहलों में व्याख्यान देने की भावना रखते थे। आपश्री के विराजने के स्थान पर यदि कोई आ जाये तो प्रमोद व्यक्त करते हुए तात्त्विक चर्चा, वार्त्तालाप अवश्य कर लेते थे।

भीडभाड़ से दूर रहना आपको सदैव रुचिकर रहा है। नगरों की अपेक्षा भारतीय सभ्यता के प्रतीक ग्रामों के एकान्त शांत वातावरण में विचरण करना साधना की दृष्टि से योग्य मानते थे। तब राजमहलों में जाना और राजपुरुषों से मिलना तो उससे भी दूर की बात थी।

इस सम्बन्धी अनेक प्रसंग उल्लेखनीय हैं। लेकिन एक-दो प्रसंगों का उल्लेख यहां कर रहे हैं।

देवगढ़ रावजी आपके प्रवचन से प्रभावित

एक वार आपका देवगढ (मेवाड़) में पदार्पण हुआ। वहां के रावसाहब ने राजभवन में व्याख्यान देने की प्रार्थना की। प्रत्युत्तर में आपने फरमाया– मेरे लिये प्रत्येक स्थान समान है। *किसी स्थान-विशेष को प्रमुखता देना मुझे रुचिकर नहीं है।* धर्मशाला और राजभवन, सभागार और मैदान मेरे लिये एक समान हैं। आजकल यहां व्याख्यान हो रहे हैं, वह स्थान भी अनुपयुक्त नहीं है और जब यह स्थान योग्य है तो फिर राजभवन को ही मुख्यता देने से क्या लाभ ? रावसाहब ने आपके कथन को शिरोधार्य कर व्याख्यान-स्थान पर आकर प्रवचन श्रवण किया।

उदयपुर-महाराणा प्रवचन श्रवण कर प्रसन्न हुए

सं. 2009 का चातुर्मास उदयपुर था। वहां के महाराणा साहब ने आपश्री के प्रवचन सुनने की आकांक्षा व्यक्त करते हुए राजमहल में व्याख्यान देने का आग्रह किया। परन्तु

आपश्री ने अपनी मनोभावना का संकेत करते हुए फरमाया कि मेरी यह कभी भी आकांक्षा नहीं रही है कि राजमहलों में व्याख्यान देने को मुख्य मानूं। आजकल जहां व्याख्यान होते है, वह सार्वजनिक स्थान है, यहां किसी के आने-जाने पर प्रतिबंध नहीं है और यहा आकर कोई भी व्यक्ति अपनी सुविधानुसार व्याख्यान-श्रवण कर सकता है। यह स्थान महाराणाजी के लिये कोई बाधाकारी नहीं है। महाराणा साहब प्रवचन सुनने के लिये उत्सुक थे, अत. जब आपश्री विहार कर नगर के बाहर विराज रहे थे, वहां आकर उन्होंने व्याख्यान-श्रवण का लाभ लिया।

'प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्' कि उन्हें न तो समान करने वाले के प्रति राग होता है। और न अपमान करने वाले के लिये द्वेष। उनका जीवन-प्रवाह तो समतल पर बहते जलप्रवाह की तरह सुख, शांति को पल्लवित, पुष्पित और समृद्ध करता रहता है।

जमनापार के क्षेत्रों में मौलिक धर्मप्रचार

कल्प-मर्यादानुसार आपश्री का दिल्ली में विराजना हुआ। इस समय मे अनके विद्वानों, नगर-के संभ्रान्त नागरिकों, राजनेताओं आदि ने सेवा में उपस्थित होकर जैन सिद्धान्तों के बारे में चर्चा-वार्ता कर जानकारी प्राप्त की।

सं. 2007 का चातुर्मास अलवर में व्यतीत करने की स्वीकृति दी जा चुकी थी और चातुर्मास प्रारम्भ होने में अभी कुछ समय था। अतः दिल्ली के उपनगरों में कुछ दिन विराजने के पश्चात् अलवर की ओर विहार करने का विचार चल रहा था कि जमनापार के क्षेत्रों के अनेक भाई हिलवाडी ग्राम की हकीकत लेकर सेवा में उपस्थित हुए।

उन्होने बताया कि हिलवाडी में स्थानकवासी जैन समाज के करीब 20-25 घर हैं। उनके सामने दया-दानविरोधी मान्यताएं इस प्रकार के शाब्दिक छल द्वारा रखी जा रही हैं, जिससे वे इनकी वास्तविकताओं को नहीं समझ पा रहे हैं। अतः आपश्री का इन क्षेत्रों में पदार्पण होना बहुत जरूरी है।

जमनापार के क्षेत्रों के बंधुओं ने सीधे-सादे शब्दो में अपने इधर की स्थिति का संकेत किया था और आपश्री भी परिस्थिति को देखते हुए उधर के क्षेत्रों में विहार करना आवश्यक मानते थे। अतः शारीरिक स्थिति निर्बल होने पर भी जनकल्याण के लिये आपश्री ने दिल्ली से जमनापर के क्षेत्रों की ओर विहार कर दिया। क्रम-क्रम से आस-पास के क्षेत्रों को स्पर्श करने के बाद आपश्री का पदार्पण हिलवाड़ी ग्राम में हुआ।

आपश्री ने परिस्थिति को समझकर प्रतिदिन अपने प्रवचनों में जैन धर्म के मौलिक सिद्धान्तों का विवेचन करना प्रारम्भ कर दिया। जिससे जैन धर्म और दया-दान के सम्बन्ध में फैलाई गई भ्रांत धारणाओं का निराकरण हुआ और विपरीत श्रद्धा-प्ररुपणा से ग्रस्त भाइयों ने धर्म के सही स्वरूप को समझा।

इस प्रकार धार्मिक श्रद्धा का स्थिरीकरण तो किया ही, अनेक परिवार, जो दिग्भ्रमित हो चुके थे, पुनः सत्पथ पर आये तथा सुश्रद्धा ग्रहण की। इस प्रकार महान उपकार का कार्य करने के प्रश्चात् आपश्री अन्यान्य क्षेत्रो की ओर विहार न कर हिलवाड़ी से अलवर की ओर विहार करने का विचार कर रहे थे कि कांधला, बडौत के धर्मप्रेमी भाइयों ने सानुरोध विनम्र विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री चाहे हमारे यहां पर एक-एक दिन ही विराजें, लेकिन अपने चरणकमलों से हमारे क्षेत्रो को अवश्य ही पवित्र करें। आपश्री के पधारने से हमारे क्षेत्रों का विशेष उपकार होगा।

आपश्री ने वहां के भाइयों को काफी समझाया और चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय आदि के बारे में संकेत भी किया, किन्तु भाइयों ने निवेदन किया कि सिर्फ एकाध दिन का फर्क पड़ेगा और निकट में ही हमारे गांवों के होते हुए भी आपश्री का पदार्पण न हो तो हमें दुःख होगा। अतः आपश्री अपनी स्वीकृति फरमाकर कृतार्थ करें।

सन्त स्वभावतः दयार्द्र होते हैं। आपश्री ने हिलवाड़ी से बडौत होते हुए कांधला की ओर विहार कर दिया। जब आपश्री ने कांधला की सीमा में प्रवेश किया, वहां के निवासियों की प्रफुल्लता का पार नहीं था। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, मानो प्रकृति के कण-कण में एक नवीन चेतना का संचार हो गया है और उसका उल्लास जन-मन में नहीं समा रहा हो।

कान्धला निवासियों ने अपनी खुशी को व्यक्त करने के लिये सीमा से ही लड्डू बाँटने चालू कर दिये। पूरे मार्ग में जो भी आया उसे लड्डू दिये गये । मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी लड्डुओं के स्वाद से वंचित नहीं रहे।

जैसे ही आपश्री ने संतमंडल के साथ नगर के प्रवेशद्वार में पदार्पण किया कि वहां के उत्साही धर्मप्रेमी सज्जनों ने बड़े ही उत्साह के साथ अगवानी की और जुलूस के साथ नगर के राजमार्गो से होते हुए धर्मस्थान मे पदार्पण कराया तथा राजमार्गों के दोनों ओर खड़े नागरिकों ने आपश्री के दर्शन कर अपने-आप को धन्य माना।

आपश्री दो-चार दिन कांधला विराजे और प्रवचनों में विशेष रूप से दया-दान सम्बन्धी सिद्धान्तों का विवेचन किया। सार्वजनिक प्रवचन भी हुए। अनेक विद्वानो और प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने जैन धर्म के सिद्धान्तों के बारे में अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया और आपकी विद्वत्ता, शैली आदि की प्रशंसा करने में अपना गौरव माना। कांधला के प्रमुख श्रावक श्री पलटूमलजी थे जो शिथिलाचारियों की खुले दिल से आलोचना करते थे। शिथिलाचार को देखकर उन्हें भारी वेदना होती थी। पूज्य आचार्यश्री के उच्चाचार एवं उच्च विचारों से वे अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि इस प्रकार के महापुरुष ही श्रमण

कृति को अक्षुण्ण रख सकते हैं। कांधला से विहार कर बड़ौत पधारे और वहां भी दो-चार विराजकर धर्मप्रेमी जनता को प्रतिबोध देते हुए आपश्री ने चातुर्मास हेतु अलवर की ओर र कर दिया।

कर रोग

बडौतवासियों ने भरे हुए हृदयों से विदाई दी और कुछ-एक सज्जन काफी दूर तक -साथ चले। लेकिन ग्रीष्म-ऋतु की प्रचण्डता और मार्ग में अनेक गांवों के होते हुए भी चोचित आहारादि की संयोगस्थिति न बन सकने से टटीरीमंडी के निकट मूत्रकृच्छ रोग हो गया। जिससे एक डग चलना भी मुश्किल हो गया और जैसे-तैसे करके टटीरीमंडी । सहसा और सर्वथा पेशाब बन्द हो जाना शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बड़ा खतरनाक है। मार्मिक पीड़ा, शारीरिक शिथिलता, विकलता आदि इस रोग के परिणाम हैं।

टटीरीमंडी में जैनों के एक-दो घर थे। गांव के एक वैद्य ने कुछ उपचार भी किया, न वेदना बढ़ती जा रही थी। जब इस विषमस्थिति की जानकारी अन्य बंधुओं को मिली उन्होंने दिल्ली श्रावक संघ को खबर दी और दो कोस की दूरी पर स्थित सरकारी ताल से डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने परीक्षा कर नली से पेशाब कराई, जिससे वेदना कम हो गई।

आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के समाचार मिलते ही दिल्ली के भाई विशेषज्ञों को लेकर रीमंडी जा पहुंचे तथा दूसरे क्षेत्रों के श्रीसंघों को भी इस विषमस्थिति की सूचना मिलने रतलाम, व्यावर, बीकानेर, अलवर आदि से भी सैकड़ों भाई वहां पहुंच गये।

पूज्य आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति काफी गिर गई थी। कमजोरी इतनी बढ़ गई चलना-फिरना बन्द हो गया। विशेषज्ञों ने निदान करके बताया कि पेशाब की नली में न हो जाने से यह स्थिति बनी है और उपचार के लिये शीघ्र ही मोटर द्वारा दिल्ली ले ना चाहिए। जब उन्हें बताया गया कि जैन साधु पैदल विहार करते हैं और किसी भी ति में मोटर आदि वाहन का उपयोग करना उनकी मर्यादा नहीं है, तब डाक्टरों ने कहा इसके लिये आप चाहे जो व्यवस्था करें, लेकिन स्थिति को देखते हुए पैदल चलना रनाक है।

णामूर्ति का दिल्ली-पदार्पण

साधु पराश्रयी नहीं होते हैं। अस्वस्थ होने पर या तो वे अपनी परिचर्या स्वयं करते हैं समान समाचारी वाले संतों से सहयोग ले सकते हैं। कदाचित् साधु सक्षम न हों तो श्रावक

इस प्रकार धार्मिक श्रद्धा का स्थिरीकरण तो किया ही, अनेक परिवार, जो दिग्भ्रमित हो चुके थे, पुनः सत्पथ पर आये तथा सुश्रद्धा ग्रहण की। इस प्रकार महान उपकार का कार्य करने के प्रश्चात् आपश्री अन्यान्य क्षेत्रों की ओर विहार न कर हिलवाड़ी से अलवर की ओर विहार करने का विचार कर रहे थे कि कांधला, बड़ौत के धर्मप्रेमी भाइयों ने सानुरोध विनम्र विनती करते हुए निवेदन किया कि आपश्री चाहे हमारे यहां पर एक-एक दिन ही विराजें, लेकिन अपने चरणकमलों से हमारे क्षेत्रों को अवश्य ही पवित्र करें। आपश्री के पधारने से हमारे क्षेत्रों का विशेष उपकार होगा।

आपश्री ने वहां के भाइयों को काफी समझाया और चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय आदि के बारे में संकेत भी किया, किन्तु भाइयों ने निवेदन किया कि सिर्फ एकाध दिन का फर्क पडेगा और निकट में ही हमारे गांवों के होते हुए भी आपश्री का पदार्पण न हो तो हमें दुःख होगा। अतः आपश्री अपनी स्वीकृति फरमाकर कृतार्थ करें।

सन्त स्वभावतः दयार्द्र होते हैं। आपश्री ने हिलवाडी से बडौत होते हुए कांधला की ओर विहार कर दिया। जब आपश्री ने कांधला की सीमा में प्रवेश किया, वहां के निवासियो की प्रफुल्लता का पार नही था। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था, मानो प्रकृति के कण-कण में एक नवीन चेतना का संचार हो गया है और उसका उल्लास जन-मन मे नहीं समा रहा हो।

कान्धला निवासियों ने अपनी खुशी को व्यक्त करने के लिये सीमा से ही लड्डू बॉटने चालू कर दिये। पूरे मार्ग में जो भी आया उसे लड्डू दिये गये । मनुष्य तो क्या, पशु-पक्षी भी लड्डुओं के स्वाद से वंचित नहीं रहे।

जैसे ही आपश्री ने संतमंडल के साथ नगर के प्रवेशद्वार में पदार्पण किया कि वहां के उत्साही धर्मप्रेमी सज्जनों ने बड़े ही उत्साह के साथ अगवानी की और जुलूस के साथ नगर के राजमार्गों से होते हुए धर्मस्थान में पदार्पण कराया तथा राजमार्गों के दोनों ओर खड़े नागरिको ने आपश्री के दर्शन कर अपने-आप को धन्य माना।

आपश्री दो-चार दिन कांधला विराजे और प्रवचनों में विशेष रूप से दया-दान सम्बन्धी सिद्धान्तो का विवेचन किया। सार्वजनिक प्रवचन भी हुए। अनेक विद्वानों और प्रमुख-प्रमुख व्यक्तियों ने जैन धर्म के सिद्धान्तों के बारे में अपनी-अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया और आपकी विद्वत्ता, शैली आदि की प्रशंसा करने में अपना गौरव माना। कांधला के प्रमुख श्रावक श्री पलटूमलजी थे जो शिथिलाचारियों की खुले दिल से आलोचना करते थे। शिथिलाचार को देखकर उन्हें भारी वेदना होती थी। पूज्य आचार्यश्री के उच्चाचार एवं उच्च विचारों से ये अत्यधिक प्रभावित थे। उनका मानना था कि इस प्रकार के महापुरुष ही श्रमण

संस्कृति को अक्षुण्ण रख सकते हैं। कांधला से विहार कर बड़ौत पधारे और वहां भी दो-चार दिन विराजकर धर्मप्रेमी जनता को प्रतिबोध देते हुए आपश्री ने चातुर्मास हेतु अलवर की ओर विहार कर दिया।

भयंकर रोग

बड़ौतवासियों ने भरे हुए हृदयों से विदाई दी और कुछ-एक सज्जन काफी दूर तक साथ-साथ चले। लेकिन ग्रीष्म-ऋतु की प्रचण्डता और मार्ग में अनेक गांवों के होते हुए भी साध्वोचित आहारादि की संयोगस्थिति न बन सकने से टटीरीमंडी के निकट मूत्रकृच्छ रोग पैदा हो गया। जिससे एक डग चलना भी मुश्किल हो गया और जैसे-तैसे करके टटीरीमंडी पहुंचे। सहसा और सर्वथा पेशाब बन्द हो जाना शारीरिक स्वास्थ्य के लिये बडा खतरनाक होता है। मार्मिक पीड़ा, शारीरिक शिथिलता, विकलता आदि इस रोग के परिणाम हैं।

टटीरीमंडी में जैनों के एक-दो घर थे। गांव के एक वैद्य ने कुछ उपचार भी किया, लेकिन वेदना बढती जा रही थी। जब इस विषमस्थिति की जानकारी अन्य बंधुओं को मिली तो उन्होंने दिल्ली श्रावक संघ को खबर दी और दो कोस की दूरी पर स्थित सरकारी अस्पताल से डाक्टर को बुलाया। डाक्टर ने परीक्षा कर नली से पेशाब कराई, जिससे वेदना कुछ कम हो गई।

आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के समाचार मिलते ही दिल्ली के भाई विशेषज्ञों को लेकर टटीरीमंडी जा पहुंचे तथा दूसरे क्षेत्रों के श्रीसंघों को भी इस विषमस्थिति की सूचना मिलने पर रतलाम, ब्यावर, बीकानेर, अलवर आदि से भी सैकडों भाई वहां पहुंच गये।

पूज्य आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति काफी गिर गई थी। कमजोरी इतनी बढ़ गई कि चलना-फिरना बन्द हो गया। विशेषज्ञों ने निदान करके बताया कि पेशाब की नली में गठान हो जाने से यह स्थिति बनी है और उपचार के लिये शीघ्र ही मोटर द्वारा दिल्ली ले चलना चाहिए। जब उन्हें बताया गया कि जैन साधु पैदल विहार करते हैं और किसी भी स्थिति में मोटर आदि वाहन का उपयोग करना उनकी मर्यादा नहीं है, तब डाक्टरों ने कहा कि इसके लिये आप चाहे जो व्यवस्था करें, लेकिन स्थिति को देखते हुए पैदल चलना खतरनाक है।

करुणामूर्ति का दिल्ली-पदार्पण

साधु पराश्रयी नहीं होते हैं। अस्वस्थ होने पर या तो वे अपनी परिचर्या स्वयं करते हैं या समान समाचारी वाले संतों से सहयोग ले सकते हैं। कदाचित् साधु सक्षम न हों तो श्रावक

दया, पौषध, सामायिक, संवर लेकर उठा सकते हैं। यद्यपि उसका भी प्रायश्चित्त लेना होता है। परन्तु आचार्यश्री को श्रावकों ने नहीं उठाया वरन् परिस्थिति की विकटता देखकर संतों ने ही आपको अपने कंधों पर उठा लिया। उस समय सबके मन में एक ही बात घूम रही थी कि किसी-न-किसी प्रकार दिल्ली पहुंच जायें।

ग्रीष्मऋतु तो थी ही और आचार्यश्रीजी की इस शारीरिक वेदना आदि से संत भी स्वस्थ नहीं थे। फिर भी उनके मनों में उत्साह था कि दिल्ली पहुंच गये तो आचार्यश्रीजी म.सा. निरोग हो जायेंगे।

संत आपश्री को उठाकर कुछ दूर चले अवश्य, किन्तु कंधों ने जवाब देना शुरु कर दिया और डोली के डंडों से परेशान होकर बार-बार कंधों की अदला-बदली करने लगे। अभी एक-दो फर्लांग ही बढे होंगे कि आपश्री ने स्थिति को देखकर संतों को रुकने का संकेत किया। संत रुक गये। डोली नीचे रख दी गई और आपश्री नीचे उतरे। संतों ने समझा कि लघुशंका मिटानी होगी।

संत स्वयं कष्ट सहन कर लेते हैं लेकिन अपने निमित्त दूसरे को कष्ट देना सहन नहीं होता है। परदुःखकातर और करुणामूर्ति सन्तजन खिन्न ही तब होते हैं जब दूसरों को क्लान्त देखते हैं। वे तो ममता त्यागकर आत्मा में रमण करते हैं और आत्मरमणता में उन्हें अपने शरीर का भान नहीं रहता है।

कुछ ही क्षणों में सन्तों ने देखा, श्रावकों ने निरखा और चिकित्सकों ने पलक उठाई कि पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. मंथरगति से पैदल ही चल पड़े हैं। इस संकटापन्न स्थिति में भी अपूर्व साहस एवं आत्मबल के दर्शन कर उपस्थिति के मस्तक श्रद्धावनत हो गये। कुछ साहस संकलित कर चिकित्सकों ने रोका, सन्तों ने अनुनय की, श्रावकों ने आग्रह किया, मगर यह सब पूज्य आचार्यश्रीजी के बढते चरणों में व्यवधान नहीं डाल सके। इस विकट परिस्थिति में भी आपश्री का एक ही उत्तर था– मैं अपने लिये दूसरों को कष्ट नहीं देना चाहता।

मूत्रकृच्छ रोग की उग्रता चरमसीमा पर थी। वेदना उत्कट थी। पता नहीं कि जीवनरज्जु कब छिन्न-भिन्न हो जाये। इस स्थिति का विचार आते ही साथ में रहने वालों के मन क्षण-क्षण में सिहर उठते थे। मन की टीस अन्दर-ही-अन्दर गहरी होती जा रही थी। लेकिन आचार्यश्रीजी तो इन सबसे परे जलकमलवत् निर्लिप्त थे और स्वस्थ शरीरधारी की तरह चरणों में गति थी ईर्यासमितिपूर्वक। रोगजन्य निर्बलता और चलने में श्रम का लेशमात्र भी आभास नहीं हो रहा था और शनैः-शनैः मंथरगति से मार्ग तय करके आपश्री दिल्ली पधार गये।

आपश्री के विहार की कथा जिस-किसी ने भी सुनी और चिकित्सकों को अवगत कराई

गई तो उनके आश्चर्य का पार न रहा। उन्हें विश्वास ही नहीं होता था कि इस संकटापन्न स्थिति मे इतनी दूर पैदल कैसे आये ? जबकि चिकित्सा-विज्ञान की दृष्टि से ऐसे रोगी का एक कदम चलना भी जीवन को संकट में डालना है।

चातुर्मास प्रारम्भ होने का समय सन्निकट था। दिल्ली के अच्छे-अच्छे चिकित्सकों द्वारा रोग का निदान कराये जाने पर उन्होंने अपना निर्णय दिया कि इस रोग का उन्मूलन शल्यक्रिया (आपरेशन) के द्वारा ही हो सकेगा। लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी का विचार था– यदि आपरेशन कराने की बजाय अन्य उपचारों से रोग का उन्मूलन हो जाये तो अच्छा है। इसलिये आपश्री ने चिकित्सकों की राय पर विचार व्यक्त करते हुए कहा कि यदि निर्दोष औषधियों और आसन-प्राणायाम द्वारा रोग शांत हो जाये तो अच्छा है।

लेकिन चिकित्सकों ने रोग की सभी स्थिति बतलाते हुए कहा कि मूत्राशय मे गांठ पड गई है और वह बिना आपरेशन किये दूर नहीं की जा सकती है और शीघ्र ही आपरेशन करा लेना चाहिये। इसके बारे में जितनी देरी होगी, उतना ही खतरा है।

यूनानी इलाज से राहत

चिकित्सकों की राय के बारे मे विचार हो रहा था कि इसी बीच सदरबाजार दिल्ली के सुप्रसिद्ध यूनानी हकीम श्री प्रेमचन्दजी बरनालावाले आचार्यश्रीजी म.सा. के दर्शनार्थ आये। उन्होंने रोग के बारे में जानकारी करने के बाद संघ के प्रमुख सज्जनों से कहा कि मुझे भी आचार्यश्रीजी की सेवा का कुछ अवसर मिले तो मैं भी अपने नुस्खों को आजमा सकूं। वृद्धावस्था के कारण मूत्राशय मे ऐसी गांठ प्रायः हो जाती है, लेकिन मुझे आशा है कि वह ठीक हो जायेगी। मैं भी आप जैसा एक श्रावक हूँ और मुझे भी सेवा करने का हक है। इसलिये सिर्फ तीन दिन मेरी दवा लें और उससे फायदा दिखे तो आगे चालू रखिये।

पूज्य आचार्यश्रीजी आपरेशन सम्बन्धी दोषों से बचना चाहते थे। अतएव हकीमजी की बात मान लेना आपने ठीक समझा। इस स्वीकृति से हकीमजी को प्रसन्नता हुई और उपचार चालू होने के दो-तीन दिन बाद रोग मे कमी दिखाई देने लगी और बेचैनी घट गई।

शारीरिक स्थिति, चिकित्सको की सलाह और दिल्ली श्रीसंघ की विनती को ध्यान मे रखते हुए सं. 2007 का चातुर्मास अलवर न होकर दिल्ली हुआ।

बौद्ध धर्म के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. फैलिक्स बैली आचार्यश्री के चरणों में

दिल्ली का यह चातुर्मास विद्वत्मंडल एवं जनसाधारण के लिये प्रेरणादायक रहा। नगरजन आपश्री की विद्वत्ता से परिचित ही थे, अत. प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि के समय अधिक-से-अधिक श्रोताओं एवं जिज्ञासुओ की उपस्थिति होती थी।

हकीम श्री प्रेमचन्दजी की दवा से रोग में काफी सुधार हो गया था, लेकिन ऐसा नहीं कहा जा सकता था कि आप पूर्ण स्वस्थ माने जायें। फिर भी प्रतिदिन प्रवचन, तत्त्वचर्चा आदि का क्रम निर्बाध रूप से चलता रहा। स्थानीय विद्वानों के अतिरिक्त अन्यान्य विदेशी विद्वान भी जैन दर्शन के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिये आपके पास आते रहते थे। आपश्री उनकी जिज्ञासाओं का सयुक्तिक समाधान करते थे। एक दिन हंगरी निवासी बौद्ध धर्म के प्रमुख विद्वान डा. फैलिक्स वैली जैन सिद्धान्तों की विशेष जानकारी के लिये प्रवचन के समय पधारे और स्याद्वाद सिद्धान्त के बारे में अपनी जिज्ञासा व्यक्त की। अतएव आचार्यश्रीजी ने बहुत ही सरल और सयुक्तिक शैली में 'स्याद्वाद' के बारे में प्रवचन फरमाया। प्रवचन का सारांश यह है-

स्याद्वाद सिद्धान्त पर विस्तृत मार्मिक विवेचन

'जैन धर्म आत्म-विजेताओं का महान् धर्म है। जिन्होंने राग-द्वेष आदि अपने आन्तरिक विकारों पर विजय प्राप्त करके समय एवं साधना द्वारा निर्मल ज्ञान प्राप्त कर अपनी आत्मा को उत्थान के मार्ग पर अग्रसर किया है, उन्हें हमारे यहां 'जिन' (विजेता) कहा गया है तथा इन विजेताओं द्वारा प्रेरित दर्शन का नामांकन जैन दर्शन के नाम से हुआ। अतः यह दर्शन किसी व्यक्ति-विशेष, वर्ग-विशेष या शास्त्र-विशेष की उपज नहीं, बल्कि इसका विकास उन आत्माओं द्वारा हुआ है जिन्होंने सारे सांसारिक (जातीय, देशीय, सामाजिक, वर्णीय आदि) भेदभावों व यहां तक कि स्व-पर को भी विसर्जित कर अपने जीवन को सत्य के लिए होम दिया। यही कारण है कि इसका यह स्वरूप इसकी महान् आध्यात्मिकता व व्यापक विश्वबन्धुत्व का प्रतीक है।

'मैं यहां पर जैन दर्शन की मौलिक देन स्याद्वाद या अनेकान्तवाद पर कुछ विशेष रोशनी डालना चाहता हूँ। जिस प्रकार सत्य के साक्षात्कार में हमारी अहिंसा स्वार्थ-संघर्षों को सुलझाती हुई आगे बढ़ती है, उसी प्रकार यह स्याद्वाद जगत् के वैचारिक संघर्षों की अनोखी सुलझन प्रस्तुत करता है। आचार में अहिंसा और विचार में स्याद्वाद– यह जैन दर्शन की सर्वोपरि मौलिकता रही है। स्याद्वाद को दूसरे शब्दों में वाणी व विचार की अहिंसा के नाम से भी पुकारा जा सकता है।

'किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमें इसी सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी हो जाते हैं। अतः उसके सारे पक्षों व दृष्टिकोणों को विरोध की नहीं, बल्कि समन्वय की दृष्टि से समझकर उसकी यथार्थ सत्यता का दर्शन करना इस सिद्धान्त से गहन चिन्तन के आधार पर ही संभव हो सकता है। विज्ञान ने भी सिद्ध कर दिया

के एक ही वस्तु की कई बाजुएँ हो सकती हैं और उनमें भी ऐसी बाजुएँ अधिक होती हैं, का स्वरूप अधिकतर प्रत्यक्ष न होकर अप्रत्यक्ष ही रहता है। अतः इन सारे प्रत्यक्ष व त्यक्ष पक्षों को समझने के बाद ही किसी भी वस्तु को सत्य स्वरूप का अनुभव किया जा ता है।

'किसी वस्तु-विशेष के एक ही पक्ष या दृष्टिकोण को उसका सर्वांग स्वरूप समझकर सत्य के नाम से पुकारना मिथ्यावाद या दुराग्रह का कारण बन जाता है। विभिन्न पक्षों दृष्टिकोणों के प्रकाश में जब तक एक वस्तु का स्पष्ट विश्लेषण न कर लिया , तब तक यह नहीं कहा जा सकता है कि हमने उस वस्तु का सर्वांग स्वरूप समझ । है। अतः किसी वस्तु को विभिन्न दृष्टिकोणों के आधार पर देखने, समझने व वर्णित । वाले विज्ञान का नाम ही स्याद्वाद या अनेकान्तवाद या अपेक्षावाद (Science of satility or Relativity) कहा गया है।

'यह स्याद्वादी दृष्टिकोण किसी भी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को हृदयंगम करने के लिए ावश्यक साधन है। इसके जरिये सारे दृढवादी या रूढ़िवादी विचारों की समाप्ति हो जाती था एक उदार दृष्टिकोण का जन्म होता है, जो सभी विचारों को पचा कर सत्य का दिव्य ाश शोधने में सहायक बनता है।

'एक ही वस्तु के स्वरूप पर विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियों से ना शुरू करते हैं। यहां तक तो विचारों का क्रम ठीक रूप से चलता है। किन्तु उससे होता है कि एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियों से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित ने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है, वह उसे स्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह । है कि ऐकान्तिक् दृष्टिकोण व हठधर्मिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे वेचार, जो सत्य ज्ञान की ओर बढा सकते थे, पारस्परिक समन्वय के अभाव में विद्वेषपूर्ण र्ष के जटिल कारणों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्याद्वाद का ान्त उन्हे बताना चाहता है कि सत्य के टुकडों को पकडकर उन्हें ही आपस में टकराओ बल्कि उन्हें तरकीब से जोडकर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट । अगर विचारों को जोडकर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती व एकांगी सत्य के साथ ही को बांध दिया जाता है तो यही नतीजा होगा कि वह एकांगी सत्य भी सत्य न रहकर ग मे बदल जायेगा। अतः यह आवश्यक है कि अपने दृष्टिबिन्दु को सत्य समझते हुए अन्य दृष्टिबिन्दुओं पर उदारतापूर्वक गनन किया जाये तथा उनमें रहे हुए सत्य को कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टियों से देखने की कोशिश की जाये।

'सर्वसाधारण को स्याद्वाद की सूक्ष्मता का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'एक ही व्यक्ति अपने अलग-अलग रिश्तों के कारण पिता, पुत्र, काका, भतीजा, मामा, भानजा आदि हो सकता है। वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो इसी तरह अपने पिता की दृष्टि से पुत्र भी। ऐसे ही अन्य सम्बन्धों के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारों ओर देखते हैं। इन रिश्तों की तरह ही एक व्यक्ति में विभिन्न गुणों का विकास भी होता है। अत यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप में लागू होती है कि वह भी एक साथ सत्-असत्, नश्वर-अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, क्रियाशील-अक्रियाशील, नित्य-अनित्य गुणो वाली हो सकती है। जैसे एक ही व्यक्ति में पुत्रत्व व पितृत्व-दो विरोधी गुणो का सद्भाव संभव है, क्योकि उन गुणों को हम विभिन्न दृष्टियों से देख रहे हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु विभिन्न अपेक्षाओं से नित्य भी हो सकती है तथा अनित्य भी। जब स्थूल सांसारिक व्यवस्था भी सापेक्ष दृष्टि पर टिकी हुई है तो वस्तु के सूक्ष्म स्वरूप को हठ में जकडकर ऐकान्तिक बताना कभी सत्य नहीं हो सकता। यह ठीक वैसा ही होगा कि एक ही व्यक्ति को अगर पुत्र माना जाता है तो वह पिता कहला नहीं सकता और इसकी असत्यता प्रत्यक्षतः सिद्ध है। चाहे तो यह सांसारिक व्यवस्था ले लीजिए या सिद्धान्तों की स्वरूप-विवेचना, सब सापेक्ष दृष्टि पर अवलम्बित हैं। अगर इस दृष्टि को न माना जायेगा व सम्बन्धित सारे पक्षों के आधार पर वस्तु के स्वरूप को न समझा जायेगा तो एक क्षण में ही जागतिक व्यवस्था मिट-सी जायेगी। आश्चर्य यही है कि स्थूल रूप से जिस सापेक्ष दृष्टि को अपने चारों ओर सांसारिक व्यवहार में देखा जाता है, उसी सापेक्ष दृष्टि को वैचारिक सूक्ष्मता के क्षेत्र में भुला दिया जाता है और फलस्वरूप व्यर्थ के विवाद उत्पन्न किये जाते हैं।

'यहां यह शंका की जा सकती है कि एक ही वस्तु में दो विरोधी धर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं ? शंकराचार्य ने यह आपत्ति उठाई थी कि एक ही पदार्थ एक साथ नित्य और अनित्य नहीं हो सकता, जैसे कि शीत और ऊष्ण गुण एक साथ नहीं पाए जाते । किन्तु शंका ठीक नहीं है। विरोध की शंका तो तब उठाई जा सकती है जबकि एक ही दृष्टिकोण, अपेक्षा से वस्तु को नित्य भी माना जाये और अनित्य भी। जिस दृष्टिकोण से वस्तु को नित्य माना जाये, उसी दृष्टिकोण से यदि उसे अनित्य भी माना जाये तब तो अवश्य ही विरोध होता है, परन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टियों की आज्ञा से भिन्न-भिन्न गुण मानने मे कोई विरोध नहीं आता, जैसे एक व्यक्ति उसके पुत्र की अपेक्षा से पिता माना जाता है व पिता की अपेक्षा से पुत्र, तब पितृत्व व पुत्रत्व के दो विरोधी धर्म एक ही व्यक्ति में अपेक्षाभेद से रह सकते हैं, उसमें कोई विरोध नहीं होता। विरोध तो तब हो, जब हम उसे जिसका पिता माना है, उसी का पुत्र भी मानें। इसी तरह भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भिन्न-भिन्न धर्म मानने मे कोई विरोध नहीं होता।

'जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होने वाला व नष्ट होने वाला और फिर भी स्थिर रहने वाला वताया गया है। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्"— यह पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या है। आश्चर्य मालूम होता है कि नष्ट होने वाली वस्तु भला स्थिर कैसे रह सकती है, किन्तु स्याद्वाद ही इसको सुलझा देता है। ये तीनों पर्याएं सापेक्ष दृष्टि से कही गई हैं। एक-दूसरे के बिना एक-दूसरे की स्थिति बनी नहीं रह सकती है। उदाहरणस्वरूप समझ लीजिये कि एक सोने का कड़ा है और उसे तुडा कर जंजीर बना ली गई तो वह सोना कड़े की अपेक्षा से नष्ट हो गया एवं जंजीर की अपेक्षा से उत्पन्न हो गया, किन्तु स्वर्णत्व की अपेक्षा से वह पहले भी था और अब भी है, वह उसकी स्थिर स्थिति हुई। पदार्थ की पर्याय वदलती है। उसमें पूर्व-पर्याय का विनाश व उत्तर-पर्याय की उत्पत्ति होती रहने पर भी पदार्थ का द्रव्यस्वरूप उसमें कायम रहता है। इस तरह पर्यायार्थिक नय (दशा-परिवर्तन) की अपेक्षा से पदार्थ अनित्य है और द्रव्यार्थिक नय (स्थिर स्थिति) की अपेक्षा से नित्य भी है। यही स्याद्वाद का गौरवपूर्ण एवं मार्मिक स्वरूप है।

'स्याद्वाद के सिद्धान्त को जैन दर्शन का हृदय कहा जाता है। जैसे हृदय शुद्ध किया गया रक्त सभी अंगों में समान रूप से संचारित करता रहे तो शरीर का टिकना सम्भव होगा, उसी तरह स्याद्वाद सभी सिद्धान्तों को समझने में समन्वय की उदार भावना की वरावर प्रेरणा देता रहता है। जैन दर्शन की सवसे बडी विशेषता तो यह है कि वह अपनी मान्यता के प्रति भी हठवादी (दुर्नयी) नहीं है। वहां तो सत्य से प्रेम किया जाता है और निरन्तर अपने स्वरूप को सत्य के रंग में रंगा रखने में परम सन्तोष की अनुभूति की जाती है। सत्य की आराधना जैन दर्शन का प्राण है। वह न अपनी मान्यता के विषय में दुराग्रही है और न दूसरो की मान्यताओं का किसी भी रूप से तिरस्कार करना चाहता है। वह तो केवल यह चाहता है कि समस्त विश्व पूर्ण सत्य के स्वरूप को समझने की सही राह पर आगे वढे।

'स्याद्वाद एक तरह से संसार के समस्त विचारकों व दार्शनिकों का आह्वान करता है कि सव अपने आपसी हठवाद व एकांगी दृष्टिकोणों के कलह को त्याग कर एक साथ वैठो तथा एक-दूसरे की विचारधाराओ का स्पष्ट रूप से आदान-प्रदान करो। इस तरह जव सामूहिक रूप से व शुद्ध जिज्ञासा व निर्णय बुद्धि से सम्मिलित विचार-विमर्श किया जायेगा, उनका मन्थन होने लगेगा तो जरूर ही छाछ-छाछ पैंदे में रह जायेगी और साररूप मक्खन ऊपर तैर कर आ जायेगा। तव स्याद्वाद का सन्देश है कि उन विचारधाराओं के समूह में से असत्य अंशों को निकाल कर अलग कर दो, हठवाद, एकान्तवाद और अपने ही विचारों मे पूर्ण सत्य मानने की दुराग्रही वृत्तियों को पूरे तौर पर तिलांजलि दे दो। सत्य के भिन्न-भिन्न खंडो का चयन करो, उन्हें जोड कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर उन्मुख होओ। सूंड ही हाथी है, पांव ही हाथी है या पीठ ही हाथी है, मान सकते रहने से कभी भी हाथी का असली स्वरूप

'सर्वसाधारण को स्याद्वाद की सूक्ष्मता का स्पष्ट ज्ञान कराने के लिए मैं एक दृष्टान्त प्रस्तुत कर रहा हूँ।

'एक ही व्यक्ति अपने अलग-अलग रिश्तो के कारण पिता, पुत्र, काका, भतीजा, मामा, भानजा आदि हो सकता है। वह अपने पुत्र की दृष्टि से पिता है तो इसी तरह अपने पिता की दृष्टि से पुत्र भी। ऐसे ही अन्य सम्बन्धों के व्यावहारिक उदाहरण आप अपने चारो ओर देखते हैं। इन रिश्तों की तरह ही एक व्यक्ति में विभिन्न गुणों का विकास भी होता है। अतः यही दृष्टि वस्तु के स्वरूप में लागू होती है कि वह भी एक साथ सत्-असत्, नश्वर-अनश्वर, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, क्रियाशील-अक्रियाशील, नित्य-अनित्य गुणों वाली हो सकती है। जैसे एक ही व्यक्ति में पुत्रत्व व पितृत्व-दो विरोधी गुणों का सद्भाव संभव है, क्योंकि उन गुणो को हम विभिन्न दृष्टियों से देख रहे हैं, उसी प्रकार एक ही वस्तु विभिन्न अपेक्षाओं से नित्य भी हो सकती है तथा अनित्य भी। जब स्थूल सांसारिक व्यवस्था भी सापेक्ष दृष्टि पर टिकी हुई है तो वस्तु के सूक्ष्म स्वरूप को हठ में जकड़कर ऐकान्तिक बताना कभी सत्य नहीं हो सकता। यह ठीक वैसा ही होगा कि एक ही व्यक्ति को अगर पुत्र माना जाता है तो वह पिता कहला नहीं सकता और इसकी असत्यता प्रत्यक्षतः सिद्ध है। चाहे तो यह सासारिक व्यवस्था ले लीजिए या सिद्धान्तों की स्वरूप-विवेचना, सब सापेक्ष दृष्टि पर अवलम्बित हैं। अगर इस दृष्टि को न माना जायेगा व सम्बन्धित सारे पक्षों के आधार पर वस्तु के स्वरूप को न समझा जायेगा तो एक क्षण में ही जागतिक व्यवस्था मिट-सी जायेगी। आश्चर्य यही है कि स्थूल रूप से जिस सापेक्ष दृष्टि को अपने चारों ओर सांसारिक व्यवहार में देखा जाता है, उसी सापेक्ष दृष्टि को वैचारिक सूक्ष्मता के क्षेत्र में भुला दिया जाता है और फलस्वरूप व्यर्थ के विवाद उत्पन्न किये जाते हैं।

'यहां यह शंका की जा सकती है कि एक ही वस्तु में दो विरोधी धर्म एक साथ कैसे रह सकते हैं ? शंकराचार्य ने यह आपत्ति उठाई थी कि एक ही पदार्थ एक साथ नित्य और अनित्य नहीं हो सकता, जैसे कि शीत और ऊष्ण गुण एक साथ नहीं पाए जाते । किन्तु शंका ठीक नहीं है। विरोध की शंका तो तब उठाई जा सकती है जबकि एक ही दृष्टिकोण, अपेक्षा से वस्तु को नित्य भी माना जाये और अनित्य भी। जिस दृष्टिकोण से वस्तु को नित्य माना जाये, उसी दृष्टिकोण से यदि उसे अनित्य भी माना जाये तब तो अवश्य ही विरोध होता है, परन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टियों की आज्ञा से भिन्न-भिन्न गुण मानने में कोई विरोध नहीं आता, जैसे एक व्यक्ति उसके पुत्र की अपेक्षा से पिता माना जाता है व पिता की अपेक्षा से पुत्र, तब पितृत्व व पुत्रत्व के दो विरोधी धर्म एक ही व्यक्ति में अपेक्षाभेद से रह सकते हैं, उसमें कोई विरोध नहीं होता। विरोध तो तब हो, जब हम उसे जिसका पिता माना है, उसी का पुत्र भी मानें। इसी तरह भिन्न-भिन्न अपेक्षा से भिन्न-भिन्न धर्म मानने में कोई विरोध नहीं होता।

'जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार प्रत्येक पदार्थ उत्पन्न होने वाला व नष्ट होने वाला और फिर भी स्थिर रहने वाला वताया गया है। "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्"– यह पदार्थ के स्वरूप की व्याख्या है। आश्चर्य मालूम होता है कि नष्ट होने वाली वस्तु भला स्थिर कैसे रह सकती है, किन्तु स्याद्वाद ही इसको सुलझा देता है। ये तीनो पर्याएं सापेक्ष दृष्टि से कही गई हैं। एक-दूसरे के बिना एक-दूसरे की स्थिति बनी नही रह सकती है। उदाहरणस्वरूप समझ लीजिये कि एक सोने का कड़ा है और उसे तुडा कर जजीर बना ली गई तो वह सोना कडे की अपेक्षा से नष्ट हो गया एवं जंजीर की अपेक्षा से उत्पन्न हो गया, किन्तु स्वर्णत्व की अपेक्षा से वह पहले भी था और अब भी है, वह उसकी स्थिर स्थिति हुई। पदार्थ की पर्याय बदलती है। उसमें पूर्व-पर्याय का विनाश व उत्तर-पर्याय की उत्पत्ति होती रहने पर भी पदार्थ का द्रव्यस्वरूप उसमें कायम रहता है। इस तरह पर्यायार्थिक नय (दशा-परिवर्तन) की अपेक्षा से पदार्थ अनित्य है और द्रव्यार्थिक नय (स्थिर स्थिति) की अपेक्षा से नित्य भी है। यही स्याद्वाद का गौरवपूर्ण एवं मार्मिक स्वरूप है।

'स्याद्वाद के सिद्धान्त को जैन दर्शन का हृदय कहा जाता है। जैसे हृदय शुद्ध किया गया रक्त सभी अंगों में समान रूप से संचारित करता रहे तो शरीर का टिकना सम्भव होगा, उसी तरह स्याद्वाद सभी सिद्धान्तों को समझने में समन्वय की उदार भावना की बराबर प्रेरणा देता रहता है। जैन दर्शन की सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि वह अपनी मान्यता के प्रति भी हठवादी (दुर्नयी) नहीं है। वहां तो सत्य से प्रेम किया जाता है और निरन्तर अपने स्वरूप को सत्य के रंग में रंगा रखने में परम सन्तोष की अनुभूति की जाती है। सत्य की आराधना जैन दर्शन का प्राण है। वह न अपनी मान्यता के विषय में दुराग्रही है और न दूसरों की मान्यताओं का किसी भी रूप से तिरस्कार करना चाहता है। वह तो केवल यह चाहता है कि समस्त विश्व पूर्ण सत्य के स्वरूप को समझने की सही राह पर आगे बढे।

'स्याद्वाद एक तरह से संसार के समस्त विचारकों व दार्शनिकों का आह्वान करता है कि सब अपने आपसी हठवाद व एकांगी दृष्टिकोणो के कलह को त्याग कर एक साथ बैठो तथा एक-दूसरे की विचारधाराओं का स्पष्ट रूप से आदान-प्रदान करो। इस तरह जब सामूहिक रूप से व शुद्ध जिज्ञासा व निर्णय बुद्धि से सम्मिलित विचार-विमर्श किया जायेगा, उनका मन्थन होने लगेगा तो जरूर ही छाछ-छाछ पैंदे में रह जायेगी और साररूप मक्खन ऊपर तैर कर आ जायेगा। तब स्याद्वाद का सन्देश है कि उन विचारधाराओं के समूह में से असत्य अंशों को निकाल कर अलग कर दो, हठवाद, एकान्तवाद और अपने ही विचारों में पूर्ण सत्य मानने की दुराग्रही वृत्तियों को पूरे तौर पर तिलाजलि दे दो। सत्य के भिन्न-भिन्न खंडों का चयन करो, उन्हें जोड कर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर उन्मुख होओ। सूंड ही हाथी है, पांव ही हाथी है या पीठ ही हाथी है, मान सकते रहने से कभी भी हाथी का असली स्वरूप

समझ में नहीं आयेगा, बल्कि ऐसा हठाग्रह करने पर तो ऐसा मानना एकांगी सत्य होने पर भी हाथी के पूर्ण स्वरूप की दृष्टि से असत्य ही कहलायेगा। अतः सिद्धान्तों और विचारों के क्षेत्र में इसे गम्भीरतापूर्वक समझने व सुलझाने की जरूरत है कि सूंड ही हाथी नहीं है, पाँव ही हाथी नहीं है या पीठ ही हाथी नहीं है, बल्कि ये सब अलग-अलग हिस्से मिलकर पूरा हाथी बनाते हैं। आज उन अन्धों की तरह हाथी देखने की मनोवृत्ति चल रही है, क्या तो दार्शनिक क्षेत्र में और क्या वैचारिक क्षेत्र में, उसे इस स्याद्वाद के प्रकाश में सुष्ठु बना देने का आज महान् उत्तरदायित्व आ पड़ा है।

अनेकान्त सिद्धान्त से ही विश्वशांति की समस्या हल होगी

अगर वर्तमान में फैला हुआ विचार-संघर्ष और अधिकाधिक जटिलता का जामा पहनता गया तो आश्चर्य नहीं कि एक दिन पिछले युद्धों से भी अधिक खौफनाक युद्ध संसार व मानव-जाति की विकसित संस्कृति को बुरी तरह तहस-नहस कर डालेगा।

'विश्वशान्ति का प्रश्न धर्म, सभ्यता व संस्कृति के विकास तथा समस्त प्राणियों के हित का प्रश्न है। कोई भी व्यक्ति, चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य कर रहा हो, इस प्रश्न से अवश्य ही सम्बन्धित है। इस प्रश्न की सही सुलझन पर ही मानवता की वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है और विश्वशान्ति की नींवं को मजबूत करने का आज की परिस्थितियों में सबसे प्रमुख यही उपाय है कि चारों ओर फैला हुआ विचारों का विषैला विभेद शांत किया जावे और एक-दूसरे को समझने के उदार दृष्टिकोण का प्रसार हो सके। ऐसे व्यापक वातावरण का सर्जन जैन दर्शन के स्याद्वाद सिद्धान्त की सुदृढ आधारशिला पर ही किया जा सकता है। यदि प्रत्येक व्यक्ति व सामूहिक रूप से विभिन्न राष्ट्र व समाज इस स्याद्वाद दृष्टि को अपने वैचारिक क्रम में स्थान देने लगें तो विश्वशान्ति की कठिन पहेली सहज ही में शान्ति व सद्भावना से हल की जा सकती है। इस महान् सिद्धान्त के रूप में जैन धर्म विश्व की बहुत बड़ी सेवा बजाने में समर्थ है।

'उपसंहार रूप में मुझे यही कहना है, जो कि इस शास्त्रवाक्य में कहा गया है-

"अत्थि सत्थेण परेण परं, नत्थि असत्थं परेण परं"

'सत्य का साक्षात्कार ही जीवन का चरम साध्य है। जीवन उन अनभुवों व विभिन्न प्रयोगों का कर्मस्थल है, जहां हम उनके जरिये सत्य की साधना करते हैं, क्योंकि सत्य ही मुक्ति है, ईश्वरत्व की प्राप्ति है। जीवन के आचार-विचार की सुघड़ता व सत्यता में व्यक्ति, समाज व विश्व की शांति रही हुई है तथा शांति के शुभ्र वातावरण में ऊँचे-से-ऊँचा

आध्यात्मिक विकास भी सबके लिए सरल बन सकता है। अतः विचारों की उदारता, पवित्रता, शांतिपूर्ण प्रेरणा की जागरूकता के लिए आज स्याद्वाद के सिद्धान्त को बडी बारीकी से समझने, परखने व अमल मे लाने की विशेष आवश्यकता आ पड़ी है, जिसके लिये मैं आशा करूं कि सब तरफ से उचित प्रयास अवश्य किये जायंगे।'

आगम संशोधक के रूप में

दिल्ली के इस ऐतिहासिक चातुर्मास में पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा अस्वस्थ होते हुए भी अहर्निश आत्मकल्याण एवं समाजहित मे जुटे रहे। कॉन्फरेंस की 'हंसराज जिनागम प्रकाशन योजना' द्वारा प्रकाशित होने वाले आगमों का संशोधन कार्य किया। आचार्यश्री आहार-पानी एवं स्वास्थ्य की चिन्ता न करते हुए इस महत्त्वपूर्ण कार्य के लिए सतत सन्नद्ध रहे। आगामों के अनुवाद, संशोधन में आपने अगम ज्ञान का भरपूर उपयोग किया। वैसे पन्नवणा सूत्र, जीवा जीवाभिगम सूत्र एवं जम्बूद्वीप पन्नति सूत्र का समग्र रूप से सम्पादन कार्य रतलाम चातुर्मास (सन् 48) के पूर्व ही सम्पन्न हो चुका था। धीरजभाई के तुरखिया ने तीनों अनूदित कृतियों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। अत्यन्त परिताप की बात है कि वे तीनों श्लाघनीय कृतियाँ, जिनमें आचार्यश्री ने अथाह ज्ञानराशि प्रगट की, आज अनुपलब्ध हैं। जिस दिन वे कृतियॉ उपलब्ध/प्रकाशित होंगी, समग्र जैन समाज ही नहीं, साहित्यिक जगत् चमत्कृत हुए बिना नहीं रहेगा।

दया-दान प्रचारक संघ का सम्मेलन

23 एवं 24 अगस्त, 50 को महावीर भवन, चाँदनी चौक मे जैन समाज के अग्रगण्य विद्वानों और श्रीमन्तों का सम्मेलन हुआ। सम्मेलन में 'दया-दान प्रचारक संघ' की योजनाओं पर विचार किया गया। इस सम्मेलन में मुम्बई धारासभा के स्पीकर तथा अ.भा.श्वे.स्था.जैन कॉन्फरेंस के अध्यक्ष श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया एवं अनेक राष्ट्र-नेताओ ने भी उपस्थिति दर्ज कराई।

इस अवसर पर श्री जैन हितेच्छु श्रावक मण्डल, रतलाम एवं दया-दान प्रचारक संघ, दिल्ली आदि संस्थाओं की ओर से भी फिरोदियाजी को अभिनन्दन-पत्र भेंट कर सम्मानित किया गया।

पूज्य आचार्यश्री का 24 अगस्त को संघ प्रमुखों एवं विशाल जनसमूह की उपस्थिति में सदाशयतापूर्वक प्रभावक वक्तव्य हुआ। वक्तव्य का सारांश इस प्रकार है-

पूज्यश्री का संघ-ऐक्य पर वक्तव्य

एकता की आधारभूमिका का निर्माणकार्य पिछले कई वर्षों से चल रहा है। इसे संपन्न करने के लिये अनेक प्रभावशाली आचार्यों ने प्रयास किये हैं, महासम्मेलन और अनेक संमेलन हुए हैं, समाज के कार्यकर्ताओं ने शक्ति-भर प्रयत्न किये हैं, किन्तु आज भी हमारा संघ उस एकता को प्राप्त नही कर सका। फिर भी यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि अतीतकाल से प्रयत्नों के फलस्वरूप आज संघ के प्रत्येक हितैषी और विवेकशील व्यक्ति के अन्तःकरण में एकता की भावना उत्पन्न हो चुकी है और पिछले प्रयासों ने एकता और संगठन के भव्य प्रासाद की नींवं का काम किया है। मगर इन प्रयासों की पूरी सफलता उनके सहयोग पर निर्भर है जिनके लिये ये किये जा रहे हैं।

इस सम्बन्ध में मैं अपनी सम्मति अनके बार प्रकट कर चुका हूँ और आज फिर दोहराना चाहता हूं कि श्रीसंघ के सदस्य और सेवक के नाते मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि *श्रीसंघ में सुव्यवस्थित एकता उत्पन्न हो, जिससे संघ की शक्ति केन्द्रित होकर प्रबल बने* साधुता का स्तर ऊँचा उठे और जनता की धर्म-भावना और श्रद्धा दृढ़ हो। हमें दूसरो की शिथिलता देखकर संतोष नहीं मानना चाहिये, बल्कि सम्पूर्ण साधुमार्गी समाज को द्रव्य, क्षेत्र, काल के अनुरूप आदर्श चरित्रशीलता का विकास करना और किसी भी प्रकार की शिथिलता को असह्य मानना चाहिये। इस ध्येय को समक्ष रखते हुए मै निम्नलिखित घोषणा करना आवश्यक समझता हूँ :

1. किसी भी सम्प्रदाय के साधु में साधुत्व की जिसको प्रतीति-विश्वास हो, उन महापुरुषों को वन्दना-व्यवहार, सेवा-भक्ति करने में किसी भी श्रावक-श्राविका को परहेज नहीं करना चाहिए और न ऐसी साम्प्रदायिक भावना ही रखनी चाहिये।

2. साधुता का समुचित आदर न करना संघ के गौरव का अपमान है। भगवान् महावीर की आज्ञा का उल्लंघन है।

3. अखिल भारतीय साधु-सम्मेलन को, जिसके निकट भविष्य मे होने की योजना की जा रही है, सफल बनाने के लिये श्रावक-श्राविका को और साथ ही संतों और सतियो को भी यथायोग्य सहयोग देना और उसके लिये शुद्ध हृदय से अनुकूल वातावरण का निर्माण *करना हम सब का पवित्र कर्तव्य है।*

4. व्यक्तिगत मनोमालिन्य को समाज के किसी कार्य में आडा न आने दें। हम सब धार्मिक बन्धु एक हैं और हमारा श्रावकसंघ एक है, यह दृष्टिकोण प्रत्येक को अपने सामने रखना चाहिये।

संघ की एकता में मेरा पूर्ण सहयोग है। मै हृदय से चाहता हूँ कि साधुमार्गी समाज के मुनिगण एक समाचारी बनाकर शीघ्र एक आचार्य के नेतृत्व में आवें और पृथक्-पृथक् शिष्य परम्परा की खतरनाक परिपाटी को त्याग कर स्थायी और सुदृढ एकता का आदर्श उपस्थित करें। मैं स्पष्ट शब्दों में प्रकट कर देना चाहता हूं कि ऐसी स्थायी और दृढ़ एकता के लिये मैं अपनी आचार्य पदवी को त्याग देने के लिये पहले भी तैयार रहा हूँ और आज भी तैयार हूँ।

मैं संघ का कल्याण चाहता हूँ। स्वेच्छाचार, शिथिलाचार को रोक कर संघ को सबल और उच्च चरित्रशील बनाने के लिये संघ-ऐक्य की योजना को सफल बनाने की सद्भावना का मैं स्वागत करता हूँ और सहयोग देने की प्रेरणा करता हूं।

वक्तव्य की सर्वत्र सराहना

आचार्यश्री के इन विचारों से सम्पूर्ण स्थानकवासी समाज में प्रसन्नता की लहर व्याप्त हो गई। कॉन्फरेंस-प्रमुख श्री खीमचन्द बोरा ने (जैन प्रकाश, पृ. 348, 5.10.50) लिखा– सामान्य मान्यतानुसार स्थानकवासी जैन समाज के 32 संप्रदायो (अब केवल सत्ताईस) में स्व. पूज्यश्री जवाहरलालजी सम्प्रदाय अधिक व्यवस्थित और प्रगतिशील मानी जाती है। संघ-ऐक्य योजना का इस संप्रदाय ने हार्दिक समर्थन किया, इतना ही नहीं, परन्तु तात्कालिक योजना की कतिपय कलमों का अमल भी सबसे पहले इस सम्प्रदाय ने शुरू किया था। तात्कालिक योजना की कलम नं. 6 "सांप्रदायिक मंडल या समितियां मिटा दी जायं"– इसके अनुसार इस संप्रदाय ने सांप्रदायिक प्रवृत्तियों तथा अपनी तरफ से प्रकट होने वाले 'निवेदन पत्र' को बंद कर संघ-ऐक्य योजना का पूरा साथ दिया है। इसके अलावा भी इस सम्प्रदाय के वर्तमान पूज्य, जो कि प्रगतिशील विचारो वाले हैं, श्री गणेशलालजी म. ने ता. 24 अगस्त को दिल्ली में एक प्रवचन द्वारा संघ-ऐक्य योजना के संबंध में जो अपने हार्दिक उद्गार प्रकट किये हैं। वे उल्लेखनीय हैं।

कितने पवित्र और हार्दिक उद्गार हैं ये !

शरीर के प्रति निरपेक्ष आचार्यश्री

दिल्ली चातुर्मास में सन्तों और श्रावकों ने विविध प्रकार की तपस्याएं कीं। श्री टीकमचन्दजी जैन ने 17 सितम्बर को 52 दिन की कठिन तपस्या कर आदर्श प्रस्तुत किया। इतनी तपस्या में भी व्याख्यान-श्रवण, वांचन, सामायिक, प्रतिक्रमण आदि दैनिक क्रियाएं नियमित चालू रही तथा धर्मप्रभावना के आयोजनों से चातुर्मास-समय समाप्त हुआ। आचार्यश्रीजी पूर्ण रूप से निरोग नहीं हुए थे। दिल्ली श्रीसंघ और चिकित्सकों ने साग्रह निवेदन किया

कि रोग निर्मूल नहीं हुआ है और जब तक उपचार पूरा नहीं हो जाता, आपश्री दिल्ली में ही विराजें। यहां उपचार के अच्छे-से-अच्छे साधन और विशेषज्ञ हैं और आपरेशन कराये बिना रोग दूर नहीं होगा, अतः आपरेशन कराने की स्वीकृति दीजिये।

पूज्य आचार्यश्रीजी ने उत्तर में फरमाया कि यह शरीर तो क्षणभंगुर है, इसकी कितनी भी संभाल करें तो भी नष्ट होगा। यदि कुछ कष्ट भी सहना पड़े तो कोई हर्ज नहीं, किन्तु ऑपरेशन कराने की इच्छा नहीं है। व्यर्थ ही इस शरीर के निमित्त संयम-साधना में व्यवधान नहीं डालना चाहिये। जितने दिन इस शरीर का उपयोग होगा, सो हो जायेगा।

यह है विरागियों की वीतरागता। वे आत्मोपलब्धि को सर्वोपरि मानते हैं। वे अपने संयम-तप-त्यागमय जीवन, निरीहवृत्ति एवं उपदेशों से सुख-शांतिप्रद वातावरण का निर्माण करते हैं। ऊपरी तौर पर देखने से कुछ भी प्रतीत नहीं होता है, लेकिन वे जो निर्माण करते हैं वह आंतरिक होता है और उसकी नींव गहरी, दृढ़ और स्थायी होती है। मानव-जाति के सबल और व्यापक संस्कारों का निर्माण सन्तों की बदौलत हुआ है। सन्त चलते-फिरते शिक्षा केन्द्र हैं, विश्वकोष हैं और स्वत:प्राप्त विशुद्ध परामर्शदाता हैं। वे तीर्थरूप होकर तिरने वाले को तैरने का बोध कराते हैं, तिन्नाणं तारयाणं हैं।

दिल्ली के उपनगरों में मुनियों से मिलन

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् कुछ दिनों तक दिल्ली के विभिन्न उपनगरों में विराजे। जब सदर बाजार पधारे तब वहां पर पंजाब सम्प्रदाय के सन्त स्थविर मुनिश्री भागमलजी म., मुनिश्री तिलोकचन्दजी म. आदि विराजते थे। उनसे आचार्यश्रीजी म.सा. का मिलन हुआ। उसी अवसर पर स्थविर मुनिश्री भागमलजी म. के पास होने वाली एक वैरागी भाई की भागवती दीक्षा आचार्यश्रीजी म.सा. के मुखारविन्द से सम्पन्न हुई। इसी तरह पंजाब की प्रसिद्ध महासतीश्री पन्नादेवीजी म. की सतियों के पास होने वाली एक बहिन भागवती दीक्षा भी आचार्यश्रीजी म.सा. के द्वारा सम्पन्न हुई।

अयोग्यों को दीक्षा देना अपराध है

दीक्षा सम्पन्न होने के पश्चात् दिल्ली के एक लालाजी करीब 13-14 वर्ष के एक लड़के को लेकर सेवा में उपस्थित हुए और कहने लगे कि मुझे एक चेला भेंट करना है, आप इसको ग्रहण कीजिये। तब आचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि यदि दीक्षा लेने वाला दीक्षार्थी स्वतः दीक्षा लेने की भावना से आता है तो सबसे पहले उसकी भावना की परीक्षा ली जाती है और संयम की योग्यता मालूम होने पर उसके संरक्षकों की आज्ञापूर्वक दीक्षा दी जा सकती

है। लेकिन इस तरीके की भेंट नही ली जाती है। इसी तरह दूसरे भी पांच-सात व्यक्तियों ने दीक्षा ग्रहण करने के भाव व्यक्त किये, लेकिन कसौटी पर खरे नहीं उतरने से आचार्यश्रीजी म.सा ने दीक्षा नही दी।

अलवर संघ को चातुर्मास की स्वीकृति

सं. 2007 का चातुर्मास अलवर होना था, लेकिन शारीरिक कारणवश दिल्ली विराजना पड़ा था। इससे अलवर के नागरिको को कुछ निराशा भी हुई, किन्तु परिस्थिति को देखते हुए उन्हें निराशा मे भी विश्वास की एक किरण दिखाई दे रही थी कि आचार्यश्रीजी म.सा. स्वस्थ रहेंगे तो आगामी वर्ष अवश्य ही चातुर्मास होना संभव है।

अलवर श्रीसंघ को पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. के स्वास्थ्य-सुधार से संतोष था। अत. पुन. आगामी वर्ष का चातुर्मास अलवर करने की विनती लेकर सेवा मे उपस्थित हुआ और पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. ने द्रव्य-क्षेत्र आदि को ध्यान में रखते हुए विविध आगारों के साथ सं. 2008 का चातुर्मास अलवर में करने की स्वीकृति फरमाई।

अलवर की ओर विहार करने के लिये आचार्यश्रीजी म.सा. सब्जीमण्डी से विहार कर नई दिल्ली पधारे। वहां पर उपस्थित सब्जीमण्डी, सदर बाजार, चांदनी चौक, दिल्ली तथा आस-पास के क्षेत्रों के सैकडो भाई-बहिनों के समक्ष आचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि परिस्थितिवश मुझे दिल्ली क्षेत्र में रहना पडा और रोगशमन के लिये जहां तक हो सका, निर्दोष उपायों का अवलम्बन लिया गया। फिर भी डाक्टरों को दिखाना, जांच करवाना आदि लाचारीवश संयमी मर्यादा में लगे दोषों का मैं प्रायश्चित्त ग्रहण करता हूँ।

आचार्यश्रीजी म.सा. की संयम-मर्यादा के प्रति निष्ठा और जागृति देखकर उपस्थित दिल्ली श्रीसंघ और दूसरे-दूसरे श्रीसंघो के सदस्यों पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा। वहां के बुजुर्ग कहने लगे कि विशेष दोष नही लगने पर भी जनता के समक्ष यत्किंचित् दोषों का भी शुद्धिकरण करके प्रायश्चित्त ग्रहण करना, हमारे दिल्ली नगर के लिये यह पहला ही अवसर है।

अलवर चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश और कठिन परिश्रम

औषधोपचार से यद्यपि रोग उपशांत हो गया था और आचार्यश्रीजी म.सा. विहार भी करने लगे थे, फिर भी पैदल चलने से पुनः रोग उभर आया। लेकिन रोगजन्य वेदना को समतापूर्वक सहन करते हुए सं. 2008 के चातुर्मास के निमित्त यथासमय अलवर पधार गये।

अलवर श्रीसंघ ने अगवानी करते हुए नगर-प्रवेश कराया। शारीरिक अस्वस्थता के

कारण आचार्यश्रीजी म.सा. को विश्राम करने की जरूरत थी, किन्तु दर्शनार्थियों के आने-जाने, प्रातः प्रवचन, मध्याह्न वांचणी और सायंकाल तत्त्वचर्चा में अधिकांश समय लगने से विश्राम करने के लिये अवकाश नहीं मिलता था। यद्यपि अलवर के स्वच्छ जलवायु का स्वास्थ्य पर अनुकूल प्रभाव भी पडा, लेकिन अधिक परिश्रम के कारण रोग में वृद्धि के लक्षण दिखाई देने लगे। फिर भी पहले की तरह ही मुखमंडल पर मधुर मुस्कान और तपोपूत तेजस्विता झलकती रहती थी।

अलवर-नरेश प्रवचन-श्रवण कर प्रभावित

पूज्य आचार्यश्रीजी के प्रतिदिन प्रवचन महावीर भवन में होते थे। जिनका लाभ आबाल-वृद्ध श्रोतागण उठाते थे। एक दिन अलवर के नरेश ने स्थानीय श्रीसंघ के प्रमुख सज्जनों के द्वारा आचार्यश्रीजी की सेवा में निवेदन करवाया कि आचार्य महाराज महलों में पधार कर हमें दर्शन और सेवा का अवसर प्रदान करें और दो शुब्द सुनावें।

उक्त भावना को सेवा मे निवेदन किये जाने पर आपश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि अलवर-नरेश की धर्मभावना एवं साधु-सन्तों के प्रति आदरभाव प्रशंसनीय है। लेकिन मेरे लिये तो राजा और रंक सभी समान हैं। किसी विशिष्ट स्थिति के अतिरिक्त वर्तमान स्थान को छोड़कर अन्यत्र जाने-आने की भावना नहीं रखता हूँ और इससे अन्य व्यक्तियों को भी असुविधा हो सकती है। दूसरों के साथ अलवर-नरेश भी यहां पर धर्म-लाभ ले सकेंगे।

ऐसा स्पष्ट उत्तर वही दे सकते हैं जो मानापमान की अनुभूति से उदासीन हैं और जिनको किसी से कोई आकांक्षा नहीं है। वे तो जलकमलवत् संसार में रहकर निर्लिप्त भाव से विचरण करते रहते हैं। सन्तों की महिमा महान् है। इन महापुरुषों के बारे में कहा गया है-

चाह गई चिन्ता मिटी, मनुआ बेपरवाह।
जिनको कछु न चाहिये, वे शाहन के शाह।।
अरि-मित्र, महल-मसान, कंचन-कांच, निन्दन-थुतिकरन।
अर्धावतारन, असिप्रहारन में सदा समता धरन।।
जग-सुहितकर सब अहितहर श्रुति-सुखद सब संशय हरें।
भ्रमरोगहर जिनके वचन मुखचन्द्रतें अमृत झरें।।
लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे महा।
समो निंदापसंसासु तहामाणावमाणओ।।

पूज्य आचार्यश्रीजी की भावना का संकेत अलवर-नरेश को करा दिया और उन्होंने विजयादशमी (दशहरा) के दिन स्वयं महावीर भवन में आकर प्रवचन-श्रवण का लाभ उठाया।

संघ-ऐक्य के लिए पूज्यश्री ने कुछ शर्तें रखीं

समाज की धर्मकरणी के आधार संत-सतियांजी म. को एक आचार्य के नेश्राय में ही वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के नाम से संगठित देखने की चतुर्विध श्रीसंघ उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। वैसे तो एकता सम्बन्धी प्रयत्नों का सूत्रपात पूज्य आचार्यश्री *जवाहरलालजी म.सा. के समय सन् 1933 से ही हो चुका था और ये प्रयत्न उसी के आगे* की कड़ी थे।

संगठन के प्रयत्नों में वेग लाने की दृष्टि से श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के एक शिष्टमंडल ने पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर एक गांव मे एक चातुर्मास होने की विनती की थी और परीक्षण के रूप में तीन वर्ष तक आचार्यश्रीजी ने अपनी ओर से ऐसा करने की स्वीकृति फरमा दी थी। फलस्वरूप शिष्टमंडल को निकट भविष्य में पुनः श्रमण-सम्मेलन होने के कुछ-कुछ आसार दिखाई देने लगे थे और इस सम्बन्ध में शिष्टमंडल ने अन्यान्य मुनिराजों से परामर्श करके प्रारूप तैयार किया।

संगठन विषयक प्रारूप तैयार हो जाने के पश्चात् पुनः श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस का शिष्टमंडल साधु-सम्मेलन के बारे में निश्चित प्रस्ताव लेकर 23-10-51, मंगलवार को पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में उपस्थित हुआ और अपने कार्यों का विवरण बताया।

शिष्टमण्डल में श्री धीरजभाई के. तुरखिया, चिमनलाल पोपटलाल शाह, वनेचन्दभाई दुर्लभजी झवेरी, छोटालाल पालावत, इन्द्रचन्द संचेती आदि प्रमुख सभ्य थे। श्री वनेचन्दभाई दुर्लभजी झवेरी ने वक्तव्य देते हुए कहा— कॉन्फरेंस के डेप्यूटेशन ने अपने मे सम्मिलित होने के लिये मुझे दिल्ली से तार किया अतः मैं यहाँ आया हूँ, परन्तु ऐक्य-योजना के कार्य के लिए पूज्यश्री गणेशलालजी म. के पास आने की मेरी कोई खास आवश्यकता नहीं रहती है। क्योंकि पूज्यश्री संघ-ऐक्य योजना में सम्पूर्ण साथ दे रहे हैं। तात्कालिक योजना की हरएक कलम का आपने पूर्ण पालन किया है और उसे मूर्त स्वरूप देने के कार्य में सहयोग देने के लिए उत्सुक भी हैं। क्योंकि पूज्यश्री समझते हैं कि आज जो शिथिलता देखी जा रही है, उसका रामबाण इलाज संघ-ऐक्य योजना ही है।

पूज्यश्री ने किसी भी तरह की चर्चा किये बिना ही संघ-ऐक्य योजना के लिए स्वीकृति

प्रदान की है। पू. आचार्यश्री जवाहरलालजी म. की भी ऐसी ही भावना थी और पूज्यश्री गणेशलालजी म. भी संघ-ऐक्य योजना को शीघ्र ही कार्यरूप में देखने के लिए उत्सुक हैं।

कई मुनिराज यह समझते हैं कि संघ-ऐक्य होगा तो हमारा वर्चस्व कम हो जायगा, अतः वे संघ-ऐक्य योजना के कार्य में अन्तराय डाल रहे हैं। परन्तु जिनको यह भय होवे, भले ही अभी बाकी रहें। हिंद को एक और अविभाज्य बनाने का कार्य जब सरदार वल्लभभाई पटेल ने हाथ में लिया था तब भोपाल, हैदराबाद जैसे राज्य सम्मिलित नहीं हुए थे। परन्तु सरदार ने इनको अलग रखकर भी ऐक्य का काम आगे बढ़ाया। अन्त में ये बचे हुए राज्य भी अपने-आप सम्मिलित हो गये। ऐसा ही ध्येय संघ-ऐक्य योजना के लिए भी रखा जायगा तो वह शीघ्र ही अमल में आ सकेगी। जो अभी सम्मिलित नहीं हो रहे हैं वे आगे चलकर अवश्य मिल जायेंगे। परन्तु उनकी वजह से ऐक्य की गति धीमी करना इच्छनीय नहीं है। क्योंकि आज युवकवर्ग में श्रद्धा कम होती जा रही है। आज की साम्प्रदायिकता और इससे होने वाली गतिविधियों से उनको नफरत होती है। फलस्वरूप वे धर्मस्थानकों और मुनिराजों से दूर होते जा रहे हैं। यदि उनमें पुनः श्रद्धा पैदा करनी हो और श्रमण-संघ का गौरव बढ़ाना हो तो संघ-ऐक्य योजना को अमली रूप देना अत्यावश्यक है।"

शिष्टमण्डल के प्रयत्नों के लिये अपनी प्रसन्नता व्यक्त करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि एक समाचारी, एक शिष्य-परम्परा तथा एक के हाथ में प्रायश्चित्त आदि व्यवस्था और एक आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्वियां साधना करने की भावना रखते हैं तो मैं और मेरे नेश्राय में रहने वाले साधु-साध्वी संघ-ऐक्य के लिये अपने-आप को विलीन करने में सर्वप्रथम रहेंगे। आपश्री के हृदय के संघ-ऐक्य की भावनाएं हिलोरें ले रही थीं अतः अलवर में उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ के समक्ष अपनी महत्त्वपूर्ण घोषणा करते हुए फरमाया--"मुझे किसी संप्रदाय-विशेष के प्रति न मोह है, न ममता है और न लगाव है। संत-जीवन ममता-विहीन होना चाहिये। किन्तु अपने कर्तव्यपालन के लिये संप्रदायान्तर्गत कार्यरत रहना पड़ता है। यदि एक आचार्य की नेश्राय में एक समाचारी आदि का निर्णय करते हुए संयम-साधना के पथ पर चारित्रिक दृढ़ता के साथ अग्रसर होने की स्थिति के योग्य कोई संगठन बनता है तो मैं प्रथम मुनि होऊंगा जो अपनी आचार्य पदवी को छोड़कर संगठन के अधीन चतुर्विध संघ की सेवा करने के लिये सहर्ष तत्पर रहूँगा। जो निष्ठा पूज्य गुरुदेव श्रीमज्जवाहराचार्य के हृदय में विद्यमान थी, वही निष्ठा मेरे मानस में रम रही है।

"आज की शिथिलता दूर करनी हो तो संघ-ऐक्य योजना अमल में आनी ही चाहिये, ऐसा मैं मानता हूँ। दूसरे समाज को मूर्ति का आधार है परन्तु हमारे समाज को तो एक ही आधार है साधु-साध्वियों का। इस वर्ग में आज शिथिलता दिखाई दे रही है। इसका रामबाण

इलाज संघ-ऐक्य योजना है, जो यदि अमल में नहीं आवे तो श्रावक-श्राविकाओं की श्रद्धा कम हो जायगी। श्रावकों की श्रद्धा घटने पर फिर कोई दूसरा ऐसा आधार नहीं कि जिससे वे अपना विकास कर सकें। स्थानकवासी समाज साधु-साध्वियों के चारित्र बल पर ही टिका हुआ है। जिस परिमाण में साधु-साध्वियों का चरित्रबल उन्नत बनेगा, उसी परिमाण में समाज अपना विकास भी कर सकेगा। इसलिए साधु-साध्वियों में रही हुई शिथिलता को दूर करने ाली और चारित्रबल को बढाने वाली संघ-ऐक्य योजना को वेग देने की आवश्यकता है। उसे शीघ्रातिशीघ्र मूर्तरूप देने में ही स्था. समाज का उत्कर्ष रहा हुआ है।

"आज यह कहा जाता है कि जैन समाज की संख्या घटती जा रही है। स्था. समाज की संख्या 5-7 लाख के लगभग होगी। इसका कारण एक ही है– सांप्रदायिकता और उससे चलने वाली शिथिलता। नहीं तो 5 लाख से 50 लाख बनने में क्या देर लग सकती है ? साधु-साध्वियो के चारित्रबल को इंद्र भी नमस्कार करता है। यदि जैन धर्म के साधु-साध्वियो का ऐसा चारित्र हो तो उस धर्म की संख्या बढ़ने में क्या देर लग सकती है ?

"अब मैं संघ-ऐक्य योजना के लिए दो शब्द कहूंगा। पहले तो मुझे यही कहने का है कि सभी संप्रदायों को एक श्रमण संघ में विलीनीकरण करने का कार्य जितना आवश्यक है उतना गंभीर भी है। एक श्रमण संघ को 'मूर्ति' जैसा आचार्य नहीं चाहिये। उसके लिए त सरदार पटेल जैसे निश्चयी और दृढ आचार्य की आवश्यकता होगी। आचार्य उसमें छोटा या बडा, यह प्रश्न गौण है, जो भी आचार्य चुने जायें, उन की आज्ञा में रहना सबका कर्तव्य हो जाता है।

"अन्त में, मैं इतना ही कहूँगा कि संघ में कलह पैदा करना या संगठन के कार्य मे अंतराय खड़ी करना, भगवान् ने सबसे बडा पाप बताया है। दूसरे सभी पाप इस पास से छोटे हैं। चौथा व्रत खंडित हो तो नई दीक्षा देकर साधु को शुद्ध किया जा सकता है, परन्तु संघ की शांति और एकता का भंग कर संघ में अशांति तथा अनैक्य फैलाने वाला, संघ को छिन्न-भिन्न करने वाला दसवें प्रायश्चित्त का अधिकारी कहा गया है। इससे विपरीत चतुर्विध संघ के संगठन के कार्य में सहयोग देने वाला तीर्थंकर गोत्र भी बांध सकता है।

"घडी चार बजा रही है, वह भी मानो बजकर कह रही है कि संघ-ऐक्य योजना सफल हो। मैं एकता का अनुयायी हूं, एकता के कार्य में हमेशा से सहयोग देता आया हूँ और ऐसे कार्य में भविष्य में भी हमेशा सहयोग रहेगा। इससे अधिक मुझे और कुछ कहना नहीं है।"

उक्त घोषणा की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए शिष्टमंडल एवं उपस्थित चतुर्विध संघ ने अभिनन्दन किया। दूसरे दिन शिष्टमण्डल खेताजी महाराज की सम्प्रदाय की महासतीश्री मानकुंवरजी म. के पास गया और उनसे भी इस विषय में सूक्ष्म चर्चा की। महासती ने

संघ-ऐक्य की आवश्यकता बताई। महासती की विचारशक्ति के प्रति प्रतिनिधिमण्डल अत्यधिक प्रभावित हुआ। महासती भी जवाहराचार्य के क्रान्ति-विचारों से अनुप्राणित थी।

रोग का पुनः भयंकर आक्रमण

चातुर्मास का समय धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हो रहा था। लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन विषम बनती जा रही थी। जिस समय आप लघुशंका से जैसे-तैसे निवृत्त होकर उठते तो शरीर पसीने से सराबोर हो जाता था और मालूम पड़ता था कि स्नान के बाद जैसे शरीर पोंछना बाकी हो। बूंद-बूंद कर पेशाब निकलता था, लेकिन असह्य वेदना होते हुए भी मुख पर पीड़ा की रेखा तक नहीं दिखती थी।

रोग की इस विषम स्थिति से संतों और श्रीसंघ की चिन्ता का पार नहीं था। अतः अलवर श्रीसंघ ने निश्चय किया कि रोगोन्मूलन के लिये तत्काल आपरेशन करवाया जाये। राजकीय चिकित्सालय के प्रमुख शल्यचिकित्सक एवं अन्य प्रमुख चिकित्सको ने तो पहले ही निर्णय कर दिया था कि शल्यक्रिया शीघ्रातिशीघ्र हो जानी चाहिये। इसके लिये जितनी देरी होगी, उससे जीवन को खतरा है।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. निर्दोष उपचार के लिये तो तैयार थे और शल्यचिकित्सा जैसे उपचार से बचना चाहते थे। इस सम्बन्ध में आप फरमाया करते थे– भोले-भाइयो ! कर्मों की व्याधि का मूल इस आपरेशन से निर्मूल होने वाला नहीं है। कर्मव्याधि का मूल बहुत गहरा है, उसका उन्मूलन ये डाक्टर नहीं कर सकेंगे। हां, ये शारीरिक व्याधि को मिटाने में निमित्त हो सकते हैं, लेकिन कर्मों को मूल से उखाड़ने के लिये तो आत्म-पुरुषार्थ की जरूरत है। आत्मा में पैठे हुए दोषजनक तत्त्वों को निकाल कर फेंकना होगा। अतः ऑपरेशन के बिना ही अगर काम चलता हो तो चला लेना चाहिये।

संघ की साग्रह विनती मानकर ऑपरेशन की स्वीकृति दी

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. अपनी शारीरिक व्याधि के लिये जितने उदासीन थे, उतनी ही अलवर श्रीसंघ एवं बीकानेर, रतलाम, ब्यावर आदि-आदि अन्यान्य नगरों और ग्रामों के उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। अतः इस जटिल स्थिति से चिन्तित अलवर श्रीसंघ ने उस समय उपस्थित अग्रणी श्रावकों की सभा का आयोजन किया। सभा में स्थिति की विषमता पर विचार कर सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि आचार्यश्रीजी के विचार संयम-साधना के अनुरूप हैं, लेकिन आचार्यश्रीजी का जीवन एवं शरीर श्रीसंघ के लिये अमूल्य है और उन पर श्रीसंघ का अधिकार है। अतः हम सब अपने दायित्व को लक्ष्य

में रखते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में निवेदन करें कि संघहितार्थ आप अपना शरीर संघ को समर्पित कर देने की कृपा करें, जिससे संघ जैसा उचित समझे वैसी व्यवस्था कर सके।

संघ के विनम्र निर्णय को पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित किया गया तो संघ के आग्रह और युक्तियों को ध्यान में रखते हुए आपने वैसा ही उत्तर दिया जैसा आपके गुरुदेव स्व. पूज्य जवाहराचार्य ने भीनासर मे दिया था। उन्होंने फरमाया था— इस शरीर पर संघ का भी अधिकार है, यह शरीर मेरा अकेले का नहीं है, श्रीसंघ का भी है। श्रीसघ की जो इच्छा हो, वही कर सकता है। मुझे अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहना है।

आचार्यश्रीजी की कितनी महानता थी कि श्रीसंघ के आग्रह के समक्ष अपना अस्तित्व गौण कर लिया और संघ की इच्छा का तिरस्कार नहीं किया। श्रीसंघ ने समग्र परिस्थिति का गम्भीरता से विचार कर ऑपरेशन करवाना तथा भारत के सुप्रसिद्ध सर्जन व पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के जलगांव में किये गये ऑपरेशन से श्रीसंघ के विश्वासपात्र डा. श्यामराव रामराव मूलगांवकर मुंबई से आपरेशन कराना तय किया।

सभी उपस्थित सज्जन इस अवसर पर अपनी-अपनी सेवाएं देने के लिये आग्रह कर रहे थे, लेकिन बीकानेर निवासी दानवीर सेठ श्री गोविन्दरामजी भीखमचन्दजी भंसाली की विनम्र विनती और निवेदन पर श्रीसंघ ने श्री भंसालीजी को लाभ-प्राप्ति की स्वीकृति दी। इस महान् सुअवसर की प्राप्ति होने से श्री भंसालीजी के हर्ष का पार न रहा और श्रीसंघ ने अभिनन्दन करते हुए अपना प्रमोद व्यक्त किया।

ऑपरेशन से पूर्व संघ के समक्ष नम्र निवेदन

आपरेशन गम्भीर था। डा मूलगांवकर से संपर्क स्थापित कर समय निश्चित हो चुका था और देश के कोने-कोने में इसकी जानकारी हो जाने से दर्शनार्थियों का अलवर आने का तांता लग गया। इस अवसर पर बाहर गांव से 300 संघ प्रमुख प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित हो चुके थे। स्थिति की गम्भीरता से सभी के चेहरों पर चिन्ता झलक रही थी। अलवर निवासियों के द्वार आगत बन्धुओं के लिये खुले थे और श्रीसंघ के कार्यकर्ता बडी तत्परता से प्रबन्ध कर रहे थे।

आपरेशन का दिन भी आ गया। डा. मूलगांवकर अपने अन्य चार सहयोगी डाक्टरों के साथ मुंबई से अलवर आ गये थे और उन्होंने राजस्थान के प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक डा. बांचू से मिलकर आपरेशन की तैयारी की। श्री महावीर भवन के एक कमरे में ही आपरेशन के लिये

संघ-ऐक्य की आवश्यकता बताई। महासती की विचारशक्ति के प्रति प्रतिनिधिमण्डल अत्यधिक प्रभावित हुआ। महासती भी जवाहराचार्य के क्रान्ति-विचारों से अनुप्राणित थी।

रोग का पुनः भयंकर आक्रमण

चातुर्मास का समय धार्मिक प्रभावना के साथ सम्पन्न हो रहा था। लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन विषम बनती जा रही थी। जिस समय आप लघुशंका से जैसे-तैसे निवृत्त होकर उठते तो शरीर पसीने से सराबोर हो जाता था और मालूम पडता था कि स्नान के बाद जैसे शरीर पोंछना बाकी हो। बूंद-बूंद कर पेशाब निकलता था, लेकिन असह्य वेदना होते हुए भी मुख पर पीड़ा की रेखा तक नहीं दिखती थी।

रोग की इस विषम स्थिति से संतों और श्रीसंघ की चिन्ता का पार नहीं था। अतः अलवर श्रीसंघ ने निश्चय किया कि रोगोन्मूलन के लिये तत्काल आपरेशन करवाया जाये। राजकीय चिकित्सालय के प्रमुख शल्यचिकित्सक एवं अन्य प्रमुख चिकित्सकों ने तो पहले ही निर्णय कर दिया था कि शल्यक्रिया शीघ्रातिशीघ्र हो जानी चाहिये। इसके लिये जितनी देरी होगी, उससे जीवन को खतरा है।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. निर्दोष उपचार के लिये तो तैयार थे और शल्यचिकित्सा जैसे उपचार से बचना चाहते थे। इस सम्बन्ध में आप फरमाया करते थे– भोले-भाइयो ! कर्मों की व्याधि का मूल इस आपरेशन से निर्मूल होने वाला नहीं है। कर्मव्याधि का मूल बहुत गहरा है, उसका उन्मूलन ये डाक्टर नहीं कर सकेंगे। हां, ये शारीरिक व्याधि को मिटाने में निमित्त हो सकते हैं, लेकिन कर्मों को मूल से उखाड़ने के लिये तो आत्म-पुरुषार्थ की जरूरत है। आत्मा में पैठे हुए दोषजनक तत्त्वों को निकाल कर फेंकना होगा। अतः ऑपरेशन के बिना ही अगर काम चलता हो तो चला लेना चाहिये।

संघ की साग्रह विनती मानकर ऑपरेशन की स्वीकृति दी

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. अपनी शारीरिक व्याधि के लिये जितने उदासीन थे, उतनी ही अलवर श्रीसंघ एवं बीकानेर, रतलाम, ब्यावर आदि-आदि अन्यान्य नगरों और ग्रामों के उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं की चिन्ता बढ़ती जा रही थी। अतः इस जटिल स्थिति से चिन्तित अलवर श्रीसंघ ने उस समय उपस्थित अग्रणी श्रावकों की सभा का आयोजन किया। सभा में स्थिति की विषमता पर विचार कर सर्वानुमति से निर्णय किया गया कि आचार्यश्रीजी के विचार संयम-साधना के अनुरूप हैं, लेकिन आचार्यश्रीजी का जीवन एवं शरीर श्रीसंघ के लिये अमूल्य है और उन पर श्रीसंघ का अधिकार है। अतः हम सब अपने दायित्व को लक्ष्य

में रखते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में निवेदन करें कि संघहितार्थ आप अपना शरीर संघ को समर्पित कर देने की कृपा करें, जिससे संघ जैसा उचित समझे वैसी व्यवस्था कर सके।

संघ के विनम्र निर्णय को पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित किया गया तो संघ के आग्रह और युक्तियों को ध्यान में रखते हुए आपने वैसा ही उत्तर दिया जैसा आपके गुरुदेव स्व. पूज्य जवाहराचार्य ने भीनासर में दिया था। उन्होंने फरमाया था— इस शरीर पर संघ का भी अधिकार है, यह शरीर मेरा अकेले का नहीं है, श्रीसंघ का भी है। श्रीसंघ की जो इच्छा हो, वही कर सकता है। मुझे अपनी ओर से कुछ भी नहीं कहना है।

आचार्यश्रीजी की कितनी महानता थी कि श्रीसंघ के आग्रह के समक्ष अपना अस्तित्व गौण कर लिया और संघ की इच्छा का तिरस्कार नहीं किया। श्रीसंघ ने समग्र परिस्थिति का गम्भीरता से विचार कर ऑपरेशन करवाना तथा भारत के सुप्रसिद्ध सर्जन व पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के जलगांव में किये गये ऑपरेशन से श्रीसंघ के विश्वासपात्र डा. श्यामराव रामराव मूलगांवकर मुंबई से आपरेशन कराना तय किया।

सभी उपस्थित सज्जन इस अवसर पर अपनी-अपनी सेवाएं देने के लिये आग्रह कर रहे थे, लेकिन बीकानेर निवासी दानवीर सेठ श्री गोविन्दरामजी भीखमचन्दजी भंसाली की विनम्र विनती और निवेदन पर श्रीसंघ ने श्री भंसालीजी को लाभ-प्राप्ति की स्वीकृति दी। इस महान् सुअवसर की प्राप्ति होने से श्री भंसालीजी के हर्ष का पार न रहा और श्रीसंघ ने अभिनन्दन करते हुए अपना प्रमोद व्यक्त किया।

ऑपरेशन से पूर्व संघ के समक्ष नम्र निवेदन

आपरेशन गम्भीर था। डा. मूलगांवकर से संपर्क स्थापित कर समय निश्चित हो चुका था और देश के कोने-कोने में इसकी जानकारी हो जाने से दर्शनार्थियों का अलवर आने का तांता लग गया। इस अवसर पर बाहर गांव से 300 संघ प्रमुख प्रतिष्ठित सज्जन उपस्थित हो चुके थे। स्थिति की गम्भीरता से सभी के चेहरों पर चिन्ता झलक रही थी। अलवर निवासियों के द्वार आगत बन्धुओं के लिये खुले थे और श्रीसंघ के कार्यकर्ता बड़ी तत्परता से प्रबन्ध कर रहे थे।

आपरेशन का दिन भी आ गया। डा. मूलगांवकर अपने अन्य चार सहयोगी डाक्टरों के साथ मुंबई से अलवर आ गये थे और उन्होंने राजस्थान के प्रसिद्ध शल्यचिकित्सक डा. वांचू से मिलकर आपरेशन की तैयारी की। श्री महावीर भवन के एक कमरे में ही आपरेशन के लिये

स्थान बनाया गया था। डा. मूलगांवकर ने पूज्य आचार्यश्रीजी की शरीर-परीक्षा की और आपरेशन की गम्भीरता को देखते हुए आवश्यक साधनों को एकत्रित कर लिया गया।

क्षण-क्षण और पल-पल करते-करते आपरेशन होने का अवसर भी आ गया। महावीर भवन के चारों ओर जनमेदनी का जमाव हो चुका था और जिधर भी देखो, उधर जनसमूह महावीर भवन की ओर आता दिखाई दे रहा था और वातावरण में निस्तब्धता छाई हुई थी।

आपरेशन स्थल पर प्रवेश करने से पूर्व पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. उपस्थित जनसमूह के सन्मुख पधारे। दर्शनार्थियों ने जयघोष करते हुए सविधि वंदना की और अपने नेत्रों को आचार्यश्रीजी के शांत, गम्भीर मुखमंडल पर केन्द्रित कर लिया। निस्तब्धता व्याप्त होने पर आचार्यश्रीजी म.सा. ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए फरमाया–

'आज चतुर्विध श्रीसंघ यहां उपस्थित है। पूर्वोपार्जित असातावेदनीय कर्म के उदय से शरीर मे रोग की उत्पत्ति हुई है, जिसे मैं समतापूर्वक सहन करके और तपस्यादि में प्रवृत्त होकर निर्जरामार्ग की ओर अग्रसर होना चाहता था, किन्तु चतुर्विध संघ की आज्ञा इसके अनुकूल न होने की जानकर, संघ की आज्ञा मानते हुए मैं शल्यचिकित्सा के लिये प्रस्तुत हो रहा हूँ। ऐसी परिस्थिति में मुझे क्रिया एवं दोषों का लगना अवश्यंभावी है। इसलिये मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि जब तक मैं इस प्रवृत्तिमार्ग से निवृत्त होकर प्रायश्चित्त न कर लूं और लगे हुए दोषों व क्रियाओं के लिये समुचित दंड ग्रहण न कर लूं, तब तक मुझे वंदन न करें। स्थिति गम्भीर है, इसलिये आपरेशन कराने के पूर्व मैं ज्ञात एवं अज्ञात अवस्था में अथवा संघहित के कार्यों में भी यदि मेरे किसी क्रियाकलाप से श्रावक, श्राविका, साधु, साध्वी-रूप चतुर्विध श्रीसंघ को किसी प्रकार क्लेश पहुंचा हो तो अन्तर्मन से सबसे क्षमत-क्षमापना करता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सब जीवन के इस कंटकाकीर्ण पथ पर भगवान् महावीर द्वारा प्रदर्शित अखंड ज्ञानज्योति को हृदयंगम कर शाश्वत सुख की ओर अग्रसर होते रहेंगे।

'मुझे जो-कुछ भी प्राप्त हुआ है वह सब गुरुदेव का प्रसाद है और समाज के सहकार का फल है। मैं गुरुदेव और समाज का ऋणी हूँ।'

पूज्य आचार्यश्री के उल्लिखित भाव श्रमणसंस्कृति की त्याग-प्रधान प्रकृति के प्रतीक थे। उनमें हृदय की अभिव्यक्ति, जैन-शासन की पावन परंपरा को अक्षुण्ण बनाये रखने की अभिलाषा और संतजनोचित उच्चकोटि की उदारता व्यक्त की गई थी।

उपस्थिति ने आचार्यदेव के शब्दों को सुना तो अवश्य था किन्तु हृदय थम न सका। अधिकांश के नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगी और कई-एक की आखें सूखी भी थीं तो मन की पीड़ा मन ही अनुभव कर रहा था और ऐसे ही वातावरण में निमग्न जनसमूह को छोड़ आचार्यदेव आपरेशन के लिये पधार गये।

प्रसन्नता के क्षणों में ऑपरेशन सफल हुआ

आपरेशन करने के पूर्व डाक्टरों ने आचार्यश्रीजी के शरीर व ह्रदय की धड़कन की पुन: परीक्षा की। डाक्टरों को यह सब करते देख आचार्यदेव ने स्मित हास्य किया। खातरी कर लेने के बाद आपरेशन प्रारम्भ हो गया। डाक्टरों के कुशल हाथ शारीरिक रोग-उन्मूलन के लिये चपलता से अस्त्रों से अठखेलियां करने लगे। रक्त की धारा बह निकली, किन्तु पूज्य आचार्यदेव सब-कुछ देखते हुए भी डाक्टरो से बातचीत कर रहे थे। मुख पर वेदना की रेखा तक नहीं थी। मानो देहातीत स्थिति में विचरण कर रहे हों।

अत्यधिक रक्तप्रवाह के अनुमान से डाक्टरों ने रक्त चढाना चाहा, किन्तु आचार्यदेव ने अपनी भावना व्यक्त करते हुए कहा कि यदि जीवन समाप्त होता हो, तो हो जाये, किन्तु इस नश्वर शरीर के लिए अन्य किसी जीव को कष्ट पहुंचाना मुझे अभीष्ट नहीं है। डाक्टरगण पहले ही आपकी सहनशीलता देखकर विस्मित हो रहे थे और इस बात ने तो उन्हें और भी आश्चर्य में डाल दिया। बेहोशी के लिये क्लोरोफार्म सूंघे बिना ही इतने गम्भीर ऑपरेशन के लिये तैयार हो जाना एक अलौकिक घटना ही थी। वस्तुतः महात्माओं का ह्रदय दूसरो के लिये तो फूल-सा होता है और अपने प्रति वज्र-सा कठोर।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणां चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।।

लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को परखना बडा ही कठिन है। एक ओर वे वज्र के प्रतिरूप प्रतीत होते हैं तो दूसरी ओर कुसुम से भी कोमल और फिर हमारे आचार्यदेव ने तो उस संस्कृति के वायुमंडल में सांसें ली थी जो विधान करती हैं-

अवि अप्पणो वि देहंमि नायरंति ममाइयं।

महात्मागण अपनी देह के प्रति भी ममता का भाव उत्पन्न नहीं होते देते। जिन्होंने काया को भी पराया समझ लिया और अपने शुद्ध आनन्दमय स्वरूप में अवगाहन कर लिया है, उन्हें संसार की कोई भी घटना व्यथा नहीं पहुंचा सकती है। जिनके सामने गजसुकुमार का उच्चतर आदर्श है, वे शारीरिक व्यथा से कब व्याकुल होते हैं ?

डाक्टरों ने सफलतापूर्वक 35 मिनिट में रोगाक्रान्त अवयव को निकाल लिया। आपरेशन सफल हुआ और सोत्सुक जनसमूह को सफलता के समाचार सुनाने के लिये हाथ में एक मांसग्रन्थि लेकर डाक्टर मूलगांवकर ने बाहर आकर कहा— महाराजश्री का ऑपरेशन सफल हो गया है। तेरह तोले की गांठ काटकर बाहर निकाल दी गई है। आश्चर्य है कि महाराजश्री

ने क्लोरोफार्म सूंघ कर बेहोश होना पसन्द नहीं किया। उनकी मानसिक शक्ति अजेय है, संकल्पबल विस्मयजनक है। मैंने कई लोगों के ऑपरेशन किये और बडे-बडे सहनशील व्यक्ति भी देखे, किन्तु इतने शक्तिशाली और सहिष्णु महापुरुष पहले कभी देखने में नहीं आये हैं।

इन शब्दों ने सुधा का सिंचन-सा कर दिया। गम्भीर और व्याकुल वातावरण हर्ष और उल्लासमय हो गया। तत्काल ही देश के समस्त श्रीसंघों की जानकारी के लिये आकाशवाणी, तार, टेलीफोन द्वारा ऑपरेशन की सफलता के समाचार प्रसारित कर दिये गये और अनेक व्यक्तियों ने हजारों रुपये दान में दिये।

आत्मशुद्धि हेतु प्रायश्चित्त ग्रहण

धीरे-धीरे घाव भर गया। शनैः-शनैः-कमजोरी दूर होने से शरीर में विहार करने योग्य शक्ति आ गई थी। आचार्यश्रीजी चाहते थे कि चिकित्सालय में हुए दोषों की आलोचना कर प्रायश्चित्त से लिया जाये। यद्यपि आचार्यश्रीजी स्वयं इस विधि-विधान के विज्ञ थे, फिर भी उन्होंने पंजाब संप्रदाय के आचार्यश्रीजी से आलोचना विधि मंगवाई। उन्होंने प्रत्युत्तर में लिखवाया कि आप स्वयं विज्ञ हैं, किन्तु यह आपकी महानता है कि मुझसे प्रायश्चित्त मंगवा रहे हैं। जिस स्थिति में आपने ऑपरेशन करवाया है, वह आपवादिक स्थिति है। ऐसी स्थिति में लगे हुए दोषों का शुद्धिकरण गुरु चौमासी तप (120 उपवास) का प्रायश्चित्त लेकर कर लेवें। लेकिन आचार्यश्री ने इससे भी भारी चार मास दीक्षाछेद का प्रायश्चित्त लिया।

विहार के समय आत्मोद्‌गार और प्रायश्चित्त की घोषणा

आचार्यश्रीजी शीघ्र विहार करना चाहते थे। समयक्रम से विहार का क्षण भी आ पहुंचा। महावीर भवन श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। काफी समय के पश्चात् श्रोताओं को प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति का अवसर प्राप्त हुआ था। सभी के मन वचन-माधुर्य से पूरित हो रहे थे। अतः प्रवचन परिसमाप्ति का संकेत ही न लग सका। आखिर तल्लीनता भंग हुई और सूने मन से श्रोतागण उठ खडे हुए।

सन्तमंडली से परिवेष्टित पूज्य आचार्यश्रीजी ने महावीर भवन से बाहर पदार्पण किया। 28 जनवरी, 52 का दिन। चारों ओर मायूसी। जनता ने जयघोष किया, लेकिन उसमें उमंग नहीं थी, उत्साह नहीं था, सिर्फ भावभरे हृदयों की अनुभूति का उच्छ्‌वास झलक रहा था।

अलवर से जयपुर की ओर विहार हुआ। नगरान्त का अंतिम विश्रामस्थल संस्कृत महाविद्यालय मे किया। अन्तिम प्रवचन सुनने का सौभाग्य आज ही मिलने वाला है, अतः अलवर श्रीसंघ के आबाल-वृद्ध नर-नारी महाविद्यालय के प्रांगण में एकत्रित हो गये।

आचार्यश्री ने जनमेदनी के सम्मुख अपना प्रवचन फरमाया और प्रवचन के अन्त में निम्नलिखित घोषणा की--

'आप सब लोगों को मालूम है कि रोगग्रस्त अवस्था में मुझे प्रमादजन्य कतिपय दोषों एवं क्रियाओं का भागी बनना पड़ा है और इसीलिये ऑपरेशन के पूर्व मैंने कहा था कि जब तक दोष-निवृत्ति हेतु मैं आलोचना, प्रायश्चित्त न कर लूं, आप मुझे वंदना-नमस्कार न करें। उपचार के पश्चात् मैंने अपने दोषों का प्रायश्चित्त किया और अब श्रीसंघ की साक्षी में एतद्विषयक दंड-विधान--चार मास का दीक्षाछेद स्वीकार करता हूँ। आज से 4 माह की दीक्षावधि कम होने से जो मुझसे छोटे होकर मुझे नमस्कार करते थे, अब मैं उन्हें बडा मानकर नमस्कार करूंगा। साथ ही, उपचारावस्था में जो मुनिवृन्द मेरी सेवा-शुश्रूषा में रत रहे, उन्हे भी क्रियाओं के लिये दोषी मानते हुए यथायोग्य दंड-प्रायश्चित्त देता हूँ।'

पूज्य आचार्यश्रीजी की उक्त घोषणा को उपस्थित चतुर्विध श्रीसंघ ने सुना और मुनिवृन्द ने आज्ञानुसार दंड-प्रायश्चित्त विधान को अंगीकार किया। अन्त मे उपस्थिति ने पुन:-पुन: वंदना कर पूज्य आचार्यश्रीजी को विदाई दी।

अलवर चातुर्मास अनेक महत्त्वपूर्ण कार्यों के होने से स्मरणीय रहेगा। इसी समय में संघ-ऐक्य की योजना को कार्यान्वित करने के लिये घोषणा की गई और आचार्यश्रीजी के स्वस्थ होने से समाज की चिन्ता दूर हुई। तप, त्याग, संयम आदि का जो प्रभाव जनमानस पर पड़ा, वह तो अलवर श्रीसंघ की अमरनिधि रहेगी।

संघ-ऐक्य के सम्बन्ध में आचार्यश्री की ठोस विचारधारा

एक ही आचार-विचार, परम्परा के अनुगामी सन्त-संप्रदायों को एकसूत्र में आबद्ध करने के लिये पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के समय से प्रयत्न हो रहे थे। पहले सन् 1933 में अजमेर में एक वृहत्साधु-सम्मेलन हुआ था। उक्त अवसर पर पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. ने विभिन्न संप्रदायों में विभाजित श्रमणवर्ग को एक आचार्य और एक समाचारी के आधार पर शिलान्यास कर दिया था। लेकिन वैसी स्थिति नहीं बन सकी थी। अतः उसी समय से ही संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न हो रहे थे।

अलवर चातुर्मास के समय में आपका वक्तव्य प्रकाशित होते ही स्थानकवासी सन्त-सम्प्रदायों में एकता, सम्प्रदाय-विलीनीकरण और संघ-निर्माण की योजनाओं पर चर्चा-विचारणा प्रारम्भ हो गई थी। इस समय में साधु-मुनिराजों में विभिन्न प्रकार की विचारधाराएं विद्यमान थीं। बहुत से आचार्यों के मन में सभी सम्प्रदायो के विलीनीकरण और सर्वसम्मत ऐक्य-योजना के स्वीकृत होने में सन्देह था कि क्या सैकडों वर्षों से चले आये संप्रदायों का विलीनीकरण हो

सकेगा ? अतः वे एकसाथ कोई बड़ा कदम उठाने के विरोधी थे। वे चाहते थे कि फिलहाल संप्रदाय पूर्ववत् बने रहें और एकता के बदले पारस्परिक संगठन किया जाये। यह संगठन परीक्षण के रूप में अस्थायी हो। जब यह परीक्षण सफल हो जाये और एकता की भूमिका निर्मित हो जाने पर संघ-ऐक्य का आदर्श रखा जाये। अभी ऐसा वातावरण नहीं दिखता है कि सभी सन्त-मुनिराज एक ही आचार्य के आदेश और निर्देश मे रह सकें। अत: इस परिस्थिति में संगठन के लिये मध्यम मार्ग का अवलम्बन करना योग्य है।

लेकिन कुछ दूसरे सन्त एकता का पूर्ण समर्थन करते थे। उनका अभिप्राय था कि चारों ओर से एकता की प्रबल मांग हो रही है। एकता की कल्पना-मात्र से श्रावक-श्राविकाएं हर्ष प्रकट कर रहे हैं। परिस्थितियां भी एकता के अनुकूल हैं। जब तक भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों की सत्ता रहेगी, पारस्परिक स्पर्द्धा और संघर्ष चालू रहेंगे और सम्प्रदायो में हमारी शक्ति विभाजित रहेगी तो संगठन को बल कहां से मिलेगा ? सांप्रदायिक भेदभाव के विषाक्त फल हम खूब चख चुके हैं एवं चखते-चखते संघ-मानस दूषित हो चुका है। यही अवसर है कि एकता की सुधा पिलाकर संघ को पुनः स्फूर्तिमय और सजीव बनाया जावे। यदि इस बार भी हम उदारता प्रदर्शित करके एकता का निर्माण न कर सके तो श्रावकवर्ग की उग्र प्रतिक्रिया होगी। इसके सिवाय एकता के लिये उठाया जा रहा कदम आकस्मिक नहीं, वरन् पूर्व-विचारित है। पूर्व में एक बार हमारे महारथी अजमेर में मिल चुके हैं। हम दूसरी बार मिल रहे हैं। अगर हर बार वातावरण के नाम पर कोई उपयोगी और क्रान्तिकारी कदम उठाने से हिचकते रहे तो कभी भी एकता के लक्ष्य को प्राप्त न कर सकेंगे।

वातावरण का निर्माण स्वयं तो होता नहीं, किन्तु हमारे मन का सुदृढ़ संकल्प और हृदय की उदार भावना ही उसका निर्माण करती है। अतएव ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु यदि हम संघ की सेवा मे अपनी समस्त महत्त्वाकांक्षाएं समर्पित करने को उद्यत हैं और विराट् संघ के उत्कर्ष में ही अपना उत्कर्ष मानने को तैयार हैं तो फिर कोई कारण नहीं कि हम एकता के लिये भविष्य की ही प्रतीक्षा करते रहें। जो कर्तव्य हमारा है, उसे हमें करना चाहिये, उसका भार अगली पीढी पर डालना उचित न होगा। हमें पथ का निर्माण कर देना चाहिये, जिससे भविष्य के सन्त उस पर सकुशल अग्रसर हो सकें।

घाणेराव सादड़ी में वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय

इस प्रकार की विचारधाराओं के होने पर भी संघ-ऐक्य के लिये प्रयत्न करना योग्य माना जा रहा था। इसी बीच संघ-ऐक्य योजना के बारे में पूज्य आचार्यश्रीजी के उदार विचारों की घोषणा हो चुकी थी। जिससे जनता में आशा और उतसाह की लहर व्याप्त हो गई थी।

श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के कार्यकर्ता सम्मेलन की भूमिका तैयार करने में संलग्न थे। उनका प्रयास सफल हुआ और सन्त-मुनिराजो की सुविधा व स्थिति को देखते हुए दिनांक 27.4.52, सं. 2009, वैशाख शुक्ला 3 से घाणेराव सादड़ी में वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय किया गया।

संगठन की भावना समाज में तीव्र रूप से व्याप्त थी। अतः सम्मेलन के समय, स्थान के निश्चय से समाज में नवस्फूर्ति के दर्शन होने लगे। सम्मेलन के समय दर्शनार्थ जाने के लिये सभी भाई-बहिन अपने-अपने कार्यक्रम नियत कर रहे थे और बहुत-से मुनिराज सम्मेलन स्थान से काफी दूर थे, लेकिन संघ-ऐक्य के प्रयत्नों में सहयोगी बनने के लिये उन्होंने भीषण गर्मी में भी उग्र विहार करके समय से पूर्व सादडी पहुंचने के लिये अपने-अपने स्थानों से विहार कर दिया था।

उभरता यौवन : आदर्श त्याग

पूज्य आचार्यश्रीजी स्वास्थ्यलाभ के पश्चात् अलवर से विहार कर जयसिंहपुरा होते हुए ढाबला पधारे। ढाबला में पूज्यश्री के प्रवचन का श्रोताओं पर गहरा असर पडा। धर्म-ध्यान का ठाठ लग गया। श्रीयुत् तिलोकचन्दजी के सुपुत्र श्री कंवरलालजी ने भरपूर यौवन, मात्र 37 वर्ष की वय में सपत्नीक चतुर्थव्रत– शीलव्रत अंगीकार कर भोगों के पीछे भागते मानवों के समक्ष एक उच्चादर्श प्रस्तुत किया। 34 वर्षीया धर्मपत्नी का आदर्श त्याग भी महिला-समाज को त्यागमार्ग की ओर अग्रसर होने के लिए उत्प्रेरित कर रहा था। दस वर्ष पूर्व इनके पिता श्रीयुत् तिलोकचन्दजी ने भी सपत्नीक शीलव्रत अंगीकार किया था। माता-पिता ने आज अपने सुपुत्र को भी इसी मार्ग पर आगे बढ़ते देखकर प्रसन्नता व्यक्त की। 'तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं' की देशना प्रदान कर आपश्री ठाणा 8 से 15 फरवरी, 52 को जयपुर पधारे। उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म. जयपुर विराजते थे और पं. र. मुनिश्री सिरेमलजी म.सा. भी दक्षिण की तरफ से विहार करते हुए जयपुर पधार गये थे। उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. अपने शिष्य समुदाय सहित आपश्री की अगवानी में पधारे। मुनिश्री सिरहमलजी म. तो 11 कि.मी. दूर आमेर गाँव ही पधार गये। आचार्यश्री के प्रति आपकी अगाध भक्ति थी।

आचार्यश्रीजी के 22 सन्तो के साथ 15 दिनों तक जयपुर में विराजने से धार्मिक जागृति का प्रसंग बन गया। श्रीसंघ में भारी उत्साह छा गया। दर्शनार्थियों का आगमन निरन्तर बना रहा। 28 फरवरी को जयपुर से विहार कर आचार्यश्रीजी 8 मार्च को मदनगंज पधार गये। मदनगंज में आचार्यश्रीजी के प्रभावक प्रवचन हुए। आचार्यश्रीजी ने फरमाया– "साधु और श्रावक, सभी को साम्प्रदायिक भावनाओं को तिलाञ्जलि देकर पदवियों के व्यामोह से ऊपर

उठना चाहिए तथा संघ-ऐक्य के लिए तैयार रहना चाहिये। समाज में संगठन की परम आवश्यकता है। मेरी संगठन की प्रबल भावना है और मैं साम्प्रदायिक पद एवं सम्प्रदाय को छोड़ने को सदैव तत्पर हूँ।" सभी सन्त स्नेह-सौहार्दपूर्ण वातावरण में रहकर यहां से किशनगढ पधारे तथा वहां से सम्मेलन के बारे में वार्त्तालाप करते हुए अजमेर पधारे। अजमेर में वयोवृद्ध स्थविरपद-विभूषित मुनिश्री पूरणमलजी म.सा., बड़े नाथूलालजी म.सा., पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा., पं. श्री प्यारचंदजी म.सा., श्री इन्द्रमलजी म.सा., श्री मोतीलालजी म.सा. आदि 80 साधु-सन्तों का मिलन हुआ। यहां भी सम्मेलन सम्बन्धी कुछ चर्चा-वार्त्ता हुई। यह चर्चा सादड़ी सम्मेलन को सफल बनाने की पृष्ठभूमि थी।

अजमेर से सुविधानुसार विहार करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी आदि सन्त ब्यावर पधारे। ब्यावर में कुछ अरसे से समाज में पारस्परिक मनोमालिन्य था, राग-द्वेष की तीव्र परिणति हो गई थी। एक-दूसरे के यहां जाना-आना बन्द हो गया था। इससे वहां के विवेकशील बन्धु खेद-खिन्न थे और चाहते थे कि यह मनोमालिन्य दूर होकर संघ में वात्सल्यभाव की वृद्धि हो। पूज्य आचार्यश्रीजी के समक्ष उन्होंने अपने विचार रखे। आपश्री ने पारस्परिक संघर्ष से उत्पन्न समाज की दैन्यावस्था का संकेत करते हुए वात्सल्य-वृद्धि का उपदेश दिया और साधुमर्यादानुसार निर्णय दिया। उक्त निर्णय सभी के लिये हित, मित और पथ्य था और सभी ने एक स्वर से अंगीकार किया एवं ब्यावर में कुछ दिन विराज कर आपश्री ने सम्मेलन के निमित्त घाणेराव सादड़ी की ओर विहार कर दिया।

सम्मेलन : मुख्य विषयों पर विचार-विमर्श

घाणेराव सादड़ी मारवाड़ की मरुधरा में बीच बसा एक छोटा-सा कस्बा है। ग्रीष्मऋतु के कारण मारवाड़ में काफी गरमी पडती है, लेकिन सम्मेलन के व्यवस्थापकों ने श्रावकों के लिए आवास, पानी आदि की बहुत ही अच्छी व्यवस्था की थी और पधारने वाले साधु-सन्तों के लिये श्री लोकाशाह जैन गुरुकुल के भव्य भवन में विराजने तथा उसके विशाल सभाकक्ष में सम्मेलन की बैठकें करने का प्रबन्ध किया था। बाहर से आगत दर्शनार्थियों के लिये गुरुकुल के आस-पास के मैदान में लोकाशाह नगर बसाया गया था। क्षेत्र की दृष्टि से व्यवस्था के लिये जुटाये गये साधन निस्संदेह उल्लेखनीय थे। लगभग 35,000 भाई-बहन दूर-दूर के गांवो से दर्शनार्थ पधारे थे।

सम्मेलन प्रारम्भ होने से एक-दो दिन पहले ही साधु-मुनिराजों के पधार जाने और दर्शनार्थियों का आवागमन चालू हो जाने से सादड़ी में चहल-पहल बन गई।

सम्मेलन में भाग लेने के लिए 22 सम्प्रदायों के 151 सन्त एवं 80 सतियाँ पधारीं। इनमें

से 51 सन्त प्रतिनिधि के रूप में निर्वाचित किये गये। ये 51 सन्त देश-भर में फैले स्थानकवासी किंवा साधुमार्गी सम्प्रदाय के 341 सन्त और 768 सतियों के प्रतिनिधि थे।

पूर्व निश्चयानुसार सं. 2009, वैशाख शुक्ला 3, दि. 27.4.52, रविवार को दिन के 3 बजे सम्मेलन का शुभारम्भ हुआ। पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. सम्मेलन में कार्रवाई को सुव्यवस्थित और सुचारु रूप से संचालित करने के लिये शांतिरक्षक निर्वाचित किये गये और आपकी सहायता के लिये व्याख्यानवाचस्पति पं. र. श्री मदनलालजी म.सा. भी शांतिरक्षक चुने गये। ये चुनाव सर्वसम्मति से हुए थे।

कार्यवाही ज्योंही प्रारंभ हुई, त्योंही एक सन्त ने किसी ज्योतिषी का हवाला देते हुए कहा कि सम्मेलन के लिए यह मुहूर्त ठीक नहीं है। मुहूर्त में गुरु और शुक्र की युति संघर्ष का रूप दिखा रही है। लगभग 15-20 मिनट तक इस विषय पर बहस चली। अन्त में उस चर्चा को शान्त कर 'एक आचार्य' की चर्चा प्रारंभ की गई।

'श्रमणसंघ का एक आचार्य हो' इस विषय पर मतैक्य नहीं था। कुछ-एक आचार्य आदि साधुगण 'एक आचार्य' की व्यवस्था मानने के पक्ष में नहीं थे। इसमे उन्हें अपना महन्तवाद समाप्त होता नजर आ रहा था। उन्होंने तर्क भी दिये कि पहले भी अलग-अलग आचार्य होते थे, गणधरों के भी पृथक्-पृथक् गण थे आदि......। लेकिन समर्थन के प्रबल वेग के आगे वे उस समय झुक गये और सर्वानुमति से 'एक आचार्य' स्वीकार कर लिया गया।

अनन्तर संघ-ऐक्य के उद्देश्य के सम्बन्ध में विभिन्न मुनिराजो ने अपने-अपने विचार व्यक्त किये और सर्वानुमति से लक्ष्य—एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमणसंघ की स्थापना—स्वीकृत हो गया तो उसकी पूर्ति के साधनों पर विचार-विनिमय प्रारम्भ हुआ।

उस समय प्रतिनिधि मुनिवरों ने भाव दर्शाये कि विभिन्न सम्प्रदाएं सुदीर्घकाल के अनन्तर परस्पर मिल रही हैं, अतः लक्ष्यपूर्ति की दिशा में क्रम-क्रम से बढ़ना उचित होगा। प्रतिनिधियों द्वारा व्यक्त विचारों और भावनाओं को ध्यान में रखते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म. सा. ने अपनी योजना को तत्काल ही समग्र रूप से स्वीकार करने पर अधिक बल नही देकर नवनिर्मित श्रमण संघ में सशर्त सम्मिलित होने की स्वीकृति प्रदान की।

आचार्य पद के चुनाव के सम्बन्ध में चर्चा

संगठन से सम्बन्धित मुख्य-मुख्य विषयों पर गम्भीरता से विचार करने के बाद मुनिराजों की संसद जब ऐक्य-योजना के बारे में सहमत हो गई तो प्रश्न उठा— समस्त स्थानकवासी जैन संघ का आचार्य किसे बनाया जाये, जिसके नेतृत्व में शताब्दियों से बिखरा समाज, पृथक्-पृथक् आचार्यों के निर्देशन में चलने वाला साधु-सम्प्रदाय और भिन्न-भिन्न सम्प्रदायो के

सम्पूर्ण सत्तासम्पन्न आचार्य एकरूप से आबद्ध हो सकें ?

संघ ऐक्य योजना की स्वीकृति ही कठिन थी, किन्तु आचार्य-निर्वाचन की समस्या उससे भी अधिक कठिन थी। प्राचीन और अर्वाचीन विधारधाराएं आपस में टकरा रही थीं, फि भी सभी यह चाहते थे कि ऐसे महापुरुष निर्वाचित किये जायें जो समग्र संघ का योग्यतापूर्व संचालन कर सकें और सबके श्रद्धा-केन्द्र हों।

सम्मेलन मे संघ-ऐक्य की रूपरेखा निर्णीत हो चुकी थी और मुख्य-मुख्य प्रश्नों के ब मे सर्वानुमति से निर्णय भी किये जा चुके थे, सिर्फ कुछ-एक छोटे-मोटे प्रश्नों पर विच करना शेष रहा था। अतः ग्रीष्मऋतु की उग्रता और दर्शनार्थियों का जमघट विशेष होने प्रतिनिधि मुनिराजों ने निश्चय किया कि यहां आचार्यपद पर सर्वमान्य सन्तप्रवर का चय करके चतुर्विध संघ की उपस्थिति में ही उन्हें आचार्य पद प्रदान कर दिया जाये और शे प्रश्नों के सम्बन्ध में विचार, परामर्श और निर्णय करने का अधिकार आगे होने वाले पदाधिका मुनिराजों के सम्मेलन को सौंपना उचित है।

पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. का प्रस्ताव

उपर्युक्त सुझाव का सभी ने स्वागत किया। अतः वैशाख शुक्ला 8 को रात्रि की बैठक में आचार्य पद के लिये सुयोग्य सन्तप्रवर के चयन पर विचार प्रारम्भ हुआ। तब सबका ध्या पूज्य आचार्यश्रीजी पर केन्द्रित हो गया। पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. ने श्रमण संघ के आचा पद के लिये पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का नाम प्रस्तावित करते हुए इस आश के भाव व्यक्त किये कि आप सब गुणों से सम्पन्न हैं। आपकी शास्त्रों पर प्रगाढ़ श्रद्धा है, आ में चारित्र की दृढ़ता है और ज्ञान की गरिमा से ओतप्रोत हैं। ऐसे आचार्य के नेतृत्व में ही ह ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि अच्छी तरह कर सकते हैं। अतः आपको श्रमणसंघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

लेकिन पूज्य आचार्यश्रीजी ने प्रस्ताव समर्थन के बीच ही फरमाया कि आपकी भावना अच्छी है, लेकिन मुझसे बिना पूछे मेरा नाम कैसे रख दिया ? मैं तो अपना पूर्व-भार ही कम करने की सोच रहा हूँ और इच्छुक हूँ कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संयम-साधना की समुचित व्यवस्था बन जाये तो अपने उत्तरदायित्व से हलका होकर आत्मसाधना में तल्लीन होऊं लेकिन आप लोग मुझ पर और अधिक उत्तरदायित्व डालने की चेष्टा कर रहे हैं। यह मैं अपने लिये उपयुक्त नहीं समझता। आप सब मुनिवरों का मेरे प्रति वात्सल्यभाव सराहनीय है और उसके लिये मैं आपका आभारी हूँ। लेकिन इस संघ-संचालन के दायित्व से मुझे विमुक्त ही रखें और अन्य किसी भी मुनिवर को इस पद पर प्रतिष्ठित किया जाये।

समग्र सन्तों का एकस्वर से समर्थन

लेकिन सभी उपस्थित वड़े-वडे विद्वान, दीक्षावृद्ध, वयोवृद्ध और विभिन्न संप्रदायों एवं गणों के संचालक अनुभवी सन्तों ने एकस्वर से पूज्यश्री की सेवा मे सानुरोध निवेदन किया कि आपश्री ही इस नवनिर्मित श्रमण संघ के आचार्य पद को स्वीकार करने की कृपा करें।

प्रतिनिधि मुनिवरों की तो एक ही प्रार्थना थी कि यह आचार्य पद के चयन का विषय है जो समस्त मुनिवरों की भावना पर निर्भर है। वे जिनको मनोनीत करना चाहें, उसमें पूछने जैसी वात कौन-सी रह जाती है। आपश्री के चरणों में समग्र संत नेतृत्व-समर्पण करना चाहते हैं इसीलिये सभी प्रतिनिधि सन्त प्रस्ताव का समर्थन कर रहे हैं और आप इस नेतृत्व को अंगीकार करें। अतः पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. द्वारा प्रस्तुत प्रस्ताव--पूज्यश्री गणेशलालजी म. सा. श्रमण संघ के आचार्य पद पर प्रतिष्ठित किये जायें--सर्वसम्मति से पारित हुआ।

अनन्तर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने अतीव मार्मिक शब्दों में साधु-समुदाय के समक्ष आत्मनिवेदन उपस्थित करते हुए कहा--मेरा शरीर वैसा नहीं रहा जैसा कि जवानों का होता है। मैं वृद्ध हो चला हूँ और रुग्ण रहता हूँ। आप वृहत् श्रमण संघ का महान् उत्तरदायित्व मुझ पर डाल रहे हैं, आपके इस विश्वास का मैं आभारी हूँ, किन्तु उसे उठाने में मैं कठिनता अनुभव कर रहा हूँ। अतः यह उत्तरदायित्व किसी अन्य योग्य, ज्ञानवृद्ध और उत्कृष्ट संयमी महात्मा को सौंपा जाये तो मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी।

पूज्यश्री की इस उदारता और महानुभावता ने एक सुन्दर और स्पृहणीय वातावरण का निर्माण कर दिया। सभी सन्त आपकी उत्कृष्ट त्यागशीलता के प्रति श्रद्धा व्यक्त करने के साथ-साथ सर्वसम्मत निर्वाचन को स्वीकृति देने के लिये साग्रह अनुरोध करने लगे।

प्र.व. मुनिश्री सौभाग्यमलजी का प्रस्ताव

इस प्रकार जव यह प्रश्न चर्चा मे पड़ गया तो प्र.व. मुनिश्री सौभाग्यमलजी म. ने एक सुझाव रखा कि पंजाब संप्रदाय के पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. एक माने हुए महान् सन्त हैं। उनकी साहित्य-सेवा से समाज ऋणी है। अतः उनको भी कोई-न-कोई उच्च पद देना चाहिये। उन्हें भी आचार्य का पद दिया जाये तो अच्छा रहेगा। लेकिन उनके लिये यह पद सिर्फ सम्मानार्थ ही माना जायेगा और कार्य करने की समग्र सत्ता एवं अधिकार के लिये पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. का निश्चय हो ही चुका है।

आचार्य-उपाचार्य का चयन

इस पर प्रश्न उपस्थित हुआ कि दो आचार्य बनाने से तो हमारा उद्देश्य–एक आचार्य के नेतृत्व में श्रमण संघ बनाना–पूरा नही हो सकेगा। इसलिये उद्देश्य की पूर्ति में किसी प्रकार से व्यवधान भी न आये और पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. को उच्च पद भी दिया जा सके, इन दोनों बातों पर विचार करना जरूरी है।

इस पर कुछ-एक प्रतिनिधि सन्तों ने कहा कि जिस प्रकार राजनीतिक क्षेत्रों में महाराजप्रमुख और राजप्रमुख शब्दों का प्रयोग किया जाता है, उसी तरह यहां भी दो शब्द निश्चित कर, पद के नामांकन में कुछ भिन्नता रखने से यह गुत्थी सुलझ सकती है। इस सुझाव पर सर्वसम्मति से पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. सम्मान की दृष्टि से आचार्य पद से विभूषित किये गये और पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. श्रमणसंघ-संचालन की पूर्ण सत्ता के साथ उपाचार्य पद पर निर्वाचित किये गये।

उपाचार्यश्री की असहमति

लेकिन पद की गुरुता ज्ञात होने से पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. इस भार को लेने के लिये सहमत नहीं हुए और उधर मुनिवरों के सामने दूसरा कोई विकल्प नहीं था। इसी विचारणा में रात्रि काफी बीत चुकी थी अतः पुनर्विचार के लिये इस चर्चा को प्रातःकाल के लिये स्थगित कर दिया गया।

प्रतिनिधि मुनियों के मन में अन्तर्द्वन्द्व

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ध्यान आदि कर श्रमापहार हेतु शयनासन पर आसीन भी हुए किन्तु विचार-तरंगों मे निद्रा नहीं आई और परिस्थिति के विचारों में निमग्न रहे। इसी प्रकार प्रतिनिधि मुनिवरों के मनों में भी अन्तर्द्वन्द्व चलते रहे। रात्रि के तीसरे पहर, करीब तीन बजे होंगे कि प्रमुख सन्तो में से एक के बाद एक आपश्री के निकट एकत्रित होने लगे और उन्होंने हर प्रकार से प्रार्थना की, आश्वासन दिये कि आपश्री नेतृत्व संभालने की स्वीकृति फरमावें। आप यदि इस पद को स्वीकार नहीं करेंगे तो यह संगठन नहीं बनेगा। हम सभी जनसाधारण में भी हास्यास्पद माने जायेंगे कि इतने बड़े साधु-समुदाय मे नेतृत्व संभालने वाले सक्षम सन्तप्रवर के नहीं होने से संगठन नहीं बन सका।

कई-एक का तो इस स्थिति के कारण गला भर आया और आंसू बहाते हुए बोले– हम सब आपका अनुशासन चाहते हैं, आप जो भी आदेश देंगे, सहर्ष पालन करेंगे और क्रियात्मक रूप देंगे। सुबह की बैठक में आपको इस पद के लिये स्वीकृति देनी ही पड़ेगी।

वार्त्तालाप करते-करते प्रातःकाल हो गया था और प्रतिक्रमण आदि का समय हो जाने से निश्चय किया गया कि प्रातःकालीन बैठक में इस चर्चा को पुनः आरम्भ किया जाये।

प्रातःकालीन दैनंदिनी कृत्यों से निवृत्त होने के अनन्तर प्रतिनिधि मुनिवरों की बैठक प्रारम्भ हुई। वातावरण में गंभीरता थी। विचारों में डूबे मनों की परछाईं बोली और मुखों पर झलक रही थी।

मंगलाचरण के पश्चात् उपाचार्य पद-स्वीकृति की अधूरी चर्चा पुनः प्रारम्भ हुई। उपाध्याय कविरत्नश्री अमरचन्दजी म. ने समस्त प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से पूज्यश्रीजी के प्रति भावभीनी श्रद्धा व्यक्त करते हुए प्रासंगिक वक्तव्य दिया-

उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. का प्रासंगिक व्यक्तव्य

'मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन में पूरे कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं, उससे ज्यादा नरम एवं उदार भी हैं। हमने आचार्यश्री आत्मारामजी म. को नियत किया है, परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्य-सेवा से संघ ऋणी है। इसी हेतु से उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्भावना प्रकट की गई है, परन्तु हमारे विराट् संघ को अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है, जो साधु-साध्वी और श्रावक संघ में श्रद्धा एवं प्रेम की लहर पैदा कर सके। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमें भी एकाध व्यक्ति अडे रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियत कर रहे हैं। मुनिमण्डल आपके अनुशासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूंगा कि आप हमारी तुच्छ प्रार्थना को जरूर स्वीकार करेंगे।

'आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे मूर्तरूप देंगे। बहुत दिनों का बिछडा हुआ संघ मिलता है तो कठिनाई जरूर आ सकती है, परन्तु आचार्यश्री ! आप उदार एवं अनुभवशील हैं। ऊंची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को संभालने के लिये मन्त्रिमण्डल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य संभालेगा। अतः मैं आचार्यश्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर लें।'

उपाचार्य पद के लिए स्वीकृति प्रदान की

प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से जब उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. उक्त वक्तव्य दे चुके तो सबके चेहरों पर मन्द मुस्कान मुखरित हो उठी। पूज्य आचार्यश्रीजी भी उस प्रेममय वातावरण से अपने-आप को अलिप्त नहीं रख सके और सब मुनिवरों के प्रेमभरे आग्रह और सहयोग के आश्वासन को मान देकर श्रमण संघ के नेतृत्व को सुशोभित करने के लिये आपने उपाचार्य पद के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की।

जब पूज्य आचार्यश्रीजी अपनी स्वीकृति फरमा चुके तो सब मुनिवरों की ओर से मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म. ने पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में अभिनन्दन अर्पित करते हुए निम्नलिखित वक्तव्य दिया-

मरुधरकेशरीजी द्वारा अभिनन्दन

'अत्यन्त खुशी का समय है कि अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहां तक पहुंचे, तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो ? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और संगठन का समय पक चुका, इस कारण कहिये, आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि जैन जगत् के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हें कोटिश: धन्यवाद प्रदान करता हूँ।'

चादर-रस्म का निर्णय और मन्त्रिमण्डल का चुनाव

इस प्रकार जब आह्लादमय वातावरण में चुनाव का कार्य सम्पन्न हो गया तो निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया–

उपाचार्य पद-चद्दर की रस्म वैशाख शुक्ला 13, सं. 2009, बुधवार को दिन के 11 बजे अदा की जावेगी। इसके पूर्व सर्वमुनि प्रतिज्ञापत्र मयदस्तखत के तैयार रखेंगे जो उपाचार्य पद पर विराजते ही उनके चरणों में भेंट कर देंगे।'

उपाचार्य पद का चुनाव हो जाने के बाद अन्यान्य व्यवस्थाओं के लिये मन्त्रिमण्डल के 16 सदस्यों का चुनाव हुआ। जिसमें प्रधानमन्त्री पं. मुनिश्री आनन्दऋषिजी म.सा. निर्वाचित किये गये एवं अन्य 15 प्रमुख सन्तों को सहमन्त्री चुना गया और उन-उनके कार्य निश्चित कर दिये गये।

उपाचार्य पद के लिए स्वीकृति प्रदान की

प्रतिनिधि मुनिवरों की ओर से जब उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. उक्त वक्तव्य दे चुके तो सबके चेहरों पर मन्द मुस्कान मुखरित हो उठी। पूज्य आचार्यश्रीजी भी उस प्रेममय वातावरण से अपने-आप को अलिप्त नहीं रख सके और सब मुनिवरों के प्रेमभरे आग्रह और सहयोग के आश्वासन को मान देकर श्रमण संघ के नेतृत्व को सुशोभित करने के लिये आपने उपाचार्य पद के लिए अपनी स्वीकृति प्रदान की।

जब पूज्य आचार्यश्रीजी अपनी स्वीकृति फरमा चुके तो सब मुनिवरों की ओर से मरुधरकेशरी श्री मिश्रीमलजी म. ने पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में अभिनन्दन अर्पित करते हुए निम्नलिखित वक्तव्य दिया-

मरुधरकेशरीजी द्वारा अभिनन्दन

'अत्यन्त खुशी का समय है कि अखिल भारतवर्षीय स्थानकवासी जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादड़ी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहां तक पहुंचे, तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो ? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और संगठन का समय पक चुका, इस कारण कहिये, आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि जैन जगत् के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमण्डल की ओर से उन्हें कोटिशः धन्यवाद प्रदान करता हूँ।'

चादर-रस्म का निर्णय और मन्त्रिमण्डल का चुनाव

इस प्रकार जब आह्लादमय वातावरण में चुनाव का कार्य सम्पन्न हो गया तो निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया-

उपाचार्य पद-चद्दर की रस्म वैशाख शुक्ला 13, सं. 2009, बुधवार को दिन के 11 बजे अदा की जावेगी। इसके पूर्व सर्वमुनि प्रतिज्ञापत्र मयदस्तखत के तैयार रखेंगे जो उपाचार्य पद पर विराजते ही उनके चरणों में भेंट कर देंगे।'

उपाचार्य पद का चुनाव हो जाने के बाद अन्यान्य व्यवस्थाओं के लिये मन्त्रिमण्डल के 16 सदस्यों का चुनाव हुआ। जिसमें प्रधानमन्त्री पं. मुनिश्री आनन्दऋषिजी म.सा. निर्वाचित किये गये एवं अन्य 15 प्रमुख सन्तों को सहमन्त्री चुना गया और उन-उनके कार्य निश्चित कर दिये गये।

इस प्रकार श्रमण संघ के व्यवस्था सम्बन्धी निर्णय लिये जा चुके थे तथा समाचारी सम्बन्धी मुख्य-मुख्य धाराएं तो बन चुकी थीं लेकिन उन धाराओं में अभी कुछ चर्चनीय होने से विचार करके निर्णय के लिये किसी योग्य स्थान पर व्यवस्थापक मण्डल का सम्मेलन करने का निश्चय किया गया।

फिरोदियाजी की अध्यक्षता में कॉन्फरेंस का अधिवेशन

सम्मेलन के अवसर पर श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस का अधिवेशन मुम्बई धारासभा के अध्यक्ष श्री माऊसा. कुन्दनमलजी फिरोदिया की अध्यक्षता में हुआ। श्री फिरोदियाजी श्रावक-श्राविकाओं की ओर से सम्मेलन की कार्रवाई में दर्शक के रूप में भाग लेते थे। सम्मेलन की सुव्यवस्थित कार्रवाई को देखकर आपने प्रशंसा करते हुए कहा था कि इतनी व्यवस्था तो धारासभा की कार्य-प्रणाली में भी मुझे देखने को नहीं मिली है तथा वैशाख शुक्ला 3 से 12 के मध्य पूर्ण हुई सम्मेलन की कार्रवाई का विवरण उपस्थित श्रावक-श्राविकाओं को बतलाया।

उपाचार्य पदारोहण महोत्सव

सम्मेलन में पारित प्रस्तावानुसार वैशाख शुक्ला 13 को दिन के 11 बजे श्री लोंकाशाह जैन गुरुकुल के प्रांगण में आचार्य पद की चादर समर्पित करने का समारोह आयोजित किया गया।

इस समारोह को देखने के लिये प्रातःकाल से ही दर्शकों का आवागमन प्रारम्भ हो गया था और दस बजे तक तो करीब पैंतीस-चालीस हजार भाई-बहिनों की उपस्थिति हो चुकी थी। लेकिन अभी भी इक्के-दुक्के दर्शकों के आने का क्रम जारी था।

सन्त-सतियांजी म. अपने-अपने योग्य स्थान पर विराज रहे थे और जब प्रमुख मुनिराजों के साथ पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का पदार्पण हुआ तो दर्शकों ने जयघोष से *स्वागत करते हुए अभिनन्दन किया।*

प्रारंभ में साधु-सम्मेलन के सूत्रधार श्री धीरजभाई ने कार्रवाई प्रारंभ होने की और सभी को शांतिपूर्वक सुनने की और देखने की प्रार्थना की। तत्पश्चात् उपाचार्य श्री गणेशलालजी म.सा. ने मुनिमंडल सहित मंगलमय नवकार मन्त्र और नन्दीसूत्र के मंगलपाठ का एकाग्रतापूर्वक उच्चारण किया और निःशब्दता का वातावरण फैल गया।

पूर्वनिर्धारित कार्यक्रम के अनुसार समारोह का शुभारम्भ हुआ। उस समय का दृश्य तो दर्शनीय ही था जब उच्चकोटि के संतों, आचार्यों, उपाध्यायों, प्रवर्तकों आदि ने स्वहस्ताक्षरित प्रतिज्ञापत्र के साथ अपनी-अपनी पदवियां संघ-ऐक्य के आदर्श को फलितार्थ करने के लिये समर्पित करना प्रारम्भ किया। सर्वप्रथम चरित्रनायक पूज्य आचार्यश्रीजी ने स्वयं अपना

प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया। अनन्तर पंजाब सम्प्रदाय के आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. का आचार्यपद के परित्याग का पत्र और संघ-ऐक्य योजना के अनुसार व्यवहार करने का सन्देश पढकर सुनाया गया। सन्देश में संघ-ऐक्य के लक्ष्य को फलितार्थ करने के लिए अन्तरात्मा के स्वर संकलित किये गये थे।

इस कार्य के सम्पन्न होने के अनन्तर समस्त मुनिराजों की ओर से प्रतिनिधि मुनिवरों ने उपाचार्य पद की चादर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को ओढाई। विभिन्न मुनिराजों ने प्रासंगिक प्रवचन फरमाये।

श्री प्रेमचन्दजी म.सा. ने अपना वक्तव्य देते हुए फरमाया कि आज जैन समाज के लिए अपूर्व आनन्द का समय है। एक स्थान पर सभी सम्प्रदाय अपना संप्रदाय-मोह, आचार्य-मोह छोड़कर एक आचार्य की छत्रछाया में आ जायं, यह कोई साधारण बात नहीं है। जो सैकडों क्या, हजारों वर्षों से हुआ नहीं था, वह आज हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं। यह देव-दुर्लभ दृश्य देखकर आज जैन संघ के हर्ष का पारावार उछल पडा है।

पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. वृद्धावस्था के कारण आज यहां पर उपस्थित नहीं हैं। क्षेत्र से दूर हैं। लेकिन श्रद्धा से तो वे प्रत्यक्ष हैं, उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा., जो हमारे नायक हैं, उपस्थित हैं। हम सब आज उनके आदेशानुसार चलने में कृतसंकल्प हैं। जैन शासन की जय हो– यही हमारी अन्तरेच्छा है।

पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. ने अपना वक्तव्य निम्नानुसार दिया-

बंधुओ ! आज हम जिस देव-दुर्लभ दृश्य को, मंगलमय प्रसंग को देख रहे हैं, वह इतिहास के पन्नों में सुवर्णाक्षरो से सदा अंकित रहेगा। ऐसा अपूर्व दृश्य हजारों वर्षों से देखने में नहीं आया है। आज का दिन वास्तव में बोलने का या सुनने का नहीं, लेकिन देखने का ही है।

आज जो दृश्य हम देख रहे हैं, यह अपूर्व दृश्य उपस्थित करने का श्रेय उन महान् विभूतियों को है जिन्होंने संघ-शासन के हित की दृष्टि को सामने रखकर साम्प्रदायिकता का मोह छोड़ दिया और पदवी का भी मोह त्याग दिया है।

संघ-हित के लिये विसर्जन की जो भावना पैदा हुई है, उसी का यह सुन्दर परिणाम है।

संघ-ऐक्य की योजना की विचारणा वर्षों से चल रही थी, लेकिन सादड़ी क्षेत्र का यह सुप्रभाव है कि वह फलान्वित यहां हो रही है।

एक आचार्य, एक श्रमण संघ और एक समाचारी की ऐक्य-योजना को विशाल चिंतन, गंभीर दृष्टि, समयसूचकतापूर्वक मूर्तरूप देने का जो निर्णय किया गया है, वह आशातीत सफलतासूचक है। जिस प्रकार सरिताएं महासागर में विलीन होकर तन्मय बन जाती हैं, तदनुसार भिन्न-भिन्न सम्प्रदाय-मोह, पदवियां, सर्वस्व श्रमण संघ सागर में विलीन हो गयी हैं।

यह क्षीणसागर नहीं है अपितु क्षीरसागर है। इस श्रमण संघ-रूप क्षीरसागर को पाकर आज चतुर्विध संघ प्रसन्नचित्त है, प्रफुल्लमना है। जो हमने प्रतिज्ञा की है उसका हमें जिम्मेदारी और गंभीरतापूर्वक पालन करने का है। एक श्रमण संघ, एक आचार्य और एक समाचारी की अभूतपूर्व योजना को कार्यरूप में परिणत करने का उत्तरदायित्व भी चतुर्विध संघ के प्रत्येक सदस्य पर है। नियमानुसार पू. शोभाचंदजी म.सा. ने रत्नचन्दजी म.सा. की सम्प्रदाय का आचार्य पद सप्रेम समर्पित किया था, उसे मैं इस शुभावसर पर संघ-हितार्थ सुयोग्य आचार्यवर्य की सेवा में सहर्ष समर्पित करता हूँ। आज अपना बोझा उतारकर हम हलके हो रहे हैं। हम सबने श्री वर्द्धमान स्था. जैन श्रमण संघ का जो बंधारण, नियमोपनियम सर्वसम्मति से बनाये हैं, उनके अनुसार हम कर्तव्यपालन करेंगे और ज्ञान, दर्शन और चारित्र की अभिवृद्धि करेंगे। संघ-ऐक्य की योजना चतुर्विध संघ के लिए प्रगति-प्रेरक और हित-साधक सिद्ध हो, यही हमारी अन्तर्भावना है।

पूज्य आचार्यश्री की सभा में अपना पदभार समर्पित करके हम कृतार्थ हुए हैं। हमें विश्वास है कि पूज्यवर्य भी बिना किसी प्रकार के पक्षपात, सत्य का रक्षण करेंगे। हम सब एक हैं। सम्प्रदाय के मोह का त्याग किया है। पूज्यश्री आत्मारामजी म. सा. और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को हम सबने वरमाला पहनायी है। हाथी जैसे मंगलमय है, वैसे हमारे मंगलमय गणेश भी सबको कल्याणकर मार्ग का निर्देश करेंगे ही, ऐसा हमें विश्वास है।

श्री चतुर्विध संघ को अब संघोन्नति के कार्य में हिलमिल कर आगे बढना है और कर्तव्यपालन में सभी को तत्पर रहना है। आज्ञापालन में संघ का अभ्युदय है।

तत्पश्चात् पं. श्री फूलचन्दजी म.सा. ने प्रारम्भ मे-"भज महावीर, भज महावीर" की सामूहिक प्रार्थना कराई और तत्पश्चात् अपना संक्षिप्त वक्तव्य निम्नानुसार दिया–

आज हमारी सांप्रदायिक उलझनें सुलझ गयी हैं। आज हम सब एकता-क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। धीरजभाई ने समय-मर्यादा बांध दी है अतः संक्षेप में ही मैं जैन समाज से यही पूछना चाहता हूँ कि हिन्दुस्तान में हिंदू समाज किसको मानते हैं ? गजानन्दजी, गोपाल गणेशजी को। आज हम सब भी आत्मानंदी गणेशजी को 'गणेशाय नमः' कहकर अभिवादन और अभिनन्दन करते हैं। जैसे हमने सांप्रदायिक भेदभाव छोड़ दिया है तदनुसार आप सबको भी अंदेशा को छोड़ देना चाहिये। जातीयता, साम्प्रदायिकता ने बडा नुकसान पहुंचाया है। इसकी बदौलत श्रमण भ. महावीर स्वामी ने मानवता और सच्चरित्रता का जो महान् संदेश दिया था, उसको जैन समाज भूल गया। मानवता से जातीयता दूर भागती है। अतः जातीयता को दूर भगानी चाहिये।

तत्पश्चात् व्याख्यान वाचस्पति पंडित मदनलालजी महाराज ने अपना वक्तव्य देते हुए कहा कि–

सं. 1988 में आचार्यवर जवाहरलालजी म.सा. पंजाब पधारे थे। श्रमण संघ संगठन करने की भावना से ज्येष्ठ माह में भी उनकी सेवा में उपस्थित हुआ था। विचार-विनिमिय के परिणामस्वरूप सं. 1990 में आचार्य सोहनलालजी म.सा. की सूचना से अजमेर में वृहत्-साधु-सम्मेलन किया गया। तब समय परिपक्व नहीं होने के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई। तत्पश्चात् मुनिश्री रामचंदजी म.सा., पूज्यश्री काशीरामजी म. एवं दिवाकरजी म.सा. ने इस योजना को कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया। आज वह शुभ दिन आया है कि हम सब श्री वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के रूप में सूत्रबद्ध हुए हैं। हमने दस दिन की कार्यवाही में जो-कुछ किया है वह सैकड़ों क्या, हजारों वर्षों से नहीं हुआ था। हमने जो-कुछ निश्चय किया है, वह सर्वसम्मति से करने का प्रयत्न किया है और हृदयपूर्वक किया है। आज हमने भेदभाव, सांप्रदायिक खींचातानी, सब को छोड़कर संघ-शासन-उन्नति को दृष्टि में रखकर 'एक आचार्य, एक श्रमण संघ और एक समाचारी' को सहर्ष स्वीकार किया है। हम अपना सर्वस्व अर्पण करके भी अपनी प्रतिज्ञा का पालन करेंगे। हमारे इस सत्संकल्प की पूर्ति करने के लिए चतुर्विध श्रीसंघ हृदय से पूरा सहयोग देगा, यही हमारी अन्तर्भावना है। हम आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. जैसे सेनानायकों को पाकर कृतकृत्य और धन्य हुए हैं। हम उनके आदेश को एक सैनिक के रूप में शिरोधार्य करेंगे।

साहित्यरत्न पं. मुनिश्री सुशीलकुमारजी म. ने सारभूत वक्तव्य में कहा– आत्मा सच्चिदानन्दमय है। पूज्यश्री आत्मारामजी महाराज सा. हमारे आचार्य हैं और श्रीगणेश पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज सा. हमारे उपाचार्य हैं। हमारे इन सेनानायकों की आज्ञा को हम शिरोधार्य करेंगे और एक सैनिक के रूप में हम अपना जीवन-सर्वस्व भी समर्पण कर देंगे।

इसके अलावा अनेक सन्तों ने गद्य-पद्य में अपने विचार प्रस्तुत किये। संतों के वक्तव्य के पश्चात् *पूज्यप्रवर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. का मंगलमय उद्बोधन हुआ।*

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. का उद्बोधन

आज का उत्सव आपके लिये हर्ष का, आनन्द का विषय है, किन्तु मेरे लिये गहन चिन्तन, मनन एवं अध्ययन का। आज का दिवस महान् जिम्मेदारी का दिवस है, आज तक मेरे सिर पर एक सम्प्रदाय का ही बोझ था जिसे भी मैं शारीरिक अस्वस्थता के कारण दूसरे के कंधों पर डालने वाला था, परन्तु सम्मेलन का नि[illegible] पर सोचा था कि अपने कंधे

इस बोझ से हलके हो जायेंगे और आत्म-चिन्तन, मनन और ध्यान-मौन करने का समय अधिक उपलब्ध होगा, पर यहां तो कंधे और भी बोझिल बन गये। मैं तो पद, शिष्य एवं सम्प्रदाय के समर्पण करने की भावना से आया था, मेरी आन्तरिक इच्छा नहीं थी कि मैं इस अवस्था में पुनः आचार्य पद को स्वीकार करूं किन्तु आप लोगों के आग्रहभरे मानस को भी नहीं तोड़ सका, एतदर्थ मैंने इस पद को स्वीकार किया।

आज जो चादर ओढाई जा रही है, वह एक सम्प्रदाय की नहीं, समस्त वर्द्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ की है, इस छोटी-सी खादी की चद्दर में, जो साधारण-सी दिखाई दे रही है, संघ की महान भावनाएं भरी हुई हैं, एक-एक तार में साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाओं का जीवन बोल रहा है। यह अखंड धागों का समूह, संघ के अखण्ड जीवन का प्रतीक है, इसके पीछे संघ की महती विराट् ताकत छिपी हुई है।

मैं संघ के बल पर ही इस समाज के बोझ को सुगमता से उठा सकूंगा।

अभी अभी आप लोगों के सामने पंडित श्री हस्तीमलजी ने कहा था कि आज मैं बोझ से हलका हो गया हूं, परन्तु याद रखें, वे सम्प्रदाय के बोझ से तो हलके बन गये हैं किन्तु उन पर भी नया बोझ आ गया है, उससे वे छुटकारा नहीं पा सकेंगे। आपने कहा था कि हाथी वरमाला पहनाने के लिये हर समय तैयार रहता है पर याद रखें उसका कार्यक्षेत्र वरमाला पहनाने तक ही सीमित नहीं रह जाता है, उसके आगे युद्ध की विजय पताका लेकर भाले एवं बरछियों के घाव खाने को तथा किले के प्रवेश द्वार को तोडने को हाथी ही आगे रहता है। युद्ध में विजय का भार लेकर ही वह आगे बढता है और साथ में चक्रवर्ती राजा-महाराजा की सवारी में भी काम आता है। अतः आप बोझ से हलके नहीं बने हैं किन्तु आप पर मेरे सहित समाज का बोझ है। आपके, आनदऋषि के, प्यारचन्द्रजी एवं मिश्रीमलजी आदि मन्त्रियों के सहयोग पर ही मैं समाज की जिम्मेदारी को निभा सकूंगा। अतः आज से आप सब पर कर्तव्यपालन का भार आ गया है। मुझे आशा है कि आप सब पूर्ण सहयोग देंगे क्योंकि मेरे जैसे बूढे आदमी को सहयोग की आवश्यकता रहती है। स्व. पूज्यश्री जवाहरलालजी म. सा. एक उदाहरण फरमाया करते थे।

एक राजा के कोई संतान नहीं थी जो कि उसके पीछे राज्य भार को संभाल सके, इस कारण राजा बड़ा चिन्तित रहता था। राजा की हार्दिक पीडा को परखने वाले मन्त्री ने कहा—महाराज ! चिन्ता करने से दुःख कभी भी शान्त नहीं हो पाता है। उसके लिये श्रम करना मानव का कर्तव्य है। सन्तान नहीं है तो घबराइये मत, मेरे पास एक विलक्षण पक्षी है जो मनुष्य के सही-सही मूल्य आंकने में कभी भी घोखा नहीं खा सकता है। बस, आप उसे खु

छोड़ दीजिये। वह जिसके मस्तिष्क पर बैठ जाये, उसे ही अपना उत्तराधिकारी बना लीजिये। राजा को मन्त्री की बात अच्छी लगी। उसकी बहुत-कुछ चिन्ता कम हो गयी। पक्षी छोड दिया गया।

पक्षी उडता हुआ शहर से दूर जंगल के शांत एवं शुद्ध वातावरण में पहुंचा और एक घसियारे-घास बेचनेवाले-के मस्तिष्क पर जाकर बैठ गया। चारों ओर से जय-जयकार का नाम गूंजने लगा। आज से घसियारे के मस्तिक पर घास के स्थान पर राज्य का नया बोझ आ गया।

घसियारे ने अपनी बुद्धिमत्ता से समस्त प्रजा एवं मन्त्रियों के मस्तिष्क में जगह पा ली थी। हर कार्य में वह मन्त्रियों का सहयोग लेता रहता था, यहाँ तक कि उठते समय भी प्रधानमंत्री के कंधे पर हाथ रखकर उठता था। एक दिन उठते समय राजा ने मन्त्री के कन्धे को इतने जोर से दबाया कि वह (मन्त्री) लचक गया, और मुंह से हंसी का फव्वारा छूट गया। राजा ने पूछा कि हंसने का क्या कारण है, स्पष्ट कहो।

मन्त्री— राजन् ! एक समय वह था कि बिना किसी के सहारे के घास के गट्ठर तक उठा लेते थे और आज केवल शरीर के बोझ को उठाने के लिये भी दूसरों का सहारा लेना पड़ता है, यह देखकर मेरी हंसी रुक नहीं सकी।

राजा— मन्त्री ! तुमने मेरे को समझने मे धोखा खाया है। इतने दिन तक तो मेरे सिर पर केवल घास का ही बोझ था, परन्तु अब तो एक विशाल राज्य का भार है। उसे मैं अकेला बिना किसी सहारे के कैसे उठा सकता हूँ ! इसे उठाने के लिये तुम्हारे कंधों को दबाता ही रहूंगा। कभी बात आने पर इससे भी अधिक दबाना पड़ेगा।

मैं भी एक सामान्य साधु था, आपकी तरह संयम यात्रा कर रहा था, परन्तु आज आप लोगों ने मेरे कंधे पर विशाल राज्य का बोझ डाल दिया। इसको उठाने के लिये आप मन्त्री लोगों के कन्धों को दबाना ही पड़ेगा। आपके सहारे से ही मैं इस भार को वहन कर सकूंगा।

मुझे अपने समाज तथा साथियों पर गर्व है कि हम अपने मानस में जिन भावनाओं को लेकर यहां तक अनेक कष्ट उठाकर आये थे, उन भावनाओं ने आज मूर्त रूप धारण कर लिया। हमारी आकांक्षाएं आज पूर्ण हो गयीं। परन्तु इतने मे ही संतोष करके बैठ नहीं जाना है। हमारे रहे हुये साथियों को साथ लिये हुए, दृढ़ता के साथ आगे को कदम बढ़ाना है। जनगण के जीवन में संगठन की आवाज गुंजाना है, एक्यता का प्रेम जगाना और सबको संघ की ऐक्यता के तार मे पिरोना है। यह कार्य तभी सफलीभूत हो सकेगा कि हम जिस आदर्श त्याग से मिले हैं उसे अक्षुण्ण रखें और प्रतिपल बढाते चलें, जिससे हमारा जीवन चमक उठे और विश्व हमारी ओर मुड चले। अतः आज से हम यह प्रतिज्ञा करके कदम बढायें— हम

ऐक्यता के पुजारी अनैक्य को मिटाकर घर-घर में ऐक्यता का, प्रेम का, संगठन का नाम गुंजा कर ही दम लेंगे।

इस प्रकार संघ सारथि सहित हर सन्त की वाणी में अनूठा उत्साह था। संघ-ऐक्यता का ज्वार उमड़ रहा था। वैशाख शुक्ला तृतीया से प्रारम्भ सम्मेलन वैशाख शुक्ला 15 तक उल्लासमय वातावरण में चला।

सम्मेलन के प्रति सब की सद्‌भावना

वृहत्साधु-सम्मेलन की योजना ने समस्त जैन समाज का ध्यान आकर्षित किया था। अतः सभी में इसका फलितार्थ जानने की उत्सुकता थी। सम्मेलन से लौटकर जाने वाले दर्शनार्थियों से मिलने वाले प्रायः प्रश्न पूछते थे कि सम्मेलन में क्या हुआ ? सम्मेलन के मुख्य-मुख्य प्रस्तावों के बारे में बतलाओ और आचार्य पद किन सन्तप्रवर ने सुशोभित किया है ? समस्त जैन पत्रों और अग्रणी कार्यकर्ताओं ने सम्मेलन की सम्पूर्ण कार्रवाई की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए आशा व्यक्त की कि वह दिन दूर नहीं, जब समस्त जैन बन्धु एकता के सूत्र में आबद्ध होकर जिन-शासन की विश्वव्यापी प्रभावना करने में सफल होंगे।

संगठन का शंखनाद होने के पूर्व श्रमणवर्ग पृथक्-पृथक् संप्रदायों में विभक्त था। मूलभूत सिद्धान्त, मान्यताएं और आगम आदि एक समान होने पर भी कतिपय संप्रदायों में पारस्परिक वंदन-व्यवहार होना तो दूर रहा, संभाषण करने का भी व्यवहार नहीं था। संमेलन में इस परिस्थति पर विचार-चर्चा करके पारस्परिक सम्बन्धों को चालू करने का निर्णय किया गया था। फिर भी सदियों पुराने भेदभाव को मिटाकर परस्पर में अपनत्व की भावना का विस्तार करने एवं अन्यान्य दीक्षावृद्धों को अपने ही गुरुजनों के समान वंदना और सत्कार करने में संकोच दिखलाई देता था।

लेकिन इस संकोच को दूर करने का श्रीगणेश स्वयं चरितनायक पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने अपनी ओर से किया। व्यक्ति का वास्तविक विकास पद से नहीं, अपितु आन्तरिक सद्‌वृत्ति, विराट् एवं भव्य अन्तरात्मा से होता है और यही जगत् के लिये कल्याणकारी है। आपने नवनिर्माण के समय भविष्य की उज्ज्वल कल्पना को दृष्टि में रखकर पुरानी स्थिति को गौण कर दिया था। आपश्री की विनय, सेवावृत्ति, स्नेहशीलता, सौजन्य, शिष्टता और सद्‌भावना के फलस्वरूप सैकडों वर्षो से पृथक्-पृथक् संप्रदायों में विभक्त सन्तो में अपनेपन का भाव उत्पन्न हुआ और समग्र संघ एक प्राणचेतना से परिस्पन्दित होने लगा।

सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म. का उपाचार्यश्रीजी के साथ संयुक्त चातुर्मास

पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने संघ-ऐक्य सम्बन्धी निजी विचारों को सम्मेलन के समय विशद

रूप से व्यक्त किया था और विभेदक कारणों को दूर करने के लिये प्रत्येक पूर्व-सम्प्रदाय में एक-दूसरे सम्प्रदाय के मुनिराजों का संयुक्त रूप में चातुर्मास कराना आवश्यक समझते थे और इस प्रवृत्ति को आपने अपने से ही प्रारम्भ किया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी का सं. 2009 का चातुर्मास उदयपुर था और आपके साथ ही सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म.सा., जो जैन-दिवाकर श्री चौथमलजी म. के शिष्य थे, का भी चातुर्मास हुआ। इस चातुर्मास की ऐतिहासिक महत्ता थी। वैसे तो पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की संप्रदाय के आचार्य के रूप में पहले भी आपश्री के अनेक चातुर्मास उदयपुर में हो चुके थे, लेकिन समस्त स्थानकवासी जैन साधु-साध्वियों के सर्वसत्ता-सम्पन्न उपाचार्य के रूप में यह प्रथम चातुर्मास था। उदयपुर श्रीसंघ में अभूतपूर्व उत्साह व्याप्त था। उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ एवं प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन बाहर के सैकड़ों भाई-बहिन आते रहते थे और कितने तो समस्त चातुर्मास-काल को यहां ही व्यतीत करने के लिये बस गये थे।

श्रावण कृष्णा तृतीया को पूज्य उपाचार्यश्री का जन्मोत्सव बड़े उत्साह से मनाया गया। सन्त-सतियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के अलावा स्वयं उपाचार्यश्रीजी ने जन्मदिन पर क्या करना चाहिए- इस विषय पर मार्मिक प्रवचन फरमाया। पूज्यश्री ने कहा-- गत वर्ष के जीवन पर दृष्टिपात कर अपनी भूलों के लिये पश्चात्ताप करना चाहिए और आगे के लिए सत्कार्य करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उपाचार्यश्री के 63वें वर्षप्रवेश पर धर्म, ध्यान, त्याग, तप के अलावा श्रीसंघ ने हर्षोत्साह के साथ दीन, अनाथजनों को भोजन दिया तथा पशुओं को भी तृप्त किया।

चातुर्मास-काल में सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म. ने अपने भाव व्यक्त किये थे कि हमारे इतने वर्ष दूर रहने से मनों में कई तरह की भ्रान्तियां थीं। लेकिन निकट में रहने से वे सब भ्रांतियां दूर हुईं और उपाचार्यश्रीजी के हृदय को नजदीक से समझ पाया हूँ। आपश्री के बर्ताव ने मुझे श्री जैनदिवाकरजी म. को भुला दिया है। अब चाहे कुछ भी हो, हम कभी अलग नहीं होंगे। कदाचित् श्रमण संघ बिखर सकता है, किन्तु पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की सम्प्रदाय नहीं बिखर सकती। आपश्री जो भी हुक्म देंगे, हम उसको शिरोधार्य करेंगे। यदि मुझे धूप में खड़ा कर देंगे तो भी मैं कोई तर्क नहीं करूंगा। हमारी आप पर पूर्ण श्रद्धा हो गई है।

उपाचार्यश्री और उपाध्यायश्री का परस्पर व्यवहार देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि पूज्य हुक्मीचंदजी म.सा. के सम्प्रदाय की दो धाराओं के सन्तों का यहां विराजना हो रहा है। उपाध्यायश्री विनयावनत थे तो उपाचार्यश्री प्रेमपयोधि थे। पूज्यश्री के अथाह प्रेममय व्यवहार से सभी अभिभूत हो जाते थे।

श्रावक संघ भी एक हुआ

उदयपुर में स्थानकवासी समाज बहुत बड़ा है। यहां श्री जवाहर मित्र मण्डल एवं श्री महावीर मित्र मण्डल के नाम से दो सांप्रदायिक संस्थाएं चल रही थीं। घाणेराव सादडी सम्मेलन के पश्चात् दोनों संस्थाओं के विलीनीकरण के अनेक प्रयत्न हुए, परन्तु सफलता नहीं मिली।

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. एवं उपाध्यायश्री प्यारचंदजी म.सा. के इस चातुर्मास में एकता का वातावरण बना। श्री जवाहर मित्र मण्डल के कार्यकर्ता प्रजातन्त्र सिद्धान्तानुसार निर्वाचन चाहते थे जबकि श्री महावीर मित्र मण्डल के कार्यकर्ता अपना समान प्रतिनिधित्व चाहते थे।

कॉन्फरेंस के मंत्री श्री जवाहरलालजी मुणोत, संघ-ऐक्य समिति के मंत्री श्री धीरजभाई तुरखिया, कॉन्फरेंस-प्रमुख श्री चम्पालालजी बांठिया के प्रभावी भाषणों से समस्याएं सुलझने लगीं। श्री जवाहर मित्र मण्डल की ओर से श्री हिम्मतसिंहजी बाबेल ने यह घोषणा करके एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया कि 'श्री जवाहर मित्र मण्डल अपना पृथक् अस्तित्व समाप्त करता है और श्री महावीर मित्र मण्डल के कार्यकर्ताओं को कार्यकारिणी बनाने का पूरा अधिकार देता है।'

इस समाचार का उदयपुर की समस्त जनता ने हर्ष के साथ अभिनन्दन किया। प्रवचन सभा में स्वयं पूज्यश्री एवं अन्य मुनिवरों ने इन हर्षद समाचारों पर सन्तोष प्रगट कर एकता के महत्त्व को रेखांकित किया।

पूज्यप्रवर के आभामण्डल का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि उनकी उपस्थिति-मात्र समस्याओं को सुलझाने में कारगर सिद्ध होती थी। उदयपुर का श्रावक संघ एक हो गया। पूरे देश में इसका प्रभावक सन्देश गया।

सोजत में मन्त्रिमण्डल के सम्मेलन का निश्चय

नवनिर्मित श्रमण संघ की व्यवस्था में दृढ़ता लाने के लिये विचार-विमर्श की आवश्यकता थी। अतः वर्षावास-काल में भी सहमंत्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म. से व्यवस्थाक-विषयक अनेक बातों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ था। इसी प्रसंग में यह भी विचार किया गया कि मन्त्रिमण्डल की एक बैठक होनी चाहिये, जिससे संघ-व्यवस्था में रही हुई कमियों का परिमार्जन किया जा सके और संगठन के आदर्श की पूर्ति हो सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हुए और निर्णय किया गया कि चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन आयोजित किया जाये। अतः अधिकारी मुनिवरों के

रूप से व्यक्त किया था और विभेदक कारणों को दूर करने के लिये प्रत्येक पूर्व-सम्प्र
एक-दूसरे सम्प्रदाय के मुनिराजों का संयुक्त रूप में चातुर्मास कराना आवश्यक सम
और इस प्रवृत्ति को आपने अपने से ही प्रारम्भ किया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी का सं. 2009 का चातुर्मास उदयपुर था और आपके सा
सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म.सा., जो जैन-दिवाकर श्री चौथमलजी म. के शिष्य थे,
चातुर्मास हुआ। इस चातुर्मास की ऐतिहासिक महत्ता थी। वैसे तो पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी
की संप्रदाय के आचार्य के रूप में पहले भी आपश्री के अनेक चातुर्मास उदयपुर में ह
थे, लेकिन समस्त स्थानकवासी जैन साधु-साध्वियों के सर्वसत्ता-सम्पन्न उपाचार्य के
यह प्रथम चातुर्मास था। उदयपुर श्रीसंघ में अभूतपूर्व उत्साह व्याप्त था। उपाचार्यश्री
दर्शनार्थ एवं प्रवचन-प्रसाद की प्राप्ति के लिये प्रतिदिन बाहर के सैकड़ों भाई-बहिन
रहते थे और कितने तो समस्त चातुर्मास-काल को यहां ही व्यतीत करने के लिये बस ग

श्रावण कृष्णा तृतीया को पूज्य उपाचार्यश्री का जन्मोत्सव बड़े उत्साह से मनाया
सन्त-सतियों एवं श्रावक-श्राविकाओं के अलावा स्वयं उपाचार्यश्रीजी ने जन्मदिन पर
करना चाहिए- इस विषय पर मार्मिक प्रवचन फरमाया। पूज्यश्री ने कहा– गत वर्ष के
पर दृष्टिपात कर अपनी भूलो के लिये पश्चात्ताप करना चाहिए और आगे के लिए स
करने की प्रतिज्ञा करनी चाहिए। उपाचार्यश्री के 63वें वर्षप्रवेश पर धर्म, ध्यान, त्याग,
अलावा श्रीसंघ ने हर्षोत्साह के साथ दीन, अनाथजनों को भोजन दिया तथा पशुओं
तृप्त किया।

चातुर्मास-काल में सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म. ने अपने भाव व्यक्त किये थे कि
इतने वर्ष दूर रहने से मनों में कई तरह की भ्रान्तियां थीं। लेकिन निकट में रहने से वे
भ्रांतियां दूर हुईं और उपाचार्यश्रीजी के हृदय को नजदीक से समझ पाया हूँ। आप
बर्ताव ने मुझे श्री जैनदिवाकरजी म. को भुला दिया है। अब चाहे कुछ भी हो, हम कभी
नहीं होंगे। कदाचित् श्रमण संघ बिखर सकता है, किन्तु पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म. की सम
नहीं बिखर सकती। आपश्री जो भी हुक्म देंगे, हम उसको शिरोधार्य करेंगे। यदि मुझे
खड़ा कर देंगे तो भी मैं कोई तर्क नहीं करूंगा। हमारी आप पर पूर्ण श्रद्धा हो गई

उपाचार्यश्री और उपाध्यायश्री का परस्पर व्यवहार देखकर कोई यह नहीं कह स
था कि पूज्य हुक्मीचंदजी म.सा. के सम्प्रदाय की दो धाराओं के सन्तों का यहां विराज
रहा है। उपाध्यायश्री विनयावनत थे तो उपाचार्यश्री प्रेमपयोधि थे। पूज्यश्री के अथाह प्रे
व्यवहार से सभी अभिभूत हो जाते थे।

श्रावक संघ भी एक हुआ

उदयपुर में स्थानकवासी समाज बहुत बड़ा है। यहां श्री जवाहर मित्र मण्डल एवं श्री महावीर मित्र मण्डल के नाम से दो सांप्रदायिक संस्थाएं चल रही थीं। घाणेराव सादड़ी सम्मेलन के पश्चात् दोनों संस्थाओं के विलीनीकरण के अनेक प्रयत्न हुए, परन्तु सफलता नहीं मिली।

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. एवं उपाध्यायश्री प्यारचंदजी म.सा. के इस चातुर्मास में एकता का वातावरण बना। श्री जवाहर मित्र मण्डल के कार्यकर्ता प्रजातन्त्र सिद्धान्तानुसार निर्वाचन चाहते थे जबकि श्री महावीर मित्र मण्डल के कार्यकर्ता अपना समान प्रतिनिधित्व चाहते थे।

कॉन्फरेंस के मंत्री श्री जवाहरलालजी मुणोत, संघ-ऐक्य समिति के मंत्री श्री धीरजभाई तुरखिया, कॉन्फरेंस-प्रमुख श्री चम्पालालजी बांठिया के प्रभावी भाषणों से समस्याएं सुलझने लगीं। श्री जवाहर मित्र मण्डल की ओर से श्री हिम्मतसिंहजी बावेल ने यह घोषणा करके एकता का मार्ग प्रशस्त कर दिया कि 'श्री जवाहर मित्र मण्डल अपना पृथक् अस्तित्व समाप्त करता है और श्री महावीर मित्र मण्डल के कार्यकर्ताओं को कार्यकारिणी बनाने का पूरा अधिकार देता है।'

इस समाचार का उदयपुर की समस्त जनता ने हर्ष के साथ अभिनन्दन किया। प्रवचन सभा में स्वयं पूज्यश्री एवं अन्य मुनिवरों ने इन हर्षद समाचारों पर सन्तोष प्रगट कर एकता के महत्त्व को रेखांकित किया।

पूज्यप्रवर के आभामण्डल का प्रभाव ही कुछ ऐसा था कि उनकी उपस्थिति-मात्र समस्याओं को सुलझाने में कारगर सिद्ध होती थी। उदयपुर का श्रावक संघ एक हो गया। पूरे देश में इसका प्रभावक सन्देश गया।

सोजत में मन्त्रिमण्डल के सम्मेलन का निश्चय

नवनिर्मित श्रमण संघ की व्यवस्था में दृढ़ता लाने के लिये विचार-विमर्श की आवश्यकता थी। अतः वर्षावास-काल में भी सहमंत्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म. से व्यवस्थाक-विषयक अनेक बातों पर विचारों का आदान-प्रदान हुआ था। इसी प्रसंग में यह भी विचार किया गया कि मन्त्रिमण्डल की एक बैठक होनी चाहिये, जिससे संघ-व्यवस्था में रही हुई कमियों का परिमार्जन किया जा सके और संगठन के आदर्श की पूर्ति हो सके।

इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न प्रारम्भ हुए और निर्णय किया गया कि चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन आयोजित किया जाये। अतः अधिकारी मुनिवरों के

विचार-परामर्शानुसार सं. 2009, माघ शुक्ला 2, दि. 17.1.53 से सोजत में मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन किये जाने का निश्चय करके सब अधिकारी मुनिराजों को इसकी सूचना भिजवा दी गई।

चातुर्मास में श्रोताओं ने प्रवचनों का लाभ उठाया और अत्यधिक प्रभावित हुए। आसोज सुदी 4 को रायपुर निवासी सेठ श्री लक्ष्मीचन्दजी धाड़ीवाल के ज्येष्ठ भ्राता श्री नथमलजी धाड़ीवाल की सुपुत्री एवं नागौर निवासी कन्हैयालाल बैद की धर्मपत्नी श्री सूरजकंवरबाई की भागवती दीक्षा सम्पन्न हुई।

उपाचार्यश्री संत-मण्डली के साथ विद्याभवन में

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के साथ सानन्द सम्पन्न हुआ और मगसिर कृष्णा 1 को उपाचार्यश्रीजी म.सा. सन्त-मण्डली के साथ उदयपुर नगर से विहार कर हाथीपोल के बाहर शासकीय अधिकारी श्री भभूतमलजी के बंगले पर पधारे। वहां पर पाली के कवि श्री हस्तीमलजी और श्री ताराचन्दजी ने उपाचार्यश्रीजी के गुणगान करते हुए कवितापाठ किया एवं अन्य कई व्यक्तियों ने भी उपाचार्यश्रीजी की सेवा में प्रांजल भावों से समन्वित अपने-अपने हृदयोद्गार व्यक्त किये।

दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार करके उपाचार्यश्रीजी म.सा. आदि सन्त नाई गांव पधारे और वहां एक-दो दिन विराजकर पुनः उदयपुर की प्रसिद्ध शिक्षणसंस्था विद्याभवन में पधारे और विद्यार्थियों एवं प्राध्यापकों के समक्ष शिक्षा, संस्कृति आदि के सम्बन्ध में मननीय प्रवचन फरमाया और वहां से विहार कर भुवाणा पधारे और जैन मन्दिर में विराजे।

भुवाणा जैन मन्दिर में शांति-भंग का प्रयास निष्फल

दूसरे के उत्कर्ष एवं प्रभाव को सहन नहीं करने वाले कतिपय कलहप्रिय व्यक्ति सभी जगह होते हैं। उदयपुर में भी कुछ-एक ऐसे व्यक्ति थे, जिन्हें चातुर्मास-काल में होने वाले प्रवचनों का प्रभाव, उपाचार्यश्रीजी के प्रति जनता की श्रद्धा-भक्ति, भागवती दीक्षा के समारोह की भव्यता सहन नहीं हुई और ईर्ष्या-द्वेष की प्रतिक्रिया को व्यक्त करने के लिये अवसर की टोह में रहते थे।

उदयपुर में तो इन व्यक्तियों को अवसर नहीं मिल सका। किन्तु भुवाणा गांव में वे अपनी मनोवृत्ति का प्रदर्शन करने से नहीं चूके। उन्होंने मन्दिर में आकर शोरगुल मचाना चालू कर दिया कि भगवान् के मन्दिर में ये साधु क्यों ठहर गये हैं ? इनके यहां ठहरने से भगवान् की आसातना होती है। यहां साधुओं को आहार-पानी, उठना-बैठना आदि नहीं करना चाहिये।

उन अनर्गल प्रलाप करने वालों को समझाते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि

भगवान् ने चतुर्विध संघ की स्थापना की है, जिसमे साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका– चारो तीर्थ आ जाते हैं। भगवान् के पास बहुल-से गणधर आदि संत विराजमान थे। वे उन्हीं के पास बैठकर आहार-पानी करते थे और उन्हीं की चरणछाया मे शयन आदि क्रियाएं होती थीं तो वहां साक्षात् भगवान की आसातना नहीं होती, वल्कि उनकी भक्ति और सेवा का दृश्य रहता था। जवकि यहां पर तो प्रतिमा है और वह भी खास मन्दिर के भाग में है। वहां पर सन्तों के वैठने का प्रसंग ही नहीं आता है। बाहर के भाग में, जहां पर आप लोग भी वैठते-उठते हैं, वहां पर संत ज्ञान-दर्शन-चारित्र की वृद्धि करते हुए रहते हैं। इसमें आसातना जैसी कौन-सी बात है ?

उपाचार्यश्रीजी के शांत, गंभीर और युक्तियुक्त वचनों को सुनकर वे कलहप्रिय निरुत्तर हो गये और उपाचार्यश्रीजी के समक्ष विशेष न बोलते हुए पास ही मन्दिर के प्रांगण में जहा अन्य सन्त बैठे हुए थे, आकर हो-हल्ला मचाने लगे कि यहां से बाहर निकलो, हम भगवान की पूजा करना चाहते हैं। इस स्थिति को देखकर भुवाणा के श्री सोहनलालजी आदि कुछ प्रमुख श्रावकों ने शान्ति रखने का संकेत करते हुए उन भाइयों को समझाया कि आप पूजा करना चाहते हैं तो खुशी से कीजिये। संत-महात्मा तो एक तरफ विराजमान हैं। उनसे आपको क्या लेना-देना है !

लेकिन उन लोगों का पूजा करना तो केवल बहाना था। वास्तव में उन्हें तो अपने मन की ईर्ष्या और द्वेष का प्रदर्शन करना था और चातुर्मास-काल में उपाचार्यश्रीजी के प्रवचनों से जनता में हुए प्रभाव को धूमिल करना चाहते थे। ये सव वातें पूर्वनियोजित कार्यक्रम का अंग थीं, जिनको तटस्थ दर्शक प्रकारान्तर से समझ गये।

कलहप्रिय व्यक्ति फिर भी शांत नहीं हुए और मन्दिर के द्वार पर आकर पुनः हो-हल्ला मचाना चालू कर दिया और जवरदस्ती मन्दिर में प्रवेश करने का प्रयास करने लगे। तव श्री सोहनलालजी ने पुनः उन लोगों को समझाने और शान्ति रखने का प्रयत्न किया कि आप लोगों को पूजा करना है तो शांति से कीजिये। लेकिन उन्हें तो किसी भी प्रकार से शान्ति-भंग करना अभीष्ट था और पूर्वनिर्धारित योजनानुसार पुलिस को भी वुला लिया एवं मारपीट, दंगे का रूप देने का प्रयास किया।

पुलिस अधिकारी ने आकर सारी स्थिति का गहराई से निरीक्षण किया और पूछा कि इस मन्दिर की मालिकी किसकी है ? श्री सोहनलालजी आदि श्रावकों ने वताया कि यह मन्दिर हमारा है, हम भुवाणावासियों की मालिकी का है। ये आने वाले उदयपुर के निवासी हैं और यहां इनका कोई अधिकार नहीं है। फिर भी ये यहां आये हैं तो लाठी आदि से रहित

होकर शान्तिपूर्वक मन्दिर में जाना चाहें, जा सकते हैं। लेकिन पूजा न करके अशांति फैलाने का प्रयत्न करना योग्य नहीं है।

पुलिस अधिकारी ने सही स्थिति को समझ लिया और आये हुए कलहप्रिय लोगों को उपालंभ देते हुए उदयपुर की ओर रवाना कर दिया। ये लोग आये तो थे उपद्रव करने की भावना से, लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. की शांति, गंभीरता एवं भुवाणा संघ के विवेकशील सज्जनों की दृढ़ता और शिष्टता से अपने कृत्य में सफल नहीं हुए और लज्जित होकर निराश लौटना पड़ा। विवेकहीनता का ऐसा ही कटु परिणाम होता है।

मेवाड़ में विचरण, संघीय सुव्यवस्था के लिए प्रयास

भुवाणा से सुखे-समाधे विहार कर सीरवा के घाटे पर एक मकान में रात्रि-विश्राम किया और वहां के चौकीदार ने आपके हितोपदेश को सुनकर मद्य-मांस आदि का त्याग किया। दूसरे दिन प्रातःकाल वहां से विहार कर एकलिंगजी पधारे। एकलिंगजी वैष्णव समाज का तीर्थस्थान माना जाता है। उदयपुर राज्य में एकलिंगजी की गादी मानी जाती है। वहां के महन्त की वैष्णव समाज में बड़ी प्रतिष्ठा है। वहां एकलिंगजी के मन्दिर में उपाचार्यश्रीजी का एक प्रवचन हुआ।

एकलिंगजी से विहार करके देलवाडा पधारे और प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म. से श्रमण संघ के सम्बन्ध में विचार-विमर्श हुआ। प्रधानमन्त्रीजी ने संघ विषयक कई उलझनभरी समस्याएं रखीं, जिनका उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने समाधान किया।

देलवाड़ा में कुछ दिन विराजने के पश्चात् वहां से विहार कर नाथद्वारा पधारे। यहां पर भूतपूर्व मेवाड़ संप्रदाय के सन्तों व भूतपूर्व मेवाड़ सम्प्रदाय से अलग हुए सन्तों के बीच मनमुटाव था। उस समस्त स्थिति को उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में निवेदन किया गया। जिसका आपश्री ने योग्य रीति से समाधान करके परस्पर में क्षमायाचना करायी। यहां पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म.सा. के अस्वस्थ हो जाने से पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. (बाद मे आचार्य) को सेवा में रखकर उपाचार्यश्रीजी म.सा. विहार करते हुए सेवाज पधारे। बाद में स्वस्थ होने पर सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म.सा. को लेकर पं. मुनिश्री नानालालजी म सा. भी सेवा में पधार गये।

इन दिनों उपाचार्यश्रीजी म.सा. की भी शारीरिक स्थिति कमजोर चल रही थी। अत उपाचार्यश्रीजी म.सा. सोच रहे थे कि संघ-संचालन सम्बन्धी कार्यभार अन्य किन्हीं मुनिराज को सौंप कर आत्मसाधना में लगूं। लेकिन जब यह बात समाजदर्शी वरिष्ठ श्रावकों एवं सन्तों को मालूम हुई तो उन्होंने आपश्री से ऐसा नहीं करने की प्रार्थना करते हुए साग्रह निवेदन

किया कि बड़ी मुश्किल से श्रमण संघ बना है और वह भी आपके इस भार को ग्रहण करने से ही। यदि आपश्री अभी से ही इस भार को छोड देते हैं तो यह सब-कुछ बिखर जायेगा और दूसरे लोग हंसी उड़ायेंगे। क्योंकि आपके अलावा इस समय सबके विश्वासपात्र अन्य कोई मुनिवर नहीं हैं। कुछ संत राजनीतिक दलों की तरह पैंतरेबाजी में लगे हुए हैं। अतः इस नाजुक स्थिति में आपको इस भार को कतई नहीं हटाना चाहिये।

इन प्रार्थनाओं पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने गंभीरता से विचार किया और अपनी शारीरिक स्थिति को गौण कर दिया।

मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन और महत्त्वपूर्ण विषयों पर निर्णय

मन्त्रिमण्डल-सम्मेलन के समय व स्थान को ध्यान में रखते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. मेवाड़ के विभिन्न क्षेत्रों को धर्मदेशना से पावन बनाते हुए सोजत की ओर विहार कर रहे थे। अन्य अधिकारी संत-मुनिराजों ने भी यथासमय सोजत पधारने के लिये चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर अपने-अपने क्षेत्रों से विहार कर दिया।

सोजत में पूज्य उपाचार्यश्रीजी, प्रधानमंत्री श्री आनन्दऋषिजी, श्री फूलचन्दजी म., श्री सुशीलकुमारजी म. आदि 100 सन्तों का एकसाथ नगर-प्रवेश रमणीय था। उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. एवं मरुधरकेशरीजी म.सा. आदि ने आपश्री का भव्य स्वागत किया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी आदि 85 सन्त चौपड़ाजी की धर्मशाला में विराजे। कुल 136 सन्त और 142 सतियांजी सोजत पधारे।

मन्त्रिमण्डल का सम्मेलन चौपडाजी की धर्मशाला के विशाल हाल में ही हुआ।

पूर्व निश्चयानुसार सं. 2009, माघ शुक्ला 2 से उपाचार्यश्रीजी म.सा. के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल की बैठक प्रारम्भ हुई। सम्मेलन में सचित्ताचित्त-निर्णायक समिति के 9, तिथिनिर्णायक समिति के 8 एवं मन्त्रिमण्डल के 11 सदस्य मुनिराजों या उनके प्रतिनिधि सन्तों के अतिरिक्त विशेष रूप से आमन्त्रित पं. मुनिश्री समर्थमलजी म., पं. मुनिश्री मदनलालजी म., कवि श्री अमरचन्दजी म. उपस्थित थे।

प्रतिदिन प्रातः 9 से 10.30 और दोपहर 1 से 3 बजे तक पूज्य उपाचार्यश्रीजी की अध्यक्षता एवं व्या.वा. मुनि मदनलालजी म.सा. की शांतिरक्षकता में मन्त्रिमण्डल तथा दोनों निर्णायक समितियों का कार्य संयुक्त रूप से चला।

आगम संशोधन हेतु पूज्य उपाचार्यश्रीजी म., उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म., पं.श्री समर्थमलजी म. एवं प्रधानमंत्री श्री आनन्दऋषिजी म.सा. को नियुक्त किया गया।

सम्मेलन की कार्यवाही की रिपोर्ट लिखने के लिये मुनिश्री नेमिचंदजी एवं मुनि
आईदानजी म. की नियुक्ति की गई।

प्रत्येक विचारणीय विषय पर खुलकर विचार-विमर्श हुआ। सचित्ताचित्त निर्णय
ध्वनिवर्धकयन्त्र को लेकर समाज में खूब ऊहापोह चल रहा था। उनका समाधान
आवश्यक था। नवीन और पुरातन विचारधाराओं में भी मेल बैठाना आवश्यक था। सोजत
दोनों धाराओं के गुणावगुणों के निरीक्षण का अवसर प्राप्त हुआ।

ऐसे समय में उपाचार्यश्रीजी की समता और उदारता अनायास ही सबके सा
झलकती रहती थी। आपश्री का आदर्शों के प्रति प्रगाढ़ स्नेह था। तप-त्याग ही आपके सा
जीवन के एकमात्र भोजन थे। संयम ही आपके जीवन का श्वास था।

दृष्टिकोणों की विभिन्नता के कारण आपका किसी से विरोध नहीं था, द्वेष नहीं
किन्तु सभी दृष्टिकोणों को भलीभांति समझने की एक सरल जिज्ञासा आप में सतत विद्य
रहती थी। आपके मन की मृदुता वार्त्तालाप करने वाले के मन में असद्भाव उत्पन्न नहीं
देती थी, किन्तु वार्तालाप करने के पश्चात् प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचारों का पुनर्निरी
करने की इच्छा होती थी। यही कारण है कि आपसे मतभेद रखने वालों में भी आपके प्र
मनभेद उत्पन्न नहीं होता था। अपनी इस उदारवृत्ति के कारण ही आप संघ-संगठन
साधक और शांति के सन्देशवाहक के रूप में प्रसिद्ध रहे।

पाँच बड़े सन्तों के संयुक्त चातुर्मास का निर्णय

सम्मेलन में बहुत-से प्रश्नों पर निर्णय हो चुका था। मन्त्रिमण्डल के कार्यों
विभाजन हो चुका था। लेकिन अभी भी कुछ ऐसे प्रश्न शेष रह गये थे जिन पर शास्त्रीय दृ
से विचार करना आवश्यक था। इनके बारे में सोचा गया कि उपाचार्यश्रीजी के नेतृत्व में कविवर्य
अमरचन्दजी म., व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म., प्र.मन्
श्री आनन्दऋषिजी म. और पं. र. श्री समर्थमलजी म. का संयुक्त रूप से आगामी चातुर्मा
किसी एक स्थान पर कराया जाये और उस स्थान पर फिर उन प्रश्नों के बारे में चर्चा कर
निर्णयात्मक रूप चतुर्विध संघ के समक्ष रख दिया जाये।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी से इस सम्बन्ध में स्वीकृति मांगने पर आपने फरमाया कि विच
स्तुत्य है, लेकिन संयुक्त चातुर्मास में विचारणीय विषयों की रूपरेखा, तत्संबन्धी शास्त्री
प्रमाण आदि की तैयारी हो जानी चाहिये। रूपरेखा व्यवस्थित होने पर मैं इसके बारे में कु
निश्चयात्मक कह सकता हूँ। संत-मुनिराजों ने आपके विचारों को महत्त्वपूर्ण माना और क
कि आपके विचारानुसार कार्य की रूपरेखा तैयार कर ली जायेगी।

इस सम्मेलन में तेतीस विषयों के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण निर्णय किये गये और उनमें से पच्चीस निर्णयों को चतुर्विध संघ की जानकारी के लिये यथासमय घोषित कर दिया गया। सम्मेलन दि. 30.1.53 को समाप्त हुआ।

शांतिदूत ने ब्यावर में वैमनस्य दूर कर शांति स्थापित की

सोजत सम्मेलन के अवसर पर विभिन्न श्रीसंघों ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी से अपने-अपने क्षेत्र पावन करने की विनतियां कीं। उनमें ब्यावर श्रीसंघ भी एक था। उसने अपनी प्रार्थना में कहा-- भंते ! हम पर भी कृपा कीजिये। ब्यावर का सामाजिक विरोध संघ-संगठन में चट्टान की तरह बाधक बन रहा है। आपकी पीयूषवर्षिणी वाणी द्वारा स्नेहसुधा का सिंचन होने से वहाँ एकता स्थापित हो सकती है। अतएव हमारी प्रार्थना स्वीकार करके ब्यावर पदार्पण कीजिये। हमारा पथ-प्रदर्शन कीजिये। आपका पुण्य पदार्पण हमारे लिये मंगलमय होगा। महापुरुषो का सहवास महानता का महोत्सव है।

जब मनुष्य स्वार्थपरक विचारों से प्रभावित होकर संग्रह की भावनाओ मे लिप्त हो जाता है तो वह उन साधनों को एकत्रित करने में व्यस्त रहता है, जिनसे समहूगत साधनों का व्यक्तिमूलक रूप रह जाये। इस स्थिति में विषमता का जन्म होने से सभी दुखी होते हैं। स्पष्टता, सरलता, शुद्धता एवं आनन्द का रूपान्तरण हो जाता है और रहस्य का आवरण अनेक समस्याओं को जन्म देता है, जो नैतिक मूल्यों के विकास को अवरुद्ध कर देता है। लेकिन महापुरुषों की यह विशेषता है कि वे उस विषमता में समता, समस्या में समाधान और शांति का सजृन करते हैं। उनकी अन्तर्मुखी वृत्ति आधारभूत तथ्यों पर प्रकाश डालकर सदैव निकट से निकटतर और निकटतम आने के लिये अनुप्रेरित करती रहती है।

पूज्य उपाचार्यश्री का हृदय नवनीत-सा कोमल था। आपने सब सुना और गुना। आपने सोचा-- ब्यावर में ईर्ष्या-द्वेष की आग धधक रही है। और वहां से उठने वाली ज्वालाएं आस-पास के क्षेत्रों को भी संतप्त कर रही हैं। लोग कषाय से प्रेरित होकर व्यर्थ ही कर्म-बंध कर रहे हैं। उनके चित्त में शांति स्थापित हो, मैत्रीभावना का विकास हो, स्वधर्मी-वात्सल्य का विस्तार हो और संघ से द्वेष दूर हो जाये तो उत्तम रहे। यह सोचकर आपश्री ने ब्यावर संघ की प्रार्थना को स्वीकार कर यथावसर वहाँ पहुंचने के भाव व्यक्त किये।

ब्यावर संघ की विनती मे आत्मवेदना की अभिव्यक्ति का स्वर संजोया गया था। लेकिन उसमें इतना विश्वास भी विद्यमान था कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमारा ईप्सित प्राप्त होगा। विनती की तत्काल स्वीकृति को ब्यावर श्रीसंघ ने शांति और मैत्री के लिये शुभ शकुन माना।

सोजत से विहार कर क्रम-क्रम से विभिन्न क्षेत्रों में विशिष्ट उपकार करते हुए पूज्य

उपाचार्यश्रीजी ब्यावर नगर के बहिर्भाग में आ पहुंचे और एक योग्य स्थान में ठहर गये। सभी सज्जन आपके आगमन की टकटकी लगाये बाट जोह रहे थे। शुभागमन की अगवानी करने के लिये सेवा में उपस्थित हुए, लेकिन आपश्री ने फरमाया– जब आप सब में पारस्परिक शांति स्थापित हो जायेगी, तभी हम सन्तों का नगर में प्रवेश होगा।

उपाचार्यश्रीजी का यह निर्णय ब्यावर श्रावक संघ के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर बन गया कि हमारे अहोभाग्य से महान सन्तों का पदार्पण हमारी नगर-सीमा तक तो हो चुका है, लेकिन आपसी फूट, कलह और द्वेष का वातावरण नगर-पदार्पण में व्यवधान बना है। आत्मग्लानि की अग्नि में द्वेष गलने लगा। अन्तर् में बैठा अभिमान मृदुता में रूपान्तरित होने लगा। कलह का कंकास सुलह के कलकल में परिवर्तित होने लगा। परिणामतः संघ में शांति व समझौते का वायुमण्डल बना और मैत्री, शांति स्थापित हो गई।

आपश्री ने यथासमय नगर में प्रवेश किया। उस समय ब्यावर में अपूर्व उल्लास फैल गया था। बरसों के बिछुड़े हुए गले लग रहे थे और नये प्रकाश में नये निर्माण की नींव रख रहे थे। पूज्य उपाचार्यश्रीजी के दूरन्देशी निर्णय में आदेश नहीं, लेकिन सत्य के प्रति आग्रह था। समूह की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने वाले व्यवहार और पारस्परिक असहयोग, असहकार एवं अन्याय का प्रतिकार नहीं किया जाये तो उससे व्यक्ति ही नहीं, वरन् समाज और राष्ट्र विपत्ति में फंसते हैं। उसका प्रतिकार करना साधु पुरुष अपना कर्तव्य समझते हैं। प्रभावशाली, महत्त्वपूर्ण और व्यवहार्य उपाय खोज निकालना उनके सत्य-आग्रह का ध्येय होता है। पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने यही आदर्श अपने निर्णय द्वारा व्यक्त किया था। इसीलिये तत्काल सुमति के माध्यम से समता और शांति का वातावरण बन गया।

थांवला के पार्श्ववर्ती गाँव में राजपूतों को व्यसनमुक्त किया

ब्यावर मे समता का सन्देश मुखरित कर और अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा उसको स्थायी बनाकर आपश्री ने वहाँ से जेठाणा की ओर विहार किया. रास्ते में थांवला ग्राम से कुछ ही आगे एक गांव पड़ता है। वहां अधिकतर राजपूतों के घर हैं, जो देवी-देवताओं के नाम पर या भोजन के हेतु जीवहिंसा करना साधारण कार्य समझते थे। ऐसा कोई तीज-त्यौहार नहीं होता था जब दो-चार मूक पशु मौत के घाट न उतार दिये जाते हों। सारा गांव अपरिचित था और जैनों का एक भी घर नहीं था। वहां आपश्री का एक प्रभावशाली प्रवचन हुआ। जिसे सुनकर ग्रामवासी गदगद हो गये। आपश्री ने प्रवचन में उन मानवीय भावों को स्पष्ट किया था जिनके अभाव में मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र दुखी होता है। राजपूतों को अहिंसा का महत्त्व समझाते हुए आपने फरमाया–

'अहिंसा वीरों का साधन है। कायर तो सबसे पहले मानसिक हिंसा से ही अधिक पीड़ित है। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिंसा से दूसरों को तो गिरा सके या नहीं, किन्तु अपने-आप को तो बहुत गहरे अवश्य ही गिरा देता है।

'इसलिये मेरा आप लोगों से कहना है कि यदि आप अपने-आप को परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं और इस सृष्टि में उत्कृष्ट समानता का वातावरण बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप में अहिंसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है, जिसके द्वारा आत्मसमानता यानी परमात्मवृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।'

प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पडा कि 35 व्यक्तियों ने तत्काल शिकार खेलने का परित्याग कर दिया। जुआ खेलने, मद्यपान करने तथा तमाखू आदि नशीली चीजों के सेवन करने का भी बहुत-सों ने त्याग किया।

सन्तों के सहज प्रेममय प्रवचन का जो अमृतपान कर लेता है, वह सदा के लिये सन्तों का बन जाता है। सन्तों का अपना स्वार्थ क्या है ? वे स्वात्मकल्याण के साथ परहित में स्वहित मानते हैं। परोपकार को भी आत्मकल्याण की साधना का अंग समझकर जगत् का महान्-से-महान्तम कल्याण करते हुए भी अहंकार का अनुभव नहीं करते हैं। उन्हें यह गर्व नहीं होता कि उन्होंने दूसरों को उपकृत किया है। सन्तों के जीवन की यही विशेषता होती है कि उनमें जीवन के सहायक तत्त्वों का स्वाभाविक समावेश होता है।

जोधपुर संयुक्त चातुर्मास की स्वीकृति

सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक के अवसर पर यह विचार किया गया था कि तपोपूत और ज्ञानवृद्ध सन्तों को यदि एक ही स्थान पर लम्बे समय तक निवास करने का अवसर मिले तो बहुत-सी सैद्धांतिक, आगमिक गुत्थियों को सुलझाया जा सकता है, विवादास्पद विषयों पर तथ्यसंगत समाधान खोजा जा सकता है तथा सन्तों में भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा की जा सकती है। समाज में एकता का शीतल समीरण प्रवाहित होगा। महान् सन्तों का विशुद्ध प्रेम समाज की धमनियों में अमृत का संचार करने में सहायक होगा। इन्हीं सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए सं. 2010 का चातुर्मास संयुक्त रूप से करने की योजना निश्चित की गई थी।

इस प्रकार के आयोजन के सम्बन्ध में पूज्य उपाचार्यश्रीजी के विचारों का पहले ही संकेत किया जा चुका है कि यह कल्पना अच्छी है, किन्तु जब तक इसके लिये कोई ठोस योजना तैयार नहीं कर ली जाती, तब तक उससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

उपाचार्यश्रीजी ब्यावर नगर के बहिर्भाग में आ पहुंचे और एक योग्य स्थान मे ठहर गये। सभी सज्जन आपके आगमन की टकटकी लगाये बाट जोह रहे थे। शुभागमन की अगवानी करने के लिये सेवा मे उपस्थित हुए, लेकिन आपश्री ने फरमाया– जब आप सब में पारस्परिक शांति स्थापित हो जायेगी, तभी हम सन्तों का नगर में प्रवेश होगा।

उपाचार्यश्रीजी का यह निर्णय ब्यावर श्रावक संघ के लिये आत्मनिरीक्षण का अवसर बन गया कि हमारे अहोभाग्य से महान सन्तों का पदार्पण हमारी नगर-सीमा तक तो हो चुका है, लेकिन आपसी फूट, कलह और द्वेष का वातावरण नगर-पदार्पण में व्यवधान बना है। आत्मग्लानि की अग्नि में द्वेष गलने लगा। अन्तर् में बैठा अभिमान मृदुता में रूपान्तरित होने लगा। कलह का कंकास सुलह के कलकल में परिवर्तित होने लगा। परिणामतः संघ में शांति व समझौते का वायुमण्डल बना और मैत्री, शांति स्थापित हो गई।

आपश्री ने यथासमय नगर में प्रवेश किया। उस समय ब्यावर में अपूर्व उल्लास फैल गया था। बरसों के बिछुड़े हुए गले लग रहे थे और नये प्रकाश में नये निर्माण की नींव रख रहे थे। पूज्य उपाचार्यश्रीजी के दूरन्देशी निर्णय में आदेश नहीं, लेकिन सत्य के प्रति आग्रह था। समूह की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने वाले व्यवहार और पारस्परिक असहयोग, असहकार एवं अन्याय का प्रतिकार नहीं किया जाये तो उससे व्यक्ति ही नहीं, वरन् समाज और राष्ट्र विपत्ति में फंसते हैं। उसका प्रतिकार करना साधु पुरुष अपना कर्तव्य समझते हैं। प्रभावशाली, महत्त्वपूर्ण और व्यवहार्य उपाय खोज निकालना उनके सत्य-आग्रह का ध्येय होता है। पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने यही आदर्श अपने निर्णय द्वारा व्यक्त किया था। इसीलिये तत्काल सुमति के माध्यम से समता और शांति का वातावरण बन गया।

थांवला के पार्श्ववर्ती गाँव में राजपूतों को व्यसनमुक्त किया

ब्यावर मे समता का सन्देश मुखरित कर और अपने प्रभावशाली प्रवचनों द्वारा उसको स्थायी बनाकर आपश्री ने वहाँ से जेठाणा की ओर विहार किया, रास्ते में थांवला ग्राम से कुछ ही आगे एक गांव पड़ता है। यहां अधिकतर राजपूतो के घर हैं, जो देवी-देवताओं के नाम पर या भोजन के हेतु जीवहिंसा करना साधारण कार्य समझते थे। ऐसा कोई तीज-त्यौहार नहीं होता था जब दो-चार मूक पशु मौत के घाट न उतार दिये जाते हों। सारा गांव अपरिचित था और जैनो का एक भी घर नहीं था। वहां आपश्री का एक प्रभावशाली प्रवचन हुआ। जिसे सुनकर ग्रामवासी गद्‌गद हो गये। आपश्री ने प्रवचन में उन मानवीय भावो को स्पष्ट किया था जिनके अभाव में मनुष्य ही नहीं, प्राणिमात्र दुखी होता है। राजपूतों को अहिंसा का महत्त्व समझाते हुए आपने फरमाया–

'अहिंसा वीरों का साधन है। कायर तो सबसे पहले मानसिक हिंसा से ही अधिक पीडित है। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिंसा से दूसरों को तो गिरा सके या नहीं, किन्तु अपने-आप को तो बहुत गहरे अवश्य ही गिरा देता है।

'इसलिये मेरा आप लोगों से कहना है कि यदि आप अपने-आप को परमात्मा का वफादार सेवक बनाना चाहते हैं और इस सृष्टि में उत्कृष्ट समानता का वातावरण बनाना चाहते हैं तो समग्र रूप में अहिंसा का पालन कीजिये। अहिंसा ही वह सशक्त साधन है, जिसके द्वारा आत्मसमानता यानी परमात्मवृत्ति के साध्य को साधा जा सकता है।'

प्रवचन का इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि 35 व्यक्तियों ने तत्काल शिकार खेलने का परित्याग कर दिया। जुआ खेलने, मद्यपान करने तथा तमाखू आदि नशीली चीजों के सेवन करने का भी बहुत-सों ने त्याग किया।

सन्तों के सहज प्रेममय प्रवचन का जो अमृतपान कर लेता है, वह सदा के लिये सन्तों का बन जाता है। सन्तों का अपना स्वार्थ क्या है ? वे स्वात्मकल्याण के साथ परहित में स्वहित मानते हैं। परोपकार को भी आत्मकल्याण की साधना का अंग समझकर जगत् का महान्-से-महान्तम कल्याण करते हुए भी अहंकार का अनुभव नहीं करते हैं। उन्हें यह गर्व नहीं होता कि उन्होंने दूसरों को उपकृत किया है। सन्तों के जीवन की यही विशेषता होती है कि उनमें जीवन के सहायक तत्त्वों का स्वाभाविक समावेश होता है।

जोधपुर संयुक्त चातुर्मास की स्वीकृति

सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक के अवसर पर यह विचार किया गया था कि तपोपूत और ज्ञानवृद्ध सन्तों को यदि एक ही स्थान पर लम्बे समय तक निवास करने का अवसर मिले तो बहुत-सी सैद्धांतिक, आगमिक गुत्थियों को सुलझाया जा सकता है, विवादास्पद विषयों पर तथ्यसंगत समाधान खोजा जा सकता है तथा सन्तों में भावात्मक एकता की प्रतिष्ठा की जा सकती है। समाज में एकता का शीतल समीरण प्रवाहित होगा। महान् सन्तों का विशुद्ध प्रेम समाज की धमनियों में अमृत का संचार करने में सहायक होगा। इन्हीं सब दृष्टिकोणों को ध्यान में रखते हुए सं. 2010 का चातुर्मास संयुक्त रूप से करने की योजना निश्चित की गई थी।

इस प्रकार के आयोजन के सम्बन्ध में पूज्य उपाचार्यश्रीजी के विचारों का पहले ही संकेत किया जा चुका है कि यह कल्पना अच्छी है, किन्तु जब तक इसके लिये कोई ठोस योजना तैयार नहीं कर ली जाती, तब तक उससे पूरा लाभ नहीं उठाया जा सकता है।

चातुर्मास के लिये तो योजना बनी, लेकिन विचारणीय विषयों की सूची अभी तक नहीं बनी थी और प्रायः सभी ने कहा कि चातुर्मास-स्थल पर पहुंचने के बाद बना ली जायेगी।

संयुक्त चातुर्मास सम्बन्धी पूर्व तैयारी हो चुकी थी। अब सिर्फ योग्य स्थान का निश्चय होना शेष रहा था। चतुर्विध संघ संयुक्त चातुर्मास के बारे में आतुरता से प्रतीक्षा कर रहा था कि चातुर्मास किस स्थान पर होता है। राजस्थान के सभी संघ इस अवसर का लाभ उठाने के लिये उत्सुक थे, लेकिन सुविधाजनक स्थान कौन-सा होगा, बस, यही विचारणीय रह गया था, जिससे सभी सन्त उक्त स्थान पर पधार सकें।

ब्यावर से विहार करते-करते पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. ग्राम-ग्राम में उपदेशामृत की वर्षा करते हुए जब मेड़ता पधारे तो जोधपुर श्रावक संघ सं. 2010 का संयुक्त चातुर्मास करने की प्रार्थना लेकर सेवा में उपस्थित हुआ। पूर्व में अपने द्वारा की गई कार्रवाई को पूज्यश्री के समक्ष निवेदन किया और आपने परिस्थिति को जानकर जोधपुर में चातुर्मास करने की स्वीकृति फरमाई।

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा., प्र. मन्त्री श्री आनदऋषिजी म.सा., वयोवृद्ध स्वामी श्री पूरणमलजी म.सा., व्या.वा श्री मदनलालजी म.सा., कविरत्न श्री अमरचन्दजी म.सा., सहमन्त्री श्री हस्तीमलजी म.सा. आदि ठाणा 28 एवं महासतियांजी म.सा. ठा. 62 का जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास हुआ। पं.र. बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म.सा. का भी चातुर्मास वहीं करवाया गया।

संयुक्त चातुर्मास में संघ की उदारता एवं उपाचार्यश्री की महानता के दर्शन

इस चातुर्मास में शास्त्रीय चर्चा हुई। विवादास्पद विषयों का मंथन हुआ। सादड़ी व सोजत में लिये गये निर्णयों का पर्यवेक्षण हुआ। सामाजिक एकता का आधार सुदृढ़ बनाने के विषय में मंत्रणा हुई। फिर भी जितने लाभ की आशा थी, उतना लाभ समाज को नहीं हुआ। चतुर्विध श्रीसंघ ने बृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी के अवसर पर जिस उत्साह और दृढ़ता का परिचय दिया था, वह सोजत सम्मेलन के अवसर पर परिलक्षित नहीं हुआ और जो सोजत में था, वैसा यहां दृष्टिगत नहीं हुआ था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि औपचारिकता का निर्वाह करने के लिये ही यह सब हो रहा हो। संयुक्त चातुर्मास में सम्मिलित होने वाले मुनिवरों में भी उत्साह मन्द था। जिस उद्देश्य को लेकर यह आयोजन किया गया था, उसमें उलझनें सुलझने के बजाय उलझती ही गईं और किसी प्रकार की निर्णयात्मक भूमिका नहीं बन सकी।

लेकिन इसका आशय यह भी नहीं कि चातुर्मास असफल रहा। इस समय में पूज्य उपाचार्यश्रीजी के तलस्पर्शी शास्त्रीय दृष्टिकोण, संघ-नेतृत्व की कुशलता के दर्शन हुए। आपकी सूझबूझ और हार्दिक उदारता ने सन्तों में साम्य बनाये रखने के लिये कड़ी का काम

किया। सन्तों में पारस्परिक प्रीतिभाव में जो वृद्धि हुई, वह कोई साधारण बात नही थी। सबने पारस्परिक दृष्टिकोण पर उदारतापूर्वक विचार किया। दृष्टिकोणों के प्रति मतभेद था, किन्तु मनभेद नही था। सभी सन्त यह चाहते थे कि आगम के आलोक में अनिर्णीत को निर्णीत बनायें एवं वृहत्साधु-सम्मेलन में स्वीकृत संघ-ऐक्य के आदर्श को प्रतिफलित करें।

चातुर्मास-काल में श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक जोधपुर श्रावक संघ द्वारा जोधपुर में बुलाई गई। जिसमें समाज के प्रमुख अग्रणी श्रावकों ने भाग लिया एवं संघ-संगठन बनने के बाद श्रावक संघों में जो परिवर्तन हुए अथवा नहीं हुए, उन सबकी समीक्षा कर संगठन को सुदृढ़ बनाने के निश्चय किये गये।

जोधपुर का यह चातुर्मास ऐतिहासिक था। देश के कोने-कोने से आगत स्वधर्मी बन्धुओं की व्यवस्था बहुत ही उत्तम और सुविधापूर्ण थी। सैकड़ों की संख्या में प्रतिदिन दर्शनार्थी आते, परन्तु उनका प्रबंध इस रीति से होता था कि उन्हें यह अनुभव नहीं हो पाता कि हम परदेश मे आये हैं। संघ के अग्रणी प्रमुख श्री कानमलजी नाहटा आदि सज्जनों की प्रबन्ध-व्यवस्था सराहनीय थी।

इस काल में श्रावक-श्राविकाओं और महारथी सन्तों और सतियों ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी की महानता के निकट से दर्शन किये, उनके हृदय की कोमलता, परहितवृत्ति, परदुःखकातरता और सेवाभावना आदि विशिष्टताओं का साक्षात्कार किया। संयम की साधना, ज्ञान की गाम्भीरता, तात्त्विक विवेचनाशक्ति को परखा। देदीप्यमान प्रभामण्डल से दमकते मुखमण्डल की मनोहर छटा मानवीय मनों को आकृष्ट कर लेती थी।

इन्हीं सब विशेषताओं की अभिव्यक्ति करते हुए कविवर्य श्री अमरचन्दजी म.सा. ने कहा था– पूज्यश्री का व्यक्तित्व भले ही ऊपर से लोहवत् कठोर दिखाई देता हो, किन्तु जिन्होंने उन्हें निकट से देखा है, उन्हें तो अन्तर् में कोमलता ही दिखलाई दी है। किसी ने ठीक ही कहा है– लोकोत्तर पुरुषों के चित्त को पहचानना बड़ा कठिन कार्य है। एक ओर उनमें वज्र से भी अधिक कठोरता प्रतीत होती है तो दूसरी ओर उनमें फूल से भी अधिक कोमलता के दर्शन होते हैं। यह कठोरता और कोमलता का अपूर्व संगम महापुरुषों की लोकोत्तर महिमा का द्योतक है।

संयुक्त चातुर्मास के पश्चात्

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी पाली पधारे। फिर नागौर आदि क्षेत्रों की ओर विहार हुआ। इस क्षेत्र में गोगोलाव, ब्यावर, कुचेरा, बीकानेर आदि सभी संघ अभी से आगामी वर्ष के चातुर्मास के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासनात्मक संकेत् प्राप्त करने के लिये

विनती करने लगे। लेकिन अभी चातुर्मास पूर्ण ही हुआ था और भविष्य की स्थिति भावी के अधीन थी, अतः अभी से किसी को भी संकेत देने की स्थिति नहीं बन सकी।

लेकिन कुचेरा श्रीसंघ के अग्रणी श्रावक स्व. सेठ इन्द्रचन्दजी गेलडा की धर्मपत्नी की हार्दिक इच्छा थी कि पूज्यश्रीजी का आगामी चातुर्मास कुचेरा हो। उक्त आग्रह को लेकर समय-समय पर कुचेरा श्रीसंघ के अग्रणी सेठ श्री मोहनमलजी चोरडिया, श्री भागचन्दजी गेलड़ा आदि प्रमुख सज्जन पूज्यश्री की सेवा में उपस्थित होते रहे थे।

स्थिति और समयादि को देखते हुए पूज्य उपाचार्यश्रीजी म. सा. ने सं. 2011 का चातुर्मास कुचेरा करने की स्वीकृति फरमाई और यथावसर पूज्यश्रीजी ने चातुर्मास हेतु पदार्पण किया। आपश्री के साथ ही स्थविर पद-विभूषित मुनिश्री हजारीमलजी म.सा. (जो पूज्यश्री जयमलजी म.सा. की भू.पू. सम्प्रदाय के थे) का भी कुचेरा चातुर्मास हुआ।

अधिकारी मुनिवरों के सोजत सम्मेलन और जोधपुर चातुर्मास में हुई कार्रवाई चतुर्विध संघ को ज्ञात हो चुकी थी। संघ-ऐक्य योजना पर एक आवरण-सा पडता जा रहा था। अपने विचारों से आगे कोई बढना नहीं चाहता था और एक प्रकार से गतिरोध की स्थिति बन चुकी थी।

चातुर्मास-काल मे कुछ निर्णय किये भी गये। फिर भी कुछ ऐसे प्रश्न थे, जिनके समाधान के लिये समस्त साधु-सन्तों की राय लेना उचित प्रतीत हुआ और पुनः बृहत्साधु-सम्मेलन किया जाना उपयुक्त समझा गया। इसके लिये काफी विचार-विमर्श के बाद अन्ततोगत्वा निश्चय किया गया कि अभी तक व्यवस्थापकमण्डल ने जो भी कार्रवाई की है, उसकी संपुष्टि के लिये वृहत् सम्मेलन किया जाना चाहिये।

बृहत्साधु-सम्मेलन कहाँ और किनके सान्निध्य में हो ?

चातुर्मास-काल में ही कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक कुचेरा में हुई। पुनः बृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन करने के लिये कॉन्फरेंस की ओर से प्रयत्न हो रहे थे। श्रमण संघ की प्रगति में उत्पन्न अवरोधों का निराकरण ऐसे सम्मेलन द्वारा ही हो सकता है। अतः जोधपुर चातुर्मास के अवसर पर सम्मेलन होने की भूमिका बन चुकी थी, लेकिन अब सिर्फ उपयुक्त स्थान के चयन का ही प्रश्न था कि सम्मेलन कहां किया जाये ? कॉन्फरेंस का शिष्टमण्डल एतद्विषयक विनती लेकर पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ और निवेदन किया— भगवन् ! आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन के लिये कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा ?

पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया— जोधपुर में सम्मेलन के स्थान के बारे में भी विचार-विनिमय हुआ था। उस समय मैंने अपने विचार व्यक्त किये थे कि मेरे सान्निध्य मे सम्मेलन सम्बन्धी तीन कार्य हो चुके हैं, इसलिये आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन लुधियाना आदि

क्षेत्रों में पूज्यश्री आत्मारामजी म. के सान्निध्य में होना उपयुक्त रहेगा। आज भी मेरे यही भाव हैं। यद्यपि उन्हें सम्मान का पद दिया गया था, फिर भी उपाचार्यश्री चाहते थे कि उनके सान्निध्य मे एक कार्य होने से उनका सम्मान भी रह जाएगा। उपाचार्यश्री के इस प्रकार के उदात्त विचारों को जानकर कॉन्फरेंस वाले एवं सब सन्त आश्चर्यचकित रह गये।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी के विचारानुसार कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी ने लुधियाना में वृहत्साधु-सम्मेलन होने का निश्चय कर वहां के संघ को सम्बन्धित जानकारी दी। लुधियाना संघ ने सम्मेलन के लिये कॉन्फरेंस को आमन्त्रण भेज दिया और वहां वृहत्साधु-सम्मेलन होना निश्चित हो गया।

इन्हीं दिनों के आस-पास कॉन्फरेंस के अध्यक्ष सेठ श्री चम्पालालजी बाठिया पूज्य उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ पुनः कुचेरा पहुंचे। वार्त्तालाप के प्रसंग में सम्मेलन सम्बन्धी चर्चा भी हुई। अध्यक्ष महोदय ने कहा कि वर्षावास के पश्चात् आपश्री का विहार लुधियाना की ओर होगा ? इस पर उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया कि मैं चाहता हूँ कि लुधियाना आचार्यश्री की सेवा में पहुंचूं, लेकिन यह भावी के अधीन है, उस समय तक कौन जाने क्या बने ! पहुंचना तो इस शरीर से होगा। यह शरीर कुछ शिथिल हो रहा है। घुटनों और पैरों में पीड़ा रहती है। इस अशक्तिवश यथासमय लुधियाना पहुंच सकूं या न पहुंच सकूं, कुछ निश्चित कह नहीं सकता। मैं न भी पहुंच सकूं, किन्तु मेरी ओर से कुछ सन्त लुधियाना पहुंच ही जायेंगे। अन्य प्रमुख मुनिवर वहां पहुंचेंगे ही, उन्हें समस्त कार्रवाई और विचारणीय विषय ज्ञात हैं। सादड़ी सम्मेलन में उद्देश्य निश्चित हो चुका है और अब तो उसमें रही हुई कमियों को दूर कर अमली रूप देना है।

अध्यक्ष महोदय को यह परिस्थिति विचारणीय प्रतीत हुई। उन्होंने मन्त्री मुनिवरों की सेवा में सूचना भेजी और समस्त स्थिति सामने रखी। साथ ही पथ-प्रदर्शन के लिये प्रार्थना की कि हमें क्या करना चाहिये और सम्मेलन कहां करना चाहिये ? कॉन्फरेंस-कार्यालय को भी सम्बन्धित जानकारी दी कि उपाचार्यश्रीजी लुधियाना सम्मेलन में पहुंच सकेंगे या नहीं, यह सन्देहास्पद है।

समाज के प्रमुख-प्रमुख श्रावकों, कार्यकर्ताओं का एक शिष्टमण्डल इस परिवर्तित परिस्थिति पर मार्गदर्शन प्राप्त करने हेतु आचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. की सेवा मे उपस्थित हुआ और प्रार्थना की– भगवन् ! उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. शरीर के कारण आपकी सेवा में उपस्थित होने में असमर्थ हैं। वे सम्मेलन में सम्मिलित न हो सकें तो क्या करना उचित होगा ?

पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. भद्र, सरलस्वभावी थे। उन्होंने फरमाया– आज तक

सम्मेलन का संचालन सफलता के साथ उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. करते आये हैं। उन्हें सम्पूर्ण कार्रवाई का प्रत्यक्ष अनुभव है और किसी भी परिस्थिति से अपरिचित नहीं हैं, अतएव सम्मेलन में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। साधु-सम्मेलन होना गुरुतर कार्य है। अतएव संघ-नेतृत्व के सर्वाधिकारसम्पन्न अधिकारी जहां भी सुगमतापूर्वक पहुंच सकते हो, वहीं सम्मेलन होना चाहिये। मैं स्वयं नहीं पहुंच सकूंगा तो मेरी सद्भावनाएं अवश्य वहां रहेंगी। संघ-संगठन का आदर्श फलित हो, यही मेरी आकांक्षा है।

इस प्रकार दोनों महापुरुषों ने विचार व्यक्त किये थे। यद्यपि दोनों महापुरुषों की उपस्थिति सम्मेलन में नूतन चेतना का संचार करती और संगठन को अपूर्व बल प्राप्त होता, मगर दोनों की वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता से ऐसा होना सम्भव नहीं दिख रहा था। अतः सम्मेलन के आयोजकों के समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई। सम्मेलन होना आवश्यक था, किन्तु करें तो करें कहां ?

मन्त्री मुनिवरों से इसके समाधान के लिये राय पूछी गई। उनकी राय हुई कि दोनों पूज्यश्री सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित हों तो सर्वोत्तम है। लेकिन ऐसी परिस्थिति नहीं बनती हो तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की उपस्थिति तो सर्वांशतः आवश्यक है ही। आचार्यश्री पूज्य आत्मारामजी म.सा. अपने संघ में सम्माननीय स्थिति के स्वामी हैं और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का संघ-संचालन एवं अनुशासन-पालन करवाने आदि का दायित्व व श्रमण संघ सम्बन्धी अनुभव मूल्य रखता है। ऐसी स्थिति में पूज्य आचार्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त करके उपाचार्यश्रीजी के सान्निध्य में सम्मेलन करना ही उपयुक्त होगा।

इन विचारों को साथ लेकर कॉन्फरेंस का शिष्टमण्डल कुचेरा में पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना की कि आचार्यश्री पूज्य आत्मारामजी म.सा. ने फरमाया है कि आपश्री जहां पर उपस्थित हो सकें, वहीं पर सम्मेलन करना उपयुक्त होगा। अतः आपश्री कितनी दूर और कितने समय में पधार सकेंगे, इसका कुछ आभास हो जाये तो उसी स्थान पर सम्मेलन करने का सोचा जाये।

आपश्रीजी ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि मैं इस समय क्या कहूँ, मेरे शरीर की स्थिति प्रत्यक्ष है। घुटनों में दर्द और कमजोरी विशेष प्रतीत होती है। इसलिये इस स्थिति में निश्चित स्थान का निर्णयात्मक उत्तर कैसे दे दूं ?

वृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में करने की घोषणा

शिष्टमण्डल ने निवेदन किया कि आपश्री यहां से शनैः-शनैः विहार कर भीनासर तक तो पधार ही जायेंगे। उपचार की दृष्टि से भीनासर, बीकानेर आदि क्षेत्रों की अपेक्षा अन्य कोई

स्थान योग्य प्रतीत नहीं होता है। उधर का सूखा जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा है और भीनासर, बीकानेर क्षेत्रों का इसके लिये आग्रह भी अधिक है। अत. आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में हो, ऐसी हम लोगों की भी राय है। इसलिये आपश्री भीनासर मे बृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा फरमाकर साधु-मुनिराजों को सूचना करवाने की कृपा करें।

पूज्य उपाचार्यश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि बृहत्साधु-सम्मेलन आचार्यश्री आत्मारामजी म. के समीप हो आदि विषयक अपने विचार मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ। इस समय भी वैसे ही विचार रखता हूँ फिर भी आप आचार्यश्री आत्मारामजी म. व अन्य अधिकारी मुनिवरो के अभिप्राय को लेकर पुनः यहां उपस्थित हुए हैं और अधिकारी मुनिवर भी मेरी उपस्थिति अनिवार्य समझते हैं, सो ज्ञात हुआ। लेकिन मैं अपने पूर्व के विचारानुसार मेरे सान्निध्य में बृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा करना उपयुक्त नहीं समझता। पर यह अवश्य कहता हूँ कि संत-संगठन सर्वतोभावेन सुदृढ़ बने। उसके निर्णयों का उसी रूप मे अनुपालन हो। प्रत्येक सन्त संयम-तप-त्याग का स्वयं पालन करे और इसी प्रकार दूसरों से पालन कराने का ध्यान रखवाये। तभी संघ-संगठन सबल, प्राणवान और सफल हो सकेगा। अतः यह विषय अधिकारी मुनिवरों के उत्साह पर निर्भर है।

शिष्टमण्डल भी इस स्थिति को समझता था। साथ ही स्थिति की गम्भीरता का तकाजा था कि वर्तमान परिस्थिति के समाधान के लिये पुनः साधु-सम्मेलन का आयोजन हो जाना चाहिये। शिष्टमण्डल ने पुनः मन्त्री मुनिवरों आदि से विचार-परामर्श कर प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म.सा. द्वारा भीनासर में बृहत्साधु-सम्मेलन करने की घोषणा करवाई।

उपाचार्यश्री की शारीरिक स्थिति दुर्बल किन्तु साधना जाग्रत्

इन दिनों उपाचार्यश्रीजी म.सा. की शारीरिक दुर्बलता इतनी अधिक वढ गई थी कि दो-ढाई मील पैदल चलते ही सर्वांग में पसीना छूट जाता था। घूटनों में दर्द बना ही रहता था। लेकिन इतना सब होने पर साध्वोचित आचार-विचार में किसी प्रकार की शिथिलता, उदासीनता या उपेक्षा नहीं थी। साधना के प्रति सतत जागृति पूर्ववत् थी।

कुचेरा से देशनोक पदार्पण

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् कुचेरा से बीकानेर क्षेत्र की ओर पूज्य उपाचार्यश्रीजी का विहार हुआ। विहार बहुत ही धीमी गति से होता था। कुचेरा से फिरोद पधारे। यहां के श्रावक संघ की विशेष अभिलाषा थी कि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. कुछ दिन यहां विराजें। कुचेरा में इसके लिये सेवा में विनती की थी। फिरोद पधारते ही वहां के श्रीसंघ में विशेष उत्साह

सम्मेलन का संचालन सफलता के साथ उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. करते आये हैं। उन्हें सम्पूर्ण कार्रवाई का प्रत्यक्ष अनुभव है और किसी भी परिस्थिति से अपरिचित नहीं हैं, अतएव सम्मेलन में उनकी उपस्थिति आवश्यक है। साधु-सम्मेलन होना गुरुतर कार्य है। अतएव संघ-नेतृत्व के सर्वाधिकारसम्पन्न अधिकारी जहां भी सुगमतापूर्वक पहुंच सकते हों, वहीं सम्मेलन होना चाहिये। मैं स्वयं नहीं पहुंच सकूंगा तो मेरी सद्‌भावनाएं अवश्य वहां रहेगी। संघ-संगठन का आदर्श फलित हो, यही मेरी आकांक्षा है।

इस प्रकार दोनों महापुरुषों ने विचार व्यक्त किये थे। यद्यपि दोनों महापुरुषों की उपस्थिति सम्मेलन मे नूतन चेतना का संचार करती और संगठन को अपूर्व बल प्राप्त होता, मगर दोनों की वृद्धावस्था और शारीरिक दुर्बलता से ऐसा होना सम्भव नहीं दिख रहा था। अतः सम्मेलन के आयोजकों के समक्ष एक जटिल समस्या उत्पन्न हो गई। सम्मेलन होना आवश्यक था, किन्तु करें तो करें कहां ?

मन्त्री मुनिवरों से इसके समाधान के लिये राय पूछी गई। उनकी राय हुई कि दोनों पूज्यश्री सम्मेलन के अवसर पर उपस्थित हों तो सर्वोत्तम है। लेकिन ऐसी परिस्थिति नहीं बनती हो तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की उपस्थिति तो सर्वांशतः आवश्यक है ही। आचार्यश्री पूज्य आत्मारामजी म.सा. अपने संघ में सम्माननीय स्थिति के स्वामी हैं और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का संघ-संचालन एवं अनुशासन-पालन करवाने आदि का दायित्व व श्रमण संघ सम्बन्धी अनुभव मूल्य रखता है। ऐसी स्थिति में पूज्य आचार्यश्री का आशीर्वाद प्राप्त करके उपाचार्यश्रीजी के सान्निध्य में सम्मेलन करना ही उपयुक्त होगा।

इन विचारों को साथ लेकर कॉन्फरेंस का शिष्टमण्डल कुचेरा मे पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ और प्रार्थना की कि आचार्यश्री पूज्य आत्मारामजी म.सा. ने फरमाया है कि आपश्री जहां पर उपस्थित हो सकें, वहीं पर सम्मेलन करना उपयुक्त होगा। अतः आपश्री कितनी दूर और कितने समय में पधार सकेंगे, इसका कुछ आभास हो जाये तो उसी स्थान पर सम्मेलन करने का सोचा जाये।

आपश्रीजी ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि मैं इस समय क्या कहूँ, मेरे शरीर की स्थिति प्रत्यक्ष है। घुटनों में दर्द और कमजोरी विशेष प्रतीत होती है। इसलिये इस स्थिति में निश्चित स्थान का निर्णयात्मक उत्तर कैसे दे दूं ?

वृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में करने की घोषणा

शिष्टमण्डल ने निवेदन किया कि आपश्री यहां से शनैः-शनैः विहार कर भीनासर तक तो पधार ही जायेंगे। उपचार की दृष्टि से भीनासर, बीकानेर आदि क्षेत्रों की अपेक्षा अन्य कोई

स्थान योग्य प्रतीत नहीं होता है। उधर का सूखा जलवायु स्वास्थ्य की दृष्टि से अच्छा है और भीनासर, बीकानेर क्षेत्रों का इसके लिये आग्रह भी अधिक है। अतः आगामी बृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में हो, ऐसी हम लोगों की भी राय है। इसलिये आपश्री भीनासर में वृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा फरमाकर साधु-मुनिराजों को सूचना करवाने की कृपा करें।

पूज्य उपाचार्यश्री ने प्रत्युत्तर में फरमाया कि वृहत्साधु-सम्मेलन आचार्यश्री आत्मारामजी म. के समीप हो आदि विषयक अपने विचार मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ। इस समय भी वैसे ही विचार रखता हूँ फिर भी आप आचार्यश्री आत्मारामजी म. व अन्य अधिकारी मुनिवरो के अभिप्राय को लेकर पुनः यहां उपस्थित हुए हैं और अधिकारी मुनिवर भी मेरी उपस्थिति अनिवार्य समझते हैं, सो ज्ञात हुआ। लेकिन मैं अपने पूर्व के विचारानुसार मेरे सान्निध्य में वृहत्साधु-सम्मेलन होने की घोषणा करना उपयुक्त नहीं समझता। पर यह अवश्य कहता हूँ कि संत-संगठन सर्वतोभावेन सुदृढ बने। उसके निर्णयों का उसी रूप में अनुपालन हो। प्रत्येक सन्त संयम-तप-त्याग का स्वयं पालन करे और इसी प्रकार दूसरों से पालन कराने का ध्यान रखवाये। तभी संघ-संगठन सबल, प्राणवान और सफल हो सकेगा। अतः यह विषय अधिकारी मुनिवरों के उत्साह पर निर्भर है।

शिष्टमण्डल भी इस स्थिति को समझता था। साथ ही स्थिति की गम्भीरता का तकाजा था कि वर्तमान परिस्थिति के समाधान के लिये पुनः साधु-सम्मेलन का आयोजन हो जाना चाहिये। शिष्टमण्डल ने पुनः मन्त्री मुनिवरों आदि से विचार-परामर्श कर प्रधानमन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म.सा. द्वारा भीनासर में वृहत्साधु-सम्मेलन करने की घोषणा करवाई।

उपाचार्यश्री की शारीरिक स्थिति दुर्बल किन्तु साधना जाग्रत्

इन दिनों उपाचार्यश्रीजी म.सा. की शारीरिक दुर्बलता इतनी अधिक बढ़ गई थी कि दो-ढाई मील पैदल चलते ही सर्वांग में पसीना छूट जाता था। घूटनों में दर्द बना ही रहता था। लेकिन इतना सब होने पर साध्वोचित आचार-विचार में किसी प्रकार की शिथिलता, उदासीनता या उपेक्षा नहीं थी। साधना के प्रति सतत जागृति पूर्ववत् थी।

कुचेरा से देशनोक पदार्पण

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् कुचेरा से बीकानेर क्षेत्र की ओर पूज्य उपाचार्यश्रीजी का विहार हुआ। विहार बहुत ही धीमी गति से होता था। कुचेरा से फिरोद पधारे। यहां के श्रावक संघ की विशेष अभिलाषा थी कि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. कुछ दिन यहां विराजें। कुचेरा में इसके लिये सेवा में विनती की थी। फिरोद पधारते ही वहां के श्रीसंघ में विशेष उत्साह

व्याप्त हो गया। जहां पर सन्तों का पदार्पण होता है, वहां सद्भावना, सद्विचार और सद्गुणों का वातावरण स्वयमेव निर्मित हो जाता है। फिरोद में ज्ञान-साधना के साथ संयम-साधना का विशेष उद्योत हुआ। स्थानीय संघ की ओर से दो अठाइयां एवं अनेक वेला, तेला, चौला आदि तपस्याएं शक्त्यनुसार हुई।

फिरोद से आप डेह पधारे। किन्तु आपके पदार्पण से पूर्व ही आपकी यशःकीर्ति का आगमन हो चुका था। वहां के दिगम्बर जैन बन्धुओं ने आपके पदार्पण के अवसर पर मंगल महोत्सव मनाया। साधु किसी वर्गविशेष के नहीं होते हैं, उनके सभी पूजक होते हैं। गुण पूजा के योग्य होते हैं अतः पूज्य उपाचार्यश्रीजी के शुभागमन पर समस्त जैन बन्धुओं ने श्रद्धा व्यक्त की तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। डेह में भी अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। डेह से नागौर आदि क्षेत्रों को पवित्र करते हुए देशनोक पदार्पण किया।

चातुर्मास हेतु बीकानेर संघ की विनती

बीकानेर श्रावक संघ वर्षों से पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास अपने यहां होने के लिये लालायित था। इसके लिये पहले भी अनेक स्थानों पर एतदर्थ विनती कर चुका था और कुचेरा में तो संघ के सभी प्रमुख श्रावकों ने उपस्थित होकर सं. 2012 का चातुर्मास बीकानेर में ही करने के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासन प्राप्त करने के लिये आग्रहपूर्ण विनती की थी। लेकिन अभी समय दूर था, अतः ऐसी स्थिति नहीं बन सकी थी कि तत्काल उत्तर दिया जा सके।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी के देशनोक पधारने पर स्थानीय संघ के आबाल-वृद्ध नर-नारी आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने के लिये सेवा में उपस्थित हुए। नोखामण्डी, देशनोक, भीनासर, गंगाशहर आदि सभी क्षेत्र इसका लाभ प्राप्त करने के लिये इच्छुक थे और इस अलभ्य अवसर से चूकना नहीं चाहते थे।

लेकिन सभी क्षेत्रों के केन्द्र में बीकानेर था और बीकानेर में चातुर्मास होने से स्थानीय एवं आस-पास के क्षेत्रों में विशेष धर्मभावना होने की संभावना होने से पूज्य उपाचार्यश्रीजी म. सा. ने सं. 2012 का चातुर्मास संभावित आगारों के साथ साधु-मर्यादानुसार बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

विद्वेषी लोगों द्वारा फैलाया विपाक्त वातावरण स्वतः शांत हुआ

जैसे-जैसे चातुर्मास-काल निकट आ रहा था कि उसी समय बीकानेर के कतिपय मूढ जनों ने कलुषित वातावरण बनाने के प्रयत्न कर दिये। उस वातावरण का सम्बन्ध स्थानीय श्रावक संघ से था। फिर भी प्रकारान्तर से उसमें उपाचार्यश्रीजी को संबद्ध करने का प्रयास

किया गया। आपसी विचारभिन्नता एवं मनमुटाव को सम्पूर्ण संघ पर लादने के प्रयत्न हुए और उनके इस कार्य मे प्रत्यक्ष रूप से तो बीकानेर के एक-दो व्यक्ति शामिल थे, लेकिन अप्रत्यक्ष में और भी थे, ऐसी कल्पनाएँ चलती थीं।

इस वातावरण की जानकारी पूज्य उपाचार्यश्रीजी को भी हुई और वे अपने आगारों के साथ अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये स्वतन्त्र थे। लेकिन स्थानीय संघ के 427 वयस्क सदस्यों ने 21 जून, 55 को सामूहिक रूप में अपने हस्ताक्षरों से युक्त लिखित प्रार्थना-पत्र सेवा में प्रस्तुत कर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

बीकानेर का शानदार चातुर्मास

यथासमय पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास हेतु बीकानेर पदार्पण हुआ। नगर-प्रवेश के समय जो जुलूस निकला और भव्य वातावरण बना, वह नगर के इतिहास में अनूठा था। शाही जुलूसों में विविधता हो सकती है और दर्शनीय वस्तुओं को जुटाया जा सकता है, लेकिन मानसिक उल्लास का भी उसमें समन्वय हो, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। लेकिन इस संत-स्वागत-जुलूस में मानवीय मनों के उत्साह, श्रद्धा, विनम्रता का विकास रूप था और इनके विकास के कारण थे वंदनीय संत और उनमें भी श्रमण संघ के प्रमुख पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा.। राजमार्ग पर बढते चरणों में सहस्रों मस्तक झुक जाते थे, अतृप्त नेत्र एकटक लगाये बहुत दूर से ही पलक-पांवड़े बिछा देते थे और जयघोषों का समवेत स्वर चतुर्दिक् को गुंजायमान कर देता था।

उपाचार्यश्रीजी चातुर्मास हेतु श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया पारमार्थिक ट्रस्ट भवन में विराजे। बीकानेर की आवाल-वृद्ध जनता आपकी प्रवचन-गंगा में डुबकियां लगा रही थी। प्रतिदिन सहस्रो नर-नारी आपकी व्याख्यान-वाणी के पीयूष का पान करके अपने जीवन को धन्य मान रहे थे। जिज्ञासु-जन सिद्धान्तों की गूढ गुत्थियों की सुलझा रहे थे। सर्वत्र शान्ति का संचार हो रहा था। आस-पास के क्षेत्रों के भव्यजन भी सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होते थे। प्रतिदिन नये-नये क्षेत्रों के दर्शनार्थी आते और सहज प्राप्त अवसर से लाभ उठाते थे।

पहले जो विषाक्त वातावरण बना था, शांत हो चुका था। लेकिन विघ्नसंतोषी व्यक्ति कुमन्त्रणाएं कर रहे थे कि यह शांति किस प्रकार भंग की जाये ? यह बना-बनाया खेल किस प्रकार विगाड़ा जाये ? कुमन्त्रणाओं का जोर था। जगत् में सर्वत्र, सर्वदा इस प्रकार के लोगों की न कमी रही है और न रहेगी। मनुष्य के मन का पाप पुण्य का परिधान धारण करके सदा मानव-जाति को धोखा देता आया है। इस पाप का विस्फोट जिस रूप में हुआ, उससे समाज

व्याप्त हो गया। जहां पर सन्तों का पदार्पण होता है, वहां सद्भावना, सद्विचार और सद्गुणों का वातावरण स्वयमेव निर्मित हो जाता है। फिरोद में ज्ञान-साधना के साथ संयम-साधना का विशेष उद्योत हुआ। स्थानीय संघ की ओर से दो अठाइयां एवं अनेक बेला, तेला, चौला आदि तपस्याएं शक्त्यनुसार हुईं।

फिरोद से आप डेह पधारे। किन्तु आपके पदार्पण से पूर्व ही आपकी यशःकीर्ति का आगमन हो चुका था। वहां के दिगम्बर जैन वन्धुओं ने आपके पदार्पण के अवसर पर मंगल महोत्सव मनाया। साधु किसी वर्गविशेष के नहीं होते हैं, उनके सभी पूजक होते हैं। गुण पूजा के योग्य होते हैं अतः पूज्य उपाचार्यश्रीजी के शुभागमन पर समस्त जैन वन्धुओं ने श्रद्धा व्यक्त की तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। डेह में भी अच्छी धर्म-प्रभावना हुई। डेह से नागौर आदि क्षेत्रों को पवित्र करते हुए देशनोक पदार्पण किया।

चातुर्मास हेतु बीकानेर संघ की विनती

बीकानेर श्रावक संघ वर्षों से पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास अपने यहां होने के लिये लालायित था। इसके लिये पहले भी अनेक स्थानों पर एतदर्थ विनती कर चुका था और कुचेरा में तो संघ के सभी प्रमुख श्रावकों ने उपस्थित होकर सं. 2012 का चातुर्मास बीकानेर में ही करने के लिये कुछ-न-कुछ आश्वासन प्राप्त करने के लिये आग्रहपूर्ण विनती की थी। लेकिन अभी समय दूर था, अतः ऐसी स्थिति नहीं बन सकी थी कि तत्काल उत्तर दिया जा सके।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी के देशनोक पधारने पर स्थानीय संघ के आबाल-वृद्ध नर-नारी आगामी चातुर्मास की स्वीकृति फरमाने के लिये सेवा मे उपस्थित हुए। नोखामण्डी, देशनोक, भीनासर, गंगाशहर आदि सभी क्षेत्र इसका लाभ प्राप्त करने के लिये इच्छुक थे और इस अलभ्य अवसर से चूकना नहीं चाहते थे।

लेकिन सभी क्षेत्रों के केन्द्र में बीकानेर था और बीकानेर में चातुर्मास होने से स्थानीय एवं आस-पास के क्षेत्रों में विशेष धर्मभावना होने की संभावना होने से पूज्य उपाचार्यश्रीजी म. सा. ने सं. 2012 का चातुर्मास संभावित आगारों के साथ साधु-मर्यादानुसार बीकानेर में करने की स्वीकृति फरमाई।

विद्वेषी लोगों द्वारा फैलाया विषाक्त वातावरण स्वतः शांत हुआ

जैसे-जैसे चातुर्मास-काल निकट आ रहा था कि उसी समय बीकानेर के कतिपय मूढ़ जनों ने कलुषित वातावरण बनाने के प्रयत्न कर दिये। उस वातावरण का सम्बन्ध स्थानीय श्रावक संघ से था। फिर भी प्रकारान्तर से उसमें उपाचार्यश्रीजी को संबद्ध करने का प्रयास

किया गया। आपसी विचारभिन्नता एवं मनमुटाव को सम्पूर्ण संघ पर लादने के प्रयत्न हुए और उनके इस कार्य में प्रत्यक्ष रूप से तो बीकानेर के एक-दो व्यक्ति शामिल थे, लेकिन अप्रत्यक्ष में और भी थे, ऐसी कल्पनाएँ चलती थीं।

इस वातावरण की जानकारी पूज्य उपाचार्यश्रीजी को भी हुई और वे अपने आगारों के साथ अन्यत्र चातुर्मास करने के लिये स्वतन्त्र थे। लेकिन स्थानीय संघ के 427 वयस्क सदस्यों ने 21 जून, 55 को सामूहिक रूप में अपने हस्ताक्षरों से युक्त लिखित प्रार्थना-पत्र सेवा में प्रस्तुत कर चातुर्मास करने की स्वीकृति प्राप्त कर ली थी।

बीकानेर का शानदार चातुर्मास

यथासमय पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास हेतु बीकानेर पदार्पण हुआ। नगर-प्रवेश के समय जो जुलूस निकला और भव्य वातावरण बना, वह नगर के इतिहास में अनूठा था। शाही जुलूसों में विविधता हो सकती है और दर्शनीय वस्तुओं को जुटाया जा सकता है, लेकिन मानसिक उल्लास का भी उसमें समन्वय हो, ऐसा निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। लेकिन इस संत-स्वागत-जुलूस में मानवीय मनों के उत्साह, श्रद्धा, विनम्रता का विकास रूप था और इनके विकास के कारण थे वंदनीय संत और उनमें भी श्रमण संघ के प्रमुख पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा.। राजमार्ग पर बढ़ते चरणो में सहस्रो मस्तक झुक जाते थे, अतृप्त नेत्र एकटक लगाये बहुत दूर से ही पलक-पांवड़े बिछा देते थे और जयघोषो का समवेत स्वर चतुर्दिक् को गुंजायमान कर देता था।

उपाचार्यश्रीजी चातुर्मास हेतु श्री अगरचन्द भैरोंदान सेठिया पारमार्थिक ट्रस्ट भवन में विराजे। बीकानेर की आबाल-वृद्ध जनता आपकी प्रवचन-गंगा में डुबकियां लगा रही थी। प्रतिदिन सहस्रों नर-नारी आपकी व्याख्यान-वाणी के पीयूष का पान करके अपने जीवन को धन्य मान रहे थे। जिज्ञासु-जन सिद्धान्तों की गूढ गुत्थियों की सुलझा रहे थे। सर्वत्र शान्ति का संचार हो रहा था। आस-पास के क्षेत्रों के भव्यजन भी सैकड़ों की संख्या में उपस्थित होते थे। प्रतिदिन नये-नये क्षेत्रों के दर्शनार्थी आते और सहज प्राप्त अवसर से लाभ उठाते थे।

पहले जो विषाक्त वातावरण बना था, शांत हो चुका था। लेकिन विघ्नसंतोषी व्यक्ति कुमन्त्रणाएं कर रहे थे कि यह शांति किस प्रकार भंग की जाये ? यह बना-बनाया खेल किस प्रकार बिगाड़ा जाये ? कुमन्त्रणाओं का जोर था। जगत् में सर्वत्र, सर्वदा इस प्रकार के लोगों की न कमी रही है और न रहेगी। मनुष्य के मन का पाप पुण्य का परिधान धारण करके सदा मानव-जाति को धोखा देता आया है। इस पाप का विस्फोट जिस रूप में हुआ, उससे समाज

मे रोप व्याप्त हो गया। यह मन का पाप वाचनिक न रहकर लिखित रूप में फैलने लगा। प्रतिदिन नये-नये आरोपों के साथ पर्चे प्रकाशित होने लगे कि किसी-न-किसी प्रकार वीकानेर संघ मे आपसी मनमुटाव वढे, उसकी एकवाक्यता छिन्न-भिन्न हो। लेकिन वीकानेर श्रावक संघ मे सूझबूझवालों की कमी नहीं थी।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी पर प्रायः प्रतिदिन पर्चे-रूपी पुष्पवर्षा होती। चार माह तक विघ्नसंतोपियों, परनिन्दकों की जितनी कलुषता हो सकती थी, वह उभर रही थी। अन्तर् की मलिनता वाहर आ रही थी और धीरे-धीरे अन्तरंग साफ होता जा रहा था। इसके लिये संतों के पास एक ही अमोघ औपधि थी– क्षमा, दया, समता, सहिष्णुता के समक्ष पाप, वुराई, निन्दा, चुगली एवं आरोप-प्रत्यारोप टिक नहीं सकते। निन्दकों ने पूज्यश्री की निन्दा की, उपसर्ग किये, घृणित आरोप लगाये। निन्दा के रोग से आक्रान्त व्यक्तियों के द्वारा जो-कुछ भी किया जा सकता था, सव किया गया, करने में किसी प्रकार की कसर नहीं छोडी, फिर भी आप *सागरवत् गम्भीर, हिमालयवत् सुस्थिर, महादेव की तरह इस गरल का पान करते रहे।* इससे जनता में वहुत रोषयुक्त वातावरण वन गया और उससे वह उत्तेजना कभी-कभी बाहर व्यक्त होने को तत्पर-सी परिलक्षित होती थी। लेकिन उपाचार्यवर की शांत, सुधारसमय वाणी उस उत्तेजना को प्रशान्त बना देती थी। उपाचार्यश्री फरमाते थे कि आप लोग मेरे ऊपर होने वाली अनुचित बातों से उत्तेजित न होवें। ऐसे व्यक्तियों से जीवन से प्रेरणा लेनी चाहिये। वे सदा ही साधकों को सावधानी दिलाते हैं।

भगवान् महावीर का क्षमाधर्म कितना जीवन में उत्तर पाया है ? इस बात की एक तरह से परीक्षा है। अतः उनको शत्रु न समझ कर जीवन-साधना में जाग्रत् करने वाले सहायक समझो। नीतिकारों ने भी कहा है कि 'जीवन्तु में शत्रुगणाः सदैव, येपां प्रसादात्सुविचक्षणोहम्' आदि आशय के भावों को सुनकर जनता मन्त्रमुग्ध-सी हो जाती। दूध के उफान में पानी का छींटा पड़ जाने से जैसे दूध शान्त हो जाता है, वैसे ही उपाचार्यश्रीजी म.सा. के वचनामृत-जल से जनता का उफान शान्त हो जाता था। इस प्रकार की आपश्री की वृत्ति को देख मानो कवि की वाणी मुखरित हो उठी कि ये गणेश हैं या महादेव-

> तन पर है धर्म धूलि खासी,
> मृगछाल महाव्रत ओढ़े हैं।
> जिन-वृष पर हैं आरूढ, उमा-
> अनुभूति से प्रीति जोड़े हैं।
> तिरसूल सदा रत्नत्रय ले,

मानस-सर नित तीर बसें।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव,
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?
पुरुषार्थ चतुष्टय भुजा चार,
शशिकला कीर्ति छवि छायी है।
उपदेशामृत पावन गंगा भी,
वसुधा पर आज बहाई है।
पी लिया कषाय कठिन विष को,
शल्यत्रय त्रिपुर भी धू-धू दहे।
गुरुवर तुम सच्चे महादेव,
तुमको गणेश हम कैसे कहें ?

अन्त में उन सन्त-निन्दकों को निन्दाजनित अवहेलना, जनता की घृणा और अन्त:करण के पश्चात्ताप की प्राप्ति हुई। अधिक आवेश में किये गये कृत्य का परिमाण सदैव दुखद, दुस्सह होता है।

लेकिन इस वातावरण से पूज्य उपाचार्यश्रीजी को अक्षय यश और जनता की अटूट श्रद्धा की प्राप्ति हुई। इसका एकमात्र कारण थी अनुपम सहिष्णुता की शीतल छाया, संयम के प्रति सतत चेतना और आत्मालोचन के स्वतः प्राप्त अवसर का सदुपयोग करने की सहज-स्वाभाविक वृत्ति। उपाचार्यश्रीजी म.सा. की इस प्रकार की अनुपम सहिष्णुता, गम्भीरता एवं उदारता आदि अन्य सन्तों के लिए भी अनुकरणीय है।

संयमी जीवन की गरिमा का ज्वलन्त उदाहरण

उपाचार्यश्री मर्यादा की पालना में दृढ़ थे, तो अपने अधीनस्थ मुनिवृन्द से पालन करवाने में भी उतने ही दृढ थे।

इसी चातुर्मास की घटना है। एक बार एक सन्त श्री अजीतमलजी पारख के घर शास्त्र-याचना के लिये गये। श्री पारखजी की धर्मपत्नी घर पर थी। मुनि ने शास्त्र की याचना की। शास्त्र श्रीमती पारख के पास नहीं था। वह अपने मायके, जो श्री मंगलचन्दजी मालू के यहाँ था, गई। श्री मालूजी के यहाँ शास्त्रों का दुर्लभ संग्रह तो था ही, वे नये लेखन का कार्य भी करवाते थे। वहाँ से शास्त्र क्रय किया और यथासमय सन्त को बहरा दिया।

उपाचार्यश्रीजी के कानों में इस घटना की भनक पडी तो कुछ दिनो बाद वे श्री पारखजी के घर पर पहुँच गये। घर पर श्रीमती पारख एवं उनका पुत्र पीरदान था।

उपाचार्यश्री ने श्राविका से पूर्ण जानकारी ली। श्राविका ने सहज-सरल भाव से कहा– सन्तो ने संकेत किया अतः मैंने शास्त्र लाकर दिया। गलती के लिये क्षमा चाहती हूँ।

उपाचार्यश्री ने श्राविका को हिदायत दी कि श्रमणाचार की शुद्धि बनी रहे, यह कार्य मात्र आचार्य का नहीं होता। श्रावक-श्राविकाओं को भी इसका पूर्ण ध्यान रखना चाहिये।

उपाचार्यश्री के लिये संयमी जीवन में मोच, कटौती बर्दाश्त के बाहर थी। सन्त को, जिसने बिना गवेषणा शास्त्र ग्रहण किया, उचित प्रायश्चित्त दिया। संयमी जीवन की गरिमा का यह ज्वलन्त उदाहरण है।

चातुर्मास के चार माह छिन में व्यतीत हो गये। चार माह के दिन, चार दिन जैसे ही प्रतीत हुए। ऐसा मालूम पड़ता था कि अभी कल ही तो चातुर्मास प्रारम्भ हुआ था। पूज्य उपाचार्यश्रीजी की दिव्य देशना कल ही तो प्रारम्भ हुई थी और आज पूरी भी हो गई ! श्रोताओं को होश तब आया जब सुना कि चातुर्मास समाप्त हो गया और कल उपाचार्यश्रीजी का विहार होगा। सन्त तो अपने कल्पकाल तक ही एक स्थान पर विराज सकते थे, अतः जनता का मोह उन्हें रोक नहीं सकता था।

सं. 2012, मगसिर कृष्णा 1 का प्रभात हुआ। पक्षियों के कलरव के साथ जनता में भी कलरव प्रारम्भ हो गया। आज मन भारी थे। सद्‌गुरु के सदुपदेश-श्रवण का अन्तिम दिवस जो था। सुबह से ही सेठिया कोटड़ी का सभामंडल श्रोताओं की समुपस्थिति से संपूर्ण होने लगा। विशाल सभामंडप संकुचित हो गया हो, ऐसा प्रतीत होता था। यथासमय सन्तशिरोमणि पधारे और वीतराग-वाणी की अभिव्यंजना से भव्यजनों को प्रबोध देने लगे। हजारों-हजारों नेत्र अपलक अपने श्रद्धेय पर केन्द्रित थे। नीरवता में सिर्फ श्रद्धेय की गिरा गूंज रही थी। यथासमय प्रवचन समाप्त हुआ।

अनन्तर विरागियों के विहार की वेला सन्निकट आ पहुंची थी। मध्याह्न होते-होते विहार-पथ पर पूज्यश्री ने पदार्पण किया। सहस्रों विनम्र मस्तक चरणरज प्राप्ति के लिये चरणारविन्दों में नत हो रहे थे और सहस्रों साश्रुनेत्र पादपद्‌मों को पखार रहे थे।

आखिर सन्तों ने गंतव्य मार्ग पर गमन किया। जनमेदिनी के बीच घिरे हुए जनमान्य मंथरगति से गमन करने लगे। छज्जो और अट्टालिकाओं से जय-जय के वाक्‌पुष्पों की बरखा होना प्रारम्भ हो गई। सन्त-मण्डली ने देशनोक, नोखामण्डी की ओर गमन किया। सैंकड़ों व्यक्ति तो साथ-साथ चल पड़े।

साधु-सम्मेलन की पूर्व-तैयारी में

यद्यपि सादड़ी में बृहत्साधु-सम्मेलन होकर एक श्रमण संघ का ऊपरी ढांचा बन चुका

था। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे थे, जिनका निर्णय पारस्परिक विचार-विमर्श और शास्त्रीय आधार से हो सकता था। इसी बात को लक्ष्य में रखकर सोजत में मन्त्री मुनिवरों का सम्मेलन हुआ और उसके पश्चात् जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास भी हुआ था। उक्त दोनों अवसरों पर प्रत्येक अनिर्णीत विषय पर काफी विचार-चर्चा हुई, लेकिन निष्कर्ष कुछ भी नहीं निकल सका।

यद्यपि एक आचार्य के नेश्राय में समस्त साधु-साध्वी वर्ग ने निष्ठा व्यक्त भी की थी, लेकिन पूर्ववत् अलग-अलग सिंघाडों की परिपाटी चालू थी। अधिकांश इस परम्परा का उन्मूलन करने का साहस नहीं दिखा सके। सचित्ताचित्त, ध्वनिवर्धक यंत्र, एक संवत्सरी आदि प्रश्न ऐसे जटिल बन गये कि जिनका निर्णय सर्वमान्य होना संभव नहीं रहा था। कोई भी अपने विचारों से किंचिन्मात्र भी डिगने को तैयार नही था। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रश्न को लेकर तो कुछ श्रावकों ने आन्दोलन-सा चालू कर दिया था। उनके रुख से ऐसा मालूम पड़ता था, मानो कोई निश्चित योजनानुसार समस्त कार्रवाई हो रही है और कुछ मुनिवरों एवं अग्रणी श्रावकों का पीठवल हो। अभी तक मुनियों की स्खलना सम्बन्धी जो-कुछ भी घटनाए होती थीं, उन्हें उन-उन सम्प्रदायों के श्रावकगण और साधुवृन्द अन्दर-अन्दर ढांकने का प्रयत्न करते थे। लेकिन एक श्रमण संघ बनने से और सबल नेतृत्व के कारण स्खलना की घटनाएं चतुर्विध संघ के समक्ष प्रगट होने लगीं। इस कारण शिथिलाचारी साधु किसी-न-किसी प्रकार से अपनी मान-प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिये अपनी-अपनी पूर्व-सम्प्रदाय के श्रावकों को भडकाने के प्रयत्न करते थे। इन सब कारणों से सादडी में निर्मित श्रमण संघ दिनोदिन निर्वल होता जा रहा था।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी इस स्थिति से बहुत-कुछ अवगत होते जा रहे थे। आपश्री को यह स्पष्ट दिख रहा था कि सादडी सम्मेलन में स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रयत्न न होकर दलवन्दी के द्वारा अपने-अपने स्वार्थ सिद्ध करने की भावना मुनियों में वढती जा रही है। साधुवर्ग में सादडी सम्मेलन के समय उत्पन्न उत्साह, विवेक और लगन लुप्तप्रायः है और उसके स्थान पर औपचारिकता का पालन अथवा दिखावा किया जा रहा है। इस स्थिति मे सम्मेलन की सफलता संदेहास्पद थी।

समाज के अग्रणी श्रावकों को भी इस प्रकार के वातावरण से सम्मेलन की सफलता के वारे में शंका थी। श्रमण संघ के गठन की जो प्रतिक्रिया होनी चाहिये थी, उसके अनुकूल वातावरण समाज में नहीं वन सका था। साधु-सन्तों में कुछ साधु और श्रावक समुदाय में कुछ श्रावक ऊपर से अच्छा बर्ताव दिखाते थे, लेकिन अन्तरंग मे कुछ सन्तों के प्रति ईर्ष्याभाव रखते हैं, ऐसा प्रतीत होता था। यद्यपि ऊपरी तौर से एक संगठन का रूप दिखता अवश्य

था, लेकिन अन्तर् में ऐसे प्रपंच चल रहे थे कि किसी-न-किसी प्रकार यह संगठन छिन्न-भिन्न हो जाये और इसके लिये दूसरों पर दोषारोपण किया जावे।

यद्यपि सम्मेलन की सफलता की दृष्टि से इस प्रकार का वातावरण उपयोगी-सा नहीं था। किन्तु सम्मेलन होने की घोषणा हो गई थी और चातुर्मास की समाप्ति के पश्चात् कुछ-एक साधु-सन्तों का सम्मेलन के निमित्त भीनासर की ओर विहार भी हो चुका था। अतः सम्मेलन को स्थगित करना उपयुक्त नहीं समझा गया।

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् भीनासर में होने वाले बृहत्साधु-सममेलन की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गईं। साधु-सन्तों ने भी सम्मेलन को लक्ष्य मानकर भीनासर की दिशा में विहार कर दिया था। सम्मेलन प्रारम्भ होने में काफी समय था अतः पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. बीकानेर से विहार कर उदासर पधारे। उदासर में साधुमार्गी जैनों के घर कम थे, परन्तु उत्साह-उमंग देखते ही बनती थी। उपाचार्यश्रीजी आसकरण वींजराजजी शाह बोथरा के मकान में विराजे और प्रतिदिन प्रवचन-प्रभावना का ठाठ लगा रहा। प्रवचनों का साधुमार्गी जैनों के अलावा तेरहपन्थी एवं जैनेतर जनता भी खूब लाभ उठाती। तत्त्व-चर्चा आदि के द्वारा जनता ने सत्संग का आनन्द लिया। बाहर से श्रद्धालुओं का निरन्तर आवागमन बना रहा। पूरा शेषकाल यहाँ के निवासियों के लिए अमिट यादगार बन गया।

उपाचार्यश्रीजी यहां से भीनासर, उदयरामसर, देशनोक, रासीसर, सुरपूरा, नोखागाँव होते हुए माघशुक्ला 2 सोमवार को नोखामण्डी जैन जवाहर भवन में पधार गये।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. के नोखामण्डी पदार्पण के समय और भी कतिपय प्रमुख सन्त वहाँ पधार गये थे। इस अवसर पर 64 सन्त और 35 सतियों का पदार्पण हुआ। अनौपचारिक रूप से सम्मेलन के विषय में विचारों के आदान-प्रदान का क्रम चालू हो गया और सभी ने अपने-अपने दृष्टिकोणों को प्रस्तुत किया। इसी वार्त्तालाप के प्रसंग में यह सुझाव रखा गया कि सं. 2012, मिती चैत्र कृष्णा 3, गुरुवार से सम्मेलन प्रारम्भ होगा, लेकिन उसके पूर्व कुछ औपचारिक कार्यविधि को इन्हीं दिनों मे कर लिया जाये तो ठीक रहेगा।

इस सुझाव के लिये सभी उपस्थित मुनिराजों ने अपनी सहमति दर्शाई। अतः माघ शुक्ला 5 से 12 तक सात दिन मुनिवरों ने जोधपुर संयुक्त चातुर्मास की कार्रवाई, प्रधानमन्त्रीजी एवं मन्त्रिमंडल के प्रतिवेदन पर विचार-विमर्श किया और प्रायश्चित्तविधि के निर्माण के बारे में भी कुछ कार्रवाई हुई।

नोखामण्डी में सात दिन विराजने के अनन्तर सभी सन्त, जो वहां थे और विहार करते हुए पधार गये थे, सामूहिक रूप में विहार कर देशनोक पधारे। देशनोक मे साधु-मुनिराज काफी बड़ी संख्या में पधार गये थे और जो पधारने वाले थे उनकी भी जानकारी प्राप्त हो

चुकी थी, अतः विचार किया गया कि यहीं पर सम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेने वाले मुनिराजों के प्रतिनिधियों का चुनाव कर लेना चाहिये। सुझाव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया।

अतः दि. 3.3.56 को मध्याह्न सवा दो बजे प्रतिनिधियों के चुनाव के लिये श्री भीकमचन्दजी भूरा के मकान पर उपस्थित सभी मुनिराज एवं महासतियांजी म.सा. एकत्रित हुए और पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की अध्यक्षता में कार्रवाई प्रारम्भ हुई।

सर्वप्रथम उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने नवकारमन्त्र का घोष करते हुए भगवान विमलनाथ की प्रार्थना की और प्रासंगिक व्याख्यान फरमाया। आपश्री ने सादडी सम्मेलन से लेकर अभी तक की स्थिति पर संक्षिप्त प्रकाश डालते हुए जो भाव फरमाये, उनका सारांश यह है–

जिस आयोजन के लिये तैयारियां हो रही हैं, उसका समय निकट आ गया है। सम्मेलन में सम्मिलित होने के लिये भीनासर की ओर विहार कर बहुत-से मुनिराज तो यहां आपके समक्ष विराज रहे हैं और कुछ विहार में हैं। वे भी यथाशीघ्र सम्मेलन से पूर्व भीनासर पधारने के भाव रखते हैं।

सम्मेलन में सम्मिलित होना किसी तरह के मान-सम्मान के लिये नहीं है, किन्तु सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि की शुद्धि और वृद्धि के लिये है। इसमें सभी को निष्पक्ष और परस्पर प्रेमपूर्वक मिलकर एक समाचारी के लिये अपनी-अपनी राय व्यक्त करना चाहिए जिससे साधु-सम्मेलन शास्त्रीय दृष्टि से विचार कर किसी निर्णय पर पहुंचे। इसी में साधु-सम्मेलन की सफलता है और इसी ध्येय से सभी इसमें सम्मिलित हो रहे हैं। शास्त्रीय प्रमाणपूर्वक सच्चे हृदय से अपने विचार प्रगट करने के लिये सम्मेलन में प्रत्येक मुनि को भाग लेना चाहिए। धर्म-चर्चा द्वारा धार्मिक उन्नति करने के लिये एक स्थान पर सम्मिलित होना सभी के लिये योग्य और लाभदायक है।

वर्तमान परिस्थिति को देखते हुए समाज के अग्रणी इस बात का अनुभव कर रहे थे कि साधुओं में ज्ञान-दर्शन और चारित्र की उन्नति के लिये तथा संगठन के लिये एक साधु-सम्मेलन करने की आवश्यकता है। इसी को लक्ष्य में रखते हुए सादडी में एक सम्मेलन हो चुका है और उसके निर्णयों को अमली रूप देने के लिये सोजत व जोधपुर में चर्चा हुई और कुछ निर्णय भी किये गये हैं। लेकिन कुछ प्रश्न ऐसे हैं, जिनका समाधान व निर्णय पुनः वृहत्साधु-सम्मेलन होने से हो सकता है। इसी को ध्यान में रखते हुए भीनासर में वृहत्साधु-सम्मेलन का आयोजन किया जा रहा है।

यद्यपि इस सम्मेलन में सभी साधु-संत समान रूप से उपस्थित होकर कार्रवाई में भाग लेंगे, फिर भी व्यवस्था की दृष्टि से उनके प्रतिनिधियों का चुनाव हो जाना सुविधाजनक होगा। इससे कार्रवाई भी सुचारु रूप में चल सकेगी और प्रत्येक विषय में विचार-विमर्श करने

के लिये काफी समय भी मिलेगा। इस सुविधा को ध्यान में रखते हुए प्रतिनिधियों का चुनाव किया जा रहा है।

इस प्रासंगिक वक्तव्य के पश्चात् प्रतिनिधियों का चुनाव इस प्रकार हुआ–

	सिंघाडा नाम	प्रतिनिधि संख्या
1.	आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा.	5
2.	उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा.	5
3.	प्र. मन्त्री श्री आनन्दऋषिजी म.सा.	5
4.	सहमन्त्री श्री प्यारचन्दजी म.सा.	5
5.	सहमन्त्री श्री हस्तीमालजी म.सा.	3
6.	मन्त्री श्री मोतीलालजी म.सा.	2
7.	मन्त्री श्री पृथ्वीचन्दजी म.सा.	1
8.	मन्त्री श्री मिश्रीलालजी म.सा.	2
9.	मन्त्री श्री फूलचन्दजी म.सा.	1
10.	स्था. मुनिश्री हजारीमलजी म.सा.	4
11.	स्थ. श्री शार्दूलसिंहजी म.सा.	1
12.	स्थ. श्री रामकुमारजी म.सा.	1
13.	मुनिश्री जीवराजजी म.सा.	2
14.	मन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म.सा.	1
15.	स्थ. श्री भूरालालजी म.सा.	1
16.	स्थ. श्री ताराचन्दजी म.सा.	3
17.	मुनिश्री जीवनरामजी म.सा.	1
18.	मन्त्री श्री किशनलालजी म.सा.	5
19.	स्थ. श्री पूरणमलजी म.सा.	1
20.	स्थ. श्री फतेहचन्दजी म.सा.	1
21.	मुनिश्री छोटेलालजी म.सा.	1
22.	स्थ. श्री कपूरचन्दजी म.सा.	1

इस प्रकार बाईस सिंघाडों के साधु-साध्वीवृन्द की ओर 52 प्रतिनिधियों का चुनाव हुआ।

अनन्तर अन्यान्य सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श होता रहा। निर्णयात्मक रूप तो सम्मेलन के अवसर पर ही दिया जा सकता था, अतः करीब 4 बजे सभा की कार्रवाई समाप्त

हुई। 67 संत एवं 80 सतियों की उपस्थिति देशनोकवासी श्रद्धालुओ के प्रमोद का कारण थी।

देशनोक से विहार कर उदयरामसर, गंगाशहर, भीनासर होते हुए सभी सन्त-सतियांजी बीकानेर पधारे। सन्तों का नगर-प्रवेश फाल्गुन शुक्ला 5 को था। चार-चार की पंक्ति में धवल वेश, शान्तवदन एवं ईर्यापूर्वक चलते हुए सन्त-पंक्ति को निहार कर अपार जनसमूह प्रफुल्लित था। गोगागेट में ज्योंही उपाचार्यश्री ने प्रवेश किया, ऐसा लग रहा था मानों शुभ कार्य के लिए श्रीगणेश ने साक्षात् प्रवेश किया हो। वह प्रवेश भव्य, चित्ताकर्षक एवं अद्‌भुत था। जुलुस का अथ और इति युगपत् कोई नहीं देख सकता था। बीकानेर में भी पहले की तरह प्रातः एवं मध्याह्न अनौपचारिक विचार-गोष्ठियों का आयोजन होता रहा। इस समय बीकानेर में 135 सन्त एवं 147 सतियांजी विराज रहे थे और इन बैठकों मे प्रतिनिधि मुनियों के अतिरिक्त अन्य सन्त-सतियांजी के दर्शक के रूप में विराजने की व्यवस्था की गई थी।

साधु-सम्मेलन के अवसर पर ही श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि. 4, 5, 6 अप्रैल, 56 को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजीभाई जवेरी, जयपुर की अध्यक्षता में होने वाला था।

इन दोनों महत्त्वपूर्ण समारोहों में उपस्थित होने वाले स्वधर्मी बन्धुओं की आवास-व्यवस्था के लिये शामियाने आदि लगाकर नगर का निर्माण किया गया था। 35 हजार जनता के लिए जवाहर विद्यापीठ एवं वैदजी की कोटडी में संयुक्त रूप से विशाल पण्डाल की व्यवस्था की गई, जहां प्रवचनादि कार्यक्रम होते थे।

बीकानेर श्रावक संघ की ओर से भी बीकानेर में बाहर से आने वाले दर्शनार्थी श्रावक-श्राविकाओं के आवास, भोजनादि का सुन्दर और उचित प्रबन्ध किया गया था, जो साधु-सम्मेलन एवं कॉन्फरेंस का अधिवेशन सम्पन्न होने के बाद तक भी चलता रहा।

साधु-सम्मेलन सं. 2012, मिती चैत्र कृष्णा 3, दि. 29.3.56 से भीनासर में विधिवत् प्रारम्भ होने वाला था। अतः चैत्र कृष्णा 2, दि. 28.3.56, बुधवार को बीकानेर में विराजित समस्त सन्त-सतियांजी विहार कर भीनासर पधार गये। बीकानेर प्रवेश की तरह ही भीनासर प्रवेश भी चार-चार की पंक्ति में हुआ। पन्द्रह हजार की विशाल उपस्थिति ने प्रवेश को रमणीय बना दिया।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी औषधालय भवन में विराजे। कन्याशाला, लूणियों की कोटड़ी, आँचलियों की कोटड़ी आदि में भी सन्तों के ठहरने की व्यवस्था की गई। सतियाँजी म.सा. भी विशाल संख्या में थीं, अतः उपाश्रय, पुगलियों की कोटड़ी, बोथरों की कोटडी, महादेवजी के मन्दिर में उनके विराजने की व्यवस्था की गई।

चैत्र कृष्णा 3 के प्रातः 8 बजे मंगलाचरणपूर्वक सम्मेलन की कार्यवाही प्रारंभ हु बांठिया हॉल में प्रतिदिन प्रातः और मध्याह्न, दोनों समय, मुनिवरों की गोलमेज परिषद् हो थी। इस परिषद् में प्रतिनिधि मुनिवरों के अलावा आगत समस्त संत-सतियांजी भी दर्शक रूप में बैठते थे। शान्तिरक्षक पूज्य उपाचार्यश्रीजी म. एवं व्याख्यान वाचस्पति श्री मदनलाल म. चुने गये। कल्प एवं व्यवस्था के लिए सुश्राविका श्री केसरबहन अमृतलालभाई झवे धीरजभाई तुरखिया एवं लालचंद मुणोत भी दर्शक के रूप में हॉल में बैठते थे। प्रस्ताव मरुधरकेशरीजी एवं सवांद-लेखक मुनि आईदानजी म. को नियुक्त किया गया।

पहले सादडी में सम्पन्न वृहत्साधु-सम्मेलन के अवसर पर साधु-सन्तों ने मिलकर जि अंशों में हृदय की सरलता में संघश्रेय की भावना व्यक्त की थी, तदनुरुप कार्य को प्रा सफलता मिल चुकी थी। अनन्तर उस भावना को यथार्थता की कसौटी पर परखने और सत गतिशील बनाये रखने के प्रयत्नों की अपेक्षा थी, इसीलिये सोजत में मन्त्रिमण्डल के मुनिव का सम्मेलन हुआ और उसमें उपस्थित प्रश्नो, व्यवस्था आदि के बारे में कुछ निर्णय कि गये। उक्त निर्णयों के सम्बन्ध में भी अन्यान्य सन्तों के विचारों को जानने और परामर्श कर की दृष्टि से जोधपुर में संयुक्त चातुर्मास का आयोजन किया गया था।

लेकिन इन दोनों आयोजनों की कार्यप्रणाली से यह स्पष्ट हो गया था कि संगठन वे प्रति जितनी सदाशयता होना चाहिये, नहीं है। अतः संगठन को सबल बनाने की दृष्टि स समग्र स्थिति का पुनर्निरीक्षण करने, समस्याओं का समाधान खोजने के लिये यह सम्मेलन हो रहा था। लेकिन वातावरण में उत्साह नहीं था। अधिकांश मुनियों मे शास्त्रीय दृष्टिकोण की अपेक्षा अपने-अपने दृष्टिकोण के लिये ही आग्रही बने रहने का रुख विशेष रूप से परिलक्षित होता था। अतः सम्मेलन के समक्ष विचारणीय प्रश्नों के स्पष्ट होते हुए भी समाधान नहीं हो पा रहा था। इसका कारण था कि सादडी और सोजत सम्मेलन के बाद कुछ लोगो ने श्रमण संघ को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न प्रारंभ कर दिया था। आश्चर्य तो इस बात का था कि कुछ लोग श्रमण संघ मे रहकर भी अन्दर ही अन्दर उसे तोडने की कोशिश कर रहे थे। घर के चिराग से घर में ही आग लग रही थी। श्रमण संघ में कुछ लोग दो-मुँहे थे, जो संघहित की हर बात पर दोनों ओर लुढक जाते थे। बाहर में वे संघहित का लबादा पहने रहते थे, किन्तु अन्दर में फूट की दरारें डालने से चूकते नहीं थे।

सम्मेलन की कार्यवाही का संक्षिप्त दिग्दर्शन

सम्मेलन मे एकलविहारी साधु-साध्वी को संघ में सम्मिलित करने, प्रतिक्रमण की

आज्ञा-विषयक, मकान संबन्धी, सुत्तागमे के बारे में और ध्वनि-वर्धक यन्त्र विषयक प्रश्नों प शास्त्रप्रमाण, परम्परा, साध्वाचार की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि की दृष्टि से विशेष रूप म चर्चा-वार्त्ता हुई। साथ ही व्यवस्थापक मण्डल में भी हेरफेर किया गया। उनमें से कुछ-एव निर्णयों को अविकल रूप से यहां उपस्थित किया जा रहा है-

(1) सचित्ताचित्त विषयक निर्णय

बादाम, पिस्ता, नेजा (चिलगोजा), चारोली की मज्जा, सफेद और काली मिर्च अखण्ड नहीं लेंगे और पीपल बगैर पीसी नहीं लेंगे। पानी का बर्फ नहीं लेंगे।

डोचरा, काकडी, एरण्ड काकड़ी (पपीता), खरबूजा, तरबूज, आम्रफल, नारगी, संतर की फांकें, केला, किसमिस आदि वस्तुओं के लिये मतभेद बहुत अरसे से चला आ रहा था उसके लिए एकमत होकर प्रेम, ऐक्यता एवं संगठन हेतु इस निश्चय पर पहुँचे कि आचार्यश्री उपाचार्यश्री की आज्ञानासुर श्री वर्द्धस्था. जैन. श्रमण संघ ने मर्यादा स्थापित की है कि बिन शस्त्रपरिणत इनको नहीं लेंगे। किन्तु उसके संघट्टे के लिए किसी को कुछ कहने क अधिकार नहीं होगा।

इसी प्रसंग में ध्वनि-वर्धक यन्त्र के उपयोग का प्रश्न भी उपस्थित हो गया। इसके सम्बन्ध में आगे संकेत किया जा रहा है।

(2) संवत्सरी सम्बन्धी निर्णय पर पुनर्विचार

स्थानकवासी समाज में संवत्सरी के बारे में तीन विचार-मान्यताएं प्रचलित हैं। एक है– दो श्रावण हों तो दूसरे श्रावण में और दो भाद्रपद हों तो प्रथम भाद्रपद में संवत्सरी करना। दूसरी विचारधारा है– दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हो तो प्रथम भाद्रपद मास में संवत्सरी करना। तीसरी विचारधारा है– दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हों तो द्वितीय भाद्रपद में संवत्सरी करना चाहिये।

सादडी सम्मेलन में संवत्सरी के प्रश्न का समाधान करने के लिये गम्भीरतापूर्वक प्रयास किया गया था। किन्तु आधार के बारे में मतैक्य नहीं हो सका था। इसलिये प्रेम और सम्पूर्ण संगठन को लक्ष्य में रखते हुए दो श्रावण हों तो भाद्रपद में और दो भाद्रपद हों तो दूसरे भाद्रपद में संवत्सरी करना चाहिये, ऐसा प्रस्ताव स्वीकृत किया गया था। यद्यपि बहुमत इस पक्ष में नहीं था, किन्तु अल्पसंख्यक वर्ग के साथ प्रेम एवं सद्भावना रखने के लिये यह प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकार किया गया था।

उक्त प्रस्ताव पारित होने पर भी संवत्सरी की समस्या का समाधान हुआ नहीं और जो ध्येय था वह भी सफल नहीं हो सका। परन्तु सादडी-सम्मेलन के संवत्सरी सम्बन्धी प्रस्ताव के क्रियान्वित होने से सौराष्ट्र स्थानकवासी जैन संघ एक प्रकार से पृथक्-सा हो गया। अतः

उसे संयुक्त करने के लिये इस प्रश्न को पुनर्विचारणा हेतु उपस्थित करना पड़ा। इसके लि
निम्नलिखित सन्तों व श्रावकों की एक समिति नियुक्ति की गई है। यह समिति आगामी
संवत्सरी तक उचित निर्णय देने का प्रयत्न करे। निर्णय करने में सुविधा हो, इसके लि
हमारी सूचना है कि लोकमान्यता की ओर दृष्टि न रखते हुए शास्त्रीय मान्यता को महत्त्व दिय
जाये। यदि श्रावण, भाद्रपद और आसोज दो आते हैं तो दो आषाढ़ मास माने जायें। ऐस
करने से प्रत्येक मान्यता वाले को सन्तोष हो सकेगा।

सांवत्सरिक सम्बन्धी सन्तों व श्रावकों की समिति नियुक्त

समिति- 1. पं. मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म., 2. श्री सूर्यमुनिजी म., 3. पं. समर्थमलजी म.
4. मन्त्री श्री शुक्लचन्दजी म., 5. मरुधरकेशरी मन्त्री श्री मिश्रीलालजी म., 6. उपाध्याय कविश्री
अमरचन्दजी म., 7. पं. श्री जीतमलजी म., 8. पं. श्री कुन्दनमलजी म., 9. पं. पद्ममुनिजी म.,
10. श्री सदानन्दी छोटेलालजी म., 11. उमरशी कानजीभाई 12. लोकागच्छीय श्रीपूज्यजी का
मत लिया जाये, 13. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, 14. श्री दुर्लभजी केशवजी खेताणी, 15. श्री
मणिलाल वनमालीदासभाई, 16. श्री बेलशी लखमशी नप्पु, 17. श्री गिरधरलाल दफ्तरी।

इस समिति का यथाशक्य सर्वानुमति से किया गया निर्णय सभी को मान्य होगा। इस
समिति के संयोजक मरुधरकेशरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. होंगे।

उदय और अस्त तिथि का निर्णय भी इस समिति के साथ ही सम्बद्ध किया जाता है।

नोट- श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरहपंथी वगैरह विभिन्न परम्पराओं के
श्वेताम्बर संघ यदि संवत्सरी की एकता के लिए कोई एक निर्णय कर सकते हो तो उसके
लिये श्री व. स्था. जैन श्रमण संघ उदारतापूर्वक अपना उचित सहकार देने के लिए तैयार है।

सांवत्सरिक प्रस्ताव और उपाचार्यश्री की मान्यता

सम्मेलन में जब संवत्सरी विषयक प्रश्न चल रहा था तब उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.
सा. ने दीर्घदृष्टिपूर्वक अपने उदात्त विचार सभी के सम्मुख रखे और फरमाया कि संवत्सरी
का प्रकरण मुख्यतया परम्पराओं की दृष्टि से उलझ-सा रहा है और समस्त जैन समाज में
विभिन्न तरीकों से संवत्सरी पर्व मनाया जा रहा है। यद्यपि श्रमण संघ ने स्थानकवासी समाज
के तत्त्व को सामने रखकर कुछ सोचा है, लेकिन मैं इतने मात्र से ही इस विषय में संतुष्टि
मानने की स्थिति में नहीं हूँ। मेरा अन्तःकरण तो यह चाहता है कि कम-से-कम संवत्सरी जैसे
महापर्व के विषय में एक ही दिन पर्व मनाने की सोचना चाहिये। यदि समग्र जैन समाज
संवत्सरी विषयक अपनी-अपनी परम्पराओं के आग्रह की स्थिति को ढीला कर एक ही रोज

संवत्सरी पर्व (चाहे वह दूसरे श्रावण में हो या भादवे में हो) मनाने को तत्पर हो जायें तो श्रम संघ को भी पूरी उदारता के साथ संवत्सरी विषयक एकता में सहयोग देना चाहिए, आदि उक्त आशय के वक्तव्य के पश्चात् श्रमण संघ ने संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के नीचे उपर्युक नोट लगाया जो कि यहां यथास्थान उद्धृत कर दिया गया है।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. के संवत्सरी के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार थे कि मेरी भूतपूर्व मान्यत द्वितीय श्रावण की ही थी, परन्तु जब अल्पसंख्यक संप्रदाय के मुनिवरों को प्रेम एवं सद्भाव के नाते वचन देकर सादड़ी में प्रस्ताव बनाया गया तो जब तक सौराष्ट्र संघ नहीं मिले ऐसी कोई बड़ी बात न हो, तब तक दिये गये वचनों से श्रमण संघ में रहते, फिरना उ मुनिवरो के प्रति हमारा विश्वासघात जैसा होगा।

इन्हीं सब दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखते हुए और संगठन के सूत्र को सुदृढ बनाने लिये संवत्सरी विषयक प्रस्ताव पुनर्विचारणा के लिये सम्मेलन के समक्ष उपस्थित किया ग था। लेकिन प्रस्ताव कहां तक सफल हो सका, यह यथाप्रसंग बतलाया जायेगा।

उपाचार्यश्रीजी प्रत्येक विवादास्पद प्रश्न पर अपनी एक प्रबल और शास्त्रीय प्रमाणों पुष्ट दृढ़ राय रखते थे, फिर भी आपश्री ने अपनी सम्मति को आग्रह का रूप कदापि न दिया। आपश्री एक ही बात जानते थे कि तर्क की कसौटी पर कसने योग्य प्रत्येक विष को तर्क की कसौटी पर कसो, जो विचार हों, उन्हें निस्संकोच व्यक्त करो और मंथन करो लेकिन जो सर्वमान्य निर्णय हो जायें, उन पर दृढ़ रहना चाहिये। वाक्छल या सुविधा के ना पर स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। तभी संगठन को बल मिलेगा और उसकी भावना श्रावक-श्राविकाओं मे संगठन की शक्ति व्याप्त होगी।

(3) उपाध्यायमण्डल की स्थापना व मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन

यद्यपि सादडी में मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गई थी, लेकिन यह मन्त्रिमण्डल व व्यवस्था सदा के लिये चलेगी, इस भावना से नहीं, किन्तु यह अभिप्राय व्यक्त हो रहा था वि श्रमण संघ मे स्वीकृत उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति होने में कुछ समय लग सकता है, अतः ज तक उद्देश्य का पूर्ण अमली रूप न हो जाये, तब तक जो-कुछ बना है, उसकी व्यवस्था बन रहे, इसके लिये मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया था। लेकिन उपाध्याय पद अवशेष रह गय था। अतः उसकी पूर्ति बृहत्साधु-सम्मेलन में करना आवश्यक था ही। तदनुसार चा उपाध्यायों का चुनाव कर लिया गया। साथ ही उद्देश्य के अनुरूप एक आचार्य की नेश्राय दीक्षा, शिक्षा, प्रायश्चित्त, विहार आदि व्यवस्थित करने के लिए भी सोचा जा रहा था। लेकिन सादड़ी सम्मेलन के अन्दर उद्देश्यपूर्ति की जो उदात्त भावना परिलक्षित हो रही थी वह इस बृहत्साधु-सम्मेलन तक प्रायः मन्द-सी हो गई थी। समय-समय पर प्रसंगोपात्त सावधानी भी

उसे संयुक्त करने के लिये इस प्रश्न को पुनर्विचारणा हेतु उपस्थित करना पड़ा। इसके लिये *निम्नलिखित सन्तों व श्रावकों की एक समिति नियुक्ति की गई है। यह समिति आगामी* संवत्सरी तक उचित निर्णय देने का प्रयत्न करे। निर्णय करने में सुविधा हो, इसके लिये हमारी सूचना है कि लोकमान्यता की ओर दृष्टि न रखते हुए शास्त्रीय मान्यता को महत्त्व दिया जाये। यदि श्रावण, भाद्रपद और आसोज दो आते हैं तो दो आषाढ़ मास माने जायें। ऐसा करने से प्रत्येक मान्यता वाले को सन्तोष हो सकेगा।

सांवत्सरिक सम्बन्धी सन्तों व श्रावकों की समिति नियुक्त

समिति- 1. पं. मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म., 2. श्री सूर्यमुनिजी म., 3. पं. समर्थमलजी म., 4. मन्त्री श्री शुक्लचन्दजी म., 5. मरुधरकेशरी मन्त्री श्री मिश्रीलालजी म., 6 उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म., 7. पं. श्री जीतमलजी म., 8. पं. श्री कुन्दनमलजी म., 9. पं. पद्ममुनिजी म., 10. श्री सदानन्दी छोटेलालजी म., 11. उमरशी कानजीभाई 12. लोंकागच्छीय श्रीपूज्यजी का मत लिया जाये, 13. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, 14. श्री दुर्लभजी केशवजी खेताणी, 15. श्री मणिलाल वनमालीदासभाई, 16. श्री बेलशी लखमशी नप्पु, 17. श्री गिरधरलाल दफतरी।

इस समिति का यथाशक्य सर्वानुमति से किया गया निर्णय सभी को मान्य होगा। इस समिति के संयोजक मरुधरकेशरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. होंगे।

उदय और अस्त तिथि का निर्णय भी इस समिति के साथ ही सम्बद्ध किया जाता है।

नोट- श्वेताम्बर, मूर्तिपूजक, स्थानकवासी और तेरहपंथी वगैरह विभिन्न परम्पराओं के श्वेताम्बर संघ यदि संवत्सरी की एकता के लिए कोई एक निर्णय कर सकते हों तो उसके लिये श्री व. स्था. जैन श्रमण संघ उदारतापूर्वक अपना उचित सहकार देने के लिए तैयार है।

सांवत्सरिक प्रस्ताव और उपाचार्यश्री की मान्यता

सम्मेलन मे जब संवत्सरी विषयक प्रश्न चल रहा था तब उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने दीर्घदृष्टिपूर्वक अपने उदात्त विचार सभी के सम्मुख रखे और फरमाया कि संवत्सरी का प्रकरण मुख्यतया परम्पराओं की दृष्टि से उलझ-सा रहा है और समस्त जैन समाज में विभिन्न तरीकों से संवत्सरी पर्व मनाया जा रहा है। यद्यपि श्रमण संघ ने स्थानकवासी समाज के तत्त्व को सामने रखकर कुछ सोचा है, लेकिन मैं इतने मात्र से ही इस विषय में संतुष्टि मानने की स्थिति में नही हूँ। मेरा अन्तःकरण तो यह चाहता है कि कम-से-कम संवत्सरी जैसे महापर्व के विषय में एक ही दिन पर्व मनाने की सोचना चाहिये। यदि समग्र जैन समाज संवत्सरी विषयक अपनी-अपनी परम्पराओं के आग्रह की स्थिति को ढीला कर एक ही रोज

संवत्सरी पर्व (चाहे वह दूसरे श्रावण में हो या भादवे में हो) मनाने को तत्पर हो जायें तो श्रम संघ को भी पूरी उदारता के साथ संवत्सरी विषयक एकता में सहयोग देना चाहिए, आदि उक्त आशय के वक्तव्य के पश्चात् श्रमण संघ ने संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के नीचे उपर्युक्त नोट लगाया जो कि यहां यथास्थान उद्धृत कर दिया गया है।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. के संवत्सरी के सम्बन्ध में स्पष्ट विचार थे कि मेरी भूतपूर्व मान्यत द्वितीय श्रावण की ही थी, परन्तु जब अल्पसंख्यक संप्रदाय के मुनिवरों को प्रेम एवं सद्भावन के नाते वचन देकर सादड़ी में प्रस्ताव बनाया गया तो जब तक सौराष्ट्र संघ नहीं मिले य ऐसी कोई बड़ी बात न हो, तब तक दिये गये वचनों से श्रमण संघ में रहते, फिरना उ मुनिवरों के प्रति हमारा विश्वासघात जैसा होगा।

इन्हीं सब दृष्टिकोणों को लक्ष्य में रखते हुए और संगठन के सूत्र को सुदृढ़ बनाने के लिये संवत्सरी विषयक प्रस्ताव पुनर्विचारणा के लिये सम्मेलन के समक्ष उपस्थित किया गय था। लेकिन प्रस्ताव कहां तक सफल हो सका, यह यथाप्रसंग बतलाया जायेगा।

उपाचार्यश्रीजी प्रत्येक विवादास्पद प्रश्न पर अपनी एक प्रबल और शास्त्रीय प्रमाणों से पुष्ट दृढ़ राय रखते थे, फिर भी आपश्री ने अपनी सम्मति को आग्रह का रूप कदापि नही दिया। आपश्री एक ही बात जानते थे कि तर्क की कसौटी पर कसने योग्य प्रत्येक विषय को तर्क की कसौटी पर कसो, जो विचार हों, उन्हें निस्संकोच व्यक्त करो और मंथन करो। लेकिन जो सर्वमान्य निर्णय हो जायें, उन पर दृढ रहना चाहिये। वाक्छल या सुविधा के नाम पर स्वच्छन्द प्रवृत्ति नहीं होनी चाहिये। तभी संगठन को बल मिलेगा और उसकी भावना से श्रावक-श्राविकाओं में संगठन की शक्ति व्याप्त होगी।

(3) उपाध्यायमण्डल की स्थापना व मन्त्रिमण्डल का पुनर्गठन

यद्यपि सादड़ी में मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था की गई थी, लेकिन यह मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था सदा के लिये चलेगी, इस भावना से नहीं, किन्तु यह अभिप्राय व्यक्त हो रहा था कि श्रमण संघ मे स्वीकृत उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति होने में कुछ समय लग सकता है, अतः जब तक उद्देश्य का पूर्ण अमली रूप न हो जाये, तब तक जो-कुछ बना है, उसकी व्यवस्था बनी रहे, इसके लिये मन्त्रिमण्डल का गठन किया गया था। लेकिन उपाध्याय पद अवशेष रह गया था। अतः उसकी पूर्ति बृहत्साधु-सम्मेलन में करना आवश्यक था ही। तदनुसार चार उपाध्यायों का चुनाव कर लिया गया। साथ ही उद्देश्य के अनुरूप एक आचार्य की नेश्राय में दीक्षा, शिक्षा, प्रायश्चित्त, विहार आदि व्यवस्थित करने के लिए भी सोचा जा रहा था। लेकिन सादडी सम्मेलन के अन्दर उद्देश्यपूर्ति की जो उदात्त भावना परिलक्षित हो रही थी वह इस बृहत्साधु-सम्मेलन तक प्रायः मन्द-सी हो गई थी। समय-समय पर प्रसंगोपात्त सावधानी भी

दिखलाई जाती रही, लेकिन अधिकांश संत-मानस में उद्देश्य के प्रतिकूल ही कुछ क्रियाएं चल रही थीं। इसका नतीजा यह हुआ कि कुछ खास अधिकार, जो प्रधानमंत्री आदि के लिये ऊपर की स्थिति में सुरक्षित थे, वे भी सम्पूर्णरूप में मन्त्रिमण्डल बांटना चाहता था, यानी सादड़ी सम्मेलन के लक्ष्य के प्रतिकूल ही व्यवस्था सोची जा रही थी और बहुमत की बातों को मुख्य रखकर मन्त्रिमण्डल बनाया गया।

उपाध्यायमण्डल और मन्त्रिमण्डल के बारे में निम्नलिखित प्रस्ताव सर्वानुमति से स्वीकृत हुआ–

श्रमण संघ निम्नलिखित चार उपाध्याय स्वीकार करता है-

1. पं. आनन्दऋषिजी 2. पं. प्यारचन्दजी म. 3. कविश्री अमरचन्दजी म., 4. पं. श्री हस्तीमलजी म.।

मन्त्रिमण्डल की नामावली व क्षेत्र-विभाग

प्रधानमन्त्री - व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म.

मन्त्री - मुनिश्री पृथ्वीचन्दजी म. – अलवर, भरतपुर, उ. प्र.
मन्त्री - मुनिश्री शुक्लचन्दजी म. – पंजाब, पेप्सू
मन्त्री - मुनिश्री प्रेमचन्दजी म. – दिल्ली, बांगड़, हरियाणा, जांगलप्रदेश
मन्त्री - मुनिश्री सहस्रमलजी म. – मध्यभारत, ग्वालियर, कोटा राज्य
मन्त्री - मुनिश्री पूर्णमलजी म. – थलीप्रदेश
मन्त्री - मुनिश्री मिश्रीमलजी म – मारवाड़-बिलाड़ा, जयतारण, सोजत, देसूरी, पाली, सिवाना, जोधपुर, जालौर क्षेत्र
मन्त्री - मुनिश्री हजारीमलजी म. – डेगाना, पर्वतसर, नागौर, डीडवाना, फलौदी, सांभर, शेरगढ़, साकड़ा, मेड़तापट्टी रेलवे लाइन से उत्तर दिशा तरफ
मन्त्री - मुनिश्री पन्नालालजी म. – जयपुर, टोंक, सवाईमाधोपुर, अजमेर राज्य
मन्त्री - मुनिश्री किशनलालजी म. – खानदेश, बरार, सी.पी. मुम्बई
मन्त्री - मुनिश्री विनयऋषिजी म. – महाराष्ट्र, चैन्नई, मैसूर
मन्त्री - मुनिश्री फूलचन्दजी म. – बंगाल, बिहार, असम, उड़ीसा
मन्त्री - मोतीललजी म. – मेवाड पंचमहाल
मन्त्री - पुष्करमुनिजी म. – मेवाड़, पंचमहाल

इस प्रकार क्षेत्रीय वर्गीकरण करने से चतुर्विध संघ की धर्मकारिणी सम्बन्धी व्यवस्था मन्त्रिमण्डल के अधीन हो गई और उपाध्यायमण्डल की नियुक्ति से मुनियों के शिक्षण, साहित्य-सर्जन और आगम-प्रकाशन के बारे में संभावना व्यक्त की गई और शास्त्रीय दृष्टि

से शंका-समाधान का अवसर आने पर उपाध्यायमंडल को उसका निराकरण करने का भार सौंपा गया।

(4) ध्वनिवर्धक यन्त्र विषयक

ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलने या न बोलने के बारे में साधु-सन्तों में दो विचारधाराएं विद्यमान थीं। एक विचारधारा थी कि श्रमणवर्ग का चरित्रबल बना रहना आवश्यक है। शास्त्रानुसार उसकी क्रियाएं हों। स्वच्छन्द और अवैधानिक प्रवृत्तियों के लिये सुविधा न दी जाये। ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रयोग में विद्युत का उपयोग होता है और विद्युत तेजस्काय है और जो सचित्त है। अतः उसकी विराधना करना श्रमणधर्म की परम्परा नहीं है। सैद्धान्तिक भ्रान्तियों के साथ ध्वनिवर्धक यन्त्र की स्वच्छन्द प्रवृत्ति से समाज की स्थिति डावांडोल और अस्थिर हो जायेगी। अतः साधु-जीवन के उत्कर्ष की दृष्टि से श्रमणवर्ग के लिये ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग उचित नहीं है। यदि ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग करने की सुविधा दी जाती है तो उस सुविधा के नाम पर बिजली के पंखे, रोशनी, टेपरिकार्डर और वातानुकूलित गृह के उपयोग की परम्परा भी चल पडेगी और इसके जो परिणाम निकलेंगे, धर्मानुरागियों को कुपरिणाम भुगतने के लिये तैयार रहना चाहिये। दूसरी विचारधारा थी कि ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग आवश्यकतानुसार किया जाये तो कोई हानि नहीं है, उसमें मुनिधर्म के पालन में दोष नहीं लगता और उसके उपयोग के लिये प्रायश्चित्त लेने की जरूरत नही है। ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग साधु अपनी सुविधा के लिये नहीं करते, वरन् श्रावक अपने लिये करते हैं। इसलिये मुनिचर्या में मुनि के निमित्त यह कार्य न होने से मुनि को दण्ड-प्रायश्चित्त लेने का प्रश्न ही नहीं उठता है। दूसरी बात–विद्युत अचित्त है और जब वह अचित्त है तो उसके उपयोग से साधु को जीवों की विराधना का दोष नहीं लगता है। साथ ही, जब हम जैन धर्म के प्रचार की बात करते हैं तो समयानुकूल प्रचार-साधनों को जुटाना आवश्यक हो जाता है। तथा पहले इतने बड़े-बड़े नगर देश में नहीं थे, जितने आज हैं। उस स्थिति में जैन गृह-संख्या नगरों में बढी है और वे सभी एक स्थान पर प्रवचन आदि का लाभ प्राप्त करने के लिये एकत्रित होते हैं। संख्या की बहुलता के कारण सभी श्रोताओं तक आवाज पहुंच सके, यह संभव नहीं है। इसलिये उस स्थिति में ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग होता है, तो करना चाहिये।

इस बात का उत्तर शास्त्रीय परम्परा वाले यह देते थे कि इससे बहुत बड़ी हानि हो सकती है। क्योंकि ध्वनि-यन्त्र में विद्युत का प्रयोग होता है और विद्युत अग्निकाय के अन्दर है। इसके लिये उत्तराध्ययन सूत्र के 36वें अध्ययन में जहां बादर तेऊकाय का प्रकरण चला है, वहां तेऊकाय के भेद गिनाते हुए शास्त्रकार ने 'इंगलिं' (अंगार) आदि के साथ 'विज्जू

(विद्युत) अर्थात् अंगार अग्नि की तरह विद्युत अग्नि को भी तेऊकाय में स्पष्ट गिनाया है। इसी तरह अन्य शास्त्र में भी अग्नि के भेद गिनाते हुए 'संघर्ष समुत्थिय' अर्थात् संघर्ष से पैदा होने वाली को भी अग्नि कहा है, आदि कई शास्त्रीय प्रमाणों से विद्युत को तेऊकाय के अन्दर प्रतिपादित किया है। और कहा है कि यदि इसको काम में लिया जाता है तो तेऊकाय (अग्निकाय) की विराधना होने से साधु के पहले महाव्रत की खण्डना होती है। महाव्रत की खण्डना की स्थिति के साथ यदि प्रचार का कार्य चालू किया गया तो अन्य महाव्रतों के खण्डन का भी प्रसंग आ सकता है और यह सिलसिला आगे चलते हुए समग्र श्रमण संस्कृति का घात करने वाला भी बन सकता है। अतः इसको काम में लेना बहुत हानि का कार्य है।

इन दोनों विचारधाराओं का संघर्ष संमेलन में स्पष्ट रूप से सभी के सम्मुख आ गया था। ऐसा मालूम पड़ता था कि ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलने में प्रतिष्ठा और न बोलने मे अप्रतिष्ठा हो। जहां आदर्श को सुरक्षित रखने की भावना गौण और अहम् की भावना मुख्य हो जाती है, वहां शुद्धता के लिये अवकाश नहीं रह जाता है। 'स्वार्थी दोषं न पश्यति' की उक्ति बात-बात में व्यक्त होने लगती है। सम्मेलन में भी यही बात हुई। यहां तक दिखने लगा कि यदि साधुओं को ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग करने की अनुमति न मिली तो श्रमण संगठन को खंड-खंड करने में भी झिझक नहीं होगी।

ध्वनिवर्धक यंत्र के प्रयोग के सम्बन्ध मे काफी रस्साकस्सी चली। अधिकांश पंजाबी सन्तों के अनुशासनहीन तूफान के कारण तथा हाथ पर ध्वनिवर्धक यंत्र पर बोलने का बिल्ला लगाये हुए समागत पंजाबी श्रावकों की बौखलाहट एवं बार-बार तूफान मचाने के प्रयत्न के कारण निर्णय में बड़ी अड़चनें पैदा हुई। स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के अधिवेशन मे तो ध्वनिवर्धक यंत्र को लेकर मारवाड़ी-पंजाबी लोगों में भारी हंगामा मचा। परिस्थिति यहाँ तक बिगड़ गई कि एक बार तो मारपीट होने तक की नौबत आ गई थी। वातावरण बडा क्षुब्ध था। अतः स्वाभाविक था कि ऐसे वातावरण में कोई निर्णय नहीं किया जा सकता था और हुआ भी वैसा ही। चर्चा-विचारणा के पश्चात् इस प्रकार प्रस्ताव पास हुआ–

'ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना मुनिधर्म की परम्परा नहीं है। यदि अपवाद में बोलना पड़े तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्दरूप से ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये।'

इस प्रस्ताव पर उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.सा., पं. मुनिश्री पन्नलालजी म.सा., पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. (बाद मे आचार्यश्री) तटस्थ रहे और प मुनिश्री लालचन्दजी म.सा. ने विरोध में मत दिया। प्रस्ताव सर्वानुमति से न होकर एक मत के विरोध से स्वीकृत हुआ।

प्रस्ताव पारित होने के बाद जो ध्वनि-यन्त्र में बोलने के पक्ष में थे, उन्होंने प्रस्ताव के

शब्दों पर गहराई से विचार न कर अपने मन में संतुष्टि मान ली कि हमारे लिये प्रायश्चित्त के साथ अपवाद में ध्वनि-यन्त्र खुल गया है। लेकिन जो शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र मे नहीं बोलने के पक्ष में थे, उन्होंने गहराई से सोचा कि प्रस्ताव की भाषा में ध्वनि-यन्त्र खुलने जैसी कोई बात नहीं है। प्रस्ताव में सिर्फ शास्त्रीय शब्दों का संकलन मात्र है। 'मुनिधर्म की परम्परा नहीं है' इन शब्दों से मुनिधर्म के जो महाव्रतादि हैं, उनमे यह चीज आ नहीं सकती और 'अपवाद में बोलना पड़े तो' इन शब्दों में भी 'तो' शब्द से अपवाद भी साधारण नहीं, लेकिन अत्यन्त विवशता की स्थिति का द्योतन करता है। अर्थात् जहां साधु का संयमी जीवन खतरे में पड़ने की स्थिति में हो, वहां साधु की अत्यन्त विवशता की स्थिति आती है। जनसमुदाय के एकत्र होने मात्र से अधिक को सुनाने की स्थिति में साधु की विवशता नहीं आती। क्योंकि साधु ऐसी स्थिति में अधिक को नहीं सुनाता है तो साधु का जीवन खतरे में नहीं पड़ता है। प्रस्ताव में जो प्रायश्चित्त अनिवार्य रूप से रखा गया है, इससे विद्युत को अचित्त मानना स्वतः निरस्त हो जाता है और अनिवार्य प्रायश्चित्त से विद्युत्त स्वयं सचित्त सिद्ध हो जाती है। इस प्रकार उपर्युक्त ध्वनि-यन्त्र विषयक प्रस्ताव में उल्लिखित शब्दों द्वारा शास्त्रीय सिद्धान्त और श्रमण संस्कृति की सुरक्षा की स्थिति दृढ बन गई। अतः शास्त्रानुसार ध्वनि-यन्त्र में नहीं बोलने वाला पक्ष अपनी स्थिति को सुरक्षित समझकर चुप हो गया। क्योंकि प्रस्ताव में उल्लिखित शास्त्रीय शब्दों की शास्त्रीय दृष्टि से जिस समय व्याख्या की जायेगी, उस समय ध्वनि-यन्त्र का अधिक संख्या में सुनाने का अपवाद बन ही नहीं सकेगा और न कोई बोल सकेगा। यदि उसके पहले कोई बोल देगा तो वह श्रमण संघ के नियमानुसार नियम को तोड़ने वाला माना जायेगा। अतः इस प्रस्ताव से ध्वनि-यन्त्र में नहीं बोलने वाले पक्ष को भी संतुष्टि हो गई। यही कारण है कि भीनासर साधु-सम्मेलन में 35 हजार जनता की पर्याप्त संख्या होते हुए भी, वहां कोई भी साधु ध्वनि-यन्त्र में न बोल सका।

उपाचार्यश्री का आदर्श कार्य अनुकरणीय

इन प्रस्तावों के अतिरिक्त अन्य भी कई प्रस्ताव पारित हुए। लेकिन उनका यहां कोई खास प्रसंग न होने से उद्धृत नहीं किये जा रहे हैं। सिर्फ एक प्रस्ताव, जिसका पूर्व में संकेत किया गया, यहां दिया जा रहा है—

'श्री वर्द्ध.स्था. जैन श्रमण संघ के श्रद्धेय उपाचार्यश्री पर जो अनर्गल, मिथ्या एवं अशोभन आक्षेप किये गये हैं, उनको उपाचार्यश्रीजी म. ने जिस गम्भीरता, शांति एवं उदारता से सहन किया एवं विष को अमृत में बदलने के लिये जो निरन्तर प्रयत्न किया, इसके लिये समस्त प्रतिनिधि मुनिमण्डल अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करता है और इस आदर्श कार्य को अनुकरणीय समझता है।'

साधु-सम्मेलन में पारित प्रस्तावों के साथ अन्यान्य औपचारिक कार्रवाई के पश्चात् बृहत्साधु-सम्मेलन दि. 4 अप्रैल, 56 को समाप्त हुआ।

उपाचार्यश्री का दृष्टिकोण

बृहत्साधु-सम्मेलन, सादड़ी में मुनिमण्डल द्वारा प्रदर्शित मनःस्थिति इस सम्मेलन के पूर्व से ही लुप्तप्रायः होने लगी थी। शुद्ध संगठन, प्रवेशपत्रों में व्यक्त भावनाएं तिरोहित हो चुकी थीं, किन्तु व्यक्तिगत प्रभाव प्रदर्शित करने एवं शास्त्रीय मर्यादाओं का सुविधानुसार उपयोग करने की प्रवृत्ति वृद्धिंगत थी। एक आचार्य के नेतृत्व में एक श्रमणसंघ का ध्येय अवश्य घोषित किया था, किन्तु उस घोषणा को साकार करने की प्रायः किसी में आकांक्षा नहीं थी। वही ढाक के तीन पात जैसी बात चल रही थी।

लेकिन पूज्य उपाचार्यश्रीजी इस स्थिति को संघ के लिये, श्रमण-परम्परा के लिये एवं संघ के उद्देश्य के लिये श्रेयस्कर नहीं मानते थे। चर्चा-वार्त्ता के प्रसंग में मुनिमण्डल के समक्ष भी इन्हीं विचारों को व्यक्त किया था कि इस सम्मेलन में हमें सादडी सम्मेलन का अवशिष्ट कार्य पूर्ण करना चाहिये, जिससे हम संगठन की दिशा में बढे और संगठन सुदृढ़ बने तथा सम्मेलन होने का उद्देश्य सार्थक हो।

लेकिन हो रहा था इस भावना के प्रतिकूल ही। उपाचार्यश्री के विचारों में अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि इससे अपने को निर्लिप्त रखते हुए कर्तव्यदृष्टि से यथावसर योग्य सलाह-सूचना के संकेत के साथ तटस्थ रहना ही उपयुक्त है। यदि ये मुनिवर सादडी सम्मेलन में दिये गये सोत्साह आश्वासन के अनुसार अपने वचन पर दृढ़ रहे एवं संघ-ऐक्य योजना को कार्यान्वित करेंगे तो संगठन पल्लवित-पुष्पित होगा और यदि उद्देश्य को गौण कर अथवा दलबन्दी के रूप में छिन्न-भिन्न कर दिया तो मैं अपने प्रवेशपत्र में लिखित संकेत के अनुसार अलग हो सकता हूँ। निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के सिवाय मेरा व्यक्तिगत स्वार्थ नहीं है और सिर्फ सुरक्षा का प्रयास कर रहा हूँ। इतना होने पर भी श्रमण संस्कृति की शुद्धता खंडित हुई तो सहयोग देना योग्य नहीं है। वर्तमान में चल रही कार्य-व्यवस्था साधारण रूप की है अतः इस स्थिति में मूक दर्शक के रूप में रहना चाहिये, अन्यथा हितावह कहने का भी प्रच्छन्न दलबन्दी दूसरा ही आशय लगायेगी।

ऐसा विचार कर पूज्य उपाचार्यश्रीजी सम्मेलन में मुनिवृन्द की प्रक्रिया देखते-सुनते रहे और सन्तोषजनक न होते हुए भी भविष्य की सुखद कल्पना से कि आज नहीं तो कल, इनमें सद्बुद्धि पैदा होगी, दलबन्दी का परित्याग कर लक्ष्य के अनुरूप संगठन को बनायेंगे, सम्मेलन की कार्रवाई में योग देते रहे।

लेकिन सन्तों की मनोवृत्ति मे सादड़ी सम्मेलन जैसा परिवर्तन नहीं आया, सो नहीं

आया। इसका परिणाम यह हुआ कि भविष्य में श्रमण संघ कूटनीति का अखाडा बना और उद्देश्य तिरोहित हो गया। इस सम्मेलन से समाज को जो आशाएं थीं, निर्मूल सिद्ध हुईं।

स्वर्णजयन्ती महोत्सव

इसी अवसर पर श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस का स्वर्णजयन्ती अधिवेशन दि. 4, 5, 6 अप्रैल, 1956 को श्री विनयचन्दभाई दुर्लभजी जवेरी की अध्यक्षता में किया गया। समारोह का उद्घाटन भारत के तत्कालीन गृहमन्त्री माननीय श्री गोविन्दवल्लभ पंत ने किया। वृहत्साधु-सम्मेलन और यह अधिवेशन होने से देश के कोने-कोने से श्रावक-श्राविकाओं की उपस्थिति आशातीत हुई थी। बीकानेर, गंगाशहर, भीनासर संघों ने सामूहिक रूप से इस अधिवेशन में योग दिया। महिला-सम्मेलन, युवक-सम्मेलन, पत्रकार-परिषद आदि विविध कार्यक्रमों से अधिवेशन में समाज की सभी समस्याओं पर विचार किया गया।

इसी अवसर पर दि. 5.4.56 को आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. एवं उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की दीक्षा के 50 वर्ष पूर्ण होने के उपलक्ष्य में दीक्षा-स्वर्णजयन्ती महोत्सव त्याग-प्रत्याख्यान व व्याख्यान आदि के रूप में मनाया गया। उपस्थित मुनिवर्य, महासतियांजी म. एवं श्रावक-श्राविकाओं ने अपनी-अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए भाव व्यक्त किये थे।

इसी प्रकार से देश के विभिन्न श्रीसंघों ने भी अपने-अपने यहां दीक्षा-स्वर्णजयन्ती मनाई और अपनी-अपनी श्रद्धा व्यक्त की– आपकी साधना हमारी मार्गदर्शक बने।

कॉन्फरेन्स-अधिवेशन का अनोखा प्रस्ताव

श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फेरस के अधिवेशन में राष्ट्र, समाज से सम्बन्धित प्रश्नों पर विचार-विमर्श कर कुछ निर्णय किये गये। उनके साथ ही ध्वनिवर्धक यन्त्र के बारे में एक ऐसा प्रस्ताव भी पारित कर दिया, जिसके बारे में वृहत्साधु-सम्मेलन भी अनिश्चयात्मक प्रस्ताव बहुमत के आधार पर पारित कर सका था। प्रस्ताव इस प्रकार है-

'वर्तमान युग में बहुत जनसंख्या के कारण ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग आवश्यक हो जाता है। इस सम्बन्ध में श्रमण संघ ने जो प्रस्ताव किया है, वह निम्नानुसार है--

'ध्वनिवर्धक यन्त्र में बोलना मुनिधर्म की परम्परा नहीं है। यदि अपवाद में बोलना पडे तो उसका प्रायश्चित्त लेना होगा। किन्तु स्वच्छन्द रूप से ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग नहीं करना चाहिये।

'इस प्रस्ताव को लक्ष्य में लेकर जिन संघों को ध्वनिवर्धक यन्त्र का प्रबन्ध करना आवश्यक हो, वे कर सकते हैं।'

इस प्रकार के प्रस्ताव से अधिवेशन में उपस्थित बंधुओं में रोष का वातावरण व्याप्त हो गया, क्योंकि यह प्रस्ताव कॉन्फरेंस के कतिपय नेताओं का था। श्रमण संघ ने जो प्रस्ताव पास किया, वह भी बहुमत का है और उसमें भी शब्दों का जो संकलन हुआ, उन शब्दों की वास्तविक शास्त्रीय व्याख्या हुए बिना ध्वनियन्त्र के लिए श्रावकों को प्रस्ताव करने की कतई आवश्यकता न थी। फिर भी प्रस्ताव घड़कर अनधिकार चेष्टा की, उसका नतीजा अशुद्धता के रूप में तत्काल ही परिलक्षित हो गया। मानों संगठन-रूपी महल को छिन्न-भिन्न करने के लिए उसकी ईंट खिसकाना प्रारम्भ कर दिया गया हो। विषय निर्वाचनी समिति में भी मतैक्य नहीं था, फिर भी इस प्रस्ताव को खुले अधिवेशन में स्वीकृत्यर्थ उपस्थित किया गया। प्रस्तावक महोदय ने सोचा होगा कि सम्मेलन में तो बहुमत से प्रस्ताव स्वीकृत हो चुका है, अतः यहां तो व्यक्तिगत प्रभाव से स्वीकृत हो ही जायेगा। लेकिन उपस्थिति में जब रोष का वातावरण बना तो उनका निराकरण करने में स्वयं समर्थ नहीं हो सके और परिस्थिति को शांत करने के लिये मुनिराजों का सहारा लिया गया। उनके पधारने से विरोध ऊपरी तौर पर शांत हो गया, लेकिन मनों में अस्वस्थ वातावरण की कसक अवश्य ही छोड़ गया। परिणाम यह हुआ कि कॉन्फरेंस के समस्त समाज के प्रतिनिधित्व रूप को आघात पहुंचा और वह कुछ-एक व्यक्तियों की संस्था-मात्र रह गई। इसके कारण श्रमण संगठन का ढांचा भी लड़खड़ाया और समाज की आशाएं भी निर्मूल सिद्ध हुईं।

सम्मेलन और अधिवेशन के पश्चात्

भीनासर में चतुर्विध संघ का जमघट हुआ और समाजोन्नति के लिये योजनाबद्ध कार्य करने के निश्चय भी हुए। लेकिन कार्य के लिये प्रेरक शक्ति के विद्यमान होते हुए भी प्रायः साधुओं में राजनीति जैसी कुत्सित गुटबंदी के कारण निराशा दृष्टिगोचर होती थी। संक्षेप में कहें तो सभी अनेक आशंकाओं को लिये अपने-अपने क्षेत्रों की ओर जा रहे थे। मनों में एक प्रकार का अन्तर्द्वन्द्व चल रहा था कि आगे क्या होता है ? यह संगठन टिकेगा या नहीं ? किन्हीं-किन्हीं को आशंका थी कि संगठन से पहले जो व्यवस्था थी, वह तो अब नष्टप्रायः है और नया संगठन सबल बनने के पूर्व ही छिन्न-भिन्न होता दिखाई देता है। अस्तु, अब जो हो चुका है, उसके परिणाम देखने की ही अपने को प्रतीक्षा करनी चाहिये।

इस प्रकार की विचारधारा का ही परिणाम था कि श्रमणसंघ के अधिकारी मुनिराजों की ओर से समय-समय पर संगठन के निश्चयों, प्रस्तावों को क्रियान्वित कराने के लिये प्रेरणा तो दी जाती थी और श्रावकों के द्वारा भी संगठन को मजबूत बनाने के लिये बार-बार घोषणाएं होती रहती थीं, लेकिन शक्ति का अपव्यय हो रहा था और समाज की अस्मिता क्षीण होती जा रही थी।

सम्मेलन के पश्चात् साधु-सन्तों का विभिन्न क्षेत्रों की ओर विहार हुआ। संगठन की सुदृढता के लिये साधु एवं श्रावकवर्ग यह अनुभव करता था कि विभिन्न सिंघाड़ों के साधु-सन्तों की पारस्परिक अदला-बदली हो और एक-दूसरे के विशेष सम्पर्क में आयें तो संगठन को बल मिल सकता है। पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. भी स्वयं इस बात को फरमाते थे कि श्रमण संघ को सबल बनाने एवं उसमें आगत विकृतियों का उन्मूलन करने के लिये एक-दूसरे सिंघाड़े के सन्तो को एक-दूसरे सिंघाड़े के साथ रखना आवश्यक है। इस बात को सम्मेलन की विचारणीय विषयसूची में भी रखा गया और सन्तों ने इसके लिये काफी विचार-विमर्श कर उपयोगी माना और तदनुकूल कार्य करने की भावना भी व्यक्त की थी। लेकिन हृदय की दुर्बलता या मन-वचन-काया की अन्यथा प्रवृत्ति के कारण यह विचार मूर्तरूप नहीं ले सका। इतना प्रबल शिष्यमोह परिलक्षित हुआ कि विरागी और रागी में भेद करना भी कठिन-सा दिखता था।

उपाचार्यश्रीजी द्वारा निर्णयों का कार्यान्वयन

उपाचार्यश्रीजी श्रमण संघ को अखण्ड, एक, सुदृढ संगठन के रूप में देखना चाहते थे और इसके लिये जो उचित समझते थे, सदैव करने के लिये उत्सुक थे। सम्मेलन में तो एक-दूसरे के सन्तों की अदला-बदली का निर्णय अभी हुआ था, किन्तु सादड़ी सम्मेलन के समय से ही उपाचार्यश्रीजी ने इस परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। सहमन्त्री मुनिश्री प्यारचन्दजी म.सा. आदि का अपने साथ ही उदयपुर में चातुर्मास कराया था और अपने सन्तों को एक-दूसरे सिंघाड़ों में रहने की अनुमति प्रदान की थी।

संयुक्त चातुर्मास के समय स्थविरपद-विभूषित मुनिश्री पूरणमलजी म.सा. जोधपुर में स्थिरावास में विराजमान थे। आपके साथ एक शिष्य था जो साथ रहने के लिये तैयार नहीं था और उचित वैयावृत्ति करने में भी प्रमाद कर देता था। यह स्थिति मुनिश्री पूरणमलजी म. ने उपाचार्यश्री एवं उपस्थित अन्य सन्तों के समक्ष रखी और कहा कि संयम-साधना के अनुकूल मेरी व्यवस्था करा दी जाये, जिससे मेरी आत्म-साधना में व्यवधान न आये। यहां विराजित शास्त्रज्ञ मुनिश्री समर्थमलजी म. के समक्ष भी यही संकेत किया है तो कहते हैं कि श्रमण संघ छोड़ो तो मैं सन्त दूं। यद्यपि श्रमण संघ में अभी कई बातें सन्तोषकारक नहीं हैं और आपश्री उनके उचित समाधान के लिये प्रयत्नशील हैं। मैं भी उनके समाधान में अपना योग देने के लिए तैयार हूँ। लेकिन श्रमण संघ में मेरी योग्य व्यवस्था न हो सकी और साधना में व्याघात आया तो आत्महित और इतने समय की संयम-साधना के फलितार्थ को पूर्ण करने के लिये श्रमण संघ को छोड़ने के लिये भी मुझे विवश होना पड़ेगा।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने इस स्थिति को समझा। इस चातुर्मास-काल में श्रमण संघ के तत्कालीन प्रधानमन्त्री मुनिश्री आनन्दऋषिजी म.सा. भी साथ में थे। उनसे आपश्री ने कहा कि मुनिश्री पूरणमलजी म. की स्थिति की व्यवस्था करना अपना कर्तव्य है। एक सन्त आप दीजिये और एक सन्त मैं दूं, जिससे इनकी सेवा भी हो और आत्म-साधना में किसी प्रकार का व्यवधान न आये। लेकिन प्रधानमन्त्रीजी महाराज ने इस उचित कार्य के लिये अपनी अनिच्छा व्यक्त की और सन्त देने से इनकार कर दिया।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने श्री हस्तीमलजी म.सा. आदि के सम्मुख भी इसी प्रकार का प्रस्ताव रखा, लेकिन कोई भी अपने शिष्य को सेवा में रखना नही चाहते थे। सभी को परखा, किसी मे भी इस बात के लिये विवेक जाग्रत् नही हुआ। अन्त में उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने अपने दो प्रमुख शिष्यों–कर्मठ सेवाभावी, शांत, दांत मुनिश्री करणीदानजी म.सा. एवं नवदीक्षित सरलस्वभावी, मुनिश्री घेवरचन्दजी म.सा. को मुनिश्री पूरणमलजी म.सा.– की सेवा के लिये दिया।

इन दोनों मुनिवरों ने पूर्ण मनोयोग और तत्परता से वयोवृद्ध मुनिश्री पूरणमलजी म.सा. की वैयावच्च की और समाधिमरण को सफल बनाया। इसका प्रभाव जोधपुर श्रीसंघ पर तो पड़ा ही, लेकिन समस्त श्रावक संघों को भी सोचने का मौका मिला कि योग्य गुरु के सुयोग्य शिष्यों ने गुरु-परम्परा, श्रमणधर्म के गौरव को द्विगुणित किया है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो गया कि श्रमण संघ का संगठन सिर्फ कागजो में लिखा रहने वाला है। उसमें रहने वाले मुनिवरों में न तो एक-दूसरे के प्रति किंचिन्मात्र भी सहयोग की भावना है और न अपने दायरे से आगे बढ़ने के लिये तैयार हैं। केवल ऊपर-ऊपर की चिकनी-चुपड़ी बातें हो रही हैं।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. का लक्ष्य था कि जब हमने आत्मसाक्षीपूर्वक निर्णयों को स्वीकार किया है तो तदनुकूल कार्य करने के लिये भी उतना ही साहस दिखना चाहिये। इसके लिये दूसरे क्या सोचते है और क्या करते हैं, यह हमें विचारने का नहीं है, किन्तु कार्यान्वित करने की ओर अपना लक्ष्य होना चाहिये। इसीलिये उपाचार्यश्रीजी ने उसे अपने जीवनकाल में साकार रूप दिया।

पूरणबाबा के उदगार

वयोवृद्ध मुनिश्री पूरणमलजी म.सा., जिन्हें श्रद्धा और आत्मीयता से चतुर्विध संघ पूरणबाबा के नाम से सम्मानित करता था, को योग्य व्यवस्था हो जाने से पूर्ण सन्तोष हुआ और आत्महित में तल्लीन रहने लगे। जप-तप में समय का सदुपयोग होने से मानसिक

उत्साह में एक अनोखापन दृष्टिगत होता था। अपनी साधना में सहायक उपाचार्यश्रीजी के गुण-गान करते हुए उच्च स्वर में घोष करते थे कि मेरा अन्त समय सुधर गया। जीवन-भर की साधना का सुफल प्राप्त कराने वाले महापुरुष को बारंबार वन्दना है। मुझे तो गणेशनारायण ने सुखी और शल्यरहित बना दिया है।

अनुशासन के सजग प्रहरी

सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी म.सा. ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए और सम्मेलन की कार्रवाई की चतुर्विध संघ को जानकारी देते हुए सं. 2013 के चातुर्मासार्थ गोगोलाव पधारे। गोगोलाव में अधिकतर कांकरिया परिवार की गृहसंख्या है। इस परिवार की श्रमणधर्म के प्रति निष्ठा और चारित्रवान क्रियापात्र सन्तों की प्रति श्रद्धाभक्ति अपूर्व है। इसी परिवार की विशेष भक्ति और चातुर्मास के लिये अनेक वर्षों से होने वाली प्रार्थना के फलस्वरूप सं. 2013 का चातुर्मास गोगोलाव होने का अवसर आया था। गांव छोटा-सा है किन्तु उपाचार्यश्रीजी के विराजने से विशाल नगर का रूप धारण कर लिया था। देश के कोने-कोने से प्रतिदिन आने वाले हजारों दर्शनार्थियों का अपूर्व जमघट लगा रहता था।

भीनासर सम्मेलन के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी ने अपने दो संतो– प. र. मुनिश्री सिरेमलजी म. एवं मुनिश्री आईदानजी म. को उपाध्यायमुनि अमरचन्दजी म.सा. के कुचेरा चातुर्मास में साथ रखा ताकि सम्मेलन के आशय को सबल बनाने और उद्देश्य को सिद्ध करने में सफलता मिले।

मुनिश्री आईदानजी म. सम्मेलन की कार्रवाई को अंकित करते थे। उन्हें सम्मेलन में हुए विचार-विमर्श की पूर्ण जानकारी थी। चतुर्विध संघ के जानने योग्य कार्रवाई को तो प्रकाशित कर दिया गया था और साधु-साध्वी वर्ग से सम्बन्धित निर्णयों को प्रकाशित नहीं करने का निश्चय किया गया था। परन्तु मुनिश्री आईदानजी म. ने उस विवरण को कुछ मुनियों पर आक्षेप लगाते हुए और शास्त्रीय मर्यादाओं के विपरीत बातों का समावेश करते हुए 'श्रमण' में लेख प्रकाशित करवाया। उपाध्याय अमरमुनि के संत मुनिश्री सुरेशमुनिजी ने भी 'महान चुनौती' नामक पुस्तक लिखकर श्रमण संघ पर आक्षेप लगाये।

इस अतिशयोक्तिपूर्ण लेख और पुस्तक से समाज में कटुता का वातावरण व्याप्त हो गया और कई अधिकारी मुनिवरो ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में लिखवाया कि सन्तों की इस प्रकार की अनधिकार चेष्टा से समाज में दूषित वातावरण बन रहा है तथा अनुशासन की दृष्टि से भी यह कार्य अयोग्य है।

उपाचार्यश्रीजी ने उक्त लेख का अवलोकन किया और श्रमणसंघीय चारों उपाध्यायों–

1. मुनिश्री आनन्दऋषिजी म.सा., 2.मुनिश्री प्यारचन्दजी म.सा., 3. कवि मुनिश्री अमरचन्दजी म. सा., 4. मुनिश्री हस्तीमलजी म.सा. को सन्देश भिजवाया कि श्री आईदानजी का जो लेख प्रकाशित हुआ है, उसमें कौन-कौनसी बातें अनुचित हैं और उनका सुधार करना व लेखक मुनिवरों को सावधानी दिलाना सम्मेलन में किये गये निर्णयानुसार उपाध्यायमण्डल का अधिकार है। अतः इस विषय पर योग्य कार्रवाई करने के बारे में जानकारी करावें।

उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. को विशेष रूप से यह भी लिखाया गया था कि मुनिश्री आईदानजी आपके पास हैं। अतः आप उनसे सभी जानकारी कर योग्य कार्रवाई करने के बारे में सूचित करें। जिससे दूषित वातावरण शांत हो सके।

इस सन्देश के प्रत्युतर में उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. के अतिरिक्त अन्य तीनो उपाध्याय मुनियों ने लेख के अनुचित अंशों का संकेत किया किन्तु उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. की ओर से सन्तोषजनक उत्तर नहीं आया और न अनुचित अंश के बारे में भी संकेत मिला। इस पर पुनः उनको स्पष्ट उत्तर देने के लिये सूचना भिजवाई। लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला।

इसी चातुर्मास-काल के बीच दि. 20, 21 अक्टूबर, 56 को लुधियाना में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी की अध्यक्षता में हुई। उस समय भी इसके बारे में काफी ऊहापोह हुआ। जिसका समाधान करने और स्थिति को स्पष्ट करने के लिये अध्यक्ष महोदय की ओर से निम्नलिखित प्रस्तावात्मक स्पष्टीकरण प्रस्तुत किया गया—

'पं. मुनिश्री आईदानजी म. ने 'श्रमण' मासिक में तथा पं. मुनिश्री सुरेशचन्दजी म. ने 'महान चुनौती' नामक पुस्तिका में जो विचार प्रगट किये हैं, उनको पढकर श्रमण संघ और श्रावक संघ को हार्दिक खेद हुआ है। यह जनरल कमेटी भी दुखानुभव कर रही है। पूज्य उपाचार्यजी म.सा. से व उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म.सा. से प्रार्थना करती है कि उन्हें यथाशीघ्र प्रायश्चित्त देने की कृपा कर चतुर्विध श्रीसंघ को संतुष्ट करें, अन्यथा इसके विरोध की भावना बढ़ेगी, ऐसा अनुभव किया जा रहा है। भविष्य में स्थानकवासी जैन समाज की धार्मिक भावना को ठेस पहुँचे, ऐसी लेखन-प्रवृत्ति न करने की भी श्रमण संघ के पूज्य मुनिवर्यों से प्रार्थना है।'

पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. मुनिश्री आईदानजी म. की उक्त अन्यथा प्रवृत्ति को उचित नहीं मानते थे और सम्बन्धित कार्य के लिये कार्रवाई करने का विचार भी कर चुके थे।

वासनी गाँव में व्याख्यान से मुस्लिम भाई प्रभावित

चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी म.सा. आदि सन्तों ने गोगोलाव से विहार

किया। रास्ते में वासनी गांव में, जहां अधिकतर मुसलमानों की बस्ती है, हिन्दुओं की बहुत ही कम, उपाचार्यश्रीजी म. आदि सन्तों को देखकर मुसलमान भाई हंसी-मजाक उड़ाने लगे। लेकिन जब उस गांव में बाजार के बीच आचार्यश्रीजी म.सा. का प्रवचन हुआ तो सुनकर वे अवाक् रह गये और उन मुसलमान भाइयों के दिलों में जैन मुनियों के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो गई और सोचा कि महात्मा लोग प्रत्येक मानव के लिए हितकारी हैं। मुसलमान भाइयों ने मिलकर उपाचार्यश्रीजी के चरणों में प्रार्थना की कि आप हमारी मसजिद में व्याख्यान दें। इधर अन्य लोगों ने निवेदन किया कि व्याख्यान ऐसे स्थान पर होना चाहिए जहां सब लोग लाभ ले सकें। अतः मसजिद के निकट ही सडक पर व्याख्यान हुआ। व्याख्यान के पश्चात् मुसलमान भाइयों के मुंह से ऐसा सुना गया– ये महात्मा हमारे मौलवी सा. व पीर सा. हैं। अधिक दिन विराजना चाहिये। लेकिन वहां निरामिष-भोजी व्यक्तियों के घर बहुत कम होने से आहार-पानी का संयोग बैठना कठिन था तथा आगे भी बढना था, अतः अधिक न विराजे और वहां से विहारकर उपाचार्यश्रीजी म.सा. कडलू ग्राम के निकट पधारे। उधर मुनिश्री आईदानजी म. और प. मुनिश्री सिरेमलजी म. ने भी उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ कुचेरा से विहार किया। उपाध्यायश्री प्यारचन्दजी म.सा. ने भी अपनी शिष्यमण्डली सहित नागौर से कडलू की ओर विहार किया। यथासमय सन्तमण्डल का कडलू ग्राम में पदार्पण हुआ। जब उपाचार्यश्रीजी म.सा. कडलू ग्राम से एक मंजिल दूर विराज रहे थे तब पं. मुनिश्री सिरेमलजी म. व मुनिश्री आईदानजी म. कडलू से विहार कर उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए।

मुनि आईदानजी का संघ-निष्कासन

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने मुनिश्री आईदानजी म. से पूछा कि आपने जो लेख 'श्रमण' में लिखा है, उसके बारे मे बहुत-सी शिकायतें आ रही हैं। ऐसे लेख विसंवाद बढ़ाने वाले होते हैं, सो आपने ऐसा लेख क्यों लिखा ? मैंने पहले भी आपको मना कर दिया था कि कोई भी लेख शास्त्रमर्यादा और श्रमण संघ की मर्यादा के विपरीत नहीं लिखना। इसको आपने स्वीकार करते हुए कहा था कि मैं ऐसा कोई भी विचार व्यक्त नहीं करूंगा या नहीं लिखूंगा जिससे श्रमण संघ की मर्यादाओं को ठेस पहुंचे। लेकिन आपने ध्यान नहीं रखा। अतः इस भूल का प्रायश्चित्त लो और भविष्य मे पुनः भूल को न दुहराने का दृढ़ संकल्प कर लो।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. की इस सरल, सीधी-सादी बात को मानने के लिये मुनिश्री आईदानजी म. तैयार न हुए और अपने पक्ष के समर्थन और बचाव के लिये कहा कि समाज के अन्दर कई-एक ऐसी प्रवृत्तियां हो रही हैं, जिनका श्रमण संघीय दृष्टि से अधिकारी

मुनिराजों को परिमार्जन करना चाहिये, लेकिन वे ऐसा नहीं कर रहे है। अतः आपश्री गुरु-शिष्य के सम्बन्ध से जो भी दंड, प्रायश्चित्त आदेश आदि देंगे, उसे अंगीकार करने को तैयार हूँ किन्तु श्रमण संघ के सर्वोच्च अधिकारी के नाते दिये गये आदेश शिरोधार्य नहीं होगे।

उपाचार्यश्रीजी म.सा ने प्रत्युतर में भाव व्यक्त किये कि मैं अभी श्रमण संघ मे हूँ और श्रमण संघ का उत्तरदायित्व भी मुझ पर है। अतः सरलता के साथ श्रमण संघीय नियमों का पालन करूंगा। अन्य अधिकारी सन्त क्या, कैसा, कुछ कर रहे हैं और क्या नहीं कर रहे हैं, आदि बातें जब प्रमाण सहित मेरे समक्ष आयेगी तो उनसे भी यथायोग्य, यथास्थान शुद्धिकरण कराने की भावना रखता हूँ। अतः उनका उदाहरण देकर अपनी गलती को छिपाने में लाभ नहीं है।

यह तो आपको मालूम ही है कि भीनासर सम्मेलन में हम-आप सभी ने निर्णय किया है- "नियमभंग का सब साधु-साध्वियों को दंड लेना होगा। यदि कोई कहेगा कि मैं दण्ड नहीं लूंगा या वह दण्ड नहीं लेगा तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रहेगा।" इस धारा के अनुसार यदि आप प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि नहीं कर लेते हैं तो संबंध कैसे रह सकता है ?

पं. मुनिश्री सिरेमलजी म. ने भी मुनिश्री आईदानजी म. को समझाया कि या तो आप अपनी सम्पूर्ण स्थिति पूज्यश्री को समझाओ और अपने भाव स्पष्ट करो, अन्यथा विधानानुसार प्रायश्चित्त लो। लेकिन मुनिश्री आईदानजी म. ने न तो प्रायश्चित्त लेने की भावना व्यक्त की और न पूज्यश्री का समाधान ही किया। उपाचार्यश्रीजी ने एकान्त में बैठकर सोच-विचार करने का मौका भी दिया, किन्तु उनके परिणामों में सरलता नहीं आई। अन्त में उपाचार्यश्रीजी म. सा. को मुनिश्री आईदानजी म. से सम्बन्ध-विच्छेद करने का निर्णय लेना पड़ा। मुनिश्री आईदानजी म. एकाकी विहार कर वापस कडलू पहुंचे। वहां पर उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म.सा. ने काफी समझाया और स्थिति की गम्भीरता का भी दिग्दर्शन कराया, लेकिन उनके सत्परामर्श की अवहेलना कर वहां से भी अकेले चले गये।

उपाध्यायश्री एवं कॉन्फरेंस अध्यक्ष द्वारा निर्णय की सराहना

दूसरे दिन विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने कडलू ग्राम में पदार्पण किया तो उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म.सा. आदि सन्त अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये अगवानी हेतु सामने पधारे और वापस ग्राम में आये। सन्तों का यह सम्मिलन एक अनोखी छटा बिखेर रहा था। ग्रामनिवासियों में सन्तों के पधारने से अपूर्व उत्साह था और अपने-आप को धन्य मान रहे थे। इन्हीं दिनों कॉन्फरेंस के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई, श्री कानमलजी नाहटा आदि 20-25 अग्रणी श्रावक उपाचार्य के दर्शनार्थ उपस्थित हुए।

प्रासंगिक प्रवचन-श्रवण के पश्चात् श्रमण संघ की स्थिति, शिथिलाचार आदि के बारे में श्रावको ने चर्चा प्रारम्भ की तो पूज्यश्री ने प्रसगोपात्त फरमाया– समाज की स्थिति बड़ी विचित्र हो रही है। कई अधिकारी सन्त अपने द्वारा ही स्वीकृत श्रमण संघीय नियमोपनियमों की उपेक्षा कर रहे हैं। जिससे संगठन में शिथिलता और स्वच्छन्दता को बढ़ावा मिल रहा है। यही कारण है कि कल मैंने मुनि आईदानजी को नियमविरुद्ध प्रवृत्ति के लिये प्रायश्चित्त लेने का संकेत किया था लेकिन उनके ऐसा न करने पर मैंने सम्बन्ध-विच्छेद कर लिया है। वे मेरे शिष्य थे, लेकिन मैं आत्मसाक्षीपूर्वक नियमोपनियमों का स्वयं भी पालन करने के लिये बद्ध हूँ और दूसरो को भी इसी प्रकार पालन करते देखना चाहता हूँ।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. के इन उद्‌गारों का अभिनन्दन करते हुए उपाध्याय मुनिश्री प्यारचन्दजी म.सा. ने कहा कि आपश्री जैसे महापुरुष से ही समाज-सुधार और संघ-संगठन का उद्‌देश्य और समाज का भविष्य दिनोंदिन सफल होगा।

उपस्थित अग्रणी सज्जनों ने भी उपाचार्यश्रीजी के निर्णय की भूरि-भूरि प्रशंसा की और उसे उचित माना तथा हृदयोद्‌गार व्यक्त करते हुए निवेदन किया कि जिनके मन में सुधार की सच्ची भावना होती है, वे अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर सबसे पहले सुधार का प्रयोग अपने या अपने परिकर से प्रारम्भ करते हैं। आपश्री के निर्णय का समाज पर गम्भीर प्रभाव पड़ेगा। ऐसे स्वच्छन्द व्यक्ति समाज में रहें भी तो कोई लाभ नहीं और इसके लिये परवाह करने की आवश्यकता अनुभव नहीं होती है।

इसके अतिरिक्त अन्यान्य समाजस्पर्शी प्रश्नों पर भी गंभीरता के साथ विचारों का आदान-प्रदान हुआ, जिनका विवरण यथास्थान दिया जायेगा। मांगलिक-श्रवण करने के पश्चात् प्रमुख श्रावक अपने-अपने स्थानों को रवाना हो गये।

उपाध्यायश्री प्यारचन्दजी की भ्रान्तियां दूर हुई

कडलू में उपाध्याय पं. र. मुनिश्री प्यारचन्दजी म. ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. से मालवा की ओर विहार करने की अनुमति चाही और साथ ही अर्ज की कि मुझे मालवा में अन्यान्य सन्त-सतियां मिलेंगे, उनके लिये आपश्री का क्या आदेश है ? उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया कि श्रमण संघ के नियमोपनियमों का पूरी तरह से पालन होना चाहिये। इस बात का ध्यान आप मिलने वाले प्रत्येक सन्त को दिला दें। यदि किसी भी नियमोपनियम के भंग होने की बात सुनी तो अब सहन करने की स्थिति में नहीं हूँ। क्योंकि पूर्व में तो सम्प्रदाय विभिन्न थे, अतः सुनकर चुप रह जाता था, किन्तु अब हम सब एक हो गये हैं, इसलिये किसी के द्वारा किसी भी सन्त तथा सती के विषय में नियमोपनियम भंग होने की बात सुनी गई तो फिर वही स्थिति

होगी, जो आईदानजी के साथ बरती गई। इस पर उपाध्यायश्रीजी ने बडे हर्ष के साथ फरमाया– आपश्री ने जो आदेश फरमाया, वह आपश्री के महत्त्वपूर्ण पद के अनुरूप ही है। इस आदेश को मैं आपश्री के आदेशानुसार प्रसारित करता हुआ विचरण करने का भाव रखता हूँ।

एक दिन कडलू गांव में जब उपाचार्यश्रीजी म.सा. बाहर जंगल गये, उस समय एकान्त के प्रसंग से उपाध्यायश्रीजी म.सा. ने दिल खोलकर अपनी बात उपाचार्यश्रीजी के सन्मुख रखी कि श्रमण संघ बनने के पहले मैं बहुत भ्रम में था और सोचता था कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. अपने शिष्यों का बचाव करते हैं और अन्य को बदनाम करते हैं। इसी प्रकार की और भी कई भ्रान्तियॉं हमारे मस्तिष्क में घूम रही थीं। लेकिन अब मैं देखता हूँ कि यह सब हमारे भ्रम के कारण हुआ। उदयपुर चातुर्मास के बाद आज तक की प्रवृत्ति से बिल्कुल स्पष्ट हो गया है कि आपश्री की वृत्ति अपने-पराये के भेद से ऊपर उठकर शुद्ध साधुवृत्ति को देखने की है। किसी को दबाने की या किसी को बदनाम करने की भावना आपके अन्तःकरण में जरा भी नहीं है। शुद्ध स्फटिक के समान आपश्री के हृदय का हमने निकट से दर्शन किया है।

मूर्तिपूजक संत तत्त्व-चर्चा कर प्रसन्न हुए

कडलू से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. आदि सन्त मेड़तारोड़ पधारे और एक धर्मशाला में विश्राम किया। उसी धर्मशाला में मूर्तिपूजक संप्रदाय के एक सन्त भी विराज रहे थे। सायंकाल प्रतिक्रमण के पश्चात् वे उपाचार्यश्रीजी म.सा. के पास तत्त्व-चर्चा के उद्देश्य से आये। प्रासंगिक रूप में संवत्सरी विषयक चर्चा-वार्ता भी हुई और कई प्रश्न पूछे तथा 46वें, 50वें दिन ही संवत्सरी क्यों करना चाहिए– इस विषय मे भी जानकारी चाही। उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने विशद विवेचना करते हुए आगमिक दृष्टि से उन सब प्रश्नों का समाधान किया और फरमाया कि वर्तमान में श्रमणसंघ ने जो संवत्सरी विषयक प्रस्ताव स्वीकार किया, वह प्रेम और एकता की दृष्टि से है। क्योंकि श्रमण संघ निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के आधारभूत पंचमहाव्रतों की सुरक्षा के साथ सामाजिक एकता को भी महत्त्व देता है और समन्वयात्मक एकसूत्र में आबद्ध होने में जैन समाज की भलाई मानता है और इसी दृष्टिकोण को लक्ष्य में रखते हुए उक्त निर्णय किया गया है।

उपाचार्यश्रीजी के सप्रमाण समाधान और समाज के विशाल हितों के प्रति जागरूकता के दर्शन कर उक्त सन्तश्री ने अपनी हार्दिक प्रसन्नता व्यक्त की और बोले कि इस प्रकार के स्पष्ट समाधान को आज मैं प्रथम बार ही सुन रहा हूँ। विभिन्न विचारकों के विचारों को जानने का अवसर भी मिला, लेकिन इतनी स्पष्टता से किसी ने समाधान नहीं किया है। ऐसे महापुरुष की सेवा को छोड़कर मुनि आईदानजी चले गये, इसको उनका दुर्भाग्य ही समझना चाहिये।

इस पर उनसे पूछा कि आईदानजी को कैसे जानते हैं ? प्रत्युत्तर में संतश्री ने कहा के कुछ दिन पहले आईदानजी यहां आये थे और इसी धर्मशाला में ठहरे थे। वार्तालाप के प्रसंग में मालूम हुआ कि वे आपके संघ में नहीं हैं। श्रमण संघ विषयक बातचीत भी हुई तो बोले– श्रमण संघ में है क्या, सिर्फ ऊपरी दिखावा है। अभी मैं उपाध्याय मुनिश्री अमरचन्दजी म. की सेवा में जयपुर जा रहा हूँ और श्रमण संघ को तहस-नहस कर देंगे, आदि।

उपाचार्यश्रीजी म. ने उक्त बातों को सुन लिया किन्तु किसी प्रकार की टीका-टिप्पणी न करते हुए फरमाया कि जिसको जैसा अनुकूल प्रतीत हो, वैसा सोचे। ऐसे राग-द्वेषपूर्ण वातावरण से साधु-संतों को दूर रहना ही शोभा देता है।

संघ-विघटन का पहला कारण : पालीकाण्ड

संयम के प्रति उदासीनता अथवा स्वेच्छाचार साधु-मर्यादा के लिये घुन हैं, लेकिन जब साधुओं द्वारा ही अपने पद के विपरीत प्रवृत्तियां प्रारम्भ हो जाती हैं तो उद्देश्य की सफलता के लिये आशा करना व्यर्थ है।

यद्यपि सादडी मे बृहत्साधु-सम्मेलन होने के पश्चात् सभी संप्रदायों के साधु-सन्त एक बड़े संगठन में आबद्ध जरूर हो गये थे, लेकिन अधिकांश की वृत्तियां पूर्ववत चल रही थीं और उनमें से कितनेक साधुवेशधारियों का यह कार्य बडी चतुराई से गुप्तरूप में चल रहा था कि पता लगना ही दुस्साध्य था। लेकिन यह निश्चित है कि कलंक स्वयमेव प्रगट हो जाता है।

भीनासर सम्मेलन की समाप्ति के पश्चात् राजस्थान के विभिन्न क्षेत्रों में साधु-सतों के चातुर्मास हो रहे थे। इस शुभावसर से आशा थी कि श्रमण संघ के निश्चय क्रियान्वित होकर संगठन को बलशाली बनायेंगे। समाज की यह आकांक्षा उचित भी थी कि पाली में शिथिलाचार के कुत्सित कांड को भण्डाफोड़ हुआ।

संवत् 2013 में कतिपय साधुवेशधारियों का पाली में चातुर्मास हुआ। उनमें प्रमुख नाम बड़े मुनि रूपचन्दजी का है और इनसे सम्बन्धित पूर्णचन्द आदि तीन मुनि, दो साध्वियाँ, हीरामुनि एवं मरुधरकेशरी के पास रहने वाला दूसरा रूपचन्दजी आदि प्रगट रूप में थे और अप्रगट रूप में इस दल से सम्बन्धित अन्य भी कई मुनि थे जिनका सम्बन्ध पंजाब तक पहुंच चुका था। इनके पापाचार की लीलाएं सीमा लांघ चुकी थीं कि अक्टूबर, 56 में इसका भण्डा फूटा। इनके द्वारा किये गये पत्रव्यवहार तथा साज-सामान को देखकर समाज में रोष की लहर व्याप्त हो गई। समाज का प्रत्येक सदस्य ऐसे घृणित कांड को जानकर लज्जित हुआ और इन छद्मवेशियों का साधुवेश छीनकर दण्डित करने की जोरदार मांग होने लगी। समाज

का रोष दिनोंदिन उग्र होता जा रहा था और चाहता था कि ऐसे अनाचारियों से समाज को शीघ्र ही मुक्ति मिले।

समाज के अग्रणी सज्जनों ने पाली जाकर इस कांड से संबधित सभी पत्रों, पास मे मिले सामान आदि की सूची बनाकर तथा सम्बन्धित व्यक्तियों की साक्षी लेकर विवरण तैयार किया। इस विवरण को श्री अ. सा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के अध्यक्ष आदि पदाधिकारियों और उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में निर्णय के लिये प्रेषित किया तथा कॉन्फरेंस की ओर से उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा मे इस कांड से सम्बन्धित वेशधारी व्यक्तियों का निर्णय करने का निवेदन किया गया।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने इस कांड के समस्त विवरण को देखा और गम्भीरता को समझा। इस कलंक से श्रमण संघ को बचाने के लिये आवश्यक था कि दोषी व्यक्तियों को दोष के अनुसार दण्ड दिया जाये। उपाचार्यश्रीजी म.सा. जब कडलू से ग्रामानुग्राम विहार कर थांवला-पी ग्राम की ओर बढ़ रहे थे तब उससे पहले उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म. आकर मिले और पाली में घटित कांड के बारे मे विचार-विनिमय हुआ।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने परिस्थिति की गम्भीरता को स्पष्ट करते हुए उपाध्यायश्री से कहा कि आपके पहले भी समाचार थे कि शिथिलाचार का उन्मूलन होना चाहिये और श्रमण संघ सुव्यवस्थित हो। इस सम्बन्ध में आपने कुछ सुझाव भी दिये थे। साथ ही यह भाव भी दर्शाये थे कि यदि सुव्यवस्था न बनी तो मैं ऐच्छिक संभोग रखना चाहूँगा। दूसरे पत्र मे यह भी लिखाया था कि श्रमण संघ की उचित व्यवस्था नहीं बनती है तो मैं उपाध्याय पद पर रहने को भी तैयार नहीं हूँ। स्थिति को देखते हुए आपके विचार ठीक हैं। मैं भी इस प्रकार की प्रवृत्ति और अव्यवस्था को उचित नहीं मानता हूँ और चाहता हूँ कि हम स्थिति को सुधारने के प्रयत्न करें। प्रयत्न करने पर भी यदि व्यवस्था न बन सके तो अन्य मार्ग को सोचना उपयुक्त रहेगा। फिलहाल अपने को स्थिति को संभालने का प्रयत्न करना ही चाहिये। इन्हीं विचारों को दृष्टि में रखते हुए मैंने आपको पहले सन्देशा भिजवाया था।

आपका यहां पधारना हो गया, यह अच्छा ही रहा। एक बात और सोचने की है कि यहां से विहार कर पी की ओर चल रहे हैं तो वहां मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी व उनके साथ पालीकाण्ड से सम्बन्धित एक सूत्रधार भी मिलेंगे। संभव है, अगवानी के लिये वे सामने भी आयें, तो उनके साथ अपने को कैसा सांभोगिक व्यवहार रखना चाहिये ?

उपाध्यायजी ने प्रत्युत्तर दिया कि रूपचन्दजी ने घृणित कार्य किया है, अतः उनसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखा जा सकता है और यदि मरुधरकेशरीजी ने भी उनसे

संभोग विच्छेद नहीं किया है तो उनके साथ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। यह शास्त्रीय मर्यादा है कि दोनों और उनसे सम्बन्धित व्यक्तियों से संभोग-सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. को उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.सा. का उक्त सुझाव उचित जंचा और कहा कि आप साथ के सभी सन्तों को सम्बन्धित जानकारी करा देवें। सायंकाल प्रतिक्रमण समाप्ति के पश्चात् उपाध्यायश्री ने अपने निर्णय की जानकारी सन्तों को करा दी।

तत्पश्चात् उपाध्यायश्री आदि सन्तों सहित उपाचार्यश्रीजी म.सा. पी ग्राम में पधारे। अगवानी के लिये मरुधरकेशरीजी सामने भी आये किन्तु आदेशानुसार सन्तों ने उनके साथ वंदना-व्यवहार आदि नहीं रखा और स्पष्टता की प्रतीक्षा करते हुए स्थानक मे पदार्पण किया। स्थानक के द्वार पर ही उपस्थित दर्शनार्थियों को मांगलिक श्रवण करा दिया और व्यवस्थित जानकारी के लिये मरुधरकेशरीजी को बुलाया गया। उनसे रूपचन्दजी के साथ के सम्बन्ध की बात को सुनकर उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.सा. ने कहा कि आपके सम्बन्ध-विच्छेद न करने की बात सुनी थी लेकिन अब स्वयं आपके द्वारा ही इसकी पुष्टि हो चुकी है, अतः अगर आप रूपचन्दजी से सम्बन्ध-विच्छेद कर लेते हैं और अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं तो सम्बन्ध बने रहेंगे अन्यथा आपके साथ भी सम्बन्ध नहीं रहेगा। लेकिन इसके लिये मरुधरकेशरीजी तैयार नहीं हुए। अतः उनके साथ सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया।

इस निश्चय से मरुधरकेशरीजी को अपनी स्थिति का भान हुआ और चर्चा-विचारणा के पश्चात् श्री रूपचन्दजी आलोचना सुनाने के लिये तैयार भी हुए। लेकिन उस आलोचना में सरलता और स्पष्टता का अभाव था। इस स्थिति में उपाचार्यश्रीजी म.सा. व उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.सा. ने निश्चय किया कि अधूरी-अस्पष्ट आलोचना चतुर्विध संघ को लाभदायक नहीं है और न स्वयं रूपचन्दजी के लिये हितकर है। अतः जब तक शुद्ध हृदय से आलोचना की स्थितिपूर्वक दंड-प्रायश्चित्त नहीं हो जाता है तब तक सम्बन्ध-विच्छेद रखना ही उपयुक्त रहेगा।

लेकिन यह स्थिति कभी नहीं बनी। श्रावकों की ओर से प्रयत्न भी किये गये, किन्तु मरुधरकेशरी मिश्रीमलजी व रूपचन्दजी ने अधिक-से-अधिक उलझनें ही पैदा कीं। परिणामतः इन उलझनो से श्रमण संघ में विघटन का सूत्रपात हो गया।

संघ-विघटन का दूसरा कारण : ध्वनिवर्धक यंत्र

ध्वनिवर्धक यन्त्र के प्रयोग को लेकर भीनासर साधु-सम्मेलन में ही संघ-विघटन के लक्षण दिखने लगे थे। किन्तु तत्कालीन स्थिति को संभालने की दृष्टि से एक अस्पष्ट और अधूरा प्रस्ताव बहुमत से पारित तो कर दिया गया किन्तु उसकी व्याख्या नहीं की गई थी।

इसी अवसर पर श्री अ.भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के अधिवेशन ने भी ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग करने की दृष्टि से श्रावकों को छूट दे दी थी। लेकिन प्रस्ताव के लिये उपस्थित जनसमूह ने अपना रोष व्यक्त किया था। अतः समाधान के लिये सम्मेलन में आगत कई-एक मुनिराजों को स्थिति का स्पष्टीकरण करने के लिये सभामंच पर लाया गया था।

उस समय तो स्थिति शांत-जैसी हो गई। किन्तु ध्वनि-यन्त्र विषयक प्रस्ताव की श्रमण संघ के द्वारा व्याख्या हुए बिना ही लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म. के विराजते हुए भी उनके ही शिष्यो ने ध्वनिवर्धक यन्त्र का प्रयोग कर श्रमण संघ के प्रस्ताव को तोड़ा। यह श्रमणसंघ के विघटन का दूसरा कारण बना। इससे श्रमण संघ और संयमप्रेमी चतुर्विध संघ में हलचल मच गई और श्रमण संघ के प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म.सा. के पास इसका स्पष्टीकरण करने के लिये शिकायतें आने लगीं।

इस सम्बन्ध में प्रधानमन्त्री व्याख्यानवाचस्पतिजी म.सा. ने आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. से पत्रव्यवहार किया। लेकिन सम्बन्धित पत्रव्यवहार के प्रसंग में निर्मित कटुता के वातावरण से व्याख्यानवाचस्पतिजी म. ने प्रधानमंत्री पद का त्यागपत्र आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. की सेवा में भेज दिया।

ध्वनिवर्धक यंत्र के विषय में आचार्य आत्मारामजी म. का निर्णय

इसी वातावरण के बीच दि. 21, 21 अक्टूबर, 56 को लुधियाना में श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की साधारण सभा की बैठक हुई, जिसमें अधिकारी मुनिवरों को जानकारी कराये बिना ही आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा ने ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध में निम्नलिखित निर्णय फरमा दिया-

'शास्त्रों के परिशीलन से पता चलता है कि आपवादिक स्थिति में किसी दंड का विधान नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये व्यवहारसूत्र के प्रथम उद्देश्य, सूत्र 32 में लिखा है कि साधु संयम-रक्षा के लिये कारणवश वेश-परिवर्तन कर ले तो भी उसको कोई प्रायश्चित्त का विधान नहीं है।

'इसके अतिरिक्त स्थानांगसूत्र के प्रथम स्थान, उद्देश्य दूसरे में लिखा है– साध्वी नदी आदि में गिर रही हो, तब साधु उसकी भुजा पकड़कर निकाल ले तो भी उसके लिये प्रायश्चित्त नहीं। ध्वनि-यन्त्र का प्रयोग आपवादिक स्थिति में स्वीकार किया गया है। अतः इसके लिये शास्त्रीय दृष्टि से कोई प्रायश्चित्त नहीं आता। तथापि संघैक्य को ध्यान में रखकर इस प्रायश्चित्त की कल्पना की जा रही है। अग्नि का स्पर्श हो जाने पर शास्त्रो में प्रायश्चित्त

का विधान आता है। किन्तु ध्वनिवर्धक यन्त्र का तेजस्कायिक होना अभी विवादास्पद है, तथापि संघैक्य को ध्यान में रखकर लघु चौमासी प्रायश्चित्त दिया जाता है।

उत्सर्ग और अपवाद

जिन पर सदा चला जाय, जिनका सदा पालन किया जाय, वह उत्सर्ग मार्ग है।

किसी विशेष कारण से जिसका प्रयोग किया जाय, वह अपवाद है।

'ध्वनि-यन्त्र में जो अपवाद शब्द है, उसका अभिप्राय महावीर जयन्ती महोत्सव, पर्युषण पर्व, संवत्सरी पर्व, दीक्षा महोत्सव और सार्वजनिक व्याख्यान, इन प्रसगों से है, जहां कि हजारों की संख्या हो।

'आपवादिक स्थिति की उपेक्षा कर उल्लंघन करना ही स्वच्छन्दता है। कोई भी साधु-साध्वी ध्वनि-यन्त्र की व्यवस्था करने की प्रेरणा कदापि न करे और न स्वच्छन्दता से ही काम ले। स्वच्छन्दता से जितने दिन लाउडस्पीकर का प्रयोग होगा, उतने दिन का दीक्षाछेद किया जा सकेगा।

'मौखिक या लिखित आलोचना होने पर आचार्यश्री, उपाचार्यश्री मौखिक या लिखित दण्ड दिया करेंगे।'

आचार्य आत्मारामजी म. के निर्णय का समाज में घोर विरोध

जब यह निर्णय दि. 1.12.56 के जैन प्रकाश में छपकर समाज के सामने आया तो विरोध ने उग्र रूप धारण कर लिया और कहा गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. अपनी दि. 1.2 56 की घोषणा में ध्वनिवर्धक यन्त्र का उपयोग करने वाले साधु-साध्वियों को प्रायश्चित्त देने का विधान करते हैं तो इस निर्णय में अपवाद का प्रायश्चित्त नहीं आता, ऐसी परस्पर विरुद्ध बातें क्यों ?

इसी निर्णय के अन्तिम अंश में जहां दण्ड का कथन किया गया है, आचार्यश्रीजी म. के साथ उपाचार्यश्रीजी म. के नाम का भी उल्लेख किया गया है, इससे समाज में यह भ्रांति फैली कि पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. भी इस निर्णय से सहमत हैं। जब इस निर्णय की जानकारी उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को मिली तो उन्होंने फरमाया कि इस निर्णय से न तो मेरा कोई सम्बन्ध ही है, न मेरा मत है, न मुझसे पूछा गया आदि।

कई अधिकारी मुनिवरों एवं अन्य संत-सतियों की ओर से आचार्यश्रीजी की सेवा में इस निर्णय के विरोध में पत्र आने लगे। उनमें निवेदन किया गया कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. अपनी पूर्व की घोषणा के अनुसार अधिकारी मुनियों की प्रार्थना के बिना कदापि निर्णय नहीं दे सकते, फिर भी अधिकारी मुनियों की प्रार्थना के बिना ही निर्णय देकर अपने पूर्व के वचन से स्खलित हुए हैं।

दूसरी बात, आचार्यश्री का यह निर्णय श्रमण संघ की व्यवस्था के प्रतिकूल भी है और उत्सूत्र-प्ररूपणा के साथ आगे चलकर श्रमण संस्कृति को तहस-नहस करने वाला भी सिद्ध हो सकता है, अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. के उक्त निर्णय को अमान्य घोषित कर दें आदि। तब उत्तर में आचार्यश्रीजी म.सा. ने लिखवाया कि मैं आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में पत्र व्यवहार करा रहा हूँ। उत्तर आने पर चतुर्विध संघ को जानकारी दी जायेगी।

तदनुसार आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. को निर्णय के बारे में जानकारी देने के लिये पत्र लिखा गया। लेकिन टालमटूल उत्तरों की परम्परा चलती रही। इधर चतुर्विध संघ में दिनोंदिन रोष और अधिक बढ़ता जा रहा था, जिससे यह स्थिति दिखने लगी कि श्रमण संघ के सन्त आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. से असहयोग करने के लिये तत्पर हो जायेंगे। अन्त में दि. 21.1.57 को पत्र आया–

'............ कॉन्फरेंस के अधिकारियों ने उपाचार्यश्रीजी से सहमति लिये बिना ही आचार्यश्री के अभिमत को निर्णय का रूप देकर जैन प्रकाश में प्रकाशित कर दिया। आचार्यश्री को इसका हार्दिक खेद है आदि।'

इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिये कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की विशेष बैठक जयपुर में बुलाई गई और उसमें सम्बन्धित विषय का उल्लेख करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव में उक्त विषय पर शीघ्र निर्णय प्रगट करने के लिये श्रमण संघ के दोनों आचार्यों से प्रार्थना की गई थी।

इसके बाद भी ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग विषयक निर्णय के लिये अधिकारी मुनिराजों की ओर से उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. के पास अनेक पत्र आये तथा श्रावकों ने भी इस प्रश्न के बारे में शीघ्र निर्णय के लिये प्रार्थनाएं कीं। उपाचार्यश्रीजी म.सा. भी स्थिति स्पष्ट करने के लिये उत्सुक थे। अत. आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. को पुष्ट प्रमाणों सहित उत्तर दिलाने के लिये कई-एक पत्र भेजे गये। लेकिन उनकी ओर से कोई संतोषजनक पत्र नहीं आया, जिससे ध्वनिवर्धक यन्त्र सम्बन्धी प्रश्न का हल निकल सके।

अन्त में दिनांक 16.10.57 को उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने चतुर्विध संघ को सूचित किया, जिसमे लिखा गया था कि अनिर्णीत अवस्था में किसी भी चीज का प्रयोग होना वैधानिक नहीं माना जा सकता है। इस बात का ध्यान चतुर्विध संघ के प्रत्येक संगठनप्रेमी सदस्य को रखना आवश्यक है।

यह सूचनापत्र लुधियाना पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. की जानकारी के लिये भी भेजा गया था। जिसकी पहुंच आ गई थी और यह प्रसंग एक प्रकार से सुलझ गया प्रतीत होने लगा था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को कॉन्फरेंस कार्यालय का दि. 10.12.57

क पत्र प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. इस सूचना को निक मानते हैं। लेकिन उसमें अवैधानिकता के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था। स्वयं पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को ासम्पन्न अधिकारी मानते हुए इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये अधिकारी माना था। इस प्रकार प्रश्न भी अधिक-से-अधिक उलझता गया और श्रमण संघ के संगठन को बनाने में ही अधिक योग दिया, स्वच्छन्दता फैली और अनुशासन-भंग की घटनाएं आये ोने लगीं।

विघटन का तीसरा कारण : अप्रामाणिक सुत्तागमे

प्रमाणों के विना आगमों में परिवर्तन करना योग्य नहीं, लेकिन पं. मुनिश्री फूलचन्दजी फभिक्खू) ने 'सुत्तागमे' में विना प्रमाणों के कहीं-कहीं मूल पाठों में परिवर्तन कर दिया सके बारे में वृहत्साधु-सम्मेलन में चर्चा भी हुई, परन्तु यह विषय शास्त्रों से सम्बन्धित र कई शास्त्रों का गहन अवलोकन करना जरूरी था। इसलिये समयाभाव से सम्मेलन ार नहीं हो सका और निर्णय के लिये पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. को सौंप देने का य किया गया। पारित प्रस्ताव इस प्रकार है-

'पं. फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खु) द्वारा संपादित 'सुत्तागमे' के विषय में निर्णय किया गया त्रपाठ में पुष्टावलम्बन एवं खास प्रमाण विना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है, अतः वे अपने आचार्यश्री की सेवा में भेज दें। फिर आचार्यश्रीजी जो निर्णय देंगे, वह श्रमण संघ को र होगा।'

उक्त प्रस्तावानुसार सुत्तागमे विषयक निर्णय का पूर्ण उत्तरदायित्व पूज्यश्री आत्मारामजी पर रखा गया था, किनतु करीब छह महीने व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यश्री आत्मारामजी की ओर से सुत्तागमे विषयक निर्णय समाज के समक्ष नहीं आया तो समाज में कुछ ल हुई कि अभी तक सुत्तागमे का निर्णय क्यों नहीं हो रहा है ? श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी कॉन्फरेंस की ओर से भी कहा जाने लगा कि सुत्तागमे का निर्णय शीघ्र हो जाना चाहिये। म्बन्ध में पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. की ओर से दिनांक 21.11.56 को श्री सीतारामजी लिखा गया एक पत्र कॉन्फरेंस के प्रधानमन्त्री श्री आनन्दराजजी सुराना की मार्फत दि. 56 को मेड़ता में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि—

सुत्तागमे के निर्णय का उत्तरदायित्व भीनासर सम्मेलन द्वारा आचार्यश्रीजी म. पर डाला है, उसके आधार पर श्री फूलचन्दजी म. ने सुत्तागमे सम्बन्धी अपना अभिमत अभी-अभी र्यश्रीजी म. के पास भेजा है। किन्तु कुछ दिनों से आचार्यश्रीजी अस्वस्थ चल रहे हैं।

दूसरी बात, आचार्यश्री का यह निर्णय श्रमण संघ की व्यवस्था के प्रतिकूल भी है और उत्सूत्र-प्ररूपणा के साथ आगे चलकर श्रमण संस्कृति को तहस-नहस करने वाला भी सिद्ध हो सकता है, अत. आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. के उक्त निर्णय को अमान्य घोषित कर दे आदि। तब उत्तर में आचार्यश्रीजी म.सा. ने लिखवाया कि मैं आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में पत्र व्यवहार करा रहा हूँ। उत्तर आने पर चतुर्विध संघ को जानकारी दी जायेगी।

तदनुसार आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. को निर्णय के बारे में जानकारी देने के लिये पत्र लिखा गया। लेकिन टालमटूल उत्तरों की परम्परा चलती रही। इधर चतुर्विध संघ मे दिनोदिन रोष और अधिक बढ़ता जा रहा था, जिससे यह स्थिति दिखने लगी कि श्रमण संघ के सन्त आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. से असहयोग करने के लिये तत्पर हो जायेगे। अन्त में दि. 21.1.57 को पत्र आया–

'............ कॉन्फरेंस के अधिकारियों ने उपाचार्यश्रीजी से सहमति लिये बिना ही आचार्यश्री के अभिमत को निर्णय का रूप देकर जैन प्रकाश में प्रकाशित कर दिया। आचार्यश्री को इसका हार्दिक खेद है आदि।'

इस महत्त्वपूर्ण प्रश्न पर विचार करने के लिये कॉन्फरेस की जनरल कमेटी की विशेष बैठक जयपुर में बुलाई गई और उसमें सम्बन्धित विषय का उल्लेख करते हुए प्रस्ताव पारित किया गया। प्रस्ताव में उक्त विषय पर शीघ्र निर्णय प्रगट करने के लिये श्रमण संघ के दोनों आचार्यों से प्रार्थना की गई थी।

इसके बाद भी ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग विषयक निर्णय के लिये अधिकारी मुनिराजों की ओर से उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. के पास अनेक पत्र आये तथा श्रावकों ने भी इस प्रश्न के बारे में शीघ्र निर्णय के लिये प्रार्थनाएं कीं। उपाचार्यश्रीजी म.सा. भी स्थिति स्पष्ट करने के लिये उत्सुक थे। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. को पुष्ट प्रमाणों सहित उत्तर दिलाने के लिये कई-एक पत्र भेजे गये। लेकिन उनकी ओर से कोई संतोषजनक पत्र नहीं आया, जिससे ध्वनिवर्धक यन्त्र सम्बन्धी प्रश्न का हल निकल सके।

अन्त में दिनांक 16.10.57 को उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने चतुर्विध संघ को सूचित किया, जिसमें लिखा गया था कि अनिर्णीत अवस्था में किसी भी चीज का प्रयोग होना वैधानिक नहीं माना जा सकता है। इस बात का ध्यान चतुर्विध संघ के प्रत्येक संगठनप्रेमी सदस्य को रखना आवश्यक है।

यह सूचनापत्र लुधियाना पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. की जानकारी के लिये भी भेजा गया था। जिसकी पहुंच आ गई थी और यह प्रसंग एक प्रकार से सुलझ गया प्रतीत होने लगा था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को कॉन्फरेंस कार्यालय का दि. 10.12.57

का एक पत्र प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा इस सूचना को अवैधानिक मानते हैं। लेकिन उसमें अवैधानिकता के कारणों का उल्लेख नहीं किया गया था। जबकि स्वयं पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को सर्वसत्तासम्पन्न अधिकारी मानते हुए इस प्रश्न का निर्णय करने के लिये अधिकारी माना था।

इस प्रकार प्रश्न भी अधिक-से-अधिक उलझता गया और श्रमण संघ के संगठन को निर्बल बनाने मे ही अधिक योग दिया, स्वच्छन्दता फैली और अनुशासन-भंग की घटनाएं आये दिन होने लगीं।

संघ-विघटन का तीसरा कारण : अप्रामाणिक सुत्तागमे

प्रमाणों के बिना आगमों मे परिवर्तन करना योग्य नहीं, लेकिन पं. मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खू) ने 'सुत्तागमे' में बिना प्रमाणों के कहीं-कहीं मूल पाठों में परिवर्तन कर दिया था। इसके बारे में वृहत्साधु-सम्मेलन में चर्चा भी हुई, परन्तु यह विषय शास्त्रों से सम्बन्धित था और कई शास्त्रों का गहन अवलोकन करना जरूरी था। इसलिये समयाभाव से सम्मेलन में विचार नहीं हो सका और निर्णय के लिये पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. को सौंप देने का निश्चय किया गया। पारित प्रस्ताव इस प्रकार है-

'पं. फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खु) द्वारा संपादित 'सुत्तागमे' के विषय में निर्णय किया गया कि सूत्रपाठ में पुष्टावलम्बन एवं खास प्रमाण बिना परिवर्तन करना इष्ट नहीं है, अतः वे अपने विचार आचार्यश्री की सेवा में भेज दें। फिर आचार्यश्रीजी जो निर्णय देंगे, वह श्रमण संघ को स्वीकार होगा।'

उक्त प्रस्तावानुसार सुत्तागमे विषयक निर्णय का पूर्ण उत्तरदायित्व पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. पर रखा गया था, किन्तु करीब छह महीने व्यतीत हो जाने पर भी पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. की ओर से सुत्तागमे विषयक निर्णय समाज के समक्ष नहीं आया तो समाज में कुछ हलचल हुई कि अभी तक सुत्तागमे का निर्णय क्यों नहीं हो रहा है ? श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की ओर से भी कहा जाने लगा कि सुत्तागमे का निर्णय शीघ्र हो जाना चाहिये। इस सम्बन्ध मे पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. की ओर से दिनांक 21.11.56 को श्री सीतारामजी द्वारा लिखा गया एक पत्र कॉन्फरेंस के प्रधानमन्त्री श्री आनन्दराजजी सुराना की मार्फत दि. 8.12.56 को मेडता मे उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था कि–

सुत्तागमे के निर्णय का उत्तरदायित्व भीनासर सम्मेलन द्वारा आचार्यश्रीजी म. पर डाला गया है, उसके आधार पर श्री फूलचन्दजी म. ने सुत्तागमे सम्बन्धी अपना अभिमत अभी-अभी आचार्यश्रीजी म. के पास भेजा है। किन्तु कुछ दिनों से आचार्यश्रीजी अस्वस्थ चल रहे हैं।

अत: आचार्यश्री फरमाते हैं– मेरा स्वास्थ्य ठीक नहीं चल रहा है अतः सुत्तागमे की प्रामाणिकता, अप्रामाणिकता का निर्णय उपाचार्यश्री करें। उपाचार्यश्री इस सम्बन्ध में जो करेंगे, वह मुझे स्वीकार होगा।'

इस पत्र के उत्तर में उसी दिन उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की ओर से पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में श्री सीतारामजी को सम्बोधित करते हुए पत्र लिखाया गया तथा जानकारी के लिये उसकी प्रतिलिपि श्री आनन्दराजजी सुराना को दिलाई गई। वह पत्र इस प्रकार है-

'भीनासर सम्मेलन में उपाचार्यश्रीजी स्वयं उपस्थित थे ही। लेकिन एतद्विषयक (सुत्तागमे विषयक) उत्तरदायित्व आचार्यश्रीजी म. पर छोड़ा है, अतः आचार्यश्रीजी म. का स्वास्थ्य ठीक होने पर सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्यश्रीजी म. द्वारा ही होना चाहिये। अथवा ऐसे विषय उपाध्यायों के अधिकारान्तर्गत आ जाते हैं, जैसा कि भीनासर सम्मेलन में उपाध्यायों के अधिकार नम्बर 1 में लिखा है–

'साहित्य-सर्जन एवं संशोधन करना, आगम-साहित्य संबंधी आक्षेपों का निवारण करना आदि।'

लेकिन इस पत्र के पहुंचने के बाद न तो पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. ने सुत्तागमे का कोई निर्णय ही दिया और न इस विषय को उपाध्यायमण्डल को ही सौंपा और न इसके बाद उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के पास भी कोई सूचना आई।

इस प्रकार इस प्रश्न को भी अनिर्णीत ही रहने दिया गया। इससे यह शंका सुदृढ होती है कि ध्वनिवर्धक यन्त्र विषयक विवाद को पालीकांड की तरह अधिक-से-अधिक उलझाने का अवसर दिया गया। फलस्वरूप सुत्तागमे में आगम पाठों का इच्छानुकूल परिवर्तन आदि चलता रहा। यद्यपि बाद में श्रमण संघीय कार्यवाहक समिति ने सुत्तागमे के प्रकाशन को अप्रमाणित घोषित किया है, लेकिन अप्रमाणित पाठों के शुद्ध एवं प्रमाणित पाठों की जानकारी आज तक भी किसी को नहीं हो सकी है।

सुत्तागमे के सम्बन्ध में कॉन्फरेंस का प्रस्ताव

दि. 20, 21 अक्टूबर, 56 को लुधियाना में श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेस की साधारण सभा की बैठक हुई। जिसमें सुत्तागमे के सम्बन्ध में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया था-

'सुत्तागमे' सूत्र में (मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म.सा. द्वारा संपादित) पाठ-परिवर्तन के

कारण पूज्य आचार्यश्री ने अध्यादेश द्वारा प्रकाशन, विक्रय पर प्रतिबन्ध लगाया और भीनासर साधु-सम्मेलन में पाठ-परिवर्तन के कारण पूज्य आचार्यश्री को लिख भेजने का आदेश दिया गया था, लेकिन दुःख है कि अप्रमाणित सुत्तागमे का प्रकाशन व विक्रय बेरोकटोक अभी तक चालू है, जो श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमण संघ व श्रावक संघ दोनों के लिये अप्रतिष्ठा का कारण बना हुआ है। अतः यह जनरल कमेटी यह निश्चय करती है कि सुत्तागमे के प्रकाशन व विक्रय को तत्काल प्रतिबन्धित करने व मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म.सा. द्वारा जो अनुशासन भंग हुआ है, और हो रहा है, इस सम्बन्ध मे भी श्रमण संघ कठोर कदम उठाकर अनुशासन-प्रणाली की रक्षा करे, ऐसी श्रमण संघ से प्रार्थना है।'

यहां श्रमण संघ के विघटन के कारणों में से कुछ-एक का संकेत किया है। ऐसे ही और भी दूसरे-दूसरे अनेक कारण हैं जो संगठन को निर्बल बनाने में सहायक बनते रहे।

इन सभी प्रश्नों एवं श्रमण संघ के मूल उद्देश्यों के अन्तर्गत स्वीकृत--एक आचार्य के नेश्राय में शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास व्यवस्था आदि के केन्द्रीयकरण करने के लिये लुधियाना, जयपुर में हुई कॉन्फरेंस की साधारण सभा की बैठकों में भी विशेष रूप से प्रस्ताव पारित किये गये थे। लेकिन श्रमण संघ के अधिकारी मुनियों में वह उदारता नहीं दिखी, जो श्रावकवर्ग की भावना का मूल्यांकन करती। इसके फलस्वरूप संगठन की नींव दिनोंदिन कमजोर होती गई।

अजमेर की ओर विहार और चतुर्विध संघ द्वारा स्वागत

गोगोलाव चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् पूज्य उपाचार्यश्रीजी ने आस-पास के कडलू, मेड़ता आदि क्षेत्रों को फरसते हुए अजमेर की ओर विहार किया। रास्ते में पी गांव पहुंचने के पूर्व ही विहार करते हुए उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म. आदि ठा. उपाचार्यश्रीजी म.सा. से मिल गये और फिर वहां से साथ-साथ तथा आगे-पीछे विहार करते हुए पुष्कर के समीप पधारने पर मन्त्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी म. आदि संत भी अगवानी के लिये पधार गये थे। लेकिन इसके पूर्व ही यह मालूम हो चुका था कि आईदानजी, जिनका कि नियमविरुद्ध प्रवृत्तियों के कारण श्रमण-संघीय धारा के अनुसार सम्बन्ध-विच्छेद कर दिया गया था, के साथ मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी ने संबध रखा है। अतः मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के साथ कैसे क्या सम्बन्ध रखना ? एतद्विषयक विचारणा उपाचार्यश्रीजी म.सा. और उपाध्यायजी हस्तीमलजी म. के बीच पुष्कर के पूर्व ही हो चुकी थी। उसमें यह सोचा गया था कि मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के साथ वंदन-व्यवहार आदि होने के पूर्व उनसे पूछ लिया जाये कि आपने आईदानजी के साथ सम्बन्ध रखा, उसका आप प्रायश्चित्त लेना स्वीकार करते हैं तो आपके साथ सम्बन्ध रह

सकता है, अन्यथा नहीं। तदनुसार मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी के पधारते ही उनसे कहा गया कि आपने आईदानजी से जो सम्बन्ध रखा है उसका आपको प्रायश्चित्त लेना होगा। प्रायश्चित्त लिये बिना आपके साथ सम्बन्ध नहीं रह सकता। इस पर मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी ने प्रायश्चित्त ले लिया। तब उनके साथ सम्बन्ध रहा और वंदन-व्यवहारादि हुआ। इसके बाद पुष्कर में प्रवेश हुआ। पुष्कर और अजमेर के बीच तो दर्शनार्थी जनों के आवागमन का तांता-सा लग गया था। जैसे ही आपश्री अजमेर के निकट पहुंचे, सन्त-सतीवृन्द और श्रावक-श्राविकाओं के समूह स्वागत के लिये उमड पड़े।

चतुर्विध संघ के जुलूस के साथ सं. 2013, माघ शुक्ला 4 को उपाचार्यश्रीजी म.सा. का लाखनकोटड़ी स्थित एक बडे मकान में पदार्पण हुआ। यहां पर करीब 15-16 दिन विराजना हुआ। प्रतिदिन व्याख्यान पंचायती भवन में होते थे, जिनका स्थानीय और आस-पास के नगरों के भाई-बहिनो ने लाभ उठाया। कानौड़, बालेसर, ब्यावर, अजमेर आदि क्षेत्रों की ओर से सं. 2014 के चातुर्मास की स्वीकृति के लिये विनतियां हुई, किन्तु चातुर्मास के लिये काफी समय होने से आपश्री ने किसी भी स्थान का आश्वासन नहीं दिया।

उपाचार्यश्री के चरणों में कॉन्फरेंस नेताओं की मार्मिक प्रार्थना

दि. 21.3.57 को अजमेर में कॉन्फरेंस की ओर से एक शिष्टमण्डल सेवा में उपस्थित हुआ। जिसमें समाज के अग्रणी कार्यकर्ता सर्वश्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, सेठ मोहनमलजी चोरडिया, आनन्दराजजी सुराना, कानमलजी नाहटा, रतनलालजी चोरड़िया और धीरजलालभाई तुरखिया आदि-आदि थे। शिष्टमण्डल ने समाज की वर्तमान स्थिति और उससे सम्बन्धित प्रश्नों पर उपाचार्यश्रीजी से वार्त्तालाप किया। आचार्यश्रीजी ने अपने विचार व्यक्त करते हुए फरमाया कि श्रमण संघ की शुद्धता और अखंडता के लिये मेरी शुभ भावना है और श्रमण व श्रावक संघ के परस्पर सम्बन्ध व अपनी-अपनी मर्यादानुसार एक-दूसरे से पारस्परिक सहयोग की आवश्यकता व जागरूकता के बारे मे बतलाया।

इसी संदर्भ में कॉन्फरेंस के प्रमुख नेताओं ने उपाचार्यश्रीजी म.सा के चरणों में मार्मिक प्रार्थना करते हुए संकेत किया कि पालीकांड आदि की परिस्थितियों के कारण हम सब को नीचा देखना पड़ रहा है। यद्यपि भीनासर सम्मेलन में अधिकारी मुनियों को अलग-अलग अधिकार दिये गये हैं, लेकिन न तो वे अधिकारों का दायित्व समझ रहे हैं और न इन कांडों को मिटाकर समाज के अन्दर शुद्धिकरण का वातावरण तैयार कर रहे हैं। कुछ-एक अधिकारी भी कांडो मे अपने शिष्यों के फंसे होने से इन कांडों से सम्बन्धित मालूम हो रहे हैं और दंड देने में हिचकिचाते हैं। हम लोगों में से कुछ व्यक्ति पहले लुधियाना भी गये थे। वहां पर भी

हमने आचार्यश्री आत्मारामजी म. के समक्ष यह परिस्थिति रखी तो उन्होंने फरमाया कि ये सब मामले उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. को निपटाना चाहिये और वे निपटायेंगे ही। क्योंकि वर्तमान विधान के अनुसार भी उनको सब अधिकार प्राप्त हैं, आदि। इन्हीं भावों का एक पत्र भी कॉन्फरेंस आफिस के मार्फत आपश्री के पास पहुंचा दिया गया है। इसी तरह हम सब की एवं शुद्धिकरणप्रेमी सन्तों की भी यह हार्दिक अभिलाषा है कि इन मामलों को आपश्री निपटायें। ये मामले दूसरों से निपटने वाले नही है। आपश्री सक्षम हैं। अतः इस विषय में शीघ्रातिशीघ्र कदम उठाकर हम सबका मुख उज्ज्वल करें, ऐसी हमारी साग्रह सानुरोध प्रार्थना है।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि आप लोगो को इन घटनाओं से दुःख है, वैसी ही मुझे भी इस गन्दे वातावरण से खिन्नता है। मैंने अपने जीवन मे ऐसे घृणित कांड तो दूर रहे, इससे भी हल्की स्थिति को सहन नहीं किया है। मुझे इस तरह के कांड कितने कष्टदायी हैं, आप इसका अनुमान लगा सकते हैं।

आपने जो अपनी व शुद्धिकरणप्रेमी सन्तों की भावना रखी और मेरे से ही यह कार्य निपटवाना चाहते हैं तो मुझे कोई एतराज नहीं है। लेकिन मैं जो कदम उठाऊं, उसमें सबका दृढ विश्वास हो तथा आप सब लोगों की दृष्टि में जो व्यक्ति शुद्ध मालूम हो और शास्त्रीय मर्यादा एवं श्रमण संघीय नियमोपनियम को ध्यान में रखते हुए मेरी दृष्टि में अशुद्ध मालूम पडे और मैं उसको जो भी दंड दूं, उसको अमली रूप देने-दिलाने की आप महानुभावों की तैयारी हो, तो यह निर्णय मेरे से कराइये। अन्यथा इस विषय को मै किसी अन्य अनुभवी मुनि पर भी छोड सकता हूँ।

इस पर कॉन्फरेंस के उन नेताओं ने कहा कि आप जो भी फरमावेगे, उसको हम सहर्ष अमली रूप देंगे, दिलायेंगे। इस विषय को आपश्री अन्य किसी पर मत छोडिये। उनमें ऐसे विषयों को गौरवतापूर्ण तरीके से निपटाने की क्षमता हमको मालूम नहीं होती है। यदि होती तो कम-से-कम दूषित व्यक्तियों का सम्बन्ध-विच्छेद तो वे उसी समय कर देते।

वार्त्तालाप के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने इस विषय को पूर्णरूपेण हाथ में लिया और अन्यान्य अधिकारी मुनिवरो के परामर्शपूर्वक शुद्धिकरण के साथ संगठन को ध्यान में रखते हुए पूरी छानबीन करके निर्णय दिया और निर्णय की सूचना सम्बन्धित व्यक्तियों के पास पहुंचा दी। जिसकी स्वीकृति की सूचना भी प्राप्त हो गई और निर्णय के क्रियान्वयन की प्रतीक्षा करते हुए अजमेर से विजयनगर की तरफ विहार किया।

आस-पास के छोटे-छोटे गांवों को स्पर्श करते हुए विजयनगर पधारे। विजयनगर में प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म., उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म., प्रान्तमन्त्री मुनिश्री सेंसमलजी म., वयोवृद्ध मुनिश्री रामकुमारजी म. आदि सन्तों का संयोग मिला। दर्शनार्थी बंधु तो आते ही

रहते थे। त्याग-प्रत्याख्यान अच्छी संख्या मे हुए तथा वहां विराजित मुनिवरो से श्रमण संघ की वर्तमान स्थिति एवं अन्यान्य विषयों पर विशद रूप से चर्चा-वार्त्ता हुई।

शार्दूलसिंहजी की सेवा में उपाचार्यश्री ने सन्त भेजे

उनमें एक समस्या पाली में विराजित स्थानापति वयोवृद्ध श्री शार्दूलसिंहजी म. की सेवा-सम्बन्धी थी। ये शार्दूलसिंहजी म. भूतपूर्व सम्प्रदाय की दृष्टि से आचार्यश्री जयमलजी म. की संप्रदाय के थे और श्रमण संघ बनने के पश्चात् बृहत्साधु-सम्मेलन भीनासर में प्रान्तीय मन्त्रियों ने जो अधिकार अपने पास रखे थे, उनमें प्रान्त में विचरने वाले वृद्ध सन्त-सतियों की सेवा का अधिकार भी था। तदनुसार प्रान्त के मन्त्रियों को उनकी सेवा का पूर्ण उत्तरदायित्व समझते हुए व्यवस्था करने की नितान्त आवश्यकता थी। लेकिन प्रान्त-मन्त्रियों ने कोई ध्यान नहीं दिया। वे वृद्ध सन्त कष्ट पा रहे थे। ये समाचार उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के पास पहुंचे तब वहां विराजित संतों से भी उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने परामर्श किया और फरमाया कि कुछ सन्त मैं भेजूं और कुछ आप (मन्त्रीश्री पन्नालालजी म. व उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.) भेजें। ताकि पाली में विराजित शार्दूलसिंहजी म. को ब्यावर विराजित ठाणापति संतों के पास अथवा बीकानेर विराजित ठाणापति सन्तों के पास पहुंचा सकें। जिससे वहां के ठाणापति सन्तों के साथ इनकी सेवा भी अच्छी तरह से हो सके। इस पर दोनों अधिकारी मुनिवरों ने फरमाया कि आपश्री की आज्ञा शिरोधार्य है। लेकिन यह कार्य तो उस प्रान्त के अधिकारी मुनियों का है। अतः उनको इस विषय में पहल करनी चाहिये, लेकिन वे प्रान्तीय अधिकारी मुनि इस तरफ ध्यान नहीं दे रहे हैं। आपश्री की यह महानता है कि आप अपनी सुव्यवस्था के लिये सोच रहे हैं। हम आपश्री की आज्ञा को न टालते हुए सेवा में सन्त भेजने के लिये तैयार हैं, बशर्ते कि उस प्रान्त के अधिकारी मुनि भी सेवा में अपनी ओर से सन्त भेजने को तैयार हों।

इस पर उपर्युक्त वार्त्तालाप के आशय की सूचना प्रान्त-मन्त्रियों को दिलाई गई, लेकिन उनका उत्तर आशाजनक नहीं था। अतः पाली से वृद्ध सन्तों को उठाकर ब्यावर या बीकानेर पहुंचाने की स्थिति नहीं बनी। फिर भी उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने अपनी उदारता का परिचय देते हुए अपने सन्तों में से तपस्वीश्री चांदमलजी म. को एक वर्ष के लिये पाली भेजा और उस प्रान्त के मन्त्रियों को सूचना दिला दी कि इस वर्ष के लिये तो मैंने सन्त भेजा है, आगे के लिए आपको पूरी व्यवस्था कर लेनी चाहिये। लेकिन उस प्रान्त के मन्त्रियों ने व्यवस्था नहीं की।

गणेशनारायण ने मेरी जिन्दगी सुधार दी

इसी तरह जोधपुर में विराजित वयोवृद्ध बाबाजी श्री पूर्णमलजी म. की सेवा में भी सन्त भेजना आवश्यक था, लेकिन संयुक्त चातुर्मास मे जोधपुर में विराजित प्रमुख सन्तों में से किसी ने ध्यान नहीं दिया तो फिर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा ने अपने पास रहने वाले सेवाभावी मुनिश्री करणीदानजी म. को और नवदीक्षित मुनिश्री घेवरचन्दजी म. को सेवा में भेजा और दोनों मुनियों ने बाबाजी म. की अन्त तक सेवा की। इस सेवा की जोधपुर संघ आज भी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहा है और स्वयं बाबाजी म. कहा करते थे कि मेरी सेवा में महान् सेवाभावी सन्तों को गणेशनारायण (उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा.) ने भेजकर मेरी जिन्दगी सुधार दी।

विजयनगर में तप-त्याग का ठाठ

विजयनगर से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. गुलाबपुरा पधारे। यहां पर मन्त्री मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म. आदि सन्त विराज रहे थे। स्थानीय संघ की ओर से उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ आने वालों की उत्तम व्यवस्था की गई थी। महावीर जयन्ती के अवसर पर श्रावक-श्राविकाओं द्वारा विविध प्रकार की तपस्याएं व त्याग-प्रत्याख्यान हुए। श्री कस्तूरचन्दजी कोठारी ब्यावर निवासी ने सजोडे ब्रह्मचर्यव्रत अंगीकार किया एवं अनेको ने चर्बी लगे वस्त्रों के पहनने व दूसरे के यहां मिष्टान्न भोजन जीमने का त्याग किया।

चैत्र शुक्ला 14 की शाम को जोधपुर में विराजित स्थविर पद-विभूषित तपस्वी मुनिश्री पूर्णमलजी म.सा. (बाबाजी म.सा.) के कालधर्म को प्राप्त होने के समाचार मालूम होने से चैत्र शुक्ला 15 को व्याख्यान बंद रखा गया और उपचार्यश्रीजी म.सा. एवं अन्यान्य सन्त-मुनिराजों ने बाबाजी म. के जीवन एवं उनकी विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए गुणानुवाद किया और उनके गुणों का अनुकरण करने के लिये चतुर्विध संघ का ध्यान आकर्षित किया। श्रावक-श्राविकाओ के आयंबिल आदि की तपस्याएं हुईं।

अजमेर और कानोड़ संघ चातुर्मास कराने को लालायित

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने कई-एक परिस्थितियों को लक्ष्य में रखते हुए चैत्र शुक्ला पूर्णिमा से पहले सं. 2014 का चातुर्मास घोषित नहीं करने का फरमाया था। अतः जैसे-जैसे उक्त तिथि निकट आ रही थी कि चातुर्मास की विनती के लिये विभिन्न श्रीसंघो के सैकडों भाई-बहिन गुलाबपुरा में उपस्थित हो गये। अजमेर और कानोड़ संघ के श्रावकों में तो अपने यहां ही चातुर्मास कराने की होड-सी लग गई थी।

कनोड़ श्रीसंघ ने भावभीनी आकर्षक भाषा में अपने क्षेत्र की स्थिति आदि का दिग्दर्शन कराया तो अजमेर संघ के अध्यक्ष, मंत्री आदि अग्रणी श्रावकों ने अपनी लगन, श्रद्धा-भक्ति का परिचय दिया। दोनो संघों का धर्मप्रेम और उत्साह श्लाघनीय था। कोई भी अपने अधिकार को छोड़ने के लिये टस-से-मस नहीं होना चाहता था और सिर्फ यही चाहता था कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. का सं. 2014 का चातुर्मास हमारे यहां ही हो।

ऐसी स्थिति में उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने परामर्श दिया कि आप सभी का धर्मप्रेम सराहनीय है। मैं एक हूँ और चातुर्मास के क्षेत्र अनेक हैं, अतः चातुर्मास तो कहीं एक ही स्थान पर होगा। अतः आप लोग आपस में विचार-विमर्श करके एक निष्कर्ष पर पहुंच जायें तो मेरे सोचने में सुविधा रहेगी। इस पर दोनों संघ आपस में विचार-विमर्श करते हुए एक-दूसरे संघ से चातुर्मास की याचना करने लगे कि इस वर्ष का चातुर्मास हमको दे दो। कानोड संघ की धार्मिक भावना प्रबल थी और अजमेर संघ की भी धार्मिक भावना कम न थी। अजमेर के सेठ श्री सौभागमलजी लोढ़ा, श्री गणेशमलजी बोहरा आदि कानोड संघ को समझाने में भाग ले रहे थे। कानोड संघ के सदस्य कहने लगे कि आप लोग तो सम्पन्न हैं, शिक्षित हैं, बड़े शहर में रहने वाले हैं सो आप लोग तो कभी भी चातुर्मास का लाभ प्राप्त कर सकते हैं, लेकिन हम गांव के रहने वाले हैं, अतः यह मौका हमें दीजिये। हम आपके चरणो में झोली बिछाते हैं और पगड़ियां रखते हैं आदि कहते हुए धडाधड़ अपनी पगडियां रख दीं। तब अजमेर वाले कहने लगे कि हम बडे शहर में रहते हुए भी उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास अब तक नहीं करा सके हैं, अतः यह मौका तो हमें ही दीजिए और उपस्थित प्रायः सभी अजमेर-निवासियों ने अपनी-अपनी पगड़ियां और टोपियां कानोड़ वालों के चरणों में रख दीं। लेकिन कोई समझौता नहीं हो पाया और अन्त में कहने लगे कि अब तो उपाचार्यश्रीजी म.सा. को ही कुछ फरमाना होगा। परन्तु अभी उपाचार्यश्रीजी म.सा. को फरमाने का अवसर नहीं था। शाम को उपाचार्यश्रीजी म.सा. ध्यान करके पौढ़ गये तो उपाचार्यश्रीजी म. के पाट के आस-पास अजमेर के कुछ व्यक्ति माला लेकर जाप करने लगे। तब श्री नानालालजी म. सा. आदि सन्तों ने संकेत किया कि आचार्यश्रीजी म.सा. के पास आवाज न करें, निद्रा भंग हो जायेगी। निद्रा न आयी तो स्वास्थ्य के लिये अच्छा न होगा। आपका धर्मपेम सराहनीय है। लेकिन वे पूर्ववत् जाप करते रहे। इस तरह अजमेर और कानौड़ संघ का अलौकिक दृश्य दर्शनीय था।

चातुर्मास प्राप्ति से कानोड़ संघ में हर्ष का पारावार

ऐसी स्थिति में वैशाख कृष्णा 1 को उपाचार्यश्रीजी म. सा. ने अपने प्रवचन में फरमाया कि कानोड और अजमेर दोनों संघों की चातुर्मास हेतु विनती जोरदार है। लेकिन मैंने पहले

ही इस सम्बन्ध में संकेत कर दिया था कि चातुर्मास-स्वीकृति को निमित्त बनाकर आप लोग आने-जाने का कष्ट न करें। परन्तु आप लोगों ने इस बात पर ध्यान न देकर आने-जाने की क्रिया चालू रखी। परिस्थितिवश पहले मैंने चैत्र शुक्ला 15 तक आगामी चातुर्मास के स्थान संबंधी निश्चय के बारे में कहा था। लेकिन चैत्र शुक्ला 15 के बाद अब मैं चातुर्मास का निश्चय करने के लिये स्वतंत्र हूँ। वर्तमान में जो परिस्थितियां चल रही हैं, उनको दखते हुए अभी कुछ समय और चातुर्मास का निश्चय नहीं करने की स्थिति मेरे ध्यान में आ रही है। आप दोनों संघों को कहीं पर आने की आवश्यकता नहीं है। चातुर्मास-काल में कहा रहना उपयुक्त प्रतीत होगा, वहां की सूचना दोनों संघों के मंत्रियों को यथासमय किसी-न-किसी स्थान के संघ के मन्त्री द्वारा मिल सकती है।

इसके पश्चात् दोनों संघ अपने-अपने स्थानों को रवाना हो गये और कुछ दिन बाद दोनों संघो के मन्त्रियों को कुछ आगार रखकर सुखेसमाधे सं. 2014 का चातुर्मास-काल कानोड़ में बिताने की स्वीकृति के समाचार मालूम हुए। ये समाचार सुनते ही कानोड़ संघ के हर्ष का पार नहीं रहा। चातुर्मास-प्राप्ति की खुशी में कानोड़ संघ ने सारे गांव में गुड बांटा था।

मेवाड़ प्रदेश की ओर विहार

कानोड़ में आगामी चातुर्मास होने की खबर से मेवाड़ प्रदेश में अभूतपूर्व आनन्द का वातावरण व्याप्त हो गया था और कानोड़ पदार्पण होने के पूर्व आस-पास के क्षेत्रों के भाई बहिन अपने-अपने यहां पधारने की विनतियां कर रहे थे।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. का गुलाबपुरा से मेवाड प्रदेश की ओर विहार हुआ। आस-पास के क्षेत्रों को फरसते हुए भीलवाड़ा पधारे और अन्यान्य श्रीसंघों की तरह भीलवाड़ा श्रीसंघ भी इस अभूतपूर्व अवसर का अधिक-से-अधिक लाभ प्राप्त करने के लिये उत्सुक था। लेकिन विभिन्न क्षेत्र भी उत्सुकता से ऐसे अवसर की बाट जोह रहे थे अतः अधिक विराजना न हो सका और भीलवाडा के निकटस्थ क्षेत्रों को परसने के पश्चात् आचार्यश्रीजी का कपासन नगर में पदार्पण हुआ और पांच प्रवचन हुए, जिनका स्थानीय जनता के अतिरिक्त बाहर से पधारे हुए श्रोताओं ने लाभ उठाया तथा अनेक प्रकार के त्याग-प्रत्याख्यान हुए।

गांव-गांव में मनोमालिन्य धुला

कुछ समय से कपासन के ओसवाल और माहेश्वरी भाइयों का अपनी-अपनी समाज में पारस्परिक मनमुटाव था। दोनों समाज अनेक धड़ों में विभक्त हो गए थे और वे धड़े एक-दूसरे को अपमानित करने के लिये प्रयत्न करते रहते थे। पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. व्यक्ति और

समूह के लिये किसी भी रूप में इस प्रकार की धड़ेबंदी को उचित नहीं मानते थे और अपने प्रवचनों में संगठन के बारे में संकेत करते रहे। आपश्री के प्रभावोत्पादक एवं हृदयस्पर्शी उपदेशों का ऐसा अपूर्व असर हुआ कि ओसवाल समाज में दलबन्दी की होड़ समाप्त हो गई और प्रेम का वातावरण छा गया। माहेश्वरी समाज के भाइयों ने भी आपके उपदेशों का लाभ उठाया और उन्होंने भी अपने आपसी संघर्ष को शांत करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये।

शान्ति के उपासक और शांति के संदेशवाहक पूज्य पुरुषों के पदार्पण का प्रभाव पारस्परिक संघर्षों को समाप्त करने का अमोघ उपाय है। उनके समीप जब जन्मजात विरोधी भी अविरोधी हो, शांति का अनुभव करते हैं तो इन क्षणिक मतभेदों के समाधान में आश्चर्य भी कैसे हो सकता है ?

कपासन से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ताराखेडी, दांता स्पर्शते हुए कनूकड़ा पधारे। कपासन के आस-पास के क्षेत्र में दो-दो, तीन-तीन मील की दूरी पर छोटे-छोटे सैकड़ों गांव हैं। उन सभी गांवों में बसने वाले श्रावक-श्राविकाओं के समूह पूज्यश्री के दर्शनार्थ कनूकड़ा आये और व्याख्यान-वाणी का लाभ उठाया। पूज्य उपाचार्यश्रीजी उन सभी क्षेत्रों को फरसने का लक्ष्य रखते थे किन्तु शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं थी कि सभी को स्पर्श कर सकें, लेकिन मार्ग में पड़ने वाले गांवों को तो अपने पदार्पण से पवित्र कर ही देते थे। अनेकों ने तम्बाकू, भांग, गांजा, मांस, मदिरा आदि अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग किया और जहां आपसी मनोमालिन्य था, वह भी दूर हुआ।

दांता और कनूकड़ा में करीब 10-12 घर हैं। इन दोनों गांवों के भाइयों में करीब 25 वर्ष से आपसी वैमनस्य था और बढ़ते-बढ़ते यह विकट स्थिति बन गई थी कि यदि आपस में समझौता न हुआ तो आस-पास के गांवों में भी फूट-कलह की स्थिति बन सकती है। आचार्यश्रीजी का दोनों गांवों में एक-एक दिन विराजना हुआ और प्रवचन में दोनों गांवों के निवासी भी एक-दूसरे गांव में उपस्थित हुए और आपश्री के उपदेशों से आपसी वैमनस्य दूर होकर उनमें संगठन हो गया। कनूकड़ा से विहार कर उमेड़ गांव में पधारे। यहां भी दो व्यक्तियों में लम्बे समय से आपस में मनमुटाव था। वह भी दूर होकर आपस में प्रेम का वातावरण बन गया।

उमेड़ से चाकुड़ा होते हुए आकोला पधारे। यहां के श्रावकों में भी जबरदस्त फूट थी। इस कारण समय-समय पर तूतू-मैंमैं होती रहती थी और दिनोंदिन झगड़ा उग्र रूप धारण करता जा रहा था। परन्तु गांव के भाग्योदय से उपाचार्यश्रीजी का पदार्पण हुआ और सदुपदेश से यह झगड़ा भी शांत हुआ। वर्षों का मनोमालिन्य धुल गया।

आकोला से विहार कर ताणा, करजेडी, संगेसरा, उम्मेदपुरा स्पर्शते हुए भादसोडा पधारे। यहां आस-पास के सैकड़ों व्यक्तियों ने दर्शनार्थ उपस्थित होकर व्याख्यान-वाणी का लाभ उठाया। यहां से विहार का मंडलिया होते हुए करोली पधारे। यहां पर राजपूतों की वस्ती है। राजपूतों के अत्याग्रह से एक व्याख्यान हुआ। जिससे व्याख्यान-समाप्ति के पश्चात् अनेक व्यक्तियों ने मद्य-मांस आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का त्याग किया एवं शिकार न करने की प्रतिज्ञा ली। करोली से विहार कर चिकारडा, मोरवण, सुजाखेडा आदि-आदि क्षेत्रों को स्पर्श करते हुए मंगलवाड पधारे।

चातुर्मास-काल निकट होने से कुछ सन्तों का विलोदा और कुछ का उदयपुर की ओर विहार कराकर आपश्री ने अनेड की ओर विहार किया। अनेड में भी ओसवाल समाज के सिर्फ 4 घर हैं और उनमें भी आपसी मनमुटाव था। आपश्री के संकेतमात्र से उनमें एकता हो गई। अनेड से डूंगला होते हुए भींडर पधारे। भींडर के समस्त निवासियो ने स्वागत किया। भींडर में भी दो दल थे और आपस में लड़ाई-झगडा चलता रहता था जो आपश्री के एक ही प्रवचन से समाप्त हो गया और पारस्परिक सुमधुर सम्बन्ध पुनः स्थापित हो गये। भींडर से कानौड़ की ओर विहार हुआ।

भींडर के सभी निवासियों ने प्रवचनों का लाभ उठाया लेकिन बोहरा समाज के जो सबसे बड़े मौलवी थे, वे अत्यन्त प्रभावित हुए और वहां अपनी मस्जिद में उपाचार्यश्रीजी को पदार्पण कराने के लिये प्रार्थना की तथा विहार के समय भींडर से उपाचार्यश्रीजी म.सा. के साथ कानौड़ तक आये। कानौड़ में भी कुछ दिन व्याख्यान सुने और मौलवीजी का यह इरादा था कि चातुर्मास मे यहां ही रह कर सब व्याख्यान सुनूं लेकिन मुंबई से उनको बुलाने बाबत तार आ गया था, इसलिए कुछ दिन बाद वे चले गये।

पहाड़ी प्रदेश और इधर के निवासियों को साधु की आहार-विधि की जानकारी न होने से विविध परीषहों को सहन करना पड़ा। लेकिन उपाचार्यश्रीजी का विशेष लक्ष्य छोटे-छोटे गांवों में विहार करने का रहता था। इससे गांवों में काफी उपकार हुए और वहां के निवासियो ने दुर्व्यसनों का त्याग कर अपना नैतिक आचरण सबल बनाया।

चातुर्मास हेतु कानौड़ में भव्य पदार्पण

सं. 2014 के चातुर्मास हेतु दी गई स्वीकृति के अनुसार पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. ठा. 9 का आषाढ़ शुक्ला 10 दि. 6.7.57 को प्रातः सवा आठ बजे कानौड़ मे पदार्पण हुआ। ग्राम के सभी निवासियों ने भव्य स्वागत के साथ अगवानी करते हुए जुलूस के रूप में गांव में प्रवेश कराया। महासतीश्री गट्टूकंवरजी म.सा., श्री चंपाकंवरजी म.सा. आदि ठा. 7 का भी यहीं पर चातुर्मास होने से श्रावक-श्राविकाओं में अपूर्व उत्साह परिलक्षित होता था।

स्वागत-जुलूस गांव के विभिन्न मार्गों से होता हुआ स्थानक आया और सभा के रूप में परिणत हो गया। करीब डेढ़ घंटे तक श्रावक-श्राविकाओं की ओर से स्वागत भाषण, गायन आदि होने के अनंतर पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. का प्रवचन हुआ।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी का चातुर्मास-काल के चार मास तक यहां ही विराजने का यह प्रथम दिवस था और इस प्रथम दिवस का लाभ प्राप्त करने के लिये आस-पास के गांवों से सैकडों की संख्या में श्रावक-श्राविकाओं का आगमन हुआ था।

जन्म-जयन्ती समारोह

श्रावण कृष्णा तृतीया को पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. की अडसठवीं जन्म-जयन्ती तप-त्यागपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुई। अन्य दिनों की अपेक्षा उक्त अवसर पर उपस्थिति विशेष थी। सर्वप्रथम पं. मुनिश्री लालचन्दजी म.सा., श्री ईश्वरचन्दजी म.सा., श्री तोलारामजी म.सा. एवं महासतीश्री मनोहरकंवरजी म.सा. ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. के जीवन की विशेषताओं और संयम-तप-त्याग-साधना आदि का संकेत करते हुए गुणानुवाद किया और अपनी-अपनी भावांजलि अर्पित की। पं. र. मुनिश्री नानालाजी म.सा. (वर्तमान आचार्यश्री) ने गुणानुवादपूर्वक अपनी विनम्र भावांजलि अर्पित करते हुए फरमाया कि प्रत्येक व्यक्ति प्रतिदिन कुछ समय निकाल कर समभाव चिन्तन की परिपाटी प्रारम्भ करे, जिससे व्यक्ति आत्मदर्शन करते हुए विश्व के प्राणिमात्र के लिये मैत्रीभावना एवं समभाव का विकास कर सके। विषमता का कारण व्यक्ति की अपनी-अपनी भावना है। व्यक्ति का स्वार्थ ही दूसरे के अधिकार को हड़पने की कोशिश करता है।

इस संकेत पर अनेक व्यक्तियों ने वैसा चिन्तन-मनन और अभ्यास करने की प्रतिज्ञा ली। श्रावक-श्राविकाओं में से भी कुछ भाई-बहिनों ने गुणगान करते हुए कहा कि आपश्री के वैराग्यमय जीवन से प्रेरणा लेकर अपनी आत्मिक उन्नति के लिये प्रयत्नशील होना ही सही मायने में हमारा भावांजलि का समर्पण माना जायेगा।

अन्त में पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने अपने समस्त गुणानुवादों को अतिशयोक्तिपूर्ण वतलाते हुए फरमाया कि सूत्रों में श्रावक-श्राविकाओं को साधुओं का अम्मा-पिया समानी वताया है। इस दृष्टि से गुणानुवाद रूपी जो भी उपहार आपने मुझे दिये हैं, उनकी रक्षा का उत्तरदायित्व भी आप पर है। आप हमारी ज्ञान-दर्शन-चारित्र की साधना में सहायक बनें और स्वयं भी आत्मकल्याण के मार्ग पर अग्रसर होवें।

जयन्ती के उपलक्ष्य मे श्रावक-श्राविकाओं ने उपवास, आयंबिल आदि अनेक प्रकार की तपस्याएं कीं और जीवदया एवं लोकोपकारी कार्यों के सहायतार्थ मुक्तहस्त से दान दिया।

चातुर्मास का संक्षिप्त विहंगावलोकन

पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा का चातुर्मास होने से कानौडवासियो के उत्साह, उमंग, स्वधर्मीवात्सल्य एवं आतिथ्य-सत्कार की भावना का संकेत यथाप्रसंग किया गया है और उतने ही उत्साह, उमंग से व्याख्यान, तत्त्वचर्चा, प्रार्थना आदि के अवसरों पर उपस्थित होते थे। यद्यपि प्रवचन प्रारम्भ होने का समय तो प्रातः 9 बजे का था लेकिन सूर्योदय से ही आबाल-वृद्ध नगरजन प्रवचन-श्रवण के लिये एकत्रित हो जाते थे। साधारणतया प्रवचन सुनने के लिये प्रतिदिन करीब दो-ढाई हजार श्रोताओं की उपस्थिति हो जाती थी, लेकिन पर्युषण पर्व जैसे पुण्य अवसरों पर पांच-सात हजार से भी अधिक श्रोताओं की उपस्थिति हो जाना एक साधारण-सी बात थी।

चातुर्मास-काल में पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. एकान्तर तप करते रहे। मुनिश्री मोहनमुनिजी म.सा. ने 49 दिन की तपस्या की तथा मुनिश्री पारसमुनिजी म.सा. ने 25 दिन की तपस्या का पारणा कर पुनः 9 चौविहार उपवास किये। सन्तों की ज्ञान-साधना का दृश्य तो अलौकिक ही था। पं. मुनिश्री लालचन्दजी म.सा. शास्त्रों के अध्ययन में दत्तचित्त रहते थे तो पं. र. मुनिश्री नानालालजी म.सा. (वर्तमान आचार्यश्री) जिज्ञासुओं, विद्वन्मंडल के प्रश्नों, शंकाओं का शास्त्रानुमोदित तार्किक शैली से सप्रमाण समाधान करके जैन धर्म और दर्शन के सिद्धांतों का विशदरूपेण दिग्दर्शन कराते रहते थे। कर्मठ, सेवाभावी मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म.सा. जब देखो तब सन्तों की सेवा में व्यस्त रहते थे।

पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. का स्वास्थ्य साधारणतया ठीक ही रहा। घुटनों में दर्द, मधुमेह का रोग और पेशाब की तकलीफ तो चलती रहती थी, लेकिन आसन, प्राणायाम, उपवास आदि द्वारा उनका शमन करते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. साधना में तत्पर रहते थे और मुमुक्षुजनों को शाश्वत सुख-शांति-प्राप्ति का मार्ग निर्देशित करते रहते थे।

संक्षेप मे कहें तो ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी संतजनों के विराजने से कानौड़ नगर तपोवन की उपमा को सार्थक कर रहा था। यहां के कण-कण में उत्साह था, जीवन था और उससे भी बढ़कर एक प्राणवती चेतना के दर्शन होते थे।

खटीकों ने मांस-मदिरा आदि का त्याग किया

चातुर्मास-काल में धार्मिक प्रभावना के लिये विविध प्रकार के आयोजन होने के साथ-साथ अनेक समाजोपयोगी कार्य भी सम्पन्न हुए थे। उनमें से कुछ-एक उल्लेखनीय प्रसंगों का यहां संकेत कर रहे हैं।

कानौड़ के आस-पास के गांवो में काफी बडी संख्या में खटीकों की बस्ती है, जो अधिकतर मूक प्राणियों का वध करके मांस बेचने का धंधा करते हैं और मांसभोजी हैं। समय-समय पर वे भी उपाचार्यश्रीजी म.सा. के दर्शन और व्याख्यान-श्रवण के लिये आते रहते थे। उनमें से कुछ-एक व्यक्तियों ने आपश्री के अहिंसा-करुणा-दया-मैत्री भावना से ओतप्रोत हृदयस्पर्शी प्रवचनों से प्रभावित होकर जीवन-पर्यन्त के लिये प्राणिवध का त्याग कर दिया और अपने जीवन को सुसंस्कारी बनाने के लिये जैन धर्म अंगीकार करके गुरुमन्त्र ले लिया। इसी प्रकार कई आदिवासियों ने भी मांस-मदिरा आदि दुर्व्यसनों का त्याग कर दिया।

बोहरा (मुसलमान) भाई के यहां पधारे उपाचार्यश्रीजी

कानौड़ा के बोहरा समाज (मुसलमान) के भाइयों की निःस्वार्थ सेवाएं सदैव स्मरणीय रहेंगी। दर्शनार्थ आगत व्यक्तियों के लिये उन्होने अपने घर तक खोल दिये थे और प्रबन्ध-व्यवस्था में भी अपना पूरा-पूरा सहयोग दिया था।

एक बोहरा भाई के मकान में श्री अमृतलालभाई जवेरी, मुंबई की धर्मपत्नी श्रीमती केशरबेन आदि ठहरे हुए थे। एक दिन मकान-मालिक बोहराजी ने उनसे कहा कि आप लोगों को मकान का किराया देना होगा। इस बात को सुनकर श्रीमती केशरबेन ने कहा कि आप जो किराया बतायेंगे, देने को तैयार हैं। तब बोहराजी ने कहा कि मुझे किराया रुपयों में नहीं चाहिये, लेकिन यह किराया चाहूँगा कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. का हमारे मकान में पदार्पण हो। अकस्मात् एक दिन ऐसा सुयोग मिला कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. श्रीमती केशरबेन के ठहरने के स्थान पर गोचरी के लिये पधार गये। जिससे उन बोहराजी के हर्ष का पार न रहा।

वैष्णव पंडितों ने अपनी व्याख्यानमाला बंद की

उपाचार्यश्रीजी म.सा. का कानौड़ में चातुर्मास होने की खबर सुनकर वैष्णव समाज के पंडितों ने अपनी अलग व्याख्यानमाला इस हेतु चालू कर दी थी कि वैष्णव समाज के व्यक्ति उपाचार्यश्रीजी म.सा. के व्याख्यानों मे नहीं जाये। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. के प्रवचन प्रारम्भ होने के पश्चात् उन पंडितों पर ऐसा अद्भुत प्रभाव पड़ा कि वे स्वयं अपनी व्याख्यानमाला बन्द करके उपाचार्यश्रीजी म.सा. के प्रवचन सुनने के लिये आने लगे। कानौड़ के मुख्य राजपंडित ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. की स्तुति में कई श्लोक बनाकर चतुर्विध संघ को सुनाये थे।

इन कतिपय उद्धरणों से यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. का कानौड़ चातुर्मास कितना प्रभावक और गौरव वाला था, जिसकी स्मृतियां आज भी हृदय को हर्ष-विभोर बना देती हैं।

नियम की सुरक्षा के लिए कटिबद्ध

इसी चातुर्मास में अनेक बार श्रमण संघीय समस्याओं को सुलझाने के लिये कॉन्फरेंस के शिष्टमंडल उपस्थित होते रहे थे। उन दिनों अन्यान्य समस्याओं के साथ संवत्सरी का प्रश्न भी काफी महत्त्वपूर्ण बना हुआ था। सादडी सम्मेलन में बहुसंख्यक संप्रदायों ने अल्पसंख्यक संप्रदायों के लिये प्रेमभावना प्रदर्शित करने के लिये द्वितीय भाद्रपद में संवत्सरी करना स्वीकार कर लिया था, लेकिन अब उसी संवत्सरी को पुनः द्वितीय श्रावण में करने के लिये अधिकांशतः उन्हीं बहुसंख्यक संप्रदायों एवं कॉन्फरेंस ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. पर दबाव डालने की चेष्टा की कि आपश्री की भूतपूर्व सम्प्रदाय की परम्परा दूसरे श्रावण की है और शास्त्रीय दृष्टि से भी आप उसका समर्थन करते हैं एवं श्रमण संघ की पूर्ण सत्ता भी आपके पास है, अतः आपश्री दूसरे श्रावण की संवत्सरी श्रमण संघ के लिये घोषित कर दीजिये।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि आप लोगों का कथन मेरी भूतपूर्व परम्परा और शास्त्रीय दृष्टि के अनुकूल होने पर भी जिन अल्पसंख्यक संप्रदायों को विश्वास में लेकर प्रेम प्रदर्शित किया गया है और उनके व्यवस्थित रूप से श्रमण संघ में रहते हुए तथा श्रमण संघ को आगे बढ़ाने के प्रयत्नों की आशा से संवत्सरी के बारे में सहसा कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता है।

इस उत्तर से कॉन्फरेंस के कुछ प्रमुख नेता और बहुसंख्यक श्रमणवर्ग नाराज-से भी हुए। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. उनकी राजी-नाराजी की परवाह न करते हुए नियम की सुरक्षा की स्थिति को लेकर चलते रहे।

विद्वानों, जननेताओं, कार्यकर्ताओं और दूसरे-दूसरे प्रमुख सज्जनों का समय-समय पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. के दर्शनार्थ कानौड़ आगमन होता रहता था। राजस्थान के माननीय मुख्यमन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया भी आपश्री के दर्शनार्थ कानौड़ पधारे थे और सेवा में उपस्थित होकर तात्त्विक चर्चा करते रहे।

स्वधर्मी सेवा का अनुपम आदर्श

स्थानीय श्रावक संघ में आतिथ्य-सत्कार के प्रति अपूर्व उत्साह था और समस्त आगत बंधुओं के लिये आवास-भोजन आदि की अच्छी-से-अच्छी व्यवस्था की गई थी। यह एक दिन के लिये ही नहीं थी, किन्तु चातुर्मास-काल के पूरे समय तक यही क्रम चालू रहा। संघ के छोटे-बडे, अमीर-गरीब सभी सदस्य अतिथियों की सुव्यवस्था करते, स्वयं रसोई बनाते, कुओं से पानी लाते और आवश्यकतानुसार बाहर से आने वालों को ठहरने के स्थान पर पहुंचाते थे। ऐसा करने में वे किसी प्रकार की झिझक या लज्जा अनुभव नहीं करते थे, किन्तु अपना

सौभाग्य मानते थे कि पूज्यश्री के पदार्पण से हमें अपने स्वधर्मी बंधुओं की सेवा का अवसर मिला है। इस अवसर का लाभ लेने की आपस मे होड़-सी चलती थी। जिस काम के लिये एक की जरूरत होती थी उसको करने के लिये चार-चार व्यक्ति तैयार रहते थे।

यह चातुर्मास सहयोग, सहकार और एकवाक्यता का अपूर्व प्रतीक था। एक छोटा-सा कस्बा और यातायात के साधन भी कम, लेकिन मानवीय श्रम के समक्ष में सब बाधाएं नगण्य थीं। हजारों की संख्या में दर्शनार्थियों का आना और तत्काल उनके लिये योग्य आवास आदि की समुचित व्यवस्था हो जाना, जादू का खेल-सा लगता था।

चातुर्मास-समाप्ति और विहार

चातुर्मास धार्मिक प्रभावना के सफल आयोजनों के साथ सम्पन्न हुआ। अनेक श्रीसंघ चातुर्मास-समाप्ति के अनंतर अपने-अपने क्षेत्रों को स्पर्श करने के लिये विनती कर रहे थे। उदयपुर श्रीसंघ द्वारा तो उदयपुर स्पर्शने के लिये चातुर्मास प्रारम्भ होने के समय से ही वारम्वार आग्रहभरी विनती हो रही थी। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. की ओर से कोई आश्वासनात्मक स्थिति नहीं बन सकी। चातुर्मास के पश्चात् विहार कर गांव के बाहर जवाहर विद्यापीठ में पधारे और वहां से विहार कर रुण्डेडा पधारे। रुण्डेडा में जैन और जैनेतरों ने आपश्री के मंगल प्रवचनों का अच्छा लाभ उठाया। रुण्डेडा के ब्राह्मण समाज ने ग्यारस एवं अमावस को हल हांकने, चरस खींचने व गाड़ी जोतने का त्याग किया। अन्य समाज के काफी लोगों ने व्यसनों का त्याग किया। रुण्डेडा के सफल प्रवास के पश्चात् आपश्री आस-पास के गांवों में धर्मदेशना देते हुए वम्बोरा पधारे। इसी समय कॉन्फरेंस के अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी, मंत्री श्री आनन्दराजजी सुराना आदि के नेतृत्व में कॉन्फरेंस का एक शिष्टमण्डल श्रमण संघ की समस्याओं के बारे में विचार-विमर्श करने के लिये सेवा में उपस्थित हुआ था।

वम्बोरा के निकटस्थ गांवों में विराजने के समय किसी गांव में दिगम्बर समाज के एक मुनिश्री भी उपाचार्यश्रीजी म.सा. के पास आये और काफी समय तक तत्त्वचर्चा होती रही। यहां पर भी उदयपुर श्रीसंघ के भाई-बहिन उदयपुर पधारने की विनती लेकर सेवा में उपस्थित हुए और उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने यथावसर सुविधानुसार उदयपुर पधारने की स्वीकृति फरमाई। अनन्तर क्रम-क्रम से ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए आपश्री अपने शिष्य सन्तों के साथ उदयपुर पधारे और पहले से ही वहां विराजित प्रान्तमन्त्री श्री पुष्करमुनिजी म. से मिलना हुआ।

कॉन्फरेंस का सांवत्सरिक प्रस्ताव संघ-विघटनात्मक

इन दिनों श्रमण संघ की स्थिति और समस्याओ को लेकर चतुर्विध संघ में काफी ऊहापोह चल रहा था। संवत्सरी की एकरूपता के लिये साधु-सम्मेलन द्वारा किये गये निर्णय को भी विवादास्पद प्रश्न वना दिया गया था। एतद्‌विषयक चर्चा करने के लिये जव कॉन्फरेंस की ओर से एक शिष्टमंडल कानौड़ा चातुर्मास के समय उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में उपस्थित हुआ था, तव वार्तालाप के प्रसंग में उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने श्रमणसंघीय संगठन की तथा साथ ही उसकी सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी, उसे उपस्थित सदस्यो को समझा दी थी कि गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमण संघीय पद्धति के अनुसार श्रमण संघ में सम्मिलित होने आदि प्रवलतर कारण के विना अविधिपूर्वक वृहत् साधु-सम्मेलन सादडी के सर्वानुमत प्रस्ताव में फेरफार करना श्रमण सघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता है। इसके सिवाय दि. 16.10.57 के पत्र द्वारा भी उपाचार्यश्रीजी म.सा. के इन्हीं विचारों की जानकारी कॉन्फरेंस कार्यालय को करा दी थी।

लेकिन कॉन्फरेंस के नेता तो सामाजिक हितों की उपेक्षा करके भी मनचाहा करने में विश्वास करते थे। अतः इतना सव होने पर भी उन्होंने दि. 16,17,18 नवम्बर, 57 को दिल्ली में सम्पन्न श्री अ.भा.श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की व्यवस्था-समिति तथा श्रमण संपर्क-समिति की वैठक में संवत्सरी विषयक निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया--

'श्रमण संघीय साधु-सम्मेलन, भीनासर के प्र.नं. 8 द्वारा नियुक्त संवत्सरी-निर्णय-समिति के संयोजक मंत्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. ने सभी सदस्यों से पत्र-व्यवहार के पश्चात् संवत्सरी-निर्णय संवन्धी प्रश्न कॉन्फरेस को सौंप दिया है। इस पर से कॉन्फरेंस आफिस ने पुनः समिति के सदस्यों से पत्र-व्यवहार किया। समिति के 17 सदस्यों में से 14 सदस्य इस मत के हैं कि चातुर्मास प्रारम्भ होने से 49 या 50वें दिन संवत्सरी मानी जाय। शेष 3 सदस्य सादडी सम्मेलन के प्रस्ताव के अनुसार संवत्सरी मानने के पक्ष में हैं। चूंकि सादडी सम्मेलन के प्रस्ताव के पश्चात् प्रस्ताव के पालन के सम्बन्ध में सन् 1955 में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई थी, उस दृष्टि से इस प्रश्न पर पुनः विचार करने हेतु भीनासर साधु-सम्मेलन में समिति नियुक्त की गई थी।

'उक्त समिति के सदस्यों का अत्यधिक बहुमत चातुर्मासादिक (आषाढ शु. 15) पक्खी से 49 या 50वें दिन संवत्सरी मनाये जाने के पक्ष में है। अतः कॉन्फरेंस की व्यवस्था समिति और श्रमण-संपर्क समिति उपरोक्तानुसार चउमासी पक्खी (आषढ शु. 15) से 49 या 50वे दिन संवत्सरी मनाने का निर्णय देती है तथा समस्त स्था. जैनों से अपील करती है कि संवत्सरी

जैसा महापर्व भारत में एक ही दिन मनावें। ताकि समस्त स्था. जैनों में सांवत्सरिक एकता बनी रहे।

जैनप्रकाश दि. 22 नवम्बर, 57 में उक्त प्रस्ताव के प्रकाशित होने पर चतुर्विध संघ में भ्रम फैलने लगा कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. व बहुसंख्यक संप्रदायों ने अपनी पूर्व-परम्परा के अनुसार अधिक मास होने की स्थिति में आषाढ़ी पक्खी से 49-50वें दिन संवत्सरी करने की घोषणा करा कर वृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी के प्रस्ताव और अल्पमत को दिये गये विश्वास की उपेक्षा, अवहेलना की है।

लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. का श्रमण संघ को विघटित करने वाले प्रयत्नो व प्रस्तावो से कुछ भी सम्बन्ध नहीं था और उनका स्पष्ट मत था कि अवैधानिक प्रवृत्तियों के कारण श्रमण संघ सबल होने की बजाय विशृंखल ही होगा, जो कॉन्फरेंस के दि. 25.11.57 के पत्र के उत्तर में व्यक्त भावों से पूर्णरूपेण स्पष्ट हो जाता है--

उपाचार्यश्रीजी का स्पष्टीकरण

'कॉन्फरेंस की तरफ से दि. 25 नवम्बर का पत्र मिला। कॉन्फरेंस की व्यवस्था-समिति और श्रमण-सम्पर्क समिति के नाम से ध्वनियंत्र और संवत्सरी विषयक जो प्रस्ताव यहां भेजे, वे जैनप्रकाश के 22.11.57 के अंक में भी देखे गये। उन्हें पढकर बडा आश्चर्य-सा हो रहा है कि श्रमण संघ की ध्वनियंत्र व संवत्सरी आदि समस्याओं के सम्बन्ध में विधिपूर्वक जानकारी कानौड़ चातुर्मास में लिखित रूप में करा देने पर भी श्रमण संघीय पद्धति की दृष्टि से अविधिपूर्वक प्रस्ताव जैनप्रकाश में प्रकाशित होना विभेद के अंकुर पैदा करना नहीं है क्या? और सुव्यवस्था एवं नीतिसंमत है क्या? इस प्रकार प्रस्तावों के प्रकाशन आदि से समाज एवं बने-बनाये संगठन की क्या अवस्था बन सकती है? यह आप सरीखे समझदार व्यक्तियो को बहुत ही गम्भीरता से सोचने की आवश्यकता है।

'श्रमण संघ की अखंडता के साथ संवत्सरी-परिवर्तन के प्रबलतर कारण (गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज के श्रमण संघ में सम्मिलित होने आदि) की स्थिति विधिपूर्वक जब तक सुस्पष्ट न हो जाय, तब तक सादड़ी सम्मेलन के संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के प्रतिकूल पाक्षिकपत्र व तिथिपत्र आदि प्रकाशित करने श्रमण संघ की प्रतिष्ठा को भारी धक्का पहुंचने की एवं बने-बनाये संगठन में विभेद पड़ने की पूरी सम्भावना मालूम दे रही है। अतः कॉन्फरेंस व उसके द्वारा नियुक्त समिति श्रमण संघ को विघटित करने वाले अवैध तरीके से बचे और वैध तरीके से संगठन को शुद्धरूप से अखंडता के साथ आगे बढ़ाने में अपनी शक्ति लगावे--यही हार्दिक भावना एवं शासनदेव से प्रार्थना है।'

कॉन्फरेंस कार्यालय में उक्त पत्र के पहुंच जाने के बाद भी कॉन्फरेंस के नेताओं और श्रमण-सम्पर्क समिति के सदस्यों ने समाज के सामने सही स्थिति प्रगट नहीं की एवं अपनी प्रवृत्ति को ही सही बताने के प्रयत्न चालू रखे। परिणामतः समाज यह समझने के लिये मजबूर हो गया कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. सादड़ी सम्मेलन के संवत्सरी विषयक प्रस्ताव की उपेक्षा करके श्रमण संघ को विघटित करने के लिये तत्पर हो रहे हैं।

समाज की इस रोषमिश्रित प्रतिक्रिया को देखकर भी उपाचार्यश्रीजी म.सा. मौन रहे कि कॉन्फरेंस अपनी ओर से सही स्थिति की जानकारी समाज को देती है, या नहीं। लेकिन अन्य समस्याओं के लिये अपनाये गये रुख की तरह ही संवत्सरी विषयक प्रस्ताव के बारे में भी कॉन्फरेस ने उदारता का परिचय नहीं दिया। चतुर्विध संघ की ओर से जब बार-बार स्पष्टीकरण करने के लिये मौखिक और पत्रों के माध्यम से समाचार प्राप्त हुए और कॉन्फरेंस द्वारा भी सही स्थिति नहीं बताई गई तब उपाचार्यश्रीजी म.सा. की ओर से निम्नलिखित स्पष्टीकरण प्रकाशित किया गया–

'उपाचार्यश्रीजी म. की सेवा में कानौड़ चातुर्मास में श्रमण-सम्पर्क समिति के सदस्यगण–श्री वनेचन्दभाई, श्री मोहनमलजी चोरड़िया, श्री कानमलजी नाहटा आदि उपस्थित हुए थे। श्रमण संघीय समस्याओं के विषय में काफी विस्तारपूर्वक वार्त्तालाप एवं विचार-विमर्श हुआ और श्रमण संघीय संगठन की तथा साथ ही सुरक्षा की दृष्टि से जो भी वैधानिक स्थिति थी, वह सभी उपस्थित सदस्यों को समझा दी गई थी। अन्तर दि. 16.10.57 को लिखित रूप में भी विचार दिये गये थे, उनमें से संवत्सरी विषयक विचार निम्न प्रकार थे–

उपाचार्यश्री के संवत्सरी विषयक विचार

"श्रमण संघ की अखंडता के साथ गुजरात, सौराष्ट्र आदि समस्त स्थानकवासी समाज श्रमण संघीय पद्धति के अनुसार श्रमण संघ में सम्मिलित होने आदि प्रबलतर कारण के बिना अविधिपूर्वक बृहत्साधु-सम्मेलन सादड़ी के सर्वानुमति के प्रस्ताव में फिलहाल फेरफार करना श्रमण संघ की प्रतिष्ठा व समाज के लिये हितावह प्रतीत नहीं होता।

"श्रमण संघ ने उदारता दिखाकर समस्त समाज की एकता के लिये प्रयत्न का जो संकेत किया, तदनुसार एकता के विषय मे जितने प्रयत्न होने चाहिये, उतने हो गये या अवशेष रहे ? यदि हो गये हों तो किन-किन की क्या विचारधाराएं आईं ? वे सारी विचारधाराएं यहां भी आने की आवश्यकता है और यदि प्रयत्न पूरे नहीं हुए हों तो भरसक प्रयत्न करने की आवश्यकता है।"

'उपर्युक्त वक्तव्य पर से जनता समझ सकती है कि उपाचार्यश्रीजी महाराज के अपने क्या विचार थे ? श्रमणसंघ की विधिवत् अखंडता को ध्यान में रखते हुए इस सम्बन्ध में उनकी

अपनी क्या धारणाएं हैं ? उस वक्तव्य के बाद भी स्थिति में कोई नया परिवर्तन नहीं आया है और न परिवर्तन के योग्य कोई वैधानिक महत्त्वपूर्ण अत्यावश्यक प्रश्न ही उपस्थित हुआ है।

'सादडी में बहुलपक्ष ने उदारता दिखाकर अपनी पूर्व-परम्परा छोडी थी, तो अब ऐसा कोई प्रबल कारण सामने नहीं है कि उस उदारता की उपेक्षा कर पुनः पुरानी परम्परा पर आया जाये।

'संवत्सरी के विषय में भीनासर बृहत्साधु-सम्मेलन ने जिस समिति की नियुक्ति की थी, उसको भी ऐसा अधिकार नहीं दिया गया था कि वह इस प्रश्न को निर्णय के लिये कॉन्फरेंस को सौंप दे।

'अतः भीनासर सम्मेलन में निर्मित समिति द्वारा प्रस्तावानुसार व्यवस्था के साथ निर्णय न होने से सादड़ी सम्मेलन के प्रस्ताव (भाद्रपद में संवत्सरी करने) का पालन होना मैं वैधानिक समझता हूँ और उसी के अनुसार श्रमण संघ, श्रावक संघ संवत्सरी करे, यही अभीष्ट है।'

उपर्युक्त स्पष्टीकरण से यह भलीभांति जाना जा सकता है कि कॉन्फरेंस की समितियों का निर्णय विधानानुसार नहीं था और सादड़ी सम्मेलन का सर्वसम्मत मूल प्रस्ताव निर्विवाद ज्यों-का-त्यों रहता है तथा उसका पालन करना ही श्रमण-संगठन की दृष्टि से आवश्यक हो जाता है। इसी में श्रमण संघ की प्रतिष्ठा और और शोभा थी। लेकिन उक्त निर्णय में भी परिवर्तन करने की अनधिकार चेष्टा करके कॉन्फरेंस ने श्रमण संघ के विघटन में और तीव्रता ला दी।

शारीरिक अस्वस्थता : पूर्ववत् विहार

उपाचार्यश्रीजी म.सा. का शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा नहीं था। एकान्तर की तपस्या चालू रहने पर भी स्वास्थ्य में कुछ भी सुधार न होने और उत्तरोत्तर बढती जा रही कमजोरी से चतुर्विध संघ चिन्तित था। अतः उदयपुर श्रीसंघ के प्रमुख-प्रमुख श्रावकों और सन्तों ने उदयपुर में योग्य निदान कराके उपचार कराने की प्रार्थना की। लेकिन आपश्री मनोबल के धनी थे और औषधोपचार की बजाय संयम, तप-साधना को स्वास्थ्यसुधार का अमोघ उपचार मानते थे। अतः उत्तर में फरमाया कि अभी मैं तपस्या करके शारीरिक स्वास्थ्य सुधारना चाहता हूँ और औषधि-उपचार न कराकर पूर्ववत् एकान्तर तप चालू रखा।

उदयपुर से विहार कर जब उपाचार्यश्रीजी म.सा. ग्रामानुग्राम धर्मजागृति करते हुए चित्तौड़गढ़ के आस-पास पधारे तब स्वास्थ्य में और अधिक गिरावट आ गई। विहार-क्षेत्रों में विश्राम का अवसर न मिलने से बुखार भी आने लगा। कमजोरी तो थी ही और बुखार आने से कमजोरी विशेष महसूस होने लगी।

चित्तौडगढ श्रीसंघ के सदस्यों को जब यह समाचार ज्ञात हुए तो एक अनुभवी वैद्य को लेकर सेवा में उपस्थित हुए। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने दवाई लेना स्वीकार नहीं किया और उसी स्थिति में धीरे-धीरे विहार करते हुए चित्तौडगढ़ पधार गये। लेकिन स्थिति को देखते हुए यहां भी डाक्टरों को दिखाने के लिये प्रार्थना की और बहुत अधिक जोर देने पर देशी औषधि लेना स्वीकार कर लिया। किन्तु बिना निदान के औषधोपचार से कुछ लाभ नहीं हुआ।

जावरा चातुर्मास स्वीकृत

आगामी चातुर्मास का समय निकट आ रहा था। चातुर्मास-स्वीकृति के लिये मालवा के श्रीसंघों और विशेषतया जावरा श्रीसंघ की ओर से बार-बार विनतियां हो रही थी। अतः समयानुसार आगारों को रखते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने सं. 2015 के चातुर्मास में जावरा विराजने की स्वीकृति फरमाई और शारीरिक स्थिति की परवाह न करते हुए चित्तौड़गढ से बेगूं, सिंगोली की ओर विहार कर दिया।

बेगूं आदि ग्रामों का स्पर्श करने के बाद जब सिंगोली में पदार्पण हुआ तो कमजोरी इतनी अधिक हो गई कि एक दिन शौचादि से निवृत्त होकर वापस गांव में पधारने पर बहुत घबराहट बढ गई। शरीर में काफी शिथिलता आ गई। ऐसा प्रतीत होने लगा कि इस स्थिति में चातुर्मास के निमित्त जावरा पदार्पण भी हो सकेगा या नहीं। सिंगोली श्रीसंघ के सदस्यों ने अपने यहां ही विराजने और निरोग होने के बाद ही विहार करने की बार-बार विनती की। शारीरिक स्थिति और सिंगोली श्रीसंघ के अत्याग्रह को देखते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. कुछ दिन सिंगोली विराजे और वहीं के डाक्टर को दिखाया। स्वास्थ्य-स्थिति में साधारण-सा सुधार दिखाई देने पर थोड़ा-थोड़ा विहार चालू किया। घबराहट के कारण बीच-बीच में विश्राम करते हुऐ कंजार्डा आदि ग्रामों का स्पर्श करते हुए एक जंगल में पहुंचे। वहां एक मन्दिर बना हुआ था और पास में नाला बहता था। मंदिर का पुजारी पूजा आदि करके सूर्यास्त होने के पहले-पहले गांव लौट जाता था। गांव मन्दिर से करीब 2 मील दूर था और रात्रि को नाले में जंगली जानवर पानी पीने आते थे। मन्दिर भी जीर्ण-शीर्ण था और कीडे-मकोड़ों, डांस, मच्छर की अधिकता से रात्रिविश्राम-योग्य स्थान न दिखने से मन्दिर के बाहर वृक्षों के नीचे पड़ी शिला पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. एवं अन्य सन्तों ने विश्राम कर रात्रि व्यतीत की।

प्रातःकाल होने पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. आदि सन्त वहाँ से विहार कर कुकड़ेवर पधारे और रामपुरा, संजीत होते हुए आंतरी गांव में पदार्पण हुआ। यहां कुछ भाइयों में वर्षो से आपसी मनमुटाव चल रहा था। उपाचार्यश्रीजी के सदुपदेश से मनमुटाव दूर होने पर स्थानीय श्रीसंघ और आस-आस के क्षेत्रों में हर्ष का वातावरण छा गया।

आंतरी से विहार कर जब उपाचार्यश्रीजी म.सा. महागढ़, पीपल्यामंडी, मंदसौर आदि क्षेत्रों को धर्मदेशना से पवित्र बनाते हुए जावरा की ओर गमन कर रहे थे, तब जावरा श्रीसंघ के कुछ सदस्य सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने आपश्री से निवेदन किया कि आपश्री का जावरा पदार्पण कब तक हो जायेगा। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. को मुहूर्त आदि देखकर चातुर्मासार्थ नगर-प्रवेश करना कभी भी इष्ट नहीं रहा था, अतः आपश्री ने फरमाया कि मेरे लिये सभी मुहूर्त अच्छे हैं। विहार करते हुए यथावसर जावरा पहुंचने के भाव हैं।

यथासमय उपाचार्यश्रीजी म.सा. का चातुर्मास हेतु जावरा में पदार्पण हुआ। स्थानीय श्रावकसंघ और आस-पास के क्षेत्रों से आगत भाई-बहिनों ने नगर से 3-4 मील सामने जाकर अगवानी की। चातुर्मास के समय में आपश्री के प्रवचन सुनने के लिये प्रायः सभी नागरिक उपस्थित होते थे। आपश्री की सरल तथा हृदयस्पर्शी वाणी ने श्रोताओं का हृदय आकर्षित कर लिया कि दिनोंदिन प्रवचन सुनने वालों की संख्या बढ़ती गई।

मध्याह्न व सायंकाल तात्त्विक चर्चा-वार्त्ता, शंका-समाधान के समय राज्य-अधिकारी, विद्वान उपस्थित होते और उपाचार्यश्रीजी म.सा. की अनुभवभरी विवेचनाओं का लाभ उठाते थे।

जावरा पूर्व में नवाबी राज्य था। वहां के नवाब विद्वानों का आदर और साधु-सन्तों का सम्मान करने के लिये उत्सुक रहते थे। समय-समय पर वे भी व्याख्यानों का लाभ लेने के लिये आते और उपाचार्यश्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धा-भक्ति व्यक्त करते थे। आपश्री के व्याख्यान समाज, राष्ट्र, धर्म से सम्बन्धित विषयों पर होते थे। परिणाम यह हुआ कि बहुत-सी सामाजिक कुरीतियां समाज में बंद हुईं तथा कई-एक सज्जनों ने व्रत-नियम ग्रहण किये।

इस प्रकार यह चातुर्मास आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण सिद्ध हो रहा था और समाज एवं श्रमण संघ की व्यवस्था की दृष्टि से भी इस चातुर्मास-काल में कई-एक महत्त्वपूर्ण कार्य हुए।

श्रमण संघीय स्थिति और उपाचार्यश्रीजी का निवेदन

श्रमण संघ को सबल बनाने एवं शुद्ध सांस्कृतिक धरातल पर टिकाये रखने के लिये उपाचार्यश्रीजी द्वारा किये गये प्रयत्नों की गंभीरता को न समझकर समाज में एक प्रकार की अनिश्चियात्मक स्थिति का निर्माण किया जा रहा था। श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस के प्रयत्न संगठन के उद्देश्य को सफल बनाने में सहकारी नहीं हो सके थे। इसके लिये पहले मुंबई, लुधियाना व जयपुर आदि में कॉन्फरेंस की साधारण सभा की बैठकें भी हुईं और विभिन्न अधिकारी मुनिवरों के पास श्रावकों के शिष्टमंडल भी गये, लेकिन स्थिति जैसी

की तैसी बनी रही। इस जटिलता को देखते हुए कॉन्फरेंस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री विनयचन्दभाई जवेरी ने अपना निवेदन प्रकाशित करते हुए अध्यक्ष पद से त्यागपत्र दे दिया। किन्तु समाज के सभी वर्गों के अनुरोध एवं श्रमण संघीय समस्याओं के निराकरण में अपना पूरा-पूरा सहयोग देने के आश्वासनों को ध्यान रखते हुए उन्होंने अपना त्यागपत्र वापस ले लिया।

इसके अनन्तर समस्याओं को सुलझाने के लिये पुनः प्रयत्न शुरू हुए और विभिन्न मुनिराजों की सेवा में शिष्टमंडल भी भेजे गये। लेकिन खेद है कि शिष्टमंडलों को आश्वासन देने पर भी साधु-सन्तों की पूर्ववत् प्रवृत्तियां चलती रहीं। इस स्थिति को लक्ष्य मे रखते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने 15.9.58 को एक वक्तव्य दिया। वक्तव्य इस प्रकार है–

'श्रमण संघ की स्थापना से लेकर आज तक सत्य, न्याय, सिद्धान्त एवं श्रमण संघीय समाचारी आदि को लक्ष्य में रखते हुए ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि हेतु शुद्धिकरण सहित श्रमणसंघ को दृढ बनाने की भावना से जैसा मुझे उपुयक्त जान पडा, तदनुसार यथाशक्ति कार्य करता रहा।

'मगर कुछ समय से कतिपय विषयों को लेकर समाज में कुछ भ्रामक वातावरण परिलक्षित हो रहा है। ऐसे भ्रामक वातावरण को दूर करने के प्रयत्न किये गये और किये जा रहे हैं, पर खेद है कि वस्तुस्थिति को सही रूप में न लेकर वातावरण को और भ्रामक बनाया जा रहा है। अतः वस्तुस्थिति के दिग्दर्शनपूर्वक अपना निवेदन संघ के सामने रख देना चाहता हूँ–

'1. भीनासर सम्मेलन में सुत्तागमे विषयक निर्णय आचार्यश्रीजी म. (आत्मारामजी म.सा.) पर छोडा गया। उस प्रस्ताव की पंक्तियां निम्न प्रकार हैं–

'पं. मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खु) द्वारा संपादित 'सुत्तागमे' विषय में निर्णय किया गया कि सूत्रपाठ में पुष्टावलम्बन एवं खास प्रमाण बिना परिवर्तन करना इष्ट नही है। अतः वे अपने विचार आचार्यश्रीजी की सेवा में भेज दें। फिर वे (आचार्यश्रीजी म.) जो निर्णय देंगे, वह श्रमण संघ को स्वीकार होगा।'

-पर आचार्यश्रीजी म. की तरफ से निर्णय आज दिन तक समाज के सामने नहीं आया।

'2- प्रधानमंन्त्री व्याख्यानवाचस्पति श्री मदनलालजी म. श्रमण संघ का कार्य सूचारु रूप से कर रहे थे, लेकिन आचार्यश्रीजी म. व प्रधानमन्त्रीजी म. के बीच में पत्र-व्यवहार आदि के प्रसंग से कुछ ऐसा वातावरण बना, जिस पर प्रधानमन्त्रीजी म. ने प्रधानमन्त्री पद का त्यागपत्र आचार्यश्रीजी म. की सेवा में पेश कर दिया।

'इस मामले को निपटाने के लिये कॉन्फरेस की ओर से भी प्रयत्न हुए और प्रधानमन्त्रीजी म. ने कॉन्फरेंस को स्पष्ट लिखवा दिया था कि–

'मैं अब तक मौन हूँ, तब तक मौन ही रहूँगा, जब तक आचार्यश्रीजी से मुझे सीधा समाधान नहीं होता।'

यह समस्या भी अभी तक अस्पष्ट ही बनी हुई है।

'3. भीनासर सम्मेलन में ध्वनियन्त्र विषयक जो-कुछ हुआ, वह प्रस्ताव के रूप में विद्यमान है। लेकिन अपवाद क्या है ? प्रायश्चित्त क्या लेना ? और स्वच्छन्दता क्या है ? इन तीनों बातों का निर्णय भीनासर सम्मेलन में नहीं किया गया। इस विषयक स्पष्ट घोषणा ता. 1.8.56 को आचार्यश्रीजी म. की तरफ से हो चुकी थी। इसके पश्चात् तीनों शब्दों के विषय में आचार्यश्रीजी म. और मेरे (उपाचार्यश्रीजी म. के) संयुक्त निर्णय की बात सामने आई और वह विषय दोनों के ऊपर छोड दिया गया। लेकिन यह विषय निम्न पंक्तियों के अनुसार दोनों में से एक के ऊपर ही आ गया। इस सिलसिले में एक पत्र की वे पंक्तियां इस प्रकार हैं-

'लाउडस्पीकर का पूरा निर्णय आचार्यश्री आत्मारामजी म. ने उपाचार्यश्री को सौंपा है। उपाचार्यश्री उपाध्यायमंडल और मन्त्रिमंडल के परामर्श से जो-कुछ निर्णय करेंगे, आचार्यश्री को स्वीकार होगा।'

इसका भी ध्यान रखते हुए मैंने व्यवस्था करने की दृष्टि से ध्वनि-यन्त्र के विषय को हाथ में लिया है और जो प्रयत्न हुए, उनके परिणामस्वरूप अधिकारी मुनियों के अभिप्रायपूर्वक जो स्थिति थी, वह 'ध्वनियन्त्र विषयक सूचना' पत्र के रूप में ता. 16 अक्टूबर, 1957 को सभी अधिकारी मुनियों के पास भिजवा दी। इसके बाद इस विषय में किसी को कुछ कहने का अवकाश ही नहीं रह जाता। तथापि आचार्यश्रीजी म. की तरफ से ता. 10.12.57 का पत्र देहली कॉन्फरेंस को पहुंचा। जिसमें आचार्यश्रीजी म. ने यन्त्रविषयक सूचना-पत्र पर असहमति प्रकट की और अवैधानिक बतलाया। जिसकी नकल कॉन्फरेंस आफिस से यहां आई। उसका उत्तर ता. 25.12.57 को दिलाया गया। इस बीच ता. 16.12.57 को आचार्यश्रीजी म. की तरफ से सीधा पत्र भी आया। उसका उत्तर ता. 21.12.57 को लिखाते हुए आचार्यश्रीजी म. को यह अर्ज करवाई कि-

'ध्वनि-यन्त्र विषयक सूचनापत्र में आचार्यश्री आत्मारामजी म. को कौनसी पंक्ति अवैधानिक मालूम देती है ? लिखवाने की कृपा करावें, ताकि उस विषय में लिखवाया जा सके।'

'इसके पश्चात् भी उस विषय की तरफ कई वक्त आचार्यश्रीजी म. का ध्यान आकर्षित किया गया, पर आज दिन तक उत्तर नहीं आया और आचार्यश्रीजी म. ने ध्वनि-यन्त्र विषयक सूचनापत्र पर जो असहमति प्रकट की तथा अवैधानिक बतलाया, जिसके परिणामस्वरूप ध्वनियन्त्र के प्रयोगकर्ताओं मे से कई मुनिवरों ने प्रायश्चित्त नहीं लिया, जो कि श्रमण संघ की

व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त हर हालत में लेना अनिवार्य था। पर प्रायश्चित्त नहीं लेने से संतवर्ग के सांभोगिक सम्बन्ध में बाधा आई, जो प्रयत्न करने पर भी आज दिन तक ठीक नहीं हो पाई।

'4-पाली-प्रकरण आदि की घटनाएं भी समाज के सामने आईं; तब पता चला कि कई व्यक्तियों के संयम विघातक पत्र-व्यवहार लम्बे अरसे से चालू हैं। वे पत्र सहसा पाली-कांड में पकड़े गये, जिससे जनमानस में अत्यधिक दूषित वायुमण्डल हो गया और आवाज आ रही थी कि ऐसे व्यक्ति साधुवेश के योग्य नहीं रहते आदि। काफी विक्षुब्धता का वातावरण चल रहा था। अन्य मतावलंबियों में हंसी होने का प्रसंग आ रहा था और शिथिलाचार के विषय को हाथ मे लेने के लिये कॉन्फरेंस के अधिकारियो के भी पत्र आ रहे थे। उनमें एक पत्र में *ता. 14.1.57 को श्री श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेंस के भूतपूर्व अध्यक्ष स्वर्गीय श्री विनयचन्दभाई ने* लिखा था कि–

'आप आज श्रमण संघ के उपाचार्य हैं और आचार्य की भी सर्वसत्ता आपके पास है। इस हालत में अगर भ्रष्टाचार न रोकेंगे तो श्रावक संघ तो अपना कार्य करेगा।'

'इधर संगठन में कुछ विघटन का वातावरण भी परिलक्षित हो रहा था, तब यह मामला मेरे पास पहुंचा। आचार्यश्रीजी म. तथा कतिपय अधिकारी मुनियों ने भी शिथिलाचार के विषय को निपटाने के लिये कहलवाया। इस कथन पर भी ध्यान देकर मैंने इस विषय की छानबीन की और समग्र स्थिति का अध्ययन कर शिथिलाचारियों के विषय में फैसले दिये और जिनके साथ श्रमणोचित व्यवहार-विच्छेद किया गया, उसकी सूचना ता. 5.3.57 के पत्र द्वारा कॉन्फरेंस के मार्फत सभी अधिकारी मुनियों के पास पहुंचवाने के लिये भिजवा दी। इसके उत्तर में कॉन्फरेंस का भी यहां के निर्देशानुसार उक्त सूचना अधिकारी मुनियों के पास भेजने का पत्र आ गया।

'इस प्रकार शुद्धिकरण की व्यवस्था चल रही थी कि अजमेर-मेरवाडा तथा उसके आस-पास के कुछ क्षेत्रों में रूपचन्दजी आदि विषयक भ्रामक वातावरण कर्णगोचर होने लगा। इस पर विचार हुआ कि समाज इससे सावधान रहे और भ्रामक वातावरण और न फैले, इसके लिये रूपचन्दजी, लक्ष्माजी, नगीनाजी आदि व्यक्तियों के विषय में अजमेर में दिये गये फैसले को (जिस पर आचार्यश्री आत्मारामजी म. भी ता. 15.3.57 को हर्ष व्यक्त कर चुके थे) मद्देनजर रखते पुनः जो ताजी सूचना की, वह भी अधिकारी मुनिवरों एवं समाज के प्रमुख व्यक्तियों द्वारा समाज के पास पहुंचाने के लिये कॉन्फरेंस को भिजवा दी। इसके पूर्व आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में भी भिजवा दी गई थी।

'इसके बाद भी लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म. यहां से की गई व्यवस्था की

उपेक्षा कर शुद्धिकरण का पालन नहीं करने में प्रयत्नशील व्यक्तियों के द्वारा उत्पन्न किये गये वातावरण में रस लेते हुए प्रतीत हो रहे हैं, जिससे ऐसे व्यक्तियों को प्रोत्साहन मिल रहा है। इस प्रकार एक के बाद एक परिस्थिति उत्पन्न होते रहना शोभास्पद नहीं है।

'मैंने समाजसेवक के नाते श्रमण संगठन को शुद्धिकरणपूर्वक टिकाये रखने के लिये मेरी बुद्धि अनुसार वस्तुस्थिति को समझकर जो-कुछ भी बन पड़ा, किया। परन्तु उसमें कतिपय व्यक्तियों की तरफ से सहयोग की अपेक्षा बाधाएं अधिक सामने लाई गईं और अब भी अपेक्षित सहयोग का अभाव ही सामने आ रहा है। अस्तु।

'समाज का कार्य सभी प्रमुख व्यक्तियों के हार्दिक सहयोग पर विशेष अवलंबित रहता है। इसमें कौन किस कार्य में कितना सहयोग प्रदान कर रहे हैं, यह समाज के सामने है। शिथिलाचार और वह भी अनैतिक जीवन-स्वरूप, जो साधु-संस्था पर एक कलंक है, उसमें व सैद्धान्तिक विषय में गोलमाल की स्थिति सहन नहीं की जा सकती। अतः मैं गोलमाल की स्थिति में उलझे रहना पसंद नहीं करता।

'आज समाज में कुछ जिम्मेदार व्यक्ति भी हर बात में गोलमाल करना चाहते हैं और उनकी इच्छानुसार कार्य न होने पर वे संघ को तोडने की आवाज उठाने लग जाते हैं।

'इतना ही नहीं, आचार्यश्री आत्मारामजी म. भी निर्णीत मामलों को उलझाने वाले व्यक्तियों की बातों में आकर यहां से की गई व्यवस्था के प्रतिकूल अध्यादेश तक निकाल देते हैं, जिसके परिणामस्वरूप बड़े परिश्रम से बने-बनाये संगठन में विभेद हो जाता है।

'ऐसी परिस्थिति में फिलहाल यह निवेदन करना आवश्यक हो गया है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एवं श्रमण संघीय समाचारी का तथा उसके संरक्षणार्थ यहां से की गई व्यवस्था का पालन करेगा, उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमण संघीय सांभोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा।'

सर्वप्रथम उक्त निवेदन को मुनिवरों तथा कॉन्फरेंस के पास भिजवाया गया था। परन्तु जब किसी ने भी इस वक्तव्य पर ध्यान न दिया तो चतुर्विध संघ को श्रमण संघीय समस्याओं के सम्बन्ध में उपाचार्यश्रीजी म.सा. के प्रयत्नों और सही स्थिति से अवगत कराने के लिये जावरा श्रीसंघ द्वारा वक्तव्य को मुद्रित करवाकर यथास्थान सभी श्रीसंघों को भेज दिया गया।

निवेदन की प्रतिक्रिया

इस निवेदन के प्रकाशित होने से श्रमण संघ की वर्तमान स्थिति, आचार्यश्री आत्मारामजी के दृष्टिकोण एवं संघ को निर्बल बनाने वाले कार्यों के प्रति श्रमण संघीय अधिकारी मुनिवरों के कार्यकलापों का वास्तविक चित्रण समाज के समक्ष आ चुका था। अभी तक समाज

अनुमानित आधारों पर ही श्रमण संघ की स्थिति का मूल्यांकन करता रहा था, लेकिन निवेदन से उसके अनुमान सुदृढ हुए। संघ-संगठन के लिये ऊपरी तौर पर उपाय करने वाले समाज के नेताओं को भी अपनी स्थिति का आभास हुआ। उनके द्वारा अव वास्तविकता को छिपाना संभव नहीं रहा था और न वे ऐसा कोई कारण वतला सकते थे, जिससे समाज को अधिक समय तक भुलावे में रखा जा सके। अतः उससे उवरने के लिये उनके सामने सिर्फ एक ही रास्ता रह गया था कि वे अभी तक की स्थिति और उसके लिए किये गये कार्यों की जानकारी समाज के सामने रख दें।

इस बात को ध्यान में रखते हुए उपाचार्यश्रीजी से समस्याओं के समाधान के बारे मे विचार-विमर्श करने के लिये श्री अ. भा. श्वे स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की साधारण सभा का अधिवेशन जावरा में दि. 19.10.58 को किया गया। इस अधिवेशन का विशेष महत्त्व था कि यदि स्थिति की गम्भीरता को न समझकर पूर्ववत कार्य चलता रहा तो श्रमण संघ का नाम शेष रह जायेगा। अधिवेशन के समय कॉन्फरेंस के नेताओं ने संगठन को निर्बल बनाने वाले ज्वलंत प्रश्नों के बारे में यथार्थ स्थिति समझने में पूरा मनोयोग लगाया और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. से भी चर्चा-वार्त्ता की।

चर्चा में भाग लेने वाले मुंवई धारासभा के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, श्री आनन्दराजजी सुराणा, श्री जवाहरलालजी मुणोत आदि कॉन्फरेंस के प्रमुख अग्रणी थे। उन्होंने उपाचार्यश्रीजी म. सा. से प्रार्थना की कि श्रमण संघ को सुदृढ, स्थायी बनाने के लिए मार्गदर्शन देने की कृपा करें। इस पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि मैंने श्रमण संघ को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ सुदृढ, स्थायी बनाने के लिए यथाशक्ति प्रयास किया और कर रहा हूँ। लेकिन अधिकारी मुनिवरों की तरफ से अपेक्षित सहयोग के अभाव में उस प्रयास में बाधा उपस्थित हो रही है। सहयोग नहीं मिल रहा है, इतना ही नहीं, अपराधियों को प्रश्रय और दिया जा रहा है। आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा भी अनुशासन भंग करने वाले व्यक्तियों को प्रश्रय दिये जाने से कुत्सित राजनीति की तरह यहां भी गुटवन्दी हो रही है। एतदर्थ समाज के प्रबुद्ध वर्ग को इस बात की सावधानी दिलाने की दृष्टि से ही दिनांक 15.9.58 को निवेदन समाज के सामने रख दिया। समाज के आप प्रमुख हैं अत. इसका आप भलीभांति अवलोकन करें और सम्बन्धित पत्र-व्यवहार भी आप देखें। उसमें तटस्थ दृष्टि से आप चिन्तन करके बतावें कि मैंने जो प्रयास किये हैं, उनमें कोई त्रुटि रही हो तो उसका परिमार्जन मैं पहले करने को तैयार हूँ और यदि आपको त्रुटि मालूम न हो और सम्बन्धित श्रमणवर्ग की त्रुटि मालूम होती हो तो उस श्रमणवर्ग को विनयपूर्वक निष्पक्ष दृष्टि से कुछ कहें और त्रुटि का परिमार्जन करायें। इस कार्य के लिए आपको, सक्षमता व निर्भीकता

का परिचय देना चाहिए। जिससे श्रमण संघ की सुरक्षा ज्ञान-दर्शन-चारित्र की भूमिका पर भलीभांति हो सके। यह कार्य सबके हार्दिक सहयोग पर अवलम्बित है। अतः आप पहले निवेदन और उससे सम्बन्धित प्रमाण भली-भांति देख लें।

उपाचार्यश्री द्वारा इस प्रकार फरमाये जाने पर श्रावक समाज के उन प्रमुख कर्णधारों ने *श्रमण संघ में व्याप्त शिथिलाचार सम्बन्धी, ध्वनि-यन्त्र विपयक, सुत्तागमे आदि जटिल* समस्या विपयक पत्र-व्यवहार, आचार्यश्री आत्मरामजी म.सा. से लेकर श्रमण संघ के अधिकारी *व प्रमुख मुनिवरों के द्वारा समय-समय पर दिलवाये गये पत्र और* पत्रस्थ विपयों को एवं शास्त्रीय दृष्टिकोण को, श्रमण संघीय नियमों को ध्यान में रखकर उपाचार्यश्री गणेशलालजी *म.सा. के द्वारा की गई व्यवस्था आदि विषयक पत्र अवलोकन किये और अवलोकन करने के* पश्चात् वे जिस निष्कर्ष पर पहुंचे, उसको उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. के समक्ष प्रस्तुत किया और अर्ज की कि आपश्रीजी को श्रमण संघ के समस्त अधिकार प्राप्त होते हुए भी सब अधिकारी मुनिवरों से राय लेकर जनतंत्रीय पद्धति से कुशलतापूर्वक कार्य किया है। हमने सभी दृष्टि से पत्र-व्यवहार का भलीभांति अवलोकन किया और समझ पाये है कि यहां कोई त्रुटि नहीं है। जहां त्रुटि है, वहां हम प्रयास करना चाहते हैं, इसलिए हमको कुछ समय मिलना चाहिए और कुछ पत्रों की प्रतिलिपियां भी हम चाहते हैं।

इस पर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने फरमाया कि आप मुझसे समय ले सकते हैं और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की सुरक्षा के साथ संगठन के प्रयास के लिए जिन भी पत्रों की आप प्रतिलिपियां चाहते हों वे भी लालचंदजी मुणोत से ले सकते हैं, वे आप द्वारा ही पत्र लेखन के लिए नियुक्त किये गये हैं। पत्रो की प्रतिलिपि लेने के बाद उन्होंने कहा कि आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. को तो सन्मान की दृष्टि से पद दिया *गया है,* उन्होंने बीच ही में ऐसी बातें क्यों कीं ? हम यहां एतद्‌विषयक कुछ निर्णय भी करें तो उपयुक्त नहीं रहेगा। *लुधियाना जाकर फिर कुछ करे तो ठीक रहेगा।*

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. भी यही चाहते थे कि श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये चतुर्विध संघ को अपनी जिम्मेदारी समझनी चाहिये। स्थिति की गम्भीरता को समझते हुए अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया। उसमें उल्लेख था कि मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्यश्रीजी म. ने फरमाया है, उसके लिये आचार्यश्रीजी म. ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये उसके विपरीत जाने का प्रश्न नहीं रहता। तथापि आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. कागजात देखना चाहते हैं तो वे कागजात कॉन्फरेंस की कमेटी उनके पास जाकर बतला दे आदि।

शिष्टमण्डल : उपाचार्यश्रीजी म. की सेवा में

इस प्रस्ताव के परिपालनार्थ एवं समाज की आकांक्षाओं के समाधानार्थ श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के नेतृत्व में एक शिष्टमंडल का गठन हुआ और जिन पत्रों की प्रतिलिपियां लीं तथा जिस स्थिति को उन्होंने समझा, उसका अधिवेशन समाप्त होने के बाद लगभग एक महीने तक अपने घर पर अध्ययन किया और सम्बन्धित व्यक्तियों से पूछताछ व जांच-पड़ताल भी की। अनन्तर यह सोचा कि श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया की वृद्धावस्था और स्वास्थ्य को देखते हुए बार-बार लंबी यात्रा होना संभव नहीं है और उनके बिना शिष्टमंडल प्रभावहीन रहेगा। इसलिये भूतकालीन समस्याओं को सुलझाने के साथ-साथ भविष्य के विषय मे भी सुव्यवस्थित स्थिति बनाने के लिए शिष्टमंडल सबसे पहले उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा में उपस्थित होकर भविष्य के विषय में मार्गदर्शन ले, ताकि सभी स्थिति एक ही बार के प्रयत्न से स्पष्ट हो जाये।

उपाचार्यश्री की उदारता के बावजूद शिष्टमंडल असफल रहा

इस विचार को ध्यान में रखकर शिष्टमंडल ने जावरा और लुधियाना जाने के लिये टिकिट रिजर्वेशन करवाये। पहले यह शिष्टमण्डल दि. 27.11.58 को जावरा पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमण्डल उपाचार्यश्रीजी से वार्तालाप करना चाहता था पर उस समय उपाचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य काफी कमजोर था। इन्दोर के डॉ. मुखर्जी, डॉ. बोरदिया, डॉ. भण्डारी (कार्डियोलोजिस्ट)– इन तीन डॉक्टरों एवं तीन स्थानीय डॉक्टरों ने मिलकर ये भाव व्यक्त किये कि उपाचार्यश्रीजी को हार्ट सम्बन्धी तकलीफ है इसलिए इन्हें शारीरिक एवं मानसिक विश्राम की पूर्ण आवश्यकता है।

उपाचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य सम्बन्धी इस हिदायत की जानकारी मुम्बई से आगत शिष्टमण्डल को हुई। शिष्टमण्डल ने सोचा कि उपाचार्यश्रीजी के रुग्ण स्वास्थ्य को देखते हुए हमें अभी चले जाना चाहिए। भविष्य में कभी आयेंगे और उस समय समग्र वार्तालाप करेंगे। इस पर एक सदस्य ने कहा– श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया का स्वास्थ्य इतना अनुकूल नहीं है कि वे बार-बार यात्रा कर सकें। इसलिये उचित यही है कि उपाचार्यश्रीजी से निवेदन किया जाए कि हम आपश्री से प्रत्यक्ष वार्ता करना चाहते थे परन्तु आपके स्वास्थ्य के कारण हम आपसे चर्चा करने को उत्सुक नहीं हैं। हम चाहते हैं कि आपकी ओर से किसी सन्त का नाम निर्देशित किया जाए तो हम उनसे चर्चा कर लेंगे।

शिष्टमण्डल के सभी सदस्यों को यह बात उपयुक्त लगी। शिष्टमण्डल ने उपाचार्यश्री

से निवेदन किया कि आपश्री की ओर से एक संत का नाम निर्देश हो तो हम उनसे वार्तालाप कर लेंगे और उनकी बात को हम आपकी बात मानेंगे। उपाचार्यश्री ने पं.रत्न मुनिश्री नानालालजी म.सा. (बाद में आचार्य) का नाम-निर्देश किया।

पं. रत्न मनिश्री नानालालजी उस समय एक तरफ बैठे अपना अध्ययन कर रहे थे। शिष्टमण्डल उनके चरणों में पहुँचा और मुनिश्री से कहने लगा– हम श्रमण संघीय स्थिति पर आपसे चर्चा करना चाहते हैं। आपकी बात पूज्य उपाचार्यश्रीजी की बात मानेंगे।

निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी ने कहा–उपाचार्यश्रीजी महान् है। मैं उनके नख की होड़ भी नहीं कर सकता। अतएव मैं उनकी हैसियत से चर्चा नहीं कर सकता, अगर मेरी व्यक्तिगत हैसियत से चर्चा करना चाहें तो मैं चर्चा कर सकता हूँ। शिष्टमण्डल ने विविध प्रकार से मुनिश्री को इस बात के लिये राजी करने का प्रयास किया कि वह उपाचार्यश्री की हैसियत से बात करें। जब दीर्घद्रष्टा मुनिश्री कतई तैयार नहीं हुए तब शिष्टमण्डल ने मुनिश्री से व्यक्तिगत हैसियत में चर्चा करना मंजूर किया।

पं. रत्न मुनिश्री और शिष्टमण्डल स्थानक के ऊपरी हॉल में बैठे। काफी गंभीरता से चर्चा चली। शिष्टमण्डल ने प्रश्न-प्रतिप्रश्न, तर्क-वितर्क द्वारा जानकारी प्राप्त की। अन्त में शिष्टमण्डल मुनिश्री से निवेदन करने लगा– मुनिवर ! हम आपकी हर बात से सहमत हैं, लेकिन एक छोटी-सी बात के लिए सहमत नहीं हैं। इस छोटी-सी बात को हम भविष्य में सम्हाल लेंगे। अतः आपश्री इस छोटी-सी बात को गौण कर दीजिए। पं. रत्न मुनिश्री ने कहा– मैंने तो अपने विचार रखे हैं जो नितान्त व्यक्तिगत हैं। यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जो बात आपको छोटी-सी विदित हो रही है वह भविष्य में विराट् रूप ले सकती है। नौका का छोटा-सा छिद्र भी नौका पर सवार सभी के लिए खतरनाक होता है। इसलिए जिसे आप छोटी-सी बात कह रहे हैं उसे मैं गौण नहीं कर सकता। उपाचार्यश्रीजी विराजमान हैं, वे अगर इस छोटी-सी बात को गौण कर देते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। (शिष्ट मण्डल ने दो दिन तक सारे तथ्यों का गहराई से अध्ययन किया। मुनिश्रीजी ने उन्हें अच्छी तरह समझाया।)

प्रस्तुत चर्चा के बाद मुनिश्रीजी नीचे विराजमान उपाचार्यश्रीजी की सेवा में पधार गये। कुछ देर बाद शिष्टमण्डल भी उपाचार्यश्रीजी की सेवा में आ गया। शिष्टमण्डल ने 'छोटी-सी बात' पर जो चर्चा हुई वह उपाचार्यश्री के समक्ष रखी। उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया– यद्यपि पं. मुनिश्री ने जो बात रखी कि 'छोटी बात कभी बड़ी भी बन सकती है', यह यथार्थ है तथापि आप लोग समाज के अग्रगण्य हैं और छोटी बात को बडी नहीं बनने देने की जिम्मेदारी ले रहे हैं और इस विषय को गौण करने का आग्रह कर रहे हैं तो मैं इस समय इस 'छोटी-सी बात' को गौण करता हूँ। लेकिन इससे होने वाली हानि के उत्तरदायी आप लोग ही होंगे।

उपाचार्यश्रीजी के इन उदारताभरे वाक्यों को श्रवण कर शिष्टमण्डल के सदस्य बहुत खुश हुए। वे कहने लगे– हमें आपश्रीजी के चरणों में पूर्ण सफलता मिली है। इस खुशी को व्यक्त करते हुए पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. के एक श्रावक, जो बरेली के थे, एक पैर पर खडे होकर नृत्य-सा करने लगे और उस खुशी के अतिरेक में ताली भी बजा दी। उस समय उन्हें संकेत किया गया कि सन्तों के स्थान पर ताली नहीं बजानी चाहिए।

वार्त्तालाप के अन्त में शिष्टमण्डल ने उपाचार्यश्री से कहा कि हम लोग पं. मुनिश्रीजी से वार्त्ता करके आपश्री के पास आ रहे थे तब सोचा कि पं. मुनिश्रीजी हमारे से पूर्व ही उपाचार्यश्रीजी के पास पहुँच चुके हैं इसलिए उपाचार्यश्रीजी उनकी बात मानेगे और 'छोटी-सी-बात' के लिए असहमति प्रगट करेंगे। अतः हमारा लुधियाना जाना व्यर्थ है, यही सोचकर हमने लुधियाना का टिकिट कैंसल कराने के लिए एक भाई को स्टेशन भेज दिया है। लेकिन आपश्री की महानता धन्य है कि आपने अपने मुनि की बात की अपेक्षा हमारी बात को महत्ता प्रदान कर उसे स्वीकार कर लिया। इसलिए हमारा शिष्ट मण्डल पूरा-पूरा सफल हुआ है। अब हम दूसरे आदमी को भेजते हैं ताकि टिकिट कैंसल करवाने से रोक देगा। अब हमारा लुधियाना जाना तय है। फिर हम सम्बंधित अन्य स्थानों पर जायेंगे और श्रमण संघीय स्थिति को सुदृढ करने का भरसक प्रयत्न करेगे आदि भाव व्यक्त करके शिष्टमण्डल ने मांगलिक पाठ सुनकर दि. 29.11.58 को लुधियाना के लिये प्रस्थान किया। वहां शिष्टमंडल दि. 1.12.58 को पहुंचा। शिष्टमण्डल को वहां निर्भयता और सत्य का परिचय देना था। पूज्य उपाचार्यश्रीजी के पास जो वार्त्ता हुई उसे आचार्यश्री आत्मारामजी म. के पास खुलकर रखना था। लेकिन श्रमण संघ का दुर्भाग्य कहिये या शिष्टमण्डल की अक्षमता, शिष्टमण्डल वहां वैसा कुछ नहीं कर सका। और उसी दिन अपना वक्तव्य दे दिया कि शिष्टमंडल असफल रहा। किन्तु शिष्टमंडल की असफलता के बारे में किसी प्रकार की जानकारी नहीं दी गई कि अमुक कारण से शिष्टमंडल असफल रहा। इसके बारे में समाज ने स्पष्टीकरण का मांग भी की, लेकिन नेतागण मौन ही रहे और आज तक भी अपनी असफलता के कारणों को बताने मे मौन धारण किये हुए हैं। इस मौन का परिणाम यह हुआ कि श्रमण संघ की स्थिति सुदृढ़ होने की अपेक्षा दिनोंदिन निर्बल बनती गई और शनैः-शनैः नाममात्र का संघ रह गया।

असफलता के सूत्रधार

शिष्टमण्डल की लुधियाना में वार्त्ता यद्यपि सीमित थी। जिन बातों के बारे मे बातचीत करनी थी, वे सब आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. के पास पहले ही पत्रों द्वारा भेजी जा चुकी थीं। शिष्टमण्डल को तो सिर्फ इतना बतलाना था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा

से निवेदन किया कि आपश्री की ओर से एक संत का नाम निर्देश हो तो हम उनसे वार्तालाप कर लेंगे और उनकी बात को हम आपकी बात मानेंगे। उपाचार्यश्री ने पं.रत्न मुनिश्री नानालालजी म.सा. (बाद में आचार्य) का नाम-निर्देश किया।

पं. रत्न मनिश्री नानालालजी उस समय एक तरफ बैठे अपना अध्ययन कर रहे थे। शिष्टमण्डल उनके चरणों में पहुँचा और मुनिश्री से कहने लगा– हम श्रमण संघीय स्थिति पर आपसे चर्चा करना चाहते हैं। आपकी बात पूज्य उपाचार्यश्रीजी की बात मानेंगे।

निरभिमानी व्यक्तित्व के धनी पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी ने कहा–उपाचार्यश्रीजी महान् है। मैं उनके नख की होड़ भी नहीं कर सकता। अतएव मैं उनकी हैसियत से चर्चा नहीं कर सकता, अगर मेरी व्यक्तिगत हैसियत से चर्चा करना चाहें तो मैं चर्चा कर सकता हूँ। शिष्टमण्डल ने विविध प्रकार से मुनिश्री को इस बात के लिये राजी करने का प्रयास किया कि वह उपाचार्यश्री की हैसियत से बात करें। जब दीर्घद्रष्टा मुनिश्री कतई तैयार नहीं हुए तब शिष्टमण्डल ने मुनिश्री से व्यक्तिगत हैसियत में चर्चा करना मंजूर किया।

पं. रत्न मुनिश्री और शिष्टमण्डल स्थानक के ऊपरी हॉल में बैठे। काफी गंभीरता से चर्चा चली। शिष्टमण्डल ने प्रश्न-प्रतिप्रश्न, तर्क-वितर्क द्वारा जानकारी प्राप्त की। अन्त में शिष्टमण्डल मुनिश्री से निवेदन करने लगा– मुनिवर ! हम आपकी हर बात से सहमत हैं, लेकिन एक छोटी-सी बात के लिए सहमत नहीं हैं। इस छोटी-सी बात को हम भविष्य में सम्हाल लेंगे। अतः आपश्री इस छोटी-सी बात को गौण कर दीजिए। पं. रत्न मुनिश्री ने कहा– मैंने तो अपने विचार रखे हैं जो नितान्त व्यक्तिगत हैं। यह बात अवश्य ध्यान देने योग्य है कि जो बात आपको छोटी-सी विदित हो रही है वह भविष्य में विराट् रूप ले सकती है। नौका का छोटा-सा छिद्र भी नौका पर सवार सभी के लिए खतरनाक होता है। इसलिए जिसे आप छोटी-सी बात कह रहे हैं उसे मैं गौण नहीं कर सकता। उपाचार्यश्रीजी विराजमान हैं, वे अगर इस छोटी-सी बात को गौण कर देते हैं तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है। (शिष्ट मण्डल ने दो दिन तक सारे तथ्यों का गहराई से अध्ययन किया। मुनिश्रीजी ने उन्हें अच्छी तरह समझाया।)

प्रस्तुत चर्चा के बाद मुनिश्रीजी नीचे विराजमान उपाचार्यश्रीजी की सेवा में पधार गये। कुछ देर बाद शिष्टमण्डल भी उपाचार्यश्रीजी की सेवा में आ गया। शिष्टमण्डल ने 'छोटी-सी बात' पर जो चर्चा हुई वह उपाचार्यश्री के समक्ष रखी। उपाचार्यश्रीजी ने फरमाया– यद्यपि पं मुनिश्री ने जो बात रखी कि 'छोटी बात कभी बडी भी बन सकती है', यह यथार्थ है तथापि आप लोग समाज के अग्रगण्य हैं और छोटी बात को बड़ी नहीं बनने देने की जिम्मेदारी ले रहे हैं और इस विषय को गौण करने का आग्रह कर रहे हैं तो मैं इस समय इस 'छोटी-सी बात' को गौण करता हूँ। लेकिन इससे होने वाली हानि के उत्तरदायी आप लोग ही होंगे।

उपाचार्यश्रीजी के इन उदारताभरे वाक्यों को श्रवण कर शिष्टमण्डल के सदस्य बहुत खुश हुए। वे कहने लगे– हमें आपश्रीजी के चरणों में पूर्ण सफलता मिली है। इस खुशी को व्यक्त करते हुए पूज्यश्री हस्तीमलजी म.सा. के एक श्रावक, जो बरेली के थे, एक पैर पर खड़े होकर नृत्य-सा करने लगे और उस खुशी के अतिरेक में ताली भी बजा दी। उस समय उन्हें संकेत किया गया कि सन्तों के स्थान पर ताली नहीं बजानी चाहिए।

वार्तालाप के अन्त में शिष्टमण्डल ने उपाचार्यश्री से कहा कि हम लोग पं. मुनिश्रीजी से वार्ता करके आपश्री के पास आ रहे थे तब सोचा कि पं. मुनिश्रीजी हमारे से पूर्व ही उपाचार्यश्रीजी के पास पहुँच चुके हैं इसलिए उपाचार्यश्रीजी उनकी बात मानेंगे और 'छोटी-सी-बात' के लिए असहमति प्रगट करेंगे। अतः हमारा लुधियाना जाना व्यर्थ है, यही सोचकर हमने लुधियाना का टिकिट कैंसल कराने के लिए एक भाई को स्टेशन भेज दिया है। लेकिन आपश्री की महानता धन्य है कि आपने अपने मुनि की बात की अपेक्षा हमारी बात को महत्ता प्रदान कर उसे स्वीकार कर लिया। इसलिए हमारा शिष्ट मण्डल पूरा-पूरा सफल हुआ है। अब हम दूसरे आदमी को भेजते हैं ताकि टिकिट कैंसल करवाने से रोक देगा। अब हमारा लुधियाना जाना तय है। फिर हम सम्बंधित अन्य स्थानों पर जायेंगे और श्रमण संघीय स्थिति को सुदृढ करने का भरसक प्रयत्न करेंगे आदि भाव व्यक्त करके शिष्टमण्डल ने मांगलिक पाठ सुनकर दि. 29.11.58 को लुधियाना के लिये प्रस्थान किया। वहां शिष्टमंडल दि. 1.12.58 को पहुंचा। शिष्टमण्डल को वहां निर्भयता और सत्य का परिचय देना था। पूज्य उपाचार्यश्रीजी के पास जो वार्ता हुई उसे आचार्यश्री आत्मारामजी म. के पास खुलकर रखना था। लेकिन श्रमण संघ का दुर्भाग्य कहिये या शिष्टमण्डल की अक्षमता, शिष्टमण्डल वहां वैसा कुछ नहीं कर सका। और उसी दिन अपना वक्तव्य दे दिया कि शिष्टमंडल असफल रहा। किन्तु शिष्टमंडल की असफलता के बारे में किसी प्रकार की जानकारी नहीं दी गई कि अमुक कारण से शिष्टमंडल असफल रहा। इसके बारे में समाज ने स्पष्टीकरण का मांग भी की, लेकिन नेतागण मौन ही रहे और आज तक भी अपनी असफलता के कारणों को बताने में मौन धारण किये हुए हैं। इस मौन का परिणाम यह हुआ कि श्रमण संघ की स्थिति सुदृढ़ होने की अपेक्षा दिनोंदिन निर्बल बनती गई और शनैः-शनैः नाममात्र का संघ रह गया।

असफलता के सूत्रधार

शिष्टमण्डल की लुधियाना में वार्ता यद्यपि सीमित थी। जिन बातों के बारे में बातचीत करनी थी, वे सब आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. के पास पहले ही पत्रों द्वारा भेजी जा चुकी थीं। शिष्टमण्डल को तो सिर्फ इतना बतलाना था कि उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा

की गई कार्रवाई संघ-सुदृढ़ता की दृष्टि से योग्य और आवश्यक थी। इसके बारे में कोई गुप्त मंत्रणा करने का भी अवकाश नहीं था, जिसे समाज के समक्ष प्रकट करने मे विवशता प्रतीत होती थी।

फिर भी वार्ता को असफल बनाने के मुख्य सूत्रधार लुधियाना में आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. के पास रहने वाले श्री ज्ञानमुनिजी थे। उक्त मुनि ही विशेषकर आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. के पत्रों को पढ़ने-पढ़ाने का कार्य करते थे। पाली शिथिलचार कांड मे ज्ञानमुनिजी भी सम्बन्धित थे और ध्वनिवर्धक यंत्र में भी बोल चुके थे। शिष्टमंडल आचार्यश्रीजी से उन पत्रो के बारे में वार्तालाप करना चाहता था जिन्हें ज्ञानमुनिजी अपने अनाचार-प्रकाशन की दृष्टि से अच्छा नहीं मानते थे। अतः उन्होंने वार्ता आगे चलने ही नहीं दी और यह कहकर इनकार करवा दिया कि असल पत्र साथ क्यों नहीं लाये ? इस पर श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया ने कहा कि असली पत्रों में और इनमें कोई अन्तर नहीं है। मैं विश्वास दिलाता हूँ कि ये उन्हीं पत्रों की प्रतिलिपियां हैं। लेकिन ज्ञानमुनिजी तो इस बात को आगे बढ़ने ही नहीं देते थे। तब निर्भीक एवं स्पष्टवक्ता श्री जवाहरलालजी मुणोत ने ज्ञानमुनि से कहा– ज्ञानमुनिजी ! आपके दर्द तो पेट का है और बतलाते सिर का हैं। मुझे आपकी हकीकत मालूम है। पालीकाण्ड में आपका पत्र पकड़ा गया था। यह सुनते ही ज्ञानमुनिजी आपे से बाहर हो गये। और ऐसे शब्दों का प्रयोग किया जिनसे फिरोदियाजी आदि शिष्टमण्डल के सदस्यों को मानसिक ग्लानि हुई और शिष्टमण्डल का अन्यत्र जाना रोक करके सब अपने-अपने स्थान लौट गये।

यदि शिष्टमण्डल के सज्जन इस अनुचित बात का विरोध कर, व्यक्ति-विशेष की उपेक्षा कर दृढता का परिचय देते और तुष्टिकरण की नीति न अपनाई जाती तो यह निश्चित है कि श्रमण संघ की जटिल समस्याओं का समाधान होकर अनुशासन को बल मिलता। लेकिन शिष्टमंडल की इस असफलता का परिणाम यह हुआ कि ध्वनिवर्धक यन्त्र-प्रयोग तथा पालीकांड के कारण श्रमणवर्ग के परस्पर टूटे हुए संभोगों की दरार और चौडी होती गई।

श्रमण संपर्क समिति के संयोजक श्री नाहटा का स्पष्टीकरण

ध्वनिवर्धक यंत्र तथा रूपचंदजी के विषय को लेकर बहुतों के परस्पर संभोग टुट चुके थे। इस प्रकार श्रमण संघ अखण्डित नहीं रह गया था। उपाचार्यश्रीजी म. तो अपनी सांभोगिक स्थिति पहले ही स्पष्ट कर चुके थे। समय बीतता गया और श्रमण संघ में अस्तव्यस्तता बढ़ती ही गई। अनुशासन नाम की तो कोई बात ही नहीं रही।

कुछ समय बाद श्रमण सम्पर्क समिति के संयोजक श्री कानमलजी नाहटा ने एक

विस्तृत स्पष्टीकरण रूपचन्दजी नाहटा के विषय मे कॉन्फ्रेंस को प्रकाशनार्थ भेजा। वह स्पष्टीकरण तथ्यपूर्ण एवं पठनीय है। मगर कॉन्फ्रेंस ने उसे प्रकाशित नहीं किया। हम उसे यहां स्थिति को स्पष्ट करने के लिए उद्धृत करना आवश्यक समझते हैं।

श्री कानमलजी नाहटा का दिनांक 29.09.58 का रूपचन्दजी विषयक स्पष्टीकरण–

स्पष्टीकरण, शांति संदेश आदि सूचनाओं को पढ़कर महान दुःख हुआ कि हमारा पवित्र श्रमण वर्ग आज किस तरफ जा रहा है। जहां हृदय की पवित्रता व सरलता होना चाहिए वहॉं संसारी माया ही झलकती है। संघ ऐक्य की भावना कहीं भी नजर नही आती। सिवाय अपनी वात किसी तरह से जो पकड ली जाती है उसको सत्य व असत्य तरीके पर पुष्ट करना ही उद्देश्य रह जाता है। जहां न्याय, विनय सरलता का भले ही नितान्त अभाव हो वहॉं संघ ऐक्यता का रहना असम्भव ही दिखता है। साथ में यह भी कहूँ कि अगर संघ ऐक्यता नहीं रही तो सारे ऊपरी ढांचे कभी भी कायम नहीं रह सकेंगे और धीरे-धीरे समाप्त होकर ही रहेंगे। उपरोक्त स्थिति को देखकर मुझे समाज के सामने सारी परिस्थिति स्पष्ट रूप से रखने के लिए वाध्य होना पड़ा। कृपया बिना पक्षपात के वास्तविक दृष्टिकोण से विचार करेंगे तो मुझे आशा है कि हम ऐक्यता को अवश्य कायम रख सकेंगे, चाहे कोई कितनी भी भारी शक्ति हो सत्य के सामने वह कभी भी नहीं टिक सकती।

पाली प्रकरण में मिले हुए पत्रों के आधार पर अजमेर में उपाचार्यश्रीजी म. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म. ने मन्त्री मुनि श्री पन्नालालजी म. की पूर्ण सम्मति से मन्त्री मुनि श्री मिश्रीमलजी म. के समीपस्थ श्री रूपचन्दजी के संयम विघातक प्रवृत्तियों के लिए जो फैसला दिनांक 25.02.57 को दिया जिसमें श्री रूपचन्दजी साधु वेश के याग्य नही हैं फिर भी विश्वस्त भूमिका तैयार होने तक श्रमण संघीय श्रमणोचित व्यवहार न रखा जावे उस फैसले को एक प्रतिनिधिमण्डल द्वारा जिसमें मैं व श्रीमान् मोहनलालजी सा चोरडिया आदि के द्वारा पी. थाँवला में मन्त्री मुनि श्री केसरीजी के पास भेजा गया, जिसको उन्होंने सोच विचार कर मंजूर कर लिखित स्वीकृति दी।

आज गुलाबपुरा के पत्रों को देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि तथ्यों को किस तरह से मरोडा गया है। वे लिखते हैं कि 9.4.57 को मन्त्री मुनि श्री केसरीजी ने देवगढ से उपाचार्यश्रीजी के पास मूलारोहण करने की सूचना भेजी थी कि वीर जयन्ती के दिन मूलारोहण करने के भाव है। जबकि वीर जयन्ती उस पत्र की तिथि के तीन दिन बाद ही थी। परन्तु प्रतीक्षा किए विना चुपके से 12.04.57 को वोपारी गांव में मूलारोहण कर दिया ऐसा स्पष्ट करते हैं और पूछताछ करने पर भी काफी समय तक भी समाज को इसका पता न लगने दिया और मन्त्री मुनिश्री ने कहीं जाहिर नहीं किया। इससे स्पष्ट होता है कि जो

फैसला साधु भाषा में स्वीकार किया गया था उसको कार्यान्वित न कर स्वेच्छापूर्वक किया गया।

उसके बाद दिनांक 2.8.57 को उपाचार्यश्रीजी का पत्र मेरे पास आता है जिसमें फैसले को कार्यान्वित करने हेतु कई प्रश्न पूछे गये। जिसको मैं मन्त्री मुनि श्री केसरीजी के पास भेजता रहा तथा प्रत्युत्तर की भी प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु कोई भी प्रत्युत्तर नही मिला। उपाचार्यश्रीजी उत्तर जानने के लिए पत्र बराबर भेजते रहे हैं। मगर अफसोस है कि उन प्रश्नों का उत्तर मन्त्री मुनि श्री ने आज तक नहीं दिया। उस पर भी गुलाबपुरा वालों का यह लिखना है कि "उपाचार्यश्रीजी ने कुछ भी सूचना नहीं भेजी" कहां तक सत्य प्रतीत होता है ?

उपाचार्यश्रीजी ने दिनांक 2.8.57 से लगातार पत्रों द्वारा मन्त्री मुनि श्री केसरीजी से बराबर पूछते रहते है और जिसके प्रत्युत्तर के लिए मेरे द्वारा लिखित व मौखिक जोधपुर आदि से भी कई बार बराबर प्रयत्न करने पर भी प्रत्युत्तर आज तक नही मिला। फिर दिनांक 27.5.58 को एक पत्र उपाचार्यश्रीजी का प्राप्त हुआ व दिनांक 2.8.57 के लिखे गये पत्र का उत्तर मन्त्री मुनि श्री केसरीजी से प्राप्त करने के लिए सख्त ताकीदी की गई। जिस पर मैं दिनांक 26.6.58 को ब्यावर गया व जालिया स्थान पर मुनिश्री से मिला व सारी परिस्थिति पर बातचीत करने पर दिनांक 2.8.57 के प्रश्नों का उत्तर देने में मुनि श्री को सर्वथा असमर्थ पाया। तब संघ हित की दृष्टि से मैंने एक सुझाव दिया कि आप उपाचार्यश्रीजी को एक पत्र लिखें कि दिनांक 25.2.57 के फैसले को कार्यान्वित करने में जो भी त्रुटियां रही हैं उसके लिए आप जो आज्ञा प्रदान करेंगे, उसका पूरी तरह पालन किया जायेगा। मन्त्री मुनि श्री केसरीजी ने इसको स्वीकार किया।

मैं ब्यावर में दूसरी पार्टी वालों से मिला और उन्होने मेरे उपरोक्त विचारों को स्वीकार कर यह कहा कि अगर आपको विश्वास हो तो हम सब सहर्ष चातुर्मास से पूर्व सहयोग कर मुनिश्री के ब्यावर प्रवेश स्वागत में सम्मिलित होने के लिए तैयार हैं। दूसरे दिन जब मुनि श्री के ब्यावर में प्रवेश करने के पहले मैं वहाँ पहुँचा तो हमारे नये नेतागणों ने उन विचारों को कार्यान्वित नहीं होने दिया और [illegible] रखा कि [illegible] जाकर महाराज श्री से विचार कर स्वीकृति ले लें। फिर [illegible] जी [illegible] बुलाने पर गुलाबपुरा गया और महाराजश्री के सामने दिनां[illegible] दि[illegible] तक के उपाचार्यश्रीजी के पत्र प्रस्तुत किये। उस पर मंत्री [illegible] न कराने की [illegible] भाव [illegible]

मैंने अर्ज किया जब तक उपाचार्यश्रीजी के फैसले के मुताबिक दिनांक 2.8.57 के पत्र का जवाब नहीं दिया जायगा तब तक समाधान होना असंभव-सा ही दिखता है। उपरोक्त हालात से स्पष्ट प्रतीत होता है कि उपाचार्यश्रीजी म. ने अपनी तरफ से शान्ति का प्रयत्न करने में कोई कसर नहीं रखी। मगर दूसरी तरफ से सहयोग की भावना का नितान्त अभाव ही रहा। ऐसी हालत में गुलाबपुरा वालों का यह लिखना कहां तक ठीक है कि "उपाचार्यश्रीजी की ओर से कोई सूचना न उनको मिली और न यहां विराजित मन्त्रीजी म. को ही मिली। अब ब्यावर चातुर्मास होने के बाद इस प्रकार का दूषित वातावरण बनाना क्या अर्थ रखता है ?"

अब मेरा नम्र निवेदन है कि पूज्य श्रमण वर्ग को श्रावक गण सत्यता को सामने रख कर यह सोचें कि दूषित वातावरण करने का उत्तरदायित्व किस पर है ? समाज के सामने जिनकी संयम विघातक प्रवृत्तियां जैन व अजैन जनता के सामने खुले रूप में प्रकट हो चुकी हैं उनका इस तरह चुपचाप बोपारी जैसे छोटे गांव में बिना स्वीकृति के मूलारोहण करना कोई वक्त नहीं रखता। इस बीसवीं सदी में ऐसे व्यक्तियों को खुला प्रायश्चित हुए बिना कभी भी स्वीकार नहीं किया जावेगा। जहां समाज के प्रमुख मुनिवरों में एक दूसरे के प्रतिशोध की भावना हो और गलत तरीके पर सहयोग दिया जाता हो, वहां सत्यता का निर्णय होना असंभव-सा प्रतीत होता है।

मैं आचार्यश्रीजी को पूज्य भावना की दृष्टि से सर्वोच्च अधिकारी मानता हूँ। मगर कार्य संचालन का सारा भार श्रमण संघ बना जब से उपाचार्यश्रीजी संभालते रहे हैं। अजमेर से जो फैसला मुनिश्री रूपचन्दजी को दिया गया था, उस पर आचार्यश्रीजी म. ने हर्ष प्रकट किया था, ऐसी स्थिति में बिना उपाचार्यश्रीजी व श्रावक संघ के अध्यक्ष बिना उपाचार्यश्रीजी व श्रावक संघ के अध्यक्ष आदि के बिना परामर्श के जो शान्ति संदेश प्रकट किया है जिसमें "उपाचार्यश्रीजी के द्वारा प्रसारित सूचनाओं पर अमल नहीं किया जाय" क्या इससे समाज मे अशान्ति व विघटन का कारण न बनेगा ?

मैं तो ऐसा नहीं समझता कि हमारे पूजनीय आचार्यश्री ऐसा संदेश देंगे। जब समाज के दोषियों का पक्ष इस तरह प्रमुख मुनिवर करते हैं तो उनका साहस इतना बढ़ जाता है कि वह संगठन व विधि विधानो की पूर्ण रूप से अवहेलना करेंगे ही। जिससे भविष्य में समाज के कार्यो का चलाना असंभव-सा ही प्रतीत होगा। समाज के निष्पक्ष पूज्य श्रमण वर्ग और श्रावकगण इन तथ्यों को सोचें व सत्य को बिना पक्षपात के क्रियान्वित करें। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि मैं किसी भी पक्षपात को नहीं रखता और सत्य का पुजारी हूँ और उन उत्तम महात्माओं की चरण रज हूँ जो वीतराग प्ररूपित संयम को पालते हैं। आप समाज के प्रधानमंत्री हैं तथा समाज को बिना पक्षपात के सत्य का पोषण करना अपना कर्तव्य है।

फैसला साधु भाषा में स्वीकार किया गया था उसको कार्यान्वित न कर स्वेच्छापूर्वक किया गया।

उसके बाद दिनांक 2.8.57 को उपाचार्यश्रीजी का पत्र मेरे पास आता है जिसमें फैसले को कार्यान्वित करने हेतु कई प्रश्न पूछे गये। जिसको मैं मन्त्री मुनि श्री केसरीजी के पास भेजता रहा तथा प्रत्युत्तर की भी प्रतीक्षा करता रहा, किन्तु कोई भी प्रत्युत्तर नही मिला। उपाचार्यश्रीजी उत्तर जानने के लिए पत्र बराबर भेजते रहे हैं। मगर अफसोस है कि उन प्रश्नों का उत्तर मन्त्री मुनि श्री ने आज तक नहीं दिया। उस पर भी गुलाबपुरा वालों का यह लिखना है कि "उपाचार्यश्रीजी ने कुछ भी सूचना नहीं भेजी" कहां तक सत्य प्रतीत होता है ?

उपाचार्यश्रीजी ने दिनांक 2.8.57 से लगातार पत्रों द्वारा मन्त्री मुनि श्री केसरीजी से बराबर पूछते रहते हैं और जिसके प्रत्युत्तर के लिए मेरे द्वारा लिखित व मौखिक जोधपुर आदि से भी कई बार बराबर प्रयत्न करने पर भी प्रत्युत्तर आज तक नहीं मिला। फिर दिनांक 27.5.58 को एक पत्र उपाचार्यश्रीजी का प्राप्त हुआ व दिनांक 2.8.57 के लिखे गये पत्र का उत्तर मन्त्री मुनि श्री केसरीजी से प्राप्त करने के लिए सख्त ताकीदी की गई। जिस पर मैं दिनांक 26.6.58 को ब्यावर गया व जालिया स्थान पर मुनिश्री से मिला व सारी परिस्थिति पर बातचीत करने पर दिनांक 2.8.57 के प्रश्नों का उत्तर देने में मुनि श्री को सर्वथा असमर्थ पाया। तब संघ हित की दृष्टि से मैंने एक सुझाव दिया कि आप उपाचार्यश्रीजी को एक पत्र लिखें कि दिनांक 25.2.57 के फैसले को कार्यान्वित करने में जो भी त्रुटियां रही हैं उसके लिए आप जो आज्ञा प्रदान करेंगे, उसका पूरी तरह पालन किया जायेगा। मन्त्री मुनि श्री केसरीजी ने इसको स्वीकार किया।

मैं ब्यावर में दूसरी पार्टी वालों से मिला और उन्होने मेरे उपरोक्त विचारों को स्वीकार कर यह कहा कि अगर आपको विश्वास हो तो हम सब सहर्ष चातुर्मास से पूर्व सहयोग कर मुनिश्री के ब्यावर प्रवेश स्वागत में सम्मिलित होने के लिए तैयार हैं। दूसरे दिन जब मुनि श्री के ब्यावर में प्रवेश करने के पहले मैं वहाँ पहुँचा तो हमारे नये नेतागणों ने उन विचारों को कार्यान्वित नहीं होने दिया और सुझाव रखा कि आप गुलाबपुरा जाकर महाराज श्री से विचार कर स्वीकृति ले लें। फिर मैं मंत्री मुनिजी के कहने व बुलाने पर गुलाबपुरा गया और महाराजश्री के सामने दिनांक 2.8.57 से व दिनांक 27.5.58 तक के उपाचार्यश्रीजी के पत्र प्रस्तुत किये। उस पर मंत्री मुनि श्रीजी ने कोई भी स्पष्ट उत्तर नहीं दिया और समाधान कराने की आवश्यकता के भाव व्यक्त किये।

कुछ कि रूपचंदजी की समस्या को सुलझाने में श्रमण संघ के अधिकारी मुनिवरों का भी सक्रिय सहयोग नहीं मिला।

उपाचार्यश्री सच्ची साधुता के दृढ़ हिमायती थे

श्री रूपचन्दजी आदि का प्रकरण, पूज्य उपाचार्यश्रीजी म. का कोई व्यक्तिगत प्रश्न नहीं था। वे एक महान संत थे। उपाचार्यश्रीजी को श्रमणों का संगठन प्रिय था। मगर वे संगठन को साधन मानते थे, साध्य नहीं। वे जैसा तैसा संगठन नहीं चाहते थे। वे सच्ची साधुता के दृढ़ हिमायती थे। इसलिए वे उसी संगठन के हिमायती थे जहां शुद्ध संयम पालन हो सके और अनुशासन कायम रहे। उनकी दृष्टि में श्रमण संस्कृति का रक्षण और उसके आधार पर आत्मोन्नति तब ही संभव है जब चारित्र पालन में मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र भाव हो।

श्रमण संघ संचालन में भी उपाचार्यश्रीजी म. चारित्र पालन करने करवाने मे अति कठोर रहे। उनके अनुशासन में चारित्रहीनता की घटनाएं सामने आई तो उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी। भगवान महावीर के शासन में साधु का पवित्र वेश धारण कर कोई व्यक्ति असाधु का कार्य करें, संयम विघातक प्रवृत्तियां करें, यह बातें उपाचार्यश्रीजी म. को कतई सहन नही थी। उनके सामने श्री रूपचन्दजी आदि के मामले आये तो उनको विचार होने लगा था कि जिस संस्था में वे (उपाचार्यश्रीजी) हैं और जिस संस्था के संचालन का दायित्व उनके कन्धो पर है उस संस्था में साधुता के विपरीत प्रवृत्तियां हों तो उनका क्या कर्त्तव्य है ? व्यक्तियों से उनको द्वेष नहीं परन्तु अनन्त तीर्थंकरों के पवित्र और सर्वोत्तम मार्ग को अपनाकर भी यदि कोई व्यक्ति श्रमण संस्कृति की पवित्रता कायम नहीं रखे तो ऐसी बातों को सहन करना अनन्त तीर्थंकरों की अशातना करना होगा और उस संस्था के कर्त्तव्य पालन से भी एक प्रकार से च्युत होना माना जायगा।

उपाचार्यश्रीजी म. के सामने समाज का चित्र भी रहा वे सोचते थे कि आज इस युग में भी जैन मुनि वेश के प्रति जन साधारण में आदर भाव है। उसी वेश में रहकर साधुता के विपरीत कार्य करने वालों को नहीं रोका गया तो जनसाधारण का इस परम आदरणीय जैन मुनि वेश से ही विश्वास उठ जायगा और तत्फलस्वरूप लोगों की अश्रद्धा के कारण धर्म का ह्रास होकर संयम मार्ग ही धुंधला हो जायगा। इसके लिए यह आवश्यक ही नही, अनिवार्य है कि ऐसे कृत्य करने वालों के प्रति कड़क कदम उठाकर बढ़ती हुई विकृतियों को रोका जाय। इसी लक्ष से उपाचार्यश्रीजी ने अपने उत्तरदायित्व को निभाया और शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा में व्यवस्थाएं दी तथा उनको पालन करवाने में दृढ़ बने रहे।

उपरोक्त सत्य हालात जो मेरे ध्यान में थे लिखे हैं। इससे किसी को कष्ट पहुँचे तो उसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ।

भवदीय
कानमल नाहटा
श्री जैन संस्कृति रक्षक अनुशासन समिति, जोधपुर

उपाचार्यश्री आनन्द ऋषिजी का निर्भिक अभिमत

उपरोक्त स्पष्टीकरण इतना तथ्यपूर्ण और युक्तियुक्त था कि यदि समाज की स्थिति को सुधारने का लक्ष रहता तो इसके बाद भी नेतागण सही दिशा में कुछ करते मगर फिर भी उस समय कुछ नही किया गया।

उन्हीं दिनों उपाध्याय पं. रत्न श्री आनन्द ऋषिजी म. के पास जब श्रमण संघीय सारी स्थिति पहुँची तो उपाध्याय श्रीजी म. ने दिनांक 2.10.59 के पत्र द्वारा मत व्यक्त किया कि–

"मुनि रूपचन्दजी के विषय में उपाचार्यश्रीजी म. ने जो फैसला किया उसका मैंने (उपाध्याय श्रीजी म.) सम्बन्धित पत्र व्यवहार की नकलों सहित गहराई से अध्ययन किया। उस पर से मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उपाचार्य श्री जी म. ने मुनि रूपचन्दजी के लिए जो फैसला दिया और जिसे मरुधर केसरी मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. ने व मुनि रूपचन्दजी ने सहर्ष बहुमानपूर्वक स्वीकार किया। उस फैसले के अनुसार मन्त्री मनि श्री मिश्रीलालजी म. को उन्हें (रूपचन्दजी को) स्वयं नई दीक्षा देन का अधिकार प्राप्त नहीं होता, क्योकि मुनि रूपचन्दजी के फैसले का सही तौर अमल हुआ कि नहीं और संयमी जीवन की विश्वस्त भूमिका तैयार होने पर उसकी पुष्टि हुई या नहीं, यह सब कुछ देखने का काम उपाचार्यश्रीजी म. ने किसी अन्य पर रखा हो ऐसा फैसले में उल्लेख नहीं है। अतः फैसले का पालन हुआ या नहीं यह देखने का कार्य भी मेरी (उपाध्यायश्रीजी की) दृष्टि में फैसलाकर्त्ता (उपाचार्यश्रीजी म.) का ही रहता है। इससे पूर्व उपाचार्यश्रीजी से बिना आज्ञा प्राप्त किये रूपचन्दजी को नई दीक्षा दे देना उचित नहीं कहा जा सकता।

मैं (उपाध्याय श्री) यह निवेदन श्रमण संगठन व श्रमण वर्ग के चारित्र बल को उन्नत बनाने के पवित्र ध्येय को अपने सामने रखकर दे रहा हूँ।"

पाली काण्ड के निर्णय के बाद आचार्यश्रीजी म. के "शान्ति संदेश" नामक अध्यादेश के प्रसारित हो जाने पर भी उपाध्याय श्रीजी म. का उक्त मत था। इससे पाठक वृन्द अच्छी तरह समझ गये होंगे कि तथ्यों के आधार पर उपाचार्यश्रीजी म की व्यवस्था और उसके पालन करने करवाने पर बल देना एक दम न्यायसंगत था। परन्तु भवितव्यता कहें या और

कुछ कि रूपचंदजी की समस्या को सुलझाने में श्रमण संघ के अधिकारी मुनिवरों का भी सक्रिय सहयोग नहीं मिला।

उपाचार्यश्री सच्ची साधुता के दृढ़ हिमायती थे

श्री रूपचन्दजी आदि का प्रकरण, पूज्य उपाचार्यश्रीजी म. का कोई व्यक्तिगत प्रश्न नहीं था। वे एक महान संत थे। उपाचार्यश्रीजी को श्रमणो का संगठन प्रिय था। मगर वे संगठन को साधन मानते थे, साध्य नहीं। वे जैसा तैसा संगठन नहीं चाहते थे। वे सच्ची साधुता के दृढ़ हिमायती थे। इसलिए वे उसी संगठन के हिमायती थे जहां शुद्ध संयम पालन हो सके और अनुशासन कायम रहे। उनकी दृष्टि में श्रमण संस्कृति का रक्षण और उसके आधार पर आत्मोन्नति तब ही संभव है जब चारित्र पालन में मनसा, वाचा, कर्मणा पवित्र भाव हों।

श्रमण संघ संचालन में भी उपाचार्यश्रीजी म. चारित्र पालन करने करवाने में अति कठोर रहे। उनके अनुशासन में चारित्रहीनता की घटनाएं सामने आई तो उनकी आत्मा विद्रोह कर उठी। भगवान महावीर के शासन में साधु का पवित्र वेश धारण कर कोई व्यक्ति असाधु का कार्य करें, संयम विघातक प्रवृत्तियां करें, यह बातें उपाचार्यश्रीजी म. को कतई सहन नहीं थी। उनके सामने श्री रूपचन्दजी आदि के मामले आये तो उनको विचार होने लगा था कि जिस संस्था में वे (उपाचार्यश्रीजी) हैं और जिस संस्था के संचालन का दायित्व उनके कन्धो पर है उस संस्था में साधुता के विपरीत प्रवृत्तियां हों तो उनका क्या कर्त्तव्य है ? व्यक्तियों से उनको द्वेष नहीं परन्तु अनन्त तीर्थंकरों के पवित्र और सर्वोत्तम मार्ग को अपनाकर भी यदि कोई व्यक्ति श्रमण संस्कृति की पवित्रता कायम नहीं रखे तो ऐसी बातों को सहन करना अनन्त तीर्थंकरों की अशातना करना होगा और उस संस्था के कर्त्तव्य पालन से भी एक प्रकार से च्युत होना माना जायगा।

उपाचार्यश्रीजी म. के सामने समाज का चित्र भी रहा वे सोचते थे कि आज इस युग में भी जैन मुनि वेश के प्रति जन साधारण में आदर भाव है। उसी वेश में रहकर साधुता के विपरीत कार्य करने वालों को नहीं रोका गया तो जनसाधारण का इस परम आदरणीय जैन मुनि वेश से ही विश्वास उठ जायगा और तत्फलस्वरूप लोगों की अश्रद्धा के कारण धर्म का ह्रास होकर संयम मार्ग ही धुंधला हो जायगा। इसके लिए यह आवश्यक ही नहीं, अनिवार्य है कि ऐसे कृत्य करने वालों के प्रति कड़क कदम उठाकर बढती हुई विकृतियों को रोका जाय। इसी लक्ष से उपाचार्यश्रीजी ने अपने उत्तरदायित्व..को निभाया और शिथिलाचार उन्मूलन की दिशा में व्यवस्थाएं दी तथा उनको पालन करवाने में दृढ़ बने रहे।

युग के नाम पर हमारे समाज के कुछ महानुभाव आज भले ही उपाचार्यश्रीजी के कार्यों का मूल्याकन न करें परन्तु एक दिन उनको इसका अवश्य भान होगा और उस समय उनको पश्चात्ताप ही होगा कि हम सही मार्ग पर नही थे। अस्तु !.

यह भाषा समिति !

संत अपने वचनों पर अटल रहते हैं एवं भाषा समिति का पूरा ध्यान रखते हैं परन्तु दुःख है कि श्रमण संघ के बहुल भाग में इसका अभाव-सा दृष्टिगत हो रहा है।

जैन प्रकाश ता. 8.7.62 के अंक 30 के अंतिम पृष्ठ पर पंच समिति का सर्वमान्य निर्णय प्रकाशित हुआ कि– "मुनि रूपचन्दजी को संघ की साक्षी में नवीन दीक्षा का प्रायश्चित्त देने का निर्णय करती है आदि।" इस बात की पुष्टि जैन प्रकाश ता. 1.8.62 के अंक 33 के पृष्ठ 411 और 412 में हुई। इसके अलावा अन्य सूत्रों से भी 8.7.62 के निर्णय की पुष्टि हुई कि पंच समिति के संयोजक उपाध्याय श्री आनन्द ऋषिजी म. द्वारा यह निर्णय दिया गया है। उपाध्यायश्रीजी द्वारा दिया गया यह निर्णय वैधानिक है या अवैधानिक इसकी अभी चर्चा नहीं करनी है परन्तु जिस किसी भी रूप से रूपचन्दजी को नवीन दीक्षा देने का जो निर्णय दिया गया उस निर्णय के अनुसार रूपचन्दजी के साथ साक्षात् व परम्परा से सम्बन्ध रखने वाले सभी मुनि प्रायश्चित्त के भागी बनते हैं। इन कारणों से भयभीत होकर फिर एक नये निर्णय द्वारा बोपारी की तथाकथित दीक्षा को कायम रखकर चार साल और दस मास का छेद प्रायश्चित्त देकर सन्तोष कर लिया।

अतः इस सम्बन्ध में कतिपय जिज्ञासाएं स्वभाविक रूप से उठ खड़ी होती हैं :–

(1) श्री रूपचन्दजी को श्रमण संघ की कार्यवाहक समिति ने सर्वानुमति से संघ की साक्षी में नवीन दीक्षा का प्रायश्चित्त देने का निर्णय किया तो फिर इसका पालन नहीं कर मरुधर केसरीजी ने उनको छेद प्रायश्चित्त ही क्यों दिया ? क्या कार्यवाहक समिति ने उनके निर्णय पर पुनर्विचारणा की ? यदि की तो जैन प्रकाश में प्रकाशित क्यों नहीं की गयी और यदि पुनर्विचारणा नहीं हुई तो छेद प्रायश्चित्त देकर कौन से अनुशासन का पालन किया गया ?

(2) श्री रूपचन्दजी को नवीन दीक्षा या छेद प्रायश्चित्त कौनसे अपराध (दोष-सेवन) का दिया गया ? यदि पाली काण्ड का दिया गया तो उसके बाद जिन-जिन मुनिवरों ने उस समय से तब तक उनके साथ सम्बन्ध रखा, उन्होंने भी प्रायश्चित्त लेकर अपना शुद्धिकरण किया या नही।

(3) यदि पाली काण्ड का यह प्रायश्चित्त नहीं तो क्या और कोई नवीन दोष सेवन रूपचन्दजी ने किया ?

(4) जोधपुर में श्री रूपचन्दजी को छेद प्रायश्चित्त दे दिया गया फिर भी कुछ श्रमण संघीय सन्तों ने मरुधर केसरीजी और रूपचन्दजी से श्रमण संघीय संभोग नहीं रखा। सो इसमे क्या कोई रहस्य है ?

पंच समिति द्वारा रूपचन्दजी के लिए नवीन दीक्षा का प्रायश्चित्त देना, यह सिद्ध करता है कि पाली काण्ड के बाद रूपचन्दजी को जो प्रायश्चित्त दिया उसके अनुसार जब तक रूपचन्दजी की विश्वस्त भूमिका के साथ नवीन दीक्षा नहीं हो जाती, तब तक वे सांभोगिक स्थिति में रहने के लायक नहीं थे। ऐसी हालत में उनके साथ सांभोगिक सम्बन्ध रखवा कर अथवा रखकर श्रमण संघ के लिए कौनसा हित का काम किया गया ? यह पाठक स्वयं सोचें।

नामोल्लेख करना हमारी विवशता

अन्त में हम निवेदन करना चाहते हैं कि शिथिलाचार सम्बन्धी इस प्रकरण पर विस्तृत प्रकाश डालने में हमको प्रांतमंत्री श्री पन्नालालजी म. सा. तथा अन्य प्रमुख मुनिवरों के नामों का उल्लेख करना पड़ा है। प्रांत मंत्रीजी महाराज सा. वयोवृद्ध संत हैं।

हमें इस प्रकरण में उनके नाम का तथा अन्य संतों के नाम का उल्लेख करने में प्रसन्नता नही थी परन्तु श्री रूपचन्दजी के प्रकरण को जिस ढंग से चलाया गया उस पर यथास्थान प्रकाश डालने में हमें विवश होकर उनका तथा अन्य नेता लोगों के नामो का उल्लेख करना पड़ा है। अन्य कोई भावना नहीं है। फिर भी हम प्रांत मन्त्रीजी म. सा. तथा अन्य नेतागणों से क्षमाप्रार्थी हैं।

इस विश्लेषण में हमने सावधानी रखी है, फिर भी इसमें कहीं विपरीतता हो और हमको बतलाया जाय तो समझने के बाद हम उसका परिमार्जन करने के लिए सदा तैयार हैं।

श्रमण संघ का आदर्श समाप्त हुआ

शिष्टमण्डल की असफलता चतुर्विध संघ को ज्ञात हो चुकी थी और दिनोदिन श्रमण संघ की स्थिति में बिगाड़ होता जा रहा था। इसके बारे में श्रमण-संपर्क समिति के संयोजक श्री कानमलजी नाहटा ने रूपचन्दजी के विषय में एक विस्तृत स्पष्टीकरण श्री अ.भा.श्वे.स्था. जैन कॉन्फरेस को प्रकाशनार्थ भेजा। जिसमें पालीकांड से संबंधित साधु-साध्वियों के बारे में अभी तक हुई कार्रवाई एवं श्रमण संघ में आचार्य, उपाचार्य की वैधानिक स्थिति आदि का सविगत वर्णन किया गया था। लेकिन खेद है कि स्पष्टीकरण के तथ्यपूर्ण और युक्तियुक्त होने पर भी उसे प्रकाशित नही किया गया। यद्यपि श्री आनन्दऋषिजी म. ने भी इस स्थिति के ज्ञात होने पर अपना मंतव्य प्रकट करते हुए बतलाया था कि उपाचार्यश्रीजी का मुनि

रूपचन्दजी आदि के बारे में दिया गया निर्णय युक्तियुक्त एवं संयमपालना की भूमिका बना
की दृष्टि से आवश्यक है।

शिष्टमण्डल को पालीकांड की पूरी जानकारी थी तथा श्रमण-संपर्क समिति के संयोजक ने भी अन्य तथ्यों को समाज के सामने रखने का प्रयत्न किया एवं श्रमण संघ के मूर्धन्य सन्त पालीकांड के लिये उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के निर्णय से सहमत थे। फि भी व्यक्तिगत दुराग्रह के समक्ष चतुर्विध संघ के प्रमुख अपना साहस नहीं बतला सके औ अपने कर्तव्य-पालन से च्युत हुए तथा श्रमण संघ का आदर्श सदा-सदा के लिये समाप्त हे गया।

उपाचार्यश्रीजी की भावना का दिग्दर्शन

उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने सं. 2009 के सादड़ी सम्मेलन के अवसर प उपस्थित मुनिवरों के निवेदन, अनुरोध और आग्रह को लक्ष्य में लेते हुए श्रमण संघ का नेतृत्व अंगीकार किया था। उनकी इच्छा नहीं थी कि पद प्राप्त कर अपने प्रभाव का प्रदर्शन करें लेकिन यह भावना अवश्य थी कि श्रमण भगवान् महावीर की श्रमण-परम्परा अपने आदर्श, साधना और मार्ग को शुद्ध और शास्त्रीय मर्यादानुकूल बनाये। उन्होंने श्रमण संघ के महत्त्व को भलीभांति समझा था, लेकिन जैसे-तैसे श्रमण संघ को टिकाये रखने के पक्ष में नहीं थे। वे चाहते थे कि श्रमण संघ की नींव ठोस आधार पर हो और इसी लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए उन्होंने सदैव शास्त्रसम्मत आज्ञाओं का पालन करने और समस्याओं के बारे में सही दृष्टिकोण अपनाने पर भार दिया था।

शास्त्र-साक्षी के समक्ष उन्होंने न तो अपनों के प्रति पक्षपात दिखलाया और न दूसरों को प्रभावित करने की चेष्टा ही की थी। उन्हें जो सत्य, तथ्य, हित और पथ्य प्रतीत हुआ, उसके अनुसार कार्रवाई की। यही कारण है कि आज उपाचार्यश्रीजी द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के विरुद्ध किसी को बोलने की गुंजाइश नहीं है। सभी उनके कार्यों को सही मानते हैं और पूर्ण श्रद्धा-भक्ति रखते हैं।

यद्यपि श्रमण संघ के सबल समर्थक उपाचार्यश्रीजी आज हमारे समक्ष नहीं हैं। लेकिन उनके आदर्श, उनके विचार, उनके आचार-विचार की परम्परा का प्रकाश विद्यमान है और आशा है कि उनकी भावना को बलवती बनाने के लिये चतुर्विध संघ के प्रयत्न यथार्थ भूमिका पर प्रारम्भ होंगे।

❖ ❖ ❖

सांध्यवेला

स्थिरवास के लिये विभिन्न श्रीसंघों की विनती

उपाचार्यश्रीजी के जीवन की सांध्यवेला के प्रारम्भ होने के लिये समय की कोई लक्ष्मणरेखा नहीं खींची जा सकती है। लेकिन पूर्व में हुई भयंकर मूत्रकृच्छ रोग की वेदना से शारीरिक स्थिति दिन-प्रतिदिन निर्बल होती जा रही थी। अब तो शारीरिक स्थिति ऐसी हो चुकी थी कि शांत, संयमसाधना में सहायक और उत्तम जलवायु वाले किसी एक स्थान मे स्थिरवास होना उपयुक्त है।

अलवर में हुई शल्यचिकित्सा के पश्चात् उपाचार्यश्रीजी उत्तरोत्तर अशक्त होते गये, लेकिन अपने संयमित भोजन-पान और आत्मबल की प्रबलता के कारण ही दूर-दूर के क्षेत्रों में विहार करने में समर्थ हो सके थे। रोग के साथ वृद्धावस्था और वृद्धावस्था के कारण रोग का प्रबल वेग विहार-क्रिया में भी रुकावट डालने लगा था।

आपश्री मुनि-जीवन के प्रारम्भिक समय से ही जन-जन के श्रद्धेय और संयम के सजग प्रहरी बन चुके थे। मेवाड़, मारवाड़, मालवा, महाराष्ट्र, पूर्वी उत्तरप्रदेश और दिल्ली प्रान्तों को आपने अपनी उत्कृष्ट प्रतिभा से प्रभावित तो किया ही था। किन्तु साथ ही थली के रजकणों में आपने अपनी विद्वत्ता, चारित्रशुद्धि और दूरदर्शिता की अमर छाप लगाई थी। जो आज भी उन प्रदेशों के निवासियों द्वारा स्मरणीय है। यदि समूचे धार्मिक इतिहास पर दृष्टिपात किया जाये तो ऐसे महापुरुष उंगलियों पर गिनने योग्य मिलेंगे जो अपने आचार-विचार की शुद्धि एवं विद्वत्ता से जनसाधारण को प्रभावित कर सदा-सदा के लिये उनके श्रद्धेय बने हों।

उपाचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखकर अनेक क्षेत्रों के श्रीसंघों की भावना थी कि इस समय आपश्री हमारे क्षेत्र में स्थिरवास कर हमें सेवा का अवसर दें। विशेषकर रतलाम, बीकानेर, ब्यावर, उदयपुर आदि प्रमुख श्रीसंघ अपने-अपने क्षेत्र में पदार्पण करने के लिये बारम्बार विनती कर रहे थे।

अस्वस्थता-निवारणार्थ एकान्तर तप चालू रखा

यद्यपि जावरा चातुर्मास होने के पूर्व से ही रोग-स्थिति दिनोंदिन चिन्तनीय बनती जा रही थी, लेकिन सुदृढ़ मनोबल के धनी होने से आपश्री चातुर्मास के निमित्त यथासमय जावरा पधार गये थे। लेकिन चातुर्मास-काल मे रोग ने उग्र रूप धारण कर लिया।

यहां पर भी सन्तों और श्रावकों ने प्रार्थना की कि आपश्री के शरीर मे अशक्ति आ रही है, अत. यहा पर स्थायीरूप से उपचार करा लिया जाये। सुयोग्य चिकित्सकों का सुयोग भी यहां प्राप्त है। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने पुनः यही फरमाया कि मैं प्राकृतिक उपचार करना चाहता हूँ और उसमें यदि सफलता मिली तो ठीक है, अन्यथा बाद में किसी चिकित्सक की राय ले ली जाये। तब संघ ने विनती की कि आपश्री ने प्राकृतिक तौर पर तो बहुत-कुछ कर लिया है लेकिन अब हमारी बात पर भी गौर फरमाया जाये।

स्वास्थ्य-लाभ नहीं हुआ

संघ के बारम्बार निवेदन करने पर भी आपश्री ने अभी विशेष ध्यान न देकर एकान्तर तप चालू रखा। इस स्थिति में भी व्याख्यान देना, संत-सतियों को वांचनी देना, जिज्ञासुओं के प्रश्नों का उत्तर देना, आदि क्रम पूर्ववत् चलता रहता था। व्याख्यान-श्रवण आदि प्रसंगों पर स्थानीय और आगत सज्जनों की उपस्थिति आशातीत हो जाती थी। एक दिन मध्यप्रदेश के मुख्यमन्त्री डाक्टर कैलाशनाथ काटजू भी व्याख्यान में उपस्थित हुए और व्याख्यान सुना। अनन्तर मुख्यमन्त्री महोदय ने भी अपना वक्तव्य दिया और अपनी भक्ति प्रदर्शित की। जनता धार्मिक लाभ प्राप्त कर रही थी, लेकिन शारीरिक बल शिथिल होता जा रहा है। यहां तक स्थिति आ गई कि व्याख्यान भी बन्द करना पड़ा। डॉक्टर श्री गोयल एवं डाक्टर श्री दिनकर ने आचार्यश्री का निरीक्षण किया और बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा की किन्तु ज्ञात नहीं हो रहा था।

अधिक पथ्य से अत्यधिक कमजोरी

ये समाचार डॉक्टर श्री बोरदिया यक्ष्मारोग विशेषज्ञ को मालूम हुए। उस समय वे इन्दौर थे और डॉक्टर श्री मुकर्जी भी इन्दौर थे। डाक्टर श्री मुकर्जी मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध डॉक्टरों मे से हैं। इन दोनों डॉक्टरों का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध था। आप दोनों डॉक्टर भंडारी के साथ उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुए और उन्होंने परीक्षण कर उपाचार्यश्री के बुखार आने के कारण का पता लगाने की चेष्टा की। निश्चयात्मकरूप से तो पता नहीं लग पाया, फिर भी उन्होंने अपनी दृष्टि से कुछ औषधियां स्थानीय डॉक्टर गोयल आदि को बतलाई, जिनसे बुखार उतर गया और साथ ही यह भी निर्णय किया कि उपाचार्यश्री के हृदयरोग है, अतः किसी भी प्रकार का श्रम न किया जाये। उपाचार्यश्री ने जैसा कहा उससे भी अधिक पथ्य का खयाल रखा, फलतः कमजोरी में अत्यधिक वृद्धि हो गई। उठना-बैठना भी मुश्किल हो गया। बुखार भी कुछ समय के लिए कम हुआ। किन्तु औषधियों का असर हटते ही पुनः पूर्ववत् बुखार आने लगा।

हृदय की तकलीफ कतई नहीं

चातुर्मास-समाप्ति का समय आ गया था। उपाचार्यश्रीजी म.सा. विहार करने की सोचने लगे। डॉक्टरों ने दृढता के साथ मना कर दिया कि इस कमजोरी और बीमारी की स्थिति में आपका विहार होना कतई उपयुक्त नहीं है। रतलाम संघ का आग्रह था कि उपाचार्यश्रीजी रतलाम पधारकर वहां विराजें। उपाचार्यश्रीजी भी चातुर्मास-समाप्ति के पश्चात् धीरे-धीरे विहार करने की सोच रहे थे। इसी बीच सुप्रसिद्ध हृदयरोग विशेषज्ञ डॉक्टर श्री भंसाली, मुंम्बई, जो श्रीमती केशरबेन जौहरी धर्मपत्नी सेठ अमृतलालजी के सम्बन्धी थे, को उपाचार्यश्रीजी की स्वास्थ्य-स्थिति ज्ञात हुई तो वे भी जावरा आये और उन्होंने भी उपाचार्यश्रीजी को देखकरके कहा कि मैं डाक्टर के नाते दावे के साथ कहना चाहूँगा कि आपश्री के हृदय की तकलीफ कतई नहीं है। तीन साल पहले हुई हृदय की तकलीफ का भी मैं पता लगा सकता हूँ। आज तो क्या, तीन साल पहले भी आपश्री को हृदय की कोई तकलीफ नहीं थी। अतः आपको अभी जो पथ्य चल रहा है, उसकी आवश्यकता नहीं है। आप अपनी स्वाभाविक खुराक लीजिये और कुछ ताकत आने पर चलना-फिरना भी प्रारम्भ कीजिये। तदनुसार सारी प्रक्रियाएं परिवर्तित हुईं और शरीर में भी अपेक्षाकृत शक्ति का संचार हुआ, लेकिन विहार करें, ऐसी स्थिति अब भी न बन पाई। स्थानीय डाक्टरों का कहना रहा कि उपाचार्यश्री पैदल नहीं चलें। उपाचार्यश्री का कहना था कि संत गृहस्थो के कंधों पर अपने को उठाना नहीं चाहते। तब सन्तों ने कहा कि हम उठाकर ले जा सकते हैं और मजबूत कपड़े की पालकी में बिठाकर रतलाम की ओर विहार किया और रतलाम के पास ही स्टेशन पर उपाचार्यश्री विराजे। यहां के डॉक्टर श्री प्रेमसिंहजी, जो पहले मध्यप्रेदश में स्वास्थ्य विभाग के मन्त्री रह चुके थे, ने उपाचार्यश्रीजी का निरीक्षण किया। इनका भी कहना था कि उपाचार्यश्रीजी को अधिक बाधित नहीं करना चाहिए।

असत्य प्रचार साधु-जीवन के लिए कलंक

रतलाम मे पूज्यश्री धर्मदासजी म. के संप्रदाय के मुनिश्री सागरमलजी भी थे। जिनके विषय में संयमविरोधी, ब्रह्मचर्य सम्बन्धी बातें प्रामाणिक रूप से उपाचार्यश्रीजी के कानों में आ चुकी थीं। वे उपाचार्यश्रीजी की सेवा में दर्शनार्थ उपस्थित हुए और वंदना करने लगे तो उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने कहा कि आपके सम्बन्ध में कुछ संयमविघातक बातें सुनी गई हैं, अतः आलोचनापूर्वक जब तक यथायोग्य निर्णीत स्थिति न बन जाये, तब तक आपके साथ वंदन-व्यवहार आदि सांभोगिक स्थिति नही हो सकती। अतः आपके वंदन करने पर इधर के छोटे सन्तों द्वारा वंदना नहीं करने पर आपका दिल दुखित हो तो आप भी वंदना न करें।

इस पर श्री सागरमुनिजी ने कहा कि जैसा भी आप योग्य समझें, करें। मैं आपश्री के चरणों में आलोचना कर सकता हूँ। उपाचार्यश्रीजी ने कहा कि मैं नगर में आ ही रहा हूँ, कुछ स्वस्थ होते ही आलोचना सुनकर यथारीति इस विषय को निपटाने का प्रयत्न करूंगा। वहां तक परस्पर वंदन-व्यवहार न होने की स्थिति को गृहस्थों के सामने न रखें। इस बात को स्वीकार करके श्री सागरमुनिजी वापस नगर मे आ गये किन्तु वहां पहुंचकर अपने संप्रदाय के मुख्य-मुख्य श्रावकों को बुलाकर कहा कि उपाचार्यश्रीजी म. ने तो धर्मदासजी म. की सम्प्रदाय से सम्बन्ध तोड दिया है और मेरे साथ सम्बन्ध नहीं रखा आदि झूठमूठ कई बाते बनाकर सांप्रदायिकता के विष को प्रज्वलित किया। जिससे पूज्यश्री धर्मदासजी म. के सम्प्रदाय के कुछ श्रावक श्री सागरमुनिजी की सब करतूतों को जानते हुए भी इधर-उधर की बातें करने लगे। उपाचार्यश्रीजी स्टेशन पर विराजते थे और यदि वे चाहते तो आपश्रीजी की सेवा में उपस्थित होकर सब बातों का स्पष्टीकरण कर सकते थे। लेकिन ऐसा न करके उन्होंने भी श्री सागरमुनिजी की तरह साम्प्रदायिक विष फैलाना चालू रखा। यह बात जब कर्ण-परम्परा से उपाचार्यश्रीजी को ज्ञात हुई तो उन्हें आश्चर्य हुआ कि इस प्रकार का प्रचार होना साधु-जीवन के लिए कलंक ही है।

मैं तो अपने कर्तव्य का पालन करूंगा

दूसरे दिन उपाचार्यश्रीजी के रतलाम नगर में पधारने का प्रसंग था। यहां भूतपूर्व सम्प्रदाय की दृष्टि से पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म., पूज्यश्री धर्मदासजी म. और श्री दिवाकरजी म. के श्रावकों के पृथक्-पृथक् तीन स्थानक थे। जब उपाचार्यश्रीजी नगर की ओर पधार रहे थे तो पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. की भूतपूर्व संप्रदाय के श्रावकों ने अर्ज की कि आप इस सम्प्रदाय के श्रावकों के स्थानक में पधारिये। स्थानक भी विशाल है। अतः अन्यत्र न पधार कर इसी स्थानक में पधारिये। तब उपाचार्यश्रीजी म. सा. ने कहा कि श्रमण संघ का यह नियम है कि जहां वृद्ध ठाणापति संत विराजते हों वहां विश्रामार्थ जाना चाहिए। भूतपूर्व दिवाकरजी म. की संप्रदाय के श्रावको के स्थानक में वृद्ध संत विराजते हैं, अतः वहीं पर ठहरना उपयुक्त है। श्रावकों ने कहा कि आपश्रीजी तो निष्पक्ष दृष्टि से चल रहे हैं, पर उन लोगों में प्रायः करके साम्प्रदायिकता कूट-कूट कर अब भी भरी हुई है। इसलिए वहां जाना हमें नहीं जंचता है। उपाचार्यश्रीजी ने कहा श्रमण संघ में रहते श्रमण संघीय नियमों का ईमानदारी से पालन करना हरएक का कर्तव्य हो जाता है, वे लोग नहीं पालें तो वे जानें, मैं तो अपने कर्तव्य का पालन करूंगा। और उपाचार्यश्रीजी म.सा. रतलाम में विराजने के समय श्री दिवाकरजी म. के सन्तों के पास नीमचौक स्थानक में ही विराजे।

यहां के चिकित्सकों ने रोग का पता लगाने की चेष्टा भी की, लेकिन कुछ पता नही लग पाया। कभी-कभी पेशाब के साथ खून भी आने लग गया था। जब चिकित्सकों को कुछ पता नहीं लग रहा था तो इन्दौर, उदयपुर, उज्जैन आदि के श्रावक संघों ने अत्यधिक आग्रह किया कि हमारे क्षेत्र में आपश्री का पदार्पण हो। वहां पर चिकित्सकों की स्थिति अच्छी है और रोग का निदान भलीभांति हो सकेगा। यद्यपि रतलाम संघ अन्तःकरण से चाहता था कि उपाचार्यश्रीजी का रतलाम से विहार न हो। परन्तु साथ ही यह भी सोच रहा था कि उपाचार्यश्री के रोग का सही निदान होना चाहिए। रतलाम, इन्दौर, उज्जैन आदि मध्यप्रदेश के क्षेत्रों में कुछ नमीयुक्त हवा होने से इस कमजोर अवस्था में सर्दी, जुखाम आदि जल्दी-जल्दी होने की संभावना रहती थी। अतः चिकित्सकों का मंतव्य था कि जलवायु की दृष्टि से उदयपुर क्षेत्र अत्यधिक उपयुक्त रहेगा।

रतलाम से विहार : भक्त फूट-फूटकर रो पड़े

तदनुसार जब रतलाम से विहार का प्रसंग आया तब रतलामवासियों के दुःख का पार न रहा। विहारवेला का दृश्य इतना मार्मिक बन गया कि प्रव्रज्या अंगीकार करने के अवसर पर पारिवारिक जनों के रुदन-विलापजन्य करुणाजनक दृश्य को देखकर मन में ग्लानिभाव नहीं लाने वाले सन्त-मुनिराज भी द्रवीभूत हो गये। उनके हृदय भर आये। आबाल-वृद्ध जनसाधारण की आंखों से आंसू बहने लगे और कई एक तो चौधार आंसू बहते हुए फूट-फूटकर रो पड़े। फिर भी हृदय को वेग शांत नहीं हो रहा था।

सन्तों के सहारे रतलाम स्टेशन से शनैः-शनैः विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. फरीदगंज पधारे और श्री भीमराजजी नाथूलालजी सेठिया के मकान में विराजे। दूसरे दिन वहां से नामली गांव की ओर विहार हुआ तब रतलाम श्रीसंघ के सैकड़ों भाई-बहिन उपस्थित थे। नामली और उसके आगे के क्षेत्रों में आहार-पानी आदि के परीषहों को सहन करते हुए क्रम-क्रम से विहार कर पुनः जावरा पधार गये।

रोग के पुनः-पुनः झटके

जावरा में एकाध दिन विश्राम करने के अनन्तर जब वहां से विहार कर करीब तीन-चार मील आगे आये होंगे कि पेशाब होना बिल्कुल बंद हो गया। शारीरिक कमजोरी इतनी बढ़ गई कि जीवन रहने में भी शंका दिखने लगी। लेकिन चतुर्विध संघ के पुण्योदय से तात्कालिक उपचार द्वारा रोग शांत-सा हो गया। इस विकट स्थिति से देश के समस्त श्रीसंघों और उनके प्रमुख-प्रमुख कार्यकर्ताओं में चिन्ता व्याप्त हो गई। सभी की आकांक्षा थी कि उपाचार्यश्रीजी

म.सा. तत्काल किसी एक स्थान पर विराज जायें और वहां रोगोन्मूलन के लिये उपचार का प्रबन्ध किया जाये।

श्रावक संघों की भावना योग्य थी। लेकिन आत्म-साधना में ही जीवन की सफलता है– मानने वाले उपाचार्यश्रीजी म.सा. परहेज आदि से शरीर के बने रहने की स्थिति में किसी एक स्थान पर स्थिरवास करना योग्य नहीं समझते थे। अतः कुछ स्वस्थ होने पर मेवाड़ की ओर विहार चालू रखा।

सं. 2016 के वर्षावास का समय निकट आ रहा था और मालवा, मेवाड़ के अधिकांश श्रीसंघों की भावना थी कि चातुर्मास हमारे यहां हो। लेकिन शारीरिक स्थिति को देखते हुए पहले से ही किसी स्थान-विशेष के बारे में निश्चय करना शक्य नही था। इस स्थिति में विहार करते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. मंदसौर और फिर वहां से विहार कर मंदसौर के उपनगर नयापुरा में पधारे। मंदसौर श्रीसंघ की उत्कट भावना थी कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. का चातुर्मास यहां नयापुरा में हो। यहां पर प्राकृतिक चिकित्सा का अच्छा संयोग मिल सकता है और मंदसौर संघ की वर्षों की भावना भी सफल होगी। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. के स्वास्थ्य को देखते हुए कई दृष्टियों से मंदसौर उपयुक्त नहीं जान पडा। अंजमेर संघ के प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति भी वहां पर उपस्थित हो गये थे और विनती की कि अब हमारे पर मेहरवानी हो जानी चाहिए। अजमेर में सब तरह के उपचार-साधनों का संयोग है आदि। लेकिन अभी चातुर्मास की स्वीकृति देने का समय नहीं था अतः फरमाया कि मैं आगे बढ़ रहा हूँ, कहाँ की स्पर्शना बने, कह नहीं सकता। वहां से सन्तों के सहारे विहार कर नीमच सीटी, नीमच छावनी होते हुए बघाना पधारे। छोटी सादड़ी, जावद आदि सभी संघों का अपने-अपने क्षेत्र में पधारने का अत्यधिक आग्रह था। जवाद श्रीसंघ के सदस्यों ने अपनी भावना दर्शाते हुए कहा कि आप चाहे एक रात्रि विराजकर ही छोटी सादडी पधार जायें, परन्तु जावद अवश्य पधारें। आपको पधारे बहुत समय हो गया है।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने जावद संघ की प्रार्थना को ध्यान में रखकर बघाना से जावद की ओर विहार किया। पहली मंजिल पर जिस गांव में रहे, उस गांव में शाम होते समय उपाचार्यश्रीजी के बीमारी का घोर प्रकोप हो गया। यहां तक स्थिति बन गई कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने स्वयं सागारी संथारा पचख लिया और फिर सन्तों से कहा कि अब मुझे स्थायी संथारा पचखा दो। लेकिन स्थायी संथारा पचखाने जैसी स्थिति नहीं थी। नीमच से डाक्टर आ गये और उन्होंने जोर देकर कहा कि वापस नीमच की ओर पधार जायें। दूसरे दिन प्रातःकाल जावद की ओर विहार स्थगित रहा और पुनः लौटकर नीमच छावनी पधारे और डाक्टर सा. के मकान में विराजे। उपाचार्यश्रीजी म.सा. के स्वास्थ्य विपयक ये समाचार सभी

श्रीसंघों को ज्ञात हुए। रतलाम, जावरा, मंदसौर के डाक्टर तथा उदयपुर के डाक्टर शूरवीरसिंहजी, डा. न्याती व डाक्टर माथुर आदि श्रावकों के साथ उपस्थित हुए एवं और भी आस-पास के काफी श्रावक आ गये।

उदयपुर चातुर्मास की स्वीकृति

मालवा के श्रीसंघों का आग्रह था कि हम मालवा के बाहर नही जाने देंगे। नीमच छावनी श्रीसंघ का तो अपने यहां ही चातुर्मास होने के लिये विशेष आग्रह था। सभी चिकित्सकों ने गंभीरता से विचार किया और बीमारी के चिह्नों को देखते हुए रोग की ओर कुछ झुकाव हुआ। सभी डाक्टरों का यह मत हुआ कि जिस बीमारी का अनुमान लग रहा है, उसको देखते हुए उपाचार्यश्रीजी को किसी तरह उदयपुर पहुंच जाना चाहिए। चिकित्सा आदि सभी दृष्टियों से उदयपुर क्षेत्र उपयुक्त है। चातुर्मास की विनती के लिये 21 संघ आये हुए थे और चाहते थे कि आगामी चातुर्मास के लिये हमारे यहां की स्वीकृति मिल जाये। लेकिन उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव आदि दृष्टियों को ध्यान में रखकर स. 2016 के चातुर्मास के लिये उदयपुर की स्वीकृति फरमाई।

नीमच छावनी से सन्तों के सहारे विहार कर छोटी सादडी, बडी सादडी, कनोड़, भींडर आदि क्षेत्रों को स्पर्शते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. डबोक पधारे। यहां पर पुनः डा. शूरवीरसिंहजी आदि चिकित्सक आ गये और कहा कि आपश्री जल्दी उदयपुर पधार जायें, जिससे अच्छी तरह रोग का निदान हो सके।

उदयपुर पदार्पण

डबोक से विहार कर उपाचार्यश्रीजी म.सा. आयड़ पधारे और छतरियों के पास श्री गिरधारीसिंहजी के बंगले में विराजे। उस समय उपाचार्यश्रीजी म.सा. को काफी थकावट व कमजोरी आ गई। अगवानी के लिये उदयपुर, आयड़ आदि से आये हुए दर्शनार्थियों को मंगलपाठ भी नहीं सुना पाये। अन्य सन्तों ने मांगलिक सुनाया। दर्शनार्थियों के आवागमन का क्रम निरंतर चलते रहने से उपाचार्यश्रीजी को विश्राम नहीं मिल रहा था अतः आयड़ गांव में श्री केशूलालजी ताकड़िया के मकान पर एकान्त विश्राम करने योग्य स्थान होने से कोठारीजी के बंगले से वहां पधार गये।

दूसरे रोज वहां से विहार करके श्री किशनसिंहजी सरुपरिया के बंगले में, जो बडी होस्पिटल के सामने था, पधारे। वहां पर डाक्टरों ने आपके रोग का निदान करने के प्रयत्न प्रारम्भ कर दिये। डाक्टरों को पूरा निदान करने में समय लग रहा था और आपस में

मंत्रणा करके मुंबई के प्रसिद्ध डाक्टरों से भी परामर्श ले रहे थे। इधर चातुर्मास का सम निकट आ जाने से, वहां से विहार कर उदयपुर शहर में ओसवाल पंचायती नोहरे में पधार गये

उदयपुर में इससे भी पूर्व उपाचार्यश्रीजी म.सा. के कई चातुर्मास हो चुके थे, लेकि यह चातुर्मास एक गंभीर वातावरण में हो रहा था। उदयपुर संघ अपनी जिम्मेदारी के प्रति पू सजग था और उसने अपने सब प्रयत्न चातुर्मास को सफल बनाने में लगा दिये।

चातुर्मास-काल में समयानुसार धर्म-ध्यान, त्याग-तपस्याएं अच्छी हुईं। दर्शनार्थियों व भी आशातीत आगमन हुआ। लेकिन उपाचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य दिनोंदिन निर्बल होता जा रह था। शरीर इतना जर्जर हो चुका था कि अच्छे-से-अच्छा उपचार भी अब कार्यकारी सिद्ध नह हो रहा था।

भागवती दीक्षा महोत्सव

इसी चातुर्मास-समय में वैराग्यभावना से अनुप्राणित कतिपय भाई-बहिन दीक्षा अंगीका करने के लिये उत्सुक थे। लेकिन पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. की स्वास्थ्य-स्थिति के कारण दीक्षा-तिथि निश्चित नहीं की जा सकी थी। चातुर्मास के अन्तिम दिनों में स्वास्थ्य कुछ सुधा पर था। अतः कार्तिक कृष्णा 8, रविवार, दि. 25.10.59 को वैरागी श्री बाबूलालजी तथ वैरागिन बहिन श्री अनोखीबाई, बहिन श्री धीरजकुमारी की दीक्षाएं होने का निश्चय हो गया

यथासमय उपाचार्यश्रीजी म.सा. के नेतृत्व में ये दीक्षाएं बडे समारोह के साथ सम्पन्न हुईं। उदयपुर श्रीसंघ के इतिहास में एक साथ तीन दीक्षाएं होने का यह अपूर्व अवसर था। उदयपुर संघ ने इस समारोह को बहुत ही उत्साह और भव्यता के साथ आयोजित किया था। इस अवसर पर स्थानीय व बाहर से आगत हजारों भाई-बहिन उपस्थित थे।

चिकित्सकों का परामर्श और उपाचार्यश्री का विचार

चातुर्मास-काल में दीक्षा के बाद चिकित्सक अपने परीक्षण से कुछ परिणाम पर पहुंचे। उन्होंने बताया कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. के शरीर में जो कमजोरी व्याप्त है और विभिन्न रोगों के चिह्न दिखते हैं, उनकी जड़ गहरी है और वह शल्यचिकित्सा द्वारा ही निकाली जा सकती है। अतः हमारी राय है कि शल्य-चिकित्सा यथाशीघ्र करवा लेनी चाहिए, नहीं तो रोग के फैलने का अंदेशा है। यदि शीघ्र ही रोग की जड़ निकल जाती है तो फिर उसके फैलने का प्रसंग नहीं आता है।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि बिना शल्यचिकित्सा के प्राकृतिक नियमों द्वारा अथवा बेला, तेला आदि तपस्या द्वारा यदि रोग का शमन हो सकता हो तो पहले में प्राकृतिक

चिकित्सा आदि से रोगशमन करने का प्रयत्न करना चाहता हूँ। डाक्टरो ने कहा कि प्राकृतिक चिकित्सा के लिये हमारा कोई ऐतराज नहीं है, लेकिन रोग की जो स्थिति निश्चित हुई है, उसका शमन सिवाय शल्यचिकित्सा के अन्य कोई नहीं है। यह हमारा दृढ़ विचार है। जितना इसमें विलंब करेंगे तो उतना ही रोग-प्रकोप बढने की संभावना है और अधिक बढ जाने के बाद फिर शल्यचिकित्सा भी नहीं हो सकेगी एवं आपके शरीर में शान्ति भी नहीं रह सकेगी। अतः आपको इस विषय में जरा भी विलंब नहीं करना चाहिए। तब उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि रोग अधिक फैल गया है और उसका अन्तिम परिणाम मृत्यु है, तो भी भयभीत होने की जरूरत नहीं। मृत्यु का सहर्ष सत्कार करने के लिए ही हमने साधु-जीवन लिया है। एक दिन इस शरीर को छोडना ही होगा तो क्यों मैं ऑपरेशन के झंझट में पडूं ? शरीर रहना होगा तो रहेगा और जाना होगा तो समाधिमरण के साथ जायेगा। मैं तो अभी से तैयारी कर सकता हूँ।

इस पर डॉक्टरों ने कहा कि आपका साधु-जीवन लेने का खास उद्देश्य क्या है ? उपाचार्यश्रीजी ने संयमी जीवन की महत्ता का दिग्दर्शन कराते हुए फरमाया कि ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधनापूर्वक शत्रु-मित्र पर समभाव और आत्मा के चरम विकास को सन्मुख रखते हुए समाधिमरण द्वारा इस भौतिक शरीर को छोड़ना है।

डाक्टरो ने पुनः प्रश्न किया कि क्या आयुष्य के पूर्व ही शरीर को इस प्रकार छोड़ना उपयुक्त रह सकता है ? उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि आयुष्य रहते हुए समाधिभावपूर्वक ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना करते रहना चाहिए। लेकिन जब यह मालूम हो जाये कि शरीर से ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना नहीं हो सकती और अनुमान व चिकित्सकों आदि से यह मालूम हो जाये कि अब आयुष्य अधिक नहीं है तो फिर उस स्थिति मे संलेखना संथारा आदि करके पंडितमरणपूर्वक शरीर को छोड़ देना चाहिये। अतः आप अपने चिकित्साशास्त्र की दृष्टि से बताइये कि इस शरीर का टिकाव कितने समय का है ? यदि इसकी स्थिति ज्यादा न हो तो मैं अभी से आपरेशन आदि की प्रक्रिया मे न पड़कर संलेखना आदि करके अपने संयमी जीवन के उद्देश्य को सफल बनाने का प्रयास करूं। डाक्टरो ने कहा कि उपाचार्यश्री ! हम लोगों ने शरीर-विज्ञान सम्बन्धी जो-कुछ अध्ययन किया है, उसके अनुसार यदि रोग की चिकित्सा हो जाती है तो इस शरीर से आप अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि कर सकते हैं और अन्य कोई उपद्रव न हो तो वर्षों तक इस शरीर का कुछ भी बिगड़ने वाला नहीं है। यदि आपने शल्य-चिकित्सा नहीं करवाई तो शरीर में किसी-न-किसी रोग के चिह्न परिलक्षित होते रहेंगे और दिनोदिन शरीर भी कमजोर होता जायेगा तथा रोग का अत्यधिक प्रकोप होने पर न तो आप ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि कर सकेंगे और न

समाधिभाव रह सकेगा और न इस शरीर से जल्दी ही छूटने का प्रसंग आयेगा। ऐसी परिस्थिति में आप अपने संयमी जीवन के उद्देश्य को पूरा नहीं कर पायेंगे और शरीर छूटने के अन्तिम समय में न तो समाधिभाव रह सकेगा और न आप आत्मा और परमात्मा का ही चिन्तन कर पायेंगे। ऐसी दशा में आपका उद्देश्य सिद्ध नहीं होगा। लेकिन आप शल्यचिकित्सा करवा लेंगे तो आनन्दपूर्वक अपने उद्देश्य को सिद्ध करेंगे और कदाचित् शल्यचिकित्सा में आपके नियमानुसार कुछ दोष लगे तो उसकी शुद्धि कर लेना।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने फरमाया कि आपने शल्यचिकित्सा विषयक जो स्थिति समझाई वह मैंने सुन ली है, लेकिन अभी तो चातुर्मास का समय है। दूसरी बात यह है कि अन्य निर्दोष चिकित्सा से यह कार्य संभव हो तो मैं पहले उसको भी अजमा लेना चाहता हूँ। मेरी अन्तरात्मा अभी दोषयुक्त चिकित्सा पसंद नहीं कर रही है। इस पर डाक्टरों ने कहा—आप महात्मा हैं, आप निर्दोष स्थिति पसंद करते हैं, लेकिन जो स्थिति हमें ज्ञात हुई, वह आप से अर्ज की है।

अनन्तर उपाचार्यश्रीजी ने रोग-निवारण करने के लिए होम्योपैथिक उपचार चालू किया। लेकिन किडनी के अन्दर पैदा हुई गांठ पर उसका कोई असर नहीं हुआ। जब इस गांठ से निकला खून पेशाब की थैली में जाकर पेशाब के रास्ते को रोक लेता था तब आपश्री को बहुत वेदना होती थी। एक रोज ऐसी भयंकर वेदना हो गई थी कि यदि एलोपैथिक डाक्टर नहीं संभालते तो परिणाम स्पष्ट था।

चतुर्विध संघ की विनती : ऑपरेशन का निश्चय

जब ये समाचार चतुर्विध संघ को ज्ञात हुए तो दुःख का पार नहीं रहा और साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका और मुख्य चिकित्सक आदि सबने साधु-जीवन और शास्त्र की जानकारी के माध्यम से उपाचार्यश्रीजी म.सा. पर जोर डाला कि आप इस शरीर को अपना ही न समझें, यह संघ का है और चतुर्विध संघ की धरोहर को आप इस तरह से रख रहे हैं, जिससे हम सबको अत्यधिक वेदना होती है। इस पर हम सबका अधिकार है। आप अपनी आत्मा से तटस्थ हो जाइये। हम इस शरीर को ठीक करना चाहते हैं और अनुभवी चिकित्सकों की राय हमको भी ठीक लग रही है। हम ऑपरेशन कराना चाहते हैं। आपरेशन सम्बन्धी क्रिया से निवृत्त होने पर जो भी दोष की स्थिति हो, शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेना आपका अधिकार है। लेकिन ऐसी स्थिति में भी चिकित्सा नहीं कराना आपके अधिकार की बात नहीं है। शास्त्र में शल्यचिकित्सा, औषध, भेषज आदि का विधान है। उत्सर्ग और अपवाद की स्थिति भी प्रतिपादित की गई है। भगवान् महावीर ने भी केवलज्ञान होने के बाद खून की दस्तें लगने

पर शिष्य की प्रार्थना पर औषध-सेवन किया था। आप तटस्थ रहिये, किन्तु चतुर्विध संघ की भावना को ठेस मत पहुंचाइये आदि। तब चतुर्विध संघ द्वारा सामूहिक रूप में अर्ज की गई इस विनती पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. को ध्यान देना पडा।

अनन्तर उदयपुर श्रीसंघ के मन्त्री महोदय ने चिकित्सकों से परामर्श करके ऑपरेशन होने की तिथि 24.11.59 घोषित कर दी।

ऑपरेशन होने की तिथि की जानकारी मिलते ही देश के कोने-कोने से हजारों भाई-बहिनों का उदयपुर आना चालू हो गया। दिनांक 22.11.59 तक तो उदयपुर में करीब 5-6 हजार भाई-बहिनों की उपस्थिति हो चुकी थी।

ऑपरेशन दि. 24.11.59 को होने वाला था, लेकिन उसकी पूर्व-तैयारी के लिये उपाचार्यश्रीजी म.सा. का दि. 23.11.59 को अस्पताल के अन्तर्गत एक स्वतन्त्र स्थान में पदार्पण हुआ। ऑपरेशन करने वाले डाक्टरों में प्रमुख डाक्टर बी. एन शर्मा, डायरेक्टर, मेडीकल एवं पब्लिक हेल्थ विभाग, राजस्थान सरकार ने उपाचार्यश्रीजी के शरीर की आवश्यक परीक्षा की।

चतुर्विध संघ को उपाचार्यश्रीजी का सन्देश और क्षमायाचना

अस्पताल में प्रवेश करने के पूर्व उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने चतुर्विध संघ से क्षमत-क्षमापना करके उपदेश के दो शब्द फरमाये। जिनमें सर्वप्रथम अनंत सिद्धों को नमस्कार करके वीतराग भगवन्त अरिहन्तों को नमस्कार किया और आज दिन तक कोई अविनय, आसातना हुई हो तो क्षमा करने तथा भव-भव में अरिहन्त, सिद्धों की शरण होने का भावना दर्शाई गई थी।

पश्चात् चतुर्विध संघ को सम्बोधित कर आचार्यश्रीजी म.सा. ने अपने आज तक के जीवन पर थोडे-से शब्दों में प्रकाश डाला कि पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म.सा. ने संसारी अवस्था से उबार कर मुझ पर महान उपकार किया और पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. की असीम कृपा से साधना के मार्ग पर अग्रसर होने का योग मिला। इन महापुरुषों के अनन्त उपकार के लिये कृतज्ञ हूँ।

पश्चात् शास्त्रीय पाठ से समस्त जीवयोनि से क्षमायाचना करते हुए फरमाया कि संयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा आज अपवादमार्ग से गमन करने का प्रसंग आ रहा है। अतः मेरी इच्छा है कि जब तक अविधियुक्त शल्यचिकित्सा सम्बन्धी दोषों का प्रायश्चित्त न कर लूं, तब तक मुझे वंदन न करें।

इन शब्दों को सुनकर उपस्थित जनसमूह गद्‌गद हो गया। हृदय का आवेग आँखों से बहने लगा और जय-जय, धन्य-धन्य के घोष से आकाशमंडल गूंज उठा।

उपाचार्यश्रीजी द्वारा व्यक्त किये गये उद्‌गारों के पश्चात् पं. र. मुनिश्री नानालालजी म.सा. ने संक्षेप में उत्सर्ग और अपवाद मार्ग की व्याख्या करते हुए फरमाया कि संयम-रक्षणार्थ पूज्यश्री का अपवाद मार्ग में गमन करने का प्रसंग उपस्थित हो रहा है। फिर भी आपश्री ने जो अविधियुक्त शल्यचिकित्सा सम्बन्धी दोषों का प्रायश्चित्त न कर लेने तक वंदन न करने का फरमाया है, वह पूज्यश्री जैसे महापुरुषों की महानता का द्योतक है।

अनन्तर आपने प्रार्थना करते हुए उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में निवेदन किया कि मैं सदा ही आपश्री की आज्ञाओं का पालन करता रहूँगा।

श्रावक समुदाय की ओर से श्री जवाहरलालजी मुणोत ने पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में निवेदन किया कि विश्वास दिलाते हैं कि हम सब एकमत होकर आपके आदेशों का पालन करते रहेंगे और आपके जीवनकाल में ही वह समय निश्चित आयेगा जब शिथिलाचार के उन्मूलन हेतु आपश्री द्वारा किये गये प्रयत्न सफल होकर रहेंगे। समाज को आपश्री के नेतृत्व की जरूरत है और हमें विश्वास है कि ऑपरेशन सफल होगा एवं आपश्री का वरद नेतृत्व हम लोगो को बराबर प्राप्त रहेगा।

उपाचार्यश्रीजी के व्याख्यान के अविकल भाव इस प्रकार हैं–

'सर्वप्रथम मैं मेरे अन्तःकरण से अनन्त सिद्धों को नमस्कार करके उनके प्रति अपने अन्तस्थभाव व्यक्त करता हूँ कि भगवन्तो ! मैं आपके यथार्थ स्वरूप को अपनी अल्पमति के कारण पूरा समझ नहीं पाया हूँ और किसी भी प्रकार से अनन्तभवों से लेकर आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा कोई भी अविनय, आसातना हुई हो तो क्षमा प्रदान करें। मैं मनसा, वाचा, कर्मणा अन्तरात्मा द्वारा अनन्त सिद्ध भगवंतों से माफी चाहता हूँ, आपका सदाकाल शरण हो।

'इसके पश्चात् अरिहन्त भगवन्तों से अत्यन्त विनय-भावपूर्वक हार्दिक प्रार्थना है कि वीतराग भगवन्तो ! आप द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों को समझने में, प्ररूपणा में, स्पर्शना आदि में किसी भी प्रकार की त्रुटि हुई हो, एवं अनन्त तीर्थंकरों के शासन की प्रकारान्तर से भी जरा भी अविनय, आसातना, अपराध आज दिन तक मेरी आत्मा द्वारा हुआ हो, उसके लिये मैं बारम्बार मनसा, वाचा, कर्मणा क्षमा मांगता हूँ। आपका भव-भव में शरण हो।

'तदनन्तर चतुर्विध संघ से कहना चाहता हूँ कि मेरे जन्म का यह 70वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी 54 वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लेने के बाद मेरा चतुर्विध संघ से विशेष संपर्क रहा है।

'जब श्रीसंघ ने व परमप्रतापी आचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. ने स्व. पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. के सम्प्रदाय के शासन का भार मेरे कन्धों पर रख दिया था तब प्रतापी, तेजस्वी महापुरुषों के आसन पर बैठते हुए उन महापुरुषों की अपेक्षा अपनी कमजोर स्थिति का अनुभव हुआ

था। फिर भी आचार्यश्री जवाहरलालजी म. की आज्ञा को स्वीकार करना और श्रीसंघ के आग्रह पर ध्यान देना अपना कर्तव्य समझकर मैंने भार को ग्रहण किया।

'इसके पश्चात् सादड़ी में बृहत्साधु-सम्मेलन ने भी मेरी सेवा लेनी चाही। मेरी इच्छा नहीं होने पर भी श्रमणवर्ग के आग्रह को मैं टाल नही सका।

'मैंने शासनोन्नति के लिये सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ जो भी उचित जान पडा, वह आज दिन तक कर्तव्यदृष्टि को सामने रखकर किया, जिस पर मुझे आज भी सात्त्विक गौरवानुभूति है। यथोपयोग कर्तव्यदृष्टिपूर्वक आत्मसाक्षी से संघहितार्थ किये गये कार्यो से भी यदि किसी को चोट पहुंची हो तो उस सम्बन्ध में मेरा इतना ही कहना है कि मेरी भावना किसी के हृदय को चोट पहुंचाने की नहीं रही है, बल्कि वीतराग देव की पवित्र साधु-संस्कृति की शुद्धता सदा अक्षुण्ण रहे, इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं।

'श्रमण संघीय या शास्त्रीय समाचारी तथा उसके संरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनियन्त्र आदि विषयक व्यवस्थाएं यहां से दी गई और निवेदन प्रसारित किया गया। उन व्यवस्थाओ और निवेदन को मेरी अन्तरात्मा आज भी संघहितार्थ उचित मानती है। अतः पुनः चतुर्विध संघ को सावधानी दिलाता हूँ कि दी गई व्यवस्था और निवेदन को अमली रूप देता-दिलाता हुआ रत्नत्रय की अभिवृद्धि के साथ आत्मोन्नति व शासनोन्नति में किंचिदपि असावधानी एवं प्रमाद न करे और निम्न अभिप्रायों को सदा ध्यान में रखे-

1. शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशांति संभावित है। इस आधार के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की शांति संभावित नही।
2. गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग विकास और शांति के वातावरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।
3. भगवान महावीर की निर्ग्रंथ श्रमण संस्कृति को उसके लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिये सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।
4. वीतराग-प्ररूपित सिद्धान्तों का जहां हनन होता हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम से पंचमहाव्रतधारी मुनिजीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति की जाती हो, वहां किंचिदपि सहयोग न दिया जाये।
5. शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरों के प्रति शुद्ध श्रद्धा-भक्ति रहे। शिथिलाचार मुनि-जीवन के लिए तो दूर, मानव-जीवन के लिये भी कलंकस्वरूप है। अतः कभी, किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना, न बचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

6. शुद्ध आत्मीय समता के चरमविकास का लक्ष्यबिन्दु अन्तःकरण में सदा बना रहे एवं तदनुरूप सम्यक्ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता, साधना को यथाशक्ति जीवन में उतारना यानी कार्यान्वित करना।
7. श्रमणवर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वयं की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभांति पालन करे और श्रावक के लिये श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।
8. श्रावकवर्ग भी अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरों से अपने-आप को दूर रखने में तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने में अपना व समाज का हित समझे। साथ ही, अपनी भूमिका व श्रमणवर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे। जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने में तथा स्वयं अपने श्रावकोचित कर्तव्यपालन करने में भलीभांति सफल हो सके।
9. निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं, किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता में है। उच्च चारित्रनिष्ठ, त्यागी श्रमण चाहे अल्प मात्रा में भी क्यों न हों, उन्हीं से निर्गन्थ श्रमण संस्कृति का संरक्षण हो सकता है। अतः स्वगृहीत प्रतिज्ञाओं को भलीभांति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

'जहां सच्चे श्रमण नहीं पहुंच सकते हैं और श्रावकवर्ग की स्थिति भी वैसी न हो तो वहां पर वीतराग प्रभु के प्रवचन की प्रभावना के लिये एक मध्यम श्रेणी के साधकवर्ग की आवश्यकता है, ताकि वह (साधकवर्ग) इन्द्रियजनित विषयों की आसक्ति से ऊपर उठकर पूर्णरूपेण ब्रह्मचर्य के साथ-साथ अहिंसादि मर्यादाओं का पालन करता हुआ वीतराग प्रभु की शासन-सेवा मे अपनी शक्ति का सदुपयोग कर सके।

'मैं जिसको हृदय से सत्य मानता हूँ, उसका आदेश, उपदेश आदि के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य तथा न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार-विमर्श, चर्चा आदि का प्रसंग भी आया है। उस समय भी, जहां तक उपयोग रहा है, वहां तक मेरा व्यक्तियों के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी भेद रहा है पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपना मित्र समझा है और अब भी समझता हूँ।

'फिर भी मैं तो आत्मा की विशेष शुद्ध्यर्थ चतुर्विध संघ को तथा 84 लक्ष योनि-जीवराशि को—

खामेमि सव्वेजीवा, सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ति मे सव्वभूयेसु, वेरं मज्झ न केणई।।

'इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत-क्षमापना करता हुआ—

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ सदा ममात्मा विदधातु देव।।

'इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ने के लिये वीतराग प्रभु से प्रार्थना करता हूँ।

'मैंने संसार त्याग करके अनन्त आनन्दघनस्वरूप तथा स्व-पर-प्रकाशस्वरूप आत्मा के चरमविकास की अखंड ज्योति की परम साधना के लिये जो भागवती दीक्षा अंगीकार की, उस भागवती दीक्षा के मुख्य अंग सम्यक् ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप संयम हैं। संयम-आराधना में यह शरीर सहायक रूप है। एतदर्थ इसको स्वस्थ रखना भी आवश्यक है।

'जावरा चातुर्मास में मेरे शरीर में असातावेदनीय का उदय हुआ और उस असाता ने आज तक कई रूप दिखाये। व्याधि के उग्र आक्रमण को भी मैं अपनी पूरी शक्ति से शान्त रहकर सहन करने का आज दिन तक प्रयत्न करता रहा हूँ। औषधोपचार भी किया गया। मगर औषधि का कोई स्थायी परिणाम नहीं हुआ, बल्कि अब तो इस असाता का आक्रमण पहले से अधिक उग्रतापूर्वक होने लगा है। जिससे कभी-कभी संयमाराधना में बाधा हो जाती है।

'यद्यपि डाक्टर लोग कई महीने पूर्व ही इस निर्णय पर पहुंच चुके थे कि मेरे शरीर के वर्तमान रोग-निवारण का एकमात्र स्थायी उपाय शल्यचिकित्सा है, परन्तु मेरी अन्तरात्मा शल्यचिकित्सा के प्रति न पहले राजी थी और न आज है। इसलिये अन्य-अन्य औषधोपचार से ही काम लिया गया।

'मैंने डॉक्टर साहब से यह भी कहा कि यदि इस व्याधि के आक्रमण से होने वाली असमाधि तपस्या द्वारा रुक सकती हो, चाहे उसमें थोडा कष्ट भी सहन करना पड़े, तो भी मैं दृढ़तापूर्वक एकान्तर व बेला-बेला की तपस्या करते हुए एक स्थान पर रहकर अपना शेष जीवन समाधिपूर्वक भगवद्-भजन में व्यतीत करना श्रेयस्कर समझता हूँ। मगर डाक्टरों का कहना है कि यह व्याधि रही तो असमाधि होने की विशेष संभावना है, जिससे आपकी शांति-साधना में बाधा ही उपस्थित होगी।

'डाक्टर लोग अब तो दृढतापूर्वक सम्मति ही नहीं देते हैं, बल्कि आग्रहपूर्वक विनती भी

करते हैं कि यदि इस रोग का यथाशीघ्र निवारण नहीं हुआ तो यह रोग अपना उग्ररूप धारण करेगा और समय बीत जाने पर फिर शल्यचिकित्सा भी उपयोगी नहीं रहेगी।

'इधर उदयपुर आदि श्रावक संघों ने गंभीरता से विचार करने के बाद एकमत होकर तथा समाज के अन्य प्रमुख श्रावकगणों ने आग्रहपूर्वक विनती की है कि 'डाक्टरों के अभिमत को स्वीकार किया जाये। यह शरीर केवल आपका ही नहीं, संघ का भी है। स्वस्थ शरीर से ही आपकी साधना और जनहित, दोनों, संभव हैं।' साथ ही, मेरे समीपस्थ साधु एवं साध्वियों ने भी श्रावक समुदाय के अभिप्राय को दोहराते हुए साध्वोचित भाषा में रोग-निवृत्त होने की भावभरी विनती की है।

'श्रमणवर्ग एवं श्रावक समुदाय तथा विशिष्ट चिकित्सकों के अभिप्राय पर चिन्तन-मनन करने के पश्चात् संयमी जीवन के रक्षार्थ मेरा अपवाद मार्ग में गमन करने का प्रसंग आ रहा है। अब तक औषधि आदि के प्रयोग से जो भी प्रायश्चित्त लगा है। उसकी तो मैंने आलोचना कर ली है और भावी शल्यचिकित्सा में जो भी दोष लगेंगे उनका भी प्रायश्चित्त लेने के लिये मेरी आत्मा सदा तत्पर है। फिर भी मेरी यह इच्छा है कि जब तक शल्यचिकित्सा सम्बन्धी लगे दोषों का प्रायश्चित्त न कर लूं, तब तक मुझे वंदन न करें।

'वीतराग प्रभु के सिद्धान्तानुसार पंडितमरणपूर्वक आत्मसमाधि के सत्संकल्प अन्तःकरण में पूर्णरूपेण परिणत हों, यही भावना निरन्तर बनी हुई है और भविष्य में भी इसी तरह सदा बनी रहे, यही अन्तर्भावना है।'

चतुर्विध संघ के समक्ष अपनी अन्तर्भावना व्यक्त करने के अनन्तर पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. करीब 10 बजे सन्तों के सहारे डोली में बैठकर अस्पताल के स्वतन्त्र कमरे में पधार गये।

ऑपरेशन के पूर्व हजारों श्रद्धालुओं ने दर्शन किये

दि. 24.11.59 को आपरेशन होने के पूर्व डाक्टरों ने एक बार पुनः शरीर परीक्षण कर रोगाक्रान्त अंग के बारे में पूरी तरह से अपना समाधान कर लिया था।

आपरेशन तो करीब 11 बजे से प्रारम्भ होने वाला था, लेकिन प्रातःकाल ही अस्पताल के प्रांगण में हजारों श्रद्धालु बंधु एकत्रित हो चुके थे और वे एक बार पुनः गुरुदेव के दर्शन करने के इच्छुक थे। डाक्टरों ने उनकी भावना का आदर कर पूज्यश्री को पहली मंजिल की चांदनी पर ले जाने की मुनिवरों को अनुमति दे दी। जनता ने उपाचार्यश्रीजी म.सा. के दर्शन कर जय-जयकार किया और मांगलिक श्रवण कराकर पुनः उपाचार्यश्रीजी म.सा. को विश्राम के लिये वापस कक्ष में ले जाया गया।

अब सिर्फ डा. श्री बी. एन. शर्मा के आगमन की उत्सुकता से प्रतीक्षा हो रही थी। अपने कौशल की सफलता के प्रति दृढ़ आत्मविश्वास एवं उल्लास के साथ करीब 1.15 बजे डा. सा. ने अस्पताल में प्रवेश किया। उनके प्रवेश करते ही 'डा. शर्मा जिन्दाबाद' के घोष से उपस्थिति ने स्वागत किया और डा.सा. ने स्मित हास्यपूर्वक स्वागत के लिये आभार माना।

जिन दिन उपाचार्यश्रीजी का आपरेशन होने वाला था, उस दिन अन्य सभी आपरेशन बंद थे। अस्पताल के दूसरे डाक्टर एक ही जगह इकट्ठे हो गये और डॉ. शर्मा की प्रतीक्षा कर रहे थे। डॉ. शर्मा को विलम्ब से आने का कारण पूछा तो उत्तर मिला– मै प्रतिदिन एक घण्टा भगवान् का नाम लेता हूँ। आज बडे महात्माजी का ऑपरेशन है इसलिए दो घण्टा तक भगवान् का नाम लिया इसलिए देर हो गई।

ऑपरेशन की सफलता हेतु मुख्यमंत्री सुखाड़िया की शुभकामना

डा. बी.एन.शर्मा को आपरेशन की गंभीरता, गुरुतर दायित्व और अपने शल्यकौशल की शत-प्रतिशत सफलता के लिये आत्मविश्वास था और इसीलिये इस कार्य को संपन्न करने का भार लिया था। जयपुर में राजस्थान के मुख्यमन्त्री श्री मोहनलालजी सुखाड़िया से उदयपुर श्रीसंघ के प्रतिनिधियों के समक्ष हुए वार्त्तालाप के अवसर पर भी इस बात को आपने स्पष्ट कर दिया था। वार्त्तालाप उल्लासपूर्ण वातावरण में पूर्ण हुआ था और उसका उपसंहार करते हुए श्री सुखाड़ियाजी ने कहा था कि आप एक महान विभूति का ऑपरेशन करने जा रहे हैं। आप अपने कौशल में प्रवीण हैं, फिर भी सावधानी रखें। ऑपरेशन की सफलता से आपको अपरिमित आदर-संमान, यश प्राप्त होगा। आपकी सफलता के लिये मेरी हार्दिक शुभकामना है।

ऑपरेशन-कक्ष में प्रारम्भिक तैयारियां करने में योग्य व्यक्ति एवं चिकित्सक लगे हुए थे। इधर उपाचार्यश्रीजी म.सा. भी चतुर्विध संघ की व्यवस्था सम्बन्धी आदेश आदि देकर एवं शास्त्रीय पद्धति के अनुसार ऐसे समय में की जाने वाली विधि करके सागारी संथारा लेकर ऑपरेशन कक्ष में पधार गये। ऑपरेशन-कक्ष के बाहर एक-दो संतों और कतिपय प्रमुख श्रावकों के सिवाय अन्य सब अपने-अपने योग्य स्थान पर लौट आये।

आपरेशन सफल, जनता को अपार हर्ष

करीब 11 बजे ऑपरेशन प्रारम्भ हुआ। डाक्टर न्याति क्लोरोफार्म सुंघाने के साथ-साथ नाडी, हृदय की गति आदि देखने में तत्पर थे। अन्य सहयोगी डाक्टर आवश्यकतानुसार शल्य-उपकरण देने का ध्यान रख रहे थे। डा.बी.एन. शर्मा रोगग्रंथि को विलग करने में दत्तचित्त थे। निस्तब्धता के वातावरण में सिर्फ नेत्र-संकेतों से अवसरानुकूल प्रवृत्ति द्वारा

ऑपरेशन चल रहा था। क्षण-क्षण मे ऑपरेशन की स्थिति की सूचना बाहर उपस्थित जनसमूह को दी जा रही थी।

करीब दो घंटे में आपरेशन सफलता के साथ सम्पन्न हुआ। डाक्टरों को अपने श्रम के प्रति पूर्ण सन्तोष था। यथावश्यक मरहम पट्टी आदि करने के पश्चात् करीब 3 बजे डा.बी.एन. शर्मा ने प्रांगण में उपस्थित जनसमूह के समक्ष आकर आपरेशन के बारे में सभी जानकारी दी कि बायें गुर्दे में गांठ थी, अतः उसे पूरा-का पूरा निकाल दिया गया है और परीक्षण के लिये आगरा, जयपुर, बीकानेर, मुंबई आदि के अस्पतालों में गांठ के टुकड़े भेजे जायेंगे। आपरेशन सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ है और मेरा विश्वास है कि गुरुदेव शीघ्र स्वास्थ्य-लाभ प्राप्त करेंगे।

ऑपरेशन की सफलता और स्थिति को जानकर जनता को संतोष हुआ और उपाचार्यश्रीजी म.सा. के जयघोष के साथ विसर्जित हुई। इस ऑपरेशन में डा. श्री बी.एन. शर्मा के अतिरिक्त सर्वश्री डा. ऋषि, डा. माथुर, डा. गुप्ता, डा. शूरवीरसिंह, डा. मुरलीमनोहर, डा. न्याति, डा. नाहर आदि के अलावा उनके अन्य सहयोगियों का भी पूरा सहयोग रहा।

ऑपरेशन के समय शांति जाप आदि होने के अतिरिक्त अनेक व्यक्तियों द्वारा मुक्तहस्त से दान किया गया। जिससे पशुओं को घास, दाना, गरीबों को भोजन आदि दिया गया।

यद्यपि ऑपरेशन गुरुतर था किन्तु चिकित्सकों के आत्मविश्वास एवं प्रवीणता से सफल हुआ और सायंकाल तक उपाचार्यश्रीजी म.सा. की स्वास्थ्य-स्थिति में काफी सुधार दिखलाई देने लगा था।

चिकित्सकों का सम्मान

इस गुरुतर कार्य की सफलता के लिये डा. शर्मा एवं उदयपुर जनरल अस्पताल के अन्य डाक्टरों व उनके सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने एवं धन्यवाद अर्पण करने के लिये उदयपुर श्रीसंघ की ओर से दि. 25.11.59 को एक सार्वजनिक सभा का आयोजन किया गया। जिसमें समाज के अग्रणी प्रमुख-प्रमुख श्रावकों ने डा. शर्मा का आभार मानते हुए धन्यवाद दिया। अनन्तर ऑपरेशन की सफलता की स्मृति में उदयपुर की मुख्य अस्पताल मे वार्ड निर्माण हेतु समाज की ओर से 11,11,100 की थैली भेंट की गई।

डा. शर्मा ने भेंट को स्वीकार करते हुए कहा कि मैंने अपने कर्तव्य का पालन किया है। मैं तो इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँ कि आप लोगों ने एक उच्च चारित्रवान महात्मा की सेवा का अवसर मुझे दिया। महाराज केवल आपके ही नहीं हैं, वे मेरे व सबके हैं। अन्य डाक्टरों ने भी इसी प्रकार के उद्‌गार व्यक्त किये।

श्री जवाहरलालजी मुणोत ने डाक्टर साहब को धन्यवाद देते हुए कहा कि हम जस्थान के मुख्यमन्त्री श्री सुखाडिया सा. का आभार मानते हैं, जिन्होंने महाराज सा. के ापरेशन के लिये डा. शर्मा सा. जैसे सुयोग्य, सिद्धहस्त, कुशल चिकित्सक की सेवाएं पलब्ध कराने में सहर्ष स्वीकृति दी। डा. शर्मा सा. तो विशेष रूप से धन्यवाद के पात्र हैं, न्होंने ऐसे महापुरुष को संयम पालने में योग दिया, जिनका चारित्र आदर्श है और समाज ानका क्रांतिकारी नेतृत्व चाहता है।

स्वागतसभा उल्लास एवं उत्साहपूर्ण वातावरण में हुई। 'न हि कृतमुपकार साधवः स्मरन्ति' की उक्ति में ही सभा की सफलता गर्भित थी। डाक्टरों को अपने प्रति सतोष था क हम एक महापुरुष की सेवा करने का सुयोग प्राप्त कर अपने कौशल को कसौटी पर रखने में सफल हुए हैं एवं चतुर्विध संघ को विश्वास हो गया कि जनता के श्रद्धेय स्वस्थ ाकर सन्मार्ग की ओर प्रेरित करने के लिये आदेश, उपदेश और प्रेरणा देकर हमारे मार्गदर्शक नेंगे। यह उपलब्धि सदैव स्मरणीय रहेगी।

ामण संघ की सुदृढ़ता के लिये प्रयत्न

समाज के सौभाग्य से ऑपरेशन के बाद उपाचार्यश्रीजी म.सा. के स्वास्थ्य में दिनोदिन ुधार होता गया। अतः श्रमण संघ की सुदृढ़ता के लिये पुनः प्रयत्न प्रारम्भ किये जाने के बारे विचार-चर्चा शुरू हुई कि गत्यवरोध के कारणों का उन्मूलन होकर श्रमण संघ सबल बने। ुधियाना से शिष्टमण्डल के असफल होकर लौट आने के बाद यह धारणा बन चुकी थी कि ामण संघ निष्क्रिय और नाममात्र का रह गया है। उसके नियमोपनियम पालन करने के प्रति ामणवर्ग में कोई उत्साह नहीं है। साधुओं द्वारा चतुर्थव्रत के खंडन होने की घटनाओं से तो ामस्त श्रमण संगठन लड़खडा गया था।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. के दर्शनार्थ उन दिनों में जो भी विचारक सेवा में आते और श्रमण ंघीय चर्चा चलती तो उपाचार्यश्रीजी म.सा. स्वयं या आपश्री के आदेश से पं. र. मुनिश्री ानालालजी म. सा. सारे तथ्यों को उनके समक्ष रखते थे और वे संपूर्ण स्थिति को समझकर ुपाचार्यश्रीजी म.सा. द्वारा दिये गये व्यवस्था सम्बन्धी निर्णयों के प्रति अपना संतोष व्यक्त रके उन्हें संगठन के लिये आवश्यक मानते थे। लेकिन श्रमण संघ बनने के बाद भी मेरे-तेरे ी भावना साधुओं और उनके अनुयायी वर्ग में विद्यमान थी। जिससे योग्य बात को भी क्षपात और व्यमोह से उचित मानने की तैयारी नहीं थी। श्रमण संघ नामक संगठन तो छिन्न-भिन्न था ही लेकिन उसका दायित्व लेने के लिये कोई तैयार नहीं था। इन्हीं दिनों ामण संघ के गत्यवरोध के निराकरण हेतु उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म.सा. ने अपनी ाप्तसूत्री योजना श्री अ. भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस कार्यालय को भेजी।

कॉन्फरेंस के नेताओं की स्थिति समाज में बहुत ही आक्षेपयोग्य बन गई थी। अतः उन्होंने इस सप्तसूत्री योजना के आधार पर श्रमण संगठन को सबल बनाने के लिये प्रयत्न करना प्रारम्भ किया। दि. 23-24 जनवरी, 60 को कॉन्फरेंस की साधारण सभा की विशेष बैठक का आयोजन किया गया। उस अवसर पर उपाध्यायश्री की योजना एवं उससे सम्बन्धित उपाध्याय एवं मंत्री मुनियों के अभिप्राय, आचार्य-उपाचार्यश्री से एवं अन्यान्य श्रावक-प्रमुखों से हुए पत्र-व्यवहार की जानकारी उपस्थित सदस्यो को दी गई। इसके अनन्तर श्री चिमनलाल चकुभाई शाह ने अपने विचार व्यक्त करते हुए बतलाया कि समाज में सम्बन्धित प्रश्नों के बारे में दो विचारधाराएँ हैं। एक का अभिप्राय है कि आज तक कॉन्फरेंस ने श्रमणवर्ग के प्रश्नों में अपनी शक्ति लगाई है, इसी कारण कॉन्फरेंस सामाजिक कार्यों में प्रगति नहीं कर सकी। अतः कॉन्फरेंस को श्रमणवर्ग के प्रश्नों में पड़ना नहीं चाहिये, सिर्फ सामाजिक प्रवृत्तियां ही करनी चाहिये। दूसरा मत यह है कि श्रमणवर्ग में जो-जो प्रश्न उपस्थित हों, उनको तय करने में कॉन्फरेंस को रस लेकर यथाशक्य सब प्रकार से प्रयत्न करना चाहिये। कॉन्फरेस यह कार्य नहीं करेगी तो करेगा कौन ? कॉन्फरेंस ने आज तक श्रमणवर्ग के प्रश्न में रस लिया है और रस लेते रहना चाहिये।

उक्त मंतव्यों के बारे में अपना मत व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा कि श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं, जो उनके अन्तरंग जीवन को स्पर्शते हैं। जैसे कि श्रमणवर्ग की समाचारी व अन्तरंग आचारादि विषय उनके अन्तरंग जीवन को स्पर्शते हैं और इन प्रश्नों का निर्णय श्रमणवर्ग स्वयं करे, यह इच्छनीय है, परन्तु श्रमणवर्ग के कितनेक प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका प्रत्याघात श्रावकवर्ग पर भी पड़ता है। ऐसे प्रश्नों में श्रावकवर्ग को भी रस लेना चाहिये और सन्तोषप्रद निर्णय लेने के लिये शक्य प्रयत्न करना चाहिये।

जैन-शासन मे चतुर्विध संघ की रचना है और चारों ही तीर्थ परस्पर संकलित हैं, अतः एक भी वर्ग की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इसके सिवाय शास्त्रों में तो श्रावकों को अम्मापियरो माना गया है। अतः श्रमणवर्ग के प्रश्नों में श्रावको को रस लेना चाहिये और श्रावकों की प्रतिनिधि संस्था कॉन्फरेंस को सक्रिय कार्रवाई करनी चाहिये।

वर्तमान में श्रमणवर्ग में जो परिस्थिति उत्पन्न हुई है और संगठन टूटनें जैसा वातावरण दिख रहा है, उसकी जड़ में श्रमण संघ में प्रवर्तमान ऊंचनीच के भेदभाव की भावना मुख्य है। 'हमारे आचार ऊंचे, दूसरे हमसे चारित्रपालन में नीचे' ऐसी मान्यता अभी तक कतिपय श्रमणों में चलती है और उसके फलस्वरुप संगठन के दृढ होने की अपेक्षा विघटन जैसी परिस्थिति उत्पन्न हो रही है। श्रमण संघ में अभी जो विवादास्पद प्रश्न पैदा हुए हैं और अनिर्णीत हैं, इनके मूल में उक्त प्रकार का मानस ही कार्य कर रहा है।

इस द्व्यर्थक वक्तव्य का आशय स्पष्ट था कि श्रमण संघ के समक्ष समाधान के लिये उपस्थित ज्वलंत प्रश्नों और उनके बारे में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा दी गई व्यवस्था से समाज का ध्यान हटाकर उनको मुनिवरों के अपने को ऊंचा और दूसरे को नीचा मानने के रूप में प्रस्तुत करने की चेष्टा की गई। जिससे शिष्टमंडल की असफलता के प्रति व्याप्त रोष का रुख उपाचार्यश्री या मुनिवरों की ओर बदल जाये और समाज पुन. संगठन हेतु नये सिरे से प्रयत्न करने के लिये कॉन्फरेंस को आग्रह करे और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा अभी तक किये गये प्रयत्नों की ओर ध्यान ही न दिया जाये। इसी को ध्यान मे रखते हुए उक्त अवसर पर प्रस्ताव भी पारित किया गया। जिसका सारांश यह है– इस कमेटी को यह जानकर गहरा दुःख और खेद होता है कि अधिकारी मुनिराजों के मतभेद के कारण श्रमण संघ की स्थिति निर्बल हो रही है। जिससे समस्त स्थानकवासी जैन समाज को बहुत हानि हो रही है। यह जनरल कमेटी श्रमण संघ के मुनिवरो से आग्रहपूर्वक विनती करती है कि वे अपने मतभेद मिटाकर श्रमण संघ की व्यवस्था संगठित और कार्यशील बनायें। इस पुण्यकार्य में जो मुनिराज और श्रावकगण सहयोग देते हैं, उनका यह कमेटी स्वागत करती है।

आज की जनरल कमेटी श्रमण संघ के, समस्त स्थानकवासी जैनों के हित मे समाज की एकता चाहती है। इस कार्य के लिये निम्न सज्जनों की एक प्रभावक समिति नियुक्त करती है। यह समिति पुनः भगीरथ पुरुषार्थ करके स्थानकवासी जैन समाज की प्रगति के लिये श्रमण संघ में ऐक्य दृढ़ करने का प्रयत्न करे। इस समिति के प्रयत्न के बाद, समिति की रिपोर्ट के बाद, पुनः यह समग्र प्रश्न आगामी जनरल कमेटी के समक्ष विचारार्थ पेश करे।

1. श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, अहमदनगर
2. चिमनलालभाई चकुभाई शाह, मुंबई
3. श्री मोहनमलजी चोरडिया, चैन्नई
4. श्री अचलसिंहजी (कॉन्फरेंस प्रमुख), आगरा
5. श्री गिरधरभाई दफ्तरी, मुंबई
6. श्री छगनमलजी मूथा, बेंगलोर
7. श्रीमती केशरबेन जौहरी, पालनपुर

इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमण संघ में आगत निर्बलता का मुख्य कारण मुनिवरों का आपसी मतभेद है और उसे दूर करने का प्रयत्न करने के लिये समिति कार्रवाई करे। जबकि बात ऐसी नहीं थी। श्रमण संघ की अपनी व्यवस्था थी और उसके अनुसार ही श्रमण संघ के उलझे प्रश्नों के निराकरण एवं शिथिलाचार के कांडों से समाज में व्याप्त

असंतोष को दूर करने के लिये दी गई व्यवस्थाओं का पालन करवाने, दोषी व्यक्तियों का निर्मूलन कर शुद्ध वातावरण बनाने की आवश्यकता थी। इस प्रस्ताव से यह उद्देश्य सफल नहीं होने वाला था। इस प्रस्ताव से दोषी व्यक्तियों को संतुष्ट करने का विशेष लक्ष्य रखा गया था।

ऐसे प्रस्ताव तो तभी कार्यकारी हो सकते थे जब निर्दोष को दोषी घोषित किया गया हो अथवा आगमिक मर्यादाओं के प्रतिकूल किसी प्रकार का निर्णय दिया गया हो। ये दोनों बातें तो थी ही नहीं, अतः ऐसे प्रस्ताव समस्या को उलझाने वाले एवं मूल बात को दूसरे रूप में प्रस्तुत करने वाले सिद्ध होते हैं। जबकि होना यह चाहिये था कि संगठन की शुद्धता के लिये दिये गये आदेशों व व्यवस्थाओं का पालन करवाने के लिये प्रयत्न कर समाज का वातावरण दोषी व्यक्तियों को उच्छृंखल खेलने न देता। लेकिन इससे विपरीत प्रक्रिया ही अपनाई गई।

अगर इसी बात को और स्पष्ट के रूप में कहा जाये तो वस्तुस्थिति यह है कि कुछ साधुओं ने साधुवेष में रहकर ब्रह्मचर्य भंग जैसी हरकतें कीं और उनके गुट का भण्डाफोड़ हुआ, जिससे समाज को नीचा दिखाने का प्रसंग आ रहा था। उस समय कॉन्फरेस के वरिष्ठ नेताओं ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के चरणों में प्रार्थना की कि आपश्री इन सबका फैसला देकर समाज के गौरव को सबल बनाइये। तब उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने उन दोषी साधुओं के विषय में अधिकारी मुनिवरों के परामर्शपूर्वक निर्णय दिये, जिनको सभी ने स्वीकार किया। लेकिन जब अमली रूप देने का प्रसंग आया तब उन काण्डों से कुछ औरों के भी सम्बन्धित होने से राजनीतिक ढंग से कुत्सित गुटबंदियां बनाकर अमली रूप देने में गोलमाल करने लगे। यहां पर कॉन्फरेंस का कर्तव्य था कि इन सब गुटबंदियों का विरोध कर सभी को सही मार्ग दिखाना, लेकिन कॉन्फरेंस में न सक्रियता थी, न सत्य को सत्य-रूप में स्थापित करने की भावना।

इसके अतिरिक्त ध्वनि-यंत्र आदि की जटिल समस्याओं के विषय में भी उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने अधिकारी मुनिवरो के परामर्श से सुलझाने वाली स्थिति का स्पष्टीकरण कर दिया और उसको स्वीकार कर लिया। लेकिन कुछ निहित स्वार्थी तत्त्वों ने उसमें भी गड़बड़ी पैदा कर दी और पुनः समाज को अन्धकार में रखने के लिए अनेक तरह के प्रयत्न किये गये। उनका परिमार्जन करने के लिए कॉन्फरेंस के नेताओ को पत्र दिखाये। इस पर उन्होंने स्पष्टरूप से उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के चरणों में स्वीकार किया था कि यहां पर कोई त्रुटि नहीं है। आपश्री ने जो व्यवस्थाएं दी हैं, वे समाज के लिए हितावह हैं और इस प्रकार के प्रयास से ही समाज का शिथिलाचार दूर होगा। संगठन मजबूत बन

सकेगा। लेकिन जिन व्यक्तियों ने आपश्री की व्यवस्था में गड़बडी की है, उन व्यक्तियों को हम समझाने का प्रयास करना चाहते है आदि कहकर समझाने का प्रयास करने के लिए शिष्टमंडल भी बनाया गया, लेकिन शिष्टमंडल के दृढ़तापूर्वक कार्य करने की क्षमता अति-कमजोर बन गई और हतोत्साह होकर शिष्टमण्डल लौट आया। इसलिये कॉन्फरेंस के प्रति समाज का उपेक्षा भाव दिनोंदिन बढ़ता गया एवं सत्य को स्वीकार करके उसे दृढ़तापूर्वक समाज के समक्ष रखने की शक्ति कॉन्फरेंस के नेताओं में न रही।

कॉन्फरेंस की प्रतिष्ठा गिरी

कॉन्फरेंस के कुछ नेता लोगों ने किसी तरह से अपनी प्रतिष्ठा बनाने के लिए सत्य-स्थिति को तोड़-मरोड़कर ऊंच-नीच आदि के व्यर्थ वाक्यो का प्रयोग किया। जिससे सैद्धान्तिक स्थिति और वस्तुस्थिति से जनता का ध्यान हट जाये और येन-केन-प्रकारेण कॉन्फरेंस व उसके वरिष्ठ नेताओं को प्रतिष्ठा बनी रहे। लेकिन यह स्थिति समाज भलीभांति समझता था। इसलिए कॉन्फरेंस की कमेटी के प्रसंग पर भूमिका के रूप में श्री चिमनलाल चकूभाई शाह आदि के वक्तव्य एवं पारित प्रस्ताव आदि का समाज पर कोई असर नहीं हुआ, बल्कि यह कहने लगा कि अपनी गलती को छिपाने के लिए यह सब-कुछ किया जा रहा है। यही कारण है कि उसके पश्चात् कॉन्फरेंस की प्रतिष्ठा अत्यधिक गिरती गई। कॉन्फरेंस के नेता अन्त में तो प्रायः उसका अनुभव करने लगे थे, लेकिन उसको प्रगट करने में संकोच करते रहे। फिर भी समय-समय पर कुछ शब्द निकल ही जाते थे। जैसे कि कॉन्फरेंस की जनवरी, 67 में हुई जनरल कमेटी के अवसर पर कॉन्फरेंस के उपाध्यक्षश्री सौभाग्यमलजी जैन ने अपने वक्तव्य में कहा था कि–

'स्थानकवासी जैन समाज में एक दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति यह है कि अ. भा. श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेस की समाज में उतनी मान्यता आज नहीं है कि जितनी स्वर्गीय उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. के श्रमण संघ के पृथक् होने के पूर्व थी।'

कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी ने अपना प्रस्ताव पारित कर लिया था। अब उसके अनुसार कुछ-न-कुछ कार्रवाई करने के लिये दि. 16.2.60 को कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमंडल को प्रयत्न करने की सूचना देने का निश्चय किया गया। कॉन्फरेंस के अध्यक्ष ने देश के विभिन्न क्षेत्रों का प्रवास कर समाज की भावनाओं को समझने का प्रयास किया। लेकिन शिष्टमंडल ने अभी तक अपने प्रयत्न प्रारम्भ नहीं किये थे। इस प्रकार यह अव्यवस्था की कूटग्रंथि जैसी-की-तैसी बनी हुई थी और उसकी ओर देखने का किसी को समय नहीं था। यह सच है कि जब सत्य बात भी कूटनीति के चंगुल में फंस जाती है तो उसको लंबे समय तक टालते रहने के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं रह जाता है।

ऑपरेशन के पश्चात् प्रायश्चित्त सम्बन्धी घोषणा

आपरेशन के पश्चात् पूज्य उपाचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य पूर्वापेक्षा उत्तरोत्तर सुधार पर था और साध्वोचित क्रियाओं का भी यथापूर्व अप्रमत्तभाव से अनुसरण करने लगे थे तथा यथाशीघ्र आपवादिक स्थिति में लगे दोषों का प्रायश्चित्त कर लेना चाहते थे।

इस विषय में शास्त्रीय दृष्टि से प्रायश्चित्त लेने में उपाचार्यश्रीजी म.सा. स्वयं स्वतन्त्र थे। लेकिन उनकी यह महानता थी कि अपने से दीक्षा में और पद में छोटे उपाध्यायश्री आनन्दऋषिजी म. व बहुश्रुत पं. रत्न मुनिश्री समर्थमलजी म. को आलोचना भेजकर प्रायश्चित्त लेने के बारे में राय मांगी। उन्होंने 'प्रायश्चित्त लेने में आप समर्थ होते हुए भी छोटे मुनिवरों से जो राय मांग रहे हैं, यह आपकी महानता है' आदि लिखाते हुए चार मास के तप अर्थात् गुरुचौमासी की सूचना करवाई। इस गुरुचौमासी में तप और छेद दोनों आते हैं, लेकिन उनका इशारा तप की तरफ था। फिर भी आचार्यश्रीजी म.सा. ने चार मास का छेद प्रायश्चित्त लिया, जो तप की अपेक्षा अधिक भारी होता है। तदनुसार ता. 9.4.60, सं. 2017 महावीर जयन्ती के दिन संघ के समक्ष आपवादिक स्थिति में लगे दोषों का शुद्धिकरण करने के लिए दोनों मुनिवरों की राय बताते हुए छेद प्रायश्चित्त ग्रहण किया और साथ ही सेवा में रहने वाले संतों को भी यथायोग्य प्रायश्चित्त दिया।

प्रायश्चित्त लेने संबंधी घोषणा करने के पूर्व सर्वप्रथम उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने संयमी जीवन के सम्बन्ध में विशद विवेचन किया। पश्चात् प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में भाव व्यक्त किये–

'मेरे असातावेदनीय कर्म के उदय से मेरी जो-कुछ भी स्थिति बनी, वह समाज के सामने है। जिस परिस्थिति के अन्दर मुझे ऑपरेशन के लिये बाध्य होकर आपवादिक स्थिति में गमन करना पड़ा, उस प्रसंग पर आपरेशन के एक दिन पूर्व मैं अपना वक्तव्य आप जनता के समक्ष दे चुका हूँ।

'चतुर्विध संघ की शुभकामनाएं मेरे साथ थीं और सातावेदनीय का उदय हुआ, जिससे मेरा स्वास्थ्य आज पूर्वापेक्षा ठीक है और मैं आज आप लोगों के समक्ष इस अवस्था में बैठा हूँ।

'ऑपरेशन के निमित्त विवशता से कुछ क्रियाएं लगीं। फलतः संयमी मर्यादाओं में दोष लगा। ऑपरेशन के बाद डाक्टरों के अभिप्रायानुसार डीप एक्सरे भी लेना पड़ा। उस सबका शुद्धिकरण मैं जनता के सामने करना चाहता हूँ।

'आज महावीर स्वामी का जन्मदिन है। जनता की उपस्थिति भी अच्छी है। अतः मैं स्पष्ट करता हूँ कि आपवादिक हालत में ऑपरेशन सम्बन्धी जो भी दोष लगा, उसकी मैं शुद्धि करता हूँ।

'इसके लिये मैंने पं. रत्न उपाध्यायजी आनन्दऋषिजी म. से व बहुश्रुत पं. रत्न समर्थमलजी म. से अभिप्राय मंगवाये। दोनों मुनिवरों ने गुरुचौमासी के लिये अपना अभिप्राय दिया। गुरुचौमासी का मतलब उत्कृष्ट 120 उपवास अथवा चार मास का छेद होता है।

'मैं समस्त चतुर्विध संघ के सामने अपनी शुद्धि के लिये चार मास का दीक्षाछेद रूप प्रायश्चित्त लेता हूँ। तदनुसार जो संभोगी संत मेरे से मेरी निश्चित दीक्षा तिथि से एक दिन से लेकर चार महीने छोटे हैं, वे मेरे से बड़े गिने जायेंगे। पहले वे मुझे वंदन करते थे, पर अब मैं उनको वंदन करूंगा, क्योंकि अब मैं उनसे छोटा हो गया हूँ।

'मेरी इस रुग्ण-अवस्था में मेरे लिये संतों को पथ्य आदि के लिये जो भी लाना पडा उसमे कभी उनको निर्दोष नहीं मिला तो परिस्थितिवश जो कोई भी दोष लगा हो, उसके लिये मैं उनको 120 उपवास का दण्ड देता हूँ।

'इसके अतिरिक्त जिन्होंने मेरे साथ ऐसी परिस्थिति में केवल संभोग रखा, उनको मैं चार-चार उपवास का दंड देता हूँ।'

कूटनीतिक प्रयास : श्रमण संघ की स्थिति और उलझी

श्रमण संघ की स्थिति को सुधारने के प्रयत्न अवश्य चालू किये गये, लेकिन वास्तविकता को परे रखने से श्रमण संघ की स्थिति को और अधिक उलझाने के प्रयत्न किये जा रहे थे।

श्रमण संघ की अव्यवस्था के मुख्य तीन प्रश्न थे– ध्वनि-यंत्र विषयक निर्णय, 'सुत्तागमे' में होने वाले सूत्रों के पाठान्तरों को रोकने बाबत, पाली शिथिलाचार कांड के निर्णय को कार्यान्वित करना। लेकिन ये तीनो प्रश्न तो अब गौण बना दिये गये और आचार्य-उपाचार्य के मतभेदों को मुख्यता दी जा रही थी। मूल प्रश्न से ध्यान हटाने के लिये पहले से ही प्रयत्न चालू हो गये थे, जिनका संकेत दिनांक 23-24 जनवरी, 60 को मुंबई में हुई कॉन्फरेंस की विशेष साधारण सभा में पारित प्रस्ताव और उनके सम्बन्ध में प्रस्तुत किये गये विचारों से मिलता है।

इसके अनन्तर दिल्ली में 23-24 अप्रैल, 60 को कॉन्फरेंस की ओर से आयोजित वृहत् जैन कार्यकर्ता सम्मेलन व गोलमेज परिषद में व्यक्त विचारों से भी इसकी पुष्टि होती है। गोलमेज परिषद मे पारित प्रस्ताव का मुख्य अंश इस प्रकार है–

'...श्रमण संघ के प्रमुख अधिकारियों में और विशेषकर पूज्य आचार्यश्रीजी एवं पूज्य उपाचार्यश्रीजी के बीच कितनी ही बातों में मतभेद हो गया और गलतफहमी बढ़ती गई।

'श्रमण संघ की व्यवस्था को बनाये रखना तो मुनिराजों और श्रमण संघ के अधिकारियों

शिष्टमंडल का परिभ्रमण

आचार्यश्रीजी म.सा. का ऑपरेशन के पश्चात् स्वास्थ्य उत्तरोत्तर सुधरता जा रहा था थोड़ा-बहुत घूमना भी प्रारम्भ हो चुका था। सं. 2017 के चातुर्मास के लिये विभिन्न क्षेत्रों व श्रावक संघों के प्रतिनिधिमंडल विनती के लिये उपस्थित होते थे। लेकिन अभी शारीरि स्थिति इतनी अच्छी नहीं थी कि शेषकाल के लिये भी उन क्षेत्रों की ओर विहार हो सके औ उदयपुर श्रीसंघ की बार-बार साग्रह विनती होती रहती थी कि आपश्री उदयपुर विराजकर ह आत्म-साधना करते हुए हमें ज्ञान-ध्यान-तप-साधना का उपदेश देकर कृतार्थ करें। इन दोन स्थितियों को देखते हुए द्रव्य-क्षेत्र-काल-भावानुसार समय-समय पर उदयपुर के उपनगरों विहार कर पुनः नगर के मध्य स्थित पंचायती नोहरे में पदार्पण करते थे।

सं. 2017 के चातुर्मास में उदयपुर विराजना हुआ।

श्रमण संघीय स्थिति जटिल बनी हुई थी, दि. 23, 24 अप्रैल, 60 को कॉन्फरेंस की ओ से आयोजित गोलमेज परिषद के पारित प्रस्तावानुसार संवत्सरी तक श्रमण संघ के गत्यवरो का निराकरण संभव नहीं हो सका था।

संवत्सरी तक गत्यवरोध का निराकरण न होने पर उक्त प्रस्ताव में कॉन्फरेंस व जनरल कमेटी का अधिवेशन करके आवश्यक कार्रवाई करने तथा आवश्यकता पड़ने प प्रमुख मुनिराजों एवं श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा निर्णय लेने का अधिकार जनरल कमेटी व देने का संकेत किया गया था।

अतः इस संकेतानुसार यह आवश्यक हो गया था कि कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी शी बुलाई जाये और प्रमुख मुनिराजों व श्रावकों की मध्यस्थता द्वारा अन्तिम निर्णय लिया जाये इन कार्यों की पूर्ति हेतु दि. 24, 25 सितम्बर, 60 को मुंबई में कॉन्फरेंस की जनरल कमेट की बैठक करने एवं प्रमुख मुनिराजों की सेवा में श्रावकों का शिष्टमंडल भेजने का निश्चर किया गया।

शिष्टमंडल प्रधानमन्त्री श्री मदनलालजी म.सा. एवं उपाध्यायश्री अमरचन्दजी म. रं मिला और आचार्यश्री आत्मारामजी म. की सेवा में भी उपस्थित होना था, लेकिन वहां क्यों नहं गया, आज तक ज्ञात नहीं हो सका। दिनांक 19.9.60 को दिल्ली में होने वाली कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति की बैठक में शिष्टमंडल ने अपना विवरण प्रस्तुत किया।

अवैधानिक घोषणा से आश्चर्य

समिति की बैठक के बाद शिष्टमंडल पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा

में भी उपस्थित होने वाला था कि इसी बीच अन्दर-ही-अन्दर जोड-तोड़ करने वाले तत्त्वों ने दि. 15.9.60 को आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. से श्रमण संघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के अधिकार लेने सम्बन्धी निम्नलिखित अवैधानिक घोषणा प्रकाशित करवाई--

'श्रमण संघ की व्यवस्था करने हेतु सन् 1952 में जो अधिकार मैंने उपाचार्यश्रीजी म. सा. को दिये थे, वे अधिकार संघ-एकता और संघ-शांति की दृष्टि से संघ को अखंडित रखने के लिये वापस लेता हूँ और जब तक साधु-सम्मेलन न हो, तब तक श्रमण संघ के उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म, प्रांतमंत्री श्री पन्नालालजी म. तथा प्रान्तमंत्री श्री शुकलचन्दजी म.—इन पांच मुनिराजों की कार्यवाहक समिति को सौंपता हूं जो प्रायश्चित्त आदि श्रमण संघ सम्बन्धी सभी कार्य सम्पन्न करेगी। इस समिति का कार्य-संचालन उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म. करेंगे। मुझे आशा है कि श्रमण संघ के मन्त्रिमडल तथा समस्त मुनि महाराज एवं महासतीजी म. कार्यवाहक समिति को श्रमण संघीय प्रत्येक कार्य में सक्रिय सहयोग देंगे।

लुधियाना
15.9.60

रामरतनलाल
प्रेसीडेन्ट, एस. एस. जैन ब्रादरी लुधियाना

शिष्टमंडल के उदयपुर प्रस्थान करने तक भी उक्त अवैधानिक घोषणा की जानकारी चतुर्विध संघ को नहीं हो सकी थी। शिष्टमंडल दि. 19.9.60 को दिल्ली से प्रस्थान कर अजमेर, ब्यावर, गुलाबपुरा, विजयनगर होते हुए उदयपुर पूज्य उपाचार्यश्रीजी की सेवा में उपस्थित हुआ। शिष्टमंडल में सर्वश्री सेठ अचलसिंहजी आगरा, सेठ मोहनमलजी चोरड़िया चैन्नई, सरदारमलजी कांकरिया कोलकाता, खीमचंदभाई वोरा मुंबई, धीरजलालभाई तुरखिया, चिमनलाल चकूभाई मुंबई, सेठ छगनमलजी मूथा बेंगलौर, जवाहरलालजी मुणोत अमरावती और श्री नाथूलालजी सेठिया रतलाम आदि सज्जन सम्मिलित थे। शिष्टमंडल की श्रमण संघ संबंधी प्रश्नों के प्रत्येक पहलू पर चर्चा हुई। शिष्टमंडल के समक्ष श्रमण संघ की समस्याएं और उनके सम्बन्ध में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की विचारधारा स्पष्ट थी। आपश्री शास्त्रीय मर्यादाओं और साध्वाचार के विपरीत अथवा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव की सुविधा के नाम पर ऐसा कोई भी समाधान नहीं चाहते थे, जिससे श्रमण-संस्था में अनाचार, स्वैराचार को प्रश्रय मिले। उनकी एक ही भावना थी कि साधु साधु रहे, उसकी निष्ठा साधुता के प्रति हो और चतुर्विध संघ में अकर्मण्यता को प्रसार का मौका न मिले।

शिष्टमंडल के समक्ष इन्हीं सब बातों को स्पष्ट कर दिया गया था। शिष्टमंडल

उपाचार्यश्री के विचारों से सहमत था। शिष्टमंडल के सदस्यों ने आपस में भी चर्चा-वार्त्ता की और निश्चय किया कि आगामी दि. 24, 25 सितम्बर, 60 को मुंबई में होने वाली कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी की बैठक में पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. के विचारों के अनुकूल कार्रवाई करने का निर्णय किया जाये।

श्रमण संघीय गत्यवरोध के निराकरण के लिये आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध में उदयपुर श्रीसंघ के सदस्यों ने जब शिष्टमंडल के प्रमुख सदस्य श्री चिमनलाल चकूभाई शाह से जानकारी चाही तो उनकी भाव-भंगिमा से प्रतीत हुआ कि कम-से-कम घोषणा के सम्बन्ध में उनको कुछ भी जानकारी नहीं है और न ऐसा करने में उनका हाथ है। शिष्टमंडल के रुख से ऐसा दिखा कि मुंबई पहुंचते ही उक्त घोषणा को वापस लिवाने का प्रयत्न करेगा। उदयपुर से शिष्टमंडल रतलाम होते हुए मुंबई रवाना हो गया।

जनरल कमेटी का अवैधानिक प्रस्ताव

दि. 24, 25 सितम्बर, 60 को कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी में श्रमण संघ के गत्यवरोध के बारे में चर्चा हुई। किसी ने कहा कि इसके बारे में अपने माने हुए दायरे की दृष्टि से विचार न कर समस्त समाज व श्रमण संघ को दृष्टि में रखकर विचार करें, तो किसी ने कहा कि पुराना भूल जायें और फिर नई कार्रवाई प्रारम्भ की जाये तो यह प्रश्न बड़ी सरलता से सुलझ सकता है। इन विचारों का साधारण आशय यह हुआ कि अभी तक श्रमण संघ के संगठन को निर्बल बनाने वाले प्रश्नों पर किसी प्रकार का विचार न किया जाये और संगठन की आड़ में चलने वाले पापाचार पर पर्दा डाल दिया जाये। संगठन के नाम पर हुई अवैधानिक घोषणा भी बरकरार रहे और उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. से प्रार्थना की जाये कि वे पूर्ववत् श्रमण संघ का संचालन करते रहें। लेकिन उक्त विचारों के सम्बन्ध में यह विचारणीय है कि क्या अवैधानिक कार्रवाई के साथ वैधानिक परम्परा का सुमेल बन सकता है ? क्या अवैधानिकता से उत्पन्न उच्छृंखल स्थिति में वैधानिक नियमों का पालन होता रहेगा ?

इस चर्चा से एक और तथ्य सामने आया कि शिष्टमंडल का लुधियाना न जाना एक नाटक ही था तथा अवैधानिक घोषणा करवाने में कॉन्फरेंस के अग्रणी सज्जनों का हाथ अवश्य था। अन्यथा जो श्री चिमनलाल चकुभाई शाह उदयपरु में कह गये थे कि घोषणा को वापस लिवाने के लिये प्रयत्न करेंगे, वे ही जनरल कमेटी के समक्ष भ्रमात्मक प्रस्ताव न रखते, जिसमें अवैधानिक घोषणा के साथ संवैधानिक न्याय-नीति युक्त आदेशों को भी वापस लेने का उल्लेख किया गया था। तत्सम्बन्धी अंश इस प्रकार है–

'वातावरण की शुद्धि और भविष्य में कार्य की सरलता के लिय पूज्य आचार्यश्री व पूज्य उपाचार्यश्री की तरफ से भीनासर सम्मेलन के बाद जो परस्पर निवेदन प्रगट हुए हैं, जिनमें पूज्य आचार्यश्री की तरफ से ता. 15 सितम्बर, 60 के रोज हुई घोषणा का तथा पूज्य उपाचार्यश्री की तरफ से उनके 22.9.60 को दिये गये उत्तर का समावेश होता है– वे सब तुरन्त ही वापस लेने की यह जनरल कमेटी पूज्य आचार्यश्री व पूज्य उपाचार्यश्रीजी को आग्रहपूर्वक विनती करती है।'

इस अंश से स्पष्ट हो जाता है कि जनरल कमेटी ने श्रमण संघ के गत्यवरोध के निराकरण में वास्तविकता को छिपाकर परिस्थिति को बिगाड़ने में और अधिक योग दिया। इसी कारण सदस्यों द्वारा प्रस्ताव का विरोध हुआ और सिर्फ बहुमत के बल पर पारित कराकर श्रमण संघ की खाई और चौड़ी कर दी।

घोषणा की अवैधानिकता के सम्बन्ध में प्रकाश

श्रमण संघ के गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि. 15.9.60 को आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा प्रसारित घोषणा क्या श्रमण संघ के विधान के अनुकूल थी या नहीं और क्या आचार्यश्री आत्मारामजी म. ऐसी घोषणा करने के अधिकारी भी थे या नहीं ? एतद्विषयक कुछ तथ्यों पर प्रकाश डालते हैं।

सादडी में श्री वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ की स्थापना विभिन्न संप्रदायों के एकीकरण, पारस्परिक प्रेम और ऐक्यवृद्धि करने एवं संयममार्ग में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के उद्देश्य से हुई थी। उस अवसर पर श्रमणवर्ग में वृद्ध और जैनागमों के ज्ञाता होने से पूज्यश्री आत्मारामजी म. के प्रति श्रद्धा और सम्मान प्रदर्शन हेतु श्रमण संघ ने उनको सिर्फ सम्मान के लिये आचार्य नियुक्त किया था। साथ ही उनकी शारीरिक अक्षमता को दृष्टि मे रखते हुए पूज्यश्री गणेशलालजी म. को आचार्य के समस्त अधिकारों के साथ उपाचार्य नियुक्त किया और श्रमण संघ के संचालन का उत्तरदायित्व उन्हें सौंपा था। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. की उक्त घोषणा श्रमण संघ में प्रारम्भ से विद्यमान उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की वैधानिक स्थिति को प्रभावित करने में निष्फल एवं निष्क्रिय थी।

इसी बात की पुष्टि श्रमण संघ के विधान की धाराओं और कार्रवाई तथा उसमें भाग लेने वाले संतों के विचारो व श्रावकों की ओर से उपस्थित श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया के मंतव्य से भी होती है।

श्रमण संघ के विधान की धारा 1, 2 इस प्रकार हैं-

1-इस श्रमण संघ के एक आचार्य रहेंगे, जिनकी नेश्राय में संघ के सब साधु -साध्वी रहेंगे।

2-आचार्यश्री अतिवृद्ध हों अथवा कार्य करने में अक्षम हों तो मंत्रिमंडल 'उपाचार्य' नियुक्त करेंगे और उपाचार्यजी आचार्यजी के सब अधिकार सम्हालेंगे।

आचार्य आत्मारामजी म. की घोषणा मूल्यहीन

पूज्य आत्मारामजी म. को सम्मान की दृष्टि से आचार्य नियुक्त अवश्य किया गया था किन्तु उनके अक्षम होने से संघ-संचालन के लिये सभी अधिकारों के साथ उसी समय उपाचार्य पद (वस्तुतः जिसमें शाब्दिक भेद है, किन्तु आचार्य पद के पूर्ण अधिकार थे) पर पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. को प्रतिष्ठित कर प्रस्ताव सं. 21 के अनुसार उपाचार्य पद की चद्दर सं. 2009, वैशाख शुक्ला 13, बुधवार को दिन के 11 बजे सादड़ी में पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. को ओढाई गई थी तथा उपस्थित मुनियों ने आपश्री के चरणो मे प्रतिज्ञापत्र भेंट किये थे। इससे सिद्ध हो जाता है कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. को श्रमण संघ के संचालन की व्यवस्था अथवा उसके सम्बन्ध में हस्तक्षेप करने के अधिकार नहीं थे। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. की इस अवैधानिक घोषणा का न तो कोई मूल्य था और न उसको करने के वे अधिकारी ही सिद्ध होते हैं।

विधान की धाराओं और उनकी पालना के उल्लेख के पश्चात् कुछ और तथ्य उपस्थित किये जा रहे हैं, जिनसे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि आचार्यश्री आत्मारामजी म. सम्मान की दृष्टि से ही आचार्य थे और संघ-संचालन की सत्ता उनमें निहित नहीं थी।

साधु-सम्मेलन के पश्चात् पंजाब से आचार्य, उपाचार्य के पद व अधिकारों के सम्बन्ध में कुतर्क उठाये गये, तब कॉन्फरेंस के तत्कालीन अध्यक्ष श्री चंपालालजी बांठिया ने श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया, जो श्रावकों की ओर से साधु-सम्मेलन की कार्रवाई में भाग लेते थे, को पत्र लिखकर इस सम्बन्ध में पूछा। प्रत्युत्तर में श्री फिरोदियाजी ने अहमदनगर से दि. 19.6.52 को पत्र द्वारा स्पष्टीकरण किया। पत्र का सम्बद्ध अंश इस प्रकार है–

उपाचार्य-अधिकार के सम्बन्ध में फिरोदियाजी के विचार

'मुख्य प्रश्न यह है कि जब यह सब बना तब बनाने वाले का हेतु क्या था ? प्रस्ताव नं. 18 के अनुसार आचार्य और उपाचार्य इन दोनों की नियुक्ति मुनिराजों ने की है।.....पंजाबसंघ के मंत्री श्री कृष्णकांतजी ने जो अर्थ निकाला है कि उपाचार्य का पद यों ही है. .....इससे मैं सहमत नहीं हो सकता। आचार्यश्री आत्मारामजी महाराज, अभी मौजूदा जो मुनिराज हैं उनमे वे, वृद्ध, अनुभवी और ज्ञानी हैं। इसी सबब से उनकी आचार्य के पद वास्ते पसंदगी हुई। परन्तु यह पसन्दगी करने के वक्त पर ही सभी मुनिराजों ने यह सोचा कि

उनकी शारीरिक और मानसिक स्थिति को देखते हुए उनसे यह काम का बोझ उठाया नहीं जा सकेगा। उसके लिये साथ-साथ उपाचार्य की नियुक्ति की। यह करने का कारण ही बंधारण कलम 2 में दिया हुआ है। यह उनका मंतव्य न होता तो साथ-साथ ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति करने की जरूरत न थी। आचार्यश्री फिलहाल (वर्तमान समय में) अपना काम सम्हालने योग्य होते तो उपाचार्य की नियुक्ति तावडतोड़ करने की जरूरत न थी।......परन्तु यहां तो वर्तमान परिस्थिति में तावड़तोड ही आचार्य की नियुक्ति के साथ उपाचार्य नियुक्त हुए, इससे आचार्यश्री को सम्मान का स्थान दिया गया। परन्तु कार्य करने का सब अधिकार उपाचार्यश्री को ही है, यह बात पृष्ठ 56, कलम 2 में स्पष्ट है। पृष्ठ 60 पर जो बात लिखी गई है वह वर्तमान समय में लागू न होते हुए भविष्य में कोई आचार्य वृद्धावस्था के कारण अथवा अन्य कारणों के सबब से आचार्य का पूरा काम सम्हालने में स्वतः को समर्थ न समझे तो वे उपाचार्य की नियुक्ति मंत्रिमंडल की सलाह से कराकर कुछ अधिकार और कार्यक्षेत्र उनको दे सकते हैं।'

इस वस्तुस्थिति के स्पष्टीकरण से वर्तमान और भविष्य की दोनों दृष्टियां स्पष्ट हो जाती हैं एवं वर्तमान में आचार्यश्री द्वारा अधिकार देने-लेने का प्रश्न ही नहीं उठता। इसी सम्बन्ध में मंत्री मुनिश्री पुष्करमुनिजी के विचार भी प्रस्तुत कर रहे हैं। जो उन्होंने कॉन्फरेंस को दिये गये उत्तर में व्यक्त किये थे–

'बंधारण की द्वितीय धारा से यह स्पष्ट हो जाता है कि उपाचार्यश्री की नियुक्ति आचार्यश्री की अति वृद्धावस्था व कार्य करने की अक्षमता से हुई है। यदि आचार्यश्री कार्य करने में सक्षम होते तो प्रथम धारा के अनुसार उपाचार्यश्री की नियुक्ति नहीं हो सकती थी। इस दृष्टि से कार्यवाहक तरीके उपाचार्यश्री ही माने जा सकते हैं, जैसे राजस्थान के महाराजप्रमुख व राजप्रमुख। उपाचार्य के कर्तव्य और अधिकार की धारा साररहित है।'

इस स्पष्टीकरण से भी यही सिद्ध होता है कि आचार्यश्री का पद सम्मान की दृष्टि से है और उपाचार्यश्री ही श्रमण संघ के संचालन के लिये अधिकारसम्पन्न हैं। अतः आचार्यश्री की अवैधानिक घोषणा का कोई मूल्य नहीं रह जाता है और न वैसा करने का उन्हें कोई अधिकार ही था।

आचार्यश्री के विचारों में उपाचार्यश्री के अधिकार

अब स्वयं पूज्य आचार्यश्री आत्मारामजी म. के विचार भी उपस्थित करते हैं। जिनसे स्पष्ट हो जायेगा कि वे स्वयं अपने को श्रमण संघ के संचालन में योग देने वाला नहीं मानते

थे। वे श्रमण संघ का निर्माण हो जाने के निकटवर्ती काल में यह मानते थे कि श्रमण संघ के संचालन के पूर्ण अधिकार विधान की दृष्टि से उपाचार्यश्री को ही हैं। एक बार कॉन्फरेंस का प्रतिनिधिमंडल जब लुधियाना गया था तब आचार्यश्री ने प्रतिनिधिमंडल को फरमाया था कि उपाचार्यश्री को सब अधिकार प्राप्त हैं। *अतः प्राप्त फरियादों पर यथार्थ प्रकार से यथाशीघ्र निर्णय करना चाहिये और करेंगे।* उसी समय दूसरे प्रश्न के उत्तर में *आचार्यश्री ने फरमाया* था कि उपाचार्यश्री को इस पर अधिक विचारने का है, क्योंकि श्रमण संघ का सक्रिय संचालन आप ही के ऊपर है।

श्रमण संघ के संवैधानिक अधिकारी उपाचार्यश्री थे

उक्त उद्धरण यह स्पष्ट संकेत कर रहे हैं कि श्रावकवर्ग, साधुवृन्द और स्वयं पूज्य आत्मारामजी म. मानते हैं कि श्रमण संघ-संचालन के पूरे अधिकार विधानानुसार पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को प्राप्त हैं। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने-देने सम्बन्धी ता. 15.9.60 की घोषणा साररहित है, अवैधानिक है और श्रमण संघ की व्यवस्था को खंडित करने वाली है।

अब श्रमण संघीय विधान की सम्बन्धित धाराओं के बारे में भी चर्चा कर देना चाहते हैं। श्रमण संघीय विधान की धारा 2 में स्पष्ट उल्लेख है कि 'आचार्यश्री अतिवृद्ध हों अथवा *कार्य करने में अक्षम हों तो मन्त्रिमंडल उपाचार्य नियुक्त करेगा और उपाचार्यश्री आचार्यश्री के सब* अधिकार संभालेंगे।' इस धारा में 'तो' और 'सब अधिकार' वाले शब्द बहुत महत्त्व के हैं। आचार्यश्री कार्य करने में अक्षम हों तो ही उपाचार्य की नियुक्ति का विधान किया गया है। सादड़ी साधु-सम्मेलन ने आचार्यश्री की नियुक्ति के साथ-साथ ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति की है। इसका स्पष्ट अर्थ ही यह है कि सम्मेलन मे एकत्रित सभी प्रतिनिधि मुनिराजों ने आचार्यश्री को कार्य करने में अक्षम मान लिया था और इसीलिये सर्वानुमति से पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. को उपाचार्य पद पर विभूषित किया। यदि प्रतिनिधि मुनिवरों का ऐसा *मंतव्य न होता तो उसी समय ही उपाचार्यश्री की नियुक्ति की जरूरत न थी।* इसलिये पूज्य गणेशलालजी म.सा. जब उपाचार्य पद पर विभूषित किये गये तो विधानानुसार श्रमण संघ के संचालन के आचार्य पद के सब अधिकार उपाचार्यश्री को स्वतः ही प्राप्त हो गये। यह बात इतनी निर्विवाद है कि और स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं रहती है।

एक बात का और संकेत कर देना चाहते हैं कि श्रमण संघ के आचार्य, उपाचार्य को *आजीवन के लिये साधु-सम्मेलन में प्रतिष्ठित किया गया था और श्रमण संघ के कार्यसंचालन* का समस्त अधिकार पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. को सौंपा गया था। इसलिये आचार्यश्रीजी

म. द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ नहीं रहता है। अधिकार किसको है, यह पूर्व में उल्लिखित उद्धरणों से सुस्पष्ट है।

अवैधानिक घोषणा के सम्बन्ध में उदयपुर श्रीसंघ का उत्तर

जब आचार्यश्री आत्मारामजी म. का पत्र और अवैधानिक घोषणा श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ, उदयपुर को प्राप्त हुई तो उसे पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की सेवा में उपस्थित कर अपने भाव फरमाने की प्रार्थना की। इस पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने जो भाव फरमाये, उन का समावेश करते हुए दि. 22.9.60 को उदयपुर संघ के मंत्री द्वारा लुधियाना संघ के मंत्री को निम्नलिखित उत्तर दिया गया–

उदयपुर
दि. 22.9.60

सेवामें

श्रीमान् ईश्वरदासजी
मंत्री, श्री स्थानकवासी श्रावक संघ
लुधियाना।

सादर जयजिनेन्द्र।

आपका पत्र दि. 17 सितम्बर, 1960 का रजिस्ट्री द्वारा प्राप्त हुआ। उसके साथ आचार्यश्रीजी म.सा. की घोषणा की नकल भी मिली। मैंने पत्र तथा उस घोषणा की प्रतिलिपि परम श्रद्धेय श्रमण संघ-शिरोमणि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में उपस्थित कर जिज्ञासा प्रकट की कि क्या आचार्यश्रीजी म. को अधिकार देने-लेने सम्बन्धी यह घोषणा सादडी सम्मेलन में उपस्थित प्रतिनिधि मुनिवरों द्वारा श्रमण संघ-संचालन की व्यवस्था सम्बन्धी सर्वानुमति से जो निर्णय हुआ, उसके अनुसार है या क्योंकर ? तो मेरी प्रार्थना पर उत्तर में निम्न आशय के भाव फरमाये, वे आपके सूचनार्थ लिख रहा हूँ-

'सादड़ी मे एकत्रित समस्त प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर श्रमण संघ-संचालन की व्यवस्था हेतु, सर्वानुमति से जो चुनाव किया, वह कार्यवाही आप देख सकते हैं। मैं अपने मुंह से कुछ कहूँ, इसके मुकाबले तो प्रतिनिधि मुनिवरों ने क्या कहा है, उसे ही आप देख लें। जिससे सारी स्थिति आपको स्पष्ट हो जायेगी।

'सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो, इस दृष्टि से मैं सादड़ी सम्मेलन में गया था। अधिकार संबंधी मेरी कोई भावना नहीं थी और न मैं इस दृष्टिकोण से ही गया था। परन्तु सादडी बृहत्साधु-सम्मेलन में एकत्रित प्रतिनिधि मुनिवरों ने श्रमण संघ-संचालन के लिये मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी, मैं श्रमणवर्ग के

आग्रह को नहीं टाल सका। जब श्रमणवर्ग ने मिलकर सर्वानुमति से श्रमण संघ-संचालन का भार मुझे सौंपा तो मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमण संस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण रखने के लिये सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र के संरक्षणार्थ आत्मसाक्षी से संघहितार्थ कार्य करूं। तदनुसार इसी शुद्ध दृष्टि से व्यवस्था आदि कार्य किये हैं और श्रमण संघीय व शास्त्रीय समाचारी तथा उसके संरक्षणार्थ शिथिलाचार व ध्वनि-यन्त्र आदि विषयक व्यवस्थाएं दीं और निवेदन प्रसारित किया। उन व्यवस्थाओं और निवेदन को मेरी अंतरात्मा आज भी संघहितार्थ उचित मानती है। मैंने निवेदन में स्पष्ट कहा है कि जो श्रमणवर्ग शास्त्रीय एवं श्रमण संघीय समाचारी का तथा उनके संरक्षणार्थ यहां से की गई व्यवस्था का पालन करेगा उसी श्रमणवर्ग के साथ श्रमण संघीय साम्भोगिक व्यवहार आदि रह सकेगा। मैं उस पर आज भी दृढ हूँ।'

उपाचार्यश्रीजी म.सा. द्वारा उपर्युक्त भाव फरमाने पर मैंने उनसे पुनः प्रार्थना की कि श्रमण संघीय विधान और नियमानुसार आचार्यश्रीजी द्वारा उपाध्यायों और कुछ मन्त्री मुनिवरों को समान अधिकार के एक स्तर पर लाकर उनकी कार्यवाहक समिति बनाकर श्रमण संघ सम्बन्धी कार्य सौंपना क्या वैधानिक है ? तो उत्तर में भाव फरमाये कि 'श्रमण संघीय नियम और विधान में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। इसलिये ऐसे कार्य को वैधानिक नहीं ठहराया जा सकता।'

इसके बाद मैंने सादड़ी सम्मेलन की आचार्य पद पर नियुक्ति सम्बन्धी कार्यवाही देखी। शायद आपके ध्यान में वह कार्यवाही नहीं हो, अतः आपकी जानकारी हेतु उस कार्यवाही का सम्बन्धित अंश यहां उद्‌घृत कर रहा हूँ।

सादड़ी सम्मेलन में पं. रत्न उपाध्याय कवि श्री अमरचन्दजी म.सा. ने उपस्थित सभी प्रतिनिधि मुनियों की तरफ से पूज्यश्री गणेशलालजी म. के उपाचार्य पद ग्रहण करने के समय पर निम्न वक्तव्य फरमाया-

मैं दो वर्षों से पूज्यश्री के परिचय में आया हूँ। आगरा और देहली में मुझे चरणसेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ है। मैंने सुन रखा था कि पूज्यश्री चट्टान की तरह कठोर हैं व अनुशासन में पूरे कड़क कदम उठाते हैं। परन्तु प्रत्यक्ष दर्शन करने और सेवा में रहने का प्रसंग आने पर मुझे अनुभव हुआ कि अनुशासन के नाते जितने कठोर हैं उससे ज्यादा नर्म एवं उदार भी हैं।

हमने आचार्य पूज्यश्री आत्मारामजी म. को नियत किया है, परन्तु शारीरिक स्वास्थ्य अच्छा न होने के कारण वे एक स्थान में ही केन्द्रित हैं। उनकी साहित्यसेवा से संघ ऋणी है। इसी हेतु उनके प्रति श्रद्धा एवं सद्‌भावना प्रगट की गई है, परन्तु हमारे विराट् संघ को

अनुशासित करने के लिये योग्य आचार्य की आवश्यकता है, जो साधु-साध्वीवर्ग और श्रावक संघ में श्रद्धा और प्रेम की लहर पैदा कर सके। पूज्यश्री गणेशलालजी म. ही इस पद के योग्य हैं। हम देखते आ रहे हैं कि छोटे-मोटे साधुओं के आचार्य चुने जाते हैं, उसमें भी एकाध व्यक्ति अडे रहते हैं। परन्तु अखिल भारतवर्ष के लिये आपको सर्वानुमति से नियुक्त कर रहे हैं। मुनिमंडल आपके शासन की आवश्यकता महसूस करता है। अतः मैं निवेदन करूंगा, आप हमारी तुच्छ विनती को जरूर स्वीकार करेंगे।

आपके पीछे फौज तैयार है। आप जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, हम उसे मूर्त रूप देंगे। बहुत दिनों का बिछुडा हुआ संघ मिलता है, तो कठिनाई जरूर आ सकती है। परन्तु आचार्यश्री ! आप उदार एवं अनुभवशील है। ऊंची-नीची भावनाओं को परखने वाले भी हैं और आपके नीचे आपके कार्यभार को संभालने के लिये मन्त्रिमंडल रहेगा। वह व्यवस्थित रूप से सारा कार्य संभालेगा। अतः मैं आचार्यश्री से प्रार्थना करता हूँ कि वे उपाचार्य पद को स्वीकार कर ले।

पूज्यश्री के उपाचार्य पद ग्रहण करने के बाद सभी प्रतिनिधि मुनियों की ओर से मरुधरकेशरी मुनि मिश्रीमलजी म. ने धन्यवाद निम्न शब्दों में दिया–

अत्यन्त खुशी का समय है कि आज अखिल भारतवर्षीय स्था. जैन समाज के लिये सर्वसम्मति से आचार्य का चुनाव हो गया है। सादडी के लिये हम लोग रवाना हुए और यहां तक पहुंचे तब तक लोग यही कहते थे कि महाराज दिन पूरे क्यों करते हो और हमारे पर नई गिरह क्यों खड़ी करते हो ? किन्तु शासनदेव की कृपा से कहिये या विकास और संगठन का समय पक चुका इस कारण कहिये, आज हम सर्वसम्मत होकर सहर्ष आचार्य की नियुक्ति कर सके हैं। विशेष प्रसन्नता की बात है कि जैन-जगत् के चमकते सितारे पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने इस पद को स्वीकार करके हमें कृतज्ञ किया है। एतदर्थ मुनिमंडल की ओर से उन्हें कोटिशः धन्यवाद अर्पण करता हूँ।

यह है वह कार्यवाही। इसको पढ़ने के बाद आपको स्पष्ट हो जायेगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म.सा. की आचार्य पद पर नियुक्ति उनकी साहित्यसेवा के कारण श्रद्धा एवं सद्भावना हेतु सम्मान की दृष्टि से हुई है।

श्रमण संघ के कार्य-संचालन का समस्त अधिकार तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के सक्षम कंधों पर ही रखा गया है। इसलिये आचार्यश्री आत्मारामजी म.सा. द्वारा अधिकार देने-लेने सम्बन्धी घोषणा का कोई अर्थ ही नहीं रहता है। क्योंकि जब आचार्यश्रीजी म.सा. के पास श्रमण संघ-संचालन के कोई अधिकार हैं ही नहीं, तो अधिकार देने और लेने का प्रश्न ही कहां उपस्थित होता है ?

आपको विदित रहे कि पूज्य उपाचार्यश्रीजी म.सा. के सन्मुख जब कभी अधिकारों सम्बन्धी कोई चर्चा-वार्त्ता आती है तो वे इस विषय में प्रायः तटस्थ रहते हैं। क्योंकि वे तो कर्तव्यपालन की दृष्टि को मुख्यता देते हैं। मगर मुझे लगता है कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. की तटस्थता का गलत अर्थ लगाया और संभवतः इसी का यह परिणाम है कि आचार्यश्री जैसे ज्ञानवृद्ध, वयोवृद्ध महात्मा भी अधिकार की दृष्टि से सोचने और फरमाने लगे हैं।

उपरोक्त विवरण से यह सुस्पष्ट है कि श्रमण संघ के संचालन का कार्यभार सादड़ी सम्मेलन ने पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के सक्षम कन्धों पर ही रखा है।

इस विवरण द्वारा सही स्थिति जानने से उन बन्धुओं को भी सोचने-विचारने का अवसर मिलेगा जो सम्भवतः अभी तक भ्रम में हों या यह नहीं जान पाये हों कि समाज की इस समय जो स्थिति बनी है और बनाई जा रही है, उसका दायित्व किस पर है ? शेष आनन्द है।

आपका

तख्तसिंह पानगड़िया

मन्त्री, श्री वर्धमान स्था. जैन श्रावक संघ, उदयपुर

उपर्युक्त उत्तर एवं पूर्व में उल्लिखित विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि श्रमण संघ में आचार्यश्री और उपाचार्यश्री का क्या स्थान है और पाठक स्वयं निर्णय कर सकेंगे कि पूज्य उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को श्रमण संघ-संचालन के पूरे अधिकार विधान से प्राप्त थे। अतः आचार्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा अधिकार लेने सम्बन्धी दि. 15.9.60 की घोषणा साररहित है।

अब एक ही प्रश्न शेष रह जाता है कि जब आचार्यश्री आत्मारामजी म. को श्रमण संघ की व्यवस्था-संचालन का कोई अधिकार नहीं था तो यह अवैधानिक घोषणा कैसे की ? इसका एक ही कारण हो सकता है कि विरोधीपक्ष या उसके समर्थकों या उनके पृष्ठपोषकों की ओर से आचार्यश्री को उक्त घोषणा निकालने के लिये विवश किया गया है और शारीरिक एवं मानसिक दृष्टि से अशक्त पूज्यश्री आत्मारामजी म. ने उनके प्रभाव में आकर और विधान सम्बन्धी जानकारी होते हुए भी कुत्सित राजनीति की तरह गुटबन्दी बनाकर एवं अपने पूर्वलिखित वचनों का भी ध्यान न रखकर वैसी अवैधानिक घोषणा प्रकाशित कर दी, जो निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की अक्षुण्णता को ठेस पहुंचाने वाली थी।

कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी के प्रस्ताव पर दृष्टिपात

श्रमण संघीय गत्यवरोध के निराकरण के नाम पर दि. 15.9.60 को पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा की गई घोषणा के अवैधानिक होने के कारणों का संकेत करने के अनन्तर श्री अ.

भा. श्वे. स्थानकवासी जैन कॉन्फरेंस की दि. 24, 25 सितम्बर, 60 को मुम्बई में होने वाली जनरल कमेटी के प्रस्ताव नं. 8 पर भी दृष्टिपात कर लें।

प्रस्ताव के मुख्य-मुख्य अंश इस प्रकार हैं-

1. ध्वनिवर्धक यन्त्र के उपयोग के सम्बन्ध में अपवाद, प्रायश्चित्त और स्वच्छन्दता का स्पष्टीकरण कर दिया जाये।
2. मुनि रूपचन्दजी के बारे में दिये गये निर्णय को अमल में लाया जाये।
3. इसका अन्तिम निर्णय उपाध्यायमंडल कॉन्फरेंस के अध्यक्ष से परामर्श करके दो माह के अन्दर दे देंवे। उक्त निर्णय सर्वमान्य रहेगा।
4. श्रमण संघ के विधान में आवश्यक परिवर्तन करने एवं आचार्य, उपाचार्य के अधिकारों के स्पष्टीकरण करने एवं कितनेक दूसरे सुधार करने की आवश्यकता है। अतः इस कार्य को सम्पन्न करने के लिये पूज्य आचार्यश्री, उपाचार्यश्री अथवा उनके प्रतिनिधि मुनियों और मन्त्रिमंडल तथा अन्य मुनिराजों के सम्मेलन का आयोजन किया जाये।
5. जब तक यह सम्मेलन न हो तब तक के लिये श्रमण संघ की व्यवस्था उपाध्यायमण्डल द्वारा किये जाने की घोषणा पूज्य आचार्यश्री और पूज्य उपाचार्यश्री की ओर से हो जाये।
6. पूज्य आचार्यश्री की दि. 15.9.60 की घोषणा व पूज्य उपाचार्यश्री द्वारा दि. 22.9.60 को दिया गया उत्तर वापस ले लिया जावे।

प्रस्ताव की भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रस्ताव श्रमण संघ को सबल बनाने के प्रयत्नों और समस्याओं के समाधान में सहायक है। लेकिन गम्भीरता से विचार करें तो ज्ञात होगा कि पूज्यश्री आत्मारामजी म. द्वारा दि. 15.9.60 को की गई श्रमण संघीय कार्यवाहक समिति के गठन की अवैधानिक घोषणा भी वैध है और तदनुकूल प्रक्रिया अपनायी जाये। यदि इस अवैधानिक घोषणा को वापस भी लेना पड़े तो उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा दि. 22.9.60 को की गई घोषणा भी वापस ली जाये।

इस प्रस्ताव का परिणाम यह हुआ कि श्रमण संघ की दिनोंदिन निर्बल होती जा रही व्यवस्था और अधिक तीव्रता से निर्बल होने लगी। संघ में अनुशासन का नाम न रहा और मुनिमंडल को अपनी सुविधानुसार कार्य करने की छूट मिल गई।

किन्हीं-किन्हीं महानुभावों ने उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को प्रस्ताव का स्पष्टीकरण करने के नाम पर पदलोलुप आदि कहने में अपने विवेक की इतिश्री कर दी। लेकिन सादडी सम्मेलन से लेकर इस प्रस्ताव के पारित होने तक की कार्यप्रणाली को देखें तो ज्ञात होगा

कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. को न तो पद या अधिकार की पहले चाह थी और न इस समय भी। वे तो श्रमण भगवान महावीर के मार्ग का निर्दोष पालन करने और उनके मार्ग पर चलने वाले दूसरों को भी निर्दोष पालन कराने में सहायक बनने में ही अपना अधिकार मानते थे। इसी को लक्ष्य में रखकर ही श्रमण संघ की व्यवस्था में आगमानुमोदित व्यवस्था देने में तत्पर रहे। यदि ऐसा करना ही अधिकारलिप्सा या पदलोलुपता मानी जाये तो कहना पडेगा कि यह उनके अज्ञान की पराकाष्ठा है।

असंवैधानिक घोषणा पर समाज की प्रतिक्रिया

पूज्यश्री आत्मारामजी म. की अवैधानिक घोषणा से निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति में निष्ठा रखने वाले समाज में वैसे ही क्षोभ का वातावरण व्याप्त था और कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी के इस प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया कि समाज के साथ अन्याय हुआ है। वह नहीं समझ सका कि एक ओर तो प्रकारान्तर से पूज्यश्री आत्मारामजी म. की घोषणा को मान्यता दी जा रही है और उसके साथ ही दूसरी ओर दोनों घोषणाओं को वापस लिये जाने का अनुरोध किया जा रहा है। श्रमण संघ से सम्बन्धित घटनाओं के लिये उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. की घोषणाओं को उचित मानते हुए भी घोषणाकर्ता को व्यवस्थानुसार कार्रवाई कराने से विरत किया जा रहा है और उसको पालन करवाने का भार उपाध्यायमंडल के मुनिराजों को सौंपने का संकेत किया जाता है। स्थिति की वास्तविकता को समझने वाले समाज के प्रबुद्धवर्ग को खेद ही हुआ और यह खेद प्रस्ताव पारित करते समय भी व्यक्त कर दिया गया था और बाद में तो विभिन्न श्रावक संघों द्वारा व्यक्त प्रतिक्रिया में कॉन्फरेंस से अपना प्रस्ताव वापस लेने की मांग की गई थी। लेकिन न तो प्रस्तावकों ने और न कॉन्फरेंस ने विरोध को समझकर शांति के उपाय किये और न प्रस्ताव पर पुनर्विचार करना योग्य समझा।

कॉन्फरेंस का प्रस्ताव : उपाचार्यश्रीजी का अभिमत

कॉन्फरेंस के पूर्वोक्त प्रस्ताव से चतुर्विध संघ में रोष व्याप्त था और इस सम्बन्ध में उपाचार्यश्रीजी के विचारों को जानने के लिये उत्सुक था। उपाचार्यश्रीजी ऐसे प्रस्तावों पर मौन रहना ही उचित मानते थे। किन्तु समाज को वास्तविक स्थिति से परिचित कराने एवं प्रस्ताव के सम्बन्ध में आपश्री के विचारों को जानने के लिये उदयपुर श्रावक संघ के बार-बार विनती करने पर उपाचार्यश्रीजी म.सा. ने जो अपने भाव फरमाये थे, उन्हें जानकारी के लिये दि. 5.11.60 के पत्र द्वारा कॉन्फरेंस कार्यालय को भिजवा दिया। पत्र यह है-

उदयपुर
ता. 5.11.60

श्रीमान्मान्यवर खीमचन्दभाई वोरा
मन्त्री - श्री श्वे. स्था. जैन कॉन्फरेंस, मुम्बई
सादर जयजिनेन्द्र

अखिल भारतवर्षीय श्वे. स्था. जैन. कॉन्फरेंस की ता. 24, 25 सितम्बर, 1960 को मुम्बई में हुई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि वापिस लेने की उपाचार्यश्रीजी म.सा. से भी प्रार्थना आदि की।

इस पर उपाचार्यश्रीजी म. ने निम्न आशय के भाव व्यक्त किये हैं कि कॉन्फरेंस को मुम्बई जनरल कमेटी द्वारा पारित श्रमण संघ सम्बन्धी प्रस्ताव की अनौचित्यता पर मैं अभी विशेष न कहता हुआ सिर्फ इतना ही कहना पर्याप्त समझता हूँ कि श्रमण संघ सम्बन्धी मुम्बई जनरल कमेटी का यह प्रस्ताव ध्वनि-यन्त्र व शिथिलाचार आदि विषयक दी गई व्यवस्थाओं को भंग करने के लिये ही पास किया गया है, ऐसा आभास होता है। यदि ऐसा नहीं है तो मेरे निवेदन आदि को वापस लेने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता, क्योंकि ध्वनि-यन्त्र व शिथिलाचार आदि विषयक जानकारी के लिये कॉन्फरेंस का शिष्टमण्डल कई बार मेरे पास उपस्थित होकर सारी स्थिति को अच्छी तरह समझ चुका है और समय-समय पर संतोष व्यक्त किया है। उदाहरणार्थ– कॉन्फरेंस के शिष्टमण्डल ने कपासन में 4.3.58 को ध्वनि-यन्त्र विषयक सूचना-पत्र के सम्बन्ध में निम्न विचार लिखित रूप में प्रकट किये थे–

'ध्वनि-यन्त्र विषयक जो सूचनापत्र ता. 16.10.57 को श्रमण सम्पर्क-समिति के सदस्यों के परामर्शपूर्वक उपाचार्यश्रीजी म. की ओर से सम्बन्धित सभी अधिकारी मुनियों के पास भेजा गया, वह समय-अनुकूल है और शिष्टमण्डल यह भी अनुभव करता है कि भीनासर सम्मेलन के बाद जिन संत-सतियों द्वारा ध्वनि-यन्त्र का प्रयोग हुआ हो, वे अपनी स्थिति स्पष्ट लिखकर ब्यौरेबार उपाचार्यश्रीजी म. के चरणों में भेजकर आलोयणा करें, ऐसी हमारी नम्र प्रार्थना है। निवेदक-अचलसिंह (अध्यक्ष), मोहनमल चोरडिया, कानमल नाहटा।'

जावरा जनरल कमेटी ने शिथिलाचार विषयक दी गई व्यवस्था को उचित ठहराते हुए सर्वानुमति से जो प्रस्ताव पास किया, वह निम्न-प्रकार है-

'मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी म. के शिष्य के लिये जो फैसला उपाचार्यश्रीजी म. ने फरमाया है, उसके लिये आचार्यश्रीजी ने हर्ष प्रकट किया व मन्त्री मुनिश्री मिश्रीमलजी व श्री रूपचन्दजी ने भी सहर्ष स्वीकार किया। इसके लिये पीछे जाने का प्रश्न ही नहीं रहता है। तथापि आचार्यश्री जो कागजात देखना चाहते हैं, वे कागजात कॉन्फरेंस की कमेटी, जिसके

नाम श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो सूचित करेंगे वो मान्य होगा, वो कमेटी उपाचार्यश्री के पास जाकर उन्हे बता दे व आचार्यश्री से विनती करें कि वे कॉन्फरेंस का योग्य मार्गदर्शन करें।

सर्वसम्मति से स्वीकृत।

प्रस्तावक - जवाहरलाल मुणोत

अनुमोदक - खीमचंद बोरा

(नोट - रूपचन्दजी सम्बन्धी कागजात शिष्टमण्डल को दे दिये गये।)

इतना हो जाने पर भी मुम्बई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि को वापस लेने का जो प्रस्ताव पास किया है, वह आश्चर्यजनक है। कॉन्फरेंस का तो यह कर्तव्य था कि जहां से अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ, उसको ठीक कराने में सहायक होती।

मैं अपने निवेदन आदि को आज भी संघहित व सुव्यवस्था के लिये उचित मानता हूँ। अतः उसको वापस लेने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता है।

रहा प्रश्न जब तक आगामी साधु-सम्मेलन न हो तब तक श्रमण संघ की सब कार्यवाही उपाध्यायमंडल करे ऐसी घोषणा करने का ! सो इस विषय में मेरा कहना है कि यह विषय श्रमण संघ का होने से कॉन्फरेंस की विनती निराधार है।

-लालचन्द मुणोत

ताकड़िया भवन, उदयपुर

इस पत्र से स्पष्ट है कि कॉन्फरेंस ने पूर्व में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा दी गई व्यवस्थाओं को मान्य किया और उनके अनुसार ही कार्रवाई होना वैध माना था। लेकिन ऐसे प्रस्तावों द्वारा उसकी अवहेलना करके श्रमण संघ की स्थिति को त्रिशंकु-सा बना दिया।

श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये श्रमण संघ का त्याग

प्रस्ताव के पारित होने से समाज में रोष तो था ही और कॉन्फरेस के अधिकारियों ने समाज की भावनाओं को न समझकर प्रस्ताव उचित है, ऐसा करने से ही श्रमण संघ की स्थिति का समाधान हो सकता है आदि के विचार से प्रस्ताव के समर्थन हेतु पत्र-पत्रिकाओं में लेखमाला चालू करके उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. पर आक्षेप लगाना प्रारम्भ कर दिया।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. इस स्थिति के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचते रहे कि समाज-व्यवस्था के लिये अन्य अधिकारी मुनिवरों द्वारा मान्य निर्णयों को ही क्रियान्वित कराने एवं समाज के धार्मिक वातावरण को शुद्ध रखने के लिये मेरी व्यवस्थाएं हैं। उन्हें प्रमाणित मानते हुए भी

उनका पालन न करके लांछित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो उस स्थिति में मेरा श्रमण संघ मे रहना सार्थक नहीं है। इस स्थिति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। अतः दि. 30.11.60 को अचानक ही व्याख्यान मे श्रमण संघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा कर दी। घोषणा इस प्रकार है-

'सिद्धान्त व चारित्र के संरक्षणपूर्वक साधुसमाज का संगठन सुदृढ होकर संघ की उन्नति हो, इस उद्देश्य को लेकर मैं सादडी (मारवाड) साधु-सम्मेलन में निर्मित श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमण संघ में सम्मिलित हुआ था, जहां सब प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर मुझको आग्रह से उपाचार्य पद दिया तथा श्रमण संघ के संचालन का कार्यभार सौपा। मैंने अपनी आत्मसाक्षी एवं निष्पक्ष रूप से अपना कर्तव्य बजाया।

'उद्देश्य के अनुसार श्रमण संघ का सुसंगठन बना रहे, जिससे शासनोन्नति हो और जनता की श्रद्धा में वृद्धि होकर आत्मकल्याण का मार्गदर्शन मिले, यह मेरी आंतरिक भावना रही और अब भी है। मगर उचित वात को भी अशांति और मताग्रह का रूप देकर भ्रम फैलाया जा रहा है और ऐसा प्रदर्शित किया जा रहा है कि मानो मै संघ-उन्नति में गत्यवरोध का कारण हूँ। इस पर मैंने स्वयं भी सोचा तो मुझे ऐसा नहीं लगता, वल्कि मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि जिस उद्देश्य को लेकर मैं सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था, उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है और प्राय. यह देखा जा रहा है कि व्यर्थ वाद-विवाद का रूप दिया जाकर अब तो जैनप्रकाश जैसे पत्र के माध्यम से भी भ्रामक प्रचार किया जाने लगा है। मैं ऐसे व्यर्थ के वाद-विवाद में न पड़ता हुआ वर्तमान परिस्थितियों में सादडी सम्मेलन में निर्मित श्रमण संघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमण सघ से अलग घोषित करता हूँ।

'रहा प्रश्न श्रमणवर्ग के साथ सांभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का, सो मुझे जिनके साथ जैसा योग्य जान पडेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखने के भाव हैं।

'सादड़ी सम्मेलन से लेकर अब तक के कार्यकाल में कर्तव्यदृष्टि से कार्य करने से किसी को दुःख पहुंचाने की भावना न होने पर भी जिन किन्हीं सन्त-सती व श्रावक-श्राविकाओं का मन दुःख पाया हो तो उसके लिये सबको क्षमाता हूँ।'

घोषणा की प्रतिक्रिया

उपाचार्यश्रीजी की उपर्युक्त घोषणा से समस्त समाज को दुःखानुभव हुआ। राजनीतिक चाल चलकर उपाचार्यश्रीजी म.सा. को अपने अनुकूल बना लेने में विश्वास रखने वाले और अधिकार लेने का तीर फेकने वाले भी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें पता नहीं था कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. चारित्रसाधना के संरक्षणार्थ बडे से बड़ा लौकिक सम्मान ठुकरा सकते हैं। संगठन बनाये रखने के लिये सिद्धान्तों पर कुठाराघात सहन नही किया जा सकता है।

नाम श्री कुन्दनमलजी फिरोदिया जो सूचित करेगे वो मान्य होगा, वो कमेटी उपाचार्यश्री के पास जाकर उन्हें बता दे व आचार्यश्री से विनती करें कि वे कॉन्फरेंस का योग्य मार्गदर्शन करें।

सर्वसम्मति से स्वीकृत।

प्रस्तावक - जवाहरलाल मुणोत

अनुमोदक - खीमचंद बोरा

(नोट - रूपचन्दजी सम्बन्धी कागजात शिष्टमण्डल को दे दिये गये।)

इतना हो जाने पर भी मुम्बई जनरल कमेटी ने निवेदन आदि को वापस लेने का जो प्रस्ताव पास किया है, वह आश्चर्यजनक है। कॉन्फरेस का तो यह कर्तव्य था कि जहां से अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ, उसको ठीक कराने में सहायक होती।

मैं अपने निवेदन आदि को आज भी संघहित व सुव्यवस्था के लिये उचित मानता हूँ। अतः उसको वापस लेने का प्रश्न उपस्थित नहीं होता है।

रहा प्रश्न जब तक आगामी साधु-सम्मेलन न हो तब तक श्रमण संघ की सब कार्यवाही उपाध्यायमंडल करे ऐसी घोषणा करने का ! सो इस विषय में मेरा कहना है कि यह विषय श्रमण संघ का होने से कॉन्फरेंस की विनती निराधार है।

-लालचन्द मुणोत

ताकड़िया भवन, उदयपुर

इस पत्र से स्पष्ट है कि कॉन्फरेंस ने पूर्व में उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा दी गई व्यवस्थाओं को मान्य किया और उनके अनुसार ही कार्रवाई होना वैध माना था। लेकिन ऐसे प्रस्तावों द्वारा उसकी अवहेलना करके श्रमण संघ की स्थिति को त्रिशंकु-सा बना दिया।

श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के लिये श्रमण संघ का त्याग

प्रस्ताव के पारित होने से समाज में रोष तो था ही और कॉन्फरेंस के अधिकारियों ने समाज की भावनाओं को न समझकर प्रस्ताव उचित है, ऐसा करने से ही श्रमण संघ की स्थिति का समाधान हो सकता है आदि के विचार से प्रस्ताव के समर्थन हेतु पत्र-पत्रिकाओं में लेखमाला चालू करके उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. पर आक्षेप लगाना प्रारम्भ कर दिया।

उपाचार्यश्रीजी म.सा. इस स्थिति के बारे में गम्भीरतापूर्वक सोचते रहे कि समाज-व्यवस्था के लिये अन्य अधिकारी मुनिवरों द्वारा मान्य निर्णयों को ही क्रियान्वित कराने एवं समाज के धार्मिक वातावरण को शुद्ध रखने के लिये मेरी व्यवस्थाएं हैं। उन्हें प्रमाणित मानते हुए भी

उनका पालन न करके लांछित करने की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाये तो उस स्थिति में मेरा श्रमण संघ में रहना सार्थक नहीं है। इस स्थिति से दूर रहना ही श्रेयस्कर है। अतः दि. 30.11.60 को अचानक ही व्याख्यान में श्रमण संघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा कर दी। घोषणा इस प्रकार है-

'सिद्धान्त व चारित्र के संरक्षणपूर्वक साधुसमाज का संगठन सुदृढ होकर संघ की उन्नति हो, इस उद्देश्य को लेकर मैं सादड़ी (मारवाड़) साधु-सम्मेलन में निर्मित श्री वर्धमान स्था. जैन श्रमण संघ में सम्मिलित हुआ था, जहां सब प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर मुझको आग्रह से उपाचार्य पद दिया तथा श्रमण संघ के संचालन का कार्यभार सौंपा। मैंने अपनी आत्मसाक्षी एवं निष्पक्ष रूप से अपना कर्तव्य बजाया।

'उद्देश्य के अनुसार श्रमण संघ का सुसंगठन बना रहे, जिससे शासनोन्नति हो और जनता की श्रद्धा में वृद्धि होकर आत्मकल्याण का मार्गदर्शन मिले, यह मेरी आंतरिक भावना रही और अब भी है। मगर उचित बात को भी अशांति और मताग्रह का रूप देकर भ्रम फैलाया जा रहा है और ऐसा प्रदर्शित किया जा रहा है कि मानो मैं संघ-उन्नति में गत्यवरोध का कारण हूँ। इस पर मैंने स्वयं भी सोचा तो मुझे ऐसा नहीं लगता, बल्कि मुझे तो ऐसा अनुभव हो रहा है कि जिस उद्देश्य को लेकर मैं सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था, उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो रही है और प्रायः यह देखा जा रहा है कि व्यर्थ वाद-विवाद का रूप दिया जाकर अब तो जैनप्रकाश जैसे पत्र के माध्यम से भी भ्रामक प्रचार किया जाने लगा है। मैं ऐसे व्यर्थ के वाद-विवाद में न पडता हुआ वर्तमान परिस्थितियों में सादडी सम्मेलन में निर्मित श्रमण संघ द्वारा प्रदत्त उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमण संघ से अलग घोषित करता हूँ।

'रहा प्रश्न श्रमणवर्ग के साथ सांभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का, सो मुझे जिनके साथ जैसा योग्य जान पड़ेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखने के भाव हैं।

'सादड़ी सम्मेलन से लेकर अब तक के कार्यकाल में कर्तव्यदृष्टि से कार्य करने से किसी को दुःख पहुंचाने की भावना न होने पर भी जिन किन्हीं सन्त-सती व श्रावक-श्राविकाओं का मन दुःख पाया हो तो उसके लिये सबको क्षमाता हूँ।'

घोषणा की प्रतिक्रिया

उपाचार्यश्रीजी की उपर्युक्त घोषणा से समस्त समाज को दुःखानुभव हुआ। राजनीतिक चाल चलकर उपाचार्यश्रीजी म.सा. को अपने अनुकूल बना लेने मे विश्वास रखने वाले और अधिकार लेने का तीर फेंकने वाले भी आश्चर्यचकित रह गये। उन्हें पता नहीं था कि उपाचार्यश्रीजी म.सा. चारित्रसाधना के संरक्षणार्थ बड़े से बडा लौकिक सम्मान ठुकरा सकते हैं। संगठन बनाये रखने के लिये सिद्धान्तों पर कुठाराघात सहन नही किया जा सकता है।

श्रमण संघ-त्याग की घोषणा पर पुनर्विचार की प्रार्थनाएं

उक्त घोषणा पर पुनः विचार करने के लिये उपाचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में श्रमणवर्ग, श्रावकवर्ग, पत्रकारों आदि ने विनतियां कीं। उनमें से कुछ-एक का यहां संकेत कर रहे हैं-

प्रान्तमन्त्री श्री पन्नालालजी म., उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म., मन्त्री श्री पुष्करमुनिजी म. ने संयुक्त रूप में भू.पू. उपाचार्यश्रीजी से अपनी घोषणा वापस लेने की प्रार्थना करते हुए कहा था कि उपाचार्यश्री ने उपाचार्य पद का त्याग करके अपने को श्रमण संघ से अलग घोषित किया, जिसे हम संघ-हितकर नहीं मानते हैं। हमारी यह हार्दिक भावना है कि वे पुनः संघहित व जिन-शासनोन्नति को लक्ष्य में रखकर इस पर गम्भीरता से विचार करें और उलझी हुई समस्याओं को परस्पर विचार-विमर्श द्वारा या किसी माध्यम से हल करके संघ के श्रेय के भागी बनें।

श्रमण संघ के आचार्यश्री आत्मारामजी म., उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म., मन्त्री मुनिश्री फूलचन्दजी म. (पुप्फभिक्खू) आदि मुनिवरों की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री श्रमण संघ से सम्बन्ध-विच्छेद के विचारों को वापस ले लें। अनेक श्रावकों और श्रावक संघों की ओर से भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये गये कि पूज्यश्री चतुर्विध संघ को अपने वरदहस्त से वंचित न करें।

श्री अ.भा.श्वे.स्था. जैन कॉन्फरेंस के मुखपत्र जैन प्रकाश के सम्पादकीय स्तंभ में चतुर्विध संघ के समस्त विचारों का सामूहिक रूप से प्रकाशन करते हुए 'क्या श्रमण संघ खंडित होगा ?' शीर्षक में आचार्यश्रीजी म.सा. से निवेदन किया कि '.......भू.पू. उपाचार्यश्रीजी म. की घोषणा के बारे में हम विनम्र प्रार्थना कर देना चाहते हैं कि आचार्यश्री और उपाचार्यश्री समाज के सूर्य, चन्द्र के समान हैं। उनके अपने-अपने दायित्व हैं। श्रमणवर्ग और समाज ने जिस निष्ठा से उन्हें अपना सिरमौर बनाया था तो समाज अब इस मणि से वंचित हो जाये क्या ? हमें स्वप्न में भी विश्वास नहीं होता कि जो भू.पू. उपाचार्यश्रीजी महाराज संघ के निर्माण में अगुआ थे, उससे अलग होने की भी घोषणा कर देंगे। कहीं त्रुटि हुई है अवश्य, जिससे समाज के प्रत्येक सदस्य को जिज्ञासा है, प्रश्न है कि 'क्या श्रमण संघ खंडित होगा ?'

'हम अन्त में समाज-हितैषियों, कार्यकर्ताओं, श्रावक संघों के पदाधिकारियों, पत्रकारों और श्रावक-श्राविकाओं से अपील करते हैं कि वे श्रमण संघ और इसके गत्यवरोधों को अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न न बनाकर उसके संरक्षण, संपोषण का उत्तरदायित्व श्रमण संघीय मुनिराजों पर ही छोड़ दें और इस प्रकार का वातावरण बनायें कि जल्दी-से-जल्दी किसी केन्द्रीय स्थान पर आगामी साधु-सम्मेलन होकर गत्यवरोध का निराकरण हो जाये।'

इस प्रकार पूज्यश्रीजी म सा. के सम्बन्ध-विच्छेद को लेकर समाज में एक ही विचारधारा वह रही थी कि वे सम्बन्धविच्छेद न करें और शीघ्र ही किसी-न-किसी प्रकार संगठन की सुदृढ़ता के लिये प्रयत्न हों, जिससे उन (उपाचार्यश्री) की भावना के अनुसार संगठन की आधारशिला सुदृढ बने।

कॉन्फरेंस ने समाज की भावनाओं की उपेक्षा की

समाज का बहुमत और पत्रकार तो संगठन को सुदृढ देखने के लिये उत्सुक थे। लेकिन कॉन्फरेंस के पदाधिकारी इससे विपरीत विचार रखते थे। वे कॉन्फरेंस की मुम्बई जनरल कमेटी के प्रस्ताव नं. 8 को ही उचित मानकर कार्रवाई करने के लिये तत्पर थे। वे उपाचार्यश्रीजी म.सा. के विचारों की अवहेलना करने में श्रेय समझते थे। इस सम्बन्ध में 20 नवम्बर, 1960 को कॉन्फरेंस की कार्यकारिणी समिति ने यह प्रस्ताव पारित किया-

'उदयपुर में दि. 1, 2 नवम्बर, 60 के रोज पंचायती नोहरे में पूज्य उपाचार्यश्रीजी के दर्शनार्थ आये हुए श्रावक-श्राविकाओं की सभा का आयोजन किया गया, उसमे पारित प्रस्ताव कॉन्फरेस ऑफिस को भी भेजे गये है। इन प्रस्तावों को पढकर कॉन्फरेस की मैनेजिंग कमेटी को खेद और आश्चर्य हुआ है। मुम्बई की जनरल कमेटी मे ता. 24, 25 सित., 60 के रोज प्रस्ताव नं. 8 पारित हुआ है। उसे समझने का प्रयत्न इस सभा में हुआ हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। समस्त स्थानकवासी जैन समाज की प्रतिनिधि संस्था-कॉन्फरेंस की जनरल कमेटी के प्रस्ताव का इस प्रकार का विरोध हो, उसमे समाजहित की दृष्टि की अपेक्षा सांप्रदायिक ममत्व का प्राधान्य दिखाई देता है।

'श्रमण संघ और स्थानकवासी समाज की एकता और संगठन को कायम और सुदृढ करने के जनरल कमेटी के प्रयत्न को निष्फल बनाने के ऐसे प्रचार के प्रति कॉन्फरेंस की मैनेजिंग कमेटी समाज को गम्भीर चेतावनी देना अपना कर्तव्य समझती है।'

इस प्रस्ताव का आशय यह हुआ कि या तो पूज्यश्रीजी अपनी घोषणा वापस लें और कॉन्फरेस की जनरल कमेटी में पारित प्रस्ताव मान्य करें या श्रमण संघ के सम्बन्ध में आचार्यश्री आत्मारामजी म. की अवैधानिक घोषणा के अनुसार कार्रवाई करने के लिये कॉन्फरेंस स्वतन्त्र है तथा समाज को भी उसके विरोध मे ननु-नच करने का अधिकार नहीं है।

इस प्रकार के प्रस्ताव से स्पष्ट हो गया था कि कॉन्फरेंस ने समाज की भावनाओं की उपेक्षा कर और शुद्धि के धरातल पर श्रमण संगठन को बनाये रखने के प्रति उदासीनता दिखाकर विघटित करने का सूत्रपात कर दिया। आचार्यश्री आत्मारामजी म. की घोषणा से तो

श्रमण संघ का आधार ही कमजोर हुआ था, किन्तु कॉन्फरेस की जनरल कमेटी के प्रस्ताव तथा कार्यकारिणी समिति के इस प्रस्ताव से तो उसका ढांचा ही नेस्तनाबूद हो गया।

पुनर्विचार पर आचार्यश्री गणेशलालजी म. का स्पष्टीकरण

उपाचार्यश्रीजी म.सा. की दि. 30.11.60 की घोषणा पर पुनर्विचारणा करने के लिये आई प्रार्थनाओं मे प्रेमभाव प्रदर्शित करते हुए वापस लेने पर जो भार दिया गया था किन्तु संगठन हेतु आवश्यक संकल्पपूर्ति के बारे में एक भी संकेत नहीं था। अतः उनके सम्बन्ध में अपना स्पष्टीकरण करते हुए पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने फरमाया–

'मेरी तारीख 30.11.60 की घोषणा के पश्चात् मेरे पास आचार्यश्री, उपाध्याय मंडल, मंत्रिमंडल व अन्य मुनिवरों की तरफ से एवं श्रावक समाज की तरफ से पत्र आदि आये हैं जिनमें से कुछ जैन प्रकाश आदि समाचार पत्रों में भी प्रकाशित हुए हैं। उन सब में यह भाव दर्शाया गया है कि मैं अपनी उक्त घोषणा पर पुनर्विचारणा करके उसको वापस लेकर अपने पद (उपाचार्य) पर रहता हुआ संघ का पूर्ववत् संचालन करते हुए समाज को मार्गदर्शन करूं आदि। अतः इस विषय में कुछ भाव व्यक्त करना आवश्यक समझता हूँ।

सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा के साथ शासनोन्नति हो, इस दृष्टि से मैं सादड़ी सम्मेलन में सम्मिलित हुआ था। हमारा श्रमण संगठन किस ढंग का हो, इसकी मेरी अपनी कल्पनाएं थीं। इस सम्बन्ध में मैं समय-समय पर प्रकट रूप से भी अपने विचार व्यक्त करता रहा हूँ। वह यह है कि हमारा श्रमण संघ तब ही सुव्यवस्थित रह सकेगा जब उसका नेतृत्व एक के अधीन रहकर शिष्य परम्परा एक की रहे, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना एक हो, चातुर्मास, विहार एक ही की आज्ञानुसार हो और प्रायश्चित्त-व्यवस्था भी एक के ही आधीन रहे तथा उत्पन्न विकृतियां दूर हों आदि।

सादडी सम्मेलन के समय जब संघ-व्यवस्था की रूपरेखा पर विचारणा चली थी तब मैंने अपनी उक्त विचारणा संत-समुदाय के सन्मुख व्यक्त की थी। जहां तक मुझे स्मरण है, मुनिवरों ने मेरे उन विचारों को पसन्द करते हुए ये भाव दर्शाये कि अभी तक हम सब बहुत दिनों से बिछुड़े हुए मिल रहे हैं, अतः यह सब धीरे-धीरे बन सकेगा।

श्रमण संगठन की मेरी कल्पना के पीछे स्वर्गीय परम-प्रतापी आचार्यश्री 1008 श्री जवाहरलालजी म.सा. की भावना और मेरी व्यक्तिगत विचारणा रही थी। इसलिये सादड़ी में श्रमण संघ की जो-कुछ व्यवस्था बनी उससे मुझे पूर्ण संतोष नहीं था। फिर भी उपस्थित मुनिवरो का सोत्साह आश्वासन होने से मुझे आशा थी कि शनै.-शनैः हम हमारे लक्ष्य तक पहुंच जायेंगे। इस विचार से मैं संगठन में सम्मिलित हुआ।

जब श्रमण संघ के नेतृत्व का प्रश्न आया तो मैंने अपनी अनिच्छा प्रकट की, क्योकि पद और अधिकार-ग्रहण सम्बन्धी मेरी कतई भावना न थी। मैं तो अपना शेष जीवन अधिक-से-अधिक आत्मसाधना में लगाना चाहता था, परन्तु जब प्रतिनिधि मुनिवरों ने अत्याग्रह किया और मेरी सेवा लेनी चाही तो मेरी इच्छा न होते हुए भी मै उनके आग्रह को टाल न सका और श्रमण संघ-संचालन की सेवा स्वीकार की।

इसके बाद मेरा कर्तव्य हो गया कि मैं भगवान महावीर की पवित्र श्रमण संस्कृति की शुद्धता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए आत्मसाक्षीपूर्वक संघहितार्थ कार्य करू। तदनुसार मैने संघ-संचालन का कार्य किया और आवश्यकतानुसार अधिकारी मुनियो से परामर्श लेकर शिथिलाचार व ध्वनि-यंत्र आदि विषयक व्यवस्थाएं दीं एवं दृढ़ाचार विषयक सूचना भी की।

परन्तु भवितव्यता कहें या और कुछ ! सद्भावनापूर्वक किये गये कार्यो को अशान्ति आदि का कारण बताकर उन व्यवस्थाओं के विपरीत आदेश आदि निकाले गये, फलतः उन व्यवस्थाओं का परिपालन नहीं हुआ और सघ में अव्यवस्था का सूत्रपात हुआ।

इन व्यवस्थाओं के विपरीत आदेश आदि निकालने पर मैंने सोचा था कि अधिकारी मुनिवर, जिन्होंने इन व्यवस्थाओं में अपना अनुकूल मत दिया था, अवश्य अपने मत का प्रतिपादन करेंगे, किन्तु मुझे इस बात का आश्चर्य हो रहा है कि वे प्रायः मौन रहकर दर्शक बने रहे।

कॉन्फरेस के कतिपय प्रमुख व्यक्तियो ने भी श्रमण संघीय व्यवस्थाओं को हाथ में लिया, परन्तु अव्यवस्था का सूत्रपात जहाँ से हुआ, वहां से समस्या को नही उठाकर ऐसा कदम उठाया कि जिससे समस्याएं सुलझने के बजाय उलझ गई।

बाद में तो जैन प्रकाश आदि समाचार पत्रों में खुल्लम-खुल्ला टिप्पणी होने लगी और मेरे प्रति मताग्रही आदि कई विशेषणों से समाज में भ्रामक प्रचार किया गया।

जब इस प्रकार का वातावरण बनाया गया तो स्वच्छन्दाचार एवं शिथिलाचार को प्रोत्साहन मिलना स्वाभाविक ही था। फलस्वरूप साधु-मर्यादाओ के प्रतिकूल कई अन्य प्रवृत्तियां भी विश्वस्त सूत्रों से सुनने को मिली। और तो क्या, चौथे व्रत के सम्बन्ध में साधुवेश को कलंकित करने वाली भी कुछ घटनाएं घटित हुई, जो श्रमण संस्कृति की पवित्रता के लिये घातक हैं।

अपने शिष्यों की छोटी गलती पर भी अनुशासन की कार्यवाही की गई तो बडी गलतियां कैसे बरदास्त की जा सकती हैं ?

जिन-जिन अनुचित प्रवृत्तियों के वृत्तान्त मेरे सामने आये, उनका मैंने यथोपयोग निराकरण करने का प्रयत्न किया और अन्त तक यही भावना रही कि किसी भी प्रकार सिद्धान्त और चरित्र सुरक्षित रहते हुए अनुशासन का समुचित ढंग से पालन हो, ताकि

स्वास्थ्य की गम्भीरता से उनके मन में अनेक प्रकार के संकल्प-विकल्प उठने लगे। समाज के अग्रणी विचारवान उपस्थित सज्जनों ने विचार किया कि वर्तमान स्थिति में अपने भावी आधार के बारे में सोच लेना बुद्धिमानी होगा। समस्या गंभीर थी और इस पर चर्चा-वार्त्ता होती रही। अन्त में निर्णय किया गया कि हम सब मिलकर आचार्यश्रीजी के चरणों में विनती करें कि आपश्री की कल्पना के अनुसार जब तक सुसंगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन न हो जाये, तब तक हम अपना भावी आधार किसको मानें ?

पूज्य आचार्यश्री के चरणों में चारित्रात्माओं के प्रतिज्ञा-पत्र

अन्तर आचार्यश्रीजी म.सा. के आज्ञानुवर्ती निर्ग्रन्थ श्रमणवर्ग ने आपश्री के चरणों में अपना यह प्रतिज्ञापत्र प्रस्तुत किया-

'*निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एकमात्र अमोघ उपाय है अतः इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान में श्रमणवर्ग में कुछ विकृतियां प्रवेश* कर गई हैं, उनको दूर करने के लिये पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. ने जो शान्त क्रान्ति का कदम उठाया, वह उचित एवं आदर्श है।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षापूर्वक संगठन को सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि संयमी जीवन में प्रवेश पाई हुई विकृतियों को दूर करने के लिए एवं सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शान्त क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म. के नेश्राय में तथा नेतृत्व मे आपश्री की निम्न बातें जीवन में उतारने की प्रतिज्ञा करते हैं-

1. चातुर्मास, प्रायश्चित्त, विहार व सेवा आदि व्यवस्था की सर्वसत्ता आपश्री के चरणों में रहेगी।
2. शिष्य व शिष्याएं आपश्री के निश्राय में होंगे।
3. चातुर्मास के लिए व शेषकाल के लिए साधु-साध्वी ने जहां विहार किया या जहां विराजे, वहां से वस्त्र-पात्रादि जो भी वस्तु साल-भर में लेंगे उसकी नोंध रखेंगे। साथ ही, संघ-व्यवस्था कैसी है, विशेष उपकार व उपसर्ग कहां-कहां पर हुए उसकी भी नोंध रखेंगे और वह सब आलोचना की नोंध डायरी आपश्री की सेवा में अर्पण कर देंगे।
4. चातुर्मास पूर्ण होने के बाद आपश्री (आचार्यश्री) जिस समय, जहां, जिन साधु-साध्वियों को याद फरमावेंगे, वहां वे साधु, साध्वी उपस्थित होंगे।
5. साधु-साध्वी के कल्पनानुसार समान समाचारी, जो आपश्री ने तय की है और

करेंगे, वह सब साधु-साध्वी को सहर्ष मान्य होगी। तथा सकारण व भूल से जो भी त्रुटि हो जाय उसका आपश्री जो भी उपालम्भ व प्रायश्चित्त देंगे, उसको सहर्ष स्वीकार करेंगे।

6. श्रमणवर्ग की धारणा, विचारणा में फर्क हो सकता है, लेकिन गच्छाधिपति आचार्यश्री अर्थात् आपश्री की धारणा, विचारणा के विरुद्ध कोई साधु-साध्वी साधु संघ में या श्रावक संघ मे स्थापना नहीं करेंगे।

7. जो भी वैरागी या वैरागिन हो, उसको तैयार करके स्नेह, श्रद्धा के केन्द्र आचार्यश्री के पास परीक्षा होकर जब तक आपश्री द्वारा आज्ञा प्राप्त न हो जाय, तब तक कोई साधु, साध्वी उनको दीक्षा न देंगे और सादड़ी आदि में तथा बाद में भी जो सिद्धान्त, चारित्र और सुसंगठन विषयक आदेश आदि दिये हैं और देंगे, उसे हम सन्त-सती वर्ग साकार रूप देने को हर समय तैयार हैं और रहेंगे। इति शुभम्।

उदयपुर
सं. 2018, वैशाख शुक्ला 3

आज्ञानवुर्ती
हम हैं आपके चरण-चंचरीक
साधु-साध्वीवृन्द

प्रार्थना उचित और सामयिक थी। आचार्यश्रीजी भी विचारमग्न हो गये। आपश्री संगठन को शुद्ध, सबल और अनुशासनबद्ध देखना चाहते थे तथा श्रावक संघ की आकांक्षा थी कि भविष्य की व्यवस्था के लिये रूपरेखा अभी से निर्धारित नहीं की गई तो अव्यवस्था फैल सकती है। अतः किसी-न-किसी प्रकार की निर्णयात्मक स्थिति का निश्चय हो जाना जरूरी था।

प्रमुख सन्तों से परामर्श

आचार्यश्रीजी म.सा. ने उपाचार्य पद का त्याग-पत्र देने के पश्चात् चतुर्विध संघ की ओर से त्याग-पत्र वापस लेने की प्रार्थना के उत्तर में यह अपेक्षा व्यक्त की थी कि जिन कारणों को लेकर त्याग-पत्र दिया गया है, यदि उनका समाधान हो जाता है तो आगे के उत्तरदायित्व का भार हल्का बन जायेगा और सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध संघ की होने वाली व्यवस्था की प्रार्थना का भी समाधान हो सकेगा। लेकिन त्यागपत्र को वापस लेने की प्रार्थना करने वाले महानुभावों ने प्रार्थना के अनुरूप कार्य करने की एवं आचार्यश्रीजी म.सा. के संतोषजनक समाधान की स्थिति का निर्माण काफी समय बाद भी नहीं किया और दिनोंदिन निर्ग्रन्थ श्रमण

संस्कृति का ह्रास उससे भी अधिक अनुभव होने लगा, तब मुख्य चारित्रवान् श्रमणों से परामर्श करना प्रारम्भ किया और उनको इस बात की भलीभांति जानकारी करवाई कि भगवान महावीर द्वारा निर्दिष्ट श्रमण संस्कृति का अमुक-अमुक तरीके से ह्रास हो रहा है। अतः इस समय श्रद्धालु श्रमणवर्ग को कटिबद्ध होकर निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षार्थ एक श्रद्धा, एक प्ररूपणा, एक समाचारी बनाकर सादड़ी सम्मेलन में स्वीकृत मूल उद्देश्य को साकार रूप देते हुए सुसंगठन का आदर्श उपस्थित करने की आवश्यकता है। अतः इस विषय में चारित्रवान सभी प्रमुख सन्तों को एकत्रित होकर भावी शासन की रूपरेखा स्पष्ट कर किसी भी चारित्रनिष्ठ, श्रद्धालु, प्रभावशाली संत को उत्तरदायित्व सौंपकर समाज के भविष्य को उज्ज्वल बनाना चाहिए।

स्पष्टवक्ता व्याख्यानवाचस्पति पं. रत्न श्री मदनलालजी म.सा., उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी म.सा. व उपाध्याय श्री हस्तीमलजी म.स. आदि से परामर्श किया गया, लेकिन इन मुनिवरों की तरफ से सोत्साह भावी संगठन की संतोषजनक रूपरेखा का उत्तर न मिला और बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म.सा. से भी परामर्श किया गया। उसमे दोनों तरफ की समाचारियों का मिलान कर श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना की एकरूपता बनाने के लिए प्रत्यक्ष के परामर्श की भी आवश्यकता थी।

बहुश्रुतजी ने पूज्य आचार्यश्री का नेतृत्व स्वीकार किया

इन्हीं दिनों बहुश्रुत पं.रत्न श्री समर्थमलजी म. खींचन से विहार करते हुए भोपालपुरा (उदयपुर) में आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में पधार गये। तब सभी बातों के विषय में खुलकर विचार-विमर्श हुआ और मौलिक रूप से एक श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना की प्रायः समाचारी बन गई और आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के नेतृत्व में चलने के स्वीकृतपत्र पर बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. ने अपने हस्ताक्षर कर दिये। स्वीकृति पत्र इस प्रकार है-

वन्दे वीरम्-णमो णणा तस्स

ता. 7.1.1961

आत्मकल्याण व आत्मशान्ति का एकमात्र अमोघ उपाय निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति है। अतः इसकी शुद्धता बनी रहना नितान्त आवश्यक है। वर्तमान में श्रमणवर्ग में कुछ विकृतियां प्रवेश कर गई हैं। उनको दूर करने के लिए पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने शान्त क्रान्ति का कदम उठाया, वह उचित एवं आदर्श है।

सिद्धान्त व चारित्र की सुरक्षापूर्वक संगठन को सुदृढ़ एवं चिरस्थायी बनाने की प्रबल इच्छा रखने वाला श्रमणवर्ग यह निर्णय करता है कि संयमी जीवन में प्रवेश पाई हुई विकृतियो

को दूर करने के लिए एवं सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि के हेतु हम शान्त क्रान्ति के जन्मदाता पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म. का नेतृत्व स्वीकार करते हैं।

ऊपर मुजब काम का हम हृदय से निश्चय करते हैं।

द. मुनि समर्थमल। सं. 2017, माघ कृ. 5।

सहयोग का अभाव, एकला चलोरे

अब रहा प्रश्न इसको अमली रूप देने का। बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. ने इसके लिए मैं पहले सतियों को भी पूछ लेता हूँ, आदि आशय के भाव फरमाकर वहां से विहार कर दिया और यह प्रतीक्षा की जा रही थी कि समाचार मिलने पर आगे का कार्यक्रम सोचा जा सकेगा। लेकिन काफी समय बीत जाने पर भी जब समाचार नहीं मिले तो श्री कानमलजी नाहटा आदि कुछ प्रमुख श्रावकों ने जानकारी की तो बहुश्रुत पं. रत्न श्री समर्थमलजी म. से उनको विदित हुआ कि सतियां नहीं मान रही हैं। इस पर श्री कानमलजी नाहटा ने अर्ज की कि आप सन्त और जितनी सतियां इसमें सहयोग दें उतना कार्य तो कर लीजिये। लेकिन इतनी साहस की स्थिति नहीं मालूम हुई और यह समाचार जब आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के पास पहुंचे तो आचार्यश्रीजी म. ने सोचा कि इतना प्रयत्न करने पर भी संत निर्ग्रन्थ संस्कृति की रक्षा के लिए साहस नहीं कर पा रहे हैं, यह कैसी स्थिति है ? कोई साहस करे या न करे, मुझे अपने इस जीवन के अन्दर शुद्ध भावना के साथ निर्ग्रन्थ संस्कृति की रक्षा का प्रयत्न करते रहना चाहिए। क्योंकि इस पंचमकाल में जो सर्वस्व के त्यागी कहलाते हैं, वे भी इस स्थिति से पीछे हट रहे हैं और अपने सामने ही निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को ऊपर उठाने का साहस नहीं कर पा रहे हैं तो वीतराग शासन की उज्ज्वलता रह सकेगी ? यह एक विचारणीय विषय है।

चतुर्विध संघ की सुव्यवस्था का भार पं. रत्न. मुनिश्री नानालालजी पर डालने का विचार

साधु जीवन के अन्दर मान, अपमान, सत्कार, सन्मान आदि भावनाओं को गौण करके शासन-सेवा में जुट जाना शासन-हितैषी प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है। इस कर्तव्य पथ पर जितने भी आरूढ हो सकें, वे ही इस कार्य को आगे बढ़ायें। मैंने जिन महानुभावों की आशा रखी, उन महानुभावों को अच्छी तरह से अवगत करा दिया गया, अतः मैं अपने प्रयत्नों की दृष्टि से स्पष्ट हूँ। अब मुझे सुसंगठन-प्रेमी चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर भी ध्यान देना आवश्यक हो गया है। इस प्रकार काफी विचार-मंथन के पश्चात् चतुर्विध संघ की व्यवस्था

का सर्वाधिकार एवं पूर्ण उत्तरदायित्व पं. र. मुनिश्री नानालालजी म.सा. को सौंपने के लिये दि. 18.4.61 को घोषणा कर निम्नलिखित आदेश फरमाया-

'चतुर्विध संघ की भावभीनी भक्ति को देखकर मेरे मन में भी अनेक कल्पनाएं उठ रही हैं। उन सभी कल्पनाओं को इस समय सविस्तार व्यक्त करूं, इतना अभी समय नहीं है और मेरा स्वास्थ्य भी उसके अनुकूल नहीं है।

'मेरे प्रति जो श्रद्धा प्रकट की जा रही है, उसको मै वीर प्रभु के शासनस्थ शुद्ध चारित्र व सिद्धान्त की समझकर वीतरागभाव को अर्पण करता हूँ।

'मैं एक निश्चित उद्देश्य व कल्पना को लेकर सादड़ी साधु-सम्मेलन में सम्मिलित हुआ और उसकी पूर्ति के लिये सतत प्रयत्नशील रहा, किन्तु मेरी आशा पूरी नहीं हुई। साथ ही ऐसी कई परिस्थितियों का निर्माण भी हुआ कि जिनके कारण ता. 30.11.60 को मुझे नवनिर्मित श्रमण संघ से पृथक् होने की घोषणा करनी पड़ी। उस घोषणा पर पुनः विचारणा करने के लिये श्रमणवर्ग व श्रावकवर्ग की तरफ से मेरे पास निवेदन आदि आये। मगर उनमें सुसंगठन सम्बन्धी मेरी कल्पनाओं एवं उत्पन्न कारणों के निराकरण की पूर्ति होती दिखाई नहीं दी, अतः आये हुए निवेदनो आदि का सामूहिक रूप से ता. 24.2.61 को एक उत्तर दिया। उसको भी पर्याप्त समय हो गया, किन्तु कोई संतोषजनक समाधान मेरे सामने नहीं आया।

'मैं सुसंगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ। मै अब भी यह चाहता हूँ कि मेरा संतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार, जैसा कि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व में श्रमण संगठन साकार रूप होकर सुदृढ बने अथवा मेरे संतोषजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासम्भव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आवद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ, श्रद्धावान एवं चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चातुर्मास, विहार व शिष्य परम्परा आदि सब उसी आचार्य के अधीन रहें।

'ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और अन्य सन्त-सतियों से भी मैं यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें। मुझे ऐसा विश्वास है कि जब ऐसी परिस्थिति पैदा होगी तब सुसंगठनप्रेमी सन्त-सतीवर्ग उसमें मिलने को तत्पर रहेंगे और श्रावक समुदाय भी उसमें अपना पूर्ण समर्थन देगा।

'मेरा स्वास्थ्य कुछ काल से जितना चाहिये उतना अनुकूल नहीं चल रहा है और सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध संघ मेरे से भावी व्यवस्था के लिये प्रार्थना कर रहा है कि आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसंगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन नहीं हो जायें, तब तक हमारा भावी आधार क्या हो आदि ? इस तरफ भी ध्यान देकर व्यवस्था करना मैं अपना कर्तव्य समझता हूँ।

'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसंगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन में न बन सके तो मेरे पश्चात् चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पं. मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ। उनको यह भी निर्देशन करता हूँ कि वे यथासंभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसंगठन बनाने मे सदैव प्रयत्नशील रहें और चतुर्विध संघ उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।'

घोषणा से सर्वत्र आनन्द छा गया

आचार्यश्रीजी म.सा. के उत्तराधिकारी के रूप मे पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी म.सा. का चयन इतना उपयुक्त था कि घोषणा से सर्वत्र आनन्द छा गया। घोषणा में जहां उत्तराधिकारी का नामांकन किया था, वहीं श्रमण संघ के सुसगठन की शुभ भावना और स्पष्ट मार्गदर्शन देकर समाज का आह्वान भी था। उक्त घोषणा में अस्त-व्यस्त श्रमण संघ को संभालने का काफी अवकाश था। लेकिन खेद है कि संगठन को सबल बनाने और समाजोत्थान के इस कार्य में अधिकारों की चकाचौंध में किसी ने लक्ष्य नहीं दिया और न आह्वान को सफल बनाने की ओर कोई प्रयास किया गया।

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी से श्रमण संघ की स्थिति पर विचार

इन्हीं दिनों उपाध्याय मुनिश्री हस्तीमलजी म.सा. आचार्यश्रीजी के दर्शन करने और सुख-साता पूछने उदयपुर पधारे। इसी प्रसंग में श्रमण संघ की स्थिति पर विचार हुआ और उपाध्यायश्री ने आचार्यश्रीजी से निवेदन किया कि वर्तमान सामाजिक वातावरण कैसे शुद्ध हो सकता है ? *इस पर आचार्यश्रीजी ने निम्नलिखित भाव फरमाये थे।*

'आपश्री (उपाध्यायश्रीजी) ने सांभोगिक, विसांगोभिक विषय को लेकर शिथिलाचार और ध्वनि-यन्त्र आदि के विषय में जो बातें लिखित रूप में भिजवाई थीं और आपश्री के परामर्श से भी जो हुआ, उन पर आपश्री दृढता के साथ कायम रहने की कृपा करें।

'अभी मरुधरकेशरी, रूपचन्दजी, सागरजी, मथुराजी एवं लछमाजी आदि के विषय को न छुआ जाये अर्थात् इनके साथ कोई सम्बन्ध न रखा जाये। इनके साथ साक्षात् व परम्परा से जिन्होंने सम्बन्ध रखा, उनका शुद्धिकरण हो और आपश्रीजी की लिखित बातों और परामर्श के प्रतिकूल जितनी श्रमणवर्ग की प्रवृत्तियाँ हुई हैं, उनको भी व्यवस्थानुसार प्रायश्चित्त दिया जाये। यदि वे प्रायश्चित्त न लें तो उनके साथ आपश्री का सांभोगिक सम्बन्ध नहीं रहना चाहिये।

'संगठन को सुदृढ़, मजबूत एवं स्थायी रखने के लिये श्रमण संघ ने जो उद्देश्य स्वीकार कर रखा है, जैसा कि श्रमणवर्ग के प्रमुख मुनिवरों ने अपने निवेदन में प्रकट किया है– पूज्यश्रीजी जिस प्रकार के संगठन की अपेक्षा रखते हैं, वैसा संगठन बनाने का श्रमण संघ का अन्तिम लक्ष्य निश्चित हुआ ही है – इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये आपश्री दृढ़ संकल्प के साथ प्रयत्नशील हों।

'यदि उपर्युक्त तीनों बातों को अमलीरूप देने में आपश्रीजी भी तैयार हैं, ऐसा मालूम हो जाये तो आपश्रीजी के साथ सम्बन्ध में कोई रुकावट नही रह जाती है।

'इसी प्रकार अन्य भी जो श्रमणवर्ग उपर्युक्त तीनों बातों में आबद्ध हो जाते हैं तो उनके साथ भी अपनी संभोग की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

'इसके बाद जिन-जिन का संभोग परस्पर खुला हो जाता है– उस सांभोगिक स्थिति में रहने वाले मुख्य-मुख्य मुनिवरों के परामर्शपूर्वक श्रमण जीवन के लक्ष्य के अनुरूप सिद्धान्त एवं शुद्ध चारित्र की रक्षा के लिये शास्त्रसम्मत एक समाचारी बनाई जाये।

'निश्चित की गई उस समाचारी के अनुकूल चलने वाले महानुभावों का समान उद्देश्य हो, श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना एक हो एवं शास्त्रीय पद्धति को सामने रखते हुए सुव्यवस्था की दृष्टि से दृढ़ अनुशासन की स्थिति का निर्माण हो एवं श्रमणवर्ग के उद्देश्य की पूर्णरूपेण पूर्ति हो, यानी इन सब बातों का अमली रूप हो जाये तो संगठन का मार्ग सुलभ होकर श्रमण संस्कृति की रक्षा हो सकती है। और फिर ऐसे श्रमण संघ में सिद्धान्त और चारित्रप्रेमी श्रमणों का रहना भी सुलभ हो सकता है।'

आचार्यश्रीजी के उक्त विचारों में श्रमण संघ की व्यवस्था, स्थायित्व के प्रश्न और संगठन के लक्ष्य का स्पष्ट चित्रण कर दिया था। और इसी के लिये आपश्री ने प्रयत्न किये थे और भविष्य में भी इसी भावना को साकाररूप में देखना चाहते थे।

लेकिन यह पारस्परिक वार्तालाप था और उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म. किसी का प्रतिनिधित्व लेकर नहीं पधारे थे। अतः आचार्यश्रीजी से श्रमण संघ में वापस पधारने की बारम्बार प्रार्थना दुहराने के अतिरिक्त आचार्यश्रीजी के श्रमण संघ से पृथक् होने के कारणो के समाधान का कोई समुचित मार्ग नहीं बता सके थे। अतः कोई निश्चित परिणाम नहीं निकल सका। सिर्फ पारस्परिक विचार-विनिमय के अतिरिक्त आगे कार्रवाई होने की आशा नही की जा सकी।

कॉन्फरेंस के शिष्टमंडल का आगमन

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म. ने पारस्परिक विचार-विनिमय कर और सुख-साता पूछकर

चातुर्मास हेतु सैलाना की ओर विहार कर दिया। श्रमण संघ की स्थिति में सुधार के कोई चिह्न नहीं दिख रहे थे और न पूर्ण मनोयोग से कोई इस ओर प्रयत्न ही कर रहा था। सामयिक पत्रों और मौखिक रूप से होने वाले प्रचार की अपेक्षा उसका शतांश भी विधेयात्मक रूप में नहीं हो रहा था। इससे समाज में आशंका व्याप्त थी कि क्या श्रमण संघ खंडित होगा ?

कॉन्फरेंस भी मूकदर्शक की तरह यह सब देख रही थी। अपने प्रति बढते हुए समाज के रोष की शांति या रोष को दूसरी दिशा में मोड़ने के लिये दि. 23.8.62 को कॉन्फरेंस की ओर से सेठ श्री अचलसिंहजी की अध्यक्षता में एक शिष्टमंडल आचार्यश्रीजी म.सा की सेवा में उपस्थित हुआ।

शिष्टमंडल ने आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में अर्ज की कि आपश्री अपना त्यागपत्र वापस लेकर श्रमण संघ का संचालन करें। हम जहां भी गये, सबने यही इच्छा प्रगट की है। इस समय आप के अनुशासन की समाज को आवश्यकता है। अत: आपश्री हमारी प्रार्थना की स्वीकृति फरमायें ताकि संगठन मजबूत हो। अब रूपचन्दजी का विषय तो समाप्त हो चुका है। अन्य प्रश्नों का समाधान शेष है।

इस पर आचार्यश्रीजी ने अपने भाव फरमाये कि रूपचन्दजी के लिये जैन प्रकाश में तो क्या प्रकट हुआ और प्रवृत्ति कुछ और ही हुई। यह जो-कुछ भी हुआ है, वह न तो विधिपूर्वक है और न संतोषजनक ही। किन्तु एक प्रकार से उपहास का विषय बनता जा रहा है।

श्रमण संघ का संगठन कैसा होना चाहिये, आदि के बारे में मैंने अपनी योजना समाज के सामने पहले ही रख दी है। फिर भी आप मेरे दो शब्द और लेना चाहते हैं तो सारांश यह है कि श्रमण संघ में रहते हुए मार्गदर्शन के रूप में दी गई व्यवस्थाओं आदि के अनुसार श्रमणवर्ग पालन करे और प्रतिकूल प्रवृत्तियाँ करने वालों का शुद्धिकरण होकर अन्य उत्पन्न अनुचित प्रवृत्तियों का सुधार हो तथा श्रमण संघ के निर्धारित लक्ष्य के अनुसार एक आचार्य की आज्ञा से शिक्षा-दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास, विहार आदि होने को, जिसकी मुख्य-मुख्य मुनियों में पुनः पुष्टि की है, अमली रूप के लिये श्रमणवर्ग दृढसंकल्पी हो। ऐसी संतोषजनक स्थिति स्पष्ट रूप से मेरे सामने आये तो उस पर सोचने के लिये मैं सदैव तैयार हूँ। मैं सुसंगठन को हृदय से चाहता हूँ।

आचार्यश्रीजी के भाव स्पष्ट थे। लेकिन उपर्युक्त बातों का शिष्टमंडल के पास कोई समाधान नहीं था और इतना साहस भी नहीं था कि योग्य कार्य के लिये कुछ कार्रवाई कर सके। अतः किसी प्रकार का निश्चय किये बिना शिष्टमंडल दि. 24.8.62 को वापस लौट गया।

युवाचार्य पद की भूमिका

कॉन्फरेंस का शिष्टमंडल आया-गया हो गया था। लेकिन इसके बाद भी पूज्यश्रीजी प्रतीक्षा करते रहे कि श्रमण संघीय स्थिति में सुधार के लिये प्रयत्न हों। लेकिन ऐसा कुछ भी प्रतीत नहीं हुआ।

श्रमण संघ की अव्यवस्था के कारण स्पष्ट थे और चतुर्विध संघ का प्रत्येक सदस्य उनके समाधान की अपेक्षा रखता था। लेकिन समस्याओं के समाधान का जो रूप सामने आया और रूपचन्दजी की नई दीक्षा का निर्णय जैन प्रकाश में प्रकाशित कराके भी उसका जिस रीति से पालन किया या कराया और नई दीक्षा न देकर केवल 4 वर्ष 10 माह के दीक्षाछेद का जो प्रायश्चित्त दिया गया, वह भी शास्त्रसंमत आधार पर नहीं था। समाज ने यह सब स्थिति देखी तो सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध संघ निराश हो गया और आचार्यश्रीजी के चरणों में समाज-संगठन को दृढ़ बनाने हेतु एक निश्चित व्यवस्था देने के लिये पुनः आग्रहभरी विनती करने लगा।

आचार्यश्रीजी म.सा. ने बार-बार होने वाली इन विनतियों पर विचार किया कि निर्णय तो ऐसा हो जिससे किसी प्रकार की उलझन पैदा न हो और चतुर्विध संघ को भी संतोष हो जाये। इसलिये वीर-शासनप्रेमी चतुर्विध संघ को इस समय उस परम्परा में स्थान देना उपयुक्त होगा जिससे कि परपरागत महापुरुषों के नाम से त्याग-वैराग्य की भावना जाग्रत् रहे। यही सोचकर पूज्यश्रीजी म.सा. ने महातपोधनी, त्यागी महापुरुष पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा. की परम्परा रखना हितकर समझा।

परम्परा रखना हितकर समझते हुए भी बार-बार यह भलामण दी कि मेरी कल्पना के अनुसार श्रमण संघीय व्यवस्था होती हो तो उसमें शामिल होने के लिये सदा तत्पर रहना तथा वैसी स्थिति का निर्माण करने के लिये सचेष्ट रहना।

इस भलामण और त्याग-वैराग्य की परम्परा पुनर्जीवित रखने व उसकी व्यवस्था हेतु पं. मुनिश्री नानालालजी म सा. को युवाचार्य घोषित किया।

पूज्य आचार्यश्रीजी के चरणों में चतुर्विध संघ की विनती

इस सम्बन्ध में चतुर्विध संघ की विनती इस प्रकार है–

पूज्य आचार्यप्रवर,

पुनीत चरणों में हमारा शत-शत वंदन !

संवत् 2018 के ग्रीष्मकाल में आपश्री के शरीर में असातावेदनीय कर्मोदय हुआ था, तब

सारा समाज एकदम चिन्ताग्रस्त हो गया था। उस स्थिति से हमारे मन में नाना प्रकार के संकल्प-विकल्प उत्पन्न हुए थे। तब हमने अनुभव किया था कि हमारी समाजरूपी नौका डावांडोल हो रही है। उस समय जब एक ओर अन्तर् में आपके स्वास्थ्यलाभ की शुभ कामनाएं कार्यरत थीं तो दूसरी ओर हमें समाज के भविष्य की भी चिन्ता हो रही थी। हम जीवों को आत्मकल्याण के लिये आपका मार्गदर्शन सुलभ था, इसलिये हमारे हृदय में भावनाएं उठ रही थीं कि उसी प्रकार मार्गदर्शन हमको आगे भी मिलता रहे तो कितना अच्छा हो! उन्हीं अन्तर् भावनाओं से प्रेरित होकर उस समय आपकी पवित्र सेवा में प्रार्थना की थी कि भगवन्! आपके पश्चात् भी हमको वैसा ही मार्गदर्शन मिलता रहे। इसलिये चतुर्विध संघ किसका आज्ञानुवर्ती रहे ? इसकी घोषणा करने की महती कृपा करें।

'आपने हमारी उस प्रार्थना पर विचार कर पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. को आपके पश्चात् चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये सौंपा था। उस घोषणा से हमारी चिन्ताएं बहुत दूर हो गई थीं। इधर आपका स्वास्थ्य भी सुधरने लगा तो हमारे आनन्द का ठिकाना नहीं रहा।

'आपकी उक्त घोषणा से भविष्य के लिये जहां हम आश्वस्त हुए, वहां हमारा ध्यान पं. मुनिश्री नानालालजी में और अधिक केन्द्रित होता गया और हमारी भावनाएं उनकी गतिविधि की परख में भी चलने लगीं।

'महामने, इस गतिविधि से हमने अनुभव किया कि आप न केवल शुद्ध संयमाराधक, उच्च निष्ठावान, ज्ञानगंभीर महापुरुष हैं बल्कि आप में परखने की भी एक अद्भुत क्षमता है। आप द्वारा आपके उत्तराधिकारी के रूप में पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. का योग्य चयन आपकी परख का स्पष्ट उदाहरण है।

'पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. की संयमाराधना के प्रति उत्कट अभिरुचि और बड़ों के प्रति आदरभाव के विनीत गुण एवं शास्त्रीय ज्ञानगुण से हमको संतोष है। हम उनके प्रति भी अपनी भक्तिपूर्वक श्रद्धा व्यक्त करते हैं।

'अभी असातावेदनीय कर्मोदय ने आपके स्वास्थ्य को पुनः झकझोर दिया है। इससे हमारे मन पर पुनः भार है। यद्यपि पं. मुनिश्री नानालालजी म. को आपके योग्य उत्तराधिकारी के रूप में पाकर हम गर्व अनुभव करते हैं, तथापि समाज की दिन-प्रतिदिन बिगड़ती हुई स्थिति एवं संयममार्ग में आई हुई विकृतियों को देखकर हमारी आपश्री से आंतरिक प्रार्थना है कि समाज-संगठन को सुदृढ बनाने के लिये पं. मुनिश्री नानालालजी म. को युवाचार्य घोषित कर आपके वरदहस्त द्वारा ही चादर प्रदान की जाये। आपश्री के लक्ष्यानुरूप संगठन का यह बीज आपश्री के आशीर्वाद से पुष्पित, पल्लवित होकर समाज में आत्म-साधना की अभिरुचि

को और बढाता हुआ कल्याणदायक सिद्ध होगा।

'हमें विश्वास है कि आपश्री हमारी इस प्रार्थना अर अवश्य ध्यान देने की कृपा करेंगे।

'अन्त में हम आपश्री के अनुयायी श्रावक-श्राविका आपको विश्वास दिलाते हैं कि हम पं. मुनिश्री नानालालजी म. की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य कर अपना कर्तव्यपालन करेंगे।

हम हैं आपके श्रावकवृन्द

(उदयपुर राजस्थान)
मिती आश्विन कृष्णा 9, सं. 2019, दि. 22.9.62

आचार्यश्री गणेश की युवाचार्य पद हेतु घोषणा

चतुर्विध संघ की विनती के प्रत्युत्तर में आचार्यश्रीजी ने ये भाव फरमाये–

'लगभग डेढ़ वर्ष पूर्व जब अचानक मेरे शरीर पर रोग ने आक्रमण किया और मेरा स्वास्थ्य निर्बल होता जा रहा था तब शासन-हितैषी, सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध संघ में चिन्ता व्याप्त हो गई थी। उस समय मुझसे प्रार्थना की गई थी कि–

'आपश्री की कल्पना आदि के अनुसार जब तक सुसंगठन होकर सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व एक आचार्य के आधीन नहीं हो जाये, तब तक हमारा भावी आधार क्या हो ?

'समाज की स्थिति को देखते हुए चतुर्विध संघ के मन में ऐसे विचार आना स्वाभाविक ही था। उनकी उपर्युक्त भावना की प्रार्थना आने पर समाज की स्थिति और अन्यान्य बातों पर गम्भीरता से मनन करके कुछ व्यवस्था करना मैंने अपना कर्तव्य समझा। उस समय मैंने यही सोचा कि चतुर्विध संघ की चिन्ता निर्मूल नहीं है। अतः मैंने दि. 18 अप्रैल, 1961 को सुसंगठन सम्बन्धी अपनी निम्न भावना व्यक्त करते हुए कहा था कि–

'मैं सुसंगठन का किसी से कम हिमायती नहीं हूँ। मैं अब भी यही चाहता हूँ कि मेरा संतोषजनक समाधान होकर मेरी कल्पना और उद्देश्य के अनुसार, जैसाकि मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, एक के नेतृत्व में श्रमण संगठन साकाररूप होकर सुदृढ़ बने अथवा मेरे संतोषजनक समाधानपूर्वक समस्त मुनिमंडल या यथासंभव जितने भी मुनिवृन्द शास्त्रसम्मत एक समाचारी में आबद्ध होकर अपने में से किसी एक शास्त्रज्ञ, श्रद्धावान एवं चारित्रनिष्ठ मुनिवर को आचार्य मानें और शिक्षा, दीक्षा, चार्तुमास, विहार व शिष्य-परंपरा आदि सब उन्हीं आचार्य के अधीन रहे। ऐसी स्थिति बनती हो तो मैं सदैव तैयार हूँ और सन्त-सतियों से भी यही अपेक्षा करता हूँ कि जब भी ऐसी स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनकरण करने को तैयार रहें.....।

इन भावों को व्यक्त करते हुए चतुर्विध संघ की प्रार्थना को लक्ष्य करके आदेश दिया था कि– 'यदि मेरी कल्पना व भावना आदि के अनुसार सुसंगठन की सुव्यवस्था मेरे जीवन

में न बन सके तो मेरे पश्चात् चतुर्विध संघ की व्यवस्था का सर्वाधिकार तथा पूर्ण उत्तरदायित्व भविष्य के लिये पंडित मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ कि वे यथासंभव मेरी कल्पना आदि के अनुसार सुसंगठन बनाने में प्रयत्नशील रहें और चतुर्विध संघ उनकी आज्ञाओं को शिरोधार्य करता हुआ ज्ञान-दर्शन-चारित्र की अभिवृद्धि करता रहे।

'उक्त भावना एवं निर्देशन में सन्निहित भावों से सुज्ञ वर्ग को ज्ञात होना चाहिये कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना पर ध्यान देकर जहाँ मैंने एक व्यवस्था दी, वहां शास्त्रसम्मत एक समाचारी मे आबद्ध होकर सर्वाधिकारसम्पन्न एक के नेतृत्व मे श्रमण संगठन बनता हो तो उसमें विलीन होने के लिये भी मार्ग खुला रखा है। आज भी मेरे वही विचार हैं।

'अभी गत ज्येष्ठ मास में उपाध्याय पं. रत्नश्री हस्तीमलजी म. उदयपुर पधारे तब श्रमण संघ सम्बन्धी उनसे वार्त्तालाप हुआ था। बाद में पर्युषण पर्व से पूर्व अ. भा. श्वे. जैन कॉन्फरेंस का एक शिष्टमंडल भी आया था। उससे भी श्रमण संघ सम्बन्धी चर्चा-वार्त्ता हुई थी। सभी ने सुसंगठन की मेरी उक्त भावना एवं विचारों को भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के रक्षार्थ सहायक माना। परन्तु इतना समय व्यतीत हो जाने के बाद और चर्चा-विचारणा के उपरान्त भी तदनुसार पालन करने-कराने का कहीं से कोई चिह्न दृष्टिगोचर नहीं हो रहा है।

'सं. 2009 में सादड़ी सम्मेलन में स्थानकवासी जैन धर्मानुयायी विभिन्न संप्रदायों के मुनिवरों में मिलकर भिन्न-भिन्न परम्परा और समाचारी मे एकता लाकर एकीकरण, पारस्परिक प्रेममय ऐक्यवृद्धि एवं संयममार्ग में उत्पन्न विकृतियों को निर्मूल करने की दृष्टि से एक आचार्य के नेतृत्व में एक और अविभाज्य श्रमण संघ की स्थापना की थी। वहां एकत्रित सब प्रतिनिधि मुनिवरों ने मिलकर सर्वसम्मति से उपाचार्य पद पर मुझे आसीन कर श्रमण संघ-संचालन का पूर्ण उत्तरदायित्व मुझे सौंपा। तब मेरी इच्छा नहीं होते हुए भी मैंने प्रतिनिधि मुनिवरों को मान देकर श्रमण संस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये उस गुरुतर उत्तरदायित्व को संघसेवार्थ स्वीकार किया और जो भी समस्याएं मेरे सामने आईं अथवा मुझे सौंपी गईं, उन पर न्याय-नीतिपूर्वक विचार करके आत्मसाक्षी से निर्णय दिये। यद्यपि विधि-विधान के अनुसार ऐसी समस्याओं का निर्णय लेने का मुझे पूर्ण अधिकार था, परन्तु मेरी दृष्टि में संघ सेवा ही मुख्य रही, अतः जहां भी मुझे आवश्यकता अनुभव हुई, मैंने अधिकारी मुनिवरों आदि से परामर्श लेकर निर्णय दिये। इतना सब होते हुए भी ऐसे निर्णयों की न केवल मौन अवज्ञा ही की गई, बल्कि विपरीत अध्यादेशों आदि द्वारा उनकी स्पष्ट अवहेलना भी की गई और कराई गई। आश्चर्य तो इस बात का रहा कि मेरे द्वारा किये गये श्रमण संघीय ऐसे निर्णय पर जब भी किसी ने मुझसे चर्चा की तो जहां तक मुझे स्मरण है किसी ने भी उन निर्णयों में, मुख्यरूप से अमुक त्रुटियां या कमियां रहीं, ऐसा नहीं कहा। फिर

भी उनकी पालना नहीं हुई। इस प्रकार न्याय-नीति और अनुशासन की अवहेलना होते हुए भी मैंने धैर्यपूर्वक और प्रतीक्षा की, परन्तु जब मुझे लगा कि अब मेरे जैसे व्यक्ति का श्रमण संघ में रहना व्यर्थ है तब मुझे विवश होकर उस नवनिर्मित श्रमण संघ से सकारण पृथक् होना पड़ा, परन्तु मार्ग खुला रखा।

'बाद में श्रमण संघीय अधिकारी मुनिवरों एवं श्रावकसंघों द्वारा मेरे त्यागपत्र सम्बन्धी विचार पर पुनर्विचार के पत्र, प्रार्थना आदि आये। उनमें मैंने मेरे प्रति उनके प्रेम की झलक तो देखी मगर जिन कारणो को लेकर मैं श्रमण संघ से पृथक् हुआ, उनके निराकरण का कोई संतोषजनक समाधान, आश्वासन नहीं दिखा। इसलिए मैंने सधन्यवाद उनकी प्रेमभावना की सराहना करते हुए जब तक मेरा संतोषजनक समाधान नहीं हो जाये, तब तक क्या कहूँ, ऐसा उत्तर दिला दिया।

'यद्यपि इन सब बातों को काफी समय हो गया, तथापि मुझे आशा थी कि सादडी सम्मेलन में स्वीकार किये हुए उद्देश्य की पूर्ति हेतु मेरी योजना को कार्यान्वित करने का कहीं से सक्रिय कदम उठेगा, परन्तु अभी पिछले दिनों जब विकेन्द्रीकरण की योजना मेरे सामने आई और रूपचन्दजी के विषय को शास्त्रीय मर्यादाओं को भी अलग रखकर जिस ढंग से निपटा हुआ मान लिया गया तो अब मुझे ऐसा लग रहा है कि मेरी भावनानुकूल एक आचार्य के नेतृत्व के पूर्व स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति की सब मुनिवरों द्वारा मिलकर कम-से-कम निकट भविष्य में सम्भावना नहीं है।

'इन दिनों मेरा स्वास्थ्य पुनः गड़बड़ा गया है और शरीर में अधिक निर्बलता अनुभव हो रही है। इधर समाज की अस्थिर स्थिति और नैराश्य से [illegible] महानुभाव भी विचलित हैं और चाहते हैं कि संघ-संचालन का कुछ ठोस नि[illegible] जाये। [illegible] इसकी आवश्यकता अनुभव कर रहा हूँ। इसलिए पं. मुनिश्री [illegible] को, [illegible] की सम्मति से परमप्रतापी, तपोधन, [illegible] संत [illegible] की पाट-परम्परा पर युवाचार्य घोषित [illegible] रहेंगे और मेरे बाद में आचार्यपद के [illegible] शोभा [illegible] मेरी [illegible]

'यदाकदा मेरे कान पर एक [illegible] है [illegible]
श्रमण संघ से पृथक् हो जाने [illegible]
अब अवसर आ गया है कि इस [illegible]

'सादडी में निर्मित श्रमण संघ [illegible] के
अखंड रहे तब तक के लिये मैं [illegible]

'श्रमण संघ-संचालन की अवधि [illegible]
यंत्र के उपयोग नहीं करने के [illegible]

व्यवस्थाओ के विपरीत आचार्यश्री द्वारा अध्यादेश आदि निकाले गये, जिससे तत्काल तो दिल्ली में विराजित पंजाबी मुनिवरो में और बाद में अन्यत्र भी सांभोगिक सम्बन्ध-विच्छेद हो गये। इस प्रकार विभेद पडकर संघ-ऐक्य योजना अखंडित नहीं रही। मेरी उपर्युक्त शर्त के अनुसार मैं उस नवनिर्मित श्रमण संघ से पृथक् होने में उसी समय से स्वतन्त्र था, परन्तु इधर समाज में मेरी उक्त व्यवस्थाओं का पालन कराने के प्रयत्न चल रहे थे, इसलिये जावरा से निवेदन देकर मेरी सांभोगिक स्थिति को मर्यादित करते हुए मैंने सावधानी दिला दी थी और त्यागपत्र नहीं देकर प्रतीक्षा करता रहा। इसके बाद लम्बे काल तक प्रतीक्षा करने के उपरान्त भी जब टूटे हुए सांभोगिक सम्बन्ध में सुधार नहीं हुआ और दूसरी-दूसरी बातों द्वारा व्यवस्था और बिगड़ने लगी तो मुझे विवश होकर उपाचार्य पद से त्यागपत्र देकर श्रमण संघ से पृथक् होना पड़ा।

'इस प्रकार श्रमण संघ से पृथक् हो जाने के बाद मैं मेरे अंग-रूप श्रमणवर्ग सहित अपने-आप ही यथापूर्व स्थिति में आ गया। इसमें और विशेष कुछ कहने का नहीं रहता।•

'पं. मुनिश्री नानालालजी को युवाचार्य पदवी प्रदान के बाद भी जहां तक श्रमणवर्ग के साथ सांभोगिक सम्बन्ध आदि व्यवस्था का प्रश्न है, उसके लिये मैं पूर्व में व्यक्त कर चुका हूँ, तदनुसार जिनके साथ जैसा योग्य जान पडेगा वैसा सम्बन्ध आदि रखा जा सकेगा।

'मेरे में श्रद्धा रखने वाले संत-सतीवर्ग एवं श्रावक-श्राविकाएं पं. मुनिश्री नानालालजी की आज्ञाओं को शिरोधार्य करते हुए इनको पूर्णरूपेण सहयोग देवें और ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उत्तरोत्तर अभिवृद्धि कर रहें।

'मैं यहां पुनः निर्देश करता हूँ कि मेरी भावना और कल्पना आदि के अनुसार जब भी ऐसी (सुसंगठन की) स्थिति का निर्माण हो, उसमें अपना विलीनीकरण करने को तैयार रहें और सुसंगठन बनाने में सदा प्रयत्नशील रहें।

'संघ-संचालन के बृहत् कार्य में संत-सतियों एवं श्रावक-श्राविकाओ ने मुझे सहयोग दिया उसके लिये मैं उनका पूर्ण आभार मानता हूँ।

'श्रमण संघ के कार्यकाल में तथा बाद में मेरे द्वारा किसी का दिल दुखा हो तो मैं एक बार पुनः अन्तःकरण में क्षमा-याचना करता हूँ। इति शुभम्।'

उदयपुर, आसौज कृष्णा 6, सं. 2019, दि. 22 सितम्बर, 1962

चतुर्विध संघ में हर्ष की लहर

आचार्यश्रीजी की इस घोषणा से चतुर्विध संघ मे हर्ष की लहर व्याप्त हो गयी। हर्ष होना

• अर्थात् उपाचार्यश्रीजी श्रमणसंघ से पृथक् होते ही अपनी पूर्व परम्परा के आचार्य स्वत. हो जाते हैं।

स्वाभाविक ही था कि आचार्यश्रीजी ने अपना उत्तरदायित्व एक ऐसे प्रतिभासम्पन्न चारित्रशील मुनिराजश्री को सौंप था जो उनकी भावनाओं को मूर्तरूप देने में प्राणपण से चेष्टा करने की भावना रखते हैं तथा विवेकशील, विनयी, संयमप्रेमी, विद्वान विचारक हैं।

दूसरा कारण यह था कि सन्त-परम्परा को अक्षुण्ण रखने के लिये आचार्यश्रीजी ने इस अस्वस्थ अवस्था में भी एक व्यवस्था देकर भविष्य के लिये स्पष्ट आदेश दे दिया था। संत-जन सैद्धान्तिक सुसंगठन के लिये सदैव तत्पर रहे हैं और इसके लिये मान-सम्मान की अपेक्षा साधना को सर्वोपरि माना है।

आचार्यश्रीजी का स्वास्थ्य कमजोर होता जा रहा था। इन दिनों में तो विशेषरूप से स्वास्थ्य में उतार-चढाव आ रहे थे और ऐसा कुछ नहीं कह सकते थे कि शरीर की भविष्य में क्या स्थिति बने।

चतुर्विध संघ के व्यवस्था-सम्बन्धी विचार व्यक्त कर देने के पश्चात् आचार्यश्रीजी म.सा. ने इसी समय आत्मनिवेदन सम्बन्धी विचारों को भी व्यक्त कर देने का उचित अवसर मानकर अपने हार्दिक उद्‌गार व्यक्त किये।

आचार्यश्री गणेश के हार्दिक उद्‌गार

मेरा शरीर इन वर्षों में कुछ कमजोर-सा चल रहा है और इन दिनों में तो कमजोरी अधिक अनुभव हो रही है। यह शरीर भौतिक पिंड है। इसको एक रोज छोड़ना ही है। सम्भव है, कभी यह अचानक अपनी प्रक्रिया को बदल दे तो ऐसी दशा में, जब तक मेरी ज्ञान-शक्ति अच्छी तरह काम कर रही है, हिताहित को पहिचानने का प्रज्ञा-प्रकाश भलीभांति विद्यमान है, तब तक सभी से क्षमायाचना कर लेना हितकर है। यह सोच, मैं अपनी आलोचना करके सभी प्राणियों से और खासकर चतुर्विध संघ से शुद्ध हृदयपूर्वक क्षमायाचना करता हूँ।

इस समय मेरा 73वां वर्ष चल रहा है। दीक्षा लिये भी 56 वर्ष होने जा रहे हैं। इस कार्यकाल में मैंने यथास्थान रहते हुए, जिसको हृदय से सत्य मानता रहा हूँ, उसका आदेश-उपदेश के रूप में व्यवहार करता रहा हूँ। कई व्यक्तियों से मेरा सैद्धान्तिक मतभेद भी रहा है। सत्य और न्याय का अन्वेषण करने आदि की दृष्टि से उनके साथ विचार-विमर्श व चर्चा आदि का प्रसंग भी आया है। उस समय भी जहां तक उपयोग रहा है, वहां तक मेरा उन व्यक्तियों के साथ केवल आचार-विचार सम्बन्धी भेद रहा है, पर आत्मिक दृष्टि से मैंने उनको अपना मित्र ही समझा है और अब भी समझता हूँ। फिर भी आत्मा की विशेष शुद्धि के लिये उन सभी व्यक्तियो से क्षमा मांगता हूँ।

मेरा साधुवर्ग के साथ गुरु और शिष्य के रूप में, शासक और शास्य के रूप में, सेव्य

और सेवक के रूप में तथा दूसरे कई प्रकार से घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है और इसी तरह सादड़ी में निर्मित श्रमण संघ के साथ सम्बन्ध रहा है। मैंने शासनोन्नति एवं निर्ग्रन्थ श्रमण सस्कृति की रक्षा के लिये, उत्पन्न विकृतियों को दूर करने के लिये एवं सुसंगठन के लिये व्यवस्थाएं आदि दीं। दी गई व्यवस्थाओं आदि का जिन्होंने पालन नहीं किया, उनके साथ अनुशासनात्मक कार्यवाही भी करनी पडी और अपने विचार संघ के सामने रखे। उनसे किसी के चित्त को किसी प्रकार का कष्ट पहुंचा हो तो-

खामेमि सव्वे जीवा सव्वे जीवा खमन्तु मे।
मित्ती मे सव्व भूएसु वैरं मज्झं न केणई।।

इस शास्त्रीय पाठ से क्षमत-क्षमापना करता हुआ-

सत्त्वेषु मैत्री गुणिषु प्रमोदम्, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव।।

इसके साथ मेरी आत्मा को जोड़ता हूँ।

पं. र. मुनिश्री नानालालजी म.सा. को चतुर्विध संघ की व्यवस्था का उत्तरादायित्व सौंपने से चतुर्विध संघ की प्रसन्नता का पारावार नहीं था किन्तु युवाचार्यश्री के लिये यह आत्मनिरीक्षण का अवसर था। अतः आपश्री ने निम्नलिखित आशाय के भाव व्यक्त किये–

युवाचार्यश्री के हृदयोद्‌गार

आज जो-कुछ हुआ, उससे मेरा चित्त प्रसन्न नहीं है, अपितु कुण्ठित ही है। मुझे इस समय कुछ बोलने का भी उत्साह नहीं है। अभी जो-कुछ हुआ उसकी मैं तो आवश्यकता अनुभव नहीं करता। फिर भी महापुरुषों के हृदय में महान् आशय रहा हुआ होता है। उस आशय को हम समझने का प्रयत्न करें- यह हमारे लिये वरदानस्वरूप हो सकता है। इस भावना से दो शब्द बोल रहा हूँ।

गत वर्ष अक्षय तृतीया के दिन मेरा नाम-निर्देश किया गया। उस समय मैंने चतुर्विध संघ के समक्ष प्रार्थना की थी कि मेरा नाम इस चित्र से हटा लिया जाकर किसी अन्य महामुनि को इस गुरुतर उत्तरदायित्व को दिया जाये। चतुर्विध संघ मेरी ओर से पूज्यश्री के चरणों में भी प्रार्थना कर मुझे मुक्त करावे। परन्तु उस समय मुझे प्रभाव डालकर मौन किया गया। गुरुदेव के सन्मुख विनययुक्त प्रार्थना ही तो कर सकता था। उसे स्वीकार करना, नहीं करना उनके हाथ था।

अभी पूज्य आचार्यश्री का स्वास्थ्य जब पुनः निर्वल बना तो लोगों में हलचल मच गई। लोग नाना प्रकार की बातें करने लगे। मेरे कान पर भी शब्द आये तो विनयपूर्वक मैंने आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना की कि आपश्री जो-कुछ भी सोचें, किसी अन्य योग्य मुनिवर के लिये सोचें। परन्तु आचार्यश्री ने फरमाया कि विना पूछे तुम्हारे बोलने की आवश्यकता नहीं। जब तुमसे पूछा जाय तब उत्तर देना आदि। इतना फरमाते समय जब मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्री को इससे कुछ कष्ट हो रहा है तो मैं मौन हो गया। परन्तु प्रमुख श्रावकों से कहा कि आप लोग ही विनयपूर्वक आचार्यश्री के चरणों में प्रार्थना कर इससे मेरे नाम को हटवा दें। लेकिन समय की बात कहूँ या अन्य कुछ, ये महानुभाव भी मेरे सहायक नहीं बने, बल्कि जो-कुछ अभी हुआ, इसी के लिये मुझे कहते रहे। अधिकांश प्रमुख श्रावक तो एक कदम और आगे बढ़कर किसी-न-किसी रूप में मुझको भी कहते रहे कि आचार्यश्री की आज्ञा का आपको पालन करना होगा। आप मनाही कैसे कर रहे हैं ! श्री जुगराजजी सेठिया, श्री सुन्दरलालजी तातेड, श्री हीरालालजी नांदेचा आदि ने अपने-अपने ढग से एकान्त में बहुत-कुछ कहा। वे तो यहां तक कह बैठे कि क्या आचार्यश्री के चित्त को शांति देना नहीं चाहते आदि। इस प्रकार मुझे चुप कर दिया। अन्य भी कई सज्जनों ने इसी प्रकार कुछ-न-कुछ कहा। मगर मेरे विचारों के समर्थन में कोई नहीं बोला। अब मैं इस प्रसंग के उपस्थित होने पर नतमस्तक हो सुन रहा हूँ। मेरी अन्तरात्मा का मुख्य लक्ष्य और ही है। मैं तो विद्यार्थी जीवन मे रहते हुए अपने ज्ञान-दर्शन-चारित्र की आराधना के साथ जिस उद्देश्य से निकला हूँ, इस उद्देश्य की पूर्ति करना चाहता हूँ। इसलिये मुझे उसी तरह की स्थिति में रखा जाये तो बहुत आनंदित हूँ। एक बात और, चतुर्विध संघ ने आचार्यश्री के चरणों में पहले भी प्रार्थना की थी और आज उन्हीं श्रीचरणों में पुनः प्रार्थना कर रहा है। लेकिन चतुर्विध संघ को यह तो विदित ही होगा कि ऐसा करके उसने अपने ऊपर एक महान उत्तरादायित्व ले लिया है। इसलिये इस गुरुतर उत्तरदायित्व का परिवहन चतुर्विध संघ के प्रत्येक सदस्य को करना ही होगा। मुझे जो भार सौंपा जा रहा है, उसमें चतुर्विध संघ की भी जवाबदारी है। इसलिये एक दृष्टि से मैं चिन्ता जैसी बात अनुभव नही करता हूँ, क्योंकि मैं तो बालक विद्यार्थी हूँ। माता की गोद में बालक जैसे सभी चिन्ताओं से मुक्त रहता है, उसी प्रकार मैं माता की गोद के समान चतुर्विध संघ और आचार्यश्री के बीच बैठा हूँ। चतुर्विध संघ मुझे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की उन्नति के लिये सहायक हो और आचार्यश्री का वरदहस्त मेरे सिर पर हमेशा बना रहे, जिससे मेरा व चतुर्विध संघ का जीवन मंगलमय प्रसंग में बीते। यही शुभकामना है।

समय अधिक हो गया है और आचार्यश्री को अस्वस्थता के कारण कष्ट हो रहा है, अतः अब अधिक बोलना नहीं चाहता।

युवाचार्यश्री के उपर्युक्त प्रवचन के उपरान्त सभा विसर्जित हुई।

चादरप्रदान समारोह का निश्चय

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. की संघ-व्यवस्था विषयक घोषणा से चतुर्विध संघ को संतोष हुआ। अब उसकी आकांक्षा थी कि युवाचार्य चादर-प्रदान की तिथि निश्चित करके चादर-प्रदान समारोह मनाया जाये। संघ ने विचार-विमर्श करके सं. 2019, मिती आसोज शुक्ला 2, रविवार, दि. 30 सितम्बर, 1962 का दिवस समारोह के लिये निर्धारित किया।

समारोह आठ दिन बाद था और इतने अल्प समय मे विभिन्न श्रीसघो को सूचना देने एवं समारोह में आने वाले श्रावक-श्राविकाओं के आवास आदि की व्यवस्था करने का महत्त्वपूर्ण कार्य था। लेकिन उदयपुर श्रीसंघ समारोह को सफल बनाने के लिये सोत्साह संलग्न हो गया। तार, टेलीफोन, पत्र आदि के माध्यम से देश के समस्त श्रीसंघों को समारोह में उपस्थित होने के आमंत्रण-पत्र भेज दिये तथा अनेक स्थानों पर अपने प्रतिनिधियों को भी भेजकर आमंत्रण दिया तथा आवास आदि की व्यवस्था भी बहुत ही सुव्यवस्थित कर ली।

समय थोड़ा था किन्तु सूचना मिलते ही बाहर से हजारों भाई-बहिन समारोह में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर में एकत्रित होने लगे। मार्गो, चौराहों, गली, गलियारो में, जहां भी देखो वहीं विभिन्न नगरवासियों के समूह दिखलाई देते थे।

समारोह दिवस का दृश्य

आसोज शुक्ला 2 के प्रातः भुवनभास्कर अंशुमाली की स्वर्णिम किरणों के झांकने के साथ ही आबाल-वृद्ध नर-नारी टोलियों में पूज्य आचार्यश्रीजी के वासस्थान पंचायती नोहरे की ओर बढ चले। प्रातःकालीन मंगलगीतों से दिशाएं मुखरित हो रही थीं।

प्राकृतिक सुषमा में एक नवोन्मेष दृष्टिगोचर हो रहा था। शीतल, मंद पवन के झोके शरदकालीन सुखद वातावरण की अनुभूति करा रहे थे। हरे-भरे खेतों से सुसज्जित प्रकृति नटी इस समारोह के स्वागत में नवधान्यो की अंजलि अर्पित कर रही थी। बडे-बड़े सरोवर अपने सरोरुहों के विकास से समारोह के स्वागत और अभिनन्दन में संलग्न थे। विहगवृंद दूर गगन में कलरव करते हुए समारोह की शोभा-प्रसार मे प्रयत्नशील थे। मानो प्रकृति का कण-कण समारोह के समर्थन में अपना सहयोग अर्पित कर रहा हो।

सूरजपोल के विस्तृत प्रांगण में समारोह के आयोजन का प्रबन्ध किया गया था।

राजभवन की विशाल सीढियां मंच थीं। समारोह होने मे समय था, किन्तु उसके पूर्व ही हजारों व्यक्ति वहां एकत्रित हो चुके थे। प्रबन्ध-व्यवस्था इतनी चतुराई से की गई थी कि दूर बैठा प्रत्येक दर्शक मंच पर होने वाली विधि को देख सकता था। आमने-सामने की राजमहल की अट्टालिकाएं महिलाओं और बच्चों से खचाखच भरी हुई थीं।

आचार्यश्रीजी म.सा. का स्वास्थ्य ऐसा नहीं था जो पैदल विहार कर समारोहस्थल पर पधार सकें। अतः पचायती नोहरे से संतमंडली एवं अन्य श्रावक-श्राविकाओं के समूह से परिवेष्टित डोली में विराजकर सन्तों के ही सहारे करीब आठ बजे समारोह-स्थान पर पधारे। उपस्थित जनसमूह ने श्रद्धावनत हो स्वागत किया। इस समय उपस्थिति करीब 25-30 हजार मानवमेदनी की होगी। ऐसा प्रतीत होता था मानो समस्त उदयपुर नगर आज इसी एक ही स्थान पर आकर केन्द्रित हो गया है।

सीढियों पर स्थित पाटों पर एक ओर सन्त समुदाय और सीढियों पर दूसरी ओर साध्वीवृन्द विराजमान था। मध्य में पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. एक ऊंचे पाटे पर विराज रहे थे। पाटे के सामने ही मेवाड़ाधिपति महाराणा श्री भगवतसिंहजी बहादुर अपनी राजकीय पोशाक में आसीन थे। कुछ पास ही राजकीय अधिकारी, नगर के संभ्रांत प्रतिष्ठित नागरिक बैठे थे और उनके पीछे जनसाधारण का अपार समूह उपस्थित था। यह दृश्य ऐसा प्रतीत होता था कि तीर्थंकर भगवान की धर्मदेशना का लाभ प्राप्त करने के लिये समवसरण का ही रूपक हो।

स्वस्तिवाचन और नन्दीसूत्र के स्वाध्याय के उपरान्त तपस्वी मुनिश्री केशूलालजी म.सा. आदि सभी सन्तो ने कुंकुम-केशर चिह्नित चादर पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को ओढाई और आपश्री ने वही चादर युवाचार्यश्री पं. र. मुनिश्री नानालालजी म.सा. को ओढाकर चतुर्विध संघ की व्यवस्था का दायित्व सौंप दिया। अन्य मुनिराजों ने चादर ओढाने में हाथ लगाकर अपना सहयोग दिया एवं उपस्थित जनसमुदाय ने जयघोष के साथ इसका अनुमोदन किया।

चादर प्रदान करने के उपरांत पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. ने प्रवचन फरमाया, जिसका सारांश इस प्रकार है—

आचार्यश्री गणेश का आशीर्वादात्मक प्रवचन

'श्रमण जीवन के लिये जिन-आज्ञा ही मुख्यतः विधि-विधान है। उसकी सुरक्षा के लिये जो भी प्रवृत्ति की जाये वह सब वैधानिक है। इसी लक्ष्य को ध्यान में रखकर मैंने समाज के अन्दर कार्य किया है और कर रहा हूँ। आज युवाचार्य चादर-प्रदान का प्रसंग है।

'यह शुभ्रवर्ण सफेद चादर, जो मैंने युवाचार्यश्री नानालालजी को ओढाई है, वह सुधर्मास्वामी, जम्बूस्वामी जैसे महापुरुषों की परम्परा के अनुसार है।

'श्वेतवर्ण पवित्रता का द्योतक है। शुक्लध्यान की याद दिलाता है। जीवन मे निष्कलंक रहने की सूचना करता है। यह चादर अनेक तारों से बनी हुई है। एक तार में अनेक स्थूल तंतु हैं। एक-एक तंतु में असंख्य स्कन्ध हैं और एक-एक स्कन्ध में अनन्त-अनन्त परमाणु भरे हैं। जिस प्रकार ये सारे अनन्त परमाणु एक चादर के रूप में गठित हुए हैं। इसी प्रकार संसार में व्याप्त सूक्ष्म और बादर, सभी जीव-आत्माएं आत्मत्व की दृष्टि से एक हैं, लेकिन विकास की विभिन्नता एवं तत्त्व की दृष्टि से पूर्ण स्वतंत्र, पृथक् अस्तित्व रखती हैं। उस सम्बन्ध को ठीक तरह से समझ कर यथयोग्य सम्बन्ध का परस्पर पालन करना आवश्यक है। उसमें से मुख्यतया विश्वमैत्री की एवं विश्व-कल्याण की भावना प्रत्येक मानव के दिल मे होनी ही चाहिये। यह भावना स्वार्थ आदि विकारो से रहित, निर्मल, स्वच्छ चादर के समान पवित्र हो। ऐसी पवित्र भावना में आबद्ध होने वाले प्राणी को अपना चरमोत्कर्ष साधने में समाज का एक रूपक बनाना भी आवश्यक होता है। धार्मिक दृष्टि से उसका रूपक चतुर्विध संघ है। संघ है तो उसका संचालन भी होना आवश्यक है। अतः उसके अनुरूप संचालन के लिये आचार्य का पद बडा ही महत्त्वपूर्ण है एवं उसका उत्तरदायित्व भी बडा गुरुतर है। यह जिसके कंधों पर रहा होता है, उसका कर्तव्य हो जाता है कि चतुर्विध संघ की प्रार्थना को ध्यान में रखकर उस उत्तरदायित्व को किसी योग्य साधक पर रखे। तदनुसार मैं अपना सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व पं. मुनिश्री नानालालजी को सौंपता हूँ। ये मेरे युवाचार्य हैं। चतुर्विध श्रीसंघ का कर्तव्य है कि वह इनके वचनों को 'सद्दयामि, पत्तयामि, रोययामि' के रूप मे स्वीकार करे। युवाचार्यजी का भी कर्तव्य है कि वे धर्ममार्ग में सदा जाग्रत् रहते हुए आस्था और विवेकपूर्वक चतुर्विध संघ को धर्ममार्ग मे प्रवृत्त करते रहें'।

इसके अनन्तर पूज्य आचार्यश्रीजी के भावों की विशद् व्याख्या करते हुए पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म.सा. ने अपने समर्थनात्मक प्रवचन में फरमाया–

पं. श्री सत्येन्दमुनिजी का समर्थनात्मक प्रवचन

आज इस विशाल चतुर्विध संघ के सामने पूज्य आचार्यदेव ने अपनी चादर यानी अपना उत्तराधिकार और इस संघ का भार, जो अपने कंधों पर था, वह अपने से उतारकर पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. के आठवें पाट पर युवाचार्यश्री नानालालजी म. के कंधों पर रखा है। मुझे आशा है कि जिस योग्यता से प्रेरित होकर आचार्यश्री ने इनको अपना उत्तराधिकारी घोषित किया है, उसी योग्यता से युवाचार्यश्री नानालालजी म. यह भार वहन कर यह पद ग्रहण करेंगे।

'आचार्य का जो पद है, वह बडा बोझिल है। चतुर्विध संघ का भार आज से पं. मुनिश्री नानालालजी पर आ रहा है। पं. मुनिश्री नानालालजी म. बहुत होशियार एवं ज्ञान-दर्शन-चारित्र-संपन्न व साहसी हैं और कुशलतापूर्वक चारित्र-तप से ठोस रूप से चल रहे हैं। आप इस भार को ग्रहण करेंगे। साथ-ही-साथ यह बात कह देना चाहता हूँ कि यह भार अकेले का नहीं है। सबके सहयोग की आवश्यकता है। अतः चतुर्विध संघ युवाचार्य पं. मुनिश्री नानालालजी म. को सहयोग देने को तैयार रहे और इनका सहयोग लेने को भी तत्पर रहे। यद्यपि आप साहसी हैं, फिर भी बिना सहयोग के काम नहीं चल सकता। हमारा आपके साथ सदा सहयोग रहेगा।

'शास्त्र में जम्बूवृक्ष का नाम आता है। पर यह जम्बूवृक्ष अन्य वृक्षों के साथ विशेष शोभायमान होता है। वैसे ही युवाचार्यश्री संत-सतियों एवं श्रावक-श्राविकावर्ग से शोभायमान हों। यह मेरी हार्दिक इच्छा और कामना है कि इनके द्वारा सदैव शासन की उन्नति हो।

'विशेष प्रसन्नता की बात यह है कि आचार्यश्री ने अस्वस्थ होते हुए भी आज अपने बीच विराजकर युवाचार्य पद की चादर प्रदान की है। उदयपुर महाराणा सा. भी इस समारोह में उपस्थित हैं, इससे आज के इस समारोह में चार चांद लग गये हैं।

'अन्त में मेरा यही कहना है कि युवाचार्यश्रीजी परस्पर सहयोग से चतुर्विध संघ के भार को अच्छी तरह से वहन करते हुए शासन की शोभा बढायेंगे, ऐसी आशा है।'

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. ने चादर प्रदान कर अपना उत्तरदायित्व युवाचार्यश्री पं. र. मुनिश्री नानालालजी म.सा. को सौंप दिया था। उपस्थित श्रमणवर्ग ने हाथ लगाकर अपना समर्थन व्यक्त किया था एवं पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म.सा. ने साधु-साध्वीवृन्द के प्रतिनिधि के रूप में प्रवचन फरमाकर अनुमोदन भी चतुर्विध संघ के समक्ष प्रस्तुत कर दिया था।

इस समर्पण, समर्थन एवं अनुमोदन के प्रति अपने भावों को व्यक्त करते हुए युवाचार्यश्रीजी ने अपने जो विचार व्यक्त किये, वे इस प्रकार हैं–

युवाचार्यश्रीजी का प्रवचन

'मैं इस महती सभा में अपने विचार रखने के लिये खड़ा हुआ हूँ। मेरी इच्छा इस भार को ग्रहण करने की नहीं थी, क्योंकि यह पद बहुत महत्त्वपूर्ण एवं जिम्मेदारी का है। मेरे विचार से इस पद पर किसी योग्य महामुनि को नियुक्त करने की आवश्यकता थी, पर स्थिति की गंभीरता ने इस प्रश्न को भी गंभीर बना दिया और मुझको ही इसके लिये चुना गया।

यह प्रयत्न श्रमण संस्कृति भी रक्षा के लिए- 'सादडी में निर्मित श्रमण संघ ने एक आचार्य की अधीनता में ही शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त, चातुर्मास आदि होने का तथा साधु-संस्था

में उत्पन्न विकृतियों को दूर करने का जो लक्ष्य स्थापित किया था, उसकी प्रमुख मुनिवरों द्वारा बाद में पुष्टि तो हुई किन्तु तदनुसार वह अमल में नहीं आया और अनुभव हुआ कि उस लक्ष्य के प्रतिकूल दिशा में ही प्रवृत्ति होने लगी। पूज्यश्रीजी ने समय-समय पर समाज को एतद्विषयक सावधानी दिलाई, पर उस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। जिसके परिणामस्वरूप निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के उपर भी एक बहुत बड़ा खतरा उपस्थित हो गया। पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. इसको सहन नहीं कर सके और निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षा के लिये पूज्य आचार्यश्री के ये प्रयत्न समाज के सामने आ रहे हैं, अन्य भावना से नहीं।

उद्देश्य की पूर्ति के लिये सब द्वार खुले- 'पूज्य आचार्यश्री ने अब भी उपुर्यक्त लक्ष्य (उद्देश्य) की पूर्ति के लिये सब द्वार खुले रखे हैं। अतः निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की रक्षार्थ पूज्य आचार्यश्री का संतोषजनक समाधान होकर सादडी सम्मेलन में निश्चित किये गये उद्देश्य की पूर्ति सही माने में जिस समय भी होगी, उसी समय यह सुसंगठनप्रेमी चतुर्विध संघ पीछे रहने वाला नहीं है, ऐसा मेरा विश्वास है।

चादर का महत्त्व- 'मैं अपने-आप को विद्यार्थी के रूप मे समझता हूँ और अपने अन्दर इस पद की योग्यता अनुभव नहीं कर रहा हूँ। मैंने तो विद्यार्थी जीवन के अन्दर रहते हुए श्रावकपद से ऊपर उठकर गुरुदेव के चरणों में मुनिपद ग्रहण किया। यह मुनिपद भी अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण चीज है। यह भार भी कोई कम नही है। यदि यह भी ठीक ढंग से वहन हो जाये तो मैं समझूं कि मेरा जीवन ठीक ढंग से आगे बढ़ रहा है। मैं तो इसी भावना को लेकर चल रहा था, लेकिन आचार्यश्री की भावना और चतुर्विध सघ की यह इच्छा हुई कि इस महान् उत्तरदायित्व का यह भार इस विद्यार्थी पर डाला जाये। इसमें आचार्यश्री जैसे महापुरुष का क्या आशय रहा है, इसको हमें समझना है। मैं इसमें हस्तक्षेप तो नहीं करता, क्योंकि यह चादर जो मुझे प्रदान की गई है, वह भारतीय संस्कृति में अपूर्व द्योतक मानी गई है। जहां संसार में अन्य पदवियां दी जाकर उनका पदक आदि द्वारा महत्त्व आंका जाता है, वहां यह चादर एक निराला ही महत्त्व रखती है।

'चादर की परम्परा निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को द्योतित करने के लिये नवीन नहीं है, बल्कि यह तो विशिष्ट ज्ञानियों व पूर्वाचार्यो द्वारा चतुर्विध संघ के सामने चिरकाल से चली आ रही है। यद्यपि व्यक्ति अलग-अलग रूप में रहकर विकास कर सकता है, लेकिन जहां सामूहिक रूप बनकर समाज बनता है, वहां व्यक्ति अलग न रहकर सामाजिक रूप से प्रवेश करता है तब उसका प्रतीक कोई-न-कोई चिह्न अवश्य होता है। यह जो चादर दी गई है, वह धार्मिक दृष्टि का ही एक चिह्न है।

'चादर के विषय में पूज्य आचार्यश्रीजी ने मुझे फरमाया कि यह चादर सुधर्मास्वामी आदि

आचार्यों से चली आ रही है। जितने भी आचार्य तथा महापुरुष हुए हैं, उन्होंने पाट-परम्परा पर चादर धारण की है। यह चादर श्वेत एवं उज्ज्वल है। निष्कलंक, पवित्र तथा धब्बों से रहित है। इसके समान अपने जीवन में स्वच्छता, निर्मलता, पवित्रता एवं उज्ज्वलता आदि रखने का जो संदेश चादर के रूप में पूज्य आचार्यश्री द्वारा मुझे प्राप्त हुआ है, उसको मैं आप तक पहुंचा रहा हूँ।

'आज का यह चतुर्विध संघ जिस रूप मे यहां एकत्रित हुआ है उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता है। इस प्रकार की जो भी घटनाएं घटित होती हैं और उनमें जो धार्मिक संस्कार गतिमान हैं उन संस्कारों को जीवन में उतारकर उन्नत बनाने की दृष्टि से हम सबको प्रत्येक भारतीय के प्रति आत्मीय सम्बन्ध कायम करना है।

'संसार में जितने भी प्राणी हैं, सब एक हैं। आत्मीय दृष्टि में हममें कोई भेद नहीं है। हम सब विश्वकल्याण की कामना लेकर चलें। इसका प्रतीक कोई-न-कोई चाहिए ही। संसार में अनेक तरह के रंग हैं जो अलग-अलग रूप में आते हैं। राष्ट्रीय झंडे में तीन रंग हैं। ये तीनों रंग तीन भावनाओं को व्यक्त करने वाले हैं। लेकिन इस चादर का रंग केवल सफेद है। जो सात्त्विक गुण और शांति का प्रतीक है। यह बताता है कि इस भारत के अन्दर रहने वाले प्रत्येक भाई-भाई में शान्ति, प्रेम एवं सात्त्विक गुणों का संचार हो, हमारा जीवन ठीक ढंग से चले और चतुर्विध संघ अपना कर्तव्य लेकर निरंतर आगे बढ़े।

सहयोग के लिए तैयार - 'पूज्य आचार्यश्री के साथ-साथ मुनिवृन्द भी इस चादर को हाथ लगाकर मुझको देने की प्रक्रिया में सम्मिलित हुए हैं। दूसरे मुनियो व साध्वियो की शुभकामनाएं प्राप्त हुई हैं। पंजाबी मुनिवर पं. र. श्री सत्येन्द्रमुनिजी, पं. श्री लखपतरायजी व पं. मुनिश्री पद्मशयनजी म. सुदूर पंजाबभूमि से यहां पधारे। तपस्वी केशूलालजी म., जो बेले-बेले की तपस्या करते हैं, मुनिश्री इन्द्रचन्दजी म. व लघु मुनिश्री बाबूलालजी म. आदि एवं साध्वीवृन्द आदि सब इस भावना को व्यक्त कर रहे हैं कि वे मुझे सहयोग देते हुए निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को आगे बढ़ायेंगे।

हितैषी भावना अविस्मरणीय - 'आज हम सब पूज्य आचार्यश्री के चरणों में बैठे हैं। पूज्य आचार्यश्रीजी की सेवा का लाभ कई भाइयों ने लिया है और ले रहे हैं। यहां उपस्थित डॉ. शूरवीरसिंहजी, डा. न्यातीजी, एवं प्राकृतिक चिकित्सक डा. हिम्मतसिंहजी और अनुपस्थित डा. शर्मा सा. डा. माथुर सा., डा. पी एम ओ., डा. ऋषि एवं डा. गुप्ता सा. आदि महानुभाव तथा वैद्य बाबूभाई ने अनन्य भाव से आचार्यश्री की सेवा की है। उनकी यह हितैषी भावना कभी भुलाई नहीं जा सकती।

'महाराणा सा. भी आज यहां उपस्थित हुए हैं। आपको देखकर मुझे आपके पूर्वज महाराणा प्रताप की स्मृति हो आई है, जिन्होंने धर्म के खातिर अनेक दुखों को सहते हुए

अकेले रहना मंजूर किया, घास की रोटियां खाईं, परन्तु धर्म से विमुख नही हुए। उन्हीं महाराणा प्रताप की पुण्यभूमि उदयपुर में पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. जैसे महापुरुष का जन्म हुआ है। यह महापुरुष शारीरिक दृष्टि से यद्यपि कमजोर है, परन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से इनमे इतनी शक्ति है कि वह तरुणो में भी नहीं है।

सम्प्रदाय मात्र कलेवर- 'निष्पक्ष भावना से जो यह चादर ओढाई गई है, इसमें ऊँचा-नीचा धागा नहीं है। सब धागे संगठित हैं, समान हैं, पतले अथवा मोटे नहीं हैं। ठीक इसी तरह इस चादर को ओढाने में सम्मिलित होने वाले चतुर्विध संघ को भी मन, वचन, काया से एकरूपता लाना है। श्रद्धा, प्ररूपणा, स्पर्शना का भी एकरूप होना नितांत आवश्यक है। मैं कहता हूँ कि प्रत्येक भाई, चाहे वह जैनी हो या अन्य धर्मावलम्बी हो, किसी भी संप्रदाय का नाम धराता हो, प्रत्येक की आत्मा ईश्वर के रूप में समान है। मैं तो संप्रदाय को ऊपर का कलेवर मात्र ही समझता हूँ।

'आज हम पर बडा भारी उत्तरदायित्व आया है। मैं चाहता हूँ कि आप और हम, सब विद्यार्थी के रूप में होकर मानव-जीवन को उन्नत बनाकर इसी गुरुतर उत्तरदायित्व को निभायें। बीच में जो भी बाधाएं आयें उनको सम्यक् रीति से पाटने का एवं विश्व में अशांति के बादल मंडरा रहे हैं, उनको अपने-अपने स्थान पर रहकर दूर करने का प्रयत्न करें।

उत्तरदायित्व चतुर्विध संघ पर- 'मैं आपसे कहूँगा कि इस चादर का उत्तरदायित्व चतुर्विध संघ पर पूर्णरूपेण आ गया है। चतुर्विध संघ ने अपने ऊपर बडी-भारी जिम्मेदारी ली है। मैं एक विद्यार्थी हूँ। आपका कर्तव्य है कि आप मेरे सहयोगी बनें। मेरे में कोई त्रुटि दिखाई दे तो आप लोगों का कर्तव्य है कि आप मरे सहायक बनकर त्रुटि को निकालकर मेरे जीवन को उन्नत बनावें। मैं एक साधारण-सा व्यक्ति हूँ। आचार्यदेव के चरणों में आने से पूर्व मेरा जीवन लक्ष्यविहीन था। इन महापुरुष ने मुझ ग्रामीण छोटे-से व्यक्ति को अपने चरणों में स्थान देकर मेरे पर जो उपकार किया है, उससे मैं जन्म-जन्मान्तर में भी उऋण नहीं हो सकूंगा। आज ये महापुरुष शरीर से अस्वस्थ हैं, आप सब यही चाहते हैं कि आचार्यश्री स्वास्थ्यलाभ कर दीर्घायु बनें।

वरदहस्त मस्तक बना रहे- 'मेरे अन्तर् में क्या-क्या भावनाएं काम कर रही हैं, उनको शब्दों द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये कठिन हो रहा है। इनके श्रीचरणों में रहते हुए आज जो मैं संयम पालने में अपने-आप को थोड़ा तैयार कर पाया हूँ, यह सब इन्हीं के आशीर्वाद एवं कृपादृष्टि का प्रताप है। परन्तु अभी मुझे आचार्यश्री से बहुत-कुछ और प्राप्त करना है। इसलिये मेरे अन्तर्मन में रह-रहकर यही भावना उठती है कि प्रभो ! पूज्यश्री का वरदहस्त मेरे मस्तक पर दीर्घकाल तक बना रहे, ताकि इनकी साधना के अनुभव द्वारा मैं अपनी साधना

में यत्किंचित कुछ बढ़ोतरी करके अपने-आप को धन्य मान सकूं। आप लोगों की भावना का समूह विराट् एवं महान् है। यह भावना मुझे भी उन्नत बनाने में सहायक होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

'आचार्यश्री ने जो भार मुझ पर डाला है वह चतुर्विध संघ के सहयोग से ही प्रगतिशील हो सकता है। मानव-जीवन की उच्चता प्राप्त करने में और इस पद के भार को वहन करने में शक्ति प्राप्त हो तथा शान्तिपूर्वक निर्बाधगति से प्रगति होती रहे, यही आचार्यश्री से शुभाशीर्वाद चाहता हूँ।

शुभकामना की चाह- 'मैं इस पद को अपने-आप के लिये महत्त्व नहीं दे रहा हूँ। मैं तो यह समझता हूँ कि पूज्य आचार्यश्री ने इस प्रकार चतुर्विध संघ की सेवा में मुझे रखा है। अतः मैं चतुर्विध संघ का छोटा-सा सेवक हूँ। चतुर्विध संघ मेरे लिये माता-पिता के तुल्य है। चतुर्विध संघ के बीच मुझे रखा है तो बीच में रहने वाले की सुरक्षा की जिम्मेदारी चतुर्विध संघ पर आ जाती है। यहां पर उपस्थित साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका तथा अन्य महानुभावों से भी मैं शुभकामना चाहूँगा कि मेरे से इस विश्व के अन्दर जनकल्याण, विश्वमैत्री एवं विश्वशांति तथा निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति का संरक्षण हो सके, ऐसा शुभ संकल्प आप लोगों का हो।

उदयपुर संघ की सेवा चिरस्मरणीय- 'उदयपुर संघ ने पूज्य आचार्यश्री की सेवा आदि करने का जो अपूर्व कार्य कर दिखाया है, उस कार्य को सारा चतुर्विध संघ कभी भूल नहीं सकता, यह सदा के लिये चिरस्मरणीय रहेगा। उदयपुर संघ का आभार इस रूप में साधुमार्गी समाज पर रहेगा।

महाराणा को क्षत्रिय धर्म अपनाने का आह्वान- 'भगवान महावीर क्षत्रिय थे। वे राजसिंहासन का परित्याग करके जनपद के बीच आये। जनता के दुःखों की अनुभूति की। दुःख-निवारण के उपायो को उन्होंने घोर साधना करके ढूंढ निकाला। कष्ट और बाधाओं को सहन कर निर्मल ज्योति जगाई। उन्हीं भगवान महावीर की यह शासन-परमपरा चल रही है। इसमें क्षत्रिय वीरों को विशेष भाग लेने की महती आवश्यकता है।

'यहां उपस्थित महाराणा साहब भी क्षत्रिय हैं। अतः आपके ऊपर भी उत्तरदायित्व है। महाराणा सा. को भी मैं तो कहूँगा कि आप वास्तविक क्षत्रिय धर्म को अपनाकर भगवान महावीर की तरह राज छोड़कर धर्म का उपदेश दें तो जनकल्याण की भावना के साथ भगवान महावीर के शासन की अच्छी सेवा हो सकती है।

सम्पत्ति से मोह दूर कर शासन-सेवा करें- 'आप सेठिया लोग एवं अन्य साधारण प्रजाजन यहाँ एकत्रित हुए हैं, वे अपनी संपत्ति से चिपककर न रहें। अपनी सेठाई की बात को अलग रखकर संपत्ति पर से मोह दूर करके शासन की सेवा करें अथवा त्याग की भावना

से कुछ उदारता करके जनशान्ति के लिये कुछ करके दिखावें। आप भी क्षत्रिय हैं। वीर हैं। आज बनिये हो गये तो क्या हुआ ? आप में भी वही क्षत्रिय तेज है। आप अपने निज रूप को पहचानें और जनमानस की भावनाओं को लक्ष्य में रखकर अपने कर्तव्य पर विशेष ध्यान देवें।

'इस चादर का अभिप्राय शुभ भावना का प्रतीक भी है। शुभ भावनाएं उज्ज्वल होती हैं और यह चादर भी उज्ज्वल एवं खादी की होकर सादी है। सादगी ही आजादगी का प्रतीक है। पूज्य गुरुदेव फरमाया करते हैं कि 'सादगी ही आजादगी है और फैशन ही फांसी है।' अतः भारत के अन्दर इस सादगी की तरफ भी विशिष्ट ध्यान देने की आवश्यकता है।

'मैं इस चादर पर पूरे विचार नहीं रख पाया हूँ। फिर कभी प्रसंगोपात्त समय मिलने पर इस पर कुछ विशेष प्रकाश डालने का भाव रखता हूँ। इस चादर की तरह जीवन को उज्ज्वल, सादा, पवित्र, निर्मल एव मनसा, वाचा, कर्मणा एकरूपता में रखकर सहयोगी बनेंगे तो यह संघ चिरकाल तक उन्नत दशा पर पहुंचेगा। इसी भावना को रखते हुए मैं अपना वक्तव्य पूरा करता हूँ।'

चतुर्विध संघ की ओर से समर्थन

समारोह में पूज्य आचार्यश्री, समस्त उपस्थित साधु-साध्वीवृन्द की ओर से पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म.सा. एवं युवाचार्यश्री नानालालजी म.सा. के प्रवचनों के पश्चात् बीकानेर श्रीसंघ की ओर से श्री जेठमलजी सेठिया तथा अन्य समस्त श्रीसंघों की ओर से श्री कानमलजी नाहटा ने युवाचार्य चादर-प्रदान का समर्थन किया।

उपस्थित चतुर्विध संघ की ओर से समर्थन हो जाने के अनंतर चादर-प्रदान के लिये अपना समर्थन देने एवं समारोह की सफलता के लिये अनेक संत-मुनिराजों एवं श्रावक संघों से प्राप्त सदेशों को उदयपुर श्रीसंघ के मन्त्री श्री तख्तसिंहजी पानगडिया ने पढ़कर सुनाया।

प्रकृति का भी पूर्ण समर्थन

समारोह करीब सवा घंटे में सम्पन्न हुआ। उक्त अवसर पर करीब नौ बजे तक मेघमंडल में सूर्य भी छिपा रहा। सिर्फ उस समय एक क्षण के लिये पूर्ण प्रभामंडल के साथ प्रगट हुआ जब पूज्य आचार्यश्रीजी ने युवाचार्यश्रीजी को चादर ओढ़ाई। इस प्रकार इस चादर-प्रदान का समर्थन जनमेदनी द्वारा तो किया ही गया था, किन्तु चादर ओढ़ाते समय प्रगट सूर्य-प्रकाश से प्रकृति का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त हुआ कि ये संत-मुनिराज अपने ज्ञान-सूर्य के प्रकाश से समस्त विश्व को प्रकाशित करेंगे।

❖ ❖ ❖

अन्तिम पटाक्षेप

लेखनी कुंठित हुई

जो लेखनी महापुरुष आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के उदय, विकास का चित्रण करने में जितनी उत्साही थी, उतनी ही उनके जीवन का अन्तिम चरण चित्रित करने में अनेक भावनाओं से ग्रस्त होकर कुण्ठित हो गई है और घनीभूत वेदना से इस अवसर की संक्षिप्त रूपरेखा प्रस्तुत कर विश्राम के लिये आतुर है।

इस संक्षिप्त रूपरेखा को प्रस्तुत करने के अवसर पर भी उनकी महानता के आदर्शों का चित्रण करेगी। क्योंकि 'छूकर जिनके चरण, अमर हो गया मरण'। वे जन-जन की श्रद्धा के आस्पद है। आज भी उनकी साधना सर्वभूतहितेरतः की कामना वाले प्रत्येक विवेकशील को श्रद्धावनत कर देती है। उनका जाज्वल्यमान जीवन आकाशदीप की तरह सद्‌विवेक की प्रेरणा देकर सदैव जीवन के उच्चादर्शों को प्राप्त करने के लिये प्रेरित कर रहा है।

वे श्रमण थे। उनका श्रम, शम, सम आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये था। उनका श्रामण्य जीवन-शुद्धि के लिये, आत्म-साधना के लिये सर्वोच्च पुरुषार्थ था और 'गृहीत इव केशेपु मृत्युना धर्ममाचरेत्' की उक्ति को सामने रखते हुए अपने पौरुष को व्यक्त करने का संकेत करता था।

अतः एक ऐसे महापुरुष के अन्तिम चरण को चित्रित करने के लिये किंचित् प्रयास कर रही है।

निर्भयता का अन्तिम डग

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. संघ-व्यवस्था के दायित्व से उपरत हो चुके थे। अब गुरु-शिष्य, शास्य-शासक, सेव्य-सेवक, पूज्य-पूजक आदि उपाधियों से परे होकर स्वयं में ही केन्द्रित हो चुके थे। अब आत्मा ही ध्याता, ध्येय, ध्यान बन चुकी थी।

शरीर की उपाधि अवश्य साथ थी किन्तु अब उससे इतना ही सम्बन्ध रह गया था कि आध्यात्मिक चिन्तन-मनन में जितनी दूर तक यह सहयोगी बना रहे तो ठीक, अन्यथा यह भी साथ छोड़ना चाहे तो छोड़ सकती है। यह केंचुली आज नहीं तो कल, अपने-आप ही विलग हो जायेगी, अतः इससे भी प्रीति कहां तक निभ सकेगी !

ऐसे ही विचारों में रमण करते हुए पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. कैंसर जैसे महाव्याधिग्रस्त जर्जरित शरीर की उपेक्षा कर आत्मचिन्तन में लीन रहने लगे।

आचार्यश्रीजी का शारीरिक स्वास्थ्य दिनोंदिन गंभीर रूप धारण कर रहा था। डाक्टर शूरवीरसिंहजी एवं उनके सहयोगी अन्य डाक्टर श्री न्याति, श्री माथुर बड़ी ही लगन एवं भावना से उपचार करते आ रहे थे। सबकी एक ही भावना थी कि इन महान् आत्मार्थी संत की सेवा-परिचर्या कर स्वस्थ बनायें। जिस तरह से चतुर्विध संघ आचार्यश्रीजी के दीर्घायु होने की कामना करता था, उसी प्रकार चिकित्सकगण भी उनके उपचार में लीन हो स्वास्थ्य के लिये प्रयत्नशील थे। उनकी बुद्धि, विवेक, कौशल इसी एक प्रयत्न के लिये केन्द्रित थे। लेकिन मानवीय प्रयत्नों की भी एक सीमा होती है। वे क्रम-क्रम से असफल होने लगे और आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति दिनोंदिन निर्बल होने लगी।

दीपशिखा की लौ की तरह यह जीवन-ज्योति कब विलीन हो जाये, इसके बारे में कोई सोच भी नहीं सकता था। आशंकाओं के बीच मनों में शंका बनी रहती थी। लेकिन आचार्यश्रीजी म.सा. इस गिरती हुई शारीरिक स्थिति में सचेत थे। वे आत्मजयी इस स्थिति में भी प्रफुल्ल थे। उन्होंने अनेक बार युवाचार्यश्री, समीपस्थ संतमंडल एव अनेक श्रावकों के समक्ष संथारा ग्रहण करने की इच्छा प्रगट की। चिकित्सकों का अभिमत था कि आचार्यश्रीजी के स्वास्थ्य के बारे में कुछ भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है। अतः चतुर्विध संघ आचार्यश्रीजी से बराबर निवेदन करता रहा कि गुरुदेव आप संथारे के लिये शीघ्रता न करें, अवसर आने पर आपकी सेवा में स्वयं अर्ज कर देंगे। लेकिन वह दिन भी आया जब आचार्यश्रीजी म.सा. ने मृत्यु-महोत्सव मनाने की घोषणा करदी।

संथारा की संक्षिप्त झांकी

पूज्य आचार्यश्रीजी के रोगाक्रान्त शरीर के विलय होने की संभावना-सी चल रही थी। संथारा अंगीकार करने के छह-सात दिन पूर्व अन्नाहार का त्याग कर ही दिया था, सिर्फ प्रवाही पदार्थ लेते थे। लेकिन उन पदार्थों के प्रति भी विरक्ति-सी थी।

अपनी शारीरिक स्थिति के बारे में आचार्यश्रीजी डाक्टर शूरवीरसिंहजी से पूछते रहते थे कि डाक्टर सा. मुझे स्थिति से परिचित रखना, स्थिति बतलाने में संकोच मत करना। डा. सा. प्रत्युत्तर में निवेदन करते थे कि जो भी स्थिति होगी, बिना हिचक के बतला दूंगा। इसमें मोह को आड़े नहीं आने दूंगा। आचार्यश्रीजी म.सा. सदैव आत्मध्यान में लीन रहते थे। औषधि आदि से भी विरक्ति हो चुकी थी किन्तु चतुर्विध संघ के संतोष के लिये कभी-कभी थोड़ी-बहुत औषधि ले लेते थे।

प्रभु के ध्यान में लवलीन

संथारा सीजने के तीन दिन पहले की बात है। डा. रामावतारजी ने आचार्यश्रीजी की सेवा मे उपस्थित होकर औषधि लेने की अर्ज की। आचार्यश्रीजी म. ने फरमाया–अब मुझे परमात्मनाम-स्मरण की दवा लेनी है। वही मेरे इस संसार-रोग के उन्मूलन की कारगर औषधि है। तब डा. रामवतारजी ने युवाचार्यश्रीजी को एकांत में ले जाकर कहा कि इन महापुरुष के बारे में अपने सोचने की सीमा समाप्त है। इनका ध्यान प्रभु में लग चुका है। शरीर की तरफ तो इनका लक्ष्य रहा ही नहीं है। डा. शूरवीरसिंहजी आदि अन्य चिकित्सकों की भी यही धारणा बन चुकी थी।

इन्हीं दिनों की बात है। एक दिन युवाचार्यश्रीजी 'अपूर्व अवसर क्यारे आवशे' आदि सुना रहे थे। आचार्यश्रीजी ध्यानमग्न हो यह सब सुन रहे थे कि सुनाते-सुनाते एक कडी दुबारा बोल गये। तत्काल इस भूल को सुधारते हुए फरमाया कि यह कड़ी तो बोल चुके हो, आगे सुनाओ। इस ध्यानमग्न मुद्रा में जब भी कोई दर्शनार्थी आपश्री के मुखमण्डल को निहारता तो मुख के चारों ओर एक अलौकिक प्रभामंडल के दर्शन होते थे। उस समय किसी को यह कहने का साहस नहीं होता था कि यह रोगाक्रान्त शरीर है। सभी ओज, तेज और सौम्य के दर्शन कर अपूर्व संतोष का अनुभव करते थे।

दिनांक 9.1.63 के सायंकाल का समय था। सायंकालीन प्रतिक्रमण आदि करके आचार्यश्रीजी म. दूसरे दिन के प्रातःकाल तक का सागारी संथारा करके पौढ़ गये। रात्रि में युवाचार्यश्रीजी एवं अन्य सन्त आपके निकट ही थे और जब भी उन्होंने आपको देखा तो सतत आत्मध्यान में लवलीन पाया। रोगजन्य वेदना की अशंमात्र भी अनुभूति लक्षित नहीं हुई।

मृत्यु-महोत्सव की तैयारी

दि. 9.1.63 को पौष शुक्ला पूर्णिमा का दिन था। ऊपर नीलगगन में चन्द्र अपनी अमीवर्षा से अमृत उड़ेलते हुए प्रकृति के कण-कण को प्रकाशित कर रहा था और इधर आचार्यदेव ज्ञानामृत से आत्मा को आप्लावित कर उसके अनन्त गुणों को विकसित कर रहे थे। दोनों अपने-अपने ढंग से कल्याण के कार्य में क्रियाशील थे।

दिनांक 10.1.63, माघ कृष्णा 1 का सूर्य उदित हुआ। सूर्य की स्वर्ण किरणें प्रकृति में नया उल्लास भरते हुए आगे बढ रही थीं। आचार्यदेव भी प्रातःकालीन प्रतिक्रमण आदि करने के उपरान्त पद्मासन से विराज गये। दर्शनार्थियों का आवागमन समाप्त होने के उपरान्त दैनंदिन कार्यक्रम से निवृत्त हुए। अनन्तर थोड़ा-सा जल पीकर पुनः आत्मध्यान में ध्यानस्थ हो गये।

ध्यान-समाप्ति के उपरान्त योगिराज ने आंखें खोलीं। उनमें एक अलौकिक तेज झलक रहा था। युवाचार्यश्रीजी को निकट बुलाकर फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पड़ता है। अतः इस विषय में मैं तो सावधान हूँ ही, स्वयं भी सावधानी रखना। डाक्टर सा. आ जायें तो उनसे भी कुछ बात करनी है।

इतने में डाक्टर शूरवीरसिंहजी भी आ गये। पहले की तरह उन्होंने शारीरिक परीक्षा की और कमरे से बाहर चले आये। अतः पुनः संकेत कर डा. सा. को बुलाया और उनसे पूछा कि अब मैं संथारा लेना चाहता हूँ, इसमें आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से जो जानते हों, कहिये।

शारीरिक स्थिति बहुत ही चिन्तनीय हो चुकी थी। रोग अपनी सीमा को पार कर चुका था। रक्तचाप और नाड़ी की गति में काफी अन्तर आ गया था। अतः उन्होंने प्रत्युत्तर में निवेदन किया कि हमारे उपचार का सिद्धान्त और विज्ञान आप जैसे महापुरुषों के लिये नहीं है। फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है।

तिविहार संथारा : शान्ति का साम्राज्य

आचार्यश्रीजी ने डाक्टर सा. के संकेत को समझ लिया और युवाचार्यश्रीजी की ओर संकेत करते हुए फरमाया कि मैं तो अपने में सावधान हूँ ही और तुम भी ध्यान रखना। अनतर संथारा अंगीकार करने के लिये 'इच्छाकारेणं' आदि की पाटियां, छह जीवनी, दशवैकालिक सूत्र का चतुर्थ अध्ययन आदि सुनाने और सुनाते समय किसी दूसरी ओर ध्यान न जाने देने का संकेत किया।

इच्छाकारेणं आदि की पाटी सुनने के बाद आचार्यश्रीजी म. ने पुनः फरमाया कि तीन दिन पूर्व मैंने स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म.सा. के पास सब आलोचना कर ली है और अभी पुनः आलोचना कर छह जीवनी सुन ली है। अब मुझे डाक्टर, वैद्य या अन्य कोई गृहस्थ स्पर्श न करे। मैं अपने जीवन को आगे बढ़ाना चाहता हूँ, और प्रातः 10.20 बजे तिविहार संथारा ग्रहण कर ध्यानस्थ हो गये। एकान्त स्थान था। सिर्फ युवाचार्यश्री व स्थविर पद-विभूषित तपस्वी पं. मुनिश्री सूरजमलजी म.सा. देख-रेख के लिये वहां उपस्थित थे। कुछ समय बाद नेत्र खोले तो उनमें अलौकिक तेज चमक रहा था, मुखमंडल पर शांति का साम्राज्य अठखेलियां कर रहा था। श्वसोच्छ्वास गति कुछ तीव्र अवश्य हो गई थी, लेकिन चेतना में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं था।

माघ कृष्णा 1, दिनांक 10.1.63 का दिन इसी प्रकार आत्मरमण करते हुए, आगम पाठों को सुनते हुए पूर्ण शांति से व्यतीत हुआ। दर्शनार्थियों का आवागमन भी सीमित कर दिया गया था और ऐसी व्यवस्था कर दी गई कि दर्शन करने वालों के द्वारा किसी प्रकार की आवाज आदि न हो।

पूर्ण सजगता के साथ चौविहार संथारा

माघ कृष्णा 2, दि. 11.1.63 ज्योतिपुंज के विलय का दिन था। दि. 10.1.63 को सागारी संथारा लेते समय आचार्यश्रीजी जिस आसन से विराजे थे, उसी प्रकार से ध्यानस्थ होकर युवाचार्यश्रीजी से प्रातः कुछ नित्यनियम के पाठ सुन रहे थे कि उस समय वे एक कड़ी कहना चूक गये तो उसको पुनः सुधारने का संकेत किया तथा प्रतिक्रमण के समय स्थविर पं. र. मुनिश्री सूरजमलजी म.सा. ने मांगलिक कुछ धीरे सुनाई। लेकिन आचार्यश्रीजी को सुनाई न पड़ने पर फरमाया कि कुछ उच्चस्वर से मांगलिक सुनाओ। अतः युवाचार्यश्रीजी ने पुनः मांगलिक सुनाई।

समय के साथ शारीरिक परमाणुओं में निर्बलता आती जा रही थी। स्थिति को समझकर आचार्यश्रीजी म.सा. ने दोपहर को दो बजे चौविहार संथारा का प्रत्याख्यान कर लिया। करीब 2 बजे महासती श्री सोहनकंवरजी म. आचार्यश्रीजी से खमत-खामणा करने पधारे। श्री कानमुनिजी ने कहा कि महासतीश्री आपसे खमत-खामणा करते हैं तो आचार्यश्रीजी ने आंख खोलीं और गर्दन हिलाकर खमत-खामणा का जवाब दिया।

हंसा चला परदेश

करीब 3 बजे का समय था। शरीर में और भी निर्बलता के लक्षण दिखने लगे। शारीरिक स्थिति देखने के लिए युवाचार्यश्रीजी ने नाडी देखना चाही तो आपने मना कर दिया और 3-20 होते-होते तो पूर्ण चेतनावस्था में मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से निराकार आत्मा ने भौतिक देह का परित्याग कर दिया। इस समय मुखमंडल पर एक दैवी ओज झलक रहा था और स्मित हास्य से परिपूर्ण था।

उस समय निकटस्थ युवाचार्यश्रीजी आदि अन्य सन्तों ने जो अद्भुत दृश्य देखा, वह अनुभूतिगम्य है। उसका शाब्दिक वर्णन करने की सामर्थ्य किसी में भी नहीं है।

साधना की सफलता के साथ पूज्य आचार्यश्रीजी की जागरूक आत्मा ने 3-20 बजे इस भौतिक देह का त्याग कर दिया। हॉ, रोगाकान्त देह यथावत् पद्मासन अवस्था में ध्यानस्थ इन चक्षुओं के दृष्टिगत हो रही थी।

अश्रुवर्षा, श्रद्धार्पण

पूज्य आचार्यश्रीजी के संथारा अंगीकार करने की सूचना यथासंभव सभी श्रीसंघों को मिल चुकी थी। अतः विभिन्न श्रीसंघों के सदस्यों, गणमान्य सज्जनो आदि का उदयपुर आने का तांता लग गया। सभी में एक ही उत्सुकता थी कि अपने आराध्य के चरणों के नतमस्तक

हो दर्शन कर लें। दि. 10 के सायंकाल और दि. 11 के प्रातःकाल होते-होते तो हजारों भाई-बहिन उदयपुर में आ चुके थे।

आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए कब क्या हो जाये, निश्चयात्मक रूप से कहना शक्य नहीं था। अतः पंचायती नोहरे के प्रांगण में हजारों नर-नारी शांति से खड़े हुए थे। इतने में आचार्यश्रीजी के विराजने के कमरे में हलचल नजर आई। साधु-मुनिराजों का कमरे में पहुंचना और नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री को चादर ओढ़ाना, वंदना करना देखा और दूसरे ही क्षण हजारों नेत्रों ने मूक श्रद्धांजलि के रूप में अश्रुवर्षा प्रारम्भ कर दी। मन का भार आंखों की धार में बह निकला। आंखों की बरसा ने वातावरण में विषाद बिखेर दिया था।

पूज्य आचार्यश्रीजी के संथारा सीझने का समाचार उदयपुर नगर के इस छोर से उस छोर तक प्रसरित हो गया। जनता-जनार्दन ने अपने ही क्षेत्र में उछरे, यहां ही विकसित हुए और यहां ही विलय को प्राप्त हुए मानव से महामानव बनने वाले आचार्यश्रीजी के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिये अपना कारोबार बंद कर दिया। विभिन्न गली-कूचों और चौराहों से आबाल-वृद्ध जन यथाशीघ्र पंचायती नोहरे पहुंचने के लिये निकल पड़े। मुरझाये मुख और श्लथगति से बढ़ता हुआ जनसमूह अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये उत्सुक था। संध्याकाल होते-होते तो सहस्रों का जमघट श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एकत्रित हो चुका था।

चतुर्विध संघ के गगनांगण में संयम, तप, त्याग की किरणों से प्रकाशमान पूज्य आचार्यदेव के अवसान से सहस्ररश्मि सूर्य भी अपनी किरणें समेटते हुए अस्ताचल की ओर बढ़ चला। इस विषादवेला में अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये यथाशीघ्र अपने-आप को समेट लेना ही उसे उचित प्रतीत हुआ। उधर दिवाकर ने भी अपनी लघु रेखा के द्वारा श्रद्धेय के प्रति अपना श्रद्धापात्र प्रस्तुत कर दिया।

उदयपुर श्रीसंघ के तारों तथा आकाशवाणी के प्रसारण से आचार्यश्रीजी के देहविलय का समाचार समस्त देश में फैल गया। देश के विभिन्न स्थानों के श्रीसंघों ने सामूहिक रूप में एकत्रित होकर श्रद्धांजलि अर्पित की और अनेक व्यक्ति समाचार सुनते ही अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर की ओर चल पड़े।

अंतिम यात्रा : महायात्रा

अन्तिम यात्रा दि. 12.1.63 को प्रातः 11 बजे प्रारम्भ होने वाली थी और प्रातः होते-होते तो हजारों जन उदयपुर में आ चुके थे। उदयपुर नगर के व्यापार-व्यवसाय केन्द्र तो कल दोपहर से ही बंद थे और भौतिक देह-विसर्जन के अनन्तर श्रद्धांजलि अर्पित हो जाने तक बंद रखने का निश्चय हो चुका था।

दि. 12.1.63, माघ कृष्णा 3 के प्रातः 11 बजे पवित्र अग्नि में देह विसर्जन के लिये यात्रा-जुलूस पंचायती नोहरे से प्रारम्भ हुआ। नगर के राजमार्गो के दोनों और पंक्तिबद्ध जनसमूह खड़ा था। मकानों की छतें और खिडकियां बच्चों और महिलाओं से अटी पड़ी थी और करीब 50 हजार का जनसमूह आचार्यश्री के जयघोष, गुणगान करते हुए मंथरगति से साथ-साथ चल रहा था। करीब ढाई मील लम्बा यह जुलूस नगर के विभिन्न राजमार्गों से होता हुआ अग्नि-संस्कार के लिये निश्चित स्थान गंगोद्भव मे 2 बजे के करीब पहुंचा। राज्याधिकारियों की व्यवस्था और अनुशासित जनसमूह के फलस्वरूप किसी प्रकार की अव्यवस्था नहीं हो सकी थी।

चंदन, काष्ठ, नारियल तथा अन्य सुगन्धित द्रव्यों से निर्मित रथी पर आचार्यश्रीजी के पार्थिव शरीर को अधिष्ठित कर ठीक 3 बजे अग्नि प्रज्वलित की गई और देखते-देखते पार्थिव शरीर अपने मूल तत्त्वों मे समाहित हो गया। और अन्तिम श्रद्धाजली के रूप में नतमस्तक हो जनता उदास मुख लिये हुए अपने-अपने स्थान पर आने के लिये लौट पडी।

गुणानुवाद सभा

पूज्य आचार्यश्रीजी म.सा. का पार्थिव देह भी आंखों से ओझल हो गया था। जिस उद्देश्य के लिये जीवन का श्रीगणेश किया, उसमें सफलता प्राप्त कर महाप्रयाण की ओर चल पड़े थे। अब तो उनके गुणों की सौरभ व्याप्त थी। उनकी अनुभूति पूर्ववत् विद्यमान थी। उन गुणो का गान करने, पुनरावृत्ति करने के लिये दि. 13.1.63 को प्रात. देश के कोने-कोने से आगत श्रावक-श्राविका समुदाय ने नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री नानालालजी म.सा. की सेवा में प्रार्थना की कि आपश्री संतमंडल सहित पंचायती नोहरे में पधार कर स्व. आचार्यश्रीजी के बारे मे अपने हार्दिक उद्गार प्रगट करने की कृपा करें।

सामूहिक प्रार्थना पर लक्ष्य देकर नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री संत-सतीवर्ग सहित पंचायती नोहरे में पधारे और अपनी-अपनी श्रद्धांजलि समर्पित की। मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म.सा. आदि संतों एवं सतियांजी म.सा. तथा नव-आचार्यश्रीजी म.सा. ने श्रद्धांजलिस्वरूप जो भाव व्यक्त किये, वे इस प्रकार हैं–

पं. र. मुनिश्री सत्येन्द्रमुनिजी म.सा.

आज मैं आप लोगों के सामने क्या कहूँ ? करीब 8-9 माह पूर्व जिस समय हम उदयपुर आये, उस समय कुछ और ही भावना लेकर आये थे, पर इस समय कुछ और ही भावना चल रही है। हमें भरोसा था कि सब शुभजनक ही होगा, लेकिन आज हम जो-कुछ बोल रहे हैं, एक दुःखपूर्ण स्थिति में बोल रहे हैं।

हो दर्शन कर ले। दि. 10 के सायंकाल और दि. 11 के प्रातःकाल होते-होते तो हजारों भाई-बहिन उदयपुर में आ चुके थे।

आचार्यश्रीजी की शारीरिक स्थिति को देखते हुए कब क्या हो जाये, निश्चयात्मक रूप से कहना शक्य नहीं था। अतः पंचायती नोहरे के प्रांगण में हजारों नर-नारी शांति से खड़े हुए थे। इतने में आचार्यश्रीजी के विराजने के कमरे में हलचल नजर आई। साधु-मुनिराजों का कमरे में पहुंचना और नवप्रतिष्ठित आचार्यश्री को चादर ओढ़ाना, वंदना करना देखा और दूसरे ही क्षण हजारों नेत्रों ने मूक श्रद्धांजलि के रूप में अश्रुवर्षा प्रारम्भ कर दी। मन का भार आंखों की धार में वह निकला। आंखों की बरसा ने वातावरण में विषाद बिखेर दिया था।

पूज्य आचार्यश्रीजी के संथारा सीझने का समाचार उदयपुर नगर के इस छोर से उस छोर तक प्रसरित हो गया। जनता-जनार्दन ने अपने ही क्षेत्र में उछरे, यहां ही विकसित हुए और यहां ही विलय को प्राप्त हुए मानव से महामानव बनने वाले आचार्यश्रीजी के प्रति सम्मान व्यक्त करने के लिये अपना कारोबार बंद कर दिया। विभिन्न गली-कूचों और चौराहों से आबाल-वृद्ध जन यथाशीघ्र पंचायती नोहरे पहुंचने के लिये निकल पडे। मुरझाये मुख और श्लथगति से बढता हुआ जनसमूह अपना सम्मान व्यक्त करने के लिये उत्सुक था। संध्याकाल होते-होते तो सहस्रों का जमघट श्रद्धांजलि अर्पित करने के लिये एकत्रित हो चुका था।

चतुर्विध संघ के गगनांगण में संयम, तप, त्याग की किरणों से प्रकाशमान पूज्य आचार्यदेव के अवसान से सहस्ररश्मि सूर्य भी अपनी किरणें समेटते हुए अस्ताचल की ओर बढ़ चला। इस विषादवेला में अपनी भावना को व्यक्त करने के लिये यथाशीघ्र अपने-आप को समेट लेना ही उसे उचित प्रतीत हुआ। उधर दिवाकर ने भी अपनी लघु रेखा के द्वारा श्रद्धेय के प्रति अपना श्रद्धापात्र प्रस्तुत कर दिया।

उदयपुर श्रीसंघ के तारों तथा आकाशवाणी के प्रसारण से आचार्यश्रीजी के देहविलय का समाचार समस्त देश में फैल गया। देश के विभिन्न स्थानों के श्रीसंघों ने सामूहिक रूप में एकत्रित होकर श्रद्धांजलि अर्पित की और अनेक व्यक्ति समाचार सुनते ही अन्तिम यात्रा में सम्मिलित होने के लिये उदयपुर की ओर चल पडे।

अंतिम यात्रा : महायात्रा

अन्तिम यात्रा दि. 12.1.63 को प्रातः 11 बजे प्रारम्भ होने वाली थी और प्रातः होते-होते तो हजारों जन उदयपुर में आ चुके थे। उदयपुर नगर के व्यापार-व्यवसाय केन्द्र तो कल दोपहर से ही बंद थे और भौतिक देह-विसर्जन के अनन्तर श्रद्धांजलि अर्पित हो जाने तक बंद रखने का निश्चय हो चुका था।

श्रद्धा के यही पुष्प मैं चढाता हूँ। हम गुडली में थे। हमको खबर मिली कि आचार्यश्रीजी की तबीयत बहुत अस्वस्थ है। खबर मिलते ही हमने उदयपुर की तरफ विहार कर दिया पर दुर्भाग्य कि हम आचार्यश्री के स्वर्गवासी होने के बाद पहुंचे।

हम वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म. को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि हमारे से जैसा भी सहयोग लेना चाहें, हम देने के लिये तैयार हैं।

भगवान महावीर से हम प्रार्थना करते हैं कि इन वर्तमान आचार्यश्री को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि ये उत्तरोत्तर शासनोन्नति में आगे बढ़ते ही चले जायें।

पं. र. मुनिश्री जनकमुनिजी म. सा. (गोंडल सम्प्रदाय)

निर्मल, निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के सुरक्षक आचार्यश्रीजी की निर्मल सुयशधारा दिग्दिगन्त तक फैली हुई है। हमें अनेक बार गुणगाथाओं के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप दर्शन की आकांक्षा ने हमें यहां तक आने की प्रेरणा दी। अमलनेर से 425 मील भूमि कुल 38 दिनों में काटकर श्रीचरणों में उपस्थित हुए। थककर चूर-चूर हो चुके थे, पैर उठाना भी भारी हो रहा था। किन्तु आचार्यश्रीजी के अनुग्रह ने हमारी थकान को मुस्कान बना दिया। हमने सुनी बातों का साक्षात् अनुभव किया।

अहा ! क्या प्रेमपूर्ण वात्सल्यभाव एवं कड़क आचार-निष्ठा ! सहनशीलता की तो भव्य मूर्ति ही जान पडे। 2000 बिच्छू डंक मारे, जैसी घोर वेदना में उफ् तक का शब्द नहीं। तेजोमय मूर्ति के दर्शन कर हम धन्य हुए।

आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं, किन्तु ज्ञानमय शरीर, चर्यामय भाव, निर्ग्रन्थ संस्कृति का भव्य आदर्श हमारे सन्मुख हैं। हमें इस निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति से पूर्ण प्रेम है। जब तक यह चोला है, मैं हृदय से इसे जीवन में उतारता हुआ प्रसार करना चाहता हूँ एवं मैं यहाँ आये हुए प्रत्येक बंधु यानी चतुर्विध संघ से निवेदन करूंगा कि वे सच्चे हृदय से पालन करें। कोई भी व्यक्ति बिना निर्णय किये उठे नहीं।

नियमों के का तरीका यह है कि आचार्यश्री की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करें रह सकती है। स्वर्गीय आचार्यश्रीजी ने तो विरोधों की कायम रखने में बहुत बड़ा योग दिया है। आज उसी का नानालालजी म. पर है। उनको पूर्ण प्रेमपूर्वक सहयोग देना प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन में बताये हुए मार्ग का प्रचार-प्रसार करेंगे, यही हमारी है।

हमारे ऊपर आचार्यश्रीजी का हाथ था, वह उठ गया है। इससे चिन्ता होना स्वाभाविक है। लेकिन चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आचार्यश्रीजी म. ने भावी शासन-व्यवस्था के लिये सुन्दर व्यवस्था कर दी है। जिस समय आचार्यश्रीजी म.सा. ने भावी शासन-व्यवस्था की थी, मैं श्रीजी के चरणों में उपस्थित था। मैंने उस समय कहा था कि शासन का भार बोझिल होता है। उसको वहन करने की हम किसी में क्षमता नहीं होती। आचार्यश्री नानालालजी म., जिन पर शासन का भार रखा है, वे सक्षम हैं तथा चारित्र-सम्पन्न, शांत, दान्त, गंभीर हैं। उनको सभी संत-सतियों एवं श्रावक-श्राविकाओं की तरफ से पूरा सहयोग मिलता रहे, ताकि वे शासन को अधिक-से-अधिक दीपा सकें।

भगवान महावीर की श्रमण संस्कृति सदियों से चली आ रही है। उसे अक्षुण्ण एवं पवित्र बनाये रखने के लिये आचार्यश्री साधनापूर्वक सच्चाई पर चले रहे थे। उनके मार्ग में अनेक बाधाएं आईं पर वे शांति से सहन करते हुए मानापमान की परवाह न कर उत्तरोत्तर आगे बढ़ते रहे। उसी पथ पर हमें भी आगे बढना है। हमारे सामने कितनी भी चट्टानें व पहाड़ आवें, उनका डटकर सामना करना है। हमें विरोधियों से नहीं घबराना है। आचार्यश्रीजी ने इसके लिये जो मार्ग रखा है, उस पर दृढ़ता के साथ आगे बढ़ते हुए रास्ता तय करना है।

मैं पंजाब-संप्रदाय का था, परन्तु मुझे स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी म. की गुणगरिमा ने आकर्षित कर लिया। मैं, मेरा व मेरे साथियों का सौभाग्य समझता हूँ कि हमें छह महीने तक आचार्यश्रीजी का पूर्ण सहयोग मिला, पर दुर्भाग्य है कि इन आखिरी कुछ दिनों में हम अलग रह गये।

आचार्यश्रीजी ने शांत क्रान्तिकारी कदम उठाकर भगवान महावीर की श्रमण संस्कृति को आगे बढाने के लिये जो आदेश, उपदेश आदि दिये हैं, उन पर हमें चलना है। संकटों एवं बाधाओं का सामना करना है। कोई प्रचार करे, भले बुरे शब्द कहे तो हमें उसके उत्तर-प्रत्युत्तर में नहीं पड़ना है। अगर हम उत्तर-प्रत्युत्तर के झगड़े में पड़ गये तो हमारा मार्ग रुक जायेगा। हां, असलियत को तो समाज के सामने रखना ही होगा।

मैं सन्त-सतियों को भी कहूँगा कि स्वर्गीय आचार्यश्रीजी म. के आदेशों का पालन करने में वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी को पूर्ण सहयोग देवें और उनके हाथों को मजबूत बनावें। स्वर्गीय आचार्यश्री के गुणों का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है। जो शास्त्र मैंने नहीं पढ़ा, जिसकी मेरे में कमी थी, उसको आचार्यश्री ने रुग्णावस्था में भी मुझको पढाया। मेरे पर आचार्यश्रीजी का यह महान उपकार है, इसे मैं भूल नहीं सकता। उन महान् आत्मा के प्रति मस्तक श्रद्धा से सदा नत रहा है और है। उनकी मधुर स्मृति आज भी ताजा है। उनके प्रति

श्रद्धा के यही पुष्प मैं चढाता हूँ। हम गुडली में थे। हमको खबर मिली कि आचार्यश्रीजी की तबीयत बहुत अस्वस्थ है। खबर मिलते ही हमने उदयपुर की तरफ विहार कर दिया पर दुर्भाग्य कि हम आचार्यश्री के स्वर्गवासी होने के बाद पहुंचे।

हम वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म. को पूर्ण विश्वास दिलाते हैं कि हमारे से जैसा भी सहयोग लेना चाहें, हम देने के लिये तैयार हैं।

भगवान महावीर से हम प्रार्थना करते हैं कि इन वर्तमान आचार्यश्री को इतनी शक्ति प्राप्त हो कि ये उत्तरोत्तर शासनोन्नति में आगे बढ़ते ही चले जायें।

पं. र. मुनिश्री जनकमुनिजी म. सा. (गोंडल सम्प्रदाय)

निर्मल, निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के सुरक्षक आचार्यश्रीजी की निर्मल सुयशधारा दिग्दिगन्त तक फैली हुई है। हमें अनेक बार गुणगाथाओं के श्रवण का सौभाग्य प्राप्त हुआ। फलस्वरूप दर्शन की आकांक्षा ने हमें यहां तक आने की प्रेरणा दी। अमलनेर से 425 मील भूमि कुल 38 दिनों में काटकर श्रीचरणों में उपस्थित हुए। थककर चूर-चूर हो चुके थे, पैर उठाना भी भारी हो रहा था। किन्तु आचार्यश्रीजी के अनुग्रह ने हमारी थकान को मुस्कान बना दिया। हमने सुनी बातों का साक्षात् अनुभव किया।

अहा ! क्या प्रेमपूर्ण वात्सल्यभाव एवं कड़क आचार-निष्ठा ! सहनशीलता की तो भव्य मूर्ति ही जान पड़े। 2000 बिच्छू डंक मारे, जैसी घोर वेदना में उफ् तक का शब्द नहीं। तेजोमय मूर्ति के दर्शन कर हम धन्य हुए।

आज उनका पार्थिव शरीर हमारे बीच नहीं, किन्तु ज्ञानमय शरीर, चर्यामय भाव, निर्ग्रन्थ संस्कृति का भव्य आदर्श हमारे सन्मुख हैं। हमें इस निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति से पूर्ण प्रेम है। जब तक यह चोला है, मैं हृदय से इसे जीवन में उतारता हुआ प्रसार करना चाहता हूँ एवं मैं यहाँ आये हुए प्रत्येक बंधु यानी चतुर्विध संघ से निवेदन करूंगा कि वे सच्चे हृदय से पालन करें। कोई भी व्यक्ति बिना निर्णय किये उठे नहीं।

नियमों के पालने का सुन्दरतम तरीका यह है कि आचार्यश्री की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करें। निर्ग्रन्थ संस्कृति तभी सुरक्षित रह सकती है। स्वर्गीय आचार्यश्रीजी ने तो विरोधों की परवाह न कर निर्ग्रन्थ संस्कृति को कायम रखने में बहुत बड़ा योग दिया है। आज उसी का उत्तरदायित्व इन नव्य-भव्य आचार्यश्री नानालालजी म. पर है। उनको पूर्ण प्रेमपूर्वक सहयोग देना प्रत्येक का कर्तव्य है। हम भी आपकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अपने जीवन में यथार्थ रूप से उतारेंगे और आपके बताये हुए मार्ग का प्रचार-प्रसार करेंगे, यही हमारी आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा की पुष्पांजलि है।

स्थविर पद-विभूषित पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा.

आप लोग बाहर से, बहुत दूर-दूर से यहां एकत्रित हुए हैं। इसलिये नहीं कि यहां कोई नाटक, सिनेमा है। किन्तु इसलिये कि यहां पर जीवन है। अतः जीवन का उत्कर्ष करने के लिये ही आप यहां पर आये हैं। आचार्यश्रीजी की साधना के प्रति आपकी श्रद्धा-भक्ति है।

आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने उदयपुर नगर में जन्म लेकर मेवाड़ भूमि के शिखर को ऊंचा उठाया है। जैसे संसारपक्ष में राणा प्रताप ने मेवाड का गौरव बढ़ाया, वैसे ही आचार्यश्री ने आध्यात्मिक क्षेत्र मे मेवाड़ का ही नहीं, बल्कि सारे देश का गौरव बढ़ाया है। आचार्यश्री ने अपने जीवनकाल में भगवान महावीर के शासन में रहकर शासन को और चमकाया और पूर्ण आत्मदशा में रहकर अपना कल्याण किया है। आज वे आचार्यश्री हमारे सामने नहीं हैं। हमारे से उनका भौतिक शरीर ओझल हो गया है। संसार का यह नियम है कि जिन्होंने संसार में जन्म लिया है, वे कोई आज, कोई कल, कोई घड़ी-पलक में तो कोई कभी इस भौतिक शरीर को छोडेंगे। काल सबके सिर पर घूम रहा है।

अतः मनुष्य को धर्म मिला है तो खा-पीकर धींगामस्ती में गंवाने के लिये नहीं, बल्कि धर्म कमाने के लिये मिला है। अतः आचार्यश्री ने धर्ममय जीवन बिताने के लिये जो आदेश आदि दिये हैं, उनको सच्चे ह्रदय से अमल में लायें। आचार्यश्री ने असह्य घोर वेदना के समय जिस प्रकार अपने जीवन को ऊपर उठाया, उस आदर्श को सामने रखकर हम भी अपने जीवन को साधनामय बनायें, ताकि हमारा जीवन भी एक दिन सफल हो।

आचार्यश्रीजी के तप-तेज से आकर्षित होकर गोंडल सम्प्रदाय के जनकमुनिजी और जगदीशमुनिजी 700 मील का लम्बा विहार कर आचार्यश्री के चरणों में पधारे हैं। आचार्यश्रीजी का मैं क्या गुणगान करूं, हमारे जैनाचार्य ने भगवान महावीर के शासन को दीपाया है। मेवाड़ भूमि में जन्म लिया है, वीर, चारित्रचूड़ामणि हैं।

इन्द्र मुकुट समान दर्शन से चित्त रहे प्रसन्न, वर्ते मंगलाचार।

वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म. भी गुणों के पूर्ण भंडार हैं। स्वर्गीय आचार्यश्री ने अपना वरदहस्त इन पर रखा है। अतः चतुर्विध संघ इनकी आज्ञा का बराबर पालन करे। धर्म क्या है ? बड़ों की आज्ञा का पालन करना ही धर्म है। अतः वर्तमान आचार्यश्री की आज्ञा का पालन करें, इसी में हमारा कल्याण है।

साध्वियों द्वारा गुणानुवाद और समर्पणा

इसी प्रकार विदुषी महासती श्री नानूकंवरजी म., विदुषी महासतीश्री मनोहरकंवरजी म.,

विदुषी महासतीश्री कौशल्याजी म. ने भी सतीवृन्द की ओर से स्वर्गीय आचार्यश्रीजी के गुणगान करते हुए फरमाया कि स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी म. ने श्रमण संस्कृति की रक्षा के लिये जो आदेश आदि दिये, उनका हम पूर्णरूपेण पालन करेंगी और वर्तमान आचार्यश्रीजी म. हमें श्रमण संस्कृति के उत्थान हेतु जो भी आज्ञा प्रदान करेंगे, उसको सहर्ष शिरोधार्य करती हुई पालन करने-कराने में तत्पर हैं और रहेंगी।

अनन्तर आचार्यश्री नानालालजी म. सा. ने स्वर्गीय आचार्यश्रीजी को श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए अपने उद्‌गार व्यक्त किये कि~

नवाचार्य द्वारा श्रद्धाभिव्यक्ति

बधुओ ! मैं आज विशेष रूप से कुछ कहूँ, ऐसी मेरी स्थिति नहीं है। महामुनिश्री सत्येन्द्रजी म., श्री जनकमनिजी म. व स्थविर पदविभूषित पं. श्री सूरजमलजी म. ने तथा तीन महासतियों ने और बीच-बीच में श्री कानमुनिजी ने स्वर्गीय आचार्यश्री के सम्बन्ध में अपने हृदय के उद्‌गार सबके सामने रखे हैं।

मेरे सामने स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन-चरित्र है। वह मैंने देखा व अनुभव किया है, परन्तु उसको मैं आप लोगों के सामने हूबहू रखूं, यह मेरी क्षमता नहीं है।

आचार्यश्रीजी म. जैसी दिव्य विभूति ने शांत क्रांति को जन्म देकर जो आदर्श समाज के सामने रखा, अनेक संकटों व बाधाओं का सामना कर सत्यमार्ग पर अटल रहे, उसका वर्णन करना मेरे जैसे के लिये बहुत ही कठिन है। मेरी जिह्वा में इतनी क्षमता नहीं है कि मैं उसका सांगोपांग वर्णन कर सकूं।

जिनके लिए भगवान का मार्ग ही श्रेय था- आचार्यश्रीजी म. को एक ओर तो सारे स्थानकवासी समाज से मान-सम्मान मिलने का अवसर था और दूसरी ओर अनन्त तीर्थंकरों से आई हुई श्रमण संस्कृति की पवित्रता को अक्षुण्ण रखने का प्रश्न था। श्रमण वर्ग में प्रवेश पाई हुई शिथिलता को देखकर स्वर्गीय आचार्यश्री ने अनुभव किया, यदि प्रभाव में आकर और प्रवाह में बह कर जो ठीक नहीं है, उसमें हां में हां मिला दी गई तो इस शासन की ही नहीं, अनन्त तीर्थंकरों की आशातना का भागीदार हो जाऊंगा। यह सोचकर आचार्यश्री ने वही मार्ग अपनाया जो उनके जैसे युगद्रष्टा महापुरुष के लिये श्रेय था। मान-सम्मान उनको अपने श्रेयमार्ग से विचलित नहीं कर सके। *भगवान की आज्ञा और उनका बताया हुआ मार्ग ही* उनके लिये श्रेय था। इसलिये अनेक विघ्न-बाधाओं के होते हुए भी आचार्यश्री श्रमण संस्कृति की पवित्रता हेतु आचार-विचार में दृढ़ता लाने के लिये अन्त समय तक सतत प्रयत्नशील रहे।

श्रमण संस्कृति की रक्षा के लिए चल पड़े- श्रमण संघ का जो रूपक बना, उसके लिये आचार्यश्रीजी की यह भावना थी कि श्रमण संस्कृति की पवित्रता के लिये एवं उसके संरक्षण के लिये सभी साथियों को साथ लेकर चलूं। तदनुसार आचार्यश्रीजी ने लगभग 8-9 वर्ष तक अनेक प्रयत्न किये। परन्तु आचार्यश्रीजी के सतत प्रयत्न के उपरान्त भी उनको ऐसा अनुभव हुआ कि अनुशासन में रहकर उचित सलाह में सबके चलने की तैयारी कम है, कुछ श्रमणों की तो बिल्कुल ही नहीं। इससे उनके विश्वास को धक्का लगा। फिर भी प्रयत्नशील रहे और जो समस्याएं सामने आईं, उन पर आचार्यश्रीजी ने श्रमण संस्कृति के संरक्षणार्थ जो व्यवस्थाएं आदि दीं, वे आज भी समाज के सामने खुले रूप में मौजूद हैं। ऐसा करते समय आचार्यश्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा रखी, किन्तु रुके नहीं। उन्होंने कभी यह नहीं सोचा कि मेरे पीछे कौन आता है और कौन नहीं। उन्होंने सिर्फ यही देखा कि श्रमण संस्कृति मेरे सामने है और चल पड़े उसकी रक्षा के लिये। आचार्यश्रीजी के मार्ग का विरोध हुआ, कइयों ने भले-बुरे शब्द कहे, पर आचार्यश्रीजी अपने सत्पथ से विचलित न हुए। धैर्य के साथ सब-कुछ सहन करते रहे।

शिथिलाचार को प्रश्रय मत दो ! - विरोधियों के विरोध को एवं सत्य को ठुकराया हुआ देखकर हमारे मन में तो कभी-कभी उत्तेजना आ जाती थी कि क्यों न संयम-विपरीत दूषित प्रवृत्तियों को प्रगट कर दिया जाये ? पर आचार्यदेव फरमाया करते कि कोई कितना ही *तिरस्कार करे, अनुचित शब्द कहे, उनका स्वागत करो और जिस प्रकार मैं सहन करता हूँ* तुम भी सहन करना सीखो। अश्लीलतायुक्त सामग्री को प्रगट करने से विशेष कोई लाभ नहीं। इसलिये शांत रहकर संयम-मार्ग पर दृढ़ता से चलो और शिथिलाचार को किसी भी प्रकार से प्रश्रय मत दो। इसके लिये आचार्यश्रीजी ने अपने आदेश आदि द्वारा जो-कुछ फरमाया, वह मौजूद है। उन आदेशों को आचार्यश्रीजी म. मेरे तुच्छ जीवन के साथ सम्बन्धित कर चुके हैं। मैं उनकी आज्ञाओं एवं धारणाओं के अनुसार चलने को दृढ़प्रतिज्ञ हूँ तथा इसके लिये कितने भी संकट उपस्थित हों, उनको झेलने के लिये कटिबद्ध हूँ, सब-कुछ न्योछावर करने को तत्पर हूँ।

गुजरात, सौराष्ट्र के सन्त भी प्रहरी बनकर आये- मैं पहले कह चुका हूँ कि आचार्यश्रीजी ने सहयोग की अपेक्षा अवश्य रखी, मगर सहयोग की स्थिति सामने नहीं आई तो वे लक्ष्य की ओर आगे बढ़ते गये। उस समय किसी को स्वप्न में भी खयाल नहीं था कि दूर-देशान्तर से भी कोई अन्य मुनि प्रहरी बनकर श्रमण संस्कृति की रक्षा के लिये आयेंगे। परन्तु महापुरुषों की शक्ति अदृश्य भी होती है। उनका प्रभाव कहां और किस ढंग से काम करता है, इसका सहज ही अनुमान नहीं लग पाता है। ठीक यही बात आचार्यश्रीजी म. सा.

के श्रमण संस्कृति-रक्षा के कार्यों की हुई। उनके कार्यों की सुगंध दूर-दूर तक फैली और ज्यों सुगंध से आकर्षित होकर भ्रमर बिना आमंत्रण-निमंत्रण स्वयं खिंचा हुआ चला आता है, उसी प्रकार, मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि गुजरात, सौराष्ट्र जैसे दूरवर्ती देश से करीब 700 मील का लम्बा विहार कर गोंडल सम्प्रदाय के श्री जनकमुनिजी तथा श्री जगदीशमुनिजी आचार्यश्रीजी के चरणों में आये हैं। न ये मुनिवर श्रमण संघ के हैं और न इस संप्रदाय के, मगर गुणों के कारण ये उग्र विहार करके भी यहां आये हैं। श्री जनकमुनि ने कहा कि हम यह विश्वास दिलाते हैं कि हम आचार्यश्रीजी के आदेशों का पालन करेंगे और जहां भी जायेंगे, प्रचार करते हुए चलेंगे।

संयमप्रेमी पं. श्री सत्येन्द्रमुनिजी म. ने भी फरमाया कि सत्पथ पर कितना भी विरोध हो, हमें उसका डटकर मुकाबला करना है और आचार्यश्रीजी ने हमारे लिये जो मार्ग रखा है, उस पर दृढता के साथ चलते हुए रास्ता तय करना है।

तपस्वी पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. वृद्ध दिखते हैं और हैं। पर इनमें इतनी स्फुरणा है कि हर काम को करने के लिये तैयार रहते हैं। इस अवस्था में भी आदर्श सेवाभावी हैं। यह सब प्रेरणादायक है। उनके उदगार भी आप सुन ही चुके हैं।

समाचारी का अन्तरहृदय से पालन करना है- हमारे लिये अत्यन्त दुःख का विषय यह है कि हमारे आचार्यश्रीजी का भौतिक शरीर आज हमारे सामने नहीं है, वह हमारे से ओझल हो गया है, लेकिन उनके उपदेश, आदेश हमारे सामने हैं। आचार्यश्रीजी म. ने प्रेरणा दी है कि श्रमण संस्कृति की रक्षा का ठीक रूप से ध्यान रखना। किसी बात के मोह में आकर सत्य-पथ से विचलित न हो जाना। मैंने जो निर्ग्रन्थ श्रमण-समाचारी बनाई है, उनके अनुसार चलने वाला कहीं भी, किसी भी देश में विचरने वाला मुनि हो, उसके साथ आत्मीय सम्बन्ध जोड़कर चलना और यदि पास मे रहने वाला श्रमणवर्ग भी विपरीत प्रवृत्ति करे, अनुशासन में न रहे, श्रमण संस्कृति के रक्षार्थ जो आदेश आदि दिये गये हैं, उनका पालन न करे तो उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखना आदि। आचार्यश्रीजी ने अपने जीवन की साधना करते हुए जो समाचारी एवं आदेश दिये हैं, उनका हमें अन्तर्हृदय से पालन करना है।

देहातीत अवस्था- मनुष्य जीवन की साधना का निष्कर्ष अन्तसमय में उपस्थित होता है। जिसकी साधना जीवन-भर अच्छी चलती है, उसका अन्तिम समय में पण्डितमरण होकर जीवन सुधर जाता है।

आचार्यश्रीजी म. की जीवन-साधना कठोर थी, अद्भुत थी। यही कारण है कि उनका भव्य पंडितमरण हुआ। मैं उनके अन्तिम समय का क्या वर्णन करूं !

यह बात आप सब जानते हैं कि एक तरफ तो विरोध चल रहा था और इधर कैंसर के कारण शारीरिक संघर्ष चल रहा था, जिसकी अत्यन्त वेदना थी। लेकिन आचार्यश्रीजी ने कभी उफ् तक नहीं की। डॉक्टर लोग यह देखकर चकित थे कि इस महापुरुष में ऐसी कौनसी शक्ति है कि जिससे इतनी दारुण वेदना होने पर भी चूं तक नहीं। डॉक्टर सा. कहते थे कि रोग की ऐसी भीषण थिति मे साधारण मनुष्य तो डॉक्टरों से मृत्यु की मांग करने लगता है। विष लेकर मर जाना चाहता है, परन्तु धन्य है इन महात्मा को कि जिन्होंने देह पर एक प्रकार से विजय पा ली है।

तपस्वी श्री लालचन्दजी म. ने तो यहां तक कहा कि मुझे कभी-कभी ऐसा खयाल होता है कि आचार्यश्रीजी की वेदना गजसुकमाल की वेदना का-सा दृश्य उपस्थित कर रही है। फिर भी जिस शान्ति और धैर्य के साथ बरदाश्त कर रहे हैं, यह हमारे लिये एक अपूर्व आदर्श है।

जब अत्यन्त वेदना होती है तब मनुष्य अपना भान भूल जाता है। फलतः अन्तसमय को बिगाड़ भी देता है, लेकिन आचार्यश्रीजी शान्तचित्त से वेदना को सहते रहे। आत्मा और शरीर के भेद को भली प्रकार समझ कर चलते रहे।

आचार्यश्रीजी म. का संथारा सीझने के तीन दिन पूर्व डॉक्टर रामावतारजी आचार्यश्रीजी म. की सेवा में उपस्थित हुए और औषधि के लिये अर्ज की। आचार्यश्रीजी म. ने फरमाया– मुझे अब परमात्मा की दवा लेनी है, अन्य कोई दवाई नहीं। इसी तरह डाक्टर शूरवीरसिंहजी आदि को भी ऐसा ही जवाब दिया।

उसी समय डॉक्टर रामावतारजी ने मुझे एकान्त में लेकर यह कहा कि इन महापुरुष के लिये अपन क्या सोचें ? अपना सोचना सब व्यर्थ है। इन महापुरुष का ध्यान प्रभु में लग चुका है। शरीर की तरफ इनका ध्यान कतई नहीं है। ये एक महान दिव्य अलौकिक मूर्ति हैं।

घोर वेदना में भी सजग- उन्हीं दिनों की बात है कि एक दिन मैं आचार्यश्रीजी म. को 'अपूर्व अवसर एवो क्यारे आवशे' आदि सुना रहा था। सुनाते-सुनाते दर्शनार्थियों की तरफ मेरा ध्यान चला जाने से भूल से मैं एक कडी का दुबारा उच्चारण कर गया। परन्तु आचार्यश्री तो आत्मरमण मे लीन एकचित्त से सुन रहे थे। उनको मेरी भूल मालूम हुई और उसी समय चट से आचार्यश्रीजी म. ने फरमाया, यह कड़ी तो बोल गये हो, आगे चलो। यह सुनकर मैं सोचता हूँ कि आचार्यश्रीजी को इस अत्यन्त वेदना में भी कितना ध्यान है। जब मैं चेहरे की तरफ देखता हूँ तो मुझे अपूर्व तेज नजर आता है, मानो आध्यात्मिक ज्योतिपुंज जल रहा है। उस समय मैंने सोचा, यह क्या ही अलौकिक विभूति है। मालूम होता है, आचार्यश्री ने अपने शरीर

का ध्यान छोड़ दिया है और एकान्त समभाव में लीन होकर आत्मचिन्तन में चल रहे हैं। आचार्यश्रीजी ने उसी दिन यानी ता. 9 की शाम को करीब 5.20 बजे से दूसरे दिन सुबह तक सागारी संथारा ग्रहण कर लिया और लेट गये। ता. 10 को प्रातःकाल आगन्तुक दर्शनार्थियों को दर्शन देने के बाद शारीरिक चिन्ता से निवृत्त हुए। बाद में मैंने थोड़ा पानी पिलाया और उन्होंने कुछ विश्रांति ली। इसके बाद दूध के लिये पूछा, क्योंकि अन्न तो 7-8 दिन से बंद था। आचार्यश्रीजी म. ने दूध के लिये मना कर दी कि रुचि नहीं है। आचार्यश्रीजी आत्मध्यान में लीन थे। कुछ ही समय पश्चात् फरमाया कि अब मुझे अपना कार्य करना उपयुक्त जान पड़ता है। अतः इस विषय में मैं अपने-आप तो सावधान हूँ ही, तुम भी पूरी सावधानी रखना। डॉक्टर सा. आ जायें तो उनसे भी बात करनी है। इतने में डॉक्टर शूरवीरसिंहजी आ गये। डॉक्टर सा. ने पास खड़े होकर तबीयत देखी और हमेशा की भांति चले गये। आचार्यश्रीजी ने डॉक्टर सा. को वापस इशारा कराया। डॉक्टर सा. वापस आये। आचार्यश्रीजी ने डॉक्टर सा. को पूछा कि मैं अब संथारा लेना चाहता हूँ। इसमें आप क्या कहते हैं ? आप अपनी भौतिक दृष्टि से भी कुछ कहिये। डॉक्टर सा. ने कहा कि हमारा सिद्धान्त तथा विज्ञान आप जैसे महापुरुषों के लिये फेल-सा हो चुका है, फिर भी सावधान रहने की आवश्यकता है। डॉक्टर सा. ने मुझे कहा कि कैंसर का बीमार, जिसके सेकेन्ड्रीज फार्म हो जाती है, वह डेढ़ साल से अधिक जीवित नहीं रह सकता। परन्तु मैं तीन साल से महाराजश्री के शरीर की शक्ति देख रहा हूँ, पर अब ब्लडप्रेसर व नाड़ी की गति में काफी अन्तर आ गया है। अतः सावधान तो रहना ही चाहिये।

इसके बाद आचार्यश्रीजी ने मुझे फिर फरमाया कि निगरानी रखना। मैं तो सावधान हूँ ही। मैंने कहा, गुरुदेव क्या आज्ञा है ? गुरुदेव ने फरमाया कि संथारा करने के लिये इच्छाकारेणं आदि की पाटिएं सुनाओ, फिर छह जीवनी, दशवैकालिक का चौथा अध्याय सुनाओ। तब मैंने क्रम से सबका उच्चारण किया। पाठ-उच्चारण में आचार्यश्रीजी ने यह भी फरमाया कि अब बीच में किसी से बोलना मत, फिर कहा खयाल रखो। मैंने तीन दिन पूर्व स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी म. सा. के पास सब आलोचना कर ली है। अब फिर मैंने मेरी आलोचना करके छह जीवनी सुन ली हैं। अब मुझे कोई डॉक्टर, वैद्य आदि गृहस्थ छुए नहीं। मैं अपने जीवन को आगे बढाना चाहता हूँ।

आँखों मे प्रेम और विश्व-वात्सल्य की भावना- उसी दिन प्रातः 10.20 बजे तिविहार संथारा ग्रहण किया और फरमाया कि अब यह कमरा खाली कर दो। मुझे एकान्त चाहिये। सब अलग हो जाओ। ऐसा कहकर आंखें बंद कर लीं। थोड़ी देर बाद जब आंखें खोलीं तो मैं देखता हूँ कि आंखों में अपूर्व प्रेम एवं विश्व-वात्सल्य की भावना टपक रही थी। उस वक्त

वास की गति थोड़ी जोर से चल रही थी, मगर चेतना पूरी थी। ता. 11 को प्रातः जब मैं ुछ नित्य-नियम सुना रहा था, उस वक्त भी मैं एक कडी चूक गया तो गुरुदेव ने फरमाया के यह क्या करते हो ! कहने का तात्पर्य यह है कि संथारा सीझने के दिन प्रातःकाल तक ो इतनी ताजा स्मृति एवं जागरूकता थी। प्रतिक्रमण के वक्त स्थविर पं. मुनिश्री सूरजमलजी . ने मांगलिक कुछ धीरे सुनाई, जिससे आचार्यश्रीजी म. के कान में न पड़ी तो फरमाया कि ांगलिक क्यों नहीं सुनाते हो ? फिर मैंने जोर से सुनाई। इतना ही नहीं, संथारा सीझने के न्तिम समय तक दोपहर को करीब 2 बजे महासतीजीश्री सोहनकंवरजी पधारे तब श्री ानमुनिजी ने कहा कि महासतीजी खमत-खामणा करते हैं, तो आचार्यश्रीजी ने आंखे खोलीं ौर उनके सामने देखकर गर्दन हिलाई। तब भी आचार्यश्रीजी म जागरूक थे। इसके पूर्व रीब 12 बजे आचार्यश्रीजी म. चौविहार संथारा पचख चुके थे। इस तरह 29 घण्टा ंथाराकाल व्यतीत होने के बाद ता. 11 को 3.20 बजे अन्त तक जागरूक अवस्था में संथारा ीझा। संथारा सीझने के पूर्व दर्शनार्थियों की भीड काफी संख्या में जमा थी। दर्शन के लिये ब आतुर थे। पर मैं सोचता था कि अन्तिम समय में समाधि के अन्दर किसी प्रकार व्यवधान पहुंचे। बिल्कुल शांत वातावरण रहे तो अच्छा है। इसलिये दर्शनार्थियो को कुछ रुकना भी ड़ा। चौविहार संथारे के दरम्यान आचार्यश्रीजी म. के शरीर में जब खुजाल हुई तो स्वयं ुजाल करने लगे। मुझे इनकार कर दिया। शरीर के हाथ नहीं लगाने दिया। इसी जागरूक ौर पूर्ण चेतनावस्था में ही मस्तिष्क और नेत्र आदि की तरफ से आखिर इस भौतिक शरीर ो छोड़ स्वर्ग सिधार गये।

मैं चतुर्विध संघ की गोद में- आचार्यश्रीजी म. सा. का अन्तिम दृश्य अलौकिक था, अपूर्व ा। मैंने ऐसा दृश्य न कभी सुना और न देखा। आचार्यश्रीजी म. ने जिस जागरूकता के ाथ अपने जीवन का उत्कर्ष किया, वह उनकी साधना का प्रतीक है। आचार्यश्रीजी म. के ीवन में साधना का जो स्थान रहा, उसका वर्णन शब्दों द्वारा व्यक्त करना मेरे लिये बहुत ी कठिन है। इतना अवश्य कहता हूँ कि निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के संरक्षणार्थ आचार्यश्रीजी आचार-विचार और उच्चार को दृढता के साथ समाज के सामने रखकर आदर्श उपस्थित किया। हमारा कर्तव्य है कि उसको हम श्रमणवर्ग आगे बढाते हुए चलें। श्रावक-श्राविकाओं ा भी अपने-आप में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। अत. आप लोग भी कटिबद्ध होकर चलने की ्रतिज्ञा लेकर उठेंगे तो शिथिलाचार एवं स्वेच्छाचार को दूर होने में देर न लगेगी। ाचार्यश्रीजी का भौतिक शरीर हमारे सामने नहीं है, लेकिन आध्यात्मिक शरीर हमारे सामने ौजूद है। उसको जीवन में लाना है और जिस प्रकार संथारा-संलेखनापूर्वक पंडितमरण से

उन्होंने अपने को सफल बनाया, उसी प्रकार प्रतिदिन अभ्यास द्वारा हम भी अपने जीवन को आगे बढ़ाते हुए अन्तिम समय में उत्तम भावना द्वारा पांडित्यमरणपूर्वक जीवन को सफल बनायेंगे। यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है। मैं आचार्यश्रीजी की आज्ञा, आणा, धारणा के अनुसार चलने को कटिबद्ध हूँ। इन महात्माओं ने मेरे प्रति जिन शब्दों का प्रयोग किया है, उनकी रक्षा आपके हाथ में है। मैं बच्चा हूँ, चतुर्विध संघ की गोद में बैठा हूँ, मेरे ज्ञान-दर्शन-चारित्र की रक्षा का ध्यान रखना आपका कर्तव्य है। आचार्यश्रीजी के शुभाशीर्वाद से हम ज्ञान-दर्शन-चारित्र में उत्तरोत्तर वृद्धि करते रहें और आचार्यश्रीजी म. की दिव्य आत्मा स्थायी एवं अखंड पूर्ण शांति के साथ शीघ्रातिशीघ्र मोक्ष में पधारे, इस भावना के साथ मैं अपनी अटूट श्रद्धा व्यक्त करता हूँ।

विचार खण्ड

महावि
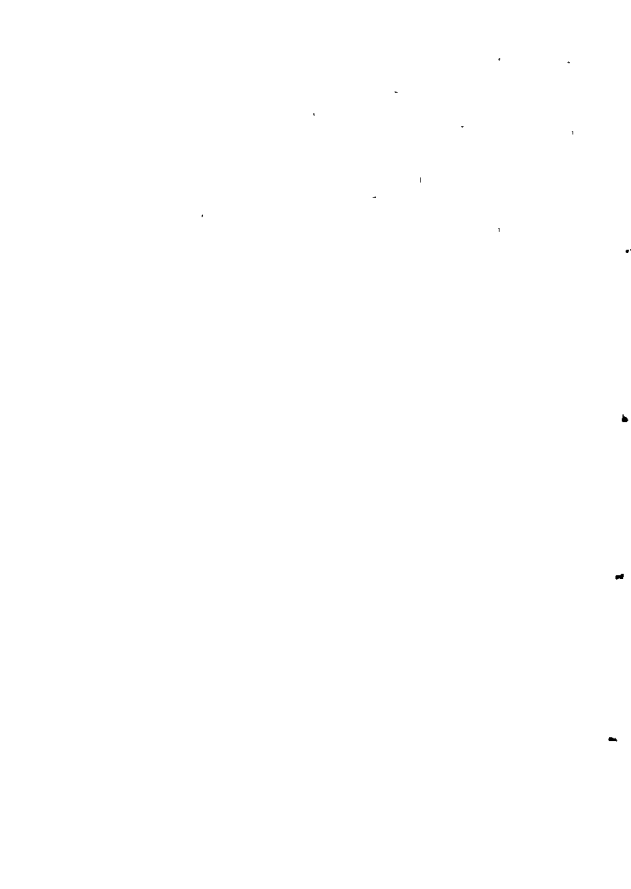
महावीर ने दृढ़ता से आह्वान किया-

पुरिसा अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खापमोक्खसि।

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयों (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको, तुम दुःख से मुक्ति पा सकोगे।

जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आध के ममत्व को काटकर संग्रहवृत्ति का जब त्याग किया जाएगा, तभी कोई पू पूर्ण स्वाधीन बन सकता है। स्वाधीनता ही आत्मा का स्वधर्म अथवा निजी मिथ्यात्व एवं अज्ञान के वशीभूत होकर आत्मा अपने मूल स्वभाव को विस्मृत इसीलिए वह दासता की शृंखलाओं में जकड़ जाती है।

महावीर ने स्वाधीनता के इसी आदर्श को बता कर विश्व में फैली बडे- धनी-निर्धन आदि की विषमता एवं भौतिक शक्तियों के मिथ्याभिमान को दू समानता के अधिकार बताये। यही कारण है कि ढाई हजार वर्ष व्यतीत महावीर के अहिंसा और त्याग के अनुभवों की गूंज बराबर बनी रही है।

महावीर ने जो कहा, पहले उसे किया और इसीलिए उनकी वाणी में व व भावना का उद्रेक, दोनों हैं। हिंसा के नग्न तांडव से संतप्त एवं शोषण उत्पीड़ित जनता को दुखों से मुक्त करने के लिए अहिसा की क्रांतिकारी आवाज उठाई। स्वार्थोन्मत्त नर-पिशाचों को प्रेम, सहानुभूति, शान्ति एवं स स्वाधीनता का दिव्यपथ उन्होंने प्रदर्शित किया।

जिन्हें अपनी आत्मा का गौरव होगा, वे कभी उसे पतित नहीं होने देंगे, विवशतापूर्ण परिस्थितियां उनके सामने आकर खड़ी हो जायें। अपनी अ बनाइये, उसे निभाइये और अपने साथियों के गौरव की रक्षा कीजिये। व्यक्ति तक के जीवन-विकास की यही कहानी है।

प्रतिज्ञा कीजिए कि आप सर्वोच्च स्वाधीनता की अन्तिम सीमा तक गति

❖ ❖ ❖

ौरवं प्राप्यते दानात्

जीवन का गौरव प्रदान करने में है, न कि ग्रहण करके एकत्र कर लेने में। वास्तव में इस ादान करने को, दान कहिये या त्याग, जीवन के विकास का प्रधान कारण समझना चाहिए। ाकृति के स्वाभाविक वातावरण में ही इस सत्य का स्पष्टतः दर्शन किया जा सकता है-

गौरवं प्राप्यते दानान्नतु वित्तस्य संचयात्।
स्थितिरुच्चैः पयोदानां पायोधिनामधः स्थितिः।

आज के सामाजिक जीवन का भी यही सत्य है। दान उदार हृदय की विशालता को ाधिकतम क्षेत्र में प्रसारित करता है। संचयवृत्ति हृदय को अत्यधिक संकुचित बनाती हुई उसे ाृणित रूप दे देती है।

अतः जीवन-विकास के क्षेत्र में दान अत्यावश्यक है। जो दान देकर उसके बदले की ाशा लगाये रहता है, वह एक दृष्टि से वास्तव में दान नहीं करता है, बल्कि एक तरह का ौदा करता है। दान के शुद्ध दृष्टिकोण से अर्पित की जाने वाली धनराशि ही सच्चा ान-कल्याण कर सकती है।

अन्त में यही कहना चाहूंगा कि त्याग और दान ही जीवन के विकासक हैं। दान सरल ी है यदि हृदय में सच्ची भावना व उदारता है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति अपने पास से ान-हित कुछ-न-कुछ निकाल सकता है। मोक्ष के चार उपाय - दान, शील, तप व भावना ाताये हैं। उनमें भी दान को सर्वप्रथम कहा गया है। अतः यदि आप जीवन में प्रगति चाहते ! तो अपनी शक्ति गिरे हुए को उठाने में और दुखियों का दर्द दूर करने में लगावें।

❖ ❖ ❖

ात्मदर्शन का साधन

देह और आत्मा का अभेद समझने की मूढ़ दृष्टि जब तक विद्यमान रहती है तब तक ाहिरात्म दशा बनी रहती है। सर्वप्रथम आत्मा के पृथक् अस्तित्व को समझना आवश्यक ै। अन्तरात्मा बनने के लिए आपको मानना चाहिए कि देह अलग है और मैं अलग हूं। देह े नाश में मेरा नाश नहीं है। मैं अविनाशी हूं, अनन्त हूं, अक्षय हूं, अनन्त आनन्द और चैतन्य ा आगार हूं।

अन्तरात्म दशा प्राप्त होने पर जीव के विचार और व्यवहार में बड़ा अन्तर आ जाता है। ाह नाशशील दुःख के बीज और आत्मा को मलिन बनाने वाले सांसारिक सुख की अभिलाषा

नहीं करता। अन्तरात्मा जीव का विवेक जब परिपक्व होता है तो इसे सांसारिक सुख से अरुचि हो जाती है। तब आत्मा अपने ही स्वरूप में रमण करने लगती है। उस अवस्था को इन शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं -

वह परम आत्मा अनन्त सुख से सम्पन्न, ज्ञानरूपी अमृत का स्रोत, अनन्त शक्ति से समन्वित है। उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है, उसके लिए किसी आधार की आवश्यकता नहीं है, वह समस्त परपदार्थों के संसर्ग से रहित है और विशुद्ध चैतन्य स्वरूपी है। आत्मा का समर्पण करने से आत्मा की उपलब्धि होती है, उसका स्वरूप अधिकाधिक निर्मल रूप से समझ में आने लगता है।

❖ ❖ ❖

महावीर-सन्देश

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयों (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको, क्योंकि इसी से तुम दुःख से मुक्ति पा सकोगे।

समस्त जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आधारित है।

आत्मा की पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ है - संपूर्ण भौतिक पदार्थो एवं भौतिक जगत् से सम्बन्ध-विच्छेद करना। अंतिम श्रेणी में शरीर भी उसके लिये एक बेडी है, क्योंकि वह अन्य आत्माओं के साथ एकत्व प्राप्त कराने में बाधक है। पूर्ण स्वाधीनता की इच्छा रखने वाला विश्वहित के लिये अपनी देह का भी त्याग कर देता है। वह विश्व के जीवन को ही अपना मानता है, सबके सुख-दुःख में ही स्वयं के सुख-दुःख का अनुभव करता है, व्यापक चेतना में निज की चेतना को संजो देता है। एक शब्द में कहा जा सकता है कि वह अपनी व्यष्टि को समष्टि मे विलीन कर देता है। वह आज की तरह अपने अधिकारों के लिये रोता नहीं, वह कार्य करना जानता है और कर्तव्यों के कठोर पथ पर कदम बढ़ाता हुआ चलता जाता है। जैसा कि गीता में भी कहा गया है-

कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

फल की कामना से कोई कार्य मत करो। अपना कर्तव्य जानकर करो, तब उस निष्काम कर्म में एक आत्मिक आनन्द होगा और उसी कर्म का सम्पूर्ण समाज पर विशुद्ध एवं स्वस्थ प्रभाव पड़ सकेगा। कामनापूर्ण कर्म दूसरों के हृदय मे विश्वास पैदा नहीं करता। स्वार्थ छोडने से परमार्थ की भावना पैदा होती है, और तभी आत्मिक भाव जागता है।

महावीर ने स्वाधीनता के इसी आदर्श को बताकर विषमता एवं भौतिक शक्तियों के

मिथ्याभिमान को दूर हटा कर सबको समानता के अधिकार बताये। यही कारण है कि ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी महावीर के अहिंसा और त्याग के अनुभवों की गूंज बराबर बनी है।

❖ ❖ ❖

आत्मा से विश्वासघात न करो

मानव-जीवन की भौतिक शक्तियों के पा लेने में विशेषता नहीं है, पाकर उन्हें निस्पृह भाव से त्याग देने में उसकी परम विशेषता रही है। दशवैकालिक सूत्र (अध्याय 2, गाथा 3) में कहा है -

जे य कंते पिये भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वई।
साहीण चयई भोए, से दु चाई त्ति वुच्चई।।

अर्थात् जो सुन्दर भोगोपभोग के पदार्थों को प्राप्त करके भी उन्हें आत्मोन्नति हेतु त्याग देता है वही सच्चा त्यागी कहलाता है। धन-संग्रह जहाँ दुःख-क्लेश का मूल है, वहां उसी धन का निस्पृह भाव से त्याग करने में महान् आत्मिक आनन्द का निवास है। फिर भी इस शाश्वत सिद्धांत से विमुख होकर जो क्षणिक सुखाभास के दलदल में अपने-आप को फंसाकर मानव जीवन को पतित बनाता है, वह त्यागी भर्तृहरि के शब्दों में "तिल की खल को पकाने के लिये अमूल्य रत्नों के पात्र का उपयोग करने वाले, ओक की खेती के लिये स्वर्ण-हल से धरती को खोदने वाले और कोदरे अन्न के लिये कपूर की खेती को नष्ट करने वाले व्यक्ति की तरह" अपने-आप को वज्रमूर्ख ही सिद्ध करता है। इस जीवन में आत्मोत्थान के सभी संयोग उपलब्ध होने पर भी उनकी ओर ध्यान न देकर धनलिप्सा व मिथ्या व्यामोहों में फंस जाना अपनी ही आत्मा के साथ भीषण विश्वासघात करना और मानव-जीवन की अनुपम विशिष्टता को व्यर्थ ही में खो देना है।

❖ ❖ ❖

दुराग्रह को दूर करो

मानव जीवन में अनेक प्रकार की दुर्बलताएं देखी जा सकती हैं। प्रथम तो मनुष्य का अपने विचारों के प्रति स्वभावतः एक विशिष्ट आकर्षण या मोह होता है। उसके कारण वह सत्य का साक्षात्कार करके भी यकायक अपने विचार या मंतव्य में परिवर्तन नहीं कर पाता। दूसरी दुर्बलता है परम्परा के प्रति अन्धश्रद्धा। जब मनुष्य अपने विचार या मन्तव्य को असमीचीन

समझ लेता है, तब भी परम्परा से आया हुआ होने के कारण उस विचार को छोड नहीं पाता।

आज अधिकांश जनता इसी प्रकार के दुर्बल विचारों की शिकार हो रही है। जानते हैं कि अमुक रूढ़ि हानिकर है, वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल नहीं है और उसके चालू रहने से समाज के बहुत लोगों को कष्ट उठाना पडता है, फिर भी उसे त्यागने का साहस नही होता है। क्योंकि वह पुरखाओं के जमाने से चली आ रही है। इस प्रकार के लोग अपने विवेक का अपमान करते हैं। विवेक न होगा तो साधन मिलने पर भी कार्य अच्छा न होगा।

इस तथ्य को सामने रखकर विचार करें।

❖ ❖ ❖

समता : लक्ष्यप्राप्ति का साधन

यह निश्चय है कि जब तक सांसारिक क्षेत्र में ही एक भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि नही होगी, समाज में परस्पर व्यहार की रीति-नीति समान व सम्यक् नहीं बनेगी तो निवृत्ति के मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति भी साधारण रूप से पैदा नहीं हो सकेगी। इसलिये समाज में समान और सम्यक् वातावरण पैदा हो तथा सामाजिकता की भावना का प्रसार हो, यह निवृत्ति के प्रत्यक्ष लक्ष्य का परोक्ष साधन माना गया है। क्योकि यह संसार में प्रवृत्ति करने की वात नही, वरन् सामाजिक सुधार द्वारा निवृत्ति के लक्ष्य को मस्तिष्क में स्पष्ट कराने का अथक प्रयास है।

जैन सिद्धातों की जो गति है, वह निवृत्ति के लिये प्रवृत्ति की है, प्रवृत्ति के लिये प्रवृत्ति की नही। निवृत्ति का प्रसार उसी समाज में हो सकेगा जिसमें गुणों और आचरण की पूजा होती होगी। किन्तु जब तक ऐसा स्वस्थ समाज नहीं बनेगा, तो यह भी संभव नहीं हो सकता कि निवृत्ति का व्यापक प्रचार हो सके। 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'-हमारे यहाँ कहा गया है। धर्म का आचरण तभी शुद्ध बन सकेगा जब समाज का व्यवहार शुद्ध होगा और समानता के जो स्रोत जैन सिद्धान्तों के अनुसार बताये गये, वे ही ऐसे सशक्त साधन हैं, जिनके आधार पर समाज के व्यवहार का शुद्धिकरण किया जा सकता है।

सजग सामाजिकता आत्म-कल्याण की ज्योति जगाये, यही जैन सिद्धान्तों का संदेश है।

❖ ❖ ❖

विचार-समन्वय का सुमार्ग

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है तथा उसका मस्तिष्क ही उसे प्राणी समाज में उच्च स्थान प्रदान करता है। मनुष्य सोचता है, स्वयं ही और स्वतंत्रतापूर्वक भी, अतः उसका परिणाम

मिथ्याभिमान को दूर हटा कर सबको समानता के अधिकार बताये। यही कारण है कि ढाई हजार वर्ष व्यतीत हो जाने पर भी महावीर के अहिंसा और त्याग के अनुभवों की गूंज बराबर बनी है।

❖ ❖ ❖

आत्मा से विश्वासघात न करो

मानव-जीवन की भौतिक शक्तियों के पा लेने में विशेषता नहीं है, पाकर उन्हें निस्पृह भाव से त्याग देने में उसकी परम विशेषता रही है। दशवैकालिक सूत्र (अध्याय 2, गाथा 3) में कहा है -

जे य कंते पिये भोए, लद्धे विपट्ठि कुव्वई।
साहीण चयई भोए, से दु चाई त्ति वुच्चई।।

अर्थात् जो सुन्दर भोगोपभोग के पदार्थों को प्राप्त करके भी उन्हें आत्मोन्नति हेतु त्याग देता है वही सच्चा त्यागी कहलाता है। धन-संग्रह जहाँ दुःख-क्लेश का मूल है, वहां उसी धन का निस्पृह भाव से त्याग करने में महान् आत्मिक आनन्द का निवास है। फिर भी इस शाश्वत सिद्धांत से विमुख होकर जो क्षणिक सुखाभास के दलदल में अपने-आप को फंसाकर मानव जीवन को पतित बनाता है, वह त्यागी भर्तृहरि के शब्दों में "तिल की खल को पकाने के लिये अमूल्य रत्नों के पात्र का उपयोग करने वाले, ओक की खेती के लिये स्वर्ण-हल से धरती को खोदने वाले और कोदरे अन्न के लिये कपूर की खेती को नष्ट करने वाले व्यक्ति की तरह" अपने-आप को वज्रमूर्ख ही सिद्ध करता है। इस जीवन में आत्मोत्थान के सभी संयोग उपलब्ध होने पर भी उनकी ओर ध्यान न देकर धनलिप्सा व मिथ्या व्यामोहों में फंस जाना अपनी ही आत्मा के साथ भीषण विश्वासघात करना और मानव-जीवन की अनुपम विशिष्टता को व्यर्थ ही में खो देना है।

❖ ❖ ❖

दुराग्रह को दूर करो

मानव जीवन में अनेक प्रकार की दुर्बलताएं देखी जा सकती हैं। प्रथम तो मनुष्य का अपने विचारों के प्रति स्वभावतः एक विशिष्ट आकर्षण या मोह होता है। उसके कारण वह सत्य का साक्षात्कार करके भी यकायक अपने विचार या मंतव्य में परिवर्तन नहीं कर पाता। दूसरी दुर्बलता है परम्परा के प्रति अन्धश्रद्धा। जब मनुष्य अपने विचार या मन्तव्य को असमीचीन

समझ लेता है, तब भी परम्परा से आया हुआ होने के कारण उस विचार को छोड नही पाता।

आज अधिकांश जनता इसी प्रकार के दुर्वल विचारो की शिकार हो रही है। जानते हैं कि अमुक रूढ़ि हानिकर है, वर्तमान परिस्थिति के अनुकूल नहीं है और उसके चालू रहने से समाज के बहुत लोगों को कष्ट उठाना पड़ता है, फिर भी उसे त्यागने का साहस नहीं होता है। क्योंकि वह पुरखाओं के जमाने से चली आ रही है। इस प्रकार के लोग अपने विवेक का अपमान करते हैं। विवेक न होगा तो साधन मिलने पर भी कार्य अच्छा न होगा।

इस तथ्य को सामने रखकर विचार करें।

समता : लक्ष्यप्राप्ति का साधन

यह निश्चय है कि जब तक सांसारिक क्षेत्र में ही एक भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं होगी, समाज मे परस्पर व्यहार की रीति-नीति समान व सम्यक् नहीं बनेगी तो निवृत्ति के मार्ग पर चलने की प्रवृत्ति भी साधारण रूप से पैदा नहीं हो सकेगी। इसलिये समाज में समान और सम्यक् वातावरण पैदा हो तथा सामाजिकता की भावना का प्रसार हो, यह निवृत्ति के प्रत्यक्ष लक्ष्य का परोक्ष साधन माना गया है। क्योकि यह संसार में प्रवृत्ति करने की बात नहीं, वरन् सामाजिक सुधार द्वारा निवृत्ति के लक्ष्य को मस्तिष्क में स्पष्ट कराने का अथक प्रयास है।

जैन सिद्धातों की जो गति है, वह निवृत्ति के लिये प्रवृत्ति की है, प्रवृत्ति के लिये प्रवृत्ति की नहीं। निवृत्ति का प्रसार उसी समाज में हो सकेगा जिसमे गुणों और आचरण की पूजा होती होगी। किन्तु जब तक ऐसा स्वस्थ समाज नहीं बनेगा, तो यह भी संभव नहीं हो सकता कि निवृत्ति का व्यापक प्रचार हो सके। 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'-हमारे यहाँ कहा गया है। धर्म का आचरण तभी शुद्ध बन सकेगा जब समाज का व्यवहार शुद्ध होगा और समानता के जो स्रोत जैन सिद्धान्तों के अनुसार बताये गये, वे ही ऐसे सशक्त साधन है, जिनके आधार पर समाज के व्यवहार का शुद्धिकरण किया जा सकता है।

सजग सामाजिकता आत्म-कल्याण की ज्योति जगाये, यही जैन सिद्धान्तो का संदेश है।

❖ ❖ ❖

विचार-समन्वय का सुमार्ग

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है तथा उसका मस्तिष्क ही उसे प्राणी समाज में उच्च स्थान प्रदान करता है। मनुष्य सोचता है, स्वयं ही और स्वतंत्रतापूर्वक भी, अतः उसका परिणाम

स्पष्ट है कि विचारों की विभिन्न दृष्टियां संसार में जन्म लेती हैं। वस्तु के एक ही स्वरूप पर भी विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियों में सोचना शुरु करते हैं। किन्तु उसके आगे एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियों से सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है, वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि ऐकान्तिक दृष्टिकोण व हठवादिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार, जो सत्यज्ञान की ओर बढ़ा सकते थे, पारस्परिक समन्वय के अभाव में संघर्ष के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं।

अगर विचारों को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती है, तो वह एकांगी सत्य भी सत्य न रहकर मिथ्या में बदल जायेगा। अतः सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखने की कोशिश की जाये।

यही जगत् के वैचारिक संघर्ष को मिटाकर उन विचारों को आदर्श सिद्धांतों का जनक बनाने की सुन्दर राह है।

❖ ❖ ❖

कर्मवाद का अन्तर्रहस्य

कर्मबन्धन के प्रधान कारणों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि मोह, अज्ञान या मिथ्यात्व, यही सबसे बड़े कारण हैं। क्योकि इन्हीं के कारण राग-द्वेष का जन्म होता है व तज्जन्य विविध विकारों से आत्मा कर्म से लिप्त हो जाती है। तत्त्वार्थसूत्र में कर्मबन्ध के कारणों पर कहा गया है-

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः

राग-द्वेषात्मक कषाय-परिणति से आत्मा कर्मयोग्य पुद्गलों को जब ग्रहण करती है तो वही बन्ध है तथा इसके कारण मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग बताये गये हैं। यह उल्लेखनीय स्थिति है कि कर्मबन्ध का मुख्य कारण बाहर की क्रियाएं उतनी नहीं, जितनी आंतरिक भावनाएं मानी गई हैं। क्रियाओ में अनासक्त भाव का प्राबल्य बनाने से विकारो का प्रभाव नहीं पड़ता। शैलेषी नाम की क्रिया में तो अनासक्ति क्या, मन, वचन, काया की प्रवृत्तियों का सम्पूर्ण निरोध ही कर लिया जाता है।

कर्मबन्ध से सर्वथा मुक्त होने के लिए नये आने वाले कर्मो को रोकना पड़ता है। इस रोकने को संवर तथा जिन स्रोतों से कर्म आते हैं उन्हें आस्रव कहा गया है। आस्रव का विरोध-

संवर है। सम्यक् ज्ञान, दर्शन व चारित्र की शक्तियो से आत्मा के विकार - कर्मो को दूर करना चाहिए ताकि आत्मा कर्ममुक्त होकर अपने मूल रूप की ओर गति कर सके।

जैन धर्म का कर्मवाद सिद्धांत मानव को अपना निज का भाग्य स्वतः ही निर्माण करने की प्रेरणा देने के साथ ही उसे जीवन की ऊंची-नीची परिस्थितियों में शांति, उत्साह, सहनशीलता और कर्मठता का जागरूक पाठ पढ़ाता है। अपने पर छा जाने वाली आपत्तियों के बीच भी वह उन्हें अपना ही कर्मफल समझकर शान्तिपूर्वक सहन करने की क्षमता पैदा करता है तथा उज्ज्वल भविष्य के निर्माण-हित सद्रप्रयत्नों में प्रवृत्त हो जाने पर दृढ निश्चय कर लेता है। कर्मवाद को मानकर वह पूर्वकृत कर्मो के फल को अपने कर्ज चुकाने की तरह स्वीकार करता है। कर्मवाद के जरिये मनुष्य में स्वावलम्बन व आत्मविश्वास के सुदृढ़ भाव जाग्रत होते हैं और यह इस सिद्धांत का सबसे बड़ा व्यावहारिक मूल्य है।

कर्मवाद का यही संदेश है कि जो स्वरूप परमात्मा का है, वही प्रत्येक आत्मा का है, किन्तु उसे प्रकटाने के लिए विजातीय भौतिक पदार्थो से मोह हटाकर सजातीय आत्मिक शक्तियो को प्रकाशित करना होगा।

❖ ❖ ❖

परमात्मा आत्मा का परमोत्कृष्ट रूप

जैन दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि परमात्म-पद कोई अलग वस्तुस्थिति नहीं, बल्कि उसका स्वरूप आत्मा के ही परमोत्कृष्ट रूप में जाज्वल्यमान होता है। आत्मा पर लगा हुआ कर्म का कलुष ज्यों-ज्यो धुलता जाये, गुणस्थान की सीढियों पर चढता जाये, तव चरम स्थिति होती है कि वही परमात्म-पद पर पहुंच जाता है। आत्मा से परमात्मा की गतिक्रम रेखा है, एक ही मार्ग के दो सिरे हैं, जिनमे कर्म-स्वरूप भेद हैं, मूल भेद नही। हमारी यह मान्यता नहीं कि ईश्वर इस जगत् या जगवर्ती आत्माओं से प्रारम्भ ही में विलग रहा है और उसका जगत् की रचना से कोई सम्बन्ध हो। जगत् का क्रम कर्मानुवर्ती माना गया है और उसी आवर्तन मे पुद्‌गल तथा आत्माएं प्रेरित व अनुप्रेरित होते हैं और चक्कर लगाते रहते हैं। आत्माएं कर्म-चक्र में फंसती हैं और धर्म वह आधारशिला है जिस पर चढकर वे इस चक्र से निकलने का पराक्रम भी करती हैं। इसी पराक्रम की सफलता का अन्तिम विन्दु परमात्म-पद है।

❖ ❖ ❖

विकास का मूल सिद्धान्त

मनुष्य स्वयं ही अपने व समाज के भाग्य का निर्माता है - इस तथ्य को जब-जब उसने भुला देने की कोशिश की, तब-तब मानव-समाज में शिथिलता व अकर्मण्यता का वातावरण फैला। किसी अन्य पर अपने निर्माण को आश्रित बनाकर विकास करने का उत्साह मनुष्य मे नहीं बन पड़ता, चाहे वैसा आश्रय खुद ईश्वर को ही सौंपा गया हो। मनुष्य गतिशील प्राणी है और जहां भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया कि उसका विकास रुक गया। मनुष्य स्वयं ही पर आश्रित रह सकता है, किसी अन्य पर उसे आश्रित बनाकर उसको गतिशील नहीं बनाया जा सकता है।

जैन दृष्टि के अनुसार आत्मा ही परमात्मा बन जाता है, भक्त स्वयं भगवान बन कर दिव्य स्थिति को प्राप्त कर लेता है और आराधक एक दिन आराध्य के रूप में अपने उच्चतम स्वरूप को ग्रहण करता है और जैन धर्म के इस प्रगतिशील विकासवाद का मूलाधार सिद्धान्त है कर्मवाद का सिद्धान्त।

अतः कर्मवाद का सिद्धान्त इस सत्य का प्रतीक है कि प्राणी के लिए कोई भी विकास, चाहे वह चरम विकास के रूप में ईश्वरत्त्व की प्राप्ति ही क्यों न हो, असंभव नहीं। वह स्वयं कर्ता है और फलभोक्ता है।

इस विचारणा के पीछे जो मजबूती है, वह स्वतःप्रेरित फलवाद की धारणा है। अगर फलवाद का कार्य ईश्वर पर छोडा जाये, जैसा कि अन्य दर्शन मानते हैं, तो वही आश्रित *अवस्था पैदा हो जाने पर मनुष्य में से स्वाश्रय का भाव जाता रहेगा और तदुपरान्त प्रगति की* ओर बढने की वैसी लक्ष्यसाधित विचारणा उसमें बनी न रह सकेगी।

❖ ❖ ❖

जैन दर्शन का तत्त्ववाद

जैन शास्त्रों में तत्त्ववाद का बड़ा विशद विवरण है। इस समूचे तत्त्ववाद को नौ भागों में विभक्त किया गया है-

1. जीव 2. अजीव. 3. बंध. 4. पाप. 5. पुण्य. 6. आश्रव. 7. संवर. 8 निर्जरा 9. मोक्ष।

जीव तत्त्व - जो सच्चिदानन्दमय हो। इसमें तीन शब्द मिले हुए हैं - सत्, चित् और आनन्द। सत् का अर्थ है जो तीनों काल में स्थायी रहता है। अर्थात् जो पर्याय बदलने की दृष्टि से पैदा हो, नष्ट हो जाये, किन्तु द्रव्य रूप से नित्य व शाश्वत रहे वह सत् होता है।

चित् अर्थात अपने से ऊपर साधन की अपेक्षा न रखते हुए स्वयं ही प्रकाशमान होकर दूसरों को भी प्रकाशित करता है। चेतन का तीसरा गुण है आनन्द। हम हैं और हम अनुभव करते हैं, उसका परिणाम जो निकलता है वह आनन्द है।

अजीव तत्त्व - यानी जड़ पुद्गल का स्वभाव सडना, गलना, बदलना और नित्यप्रति इसकी पर्यायें बदलती हैं।

बंध तत्त्व - जीव-अजीव को बांधने वाले तत्त्व का नाम है।

पाप-पुण्य तत्त्व - बंध के फलस्वरूप सामने आते हैं और दोनों अशुभ या शुभ फलदायक होते हैं। इन्हीं के कारण आत्मा सांसारिक सुखों या दुखों का अनुभव करती रहती है।

आस्रव तत्त्व - अशुभ लगावट आत्मा के साथ होती है, उसे आस्रव तत्त्व कहा है। आस्रव तत्त्व से आत्मा की मलिनता बढ़ती है।

संवर तत्त्व - शुभ योग तथा योग-निरोध को संवर कहा है। यद्यपि संवर तत्त्व आत्मोत्थान में सहायक होता है, किन्तु उसी तरह जिस तरह नाव नदी को पार करने में सहायक होती है।

निर्जरा तत्त्व - संलग्न कर्म-पुद्गलों से आत्मा को छुड़ाने वाला तत्त्व है। निर्जरा का अर्थ है कर्मक्षय।

मोक्ष तत्त्व - जब आत्मा जड़ की उगावट को पूरे तौर पर खत्म कर देती है और शरीर के अन्तिम बन्धन से जब वह छूट जाती है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

शुद्धि सिद्धिदायिनी

पहले हमें यह देखना होगा कि धर्म को हृदय में विराजने के आह्वान के पूर्व उसके धरातल का निर्माण किया गया है या नहीं ? यदि प्राथमिक हृदय-शुद्धि नहीं की है और धर्म का आह्वान किया तो क्या उसका निवास फिर स्थायी हो सकेगा ? यह सोचने की बात है।

परन्तु साधारणतया देखा जाता है कि अन्त:करण की बिना शुद्धि किये ही धर्माराधन किया जाता है - भगवान धर्मनाथ को हृदय में पधारने का आमंत्रण दिया जाता है। आप ही उस विज्ञान को क्या कहेंगे, जो बिना खेत को जोते और कृषियोग्य बनाये ही वर्षा को बुलाने के लिए मल्हार राग गाने के लिए बैठ जाये ?

एक फारसी कवि ने कहा है-

गैर हकराभी देही दर हीरी में दिलचरा

विकास का मूल सिद्धान्त

मनुष्य स्वयं ही अपने व समाज के भाग्य का निर्माता है - इस तथ्य को जब-जब उसने भुला देने की कोशिश की, तब-तब मानव-समाज में शिथिलता व अकर्मण्यता का वातावरण फैला। किसी अन्य पर अपने निर्माण को आश्रित बनाकर विकास करने का उत्साह मनुष्य में नही बन पड़ता, चाहे वैसा आश्रय खुद ईश्वर को ही सौंपा गया हो। मनुष्य गतिशील प्राणी है और जहां भी उसे गतिहीन बनाने का प्रयास किया गया कि उसका विकास रुक गया। मनुष्य स्वयं ही पर आश्रित रह सकता है, किसी अन्य पर उसे आश्रित बनाकर उसको गतिशील नहीं बनाया जा सकता है।

जैन दृष्टि के अनुसार आत्मा ही परमात्मा बन जाता है, भक्त स्वयं भगवान बन कर दिव्य स्थिति को प्राप्त कर लेता है और आराधक एक दिन आराध्य के रूप में अपने उच्चतम स्वरूप को ग्रहण करता है और जैन धर्म के इस प्रगतिशील विकासवाद का मूलाधार सिद्धान्त है कर्मवाद का सिद्धान्त।

अतः कर्मवाद का सिद्धान्त इस सत्य का प्रतीक है कि प्राणी के लिए कोई भी विकास, चाहे वह चरम विकास के रूप में ईश्वरत्व की प्राप्ति ही क्यों न हो, असंभव नहीं। वह स्वयं कर्ता है और फलभोक्ता है।

इस विचारणा के पीछे जो मजबूती है, वह स्वतःप्रेरित फलवाद की धारणा है। अगर फलवाद का कार्य ईश्वर पर छोड़ा जाये, जैसा कि अन्य दर्शन मानते हैं, तो वही आश्रित अवस्था पैदा हो जाने पर मनुष्य में से स्वाश्रय का भाव जाता रहेगा और तदुपरान्त प्रगति की ओर बढने की वैसी लक्ष्यसाधित विचारणा उसमें बनी न रह सकेगी।

❖ ❖ ❖

जैन दर्शन का तत्त्ववाद

जैन शास्त्रों में तत्त्ववाद का बड़ा विशद विवरण है। इस समूचे तत्त्ववाद को नौ भागों में विभक्त किया गया है-

1. जीव 2. अजीव. 3. बंध. 4. पाप. 5. पुण्य. 6. आश्रव. 7. संवर 8 निर्जरा 9. मोक्ष।

जीव तत्त्व - जो सच्चिदानन्दमय हो। इसमें तीन शब्द मिले हुए हैं - सत्, चित् और आनन्द। सत् का अर्थ है जो तीनों काल में स्थायी रहता है। अर्थात् जो पर्याय बदलने की दृष्टि से पैदा हो, नष्ट हो जाये, किन्तु द्रव्य रूप से नित्य व शाश्वत रहे वह सत् होता है।

चित् अर्थात अपने से ऊपर साधन की अपेक्षा न रखते हुए स्वयं ही प्रकाशमान होकर दूसरों को भी प्रकाशित करता है। चेतन का तीसरा गुण है आनन्द। हम हैं और हम अनुभव करते हैं, उसका परिणाम जो निकलता है वह आनन्द है।

अजीव तत्त्व - यानी जड़ पुद्गल का स्वभाव सड़ना, गलना, बदलना और नित्यप्रति इसकी पर्यायें बदलती हैं।

बंध तत्त्व - जीव-अजीव को बांधने वाले तत्त्व का नाम है।

पाप-पुण्य तत्त्व - बंध के फलस्वरूप सामने आते हैं और दोनों अशुभ या शुभ फलदायक होते हैं। इन्हीं के कारण आत्मा सांसारिक सुखों या दुखों का अनुभव करती रहती है।

आस्रव तत्त्व - अशुभ लगावट आत्मा के साथ होती है, उसे आस्रव तत्त्व कहा है। आस्रव तत्त्व से आत्मा की मलिनता बढ़ती है।

संवर तत्त्व - शुभ योग तथा योग-निरोध को संवर कहा है। यद्यपि संवर तत्त्व आत्मोत्थान में सहायक होता है, किन्तु उसी तरह जिस तरह नाव नदी को पार करने में सहायक होती है।

निर्जरा तत्त्व - संलग्न कर्म-पुद्गलों से आत्मा को छुड़ाने वाला तत्त्व है। निर्जरा का अर्थ है कर्मक्षय।

मोक्ष तत्त्व - जब आत्मा जड की उगावट को पूरे तौर पर खत्म कर देती है और शरीर के अन्तिम बन्धन से जब वह छूट जाती है तो उसकी मुक्ति हो जाती है।

शुद्धि सिद्धिदायिनी

पहले हमें यह देखना होगा कि धर्म को हृदय में विराजने के आह्वान के पूर्व उसके धरातल का निर्माण किया गया है या नहीं ? यदि प्राथमिक हृदय-शुद्धि नहीं की है और धर्म का आह्वान किया तो क्या उसका निवास फिर स्थायी हो सकेगा ? यह सोचने की बात है।

परन्तु साधारणतया देखा जाता है कि अन्तःकरण की बिना शुद्धि किये ही धर्माराधन किया जाता है - भगवान धर्मनाथ को हृदय में पधारने का आमंत्रण दिया जाता है। आप ही उस विज्ञान को क्या कहेंगे, जो बिना खेत को जोते और कृषियोग्य बनाये ही वर्षा को बुलाने के लिए मल्हार राग गाने के लिए बैठ जाये ?

एक फारसी कवि ने कहा है-

गैर हकरामी देही दर हीरी में दिलचरा

अर्थात् हे मनुष्य ! तू अपने हृदयरूपी भवन में परमात्मा के अतिरिक्त किसी को स्थान मत दे और परमात्मा धर्म का प्रतीक है तथा है विश्व में अपने-आप को व्याप्त कर अपने मूल स्वभाव की ओर गति करने वाला। किन्तु हृदय के विकारों से मुक्त हुए बिना उसमें धर्म का प्रवेश नहीं हो पाता।

इतना विश्लेषण इसीलिए किया है कि मनुष्य अपनी प्रगति की राह को पहचान सके और अपनी भूमिका एवं गति को माप-तौल सके। अतः इसका सीधे शब्दो में यही सार है कि मनुष्य के मूल स्वभाव की ओर बढने में सभी सद्‌गुणों व सत्कार्यो का समावेश हो जाता है, जहां स्वार्थ वृति की समाप्ति होकर उसके हृदय में सबके लिए उत्कृष्ट आत्मीय प्रेम का मिठास होगा तथा होगी उसकी प्रवृत्तियों में संसार भर की पवित्र सेवा करने की अटल कर्मठता। तब विश्वानुभूति को हृदय में समाकर वह अपने चरम विकास - धर्म की मंजिल की ओर उन्मुख हो, उधर तेजी से बढने लगेगा।

❖ ❖ ❖

विश्वशांति का मूल

ममत्व से जागता है राग और द्वेष। अपनी सम्पत्ति के प्रति राग बढेगा और उसकी रक्षा की जायगी और राग जितना गाढ़ा होता जायगा, उस संपत्ति की वृद्धि व रक्षा में वह उचित-अनुचित, कार्य-अकार्य सब-कुछ बेहिचक करने लग जायगा। इसके साथ ही दूसरों की संपत्ति से अपने मन में द्वेष जागेगा और उस संपत्ति के प्रति विनाश की बात सोचेगा। इन राग और द्वेष की वृत्तियों के साथ मान, माया, लोभ, ईर्ष्या, अन्याय की कई बुराइयां मानव-मन में प्रवेश करती जायेंगी तथा इन बुराइयों की फैलावट से दुनिया का स्वरूप 'त्राहिमाम्-त्राहिमाम्' हो जाता है। उसका अनुभव, मैं समझता हूं, वर्तमान व्यवस्था में आपको हो रहा होगा।

आज के साम्यवाद, समाजवाद अपरिग्रह सिद्धान्त के ही रूपान्तर हैं। यदि अपरिग्रह का क्रियात्मक रूप जैनी भी अपने जीवन में उतारें, तो वे अपने जीवन में तो आनंद का अनुभव करेंगे ही, साथ ही सारी दुनिया में एक नई रोशनी, नया आदर्श भी उपस्थित कर सकेंगे। अपरिग्रह का सिद्धांत साम्यवाद व समाजवाद के लक्ष्यों की पूर्ति कर देगा, किन्तु उनकी बुराइयों को भी, चारित्र एवं संयम की आधारशिला पर नागरिकों को खड़ा करके, पनपने नहीं देगा।

❖ ❖ ❖

परिग्रह की परिभाषा

परिग्रह की व्याख्या की गई है, "मूर्च्छा परिग्रहः"। पदार्थों का नाम परिग्रह नहीं, उनमें ममत्व रखकर आत्मज्ञान से संज्ञाशून्य हो जाना परिग्रह कहा गया है। जब जड़ पदार्थों में गृद्धि बढ़ती है और प्राणी अपने चेतन तत्त्व को भूलता है तब उसको परिग्रही कहा। यह ममत्व जब मनुष्य के मन में जागता है तो आत्मा को कलुषित करने वाले सैकड़ों दुर्गुण उसमें प्रवेश करने लगते हैं।

इसीलिए भगवान् महावीर ने अपरिग्रहवाद के सिद्धांत पर विशेष प्रकाश डाला और निवृत्तिप्रधान मार्ग की प्रेरणा दी। उन्होंने साधु व गृहस्थ धर्मो के जो नियम बताये, वे इस दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

साधु के लिये तो उन्होंने परिग्रह का सर्वथा ही निषेध किया, उसे निर्ग्रन्थ कहा। साधु को इसीलिए संयमोपकरण रखते हुए अपरिग्रही कहा है कि उसका उनमें ममत्व नहीं होता और ममत्व क्यों नहीं होता कि उन पदार्थों पर वह अपना स्वामित्व नहीं मानता। वे पदार्थ वह भिक्षा द्वारा प्राप्त करता है। साधु के लिए तो भगवान ने कहा कि उसको अपने शरीर में भी ममत्व नहीं होना चाहिये, इसीलिए जैन साधु का जीवन जितना सादा, जितना कठोर और जितना त्यागमय बतलाया गया है, उसकी समता अन्यत्र कठिनता से देखने में आयेगी।

भगवान् महावीर ने साधु-जीवन को कतई परिग्रह से मुक्त रखा ताकि वे गृहस्थों में फैले परिग्रह के ममत्व को घटाते रहें।

❖ ❖ ❖

जो तृष्णा के दास हैं

आज के मानव को अपने स्वार्थों को पूरा करने की आशा, आकांक्षा, इच्छा, तृष्णा, वासना या कुछ भी कह लीजिए, इतना पागल बना रही है कि ऐसा पागलपन आज तक नहीं देखा गया। उसकी मदान्धता ने सामाजिक जीवन में भीषण उथल-पुथल मचा दी है। इसका कारण यह है कि आज की इच्छाओं ने व्यक्तिगत से सामूहिक रूप धारण कर लिया है और इसीलिए पूर्ति के साधनों में भी सामूहिकता का भाव आने से इसकी भीषणता व बर्बरता अधिक बढ़ गई है। लेकिन यह सामूहिकता व्यापक सामूहिकता नहीं, किन्तु कुछ शक्तिसम्पन्नों की सामूहिकता है जो अपने मानवता-घातक संगठनों द्वारा अशक्त विशाल जन-समाज का क्रूर शोषण करवाती है।

इस स्थिति का वास्तविक कारण सहज ही में जाना जा सकता है। तृष्णा के पागलपन में मनुष्य अन्धा हो जाता है। तब उसकी जीवन-शांति में अशांति के भीषण अंधड़ आया करते है, जो केवल उसके जीवन को ही अशांत नही बनाते, बल्कि सारे समाज के लिये भी अभिशाप-रूप बन जाते हैं। एक-पर-एक तृष्णाएं उठती जाती हैं, जिनकी पूर्ति मे मनुष्य हर बुरे-से-बुरा तरीका काम में लाकर समाज में शोषण, अन्याय और उत्पीडन की भयंकर आग जलाता है। यही कारण है कि व्यवहार में धार्मिक चिन्तन एवं क्रियाएं करने वाला व्यक्ति आन्तरिक विचारधारा से आशापूर्ति के नवीन-नवीन उपायों की खोज करता रहता है।

❖ ❖ ❖

दरिद्रता का उन्मूलन कैसे ?

आज के मानव को अपने स्वार्थों को पूरा करने की आशा, आकांक्षा इतना पागल बना रही है कि ऐसा पागलनपन आज तक नहीं देखा गया है। पागलपन में वह इतना अंधा हो गया है कि उसकी जीवन-शान्ति में अशांति के भीषण अंधड आया करते हैं, जो केवल उसके जीवन को ही अशांत नहीं बनाते, बल्कि सारे समाज के लिये भी अभिशाप-रूप बन जाते हैं। एक-पर-एक तृष्णाएं उठती जाती हैं, जिनकी पूर्ति में मनुष्य हर बुरे-से-बुरा तरीका काम मे लाकर समाज में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न की भयंकर आग जलाता है।

तृष्णा के इस विषाक्त व्यापक प्रसार के कारण सांसारिक व धार्मिक - दोनों क्षेत्रों में दरिद्रता, घर कर गई है। इस दरिद्रता से आज मानवता पिस रही है और पशुता का नंगा नाच हो रहा है। यह दरिद्रता तृष्णा-परित्याग से हटाई जा सकती है। तृष्णा का त्याग करके ही मानव-समाज की आर्थिक एवं अन्य क्षेत्रीय दरिद्रताओं का विनाश सहज ही में हो सकता है।

❖ ❖ ❖

शांति का उपाय

शान्ति जीवन-विकास के लिये एक प्रमुख आवयकता है और जब तक किसी भी प्रकार से हम हमारे हृदय व मस्तिष्क में शांति के संचार का प्रयास नहीं करेंगे, आपत्तियों के तूफान में पड़कर कभी हम आत्मोन्नति की ओर ध्यान दे नहीं सकेंगे। सच्ची शान्ति के लिए विकृत मनोविकारों का आवरण हटाना होगा। राग-द्वेष, मोह-माया, तृष्णा-स्वार्थ आदि रागात्मक

वृत्तियों का त्याग करके हृदय को अधिकाधिक उदार व विशाल बनाना होगा। जो भी महापुरुष शांति की परम स्थिति को पहुँचे हैं, उनके स्पष्ट अनुभव हैं कि ज्यों-ज्यों मनुष्य निजी स्वार्थों को भूलकर परहित में अपने स्वार्थो को विसर्जित करता चला जाता है, त्यों-त्यों वह शांति की मंजिल के समीप पहुंचता है। इसके साथ ही अपने ही स्वार्थ में निरत रहने पर जीवनाकाश को अशांति के बादल ही घेरे रहते हैं। इस रहस्य में आत्मा की मूल प्रवृत्ति का प्रदर्शन हमें मिलता है। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है और इसलिये ऐसे कार्य सम्पादित करने में उसे आनन्द व शांति की प्राप्ति होती है जो उसको नीचे गिराये रहने वाले भार को हल्का करते हैं। अपने ही दृष्टिकोण से दूसरों के लिये सोचना - यह संकुचित मनोवृत्ति आत्मा को पतन की राह पर नीचे ढकेलने वाली होती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक स्थायी शांति का निवास स्वार्थ-त्याग तथा आत्म-बलिदान में ही रहा हुआ है। पहली श्रेणी है कि अपने निजी स्वार्थों की भावना को खत्म कर दिया जाय और तदनन्तर दूसरों के व्यापक हितो के लिये अपना हर तरह का बलिदान प्रस्तुत किया जाय। यह बलिदान-पथ कठोर अवश्य है, किन्तु बाहरी सुख और आन्तरिक शांति का कोई सम्बन्ध नहीं है। आन्तरिक शांति की साधना तो आत्मविसर्जन की भावना के साथ ही सफलतापूर्वक की जा सकती है। आत्मविसर्जन की चरम सीमा पर पहुंचने के साथ ही कैवल्य ज्ञान प्राप्त होता है और यही कैवल्य ज्ञान परम-शांति का मुखद्वार है।

❖ ❖ ❖

आध्यात्मिक ज्ञान की आवश्यकता

आत्मा के सम्बन्ध मे मनन और चिन्तन करना हमारी जिज्ञासा का चरम बिन्दु है। यही ज्ञान की पराकाष्ठा है। आत्मा को पहिचानना ही परमात्मपद को उपलब्ध करना है, जहां से संसार के बदलते हुए भावों का अवलोकन किया जा सके। आत्म-स्वरूप को न पहिचानने के कारण ही आज संसार में इतना अज्ञानान्धकार व दुःख छाया हुआ है।

जीवन में नित्य परिवर्तन होते रहते हैं और विचारों एवं भावनाओं में नई क्रांतियां हो जाती हैं, किन्तु यदि हम आत्म-तत्त्व को गम्भीरतापूर्वक समझने का प्रयास करेंगे तो ज्ञात होगा कि मूलतः जीवन में एक ऐसा केन्द्र-स्थल है, जो शाश्वत, स्थिर और शांत है और जिसे विशाल प्रभंजन, महान् भूकम्प, प्रचंड ज्वालामुखी तथा भौतिक युग के संहारक शस्त्र और बम भी स्पर्श तक नहीं कर सकते। अशांति का तांडव नर्तन भी आत्मशांति को बाधित नहीं कर सकता।

आत्म-शक्ति का अन्तर्दर्शन ही व्यक्ति-विकास की कुंजी है। आत्मिक शक्ति को प्रकाशित करने का अपूर्व साधन है - आध्यात्मिक ज्ञान। आज के जड़वादी युग ने इस ज्ञान को लुप्त करने के प्रयास किये हैं किन्तु भारतीय संस्कृति-पटल से इसे मिटाया नहीं जा सकता और जिस दिन यह पुनीत स्थिति पूर्ण रूप से हमारे हृदयों से लुप्त हो जायेगी, उस दिन एक सांस्कृतिक प्रलय आयगा, जो मानवता को क्रूर बर्बरता में परिणत कर देगा। अतः सच्चे विकास के लिए हमें आत्म-स्वरूप को यथार्थ रूप में समझ लेने के बाद आध्यात्मिक ज्ञान द्वारा प्रगति की उस पावन मंजिल तक आत्मा को पहुंचाना है।

मनुष्य को अपने स्वरूप को समझकर विवेक रखने की आवश्यकता है। संसार में रहते हुए अध्यात्म-ज्ञान संसार से भागना नहीं सिखाता है। वह तो मानव को अनासक्ति योग की शिक्षा देता है।

अध्यात्म-ज्ञानी 'जीओ और जीने दो' के सिद्धान्त को केवल समझता ही नहीं, अपितु अपने जीवन में उसका यथाशक्य आचरण करता है। वह समझता है कि वह जैसा व्यवहार दूसरों के प्रति करेगा, यदि वैसा ही व्यवहार उसके प्रति भी किया जाय तो उसकी अनुभूति कैसी होगी तथा उसी विचारणा के अनुसार वह अपनी सारी प्रवृत्तियां निर्धारित करता है।

❖ ❖ ❖

सम्यक् चारित्र का आचरण करो

जैनागमों में विस्तारपूर्वक चारित्र-चित्रण का व्याख्यान किया गया है। ज्ञान की महत्ता चारित्र्य के साथ ही कही गई है। बिना चारित्र्य के ज्ञानी की उपमा शास्त्रों मे है कि चन्दन के भार को वहन करता हुआ भी गधा जैसे उसकी सुगन्ध को नहीं समझता, वह तो उसे भार की तरह ही उठाये फिरता है, उसी तरह आचरणहीन ज्ञान भी भाररूप ही है। ज्ञान और चारित्र्य के संगम से ही मनुष्य अपने अंतिम ध्येय तक पहुंच सकता है। ज्ञान के बिना चारित्र्य अन्धा है और चारित्र्य के बिना ज्ञान लंगडा, अतः अन्धे और लंगडे के परस्पर सहयोग करने से ही दोनों का त्राण हो सकता है। आचरणहीन ज्ञान की तरह ही शास्त्रों में ज्ञानहीन आचरण को भी महत्त्व नहीं दिया गया है। बिना सम्यग्ज्ञान के की जाने वाली कठोरतम क्रियाएं भी चारित्रिक विकास का कारण नहीं बन सकतीं। लोभी व्यक्ति भी अपने धनार्जन के लिए साधु की तरह शीत, ऊष्ण, वर्षा के कष्ट सह सकता है, पर उनका कोई महत्त्व नहीं। जैसे बिना सुवास के पुष्प का मोल ही क्या ? उसी तरह आत्म-भावना बिना तपादिक की क्रियाएं

आत्म-विकास में सहायक नहीं हो सकतीं। दशवैकालिक सूत्र में स्पष्ट कहा है कि तपस्यादि आचार का पालन न तो इस लोक में प्रशंसा प्राप्त करने के हेतु करे, न परलोक के सुखों की प्राप्ति के लिए। किन्तु केवल अपने आत्म-विकास के लिए, पूर्ण निष्काम भाव से ही करे। जैन शास्त्रों में ऐसी किसी भी क्रिया का विधान चारित्र्य की श्रेणी में नहीं किया गया है, जिससे किसी भी रूप में मानसिक, वाचिक या कायिक हिंसा होती हो।

कई लोग जैनों द्वारा वर्णित चारित्र्य धर्म को सिर्फ निवृत्ति व प्रवृत्ति का ही रूप बताते हैं, किन्तु जैन धर्म निवृत्ति व प्रवृत्ति, उभय रूपक है। प्रवृत्ति के बिना निवृत्ति का कोई अर्थ ही नहीं होता। असत् से निवृत्ति करने के लिए सत् में प्रवृत्ति करनी ही पडेगी। जैनागमों मे जहाँ बुराई के त्याग का वर्णन है, वहीं अच्छाई के आचरण का भी। 'कु' को 'सु' में बदल देना ही सच्चा आचरण है। जैन दर्शन में साहजिक योग सुमति का वर्णन है, जिसका अर्थ ही है कि सम्यक् प्रकार से गति करना।

इस तरह के वर्णित आचरण के अनुसार जो अपने जीवन को ढाल लेता है, उस आत्मा का चरम विकास सुनिश्चित बताया गया है। इस सारे आचरण का मूल हमारे यहाँ विनय को कहा गया है- "विणयो धम्मस्स मूलं !"

❖ ❖ ❖

समय का मूल्यांकन करो

समय का समुचित मूल्यांकन ही नियमितता एवं व्यवस्थितता की कुंजी है। जबकि हम देखते हैं कि आज के साधारण जीवन में समय को यथायोग्य महत्त्व नहीं दिया जाता। जीवन का कोई नियमित व्यवस्था-क्रम ही नहीं। पैसे ही हाय-हाय ऐसी देखी जाती है कि सुबह से लेकर रात तक घाणी के बैल की तरह जुटे ही रहते हैं तृष्णा के पीछे पागल होकर। उन्हें अपने जीवन में शांति का अनुभव ही नहीं होता और उसका स्पष्ट कारण है कि समय का सद्विभाजन व सदुपयोग किये बिना मानव का मन कभी भी सुखी नहीं बन सकता। इसी दृष्टि से शायद समय के महान् महत्त्व को सुप्रकट करने के लिये महावीर ने निर्देश किया कि-

समयं, गोयम ! मा पमायए.........

हे गौतम ! तू 'समय' मात्र का भी प्रमाद - आलस्य मत कर।

मनुष्य अपने जीवन के क्रमवद्ध विकास की ओर तभी मुड सकता है, जबकि उसे अपने जीवन, अपने विचारों व अपनी प्रवृत्तियों को स्वयमेव भलीभांति पहचानने व परखने का मौक

मिले और यह तभी हो सकता है कि वह अपने दैनिक कार्यक्रम मे कुछ भी निश्चित समय आत्मचिन्तन के लिये निकाल ले। आत्मचिन्तन व आत्मालोचन से अपने जीवन को सुव्यवस्थित बनाने की ओर सुदृढ़ मनोवृत्ति का निर्माण होता है और यही मनोवृत्ति बुद्धि को सुष्ठु बनाते हुए जीवन के सभी पक्षों को समुन्नत बनाती है।

❖ ❖ ❖

आनन्द-प्राप्ति कब !

मन और इन्द्रियों की गुलामी से छूटकर जीवन का क्रम आत्मा की आंतरिक आवाज का अनुकरण करने लगे तो वह आनन्द वास्तव में विशिष्ट आनन्द होगा और उसी आनन्द की निरन्तर बढ़ती हुई अनुभूति में आत्मा का पावन स्वरूप निखरता जायगा।

जब तक यह आनन्द देश, काल और वस्तु की परिधियों में बन्द रहेगा तब तक वह आनन्द न होकर आनन्दाभास मात्र रहेगा। क्योंकि देश की अपेक्षा में आप सोचते हैं कि ग्रीष्मकाल में नैनीताल या नीलगिरि शीत प्रदेश होने से आनन्ददायक होते हैं, किन्तु वे ही प्रदेश शीतकाल में आपको आनन्ददायक नहीं हो सकते। इसी प्रकार काल और वाह्य का भी हाल है। वह आनन्द एक समय में होगा, एक प्रदेश में होगा अथवा कि एक पदार्थ में होगा किन्तु दूसरे ही समय, प्रदेश या पदार्थ की उपलब्धि होते ही वह नष्ट हो जायगा।

अतः यह आत्मिक आनन्द देश, काल, वस्तु से वर्णादिक भाव-शून्य आत्मा में ही निहित है और उसी में रमण करती हुई आत्मा आनन्द को प्राप्त होती है।

❖ ❖ ❖

आत्मविस्मृति का कारण

आत्मस्वरूप के प्रति अनभिज्ञता का एक प्रधान कारण यह भी है कि हमारे देश का बहुत बडा हिस्सा 'अवतारवाद' में विश्वास करता है। 'यदा यदा हि धर्मस्य, ग्लानिर्भवति भारत' के सिद्धान्तानुसार संसार को संकटों से उबारने के लिये स्वयं ईश्वर ही भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न रूप में अवतरित हुए हैं और उन्होंने संसार की गति को सत्पथ की ओर मोडा। इसके सिवाय वे लोग यह भी विश्वास रखते हैं कि वही ईश्वर सृष्टि का कर्ता भी है तथा उसकी मर्जी के बिना धरती का एक भी कण और पेड़ का एक भी पत्ता नहीं हिलता। मनोवैज्ञानिक रूप से सोचें तो इस मान्यता के द्वारा साधारण जनता में आत्मविस्मृति व अकर्मण्यता का भाव फैलता गया। निज की शक्ति के प्रति अविश्वास समाता गया और यह

सोचा जाने लगा कि इस विशाल विश्व में उसका अस्तित्व किसी महत्त्व का धारक नहीं। इस प्रकार की हीन मान्यता (Inferiority Complex) की भावना ने जनता में फैलने वाली सजगता व चेतनता का विनाश किया और उसे यह मनाने पर मजबूर किया कि परमात्मा ही सब-कुछ है, जो उनकी आत्मशक्तियों से परे एक अलग, विशिष्टतम तथा अनोखी आत्मशक्ति है। किन्तु आज के वैज्ञानिक युग में इस अन्धवादिता से दूर होने की और यह समझने की आवश्यकता है कि हमारा अपना अस्तित्व हमारे लिये क्या महत्त्व रखता है और उसे किस विकास की तरफ ले जाने से प्रगमनशीलता के क्षेत्र में पूर्णतया प्रस्फुटित हो सकता है ?

जैन दर्शन के किसी सिद्धांत में अन्धवादिता व प्रतिक्रियावादिता की बू नहीं मिलेगी। वह न तो अवतारवाद में ही विश्वास करता है और न ईश्वर-सृष्टि कर्तव्य में ही। वह तो आत्मा की निज की अमित शक्ति पर विश्वास करता है, जिसका चरम विकास ही ईश्वरत्व की प्राप्ति है। जैन दर्शन स्पष्ट कहता आया है कि जीवन का विकास किसी बाह्य शक्ति की प्रेरणा से नहीं, अपितु निज में रही हुई शक्ति को पहचान लेने से होता है। मानव स्वयं अपने जीवन का निर्माता है और उसके उत्थान-पतन का उत्तरदायित्व केवल उसी पर है।

❖ ❖ ❖

चारित्र-निर्माण की बात करते हैं तो..

अपरिग्रहवाद की गहराई में घुसकर देखा जाय तो प्रतीत होगा कि वहां व्यक्ति और समाज - दोनों को संतुलित करने का विचार किया गया है। समाज में विषमता, शोषण एवं अन्याय की जननी ममत्वबुद्धि है जो दूसरी तरफ व्यक्ति के चारित्र और अध्यात्म को भी नीचे गिराती है। जिस समाजवादी सिद्धान्त की कल्पना की जाती है, वह भी क्या है - एक तरह से समाज में सम्पत्ति, धनधान्य एवं उपभोग-परिभोग की वस्तुओं की समान रूप से मर्यादा बांधने की ही तो बात है।

जब साधन-सामग्री का नियमन किया जाये तो निश्चित है कि उसका कम हाथों में संग्रह नहीं होगा, बल्कि वही संपत्ति और सामग्री अधिकतम हाथों में बिखर जायगी। जीवन-निर्वाह के लिये शोषण की आवश्यकता नहीं होती है, वह तो होती है संग्रह के लिये, इसलिये संग्रह ही समाज में सारी बुराइयां पैदा करता है। फलस्वरूप समाज के सभी वर्गों पर इस विषमता का कुप्रभाव होता है, अनैतिकता फैलती है।

जहां हम व्यक्ति का चारित्र उठाना चाहते हैं, उसे नीतिमान व संयमशील बनना चाहते हैं, वहां ममत्व को मर्यादित कर दिया जाय व उसे निरन्तर घटाते रहने का क्रम बनाया जाये तो निश्चित रूप से समाज में एक कुटुम्ब का-सा भ्रातृत्व व समता का भाव फैलेगा तथा धर्म

के क्षेत्र में निष्काम निवृत्तिवाद का प्रसार होगा, जिसका उपदेश भगवान महावीर ने दिया।

इसकी ओर आप लोगों का ध्यान जाय और उस मार्ग पर चलें तथा इसका प्रकाश सारे ससार में फैलायें - यह आज के युग की मांग है।

❖ ❖ ❖

सर्वोदय के लिये क्या करें ?

परमात्मा की जय में संसार के सभी प्राणियों की जय है, चाहे उन प्राणियों में जैन, हिन्दू, मुस्लिम हो या पूंजीपति-मजदूर हो या मित्र-शत्रु व मानव-पशु हो। इस भावना का नाम ही सर्वोदयवाद है। सब का उदय हो, सब मानवता के रहस्य को समझकर अपनी अन्यान्यपूर्ण विशेषताओं को छोड़ें और विश्वबन्धुत्व की स्थापना करें,, इसी में परमात्मा की जय बोलने का सार रहा हुआ है। आज हम अपनी जय चाहते हैं, उसका विनाश देखने की उत्सुकता रखते हैं। यही अज्ञान है और परमात्मा के स्वरूप को वास्तविकता से नहीं समझने का फल है। परमात्मा के स्वरूप को पहचानने वाला सच्चा भक्त अपनी जय नहीं चाहता। वह तो समस्त प्राणियों की जय में ही अपनी जय समझता है। सभी पर उसकी समतामरी दृष्टि होती है।

मेरे कहने का निष्कर्ष यही है कि सर्वोदयवाद के महत्त्व को समझें और परमात्मा की जय बोलने में सब प्राणियों के साथ साम्यदृष्टि को अपनाएं। वैभव और शरीर आदि सब नश्वर हैं, एक दिन नष्ट हो जायेंगे और साथ रह जायेगा वही, जो-कुछ किया है। समाज की संघर्षमय विषमता को मिटाने के लिये शोषण का हमेशा के लिये खात्मा कर दिया जाये। इसके लिये अपनी वासनाओं और आवश्यकताओं को सीमित करना चाहिये और अपने वैभव का अमुक हिस्सा दानादि शुभ कार्यों के लिये निर्धारित किया जाना चाहिये। समस्त प्राणियों को आत्मवत् समझें, सबसे प्रेम करें, सबकी रक्षा करें, यही सर्वोदयवाद है।

जब तक एक भावनापूर्ण वातावरण की सृष्टि नहीं होगी, तब तक समाज में परस्पर व्यवहार की रीति-नीति समान व सम्यक् नहीं बनेगी। अतः आज के युग की मांग है कि जैन धर्म के पुनीत सिद्धांतों का आचरण किया जाये। उनके आचरण का अर्थ होगा कि आप समानता के अनुभव को हृदय में जमा लें और समाज के विभिन्न क्षेत्रों में उसका व्यावहारिक प्रयोग करें। मानव के मानवोचित सम्यक् कर्तव्यों का पुंज ही तो धर्म है, जो समाज में बंधुता और ममता की धारा बहाते हुए आत्म-विकास की दिशा में पराक्रमशाली बनता है।

यही सर्वोदय के विकास का मूलाधार है। इसी ओर लक्ष्य देने और उसके अनुकूल जीवन-व्यवहार करने से सर्वोदय की भावना को सफल बनाया जा सकता है।

❖ ❖ ❖

जीवन के केन्द्रबिन्दु

जीवन के आचार-विचार इन तीन केन्द्रबिन्दुओं पर आधारित हैं - अहिंसा, अपरिग्रह, अनेकान्तवाद। ये तीनों विन्दु जीवन को पूर्ण बनाने वाली सीढ़ियां हैं।

जैन धर्म का हृदय है - अहिंसा। जैन धर्म में अहिंसा का जो स्वरूप-दर्शन तथा निरूपण किया गया है, वह सर्वाधिक सूक्ष्म है। अहिंसा की आराधना के लिए मन, वचन और काया - इन तीनों में एक साथ शुद्धि की आवश्यकता है। इन तीनों में अहिंसा वृत्ति के सहज प्रवेश पर ही अहिंसा धर्म का सुचारु रूप से पालन किया जा सकता है। अहिंसा का साधन वीरों का है। कायर तो सवसे पहले मानसिक हिंसा से ही अधिक पीड़ित हैं। ऐसा व्यक्ति मानसिक हिंसा से दूसरों को तो गिरा सके या नहीं, किन्तु अपने-आप को तो वहुत गहरे अवश्य ही गिरा डालता है।

परिग्रह की व्याख्या है - मूर्च्छा परिग्रहः। पदार्थों का नाम परिग्रह नहीं, उनमे ममत्व रखकर आत्मज्ञान से शून्य हो जाना परिग्रह कहा गया है। जब जड़ पदार्थों में गृद्धि वढती है और प्राणी अपने चेतन तत्त्व को भूलता है, तब उसको परिग्रही कहा जाता है। ममत्व जव मनुष्य के मन में जागता है तो आत्मा को कलुषित करने वाले सैकड़ों दुर्गुण उसमें प्रवेश करने लगते हैं। शोषण एवं अन्याय की जननी ममत्व बुद्धि है जो दूसरी तरफ व्यक्ति के चरित्र और अध्यात्म को भी नीचे गिराती है।

किसी भी वस्तु या तत्त्व के सत्य स्वरूप को समझने के लिए हमें स्याद्वाद (अनेकान्तवाद) सिद्धान्त का आश्रय लेना होगा। एक ही वस्तु या तत्त्व को विभिन्न दृष्टिकोणों से देखा जा सकता है और इसलिए उसमें विभिन्न पक्ष भी हो जाते हैं। अतः उसके सारे पक्षों व दृष्टिकोणों की दृष्टि को समझकर उसकी यथार्थ सत्यता का दर्शन करना इस सिद्धांत के गहन चिन्तन के आधार पर ही संभव हो सकता है।

सत्य का साक्षात्कार जीवन का चरम साध्य है। जीवन उन अनुभवों व विभिन्न प्रयोगों का कर्मस्थल है, जहाँ हम उनके जरिये सत्य की साधना करते हैं। जीवन के आचार-विचार की सुघड़ता व सत्यता में व्यक्ति, समाज व विश्व की शांति रही हुई है। अतः आज आचार-विचार की उदारता, पवित्रता की प्रेरणा के लिए अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्तवाद के सिद्धान्तों को समझने, परखने और अमल में लाने की आवश्यकता है।

❖ ❖ ❖

मानव-जीवन की विशिष्टता का आधार

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणिय जन्तुणो।
माणुसत्तं सुई सद्धा, सजममिय वीरीय।।

विश्व के समस्त प्राणियों में मानव-जीवन का स्थान सर्वोच्च है, इसीलिये शास्त्रकारों ने भी उसे दुर्लभ कहकर पुकारा है। परन्तु यह गम्भीर विचार का प्रश्न है कि मानव-जीवन की यह सारी विशिष्टता किस भूमिका पर टिकी हुई है, क्योंकि उसका स्पष्टतः ज्ञान होने पर ही किसी वस्तुस्थिति के मूल से लेकर उसके पूर्ण विकासक्रम को पहिचाना जा सकता है। जब भूमिका के विषय मे ही अस्पष्ट धारणा हो, तो तत्सम्बन्धी विकास और उपयोगिता की पूरी जानकारी नहीं होगी और जिसका परिणाम हो सकता है - पूर्ण स्वरूप से अनभिज्ञता। मानव-जीवन के सम्बन्ध में भी आज कई गलत धारणाएँ प्रचलित हैं, जिनसे इस जीवन के अमूल्य होने का भान नहीं होता एवं उसे उस दृष्टि से सार्थक बनाने के प्रयास नहीं हो सकते।

यहां मानव-जीवन के सम्बन्ध में उन धारणाओं की मीमांसा की जा रही है, जिनके कारण मानव-जन्म पा लेने पर भी मानवता की प्राप्ति नहीं होती। मानव का रूप मिल जाना एक बात है, किन्तु भावनात्मक दृष्टिकोण से मानवता प्राप्त कर लेना कतई दूसरी बात। मानव में जिन सद्‌गुणों का सद्‌भाव होना चाहिये, यदि वे विकसित नहीं होते, तो मानव-जीवन भी पशुवत् ही है।

अगर कोई मानव-जीवन की विशिष्टता उसके शारीरिक बल में स्थापित करता है तो यह स्वाभाविक प्रतीत नहीं होगा। क्योंकि चिंघाड़ते हुए मदमत्त हाथी, वन-प्रदेश को अपनी भीषण गर्जना से कम्पायमान बना देने वाले सिंह और विकराल रूप-धारी अन्य जंगली जन्तुओं के समक्ष बेचारे मानव-शरीर का बल ही क्या ?

मनुष्य ने यदि अपने रूप और सौन्दर्य में मानव-जीवन की विशेषता मान रखी है तो वह भी व्यर्थ है। रूप आखिर क्या है ? यही तो कि मिट्टी के पुतले पर जो रंग-रोगन किया हुआ है, वह समयरूपी वर्षा की बौछार लगते ही धुल जाता है। तरुणाई में निखरा हुआ सौन्दर्य चार दिन बाद झुलस जाता है। आज का छलछलाता हुआ रूप का प्याला कल जरा से, काल के झोंके से ढुलक जाता है। इसलिये रूप का अभिमान पतन का चिह्न है।

इसके अतिरिक्त परिवार और वैभव से भी मानव-जीवन की कोई प्रतिष्ठा नहीं। रावण के विशाल परिवार एवं स्वर्णिम लंकापुरी के वैभव का क्या कहना ! और क्या कोटि यादव एक

दिन भारत के भाग्यविधाता नही बने हुए थे ? किन्तु क्या सभी विनाश के विशाल गर्भ में विलीन होने से बच गये ? नहीं, ऐसा नहीं हो सका।

❖ ❖ ❖

जीवन के दो पहलू

वास्तव में जीवन एक साधनस्वरूप है, जिसे किसी निश्चित साध्य के पीछे विसर्जित कर देने में ही उसकी विशेषता रही हुई है। यदि साध्य तक पहुंचने में साधन शिथिल व अयोग्य प्रतीत होता है तो साधन के प्रति साधक को सचेत होने की आवश्यकता होती है। जीवन का साध्य मुक्ति है जो आत्मा का मूल स्वभाव है। आत्मा को विकारों के मल से मुक्त करके उसी परमशुद्धता में स्थायित्व ग्रहण करने का नाम मुक्ति है। मुक्ति साध्य, जीवन साधन और आत्मा साधक है। साध्य गतिशील नहीं होता, वह तो सुनिश्चित होता है अतः उसके प्रति दृष्टि ठहरा कर साधक को अपने साधन काम मे लेने होते हैं। साधक को साधन में परिवर्तन व शुद्धिकरण भी उसी केन्द्रबिन्दु के अनुसार करने होते हैं। अतः हमारे लिये मुक्ति साध्य है, परन्तु उसके साधनों में विभिन्न परिवर्तन होते रहते हैं। इसी बात को लेकर हमारे जीवन की समस्या पर हमें गहराई से सोचना चाहिये और इस सत्य को समझ लेना चाहिये कि हम अपने जीवन को कैसे पथ की ओर अग्रसर करे ताकि हमें अपना मुक्ति का उद्देश्य प्राप्त हो सके।

अध्यात्मवाद का स्पष्ट मत है कि जो निजात्म को पूर्ण रूप से पहिचान लेता है, उसके लिये मुक्ति का मार्ग आसान हो जाता है। अपने आत्मभावों में रमण करने से निज की शक्ति का अनुभव होता है और उस अन्तर्शक्ति की अद्‌भुत प्रेरणा से उसमें ऐसा साहस केन्द्रित हो जाता है, ऐसे ज्ञान और क्रिया का सम्मिलन हो जाता है कि फिर उसके मार्ग की बाधाएं नष्टप्रायः हो जाती हैं। आत्मरामी होने से अपने जीवन का उत्थान मार्ग तो शोधा ही जाता है परन्तु उसके साथ ही आत्मशक्ति और उसके संचालन का ऐसा दृढ़ अनुभव होता है कि जिसके द्वारा अन्य आत्माओं के मनोभावों और प्रवृत्तियो को समझने का ज्ञान उत्पन्न होता है। अनुभव ही यथार्थतः किसी भी क्षेत्र की गहराई को पहचानने की कसौटी का काम करता और इसी तरह आत्मसाधना की परिपक्वता के फलस्वरूप आत्मा आत्मरामी से अन्तर्यामी बन जाती है।

पुरुषार्थ करो !

पापपूर्ण आर्थिक व्यवस्था की बुनियाद में यह भावना काम कर रही है कि पुरुषार्थ और श्रम न किया जाय। प्रायः हर व्यक्ति यह चाहता है कि वह व्यापार, नौकरी या सट्टा आदि ऐसा व्यवसाय पकड़ ले कि मेहनत तो कम-से-कम करनी पड़े और लाभ अधिक-से-अधिक पैदा हो सके। जब मनुष्य श्रम से दूर भागता है तो उसमें दूसरे की वस्तु छीनने की भावना होती है, क्योंकि आवश्यकताओं को तो वह दबाता नहीं, बल्कि किन्हीं अंशों में बढाता है और वैसी स्थिति में शोषण और मुनाफावृत्ति की नींव जमती है।

विकास की राह पर आगे बढ़ने का यह विशिष्ट उपाय है कि आप लोग स्वावलम्बी बनें, स्वावलम्बन द्वारा अपने ही पैरों पर खड़े होवें। तभी आपको दूसरों से सम्मान भी प्राप्त हो सकता है। ऊपर की चटक-मटक और बाहर के आडम्बर से किसी को क्षण-भर के लिए धोखा देकर अपनी ओर आकर्षित किया जा सकता है, किन्तु वास्तविक सरलता व श्रम की भावना के बिना ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की तरह किसी के हृदय को स्थायी रूप से प्रभावित नहीं किया जा सकता। आडम्बर टिक नहीं सकते, उन्हें स्वप्नों के समान नष्ट होना पड़ता है। यह तो अपने जीवन के प्रति गहराई से सोचने और समझने की बात है। जो पुरुषार्थी नहीं, उन्हें समाज भले ही क्षण-भर के लिए अपनाता दीखे, किन्तु अन्ततोगत्वा वे सब बुरी तरह फेक दिये जाते हैं।

आलसी आदमी ही नाना प्रकार के बहाने बनाते हैं और नाना तरह की युक्तियां देकर अपनी आदतों की पुष्टि करते हैं। 'भाग्य में जो होगा, वही होगा' - यह भी आलस्य की ही मूल भावना है। भाग्य भी तो मनुष्य का ही बनाया हुआ होता है और इसलिए मनुष्य उसे बदल भी सकता है। जीवन के ह्रास और विकास में भाग्य मुख्य नहीं है, पुरुषार्थ और श्रम प्रधान कारण हैं। परिश्रम से दूर भागने वाले अधिकतर भाग्य की दुहाई देकर अपनी आलस्यवृत्ति को छिपाना चाहते हैं। साहस के साथ आगे बढ़ने वाले भाग्य को नहीं देखते, वे तो एकमात्र कर्तव्य पर अपना अधिकार समझते हैं और कर्तव्य की एकनिष्ठा तथा पुरुषार्थी प्रतिभा से भाग्य के बहाव को भी मोड़ देते हैं। भाग्य और पुरुषार्थ की टक्कर में पुरुषार्थ की ही विजय होती है।

❖ ❖ ❖

आलस्य दुःख और पौरुष सुख

मैं कई बार सोचता हूं और इस निर्णय पर पहुंचता हूं कि मनुष्यों का जीवन स्वावलम्बी बने और वे पुरुपार्थ से अपना जीवन-निर्वाह करने में स्वतंत्र हो, तब ही वे सही रूप में धर्म का पालन कर सकते हैं और साधु भी अपनी साधना में शुद्धि बनाये रख सकते हैं।

सभी खराबियों व बुराइयों का मूल आलस्य है। पुरुषार्थ करने की शक्ति होते हुए भी जो आलस्य में मांग खाते हैं, उनकी भिक्षा पौरुपहरी भिक्षा है। आज मैं आपसे प्रश्न करूं कि भारत के लोग इतने आस्तिक हैं, फिर भी इतने दुखी क्यो हैं ? इसकी तह में उतरें तो यही पायेंगे कि दूसरों के पसीने पर गुलछर्रे उडाने की भावना ने घर कर लिया है, पर यह सबसे बडा पाप है। दुनिया में सभी पापों की जड आलस्य है। अधिकांश चोरियां, लड़ाइयां व अन्य अनैतिकता के कार्य भी इसी आलस्य के कारण ही होते हैं।

जिस तरह मस्तिष्क की मशक्कत के लिये ज्ञान व विचार की आवश्यकता है, उसी तरह शरीर-स्वास्थ्य के लिए शारीरिक श्रम भी जरूरी है। शरीर-श्रम के बिना मस्तिष्क की गति भी सुस्थिर नहीं रह सकती। इस तरह शरीर-श्रम की सबके लिए अनिवार्यता समाज में एक महत्त्वपूर्ण स्थिति है। जैसे शरीर में रक्त-संचरण बंद हो जाये तो लकवा होता है या हार्टफेल, उसी तरह सबके शारीरिक श्रम न करने से समाज में भी एक तरह का पंगुपन पैदा होने लगता है।

आलसी आदमी ही नाना प्रकार के बहाने बनाते हैं और नाना तरह की युक्तियां देकर अपनी आदतों की पुष्टि करते हैं। 'भाग्य में जो होगा वही होगा' - यह भी आलस्य की ही मूल भावना है। भाग्य भी तो मनुष्य का ही बनाया हुआ होता है और इसलिए मनुष्य उसे बदल भी सकता है। जीव के ह्रास और विकास में भाग्य मुख्य नहीं है, पुरुपार्थ और श्रम प्रधान कारण हैं।

अतः मैं फिर दोहराऊंगा कि समाज व धर्म के सभी क्षेत्रों में आगे बढ़ने व सुखी बनने का यह सीधा मार्ग है कि प्रत्येक व्यक्ति पुरुषार्थी बने। सत्पुरुषार्थ-वृत्ति जीवन-विकास की निश्चित सीढ़ी है।

वर्तमान विश्व की एक झलक

कर्मण्यता की भूमिका पर ही व्यक्ति, समाज व राष्ट्र का उत्थान सम्पादित किया जा सकता है। वैभव और विलास तो पतन के कारण बनते हैं क्योंकि विलासिता का दूसरा नाम निकम्मापन भी है। विलासी कायर होता है, वह विपदाओं से लड़ नहीं सकता और अपनी हीन आसक्तियों से ऊपर नहीं उठ सकता।

क्रोधरूपी कालिय नाग अपने तीव्र विषदन्त से सरल प्राणियों में कटुता भर रहा है व संसार में अनेक अनर्थ करवा रहा है। तृष्णा रूपी पूतना राक्षसी दूध पिला कर आत्मबल को जैसे मार देना चाहती है। लोग संयम, नियम, नीति से विमुख होकर ऐश्वर्य बढ़ाने की प्रतिद्वन्द्विता में लगे हैं। भ्रष्टाचार की महामारी-सी फैली हुई है।

अभिमान रूपी कंस सारे विश्व को ग्रस रहा है। लोग धन या सत्तावल पा जाने पर अपने-आप को भूल स्वेच्छाचारिता की ओर मुड जाते हैं एवं निर्बलों के अधिकारों को हड़पने व उनका शोषण करने में आनन्दानुभव करते हैं। मोहरूपी जरासंध आज अन्याय का कारणभूत हो रहा है क्योंकि मोह में मनुष्य की एकान्त बुद्धि हो जाती है और वह सत्यासत्य के सद्विवेक से विमुख होता चला जाता है। लोभरूपी दुर्योधन साधनों को केन्द्रीभूत कर सच्चे हकदारों को भी 'सुई की नोक के बराबर भूमि' देने को तैयार नहीं। लोभ को शास्त्रों में काल कहा है और यह पाप का बाप भी कहा जाता है, क्योंकि इसी के वशीभूत होकर मनुष्य अत्यधिक स्वार्थी और हीन स्वभावी हो जाता है।

आज ये सारी कुटिल मनोवृत्तियाँ खुलकर खेलती हुई देखी जाती हैं और ऐसे जटिल समय में सत्यस्वरूप हृदय में जगाया जाय और उन कुविचारों एवं असद्प्रवृत्तियों पर विजय प्राप्त करने की अमिट शक्ति पैदा की जाय। जीवन के इस विशाल क्षेत्र में सद्कर्म करते जाइये, निरपेक्ष और निःस्वार्थ होकर, तो लौकिक व आत्मिक उत्थानों की मंजिल दूर नहीं रहेगी। इसी सन्देश को आज के दिन सब को सुनना और समझना चाहिये, तभी किसी प्रकार की सार्थकता हो सकती है।

❖ ❖ ❖

आज की आवश्यकता

यह दुःख का विषय है कि देश में त्याग की भावना का ह्रास होता जा रहा है। छोड़ देने की भावना के बजाय ले लेने की भावना का अधिक प्रसार होता हुआ देखा जा रहा है। स्वार्थ

का महादैत्य लोगों के हृदयों पर छा गया है और इसीलिये त्याग नहीं, भोग की भावना प्रबल बन रही है। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ऐसी विकृत अवस्था बनती जा रही है, जिसे सुधारे बिना भारतीय संस्कृति की गौरवान्वित परम्परा का निर्वाह नहीं किया जा सकेगा।

आज चारों ओर देखने से ऐसा लगता है कि कर्तव्य की वृत्ति लुप्त हो रही है और अधिकारों की लोलुपता बढ रही है। परन्तु यह सोचने की बात है कि कर्तव्यों की नैतिक भूमिका पर ही अधिकारों का जन्म होता है। इसमें कोई संदेह नहीं कि धोखा देने वाले 'बकवास' बहुत बढ़ गये हैं। नेता भी वक्तव्यों पर वक्तव्य देते हैं, योजनाओं के कागजी घोड़े दौड़ाते हैं और देश के महान् विकास का स्वप्न दिखाते हैं। लेकिन समझ में नहीं आता कि जब त्याग का अभाव हो रहा है तो किसके संयम और नैतिकता के बल पर देश का विकास हो सकेगा ?

इधर जनता भी अधिकार मांगती है, अपने कर्तव्यों की ओर नहीं निहारना चाहती। कर्तव्यों ही से अधिकार की प्राप्ति होती है, चाहे वे अधिकार नागरिक के हों अथवा शासक के। क्योंकि कर्तव्य का तात्पर्य भी एक दृष्टि से दूसरों की सुख-सुविधा के लिये अपना त्याग करना है, सबके समान सुख के लिये अपने-आप को सबमें त्यागमय बना देना है। जब कोई दूसरा एक नागरिक के लिए त्याग करता है, तो वही उसका अधिकार हो जाता है। एक का कर्तव्य दूसरे का अधिकार होता है। मूल वस्तु तो कर्तव्य है - त्याग है, जिसके आधार पर सार्वजनिक सुख व कल्याण की भित्ति चिरस्थायी रह सकती है।

आज के मानव के पीछे स्वार्थ का महादैत्य इस बुरी कदर पडा है कि उसे अपने कर्तव्यों का भान नहीं रहता। उसे तो भान होता है अपनी स्वार्थपूर्ति का - फिर भले ही उसमें किसी का कितना ही नुकसान क्यों न होता हो। यही नहीं, गुरुदेव से आशीर्वाद मांगा जाता है, परमात्मा से प्रार्थना की जाती है कि वे उसे सुखी बनावें, किन्तु आप विचार करें कि वह सुख कैसा हो ? क्या आज का मानव अधिकांशतः वैसे सुख की कल्पना नहीं करता, जिसकी रचना दूसरों के शोषण के आधार पर निर्मित होती हो ? और अगर ऐसा है तो वर्तमान मानव के मानस का यह नग्न अन्तर्चित्र बदलना होगा - उसमें आत्मविकास की प्रकाश-रेखाएं खींचनी होंगी।

आज उस महान् आदर्श को भुलाया जा रहा है कि अपना सब-कुछ निछावर करके भी दूसरों की सहायता करो। यही कर्तव्य है, यह त्याग भी है और यह धर्म भी है।

❖ ❖ ❖

युग की मांग है

जगत् का प्रत्येक प्राणी अपने जन्म से किन्हीं आशाओं, इच्छाओं व वासनाओं को

पालता-पोसता है तथा जीवन-भर उनकी पूर्ति हित संघर्ष करता रहता है। मनुष्य इस पागलपन में अन्धा हो जाता है तब उसकी जीवन-शांति में अशांति के भीषण अन्धड आ करते हैं, जो केवल उसके जीवन को ही अशांत नहीं बनाते, बल्कि सारे समाज के लिये अभिशाप-रूप बन जाते हैं। एक-पर-एक तृष्णाएं उठती जाती हैं, जिनकी पूर्ति में मनुष्य बुरे-से-बुरा तरीका काम में लाकर समाज में शोषण, अन्याय और उत्पीड़न की भयंकर आ जलाता है।

तृष्णा के इस विषाक्त, व्यापक प्रसार के कारण दरिद्रता घर कर गई है। इस दरिद्र में आज मानवता पिस रही है और पशुता का नंगा नाच हो रहा है। अतः इस निष्कर्ष प पहुंचना पड़ेगा कि इस दरिद्रता व दुःख का मूल कारण तृष्णा ही है, जिसकी गुला आत्म-हित व पर-हित घातक है। किन्तु इसके विपरीत तृष्णा को जो अपनी दासी बना लेत है, संसार उसका दास हो जाता है।

स्वेच्छापूर्वक तृष्णा का त्याग करके सादगी को अपनाने वाला ही महापराक्रमी होता है प्राप्त साधनों का व्यापक लोकहित के लिये परित्याग कर देने में ही त्याग की वास्तवि महत्ता रही हुई है। आज विश्व को भौतिकवादी क्रूरता से मुक्त होने के लिये तृष्णा-त्याग मानव-प्रेम और विश्व-बन्धुत्व की आवश्यकता है, जो मानव-समाज में समता व बन्धुता क वातावरण प्रसारित कर सके।

❖ ❖ ❖

यह करना ही होगा

आज मनुष्य को अपने दुःख और पतन के कारण ढूंढने ही होंगे, क्योंकि अपने हिताहित का भान रखने की भी एक सीमा होती है और उससे आगे निकल जाने पर तो पतन से निकल आने की सभी संभावनाएं शिथिल हो जाती हैं। आज संसार की गति भी तेजी से उसी सीमा के समीप सरकती जा रही है और यदि इस समय सम्यक् चेतना और सजगता का प्रसार नहीं किया गया, तो संसार महापुरुषों की प्रदत्त विचार-निधि को खोकर असभ्यता और असंस्कृति के अन्धकार में भटकता ही रह जायेगा।

आज चारों ओर देखने से ऐसा लगता है कि कर्तव्य की वृत्ति लुप्त हो रही है और अधिकारों की लोलुपता बढ रही है। परन्तु यह सोचने की बात है कि कर्तव्यों की नैतिक भूमिका पर ही अधिकारों का जन्म होता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि धोखा देने वाले बकवास बहुत बढ़ गये हैं, नेता भी वक्तव्यों पर वक्तव्य देते हैं।

आज के मानव के पीछे स्वार्थ का महादैत्य इस बुरी कदर पड़ा है कि उसे अपने कर्तव्यों का भान नहीं रहता, उसे तो भान होता है अपनी स्वार्थपूर्ति का - फिर भले ही कितना ही नुकसान क्यों न होता हो ?

समाज का तथ्यात्मक वातावरण पुकार-पुकार कर कहता है कि आज अपने जीवन में त्याग का सर्वोदय करने की आवश्यकता है ताकि स्वार्थों का भीषण अन्धकार कट जाये। आज न तो सिर्फ बाह्य वेश-रूप त्याग का ढोंग या पाखण्ड चलेगा और न त्याग को किसी सीमित दायरे में बंद रखा जा सकेगा, उसे तो सब ओर प्रसारित कर देना है।

❖ ❖ ❖

जहां सुमति.......

विश्व की समस्त समस्याओं का, चाहे वे किसी भी क्षेत्र की हों, मूलतः एक ही हल है और वह है बौद्धिक तथा नैतिक। राजनीतिक व आर्थिक समस्याएं समाज-विकास में बाधक अवश्य बन सकती हैं, किन्तु बौद्धिक परिपक्वता व नैतिक सहृदयता के अभाव में उक्त समस्याओं का हल भी समाज में सच्चे सुख व स्थायी शान्ति की सृष्टि नहीं कर सकता। पूर्ण स्वतंत्रता एक-एक व्यक्ति के अपने कर्तव्य व अधिकारों के प्रति विवेकपूर्ण ढंग से सजग होने से ही उपलब्ध हो सकती है। जब तक बुद्धि का अभाव व उसकी विकृति का अस्तित्व रहेगा, समाज में शोषण, उत्पीड़न तथा अन्याय की समाप्ति असंभव है।

सम्पत्ति की प्राप्ति सुमति पर निर्भर है। वह सम्पत्ति चाहे भौतिक हो या आध्यात्मिक, लेकिन दोनों की प्राप्ति का उद्देश्य बनाने से पहले यह सोच लेना चाहिये कि अगर सुबुद्धि से - विवेक से काम नहीं लिया गया तो आध्यात्मिक सम्पत्ति तो मिल ही नहीं सकती, और एक बार भौतिक सम्पत्ति घातक तरीकों से मिल भी गई तो यह टिक नहीं सकती एवं बड़े बुरे परिणाम दिखाकर खत्म हो जायगी।

आज चारों ओर दिखाई देता है कि अधिकतर सम्पत्तिप्राप्ति (भौतिक) की दौड़ लगी हुई है, किन्तु पहले सुमति प्राप्त हो - इसकी ओर बहुसंख्यकजनों का लक्ष्य नहीं है। बल्कि सम्पत्ति-प्राप्ति में कुमति से ही अधिक काम लिया जाता है और उसका परिणाम आज समाज में फैली अनैतिकता, असमानता व अव्यवस्था में देखा जा सकता है। जो सम्पत्ति कुमति से प्राप्त की जाती है, वह कभी भी शान्तिदायक नहीं हो सकती, वरन् वह तो अन्त में कभी-कभी विनाश का कारण हो जाती है।

जैसा कि मैं ऊपर कह चुका हूँ कि सारे संसार की आधारगत समस्या बौद्धिक व नैतिक

है, सुमति-संपादन में संसार का विकास समाया हुआ है। मति बौद्धिकता की ओर इंगित करती है तथा उसके पहले लगा हुआ 'सु' नैतिकता को सम्मिश्रित करता है, अतः 'सुमति' ही मूल समस्या है और यदि हमको हमारा निज का भविष्य और समाज का भविष्य उन्नत व आदर्श बनाना है, तो हमें सुमति-सम्पादन करने में लग जाना चाहिये ताकि इस कलियुग के स्थान पर सतयुग का निर्माण किया जा सके।

❖ ❖ ❖

सुमति-प्राप्ति का सरल साधन

विकास की मूल आधारशिला सुमति श्रेष्ठ बुद्धि पर टिकी हुई है तथा प्रयोजन का निर्धारण व निर्णय सदैव बुद्धि की भूमिका पर ही होता है। इसलिये अगर बुद्धि 'सु' हुई तो वह गति को विकास-पथ की ओर मोड़ देगी तथा बुद्धि की मलिनता व कुत्सितता जीवन को पतन के गड्ढे की ओर ढकेलती हैं। इस दृष्टिविन्दु से सुमति जीवन की प्रगति की प्रमुख साधिका होती है।

अव यह देखना जरूरी है कि ध्येय की तरफ अग्रसर कराने वाली 'सुमति' की प्राप्ति कैसे हो सकेगी ?

भंवरा सदैव फूलों की सुवास की ओर ही मुड़ता है, वैसी ही तन्मयता सुमति प्राप्त करने के लिये आवश्यक है। परन्तु ऐसी तन्मयता नियमित एवं व्यवस्थित जीवनक्रम से ही प्राप्त हो सकती है।

नियमितता का मूलमन्त्र है कि प्रत्येक कार्य को यथासमय सम्पन्न कर लिया जाय। अगर इस कथन को पूर्णतया हृदयंगम कर लिया जाय तो दिशासूचक यन्त्र की सुई की तरह जीवन के कठिन क्षणों में भी अपने लक्ष्य के प्रति सफल संकेत करता रहेगा।

नियमित व व्यवस्थित जीवन का यह अवश्यंभावी प्रभाव होता है कि विकास का प्रवाह सुयोग्य विचारों के साथ स्वयमेव ही फूट पड़ता है। किन्तु इस स्थिति के अभाव ने आज चारों ओर विकृति की काली छाया फैला रखी है।

समय का सर्वोत्तम उपयोग करने वाला व्यक्ति ही अपनी सच्ची प्रगति साध सकता है।

तात्पर्य यह है कि जीवन को नियमित व व्यवस्थित रखने वाला व्यक्ति विकास की तरफ आगे-आगे कदम वढ़ाता रहता है।

इसलिए मैं यही कहना चाहूंगा कि आप समय को व्यर्थ में न गुमावें तथा उसे अपने जीवन को नियमित व व्यवस्थित करने में लगावें, ताकि आप अपने अन्तर का सम्यक् अवलोकन कर सके।

यह कभी न भूलें

संसार के वर्तमान गतिक्रम पर नजर डाली जाय तो दिखाई देता है कि किन्हीं अंशों में आज कंस की वृत्ति का साम्राज्य छाया हुआ है। सांसारिक वैभव को प्राप्त करने की कुटिल होड-सी लगी हुई है, जिसमें अपनी प्रवृत्तियों के न्याय-अन्याय का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। यह सोचना कर्तव्य की सीमा के अन्दर ही नहीं समझा जा रहा है कि जो-कुछ अर्जन व प्राप्त किया जाता है, काश, वह न्याय से उपलब्ध हुआ है या अन्याय से ? इसी का फल है कि भ्रष्टाचार, चोरबाजारी, रिश्वतखोरी आदि अनेक असामाजिक प्रवृत्तियां समाज व देश के नैतिक स्तर को निरन्तर नीचे गिरा रही हैं। जब पिता-पुत्र और भाई-भाई तक इस दौडधूप में अपने कर्तव्यों को भूल रहे हैं, तो अपने करोड़ों राष्ट्रबन्धुओं के हितों की ओर ध्यान देना तो कठिन प्रतीत हो ही सकता है।

आज यह देखने की जरूरत है कि भोग-पिपासा की क्रूर अन्धता में संसार के निर्बल एवं असहाय प्राणी पिसे जा रहे हैं। जिस प्रकार कंस ने अपनी शक्ति का उपयोग पिता की सेवा व जनता की रक्षा में न करके सिर्फ अपने स्वार्थों व अहं की पूर्ति में किया, उसी तरह आज भी समाज के अधिकतर लोग व्यवहार करते व उसी में सुखानुभव समझते देखे जाते हैं। फलस्वरूप चारों ओर शोषण एवं उत्पीड़न के कारण त्राहि-त्राहि-सी मची हुई है।

इस अवसर पर यह तथ्य मनन किया जाना चाहिये कि अन्यायोपार्जित वैभव स्थायी रहने वाला नहीं है। जब तक आपका पुण्य-फलोदय शेष है, आप कुछ करें - उसके दुष्परिणाम आपके सामने नहीं आते हैं, किन्तु इससे यह समझने का प्रयास करना उचित नहीं कहा जा सकता कि आपकी सारी प्रवृत्तियां न्यायानुकूल हैं। प्रकृति में विलम्ब हो सकता है, किन्तु उसके नियम का क्रम नहीं टूटता। और तो क्या, चक्रवर्ती, वासुदेव जैसे भी महान् वैभवशाली पुरुष हुए, परन्तु उनका वैभव भी यहीं धरा रह गया। मोहम्मद गजनवी ने सत्रह बार भारत-भूमि को पदाक्रांत किया व अगणित वैभव लूटा, किन्तु मरते समय तो वही "सब ठाठ पड़ा रह जायगा, जब लाद चलेगा बनजारा" हुआ। कोई भी उसे मृत्यु से नहीं छुड़ा सका। वैभव की भूख आखिर जाकर पश्चात्ताप की अग्नि में झुलसा डालती है। अतः बुद्धिमत्ता इसी में है कि निज के, समाज के नैतिक स्तर को ऊपर उठाकर जीवन का सत्य-साधनों से सर्वोच्च विकास करने का सत्प्रयास किया जाय।

❖ ❖ ❖

प्रार्थना की शक्ति

प्रार्थना एक परमपवित्र दैनिक अनुष्ठान है और सभी आध्यात्मिक नेताओं ने इसके महत्त्व को स्पष्ट किया है तथा इसके आचरण पर जोर दिया है।

प्रार्थना में एक ऐसी विशिष्ट शक्ति है जो हमें श्रद्धाशील बना देती है। उन महान् आत्माओं के गुण-गानों से, जिन्होंने उत्कृष्टतम शुद्धावस्था-रूप परमात्मपद को प्राप्त कर ईश्वरत्व धारण कर लिया है और जो सांसारिकता से सर्वथा विमुक्त होकर निजानन्द में तल्लीन हो गये हैं, प्रभावित होकर हम भी हमारे जीवन के लिये उसी लक्ष्य तक पहुंचने की जो आदर्श कामना करते हैं, उसी अपनी आत्मा के प्रति की गई याचना का नाम ही प्रार्थना है। साधारण मनुष्यों की बुद्धि इतनी सूक्ष्म नहीं होती है कि योगी की तरह केवल शास्त्रों में वर्णित रहस्यपूर्ण जटिल सिद्धांतों को समझ कर उनके आधार पर ही अपने विकास का मार्ग शोध निकाले। अतः प्रार्थना इसलिए करनी चाहिए, और वह भी उसकी दैनिक आदत होनी चाहिये कि उन विशिष्ट विभूतियों का जीवन-स्वरूप अर्थात् उनके आत्म-विकास का मार्ग हमारे मस्तिष्क पटल में स्पष्ट तौर पर अंकित हो जावे। यही जीवन-सत्य हमारे समक्ष प्रार्थना प्रकट करती है।

श्रद्धा और बुद्धि की प्राप्ति हित हम परमात्मा की प्रार्थना करते हैं, किन्तु आत्मा से कहा गया है कि, आत्मा ! जब तक तू अर्जुन की तरह एकाग्र होकर लक्ष्य व लक्षी के सिवाय सभी वस्तुओं को अपनी दृष्टि से हटा नहीं लेगी, तब तक निजत्व का उद्धार व पूर्ण विकास करना अवश्य ही दुष्कर रहेगा।

अतः सत्य अर्थ में अगर देखा जाय तो परमात्मा की जो प्रार्थना करना है, वह केवल अपनी आत्मा, 'सोऽहं' की ही सजग साधना करना है।

अब हम सीधे अपने मूल विषय पर आते हैं कि आन्तरिक निर्माण के लिये हमारी चेतना में जो अटूट जागृति पैदा होनी चाहिये और अपार शक्ति का स्रोत फूट पड़ना चाहिये, वह प्रार्थना के बिना नहीं हो सकता।

❖ ❖ ❖

सन्त तो इनको कहते हैं

सन्त कैसा होना चाहिये? इसका उत्तर श्री आनंदघनजी के शब्दों में यह है-

परिचय पातक घातक साध शुं रे, अकुशल अपचय चेत।

सन्त वह है जो पातक का घातक हो, आत्मा के समस्त पापों को जिसने धो डाला हो। ऐसा सन्त अपने वचन और व्यवहार से दूसरे के पापों का भी नाश कर देता है।

जो आसव से निवृत्त हो गया है, अर्थात् जिसने पापों के आगमन के छिद्रों को रुद्ध कर दिया है, जो छल, कपट, दंभ आदि पापों से दूर रहता है, जो एकेन्द्रिय प्राणी के वध में भी आत्मवध मानता है और आत्मा के प्रति अत्यन्त श्रद्धावान है, जो सृष्टि के समस्त प्राणियों को मित्रभाव से देखता है, लाभ-अलाभ में समभाव रखता है, जो अनासक्ति का मूर्तिमान आदर्श है, सब प्रकार के सांसारिक प्रपंचों से परे और देहाध्यास से भी अतीत है, जो आत्मरमण में ही परमाह्लाद की अनुभूति करता है और जिसके लिये सन्मान-अपमान, निन्दा-स्तुति, वंदना-तर्जना एकरूप हो गये हैं, वह सच्चा सन्त है।

वह आकाश की तरह उदार, भूतल की तरह क्षमाशील, चन्द्र की भांति सौम्य, सूर्य की भांति तपस्तेज से दीप्त, अग्नि के समान जगत् की अपावनता को भस्म करने वाला और वायु की भांति सतत परिव्रजनशील होता है। उसकी अमृतमयी एक ही दृष्टि भव्य मनुष्य के अन्तर मे व्याप्त वासना-विष को नष्ट कर देती है।

ऐसा सन्त अपनी कलुषता का विनाश तो करता ही है, अपनी संगति में आने वाले जिज्ञासु साधकों के भी पापों का अन्त कर देता है।

संसार में ऐसे संतों का आगमन आज विरल है और जो पुण्यवान उनके समागम से अपना कल्याण कर लेते हैं, वे धन्य हैं, अतिशय धन्य हैं।

❖ ❖ ❖

अन्य दृष्टि-बिंदुओं पर भी विचार करो

मनुष्य एक विचारशील प्राणी है तथा उसका मस्तिष्क ही उसे सारे प्राणी-समाज में एक विशिष्ट व उच्च स्थान प्रदान करता है। मनुष्य सोचता है स्वयं ही और स्वतंत्रतापूर्वक भी, अतः उसका परिणाम स्पष्ट है कि विचारों की विभिन्न दृष्टियां संसार में जन्म लेती हैं। एक ही वस्तु के स्वरूप पर भी विभिन्न लोग अपनी-अपनी अलग-अलग दृष्टियों से सोचना शुरू करते हैं। यहां तक तो विचारों का क्रम ठीक रूप में चलता है। किन्तु उससे आगे क्या होता है कि एक ही वस्तु को विभिन्न दृष्टियों में सोचकर उसके स्वरूप को समन्वित करने की ओर वे नहीं झुकते। जिसने एक ही वस्तु को जिस विशिष्ट दृष्टि से सोचा है, वह उसे ही वस्तु का सर्वांग स्वरूप घोषित कर अपना ही महत्त्व प्रदर्शित करना चाहता है। फल यह होता है कि ऐकांतिक दृष्टिकोण व हठधर्मिता का वातावरण मजबूत होने लगता है और वे ही विचार,

जो सत्यज्ञान की ओर बन सकते थे, पारस्परिक समन्वय के अभाव में विद्वेषपूर्ण संघर्ष के जटिल कारणों के रूप में परिवर्तित हो जाते हैं। तो हम देखते हैं कि एकांगी सत्य को लेकर जगत् के विभिन्न विचारक व मतवादी उसे ही पूर्ण सत्य का नाम देकर संघर्ष को प्रचारित करने में जुट पड़ते हैं। ऐसी परिस्थिति में स्याद्वाद का सिद्धान्त उन्हें बताना चाहता है कि सत्य के टुकड़ों को पकड़कर उन्हें ही आपस मे टकराओ नहीं, बल्कि उन्हें तरकीब से जोडकर पूर्ण सत्य के दर्शन की ओर सामूहिक रूप से जुट पड़ो। अगर विचारों को जोड़कर देखने की वृत्ति पैदा नहीं होती व एकांगी सत्य के साथ ही हठ को बांध दिया जाता है, तो यही नतीजा होगा कि वह एकांगी सत्य भी न रहकर मिथ्या में बदल जायेगा। क्योंकि पूर्ण सत्य को न समझने का हठ करना सत्य का नकार करना है। अतः यह आवश्यक है कि अपने दृष्टि-विन्दु को सत्य समझते हुए भी अन्य दृष्टि-बिन्दुओं पर उदारतापूर्वक मनन किया जाय तथा उनमें रहे हुए सत्य को जोड़कर वस्तु के स्वरूप को व्यापक दृष्टि से देखने की कोशिश की जाय। यही जगत् के वैचारिक संघर्ष को मिटाकर उन विचारों को आदर्श सिद्धान्तों का जनक बनाने की सुन्दर राह है।

❖ ❖ ❖

नवीनता का अर्थ

कल्याण मार्ग की ओर आगे बढ़ने से ही जीवन में नवीनता का उद्‌भव हो सकता है। क्योंकि जागतिक विकृतियों में फंस कर आत्मा अत्यधिक जीर्ण-सी बन गई है। उसमें नवीनता लाने के लिये शास्त्रीय, सनातन व सत्यरूपी जीवनौषधि की आवश्यकता है। जहां जीवन में सम्यक् गति नहीं, वहां वैचारिक नवीनता नहीं, तो वैसा जीवन जीवन नहीं, उसे मृत्यु का दूसरा नाम कह सकते हैं।

अब प्रश्न उठता है कि नवीनता के प्रति आर्कषणवृत्ति मनुष्य के हृदय में संलग्न क्यों है ? जीवन में इस वृत्ति से क्या लाभ भी है ?

यह वृत्ति इस बात की परिचायिका है कि शुद्ध आत्मज्योति आर्कषण का केन्द्रविन्दु बनती है, जिससे मनुष्य स्वयं सोचता है, जानता है, सीखता है और स्व-पर के लिये वस्तुतः कार्यक्षेत्र निर्धारित कर सकता है। मनुष्य इसी पवित्र शक्तिस्रोत के बल पर अपने स्वतन्त्र मस्तिष्क, स्वतन्त्र व्यक्तित्व के शुद्ध आचरण की अनुभूतियों द्वारा जीवन-निर्माण कर सकता है।

अतः जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों, शुद्ध-संयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूंकने वाले हों, उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन समझना चाहिये।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिये ग्रहण करनी चाहिये और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरों पर प्रकट करना चाहिये, तभी नवीनता का पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है।

समय तेजी से बदलता और बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में बुद्धिमत्ता इसी में है कि सही नवीनता - आत्म-ज्योति के महत्त्व को हृदयंगम करके आज का मानव सही प्रगतिशीलता की ओर गति करने में पीछे न रहे।

❖ ❖ ❖

महावीर का स्वाधीनता-सन्देश

महावीर ने जो कहा, पहले उसे किया और इसीलिए उनकी वाणी में कर्मठता का ओज व भावना का उद्रेक, दोनों, हैं। हिंसा के नग्न तांडव से सन्तप्त एवं शोषण व अत्याचार से उत्पीड़ित जनता को दुःखों से मुक्त करने के लिये भगवान महावीर ने स्वयं अहिंसा धर्म की प्रव्रज्या लेकर अहिंसा की क्रांतिकारी तथा सुखकारी आवाज उठाई। स्वार्थोन्मत्त नर-पिशाचों को प्रेम, सहानुभूति, शांति एवं सत्याग्रह के द्वारा उन्होंने स्वाधीनता का दिव्य-पथ प्रदर्शित किया।

माया-संग्रह-रूप पिशाचिनी के कराल जाल में फंसे हुए मानवों को उन्होंने पथभ्रष्ट विलासिता के दलदल से निकाल कर निर्ग्रन्थ अपरिग्रहवाद का आदर्श बताया। उन्होंने स्वयं महलों के ऐश्वर्य व राजसुख का त्याग कर निर्ग्रन्थ साधुत्व का वरण किया तथा अपने सजीव आदर्श से स्पष्ट किया कि भौतिक पदार्थों के इच्छापूर्ण त्याग से ही आत्मिक सुख का स्रोत फूट सकेगा। क्योंकि ग्रन्थि (ममता) को ही उन्होंने समस्त दुःखों का मूल माना, चाहे वह ग्रन्थि जड द्रव्य-परिग्रह में हो, कुटुम्ब, परिवार में हो या काम, क्रोध, लोभ, मोहादि मनोविकारों में हो - यह ग्रन्थि ही कष्टों का सृजन करती है। इसीलिए महावीर ने दृढ़ता से आह्वान किया -

पुरिसा, अत्ताणमेव अभिणिगिज्झ एवं दुक्खा पमोक्खसि।

हे पुरुषो ! आत्मा को विषयों (काम-वासनाओं) की ओर जाने से रोको, क्योंकि इसी से तुम दुःखमुक्ति पा सकोगे।

समस्त जैन दर्शन महावीर की इसी पूर्ण स्वाधीनता की उत्कृष्ट भावना पर आधारित है। परिग्रह के ममत्व को काटकर संग्रहवृत्ति का जब त्याग किया जायेगा तभी कोई पूर्ण अहिंसक और स्वाधीन बन सकता है। ऐसी पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना ही जैन धर्म का मूलभूत ध्येय है। स्वाधीनता ही आत्मा का स्वधर्म अथवा निजी स्वरूप है। मोह, मिथ्यात्व एवं अज्ञान के

वशीभूत होकर आत्मा अपने मूल स्वभाव को विस्मृत कर देती है और इसीलिए वह दासता की शृंखलाओं में जकड़ जाती है।

❖ ❖ ❖

स्वाधीनता का सही अर्थ

आत्मा की पूर्ण स्वाधीनता का अर्थ है - सम्पूर्ण भौतिक पदार्थों एवं भौतिक जगत् से सम्बन्ध-विच्छेद करना। अंतिम श्रेणी में शरीर भी उनके लिए एक बेड़ी है, क्योंकि वह अन्य आत्माओं के साथ एकत्व प्राप्त कराने में बाधक है। पूर्ण स्वाधीनता की इच्छा रखने वाला विश्वहित के लिए अपनी देह का भी त्याग कर देता है। वह विश्व के जीवन को ही अपना मानता है, सबके सुख-दुःख में ही स्वयं के सुख-दुःख का अनुभव करता है, व्यापक चेतना में स्वयं की चेतना को संजो देता है। एक शब्द में कहा जा सकता है कि वह अपनी व्यष्टि को समष्टि में विलीन कर देता है। वह आज की तरह अपने अधिकारों के लिए रोता नहीं, वह कार्य करना जानता है और कर्तव्यों के कठोर पथ पर कदम बढ़ाता हुआ चलता जाता है।

फल की कामना से कोई कार्य मत करो, अपना कर्तव्य जान कर करो, तब उस निष्काम कर्म में एक आत्मिक आनन्द होगा और उसी कर्म का सम्पूर्ण समाज पर विशुद्ध एवं स्वस्थ प्रभाव पड सकेगा। कामनापूर्ण कर्म दूसरों के हृदय में विश्वास पैदा नहीं करता, क्योंकि उसमें स्वार्थ की गंध होती है और सिर्फ स्वार्थ, परार्थ का घातक होता है। स्वार्थ छोड़ने से परार्थ की भावना पैदा होती है और तभी आत्मिक भाव जागता है। इसी पथ पर आगे बढो, ताकि आत्म-विकास की सच्ची स्वतंत्रता प्राप्त की जा सके। इसीलिए बंधुओ, प्रतिज्ञा कीजिए कि आप सर्वोच्च स्वाधीनता की अन्तिम सीमा तक गति करते ही रहेंगे।

❖ ❖ ❖

स्वतंत्रता का सन्देश

स्वतंत्रता ही मानव-जीवन का चरम उद्देश्य है। जो स्वतन्त्र हो जाता है, वही विजेता है, क्योंकि विजय का परिणाम ही स्वतन्त्रता के रूप में प्रकट होता है और जहां विजय है, वहां पराजितों का झुकना और वैभव-सम्पन्नता अवश्यम्भावी हैं।

आज 'स्वतन्त्रता' शब्द का हमने बहुत ही संकुचित अर्थ मान रखा है। स्वतन्त्रता की पूर्णोज्ज्वल ज्योति जहां चमकती है, वह स्थान है आत्मिक स्वतन्त्रता का। जब तक मनुष्य

निज की मनोवृत्तियों को नहीं समझ पाता और उनकी सही प्रगति-दिशा का निर्धारण नहीं कर सकता, वहां आत्मा का पतन है और आत्मा के गिरने पर कभी भी सच्ची और पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं हो सकती।

पूर्ण स्वतन्त्रता की राह पर आगे बढ़ने के लिये यह आवश्यक है कि हम सुख और दुःख के रहस्य को समझें। यह सुनिश्चित तथ्य है कि संसार का प्रत्येक प्राणी सुख की कामना करता है और दुःख से व्याकुल होता है। इसी प्रवृत्ति के कारण प्रत्येक प्राणी अपने समस्त प्रयासों को भी इसी दिशा में नियोजित करना चाहता है कि उसे उनसे सुख ही सुख प्राप्त हों। परन्तु फिर भी यदि हम चारों ओर दृष्टिपात करे, तो विदित होगा कि संसार के बहुसंख्यक प्राणी दुःखी हैं। अतः जब भी विचार करते हैं, यही सनातन प्रश्न मुंह बाये सामने खड़ा रहता है कि संसार में इतना दुःख क्यों है ?

सुख और दुःख का अनुभव विशेष रूप से मनुष्य के हृदय-निर्माण पर निर्भर करता है। दुःख में मनुष्य यदि सही रूप से सोचे तो विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेता है।

इस सिलसिले में आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सुख और दुःख की काल्पनिक अनुभूति के परे ही आत्मानन्द का निवास है एवं जब आत्मानन्द का संचार होता है, तभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मंजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि जब आत्मा सदैव आनन्द ही आनन्द में रमण करेगी तो उसमें अपने विकारों, अपनी वासनाओं से लड़ने की एक अपूर्व शक्ति उत्पन्न हो जायगी और उस शक्ति के सहारे ही आत्मा के शत्रुओं को झुका दिया जा सकेगा। दासता की काली छाया हटेगी तथा मानस में पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रकाश फैलेगा। वही प्रकाश विजेता का साम्राज्य होता है और वही प्रकाश उसकी वैभव सम्पन्नता है जो उसे त्रिभुवन का स्वामित्व प्रदान करती है। बन्धुओ ! इसी प्रकाश को पाने के लिए हमें सुख और दुःख के वास्तविक रहस्य को समझकर अपने जीवन-पथ का निर्माण करना चाहिये।

❖ ❖ ❖

स्वतन्त्रता का आशय

प्रधान साध्य सत्य का साक्षात्कार करना है, जिसके प्रकाश में जीवन का कण-कण आलोकित होकर चरम विकास को प्राप्त किया जा सकता है। इसीलिए जैन दर्शन के सभी सिद्धान्त साधन रूप बनकर उक्त साध्य की ओर गमनशील बनाते हैं। इनमें भौतिकवादी दृष्टिकोण को प्रमुखता न देकर आध्यात्मिकता को विशिष्ट महत्त्व दिया गया है। क्योंकि

समस्त प्राणीसमूह की सेवा के लिये यह अनिवार्य है कि सांसारिक प्रलोभनों को छोडकर आत्मवृत्तियों का शुद्धिकरण किया जाये, जिसके बिना इस अनवरत संघर्षशील जगत् के बीच स्व-पर कल्याण सम्पादित नहीं किया जा सकता। संक्षेप में, जैन दर्शन विश्वशांति के साथ-साथ व्यक्तिशांति का भी मार्ग प्रशस्त करता है।

यदि इस सिद्धान्त को विभिन्न क्षेत्रों में रहे हुए संसार के विचारक समझने की चेष्टा करे, तो कोई सन्देह नहीं कि वे अपनी संघर्षात्मक प्रवृत्ति को छोड़कर, एक-दूसरे के विचारों को उदारतापूर्वक समझकर उनका शान्तिपूर्ण समन्वय करने की ओर आगे बढ़ सकेंगे।

विश्वशांति का प्रश्न धर्म, सभ्यता व संस्कृति के विकास तथा समस्त प्राणियों के हित का प्रश्न है। कोई भी व्यक्ति, चाहे किसी भी क्षेत्र में कार्य कर रहा हो, इस प्रश्न से अवश्य ही सम्बन्धित है। इस प्रश्न की सही सुलझन पर ही मानवता की वास्तविक प्रगति का मूल्यांकन किया जा सकता है और विश्वशांति की नींव को मजबूत करने का, आज की परिस्थितियों में, सबसे प्रमुख यही उपाय है कि चारों ओर फैला हुआ विचारों का विषैला विभेद शांत किया जाये।

❖ ❖ ❖

पर्युषण : स्वाधीनता का महापर्व

राजनीतिक स्वाधीनता से भी अधिक महत्त्वपूर्ण स्वाधीनता है - आध्यात्मिक स्वाधीनता। हम वस्तुतः आत्मा हैं, अतएव आत्मिक दृष्टि से अगर हमें स्वाधीनता प्राप्त हो, तो ही हम पूर्ण स्वाधीन कहला सकते हैं।

स्वतंत्र का अर्थ है अपने पर आप ही शासन करने वाला। जिस पर किसी दूसरे का शासन न हो, वही वास्तव मे स्वतन्त्र है। अगर आपके शरीर पर, बुद्धि पर और मन पर पूरी तरह आपका ही शासन है और इन्हें आप अपनी इच्छा के अनुसार संचालित कर सकते हैं तो आप स्वतन्त्र हैं, अन्यथा नहीं।

अगर आपने स्वाधीनता के मर्म को समझा है, धर्म के स्वरूप को जाना है, तो आपका जीवन विराट् होना चाहिये।

जिस देश की प्रजा अपने लोकोत्तर एवं लौकिक धर्म का श्रद्धा के साथ पालन करती है, राग-द्वेष का त्याग करके प्रीतिभाव रखती है, वही स्वाधीनता का चिरकालपर्यन्त उपभोग कर सकती है। वही स्वाधीनता साकार होती है। यही कल्याण का मार्ग है। यही परमात्म-प्राप्ति का मार्ग है। जो इस मार्ग पर चलेगा, उसका कल्याण होगा।

❖ ❖ ❖

प्रकाश का सन्देश

पमालिका ! अमावस के अन्धकार को चीर कर झिलमिलाते हुए अगणित दीपक मानो
देश देते हैं कि घनी विपदाओं और निराशाओं के बीच भी साहस व त्याग के ऐसे
जलाओ कि आत्मविकास का पथ प्रकाशमय हो जाये।

पमालिका ! अपने नन्हे-नन्हे दीपों की ज्योति से उस प्रकाश की झलक दिखाती है,
विस्तार प्रेम, अहिंसा, सेवा और त्याग के विकास-पथ पर फैला रहता है। वह प्रकाश
क, जिसका अनुकरण करती हुई आत्म-लक्ष्मी का पदार्पण होता है। ये दीप उस
के प्रतीक कहे जायें जो प्रकाश अन्तरात्मा से उत्पन्न होता है और घनीभूत होता हुआ
न परमात्मरूप में परिवर्तित हो जाता है।

पमालिका के इन दीपों की ज्योतियों में आत्मविजय की लक्ष्मी मुस्कराया करती है।
के अन्तर में निहारो, ज्योति में गहराई से प्रवेश करो तो दिखाई देगा कि पतन और
र के समुन्दरी तूफान में जीव-नौका को विकास का मार्ग दिखाने वाले अन्तर्दृष्टि के
र आत्मा के लिए प्रकाशस्तम्भ का काम कर रहे हैं।

: दीपमालिका का पहला आयोजन होना चाहिए - जीवन की स्वच्छता और सजावट
वनामय जगत् इस प्रकार स्वच्छ व सम्यक्प्रकारेण सुसज्जित हो कि मानसिक विकारों
श के साथ-साथ सद्विचारों का निर्माण भी हो। इसमें सफल बनने के लिए निर्लेपता
द्ध, कठोर कर्मठता की अधिक आवश्यकता होती है।

❖ ❖ ❖

तमसो मा ज्योतिर्गमय

ज दीपमालिका है। अमावस के अन्धकार को चीरकर झिलमिलाते हुए अगणित दीपक
ह सन्देश देते हैं कि घनी विपदाओं और निराशाओं के बीच साहस व त्याग के ऐसे
जलाओ कि आत्म-विकास का पथ प्रकाशमय हो जाय।

ठीक है कि दीपकों की माला से बाह्य प्रकाश तो होता ही है, किन्तु इन छोटे-छोटे
लघु दीपो को अन्तर्जगत् का प्रतीक मानकर आत्मक्षेत्र को ज्योतित करना चाहो तो
पमालिका के पर्व का सच्चे दिल से भावनात्मक स्वरूप पहचानने का प्रयास किया
ाहिए।

पमालिका अपने नन्हे-नन्हे दीपों की ज्योति से उस प्रकाश की झलक दिखाती है,

जिसका विस्तार प्रेम, अहिंसा, सेवा और त्याग के विकास-पथ पर फैला रहता है। वह प्रकाश की झलक, जिसका अनुसरण करती हुई आत्म-लक्ष्मी का पदार्पण होता है। इस पर्व की ऐतिहासिक आधारशिला भी बताती है कि ये दीप उस ज्योति से जल रहे हैं, जिसके लिये विश्व की महान् विभूतियों ने अपने आदर्शों का स्नेहदान दिया है - नया प्रकाश फैलाया है।

अतः दीपमालिका का पहला आयोजन होना चाहिए - जीवन की-स्वच्छता और सजावट का। आपका भावनामय जगत् इस प्रकार स्वच्छ व सम्यक्प्रकारेण सुसज्जित हो कि मानसिक विकारों के विनाश के साथ-साथ सद्विचारों का निर्माण भी हो। तदनन्तर आपके वचन और आपके कार्य शुद्धिकृत व नवसज्जायुक्त मन के अनुरूप ढलने लगेंगे। इस तरह से व्यक्तिगत जीवन के निर्माण का अभाव होगा और उस पवित्र सम्पर्क से समाज में भी उस वातावरण की रचना हो सके - ऐसी प्रेरणा मिलेगी। जितना बाहरी स्वच्छता और सजावट का कार्य आसान है, उतना ही आंतरिक एवं सामाजिक स्वच्छता व सजावट का कार्य कठिन है। अतः इसमें सफल बनने के लिए निर्लेपता तथा शुद्ध, कठोर कर्मठता की अधिक आवश्यकता होती है।

अतः आज के पर्व-दिवस का कर्तव्य है कि इन लघुदीपों की पृष्ठभूमि में महापुरुषों के दिव्य चरित्र का पुनीत स्मरण किया जाय और इस मंगलपर्व के जाग्रत सन्देश को इस रूप में हृदयंगम करने का शुभ प्रयास किया जाय कि जिस तरह उन विश्व-विभूतियों ने त्याग, सच्चे प्रेम और सेवा के पथ पर चलकर अपनी अडिग अकर्मण्यता का परिचय दिया और निज के साथ-साथ जगत् के जीवन को प्रकाशित किया, उसी तरह आप भी सत्कर्मठ कर्मण्यता का व्रत लें और अपनी समस्त सत्शक्तियां लगाकर निज के एवं समाज और धर्म के क्षेत्र में प्रगतिशील तथा प्रकाशमान नवीनता का संचार करें।

❖ ❖ ❖

जीवन का बसन्त

जीवन में ऊंचे-से-ऊंचा विकास संभव है और कोई भी लक्ष्य असंभव नहीं है। जीवन के ऊबड़-खाबड़ रास्तों पर जब कोई पथिक पग बढ़ाता है और उस समय भयंकर प्रतिकूलताएं अगर उसके कदमों को डगमगा दें तो वह स्थिति परिस्थितियों की दासता के रूप में देखी जायगी। जीवन में सफलता उस पथिक को मिलती है जो मजबूत कदम बढ़ाता हुआ, हर प्रतिकूल परिस्थिति को संभव बनाता हुआ, आत्म-विकास के लक्ष्य की ओर अग्रसर होता चला जाता है। ऐसी ही अवस्था में जीवन का बसन्त खिलता है, जिसके पत्र-पल्लवों की हरीतिमा आत्म-सुख की अनुभूति देती है, पुष्पों की मधुरिम सौरभ आचार एवं विचार-वैभव को सुवासित बना देती और बासन्ती बहार त्याग की भावनाओं को उभार देती है।

जीवन में प्रस्फुटित होने वाले ऐसे 'नव-बसन्त' का अभिनन्दन करने के लिये आपको अपने सामाजिक जीवन का भी कायापलट करना पड़ेगा, तब मिथ्या और आत्मघातक सामाजिक रूढ़ियों का दाह-संस्कार इसलिये आप जरूरी महसूस करेंगे कि ऐसी मनोवृत्तियां सदैव प्रगतिपथ को अवरुद्ध करती है। आप चाहें कि अधोगति में ले जाने वाले सडे-गले कुसंस्कारों, मिथ्या रीति-रिवाजों एवं खतरनाक अन्धविश्वासों को भी अपने दैनिक जीवन से चिपकाये रखो और जीवन में बसन्त के आगमन का भी आह्वान करो, तो ये परस्पर विरोधी बातें एक साथ कैसे चल सकती है ? अभिमान, ईर्ष्या, द्वेष व ऐसे सभी मनोविकारों को अपनी प्रकृति से विदा देने पर ही वात्सल्य, प्रेम, नम्रता, विश्वबन्धुत्व तथा स्व-स्वरूपरमण एवं अन्य नवीन सद्‌गुणों के अतिथि आपके जीवनरूपी प्रांगण में प्रवेश कर सकते हैं। इनका प्रवेश आत्मा को बसन्तश्री से सुसज्जित कर देगा।

प्रकृति पतझड में जब सूखे पत्तों को नीचे गिरा देती है तभी बसन्त खिलता है। अतः आपके समाज में हो या साधु समाज में - विकृतियों की सूखी पत्तियों को झाडना ही पड़ेगा। एकता और सही विकास की कड़ी में बंध जाने के लिये अहितकर दाम्भिक प्रवृत्तियों को त्यागना पड़ेगा।

❖ ❖ ❖

जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा

जो कर्म मे शौर्य प्रदर्शित करेंगे, वे ही तो आखिर धर्म के विराट् क्षेत्र मे भी साहस और सजगता के साथ आगे बढ़ सकेंगे। जहां शौर्यत्व का ही अभाव है, वहां तो ऐसे लोगों की किसी भी क्षेत्र में अपेक्षा नहीं की जा सकती। कर्मशक्ति से भागने वाला, संसार के अपने पुनीत व नैतिक कर्तव्यों से सहज ही स्खलित हो जाने वाला, धर्म की दुनिया मे भी स्थिरचित्त कैसे बना रह सकता है ?

कोरी कल्पनाएं व वाणीविलास किसी भी क्षेत्र में कार्य की सफलता मे सफल नहीं हो सकते। कार्य की सफलता जिस तत्त्व की तह में निहित है, वह है पुरुषार्थ और उसे जगाये बिना न व्यक्ति जाग सकता है और न ही समाज, बल्कि अन्तरतम का विकास भी इसके बिना साधा नहीं जा सकता।

पुरुषार्थ के लिये कठिनतम कार्य भी असंभव नहीं होते और जहा असंभावना की विचारधारा ही नहीं, वहां रुकना और गिरना कैसा ? वहां तो निरंतर बढते रहना है और बीच में आने वाली आपदाओं से सफलतापूर्वक लड़ते-भिडते रहना है। इसी पुरुषार्थ के प्रबल

आवेग में नेपोलियन ने ललकार कर कहा था कि असंभव शब्द सिर्फ मूर्खों के कोष में होता है और उसने किसी अपेक्षा से बिल्कुल ठीक कहा था। अनन्त शक्तिसम्पन्न आत्मा के लिये महान् से महान् कार्य-संपादन भी कतई असंभव नहीं। पौरुष के आगे हमेशा राह होती है।

कार्यशक्ति कभी असफल नहीं होती - यह एक तथ्य है, किन्तु फिर भी लोगों में विपरीत वृत्ति देखी जाती है कि वे सुख और आनन्द तो चाहते हैं, मगर काम से घबराते हैं, आलस्य की शरण में अधिक जाते हैं। इस तरह उन्हें सफलता नहीं मिलती, क्योंकि बिना सतत प्रयासों के वह संभव नहीं।

कर्म के शूर ही धर्म में भी शूर सिद्ध होते हैं, क्योकि बिना शौर्य व पुरुषार्थ के धर्माराधना भी कहां ? प्रमादी व्यक्ति तो कहीं भी सफल नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने इसीलिये स्पष्ट कहा है कि 'समयं गोयम, मा पमायए' अर्थात् हे गौतम ! समय मात्र के लिये भी प्रमाद मत कर ! छोटा-से-छोटा क्षण भी जहां मनुष्य आलस्य से रंग देता है, वहां उसमें उसके जरिये कुछ-न-कुछ बुराई घुस ही जाती है।

❖ ❖ ❖

नवीनता के अनुगामियों से

जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों, शुद्ध-संयमी जीवन की उपयोगिता के लिये समाज व व्यक्ति में जीवन का संदेश फूंकने वाले हों, उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिये। किन्तु विवेक एवं आत्म-ज्योति को भुलाने वाले नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक नैतिक भावहीन सुन्दर शब्दों में नवीन बने हुए कितने ही नियमोपनियम हों, वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिएं। उन शब्दों में समय का मापदंड ठीक नहीं हो सकता, किन्तु संयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

इस दृष्टि से तत्त्वों का चयन किया जाना चाहिये, न कि आज के किन्हीं जोशीले नवयुवकों की तरह कि पुरानी सब चीजें त्याज्य हैं, सभ्यता से पिछडी हुई हैं और नई सभ्यता की सारी चीजें ज्यों-की-त्यों अपनाने योग्य हैं। मैं उन नवयुवकों को भी कहना चाहूंगा कि दृढाग्रह अलग चीज है और विवेकपूर्ण समझना अलग बात है एवं मेरा खयाल है, सही समझ के लिये प्राचीन एवं नवीन का ऊपर जो मापदंड बताया गया है, वह सभी दृष्टियों से काफी समुचित जान पडेगा।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिये ग्रहण करनी चाहिये और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरों पर प्रगट करना चाहिये, तभी नवीनता का

पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है। किन्तु होता क्या है कि कई सुधारक दूसरों के जीवन में सुधारमय नवीनता लाने के लिए बड़ा जोर लगाते हैं और अपने जीवन का खयाल कम रखते हैं। व्यक्ति अपने जीवन में कुछ भी न उतार कर दूसरों से कुछ कहे, यह एक प्रभावहीन तरीका है।

❖ ❖ ❖

जानो और करो

यह साधारण विवेक की बात है कि हम कोई कार्य निष्प्रयोजन नहीं करते। एक स्थान से उठकर हमें यदि कहीं जाना होता है तो पहले हम सोचते हैं कि यह हमें किसलिये करना है। करने से पहले जो पूर्व-विचारणा है, वही ज्ञान है और इसके प्रकाश में ही हमारा करना सफल हो सकता है। पहले योजना बनाना और फिर उसका अमल करना ही सफलता की कुंजी है। आत्मोत्थान के लिए या किसी कार्य के लिये बिना ज्ञानयुक्त क्रिया के कोई लाभ नहीं। न अंधे की तरह इधर-उधर भटकने से कोई प्रयोजन हल हो सकता है, न आंखों की रोशनी लेकर एक जगह बैठ जाने से। किसी स्थान पर पहुंचना तो तभी हो सकता है कि आंखें खोलकर ठीक रास्ते पर आगे बढ़ते जायें। इसके लिये पहले ज्ञान का प्रकाश होना चाहिये, ताकि उस उजाले में मार्ग ठीक-ठीक दिखाई दे और ठीक उसी के लक्ष्यानुसार आगे बढ़ा जा सके। 'जानो और करो' का सिद्धान्त ही आनन्द प्रदान कर सकता है।

कतिपय भाई स्वार्थवशात् भोली जनता में शास्त्रविरुद्ध भ्रमणा फैलाने के लिये ज्ञान और क्रिया के संयुक्त महत्त्व पर आघात करते हैं और धर्म एवं पुण्य की असंबद्ध व्याख्याओं का निर्माण करते हैं। भले ही इस प्रकार की व्याख्याओं से पहले भोली जनता को भ्रमित करने में सफलता मिल जाये, लेकिन वास्तविक उत्थान चाहने वाले जब इन सिद्धांतों के विषय में गंभीरता से सोचेंगे, तो उन्हें निश्चय ही सत्य के धरातल पर आना पड़ेगा।

❖ ❖ ❖

सही बात यही है

समाज की गति पारस्परिकता पर निर्भर होती है और जब यही मानवीय वृत्ति व्यापक होकर समाज के विशाल आंगन में चारों ओर प्रसारित हो जायेगी, तो फिर सभी नागरिक अपने पारस्परिक व्यवहारों में इस प्रवृत्ति के अनुसार कार्यरत होंगे। इसका, निश्चय, ही यह

फल होगा कि कष्टों का उद्भव ही खत्म होने लगेगा। एक दुःख नहीं देगा और दूसरे भी दुःख नहीं देंगे। इस तरह ही पहले को कभी दुःख का सामना नहीं होगा।

इसलिये यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिये कि दुःख दूर करने का यही प्रधान मार्ग है कि हम पहले किसी को दुःख देना छोड़ दें, क्योंकि सामाजिक रचनात्मक कार्य का प्रारंभ व्यक्ति से ही संभव हो सकेगा, अगर प्रत्येक व्यक्ति पहले प्रारम्भ की अपेक्षा दूसरे से ही करता रहे तो सामाजिक कार्यों का संपादन दुष्कर क्या असम्भव ही रह जायगा। अतः सबसे पहले हम लोग यह संकल्प करें कि हम किसी को कभी किसी तरह की पीड़ा नहीं पहुंचायेंगे, कभी किसी को हम से कोई कष्ट हो जायगा तो उसके लिये प्रायश्चित्त करेंगे तथा सबकी भविष्य में सुखप्राप्ति की निरंतर कामना करते रहेंगे। इस प्रकार की भावना हृदय के सारे कलुष को धोकर उसे दर्पणवत् चमकाकर प्रकाशित कर देगी।

इसलिए, क्या तो राजनीति में व क्या अन्य सभी मानवीय नीतियों में, स्वार्थ-त्याग की धर्ममय नीति का प्रवेश कराने की आवश्यकता है। जहां हृदयों में संकुचितता है, वहां सुखों का द्वार नहीं खुलता। सुखों के लिये तो हृदयों की उदारता का त्याग के आधार पर अधिक-से-अधिक विस्तार होना चाहिये।

❖ ❖ ❖

गोपनीयता का परिणाम

गोपनीयता सदैव सत्य-विरोधिनी होती है क्योंकि सच्चाई और छिपावट का कोई मेल नहीं। जो बात सत्य है उसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं और जिस किसी बात को छिपाने की कोशिश की जाती है, उसमें कहीं-न-कहीं झूठ की बू अवश्य मिलेगी।

गोपनीयता से मिथ्यावाद बढता है और उससे कुटिलता एवं कुटिलता से दुष्कृत्यों की एक बाढ़-सी आ जाती है। गोपनीयता की नींव पर अधर्म का महल बन जाता है, जो व्यक्ति के शुद्ध आत्म-तत्त्वों को अपने नीचे गाड़े रखता है।

चूंकि गोपनीयता सत्य-विरोधिनी होती है, इसलिए वह अहिंसा की भी विरोधिनी होती है। प्रवंचना का परिणाम प्रतिहिंसा, अधिकतर, होता ही है। क्योकि उस व्यक्ति को रोष आना व रोष को रोक न पाना मानवीय कमजोरी के अनुसार संभव है।

बुराई से बुराई ही पैदा हो सकती है और उसकी पैदाइश की परम्परा इस तरह चल पड़ती है कि अगणित बुराइयों के टेढ़े-मेढ़े चक्रव्यूह से बाहर निकलना दुष्वार-सा हो जाता है। एक बुराई को छिपाने के लिए न जाने कितनी और बुराइयों का आसरा लिया जाता है। छिपाई गई बुराई हमेशा भयंकर परिणाम लेकर ही खुलती है।

अतः सरलता और सच्चाई का सीधा रास्ता ही यह है कि पहले अकेली बुराई को ही रहस्य बनाकर छिपाये रखने की कोशिश न की जाये तथा विनम्र भाव से उस बुराई को प्रमुख, अपने गुरु अथवा अपने वडील के समक्ष क्षमावनत होकर सबके सामने प्रगट कर दी जाये तो अगली बुराइयों की जड़ें ही कट जाती हैं।

अतः कैसा भी क्षेत्र हो, नीति पर बने रहने के लिए सबसे अधिक सरल उपाय यह है कि छिपाने की मनोवृत्ति ही न हो। तभी सत्यपथ पर आत्म-कल्याण साधा जा सकेगा।

❖ ❖ ❖

विकट समस्या : सरल समाधान

आज साधारणजन के समक्ष बड़ी विकट समस्या है कि उसका जीवन कैसा हो ? किस प्रकार आवश्यक जीवनोपयोगी पदार्थों को सरलता से उपलब्ध कर वह अपने जीवन को शांतिमय, नीतिमय और धर्ममय बना सके ? वस्तुस्थिति यह है कि आज अशांति एवं असंतोष के बादल मंडरा रहे हैं, जिन्होंने जीवन के सुखरूपी सूर्य को ढक लिया है।

तो प्रश्न उठता है कि आखिर सुख क्या है ? इसका उत्तर अतिगंभीरता से विचारने का विषय है। सुख का निवास किसी पदार्थ-विशेष व स्थिति-विशेष में नहीं है। वह तो अन्तर की प्रगाढ़ अनुभूति में ही प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य पदार्थों के समागम से उपलब्ध होने वाला सुख केवल सुखाभास है तथा वह भी क्षणिक है। लेकिन वर्तमान युग में दुनिया की दौड़ बाह्य पदार्थों में ही सुख खोजने में हो रही है।

किन्तु यह एक नग्न सत्य है कि जब तक जीवन को त्याग की ओर नहीं मोडा जायगा, मानव-जीवन में शांति एवं सुख का संचार होना कठिन है।

जिन-जिन व्यक्तियों ने त्याग का मार्ग अपनाया है, वे ही जनता के श्रद्धेय हो सके हैं, महापुरुष बन सके हैं। महावीर को ही ले लीजिये, वे इसलिये विश्वविभूति नहीं बने कि वे राजपुत्र थे, विशाल वैभव व ऐश्वर्य के धनी थे, बल्कि इसलिये कि उपलब्ध होने पर भी उन्होंने उस सारे विशाल वैभव को निर्ममत्व रूप से त्याग कर प्राणी-कल्याणार्थ अपना समग्र जीवन साधना में समर्पित कर दिया। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी ऐसे महापुरुषों की स्मृतियां भुलाई नहीं जा सकतीं। उनके दिव्य सन्देश जन-हृदय में सदैव गुंजायमान होते रहते हैं, उनमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

त्याग की भावना और त्याग की प्रवृत्ति अपना दुहरा असर डालती हैं। एक ओर तो इनका असर त्यागकर्ता के निज के जीवन पर पड़ता ही है, दूसरी ओर इस वृत्ति का प्रभाव समूची समाज-व्यवस्था पर भी पड़ता है।

फल होगा कि कष्टों का उद्‌भव ही खत्म होने लगेगा। एक दुःख नहीं देगा और दूसरे
दुःख नहीं देंगे। इस तरह ही पहले को कभी दुःख का सामना नहीं होगा।

इसलिये यह स्पष्ट रूप से समझा जाना चाहिये कि दुःख दूर करने का यही प्रधान मा
है कि हम पहले किसी को दुःख देना छोड़ दें, क्योंकि सामाजिक रचनात्मक कार्य का प्रा
व्यक्ति से ही संभव हो सकेगा, अगर प्रत्येक व्यक्ति पहले प्रारम्भ की अपेक्षा दूसरे से
करता रहे तो सामाजिक कार्यों का संपादन दुष्कर क्या असम्भव ही रह जायगा। अतः सब
पहले हम लोग यह संकल्प करें कि हम किसी को कभी किसी तरह की पीड़ा नहीं पहुंचायें
कभी किसी को हम से कोई कष्ट हो जायगा तो उसके लिये प्रायश्चित्त करेंगे तथा सबव
भविष्य में सुखप्राप्ति की निरंतर कामना करते रहेंगे। इस प्रकार की भावना हृदय के स
कलुष को धोकर उसे दर्पणवत् चमकाकर प्रकाशित कर देगी।

इसलिए, क्या तो राजनीति में व क्या अन्य सभी मानवीय नीतियों में, स्वार्थ-त्याग व
धर्ममय नीति का प्रवेश कराने की आवश्यकता है। जहां हृदयों में संकुचितता है, वहां सुख
का द्वार नहीं खुलता। सुखों के लिये तो हृदयों की उदारता का त्याग के आधार प
अधिक-से-अधिक विस्तार होना चाहिये।

❖ ❖ ❖

गोपनीयता का परिणाम

गोपनीयता सदैव सत्य-विरोधिनी होती है क्योंकि सच्चाई और छिपावट का कोई मेल
नहीं। जो बात सत्य है उसे छिपाने की कोई आवश्यकता नहीं और जिस किसी बात को
छिपाने की कोशिश की जाती है, उसमें कहीं-न-कहीं झूठ की बू अवश्य मिलेगी।

गोपनीयता से मिथ्यावाद बढ़ता है और उससे कुटिलता एवं कुटिलता से दुष्कृत्यों की
एक बाढ़-सी आ जाती है। गोपनीयता की नींव पर अधर्म का महल बन जाता है, जो व्यक्ति
के शुद्ध आत्म-तत्त्वों को अपने नीचे गाड़े रखता है।

चूंकि गोपनीयता सत्य-विरोधिनी होती है, इसलिए वह अहिंसा की भी विरोधिनी होती है।
प्रवंचना का परिणाम प्रतिहिंसा, अधिकतर, होता ही है। क्योंकि उस व्यक्ति को रोष आना व
रोष को रोक न पाना मानवीय कमजोरी के अनुसार संभव है।

बुराई से बुराई ही पैदा हो सकती है और उसकी पैदाइश की परम्परा इस तरह चल
पड़ती है कि अगणित बुराइयों के टेढ़े-मेढ़े चक्रव्यूह से बाहर निकलना दुष्वार-सा हो जाता
है। एक बुराई को छिपाने के लिए न जाने कितनी और बुराइयों का आसरा लिया जाता है।
छिपाई गई बुराई हमेशा भयंकर परिणाम लेकर ही खुलती है।

अतः सरलता और सच्चाई का सीधा रास्ता ही यह है कि पहले अकेली बुराई को ही रहस्य बनाकर छिपाये रखने की कोशिश न की जाये तथा विनम्र भाव से उस बुराई को प्रमुख, अपने गुरु अथवा अपने वडील के समक्ष क्षमावनत होकर सबके सामने प्रगट कर दी जाये तो अगली बुराइयों की जड़ें ही कट जाती हैं।

अतः कैसा भी क्षेत्र हो, नीति पर बने रहने के लिए सबसे अधिक सरल उपाय यह है कि छिपाने की मनोवृत्ति ही न हो। तभी सत्यपथ पर आत्म-कल्याण साधा जा सकेगा।

❖ ❖ ❖

विकट समस्या : सरल समाधान

आज साधारणजन के समक्ष बड़ी विकट समस्या है कि उसका जीवन कैसा हो ? किस प्रकार आवश्यक जीवनोपयोगी पदार्थों को सरलता से उपलब्ध कर वह अपने जीवन को शांतिमय, नीतिमय और धर्ममय बना सके ? वस्तुस्थिति यह है कि आज अशांति एवं असंतोष के बादल मंडरा रहे हैं, जिन्होंने जीवन के सुखरूपी सूर्य को ढक लिया है।

तो प्रश्न उठता है कि आखिर सुख क्या है ? इसका उत्तर अतिगंभीरता से विचारने का विषय है। सुख का निवास किसी पदार्थ-विशेष व स्थिति-विशेष में नहीं है। वह तो अन्तर की प्रगाढ़ अनुभूति में ही प्राप्त किया जा सकता है। बाह्य पदार्थों के समागम से उपलब्ध होने वाला सुख केवल सुखाभास है तथा वह भी क्षणिक है। लेकिन वर्तमान युग में दुनिया की दौड़ बाह्य पदार्थों में ही सुख खोजने में हो रही है।

किन्तु यह एक नग्न सत्य है कि जब तक जीवन को त्याग की ओर नहीं मोड़ा जायगा, मानव-जीवन में शांति एवं सुख का संचार होना कठिन है।

जिन-जिन व्यक्तियों ने त्याग का मार्ग अपनाया है, वे ही जनता के श्रद्धेय हो सके हैं, महापुरुष बन सके हैं। महावीर को ही ले लीजिये, वे इसलिये विश्वविभूति नहीं बने कि वे राजपुत्र थे, विशाल वैभव व ऐश्वर्य के धनी थे, बल्कि इसलिये कि उपलब्ध होने पर भी उन्होंने उस सारे विशाल वैभव को निर्ममत्व रूप से त्याग कर प्राणी-कल्याणार्थ अपना समग्र जीवन साधना में समर्पित कर दिया। हजारों वर्ष बीत जाने पर भी ऐसे महापुरुषों की स्मृतियां भुलाई नहीं जा सकतीं। उनके दिव्य सन्देश जन-हृदय में सदैव गुंजायमान होते रहते हैं, उनमें प्रतिष्ठित हो जाते हैं।

त्याग की भावना और त्याग की प्रवृत्ति अपना दुहरा असर डालती हैं। एक ओर तो इनका असर त्यागकर्ता के निज के जीवन पर पड़ता ही है, दूसरी ओर इस वृत्ति का प्रभाव समूची समाज-व्यवस्था पर भी पड़ता है।

व्यक्ति का त्याग समाज में फैलता है, उसके वैभव का विकेन्द्रीकरण होता है, विषमता घटती है और ऐसी स्थिति सामाजिक न्याय एवम् धार्मिक भावना को प्रोत्साहन देती है। समाज में उस त्याग के आधार पर एक नया वातावरण भी फैलता है।

❖ ❖ ❖

सर्वदुःखों की औषधि

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्म-शक्ति को ही प्रज्वलित करे, अपने-आप को अधिकाधिक शिथिल न बनाता जावे, क्योंकि आत्मा ही आत्मा की बन्धु और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है अर्थात् अपने उत्थान-पतन का कारण अपनी ही आत्मा है। यह सन्देश आज कितनी प्रेरणा देता हुआ प्रतीत होता है। जब हम आत्म-शक्ति की आलोचना और दृढ़ता पर डट जाते हैं, तब हमारे अन्दर एक विशेष प्रकार का तेज उद्‌भूत होता है और उस तेज के समक्ष अन्याय की बुनियाद पर टिकी हुई दुनिया की कोई शक्ति ठहर नहीं सकती।

अतः शोषण-विरोध के किन्हीं साधनों का आश्रय लेने से पहिले यह सोच लिया जाय कि शोषण का मूल कारण शोषितों की मरी हुई आत्माएं हैं और जब तक उनमें जीवन नहीं डाला जायगा, शोषण का स्थायी अन्त कदापि नहीं हो सकता। यदि हिंसात्मक साधनों या अन्य ऐसे ही हीन व अशुद्ध साधनों से शोषण को समाप्त करने की चेष्टा की गई, तो हानि के अतिरिक्त उससे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि यह खतरेभरा रास्ता है और माना कि इसमें एक बार सफलता मिल गई, फिर भी शोषण किसी-न-किसी दूसरे रूप में आकर अपना वैसा ही आधिपत्य जमा लेगा।

अभिप्राय यह है कि आज इस भौतिकवादी सड़ांध से ऊपर उठने की नितान्त आवश्यकता है, जिसके आधार पर महान् विग्रह मचे हुए हैं और यह समझने की जरूरत है कि हमारी स्वयं की आत्मा प्रकाशमान है और आनंद का मधुर स्रोत है। बाहरी जो सुख हैं, वे केवल हमारी आत्ममूर्च्छा को ही बढ़ाते हैं और हमें पतन की राह पर [illegible]। वास्तविक आनन्द तो इन्द्रियों के क्षेत्र से परे रहता है। [illegible] वाली तथा [illegible] होने के कारण ज्ञानप्राप्ति में आनन्द लेने वाली आत्मा [illegible] का आन[illegible] वस्तु के प्रभाव से रहित है। जब आत्मा इसी आनन्द की [illegible] होती [illegible] शान्ति का अनुभव कर सकती है।

यदि इसको समझ लें !

संसार में सुख की अविरल धारा प्रवाहित करने के लिए यह ध्रुव मार्ग है कि अगर तुम्हें दुःख नहीं चाहिए तो अपनी ओर से भी किसी को दुःख न दो, किन्तु सुख दो।

इस विचारणा को अगर गम्भीरतापूर्वक समझने की चेष्टा की जाय तो आत्म-स्वरूप के समीप पहुंचा जा सकता है। उस समय ऐसी अनुभूति होगी कि अपने दुःखों के लिए दूसरों को दोष देना व्यर्थ है। अगर हम ही अपनी प्रवृत्तियों को सीमित व वृत्तियों को संयमित रखें, अर्थात् अपनी ही आत्मा को निकट से समझें व कर्तव्यपथ पर चलावें तो दुःखों की सृष्टि ही नहीं होगी, बल्कि निजत्व का विसर्जन कर देने से स्वर्गिक भावों के साथ अमिट सुख का अनुभव होने लगेगा।

वैसे सामने में यह सिद्धान्त बड़ा सरल प्रतीत होता है कि दुःख न दो, दुख नहीं होंगे, किन्तु अगर आज के अशांत व हिंसात्रस्त विश्व में व्यक्ति व राष्ट्र सही तौर पर इसे आचरण में लाना प्रारम्भ कर दें, तो निश्चय समझिये कि शान्ति एवं सुख के नये वातावरण की सुन्दर रचना की जा सकती है। क्योंकि आज की सामाजिक व राजनीतिक अवस्था का मूल ही यह है कि दूसरों के दुःखों पर कुछ लोगों के सुखों का संसार बसाया जाता है, जिसका आखिरी परिणाम सबके दुःख के सिवाय कुछ नहीं निकलता।

ऐसी ही कुछ स्थिति आज विभिन्न राष्ट्रों के बीच भी बनी हुई दिखाई देती है। जो शक्तिशाली राष्ट्र हैं, वे किसी भी तरह कमजोर राष्ट्रों को अपने कब्जे में करना चाहते हैं।

वर्तमान राष्ट्र अगर दुःखवाद के इस रहस्य को समझ जावें और उनके शासक अपनी नीतियों सहृदयता व ईमानदारी बरतने लगें तो कोई कारण नहीं कि युद्धों को न रोका जा सके तथा विश्वशांति की बुनियाद मजबूत न बनाई जा सके।

❖ ❖ ❖

अनमोल मानव-जीवन

यही वह जीवन है, जहां संसार के गतिचक्र में भटकती हुई आत्मा अपने उत्थान के लिए संघर्ष कर सकती है और विकारों को काट कर चरम विकास को भी प्राप्त कर सकती है। चूंकि विकास का विवेक और प्रयासों की सफलता इस जीवन में चोटी तक पहुंच सकते हैं, मानव-जीवन की यह सबसे बड़ी विशिष्टता है; इसलिए यह दुर्लभ है कि जहां मनुष्य को अपनी प्रगति-दिशा का संकेत मिलता है, अन्तिम विकास तक को पा लेने की शक्ति मिलती है।

व्यक्ति का त्याग समाज में फैलता है, उसके वैभव का विकेन्द्रीकरण होता है, विषमता घटती है और ऐसी स्थिति सामाजिक न्याय एवम् धार्मिक भावना को प्रोत्साहन देती है। समाज में उस त्याग के आधार पर एक नया वातावरण भी फैलता है।

❖ ❖ ❖

सर्वदु:खों की औषधि

मनुष्य को चाहिए कि वह अपनी आत्म-शक्ति को ही प्रज्वलित करे, अपने-आप को अधिकाधिक शिथिल न बनाता जावे, क्योंकि आत्मा ही आत्मा की बन्धु और आत्मा ही आत्मा की शत्रु है अर्थात् अपने उत्थान-पतन का कारण अपनी ही आत्मा है। यह सन्देश आज कितनी प्रेरणा देता हुआ प्रतीत होता है। जब हम आत्म-शक्ति की आलोचना और दृढ़ता पर डट जाते हैं, तब हमारे अन्दर एक विशेष प्रकार का तेज उद्भूत होता है और उस तेज के समक्ष अन्याय की बुनियाद पर टिकी हुई दुनिया की कोई शक्ति ठहर नहीं सकती।

अतः शोषण-विरोध के किन्हीं साधनों का आश्रय लेने से पहिले यह सोच लिया जाय कि शोषण का मूल कारण शोषितों की मरी हुई आत्माएं हैं और जब तक उनमें जीवन नहीं डाला जायगा, शोषण का स्थायी अन्त कदापि नहीं हो सकता। यदि हिंसात्मक साधनों या अन्य ऐसे ही हीन व अशुद्ध साधनों से शोषण को समाप्त करने की चेष्टा की गई, तो हानि के अतिरिक्त उससे कुछ भी प्राप्त नहीं होगा, क्योंकि यह खतरेभरा रास्ता है और माना कि इसमें एक बार सफलता मिल गई, फिर भी शोषण किसी-न-किसी दूसरे रूप में आकर अपना वैसा ही आधिपत्य जमा लेगा।

अभिप्राय यह है कि आज इस भौतिकवादी सड़ांध से ऊपर उठने की नितान्त आवश्यकता है, जिसके आधार पर महान् विग्रह मचे हुए हैं और यह समझने की जरूरत है कि हमारी स्वयं की आत्मा प्रकाशमान है और आनंद का मधुर स्रोत है। बाहरी जो सुख हैं, वे केवल हमारी आत्ममूर्च्छा को ही बढ़ाते हैं और हमें पतन की राह पर ढकेलते हैं। वास्तविक आनन्द तो इन्द्रियों के क्षेत्र से परे रहता है। आनन्द करने वाली तथा विशेष जिज्ञासु होने के कारण ज्ञानप्राप्ति में आनन्द लेने वाली आत्मा है और उस का आनन्द समय और वस्तु के प्रभाव से रहित है। जब आत्मा इसी आनन्द की शोध में तल्लीन होती है, तभी सच्ची शान्ति का अनुभव कर सकती है।

❖ ❖ ❖

यदि इसको समझ लें !

संसार में सुख की अविरल धारा प्रवाहित करने के लिए यह ध्रुव मार्ग है कि अगर तुम्हें दुःख नहीं चाहिए तो अपनी ओर से भी किसी को दुःख न दो, किन्तु सुख दो।

इस विचारणा को अगर गम्भीरतापूर्वक समझने की चेष्टा की जाय तो आत्म-स्वरूप के समीप पहुंचा जा सकता है। उस समय ऐसी अनुभूति होगी कि अपने दुःखों के लिए दूसरों को दोष देना व्यर्थ है। अगर हम ही अपनी प्रवृत्तियों को सीमित व वृत्तियों को संयमित रखे, अर्थात् अपनी ही आत्मा को निकट से समझें व कर्तव्यपथ पर चलावें तो दुःखों की सृष्टि ही नहीं होगी, बल्कि निजत्व का विसर्जन कर देने से स्वर्गिक भावों के साथ अमिट सुख का अनुभव होने लगेगा।

वैसे सामने में यह सिद्धान्त बड़ा सरल प्रतीत होता है कि दुःख न दो, दुख नहीं होगे, किन्तु अगर आज के अशांत व हिंसात्रस्त विश्व में व्यक्ति व राष्ट्र सही तौर पर इसे आचरण में लाना प्रारम्भ कर दें, तो निश्चय समझिये कि शान्ति एवं सुख के नये वातावरण की सुन्दर रचना की जा सकती है। क्योंकि आज की सामाजिक व राजनीतिक अवस्था का मूल ही यह है कि दूसरों के दुःखों पर कुछ लोगों के सुखों का संसार बसाया जाता है, जिसका आखिरी परिणाम सबके दुःख के सिवाय कुछ नहीं निकलता।

ऐसी ही कुछ स्थिति आज विभिन्न राष्ट्रों के बीच भी बनी हुई दिखाई देती है। जो शक्तिशाली राष्ट्र हैं, वे किसी भी तरह कमजोर राष्ट्रों को अपने कब्जे में करना चाहते हैं।

वर्तमान राष्ट्र अगर दुःखवाद के इस रहस्य को समझ जावें और उनके शासक अपनी नीतियों सहृदयता व ईमानदारी बरतने लगें तो कोई कारण नहीं कि युद्धों को न रोका जा सके तथा विश्वशांति की बुनियाद मजबूत न बनाई जा सके।

❖ ❖ ❖

अनमोल मानव-जीवन

यही वह जीवन है, जहां संसार के गतिचक्र में भटकती हुई आत्मा अपने उत्थान के लिए संघर्ष कर सकती है और विकारों को काट कर चरम विकास को भी प्राप्त कर सकती है। चूंकि विकास का विवेक और प्रयासों की सफलता इस जीवन में चोटी तक पहुंच सकते हैं, मानव-जीवन की यह सबसे बडी विशिष्टता है; इसलिए यह दुर्लभ है कि जहां मनुष्य को अपनी प्रगति-दिशा का संकेत मिलता है, अन्तिम विकास तक को पा लेने की शक्ति मिलती है।

मानव-जीवन की, भौतिक शक्तियों को पा लेने में विशेषता नहीं है, पाकर उन्हें निस्पृहभाव से त्याग देने में उसकी परम विशेषता रही हुई है। दशवैकालिक सूत्र (अध्याय 2, गाथा 3) में कहा है-

जे य कंते पिए भोए, लद्धे विपिट्ठि कुव्वई।
साहीण चयई भोए, सेदु चाई त्ति वुच्चई।।

अर्थात् जो सुन्दर भोगोपभोग के पदार्थों को प्राप्त करके भी उन्हें आत्मोन्नति हेतु त्याग देता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है। धनसंग्रह जहां दुःख-क्लेश का मूल है, वहां उसी धन का निस्पृह भाव से त्याग करने में महान् आत्मिक आनन्द का निवास है। फिर भी इस शाश्वत सिद्धान्त से विमुख होकर जो क्षणिक सुखाभास के दलदल में अपने-आप को फंसा कर मानव-जीवन को पतित बनाता है, वह त्यागी भर्तृहरि के शब्दों में "तिल की खल को पकाने के लिए अमूल्य रत्नों के पात्र का उपयोग करने वाले, ओक की खेती के लिए कपूर की खेती को नष्ट करने वाले" व्यक्ति की तरह अपने-आप को वज्रमूर्ख ही सिद्ध करता है। इस जीवन में आत्मोत्थान के सभी संयोग उपलब्ध होने पर भी उनकी ओर ध्यान न देकर धन-लिप्सा व मिथ्या व्यामोहों में फंस जाना अपनी ही आत्मा के साथ भीषण विश्वासघात करना और मानव-जीवन की अनुपम विशिष्टता को व्यर्थ ही में खो देना है।

आज का संसार, जो केवल भौतिक पदार्थों की प्राप्ति में ही सुख के अस्तित्व और मानव-जीवन की सफलता मानता है, वह अवश्य ही मिथ्या भ्रमणा में है और इस तरह मानव-जीवन की यथार्थ महत्ता नष्ट हो रही है। मानव-जीवन और जगत् का विशाल धरातल मानव को सच्चे सुख की अनुभूति उसी समय करा सकेंगे, जब धर्म के मर्म को समझ कर जीवन की दिशा विशुद्ध धर्माचरण की ओर मोड़ी जायगी।

❖ ❖ ❖

समझ लो ! परख लो !!

विवेकशील व्यक्ति सुख और दुःख, दोनों, में तटस्थ वृत्ति रखते हैं। वे जानते हैं कि शुभ कर्मों के उदय से सुख और अशुभ कर्मों के उदय से दुःख प्राप्त होता है तथा कर्म-बंधन का कारण उसकी ही निज की आत्मा है, अतः निज के किये हुए कर्मों का फल शांत भाव से ही सहन करना चाहिए। यह विचारणा ही मनुष्य के जीवन को संतुलित बनाये रख सकती है, अन्यथा जीवन अत्यंत ही विशृंखल व विषम अवस्था वाला हो जाएगा।

सुख और दुःख का अनुभव विशेष रूप से मनुष्य के हृदय-निर्माण पर निर्भर करता है। दु.ख में, मनुष्य यदि सही रूप में सोचे तो, विशेष ज्ञान प्राप्त कर लेता है। किसी कवि ने कहा भी है -

दुःख है ज्ञान की खान......मानव।

शांत बुद्धि और दृढ भावना के आधार पर दुःख से नई-नई शिक्षाएं मिलती हैं और यहां तक कि वे शिक्षाएं इतनी अमिट रूप से अंकित हो जाती हैं कि भावी जीवन के विकास-हित वे वरदान-रूप सिद्ध होती हैं। अधिकांशतः सुख और दुःख की अनुभूतियां चित्त के विशिष्ट मनोभावों के कारण ही होती हैं। एक ही स्थिति व वस्तु में सुख व दुःख का अनुभव किया जा सकता है। यह तो अनुभव करने वाले पर निर्भर है कि वह चित्त को किस प्रकार से संतुलित रखता है।

इस सिलसिले में आधारभूत सिद्धान्त यह है कि सुख और दुःख की काल्पनिक अनुभूति के परे ही आत्मानन्द का निवास है एवं जब आत्मानन्द का संचार होता है तभी पूर्ण स्वतन्त्रता की मंजिल का चमकता हुआ सिरा दिखाई देता है।

बंधुओ ! इसी प्रकाश को पाने के लिए हमें सुख और दुःख के वास्तविक रहस्य को समझ कर अपने जीवन-पथ का निर्माण करना चाहिए।

❖ ❖ ❖

भले ही देर हो, किन्तु.....

झूठ सदा डरने वाला होता है, क्योंकि रहस्य खुल जाने के भय की तलवार हमेशा उसके सिर पर लटका करती है। झूठ की हमेशा रक्षा करते रहने के लिए मनुष्य कुटिलता का सहारा लेता है और उसके सहारे से वह धोखेबाजी और विश्वासघात में सफल बनता देखा जा सकता है।

परन्तु इस सारी परिस्थिति के साथ यह नग्न सत्य भी मजबूती से जुड़ा हुआ है कि असत्य, अधर्म का भंडा फूटता है। लाख तौर-तरीकों से छिपाई हुई बात भी एक दिन बिना प्रगट हुए नहीं रहती दिखाई देती है। यह अवश्य है कि इस कुटिलता में जो कुशल हुआ तो उस छिपावट की मियाद भले ही बढ जाती है, लेकिन मियाद तो मियाद ही ठहरी, एक दिन तो खत्म हो जाने वाली है।

इस स्पष्टीकरण के पश्चात् भी कोई यह शंका व्यक्त कर सकता है कि माना, बुराई छिपती नहीं और आखिरकार प्रकट होकर ही रहती है, किन्तु प्रत्यक्ष में तो इस दुनिया में *सच्चे आदमी को हर जगह निराश होकर ठोकरें खानी पड़ती हैं।*

ऐसी शंका करने वालों की कठिनाई को समझा जा सकता है। क्योंकि आज विपरीत वृत्तियों की बाढ़ वर्तमान जागतिक वातावरण में कुछ ऐसी आई है कि झूठे और अवसरवादी *बिना कुछ किये अच्छे लाभ (भौतिक) उठा लेते हैं* और सच्चे एवं सेवाभावी व्यक्ति कुटिल प्रपंचों में फंसा दिये जाकर दुःखी बना दिये जाते हैं। परन्तु इस स्थिति के होते हुए भी यह तथ्य हृदय में दृढ़तापूर्वक बिठा दिया जाना चाहिये कि सत्य वह ज्योति है, जो कभी भी, किसी के द्वारा, किसी भी दशा में, किन्हीं भी उपायों से बुझाई नहीं जा सकती। संसार उस प्रकाश के समक्ष नतमस्तक होता हुआ हर युग में देखा गया है।

❖ ❖ ❖

शांति का निवासस्थान

शांति जीवन-विकास के लिए एक प्रमुख आवश्यकता है और जब तक किसी भी प्रकार से हम हमारे हृदय व मस्तिष्क में शांति के संचार का प्रयास नहीं करेंगे, आपत्तियों के तूफान में पड़कर कभी हम आत्मोन्नति की ओर ध्यान दे ही नहीं सकेंगे। सच्ची शान्ति के लिए विकृत मनोविकारों का आवरण हटाना होगा, राग-द्वेष, मोह-माया, तृष्णा-स्वार्थ आदि रागात्मक वृत्तियों का त्याग करके हृदय को अधिकाधिक उदार व विशाल बनाना होगा। जो भी महापुरुष शांति की परम स्थिति को पहुंचे हैं, उनके स्पष्ट अनुभव हैं कि ज्यों-ज्यों मनुष्य निजी स्वार्थों को भूलकर परहित में अपने स्वार्थों को विसर्जित करता चला जाता है, त्यों-त्यों वह शांति की मंजिल के समीप पहुंचता है। इसके साथ ही, अपने ही स्वार्थ में निरत रहने पर जीवनाकाश को अशांति के बादल ही घेरे रहते हैं। इस रहस्य में आत्मा की मूल प्रवृत्ति का प्रदर्शन हमें मिलता है। आत्मा का स्वभाव ऊर्ध्वगामी है और इसलिए ऐसे कार्य संपादित करने मे उसे आनन्द व शांति की प्राप्ति होती है, जो उसको नीचे गिराये रहने वाले भार को हल्का करते हैं। अपने दृष्टिकोण से दूसरों के लिए सोचना - यह संकुचित मनोवृत्ति आत्मा को पतन की राह पर नीचे ढकेलने वाली होती है। चाहे इस दृष्टिकोण में प्रत्यक्ष सुख दिखाई देता हो सकता है, किन्तु वह केवल सुखाभास होगा। दूसरों के दृष्टिकोण से अपने को भी सोचना - यह हृदय की विशालता का लक्षण है और चूंकि इसमें किसी भी प्रकार की विकृति की छाप नहीं होती, आत्मा को आन्तरिक सुख व स्थायी शांति प्रदान करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आन्तरिक स्थायी शांति का निवास स्वार्थ-त्याग तथा आत्म-बलिदान में ही रहा हुआ है।

❖ ❖ ❖

अनिवार्य आवश्यकता

धर्म की दिशा में आगे बढने का सबसे पहला और सबसे ऊंचा साधन है कि अन्तःकरण को निर्मल एवं शुद्ध बनाकर धर्म के लिये समुचित धरातल का निर्माण किया जाय। धर्म की दिशा को समझकर उसके अनुकूल धरातल का निर्माण नहीं करना और धर्माराधना का प्रयास करना, अयोग्यता का सबूत देना है। धर्म की दिशा में आगे बढने से पूर्व यह सोचा जाना परम आवश्यक है कि मैं इस दिशा में बढ़ने की भावना रखता हूं या नहीं।

अन्तःकरण की शुद्धि के लिये मनुष्य को अपने अन्तरतम में झांकना होगा, अपनी आलोचना स्वयं करनी होगी और देखना होगा कि वह अपने विकारों को किस प्रकार नष्ट करके पवित्रता के स्वरूप को पहचान पायगा ? उसे परखना होगा कि उसने धर्म के आह्वान के लिये योग्य भूमिका की रचना कर ली है। इस हेतु उसे अपने हृदय की विशुद्धता के विविध उपायों पर दृष्टिपात करना होगा।

धर्म के धरातल का निर्माण अन्तःकरण की शुद्धि पर आधारित होना चाहिये, जिसके साधन हैं - आत्मलाघवता, विनम्रता, निष्कामवृत्ति आदि। जब तक मनुष्य अपने भीतर सहज विनम्रता व लाघवता का अनुभव नहीं करता, वह स्पष्ट रूप से तब तक अपने दोषों को नहीं पहचान सकता है, आत्म-प्रवंचना उसे भुलावा देती रहेगी। धर्म का मूल स्वरूप हमारे विशुद्ध मूल स्वभाव की मार्मिकता को पाने के लिये दोषरहित हृदय में निष्काम वृत्ति से प्रवेश होना चाहिए। कामनाओं से मुख मोड़ना ही एक तरह से विषमय सांसारिकता को छोडना है और आत्मोत्थान के मार्ग पर आगे बढना है।

इस दृष्टिबिन्दु से जब वर्तमान समाज की परिस्थितियो का अध्ययन किया जाता है, तो ऐसा प्रतीत होता है कि आज के धार्मिक व पुण्य कृत्यों में अधिकतर कीर्तिलिप्सा की दुर्गन्ध है। अपना नाम कमाने के लिए लोग लाखों की सपत्ति भी दे देंगे, चाहे उसका सदुपयोग हो अथवा नहीं। किन्तु जहां सच्ची आवश्यकता है, पर नाम कमाने का सुअवसर नहीं, तो कम ही उदाहरण सामने आते हैं।

❖ ❖ ❖

नवीनता के अनुगामियों से

वास्तविक कल्याणमार्ग की ओर आगे बढ़ने से ही जीवन में नवीनता का उद्भव हो सकता है, क्योंकि जागतिक विकृतियों में फंसकर आत्मा अत्यधिक जीर्ण-सी बन गई है। उसमें नवीनता लाने के लिये शास्त्रीय, सनातन व सत्यरूपी जीवनौषधि की आवश्यकता है। इस अवसर को हाथ से न जाने दें। तो क्या आप इस चेतावनी से सचेत होकर आगे बढ़ने के लिये तैयार हैं ? सांसारिकता में निरंतर डोलते हुए चंचलचित्त को नियंत्रित करके विकास के लक्ष्य की ओर स्थिर करने के लिये क्या उद्यत हैं ? क्योंकि आपकी इस प्रकार की तैयारी ही नवीनता की तरफ गति करने का लक्षण होगी।

प्रचलित परिपाटियों में इधर-उधर से जो विकार आ जाते हैं, उनको हटाने और चेतना जाग्रत करने के लिये मूल स्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते हैं, उन्हें भी नवीनता की संज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों में नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिये कि जो परिवर्तन और एकरूपता को संतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को संतुष्ट करती है और उसे सत्यलक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने में जाग्रत रखती है। ऐसी सच्ची नवीनता है और उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगति-मार्ग को निष्कंटक बनाते हैं।

यदि मनुष्य ने हृदय के अपवित्र विचारों को नहीं छोड़ा, अपने-आप को स्थिर-चित्त बनाकर जीवन के महत्त्व को नहीं समझा और सही कर्तव्याकर्तव्य का भी भान नहीं रखा, तो उसके लिये केवल भौतिकवादी नवीनता निस्सार ही सिद्ध होगी।

नवीनता के अनुगामियों में जीवन-विकास की ऐसी एकनिष्ठा होनी चाहिये कि संसार के कोई भी प्रलोभन उनके लिये अग्राह्य हों।

अतः इस अवसर पर निष्कर्ष रूप में यही कहना चाहता हूं कि आप सच्चे त्यागमय जीवन की जागृति करें, ताकि जीवन को सच्चे अर्थों में सफल बना सकें। व्यावहारिक जीवन और आध्यात्मिक जीवन, दोनों का सम्यक् सन्तुलन और सही अर्थों में समन्वय जीवन में स्थापित कर आत्मीय सर्वांगीण विकास कर सकें। आध्यात्मिक जीवन की आधारशिला शुद्ध व्यावहारिक जीवन पर टिकी हुई है - 'जे कम्मे सूरा ते धम्मे सूरा'। अतः व्यावहारिक जीवन में भी सत्य, नवीनता फूंकना उतना ही आवश्यक है।

❖ ❖ ❖

आत्मदर्शन का साधन

देह और आत्मा का अभेद समझने की मूढ़दृष्टि जब तक विद्यमान रहती है तब तक वहिरात्म दशा वनी रहती है। यह घोर अज्ञान का परिणाम है। सर्वप्रथम आत्मा के पृथक् अस्तित्व को समझना आवश्यक है। अन्तरात्मा बनने के लिये आपको मानना चाहिये कि देह अलग है और मैं अलग हूं। देह के नाश में मेरा नाश नहीं है। देह की दुर्वलता मेरी दुर्वलता नहीं है। देह पुद्गलों का परिणमन है और इस कारण क्षण-क्षण मे परिवर्तनशील है, नाशवान है। मैं अविनाशी हूं, अनन्त हूं, अक्षय हूं, अनन्त आनन्द और चैतन्य का आगार हूं।

अन्तरात्म दशा प्राप्त होने पर जीव के विचार और व्यवहार में बड़ा अन्तर आ जाता है। यह नाशशील दुःख के बीज और आत्मा को मलिन बनाने वाले सांसारिक सुख की अभिलाषा नहीं करता, उसमें आसक्त नहीं होता। अन्तरात्मा - जीव का विवेक जब परिपक्व होता है तो सांसारिक सुख से अरुचि हो जाती है। तब आत्मा अपने ही स्वरूप में रमण करने लगती है। दिव्यज्ञान की प्राप्ति हो जाती है और दिव्यशक्ति प्रकट होने पर जो आनन्द मिलता है, वही ज्ञानानन्द है। इस ज्ञानानन्द में मग्न रहने वाली आत्मा समस्त उपाधियों से विमुख हो जाती है।

उस अवस्था को इन शब्दों में व्यक्त कर सकते हैं - वह परम आत्मा अनन्त सुख से संपन्न, ज्ञानरूपी अमृत का स्रोत, अनन्त शक्ति से समन्वित है, उसमें किसी प्रकार का विकार नहीं है, उसके लिये किसी आधार की आवश्यकता नहीं है, वह समस्त पर-पदार्थों के संसर्ग से रहित है और विशुद्ध चैतन्य-स्वरूपी है।

आत्मा का समर्पण करने से आत्मा की उपलब्धि होती है, उसका स्वरूप अधिकाधिक निर्मल रूप से समझ में आने लगता है।

❖ ❖ ❖

नवीनता और प्राचीनता का भाष्य

प्रचलित परिपाटियों में इधर-उधर से जो विकार आ जाते हैं, उनको हटाने और चेतना जाग्रत करने के लिए मूल स्थिति के रक्षणपूर्वक जो भी विवेकसहित परिवर्तन लाये जाते हैं, उन्हें भी नवीनता की संज्ञा दी जा सकती है। इन अर्थों में नवीनता का यह अभिप्राय होना चाहिए कि जो परिवर्तन और एकरूपता को संतुलित रखती हुई मनुष्य की सही जिज्ञासावृत्ति को संतुष्ट करती है और उसे सत्य लक्ष्य की ओर प्रवृत्त होने मे जाग्रत रखती है, उसके अनुगामी जीवन के सही प्रगतिमार्ग को निष्कंटक बनाते हैं।

जो नियमोपनियम सिद्धान्त को पुष्ट बनाने वाले हों, शुद्ध-संयमी जीवन की उपयोगिता के लिए समाज व व्यक्ति में जीवन का सन्देश फूंकने वाले हों, उन्हें बहुत वर्षों के बने हुए होने पर भी नवीन ही समझना चाहिए। किन्तु विवेक एवं आत्म-ज्योति को भुलाने वाले, नवीनता के नाम पर विकारी भाव व स्वार्थ के पोषक, नैतिक भावहीन, सुन्दर शब्दो में नवीन बने हुए कितने भी नियमोपनियम हों, वे प्राचीन शब्द से कहे जाने चाहिएं। इन शब्दों में समय का मापदंड ठीक नहीं हो सकता, किन्तु संयमी जीवन की उपयोगिता का मुख्य महत्त्व होता है।

इस नवीनता की स्फुरणा सर्वप्रथम व्यक्ति को निज के जीवन के लिए ग्रहण करनी चाहिए और नवीनता के अनुभूत रहस्य को दूसरों पर प्रगट करना चाहिए, तभी नवीनता का पूर्ण प्रभाव व्यापक रूप से प्रसारित हो सकता है।

□□

दो कविताएँ

आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा रचित दो कविताएँ

(1)

जैन और आदर्श कर्तव्य

जैन वह जिसके चरण से आत्मा अविकार. हो।
प्रेम का प्रत्येक प्राणी पर अमर व्यवहार हो।।
जैन के प्रतिकर्म में कल्याण की झंकार हो।
आत्मजय पथ एक चित्त पर पूर्ण चित्रकार हो।।
जैन के मृदु वैन में अति ओज अनुपम प्यार हो।
कठिन अरिजन का हृदय सुन शुद्ध शुभ सुकुमार हो।।
जैन शक्ति और शान्ति का अजय भण्डार हो।
दिव्य जीवन पर जगत् कल्याण का आकार हो।।
हिस्सा गरीबों का अमीरी में जिन्हें स्वीकार हो।
जैन की शक्ति अशक्तों का अमर आधार हो।।
समय के पीछे नहिं समय जिनके लार हो।
जैन के सम्मुख अनीति रूढ़ियों की हार हो।।
आत्मश्रद्धा का विमल रस चित्त में संचार हो।
जैन जीवन दीन दुःखियों पर सदा उपहार हो।।
साधकों को जैन बनना ही सदा स्वीकार हो।
जैन के सच्चरण में नतशीश सब संसार हो।।
'जीवों' जीवस्य रक्षणं' के पाठ का व्यवहार हो।
वीर आदेशानुकूल हमेश देश विहार हो।।

❖ ❖ ❖

(2)

सृष्टि रूप और आत्मबोध

हा ! हा ! हाहाकार !
सकल सृष्टि में युद्ध मचा एक जड़ चेतन साकार।
क्षण में छत्र युक्त हो राणा।
क्षण में तणे सूत का ताणा।।
कभी नरक तिर्यंच कर्मवश, कभी अमर अवतार।
जीवन है जीवन की रेखा।
यह देखा आगम में लेखा।।
स्वप्न तुल्य अवलोकित होगा इस वेला संसार।
फूला है क्या फूल सैलानी।
नहिं रहने की अमर जवानी।।
इन दिन आशा हीन करेगा अंतक मालाकार।
मानव-तन चन्दन-तरु तेरा।
काल व्याल बल से यह घेरा।।
कर दे तू सुन्दर सौरभ से तेरा-सा व्यवहार।
चाहे सुख पंछी उड़ जाना।
जाना जहाँ आजाद ठिकाना।।
करम-रचित दुःखमय सृष्टि का नहिं हैं कारागार।
मोह-चरण मोह-दर्शन हरकर।
बन निर्ग्रन्थ सदा बहि-अंतर।।
अवगत हो इंङ्गित करिये जड़ चेतन भेद विचार।

❖ ❖ ❖

श्रद्धांजली खण्ड

गद्य

श्रद्धांजलियाँ
आचार्य, उपाध्याय, मन्त्री, विद्वान, सन्त,
महासतीरत्नाओं एवं श्रावक समाज
द्वारा समर्पित श्रद्धाञ्जलियों
में से कुछ प्रमुख-प्रमुख गद्य-पद्यमय
श्रद्धाञ्जलि-पुष्पों को यहां दिया जा रहा है
जिनसे ज्ञात होगा कि
श्रद्धेय पूज्यपाद गणेशाचार्य के निर्मल जीवन
की निर्मल झांकी विभिन्न चारित्रात्माओं
तथा
समाजप्रमुखों के हृदय में कैसी थी ?

श्रद्धेय के प्रति जन-जन की श्रद्धांजलि

उदयपुर में उपस्थित जनसमूह ने तो अपने श्रद्धेय के प्रति श्रद्धांजलि समर्पित की ही थी, किन्तु जो अवसर पर उपस्थित नहीं हो सके, उन्होंने अपने-अपने स्थानों पर सभाओं का आयोजन कर सामूहिक रूप में श्रद्धांजलि समर्पित की थी।

श्रद्धांजलि समर्पण करने वालों में साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविकाओं ने व्यक्तिशः तथा श्रीसंघों ने सामूहिक रूप में जो श्रद्धांजलि समर्पित की थीं उनमें से कुछ विशिष्ट श्रद्धांजलियाँ श्रद्धांजलि खण्ड में प्रस्तुत कर रहे हैं। जिनको पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. सा. ने जीवन की महानता-प्राप्ति के लिये प्रयत्नों का श्रीगणेश किया था और प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील रहते हुए महान्-से-महान् होते गये।

उनकी महानता उनके जीवन के आदर्शों में गर्भित है और वे सदैव महान् रहे। आज उनकी महानता हमारे समक्ष है और उसका प्रकाश हम सबको भी महान बनने के लिये प्रेरित करता रहेगा।

पूज्य आचार्यश्री महान् थे, हैं और रहेंगे एवं हम उनके आदर्शों से शिक्षित, अनुशासित हों, महान् बनें, यही हमारा लक्ष्य हो।

उनके संयमी और तपस्वी जीवन के प्रति मैं श्रद्धान्वित हूँ

व्या.वा., पं.रत्न श्री मदनलालजी

मेरे गुरुवर्ग का तथा पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म. की सम्प्रदाय का पुराना सम्बन्ध रहा है। पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज की मुझ पर अनन्य कृपा थी। उपाचार्यश्री गणेशलालजी म. के दर्शन अजमेर सम्मेलन में भी हुए थे। सादड़ी सम्मेलन में मैंने उनका विराट् रूप देखा। सोजत सम्मेलन तथा जोधपुर के संयुक्त चातुर्मास में मुझे उनकी सेवा में खुल कर रहने का मौका मिला। मैंने उन्हें खूब अच्छी तरह देखा और परखा है। साधुता के प्रति उनकी पूर्ण आस्था थी। वे साधु संस्था में संयमपूर्वक सुव्यवस्था लाना चाहते थे। उन्होंने बड़ी उदारता तथा अनासक्त भाव से हमें मार्गदर्शन दिया। उनकी दृष्टि किसी के लिए अहितकर नहीं थी। श्रमण संघ में रहते हुए सरलता, निष्पक्षता तथा तटस्थ भाव से उन्होने जो किया, मैंने उसे ठीक समझा है, बेशक बहुमत के लिए वह गलत हो। उनके जिस तरीके को लोग दृढ़वादिता और गतिरोधकता कहते हैं, मैं उसमें उनकी सत्य-निष्ठा और सिद्धांत-निष्ठा देखता हूं। श्रमण संघ की ओर से उन्हें अधिकतर विरोध और अनास्था ही मिली। इस पर भी वे सन्तुष्ट थे और यही उनकी महानता थी। उनके संयमी और तपस्वी जीवन के प्रति मैं श्रद्धान्वित हूँ।

विशुद्ध चरित्र पर उनका विशेष ध्यान था

आचार्यश्री आनन्दऋषिजी

अंगीकृत संयमरत्न को ज्ञान के सहयोग से परितः प्रकाशित करने वाले आचार्यश्री गणेशलालजी म. का नाम स्थानकवासी परम्परा के सन्तों में प्रथम श्रेणी में था। पंजाबकेशरी पूज्यश्री काशीरामजी म. और श्रद्धेय पूज्यश्री जवाहरलालजी म. प्रभृति प्रख्यात आचार्यों ने संगठन की आवश्यकता का विशेष अनुभव कर इसके लिए अपनी आवाज सारे समाज में

बुलन्द की थी। उस आवाज को जिन लोगों ने सुना, उनमें आचार्यश्री गणेशलालजी म. भी एक अग्रगण्य सन्त थे।

सादड़ी के बृहत्साधु-सम्मेलन को यशस्वी बानने वाले नेताओं में पूज्यश्रीजी का नाम विशेष उल्लेखनीय था। समाज का अंत.करण विकसित हो उठा जब आचार्य और उपाचार्य पद पर पूज्यश्री आत्मारामजी म. और पूज्यश्री गणेशलालजी म. ने आसीन होकर स्थानकवासी समाज के नवीन इतिहास का प्रारम्भ करते हुए सकल साधु समाज के समक्ष एक आदर्श उपस्थित कर दिया।

कहना होगा कि सादड़ी साधु-सम्मेलन से श्रमणगण के एकत्रित होकर युग की मांग की पूर्ति का प्रथम सोपान बना। वह अवसर अपूर्व रहा और वह घटना स्वर्णिम अक्षरों में अंकित करने योग्य बनी। इस सफलता पर बड़ी-बड़ी खुशियाँ मनाई गईं। संघ को अपने भविष्य की उज्ज्वलता का विश्वास हो गया। परन्तु समय परवर्तनशील है। बहुत ही थोडे समय में घटना कुछ और बनी। जिसके परिणामस्वरूप उपाचार्यश्रीजी श्रमण संघ से पृथक् हो गये और उनका मन उदासीन हो गया। इस प्रसंग पर उदासीनता के कारणों की समीक्षा असंगत होगी, इसलिए उसकी चर्चा न करते हुए हम श्रद्धेय उपाचार्यश्रीजी के सद्गुणों पर ध्यान दें, जिनके कारण वे सकल संघ के श्रद्धास्पद बने रहे।

पूज्यश्री गणेशलालजी म. के संपर्क में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को उनकी वैयक्तिक विशेषता अनुभव में आती रहती थी, आत्मा सरल थी, व्यवहार सुस्पष्ट था, विशुद्ध चरित्र पर उनका विशेष ध्यान था। इन विशिष्ट गुणों के कारण ही वे सबके लिए आदरणीय थे।

शरीर दुर्बल हो जाने पर भी आत्मबल और मनोबल के सहारे वे उस दुर्बलता पर काफी समय तक विजय प्राप्त करते रहे। आखिर पौद्गलिक पदार्थ कहां तक टिक सकता था ? वे आज समाज में नहीं रहे, पर समाज आज भी उनके सद्गुणों का मानसिक अनुभव करता है और चिरकाल तक वे स्मृति-पथ में बने रहेंगे।

व्यक्तिगत मेरे ऊपर उनकी बड़ी कृपा थी, यों श्रमण संघ के प्रधानमंत्री पद पर रहने के कारण मेरा उनसे विशेष सम्पर्क था, पर उससे पहले भी हम दोनों एक-दूसरे को समीप से पहचानते थे।

अन्ततः मैं उस श्रद्धेय आत्मा को अपनी श्रद्धांजलि समर्पित करते हुए यह भावना रख रहा हूँ कि आपश्री के सुयोग्य शिष्य वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म. श्रमण संघ संस्थापन के पवित्र उद्देश्य को अपने सामने रखकर उसके गठन को सुदृढ़ बनाने में अपना योग प्रदान करेंगे। वह दिन समाज के लिए धन्यता का होगा, जब कि आपश्री सादड़ी की भूमिका पर आरूढ़ होंगे। बीच के समय के लिए भी मेरा सुझाव है कि भले ही तरीके दो हो गये हों, पर

आचार-प्रचार में हम अपने मूल उदगम ध्यान में रखें। प्रवाह पृथक् होकर भी पुनः एकत्र संगम हो जाने के पश्चात् जैसे नदी का नाम एक ही रह जाता हो, वैसे ही संयोग या भवितव्यतावश जितने दिन पृथकता के हों, उनमें विभिन्नता बढ़ाने का प्रयत्न किसी ओर से न हो, किन्तु भावात्मक एकता पर ही बल दिया जाय।

पूज्यश्री ज्योतिर्धर महापुरुष थे

उपाध्याय पण्डितरत्न श्री हस्तीमलजी म.सा.

श्रद्धेय पूज्यपाद श्री गणेशलालजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है, इस समाचार से उपाध्यायश्रीजी व श्रीसंघ को हार्दिक खेद हुआ और सब सन्तों ने निर्वाण कायोत्सर्ग किया। स्व. पूज्यश्रीजी स्थानकवासी जैन साधु समाज के एक ज्योतिर्धर महापुरुष थे। आपके स्वर्गवास से उपाध्यायश्रीजी साधु समाज में एक महती क्षति का अनुभव करते हैं और हार्दिक कामना करते हैं कि स्व. महापुरुष अपनी दीर्घकालीन साधना के सुफलस्वरूप चिरशान्ति प्राप्त करेंगे। आपके उत्तराधिकारी पू. श्री नानालालजी म. सा. के प्रति उपाध्यायश्रीजी ने हार्दिक सहानुभूति प्रकट करते हुए यह आशा व्यक्त की है कि वे अब श्रमण संघ में अपनी सेवा देकर शासन के गौरव को बढ़ाने में हाथ बटावें। उपाध्यायश्रीजी एक समाचारी के निर्माण में उनको पूर्ण सहकार देने की भावना रखते हैं। आशा है कि पू. श्री नानालालजी म. सा., स्व. पू. श्री जवाहरलालजी म. सा. की हार्दिक कामना को पूर्ण करने में सक्रिय कदम बढ़ायेंगे।

पूज्यश्री वस्तुतः शत-प्रतिशत् पूज्यश्री ही थे

उपाध्याय कविश्री अमरचन्दजी म.सा.

स्व. पूज्यश्री वस्तुतः शत-प्रतिशत पूज्यश्री ही थे। उनका व्यक्तित्व महान् था, साथ ही सरल, उदार और धर्मप्राण भी। जिन-शासन के प्रति उनकी सेवाएं जैन संघ के इतिहास में चिरस्मरणीय रहेंगी। वर्धमान स्थानकवासी जैन श्रमण संघ के नवनिर्माण और पुनर्गठन में

उनके योगदान का मूल्य भले ही कोई भूल जाय, परन्तु मैं तो कभी भूल नहीं सकता। यह ठीक है कि इधर मतभेद की खाई चौड़ी हो गई थी, इतनी चौडी कि उनके उपाचार्य पद पर अन्त तक बने रहने का सौभाग्य एवं गौरव श्रमण संघ न पा सका। भूल कहाँ थी, किस ओर से थी और क्या थी, उक्त विवेचन का यह प्रसंग नहीं है और न इससे कुछ लाभ ही है। काश ! उनका वरद हस्त वही पहले जैसी मूल भावना के अनुसार श्रमण संघ पर बना रहता तो आज श्रमण संघ क्या से क्या होता।

खैर, कुछ भी हुआ हो, और जनमानस ने उन्हें कुछ भी समझा हो, पूज्यश्री का निर्मल प्रेम, अपने प्रति तो परिचय के प्रारम्भ से ही कुछ ऐसा रहा है कि उनकी मधुर स्मृति आज भी हृदय के कोने-कोने को गद्‌गद किये दे रही है।

राजगृह के गत वर्षावास में कितनी ही बार संकल्प हुआ कि "पूर्वी भारत की विहार यात्रा से लौटकर पूज्यश्री के दर्शन करूँ। यदि हो सके तो मतभेदों का परिमार्जन कर श्रमण संघ के लिए पूज्यश्री का पवित्र आशीर्वाद पुनः प्राप्त करूँ।" और जब-जब किसी परिचित से इस सम्बंध में वार्ता हुई तो वह भी यही कहता था कि "अवश्य ही आप सेवा में गए तो सफल होंगे" और अपना मन भी यही सब-कुछ सोचे हुए था। परन्तु विधि का विधान विचित्र है, अतर्क्य है।

कालचक्र की गतिविधि विलक्षण है, कल्पना से परे है।

यच्चिन्तितं तदिह दूरतरं प्रयाति,
यच्चेतसा न गणित तदिहाभ्युपैति।

पूज्यश्री का महाप्रयाण जैन संघ की वह क्षति है जिसकी निकट भविष्य में तो क्या, सुदूर भविष्य में भी पूर्ति न हो सकेगी। इस प्रकार की दिव्य विभूति एक बार गयी, सो गयी, दुबारा कहां मिलने को है ? श्रद्धेय आचार्यश्री गए, युग की महाविभूति गयी और अब उपाचार्यश्री !

क्षते प्रहारा निपतन्त्यभीक्ष्णम्

स्वर्गीय पूज्यश्री के स्नेहमूर्ति शिष्यमण्डल से, विशेषतः उनके योग्य वरिष्ठ उत्तराधिकारी पं. मुनिश्री नानालालजी से इस दुखद प्रसंग पर मेरी हार्दिक समवेदना एवम् सहानुभूति निवेदन की जाए। आशा ही नहीं, दृढ़ विश्वास है और शासनेश से अभ्यर्थना भी है कि वे सत्साहस के साथ इस मर्मान्तक चोट को सहन करेंगे, पूज्यश्री के निर्मल गौरव को सर्वतोभावेन अक्षुण्ण रखेंगे तथा वर्तमान समयचक्र की गति-स्थिति पर तटस्थ भाव से पुनर्विचारणा करके, श्रमण संघ को वही पहले सा एकात्म-भावरूप सहयोग प्रदान करेगें। हमारे हृदय के मंगल द्वार उनका सम्मानपूर्ण स्वागत करने के लिए सदा खुले हैं।

जैन समाज की अमूल्य निधि

बहुश्रुत पंडितरत्न श्री समर्थमलजी म. सा.

पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा., जिनके कि बहुत-से भाई-बहिनों ने दर्शन किए हैं, समाज की चमकती विभूति थे। आप संयमप्रिय थे। म.सा. की सेवा का लाभ मुझे सर्वप्रथम खींचन में मिला था। उसके बाद कई जगह सेवा का लाभ मिलता रहा। आप विद्वान होते हुए भी सरल थे। आपकी वाणी में मधुरता थी। जैन समाज की अमूल्य निधि थे। आपने 16 वर्षीय अवस्था में दीक्षा ली और कुछ वर्ष कम 60 वर्षपर्यंत चारित्रपर्याय का पालन किया। आपने पूज्यश्री श्रीलालजी म.सा. और जवाहराचार्यजी म.सा. की भी सेवा की। विशेषतः जवाहराचार्यजी म.सा. की सेवा की। आपने संस्कृत, प्राकृत, न्यायादि का ज्ञानाभ्यास भी खूब किया। आपको सर्वप्रकारेण योग्य समझ कर पूज्य जवाहराचार्यजी म.सा. ने युवाचार्य पद दिया। संघ में आपका बहुत मान था। आपके वचन में मृदुता थी। जैन, अजैन आदि आपकी अमृतमय वाणी को सुनकर प्रसन्न होकर जाते थे। समग्र जैन समाज में आपकी यहां तक जहोजलाली थी कि सादडी में आपको स्थानकवासी साधुओं ने मिलकर आचार्य पद से सुशोभित किया। आप इस पद को लेना नहीं चाहते थे; किन्तु संघ-सेवा के हेतु इस पद को भी स्वीकार किया। इस पद का यथावत् पालन करते हेतु भी कई बाधाएँ आईं। उन सब बाधाओं को सहन करते हुए आगे बढ़े, किंतु जब उन्नति में कई रोड़े आने लगे तो धैर्य एवम् निडरता के साथ उस संघ से अपनी आत्मा को पृथक् कर दिया। त्यागपत्र से समाज को दुख हुआ और पुनः सम्मिलित करने का भरसक प्रयत्न किया गया, किन्तु आपने फरमाया कि शिथिलाचारादि प्रवृत्तियों को छोड़ देंगे तो मैं आपके साथ ही हूँ। आपकी निन्दा एवम् छींटाकशी भी खूब की, परन्तु आप शान्तिपूर्वक सहन करते रहे।

कुछ अरसे से आप बीमार थे। तो स्वतः यह प्रश्न होता है कि महापुरुषों को बीमारी क्यों आती है ? इसका उत्तर यह है कि कर्मों को भोगते हुए भी जो कर्म शेष रह जाते हैं, उसका यह कारण है। इस (बीमारी) ने तो श्रीलालजी म.सा. और जवाहराचार्यजी म.सा. को भी सताया था। अभी जो करनी की है, वह अपवर्ग के लिए ही की है।

आपके असह्य वेदना थी। यह नश्वर देह है, वह तो कभी-न-कभी छूटने वाली है- यह जानकर आपने धैर्यता, आनन्द के साथ आलोचना करके चतुर्विध संघ से क्षमायाचना करके

सावधानीपूर्वक दस बजकर बीस मिनट पर संथारा ग्रहण किया। लगभग दस पहर का संथारा आया और दूसरे दिन तीन बजकर तीस मिनट पर संथारा सीझा।

जो महापुरुष होते हैं वे पापों से अपनी आत्मा को हटाकर महाव्रतों को शुद्ध करके, पाण्डितमरण को प्राप्त करते हैं। हमारा भी यही कर्तव्य है कि धर्म की आराधना करके समाधिमरण को पावें।

संघ के लिए यह सन्तोष का विषय है कि पूज्यश्री ने अपनी मौजूदगी में ही, अपने ही हाथों अपना उत्तराधिकार सौंप कर युवाचार्य की चादर ओढा दी। पंडितरत्न श्री नानालालजी म.सा. सब प्रकार से इस पद के योग्य हैं। मैं आशा करता हूँ कि वे इस उत्तरदायित्व को योग्यतापूर्वक निभावेंगे।

दिवंगत आत्मा सरल एवं उच्चकोटि की थी

प्रान्तमन्त्री मुनिश्री पन्नालालजी म.सा.

विशेष समाचार यह है कि शुक्रवार की रात्रि के 7 बजे रेडियो से दुखद समाचार मिला कि श्रद्धेय पं. प्रवर श्रमण संघ के भूतपूर्व उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया है। यह सम्वाद गुरुदेवश्री के पास पहुँचते ही गुरुदेवश्री ने निर्वाण काउसग्ग कर दिवंगत आत्मा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए फरमाया कि--

स्थानकवासी समाज का यह दुर्भाग्य है कि उच्च कोटि की आत्माएं आंखों से ओझल होती जा रही हैं। समाज अभी तो गत वर्ष दिवंगत आचार्यश्री के वियोग को विस्मृत नहीं कर पाया कि यह नूतन वियोग सहने का प्रसंग समुपस्थित हो गया।

दिवंगत आत्मा सरल एवम् उच्च कोटि की थी। श्रद्धेयश्री से मुझे साक्षात्कार करने का प्रसंग श्रमण संघ के उपाचार्यश्री के रूप में विशेष रूप से मिला है। प्रत्येक प्रसंग पर श्रद्धेयश्री मेरे से विचार-विनिमय किया करते थे एवम् पारस्परिक विचारणा का तत्त्व समाजहित के लिए मार्गदर्शन बनता था। विधि कहिए या समाज की भावी ही ऐसी मानिए, जो कुछ समय से श्रद्धेयश्री का श्रमण संघ से मतभेद बना। फिर भी मुझे तो आगन्तुकों के साथ श्रद्धेयश्री की ओर से सौहार्दपूर्ण सम्वाद मिलते रहे हैं। ऐसे उच्च आत्मा के स्वर्गारोहण से स्थानकवासी समाज को जो क्षति पहुँची है, वह निकट भविष्य में पूर्ण नहीं हो सकेगी।

पूज्यश्री शुद्धाचार-समर्थक, सुसंयमी संतरत्न थे

शास्त्रज्ञ पं. रत्न श्री अम्बालालजी म.सा.

दिवंगत आत्मा के जीवन पर प्रकाश डालते हुए गुरुदेवश्री ने फरमाया कि स्वर्गीय पूज्यश्रीजी शुद्धाधार सर्मथक, सुसंयमी संतरत्न थे, साथ ही शास्त्रज्ञ तथा प्रखर वक्ता थे। आपश्री के स्वर्गवास से समाज में बड़ी क्षति हुई, लेकिन क्या किया जावे, कराल काल के सामने कौन, क्या कर सकता है ! किसी के वस की वात नहीं।

पूज्यश्रीजी की जिन सन्तों ने तन, मन से जो सेवा की, उन्हें कोटिशः धन्यवाद है। स्वर्गीय पूज्यश्रीजी के आदर्श गुण उनका शिष्य परिवार अपने भौतिक जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नशील हो। ऐसे ही चतुर्विध संघ भी उनके सदगुणों को ध्यान में रखते हुए अपने जीवन को उन्नत वनाने की कोशिश करे।

उनके चले जाने से मैं अपने-आप को बेचैन-सा अनुभव करता हूँ

पं. रत्न मुनिश्री सुशीलकुमारजी म.सा.

परमश्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. के निधन से एक ऐसी क्षति हुई है जिसकी पूर्ति हम और हमारा निकट भविष्य नहीं कर सकेगा। उनका शुभ जीवन और उदात्त विचार हमारे लिए सदा से प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उनके चले जाने से मालूम नहीं क्यों, मैं अपने-आप को अकेला और असहाय-सा अनुभव करता हूँ। मुझे उनके प्रति एक स्वाभाविक अनुराग था। मैं नहीं कह सकता हूँ कि ठीक-ठीक इसका कारण क्या है ? हालांकि मैं कठोर क्रिया की प्रतिस्पर्धा करने वाले संतों और स्वच्छंद सुधारवादियों के सदा विरुद्ध रहा हूँ। मेरा प्रारम्भ से निश्चय रहा है कि साधु का लक्ष्य आत्मा का सतत जागरण करते हुए निरन्तर आत्म-साक्षात्कार की भावना को प्रबल बनाना है और उसके लिए नैसर्गिक जीवन में स्वभावतया संयम और निष्ठापूर्वक विवेक तथा गहरी आत्म-श्रद्धा की अपेक्षा रहती है। यह भी मेरे लिए एक आकर्षण का केन्द्रविन्दु रहा है कि मैंने परमपूज्य महाराजश्रीजी के जीवन में पवित्र अन्तःकरण की जो झांकी देखी वह मुझे अन्यत्र नहीं मिल सकी।

आज जिन दो-तीन संतों ने मेरे मन और आत्मा को अपने जीवन की महत्ता और वात्सल्य से अभिभूत किया है उनमें महाराजश्रीजी सबसे प्रमुख थे। उनके चले जाने से मैं अपने-आप को बेचैन-सा अनुभव करता हूँ तो भी अपने जीवन में जो-कुछ हमें वो दे गये हैं वो हमारे विचारों की शुद्धि और आचरण की पवित्रता के लिए प्रकाशस्तम्भ की तरह है। दुर्भाग्य से हम वो सब-कुछ भूल गये तो हमारे हाथ में कुछ नहीं रहेगा।

कष्ट की अथाह अनुभूतियों में और वेदना के गहरे सागर में चमक की किरण, जो उनके चहेरे पर आभान्वित होती थी और कैंसर जैसे दुर्दान्त, भयंकर रोग की असह्य पीड़ा होते हुए भी जो विलक्षण श्रद्धा और अप्रतिम तेज उनके चेहरे पर चमकता रहा था, वह उनके समग्र जीवन की परम पवित्रता का दिव्य प्रमाण है और हमारे लिए वो आदर्श है।

उनकी याद में हम उनके आदर्श और विश्वासों को साकार कर सकें, यही हमारी भावभरी श्रद्धांजली है।

स्मृतिपुरुष

पं. रत्न श्री श्रीमलजी म.सा.

परम श्रद्धेय पूज्यश्री गणेशलालजी म. का तपःपूत शरीर, वह क्षणभंगुर मानव-काया, हमारे बीच में नहीं है, जिसकी छत्रछाया में लगातार गत 40 वर्षों से मैं निश्चित था, फिर भी वे हृदय में देव-दुर्लभ अमरत्व के रूप में महान आदर और श्रद्धा के साथ आसीन हैं।

उनके अस्तित्व की अनुभूति अभी भी प्रतिपल हो रही है।

कल की-सी बात है। मैं बारह वर्ष का अबोध बालक था। निपट देहाती। साधु-संगति के पुण्य प्रताप ने मुझे युगप्रभावक आचार्य जवाहर के चरणों में पहुँचा दिया। उस समय मुनिश्री गणेशलालजी म. गुरुदेव के शिष्यों में सर्वप्रिय थे।

वसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं,
पियंकरे पियंवाई सो सिक्खं लद्धुमरिहई।

इसके मूर्त रूप थे। इसलिए मेरी शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व उन्हीं पर आया। उन्होंने बहुत ही लाड़-प्यार से मुझे संयम-साधना की समस्त प्रक्रिया समझाई। मैं कैसे चलूँ, उठूँ, बैठूँ,

पूज्यश्री शुद्धाचार-समर्थक, सुसंयमी संतरत्न थे

शास्त्रज्ञ पं. रत्न श्री अम्बालालजी म.सा.

दिवंगत आत्मा के जीवन पर प्रकाश डालते हुए गुरुदेवश्री ने फरमाया कि स्वर्गीय पूज्यश्रीजी शुद्धाचार सर्मथक, सुसंयमी संतरत्न थे, साथ ही शास्त्रज्ञ तथा प्रखर वक्ता थे। आपश्री के स्वर्गवास से समाज में बड़ी क्षति हुई, लेकिन क्या किया जावे, कराल काल के सामने कौन, क्या कर सकता है ! किसी के बस की बात नहीं।

पूज्यश्रीजी की जिन सन्तों ने तन, मन से जो सेवा की, उन्हें कोटिश: धन्यवाद है। स्वर्गीय पूज्यश्रीजी के आदर्श गुण उनका शिष्य परिवार अपने भौतिक जीवन में उतारने के लिए प्रयत्नशील हो। ऐसे ही चतुर्विध संघ भी उनके सदगुणों को ध्यान में रखते हुए अपने जीवन को उन्नत बनाने की कोशिश करे।

उनके चले जाने से मैं अपने-आप को बेचैन-सा अनुभव करता हूँ

पं. रत्न मुनिश्री सुशीलकुमारजी म.सा.

परमश्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. के निधन से एक ऐसी क्षति हुई है जिसकी पूर्ति हम और हमारा निकट भविष्य नहीं कर सकेगा। उनका शुभ जीवन और उदात्त विचार हमारे लिए सदा से प्रेरणा के स्रोत रहे हैं। उनके चले जाने से मालूम नहीं क्यों, मैं अपने-आप को अकेला और असहाय-सा अनुभव करता हूँ। मुझे उनके प्रति एक स्वाभाविक अनुराग था। मैं नहीं कह सकता हूँ कि ठीक-ठीक इसका कारण क्या है ? हालांकि मैं कठोर क्रिया की प्रतिस्पर्धा करने वाले संतों और स्वच्छंद सुधारवादियों के सदा विरुद्ध रहा हूँ। मेरा प्रारम्भ से निश्चय रहा है कि साधु का लक्ष्य आत्मा का सतत जागरण करते हुए निरन्तर आत्म-साक्षात्कार की भावना को प्रबल बनाना है और उसके लिए नैसर्गिक जीवन में स्वभावतया संयम और निष्ठापूर्वक विवेक तथा गहरी आत्म-श्रद्धा की अपेक्षा रहती है। यह भी मेरे लिए एक आकर्षण का केन्द्रबिन्दु रहा है कि मैंने परमपूज्य महाराजश्रीजी के जीवन में पवित्र अन्तःकरण की जो झांकी देखी वह मुझे अन्यत्र नहीं मिल सकी।

आज जिन दो-तीन संतों ने मेरे मन और आत्मा को अपने जीवन की महत्ता और वात्सल्य से अभिभूत किया है उनमें महाराजश्रीजी सबसे प्रमुख थे। उनके चले जाने से मैं अपने-आप को बेचैन-सा अनुभव करता हूँ तो भी अपने जीवन में जो-कुछ हमें वो दे गये हैं वो हमारे विचारों की शुद्धि और आचरण की पवित्रता के लिए प्रकाशस्तम्भ की तरह है। दुर्भाग्य से हम वो सब-कुछ भूल गये तो हमारे हाथ में कुछ नहीं रहेगा।

कष्ट की अथाह अनुभूतियों में और वेदना के गहरे सागर में चमक की किरण, जो उनके चहेरे पर आमान्वित होती थी और कैंसर जैसे दुर्दान्त, भयंकर रोग की असह्य पीड़ा होते हुए भी जो विलक्षण श्रद्धा और अप्रतिम तेज उनके चेहरे पर चमकता रहा था, वह उनके समग्र जीवन की परम पवित्रता का दिव्य प्रमाण है और हमारे लिए वो आदर्श है।

उनकी याद में हम उनके आदर्श और विश्वासों को साकार कर सकें, यही हमारी भावभरी श्रद्धांजली है।

स्मृतिपुरुष

पं. रत्न श्री श्रीमलजी म.सा.

परम श्रद्धेय पूज्यश्री गणेशलालजी म. का तपःपूत शरीर, वह क्षणभंगुर मानव-काया, हमारे बीच में नहीं है, जिसकी छत्रछाया में लगातार गत 40 वर्षों से मैं निश्चिंत था, फिर भी वे हृदय में देव-दुर्लभ अमरत्व के रूप में महान आदर और श्रद्धा के साथ आसीन हैं।

उनके अस्तित्व की अनुभूति अभी भी प्रतिपल हो रही है।

कल की-सी बात है। मैं बारह वर्ष का अबोध बालक था। निपट देहाती। साधु-संगति के पुण्य प्रताप ने मुझे युगप्रभावक आचार्य जवाहर के चरणों में पहुँचा दिया। उस समय मुनिश्री गणेशलालजी म. गुरुदेव के शिष्यों में सर्वप्रिय थे।

वसे गुरुकुले निच्चं जोगवं उवहाणवं,
पियंकरे पियंवाई सो सिक्खं लद्धुमरिहई।

इसके मूर्त रूप थे। इसलिए मेरी शिक्षा-दीक्षा का उत्तरदायित्व उन्हीं पर आया। उन्होंने बहुत ही लाड़-प्यार से मुझे संयम-साधना की समस्त प्रक्रिया समझाई। मैं कैसे चलूँ, उठूँ, बैठूँ,

बोलूँ, पढ़ूँ यह सब वे विस्तार से समझाते। बालसुलभ चपलता के कारण मुझसे कभी कोई गलती हो जाती थी तो वे पितृतुल्य उसका परिमार्जन कर देते थे।

प्रातःकाल चार बजे मुझे बहुत ही मधुर वाणी से उठाते और स्वाध्याय कराते। बचपन में नींद खूब आती। किन्तु उनकी स्नेहमयी सावधानी के कारण आखिर वह भी डरने लगती। मै अध्ययन करने लगा। व्याकरण जैसे दुरूह विषय भी वे बातों ही बातों में पढ़ा देते थे। बाल-मस्तिष्क पर भार न पड़े और बालक समझ भी जाय, यह कला बहुत कम लोग जानते थे। वे इस विषय में पारंगत शिक्षक थे। शिक्षणकाल में जब-कभी मैं अध्ययन से जी चुराने लगता तो वे मनोवैज्ञानिक की भांति दिल के चोर को पकड़ लेते और मुझमें अखण्ड उत्साह भर देते थे। आज कई युगों के बाद भी जब मैं कभी अध्ययन या स्वाध्याय में प्रमाद करने लगता हूँ तो मुझे वही मोहिनी मुद्रा प्रबुद्ध कर देती है।

गुरुदेव लम्बे-लम्बे विहार भी करते थे। इससे कभी-कभी मैं बहुत थक जाता था। तब पूज्यश्री गणेशलालजी म. ही होते, जो मेरा सारा बोझ स्वयं उठाते और मीठी-मीठी कहानियाँ सुना कर मुझमें मंजिल तक पहुँचने की स्फूर्ति भर देते थे। उनके पास आते ही मेरे पांवों में पंख लग जाते थे।

जलगांव (खानदेश) की बात है। गुरुदेव (जवाहराचार्य) अस्वस्थ हो गये। असाध्य कष्ट ! मरणान्तिक वेदना ! हम सब घबरा गये। तब पूज्यश्री गणेशलालजी म. जिस तत्परता से परिचर्या करते रहे, वह अविस्मरणीय घटना है। वे न कभी दिन में आराम लेते थे और न रात में विश्राम। उनका पल-पल गुरुदेव की सेवा में बीतता था। गुरुभक्ति की अपार निष्ठा को मूर्तिमान देख कर हम सब साधुओं के मस्तक उनके चरणों में झुक जाते।

तपस्वी मुनि श्री मोतीलालजी म. बीमार पड़े। उन्हें शरीर की भी सुध-बुध न रही। दिन में कितनी ही बार उनके वस्त्र अशुचि से भर जाते थे। उस समय पूज्यश्री ने जिस मनोयोगपूर्वक तपस्वीजी म. की सेवा की, उसे कौन भूल सकता है ? अशुचि भावना से ऊपर उठकर सेवा करने वाले नन्दिषेण जैसे सेवा-मूर्ति मुनि के इतिहास को आपने वर्तमान का दर्शन बना दिया था। साधुता सार्थक हो गयी।

थली-प्रदेश ! रेगिस्तानी क्षेत्र !! ग्रीष्म ऋतु !!! हमारे लिए सरदारशहर, चूरू, रतनगढ़ आदि का इलाका बिल्कुल नया-नया था। वहां के लोग हमारे विधि-निषेधों से लगभग अपरिचित थे। जो-कुछ परिचित थे, साम्प्रदायिक मनोवृत्ति के कारण नफरत ही बरसाते थे। न कभी अनुकूल आहार और न अनुकूल व्यवस्था। उस भंयकर गर्मी में जिस सहिष्णुता के साथ पूज्यश्री आने वाले कष्टों को सहन करते थे, उससे हमारी सहनशक्ति को पर्याप्त बल मिलता था। उन सब प्रतिकूलताओं के बीच भी वे सदा मधुर मुसकान बिखेरते रहते थे। उन्हें

दिन में घण्टों तक चर्चाएं करनी पड़ती। कई-कई बार व्याख्यान भी देने पड़ते, किन्तु इससे वे कभी घबराते नहीं थे। वे निष्काम भाव से गांव-गांव जाते। जो भी उनके पास शंका लेके आते, सबका समाधान करते। उनका अविचल स्वभाव हमारे लिए जीवंत प्रेरणा का प्रतीक बना रहा।

पूज्यश्री गणेशलालजी म. का बचपन मेवाड़ में बीता। यौवन में वे मारवाड़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र आदि-आदि प्रदेशों की पदयात्रा करते रहे। वृद्धावस्था में दिल्ली, आगरा, अलवर आदि शहरों में घूमते हुए उन्होंने जैन धर्म के प्रचार का अभूतपूर्व कार्य किया। अन्तिम समय में वे फिर अपनी जन्मभूमि में पहुँच गए। मेवाड़ का शौर्य और भक्ति उनके जीवन के प्रमुख अंग रहे। जो-कोई उनसे एक बार मिला, उसे उनकी मधुरता ने सदा के लिए अपना बना लिया।

पूज्यश्री श्रमण धर्म के सजग साधक थे। उनकी साधना से अनेकों को प्ररेणा मिली। मेरे जीवन पर उनका अनन्त ऋण है। कितना अच्छा होता, यदि मैं अन्तिम समय में उनकी सेवा कर अपने को कृतार्थ कर पाता। उन्हीं की आज्ञा से वृद्ध संतों की सेवा में रहने के कारण मैं अपनी इस भावना को क्रियान्वित नहीं कर सका। वृद्धों की सेवा ही उनकी सेवा है और यह उन्हीं के द्वारा प्रशस्त किया हुआ पंथ है। इसलिए इस मार्ग पर अग्रसर होता हुआ मैं अपने अनंत भाव-भक्तिभरे हृदय से उस स्मृतिपुरुष के प्रति श्रद्धान्वित हूँ।

स्नेहशील सन्त-हृदय

मन्त्रीश्री पुष्करमुनिजी म.सा.

होता स्वजन वियोग न, यदि इस वसुधातल में,
बन जाता तो यही अमरपुर निश्चय पल में

भूतपूर्व उपाचार्य पण्डितप्रवर श्रद्धेयश्री गणेशलालजी म. के सम्बन्ध में लिखना बड़ा ही कठिन है. वे हीरा थे, किन्तु उस मूल्यवान हीरे के चमकदार पहलुओं की व्याख्या से परे थे। उनके स्वर्गवास से स्थानकवासी जैन समाज का ही नहीं, अपितु वसुन्धरा का एक रत्न कम हो गया। मैं उनका हृदय से आदर करता था और आज जब वे स्वर्ग सिधार गये हैं, तो मैं अपने जीवन में एक बहुत बड़े अभाव का अनुभव कर रहा हूँ।

उनके साथ जीवन के बहुत-से मधुर क्षण व्यतीत हुए है। उन मधुर क्षणों की स्मृतियाँ आज इस तरह एकसाथ स्मरण आ रही हैं कि उन्हें सिलसिले में पिरोना मुश्किल हो रहा है।

जहां तक मुझे स्मरण आता है, उनसे प्रथम परिचय अजमेर सम्मेलन के पूर्व ब्यावर में हुआ था। उन दिनों वे जवाहराचार्य के अंतेवासी विद्यार्थी संत थे, उनका न्याय और व्याकरण का अध्ययन चल रहा था। प्रतिभा की तेजस्विता के कारण राजस्थान में काफी प्रख्यात हो चुके थे। मेरी चिरकाल से अभिलाषा थी कि आपसे वार्त्तालाप किया जाय, पर सम्प्रदायवाद के कारण वह अभिलाषा पूर्ण न हो सकी। एक बार अरण्य में प्रसंग भी आया, पर वह भी किन्हीं कारणों से सफल न हो सका।

सन 1949 से 51 तक धर्म-दर्शन, समाज आदि विविध विषयों पर आपसे पत्राचार चला। आपके मौलिक विचारों से परिचय हुआ और जब सादड़ी सन्त सम्मेलन के सुहावने अवसर पर आपके प्रथम दर्शन हुए तब गिर्वाणगिरा के यशस्वी, तेजस्वी कवि की वाणी में निवेदन किया :–

दूरेऽपि श्रुत्वा भवदीय कीर्ति
कर्णौ च तृप्तौ न च चक्षुसि मे।
तयो विवादं परिहर्तु काम,
समागतोऽहं तव दर्शनाय।।

सादड़ी सन्त सम्मेलन में सन्निकट रहने का असर मिला। मैंने उस पुराणपुरुष में पुरानी पीढ़ी की सब खूबियां देखीं। मैंने अनुभव किया कि तन काला है, पर मन उज्ज्वल है, बाल रूखे हैं पर हृदय स्निग्ध है, कपड़े मैले हैं पर मन साफ है, आवाज कड़कती है पर व्यवहार मधुर है।

तन के कण-कण में, मन के अणु-अणु में बालसुलभ सरलता के संदर्शन कर पुराणों का प्रसंग स्मृतिपटल पर चमक उठा। विष्णु के प्रसन्न होने पर सनत्कुमारों ने पांच साल की उम्र मांगी थी और कहा था कि हम लोग हमेशा सरलता के रूप वाले पांच साल के बालक ही बने रहें, वैसे ही आपने भी संभवतः यही वरदान मांगा था। पांच साल के बच्चे की तरह आप भी सरल थे, निष्कपट थे, सरल मति थी, सरल गति, सरल प्रकृति थी, सरल भाषा थी, सभी-कुछ सरल था।

सोजत में मन्त्रिमण्डल की बैठक के पश्चात् अजमेर और उदयपुर में लम्बे समय तक आपश्री की सेवा में रहने का सुअवसर मिला। उन दिनों आपश्री से घण्टों तक सामाजिक विषयों पर बातचीत होती रही।

सन् 1961 में पुनः आपश्री के दर्शनार्थ मैं उदयुपर गया। उस समय आपने उपाचार्य

के पद और श्रमण संघ से त्याग पत्र दे दिया था। मुझे आशा नहीं थी कि पूर्व स्नेह के सन्दर्शन होंगे, पर मुझे देखकर महान् आश्चर्य हुआ कि स्नेह-समुद्र में से वही स्नेह छलक रहा है, जो पूर्व में अनुभव किया था।

मैं उस सन्तपुरुष के श्रीचरणों में भावभीनी श्रद्धांजलि समर्पित करता हुआ शायर की भाषा में कहूँगा :-

मरने वाले मरते हैं, लेकिन फना होते नहीं।
ये हकीकत में कभी हमसे जुदा होते नहीं।।

श्रमण संघ का सर्वस्व अब न रहा

पं. रत्न श्री रामप्रसादजी म.सा.,
(व्या.वा. श्री मदनलालजी म.सा. के सुशिष्य)

खबर मिली है कि उदयपुर में आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. समाधिमरणपूर्वक स्वर्गवासी हो गये हैं। अतः आज उन्हीं के बारे में मुझे कुछ कहना है। आचार्यश्रीजी का जन्म उदयपुर (मेवाड़) के एक ओसवाल घराने में हुआ। इनकी दीक्षा लगभग 16 वर्ष की छोटी उम्र में हुई। ज्ञानाराधना के साथ-साथ सन्त समुदाय की सेवा-भक्ति तथा तपश्चरण में वे तन्मय रहते थे। अजमेर सम्मेलन में उन्हें पूज्यश्री हुकमीचन्दजी म. की सम्प्रदाय का युवाचार्य निर्वाचित किया गया था। बाद में वे अपनी उस सम्प्रदाय के आचार्य बने। श्रमण संघ बनने पर उसका नेतृत्व उन्हे संभालना पडा और उस नेतृत्व से पृथक् होने पर वे फिर पूर्ववत् अपनी सम्प्रदाय के अधिनायक थे।

मुझे उनके चरणों में रहने का विशेष प्रसंग नहीं हुआ है। पर मेरे पूज्य गुरुदेव (व्या. वाच.श्री मदनलालजी म.) का उनके साथ अच्छा-खासा सम्पर्क रहा है। बहुत पुराने समय में हमारी गुरु-परम्परा तथा आचार्यश्रीजी की गुरु-परम्परा परस्पर सन्निकट रही है। परमपूज्य चारित्रचूडामणि श्री मायारामजी महाराज जब मालवा पधारे तब श्रद्धेय पूज्यश्री उदयसागरजी महाराज से उनका सम्मिलन हुआ। दोनों महापुरुषों की उत्कृष्ट आचार-प्रणाली, सुदृढ अनुशासकता तथा प्रवचन-प्रभावकता ने एक-दूसरे को प्रभावित किया। दोनों महापुरुषों ने भिन्न सम्प्रदायो का घटक होते हुए भी 11 संभोग स्थापित किये। ग्यारह संभोगों में शिष्यों का आदान-प्रदान भी एक संभोग है। उसी के अन्तर्गत पूज्य उदयसागरजी महाराज ने अपने होनहार शिष्य श्री छोटेलालजी म. को श्रद्धेय मायारामजी म. के चरणों में अर्पित किया। श्री

छोटेलालजी म. उस समय पूज्यश्रीजी के चरणों में दीक्षित होने की भावना से ज्ञानाभ्यास कर रहे थे। उस समर्पण में पारस्परिक स्नेह तथा आचार-विचार सम्बन्धी समानता मूल कारण थे। श्री छोटेलालजी म. के अतिरिक्त श्री किरपारामजी म., श्री जड़ावचन्द्रजी म., श्री वृद्धिचन्द्रजी म., श्री रामसिंहजी म. श्री कँवरसेनजी म., श्री नाथूलालजी म., श्री राधाकृष्णजी म. तथा श्री रतनलालजी म. आदि मेवाड़ की अन्य कई विभूतियाँ श्रद्धेय मायारामजी म. के चरणों तक पहुँची थीं। इस प्रकार दो परम्पराओं के मधुर मिलन की यह पुरानी कहानी है। जिस समय पूज्यश्री जवाहरलालजी म. पंजाव तथा देहली पधारे उस समय मेरे गुरुदेव उनके साथ-साथ कई क्षेत्रों मे विचरते रहे। आचार्यश्री गणेशलालजी म. से तो गुरुदेव का काफी सम्पर्क रहा है। गुरुदेव कई बार कहा करते हैं कि इन जैसी आचारनिष्ठ, सरल तथा तपःपूत आत्माएँ विरल ही है।

सादड़ी सम्मेलन में सारे श्रमण संघ ने अपने संचालन का भार इनके कन्धों पर डाला था। गुरुदेव उस सभा के अध्यक्ष थे। जिसमें न चाहते हुए भी श्रमणों द्वारा अत्यन्त बाध्य किये जाने पर उपाचार्य के रूप में इन्होंने श्रमण संघ का नेतृत्व स्वीकार किया था और उपस्थित श्रमणों ने उस महान, आध्यात्मिक सेनानी की प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य करने के लिए एकस्वर से घोषणा की थी। सादडी सम्मेलन की कार्यवाही का लेख अब तक भी इन सबका साक्षी है। पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि वे सब बातें प्रायः लेख और भाषणों तक ही सीमित रहीं।

उपाचार्यश्रीजी को अनुशासन कायम रखने के लिए कई कड़े कदम उठाने पड़े। उन्होंने इस विषय में अपने शिष्यों तक का मोह न किया। कुछ लोग उन्हें सम्प्रदायवादी समझते हैं। जब कि वास्तविकता यह है कि जब तक वे श्रमण संघ में रहे, श्रमण संघ की व्यापक दृष्टि से सोचते रहे। कठिन से कठिन प्रसंगों में भी साम्प्रदायिक मनोवृत्ति उनके आस-पास न फटक सकी। जिस समय विनयचन्द भाई का देहान्त हुआ और संवत्सरी विषयक विवाद उठने लगा, उस समय उपाचार्यश्रीजी म. ने अपनी गहरी असाम्प्रदायिक भावना का परिचय दिया। उनका यही कहना था कि श्रमण संघ ने जिस व्यवस्था को सादड़ी सम्मेलन में स्वीकार किया है, मैं उस से तिलमात्र इधर-उधर होने को तैयार नहीं, चाहे मेरी पूर्व-संप्रदाय की धारणा से वह विरुद्ध ही क्यों न हो। आज उन्हें जो साम्प्रदायिक समझते हैं वे जरा इस घटना का पुनरावलोकन करलें।

यह ठीक है कि उपाचार्यश्रीजी म. में सबको खुश करने की पटुता नहीं थी। सरल ढंग से खरी बात वे कहते थे और उस पर दृढ़ रहते थे। जबकि आज का समाज अनुशासक की नीति में इतनी लचक की अपेक्षा रखता है कि उसे जितना चाहे अपने पक्ष में मोड़ लिया

जाय। इस सामाजिक मनोवृत्ति के कारण ही वे समाज को अनुपयुक्त जंचे। इसी असामंजस्य के कारण अन्ततः उन्हें केवल अपने साधुमण्डल की व्यवस्था पुनः संभालनी पडी। इस व्यवस्था में वे सभी उलझनों तथा असमाधि के प्रसंगों से अलग हो गये। उनकी आत्मा को जीवन की अन्तिम घडियों में आराधक होने का अवसर मिला। रोग के तीव्र प्रहारों के बावजूद भी वे तप और संयम में ही लीन रहे। कई महीनों के शारीरिक संघर्ष के बाद उन्होंने स्वयं ही इस भौतिक जीवन से निवृत्ति प्राप्त की। संथारा ग्रहण करके जीवन की सर्वांगसम्पूर्ण साधना पर उन्होंने स्वर्णकलश चढ़ाया। ऐसी ज्योतिष्मान आत्मा को हमारी विनम्र श्रद्धांजली है।

महान् आदर्श एवं तेजस्वी संत की क्षति

पं.र. प्रवर्तक मुनिश्री कस्तूरचन्दजी म.सा.

दीक्षा सहचर पं. रत्न पूज्यपाद श्री गणेशलालजी म.सा. का देहावसान सुन कर अतीव दुःख हुआ, परन्तु करालकाल के सामने तीर्थंकर जैसे तीन लोक के नाथ का भी वश नहीं चलता तो औरों की तो बात ही क्या !

पू. श्री गणेशलालजी म. मेरे दीक्षा सहचर थे। सं. 1962 की कार्तिक शुक्ला 13 को मेरी दीक्षा हुई और मार्गशीर्ष कृष्ण पक्ष में आपश्री की दीक्षा हुई। आप वास्तवः में मूलतः मेरे गुरुभाइयों में थे। हम सब श्री राजमलजी म. की शिष्य-परम्परा में थे।

दीक्षा के पश्चात् समय पर हमारा स्नेह-मिलन प्रायः होता रहा। सं. 1963 मे प्रथम बार मिले। फिर सं 1964 में रतलाम में, सं. 1965 में तखतगढ में मिलन हुआ। इसके बाद भी. अनेक बार मिलने का प्रसंग आया।

संवत् 1977 में आपके दीक्षागुरु श्री मोतीलालजी म. का देवलोक प्रयाण होने पर गुरुवर श्री नन्दलालजी म. के साथ इंदौर में एक ही मकान में ठहरना हुआ। उसके बाद भी अनेक मिलन-प्रसंग उपस्थित हुए। बाद में 2009 में जावरा मे साक्षात्कार हुआ। उस समय दो दिनों में डेढ घण्टे तक अनेक उलझनों को सुलझाने के लिए प्रेमपूर्वक वार्तालाप हुआ। फिर सं. 2009 में सादड़ी सम्मेलन के अवसर पर मिलन हुआ और मेरे तथा उनके बीच महत्त्वपूर्ण वार्तालाप हुआ।

इन सब मिलनों की मधुर स्मृतियां आज भी मेरे मन में ताजा हैं। उनकी सहृदयता, सरलता और भद्रता की गहरी छाप मेरे हृदय मे अंकित है।

सादड़ी सम्मेलन के अनन्तर आपका और उपाध्यायश्री प्यारचन्दजी म. का चातुर्मास उदयपुर में हुआ। जब सोजत सम्मेलन के अवसर पर हम सब एकत्र हुए तो मैंने उपाचार्यजी म. से पूछा *'उपाध्यायजी कैसे रहे ?' तब प्रसन्न मुखमुद्रा में उन्होंने बतलाया, 'चेले की तरह रहे ! खूब प्रेमभाव रक्खा।"*

उपाध्यायजी से भी यही प्रश्न किया तो वे बोले, 'बहुत ही स्नेह रहा। जैसे दिवाकरजी म. प्रेम रखते थे वैसा ही प्रेम उपाचार्यजी म. का रहा।' इससे स्वर्गस्थ महात्मा की उदारता का अनुमान लगाया जा सकता है।

भीनासर सम्मेलन मे हमारा अन्तिम वार सम्मिलन हुआ, वहाँ भी गहरा प्रेमसम्बन्ध रहा।

आप उच्च कोटि के विद्वान और उच्च पदवी के धारक होकर भी अत्यन्त विनयवान थे, यद्यपि मेरी दीक्षा उनसे कुछ ही अधिक दिनों की थी तथापि जब मैं मिला, तभी वे भाव-भक्तिसहित वन्दना करते थे, और बहुमान प्रदर्शित करते थे। बड़े गुरुश्री जवाहरलालजी म. की शिक्षा थी कि कोई मुनिवर दीक्षा में छोटा हो, किन्तु पदवीधर हो तो उसका अवश्य विनय करो। इस शिक्षा के अनुसार मैं भी उनका बहुत आदर करता था।

आप अन्तिम समय चार वर्ष उदयपुर में विराजे। इस अन्तराल में स्वास्थ्य सम्बन्धी समाचार बराबर आते-जाते रहे। तबीयत अधिक खराब होने के समाचार मिले, तो यहां *विराजित ठाणा 19 की ओर से खमतखामणा लिखाई गई; संघ ने तार भी दिया।* सेठ नोरतनमलजी कोठारी, सेठ सरूपचन्दजी तलेडा, देवराजजी सुराणा यहां दर्शन करके उदयपुर दर्शनार्थ जाने लगे, तब सुख-साता पुछवाई गई।

उसके कुछ ही दिन बाद उदयपुर से संथारे का तार और पत्र भी आया। आपका स्वर्गवास होने पर यहां अनेक मुनिराजों ने चोला, तेला, बेला और उपवास किये। स्व. श्री सोहनलालजी, श्री चांदमलजी म. आदि मुनिराजों ने आपके अवसान का समाचार सुनकर बहुत अफसोस प्रगट किया। पूज्यश्री के निधन से स्था. समाज में एक महान्, आदर्श एवं तेजस्वी सन्त की क्षति हो गई। *हार्दिक कामना है कि स्वर्गस्थ आत्मा को अखण्ड शांति प्राप्त हो।*

उनका तप, तेज, ज्ञान, वैराग्य समाज के लिए आदर्श

पं. रत्न श्री कन्हैयालालजी म.सा.

पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. समाज के महान् संतो में से एक थे। उस रत्न का हाथ

से लुट जाना, यह समाज का महान् दुर्भाग्य है। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की सम्प्रदाय के आप भूतपूर्व आचार्य थे, जिनका तप, तेज, ज्ञान, वैराग्य समाज के लिए आदर्श था। उनके स्वर्गवास से हृदय को महान आंचका लगता है।

आपके वहाँ विराजित पूज्य पण्डितरत्न श्री श्री 1008 श्री नानालालजी महाराज साहब आदि सर्व मुनिराजों को सांत्वना विदित हो। पूज्यश्री हुक्मीचंदजी म.सा. के महान् आचार को लक्ष्य में लेकर उनकी सम्प्रदाय का गौरव कैसे बढ़े, संघ और संगठन मजबूत बने व आचार की उन्नति हो, इस दृष्टि को लक्ष्य में लेकर पूज्य आचार्यश्री जवाहरलालजी म. सा. के जितने भी मुनिगण हैं, उनका एक वक्त, एक जगह मिलना हो तो आशा है कि भविष्य के लिए कुछ उज्ज्वल मार्ग निकले, ऐसी आशा रखते हैं।

पूज्यश्री गणेशलालजी आचार प्रिय थे

पं. रत्न श्री पारसमुनिजी म.सा.

आचार्यप्रवर पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. आचारप्रिय थे। आपश्री ने जैन-अजैन सिद्धान्तों का खूब अध्ययन किया था। आपश्री ने कई भाषाओं का भी अभ्यास किया था। शरीर आपका सम्पदायुक्त था। वाणी ओज, माधुर्य आदि गुणसहित थी। आपश्री संग्रह-सम्पदा के भी धनी थे। चर्चाओं में विजयश्री भी आपश्री को प्राप्त हुई थी।

अनेकगुणसम्पन्न प्रभावक सन्त होने के कारण आपश्री ने न केवल पूज्यश्री 1008 श्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की अपनी सम्प्रदाय में आचार्य पद प्राप्त किया, वरन् सादड़ी साधु सम्मेलन में बहु सम्प्रदायों से निर्मित श्रमण संघ में भी आचार्य पद प्राप्त किया।

आपश्री के प्रथम दर्शन का लाभ छह चातुर्मास पूर्व गुलाबपुरा मे प्राप्त हुआ। दूसरी बार असाता-वेदनीय का चिन्तनीय उदय हो जाने पर आपश्री के दर्शन उदयपुर में आकर किए। पश्चात् तीसरी बार और चौथी बार भी आपश्री के दर्शनों का लाभ उदयपुर में हमें प्राप्त हुआ। उस समय असाता-वेदनीय में भी वांचना देने एवं चर्चा करने की संलग्नता, समाधिभाव बनाये रखने की भावना एवं भविष्य के लिए पंडितमरण के मनोरथ-चिन्तन को देखकर एक और बड़ी प्रेरणा मिली। दूसरी ओर आपश्री द्वारा श्रमण संघ के लिए की गई व्यवस्था के स्वरूप को एवं पदत्यागपूर्वक श्रमण संघ से अपने-आप को पृथक् कर लेने के कारणो को साक्षात् समझने का अवसर भी प्राप्त हुआ। मुझे पूज्यश्री द्वारा की गई व्यवस्था न्यायसंगत दिखाई दी एवं पदत्यागपूर्वक पृथकता के कारण वास्तविक प्रतीत हुए।

वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् शरीर की विषम स्थिति में आपश्री ने अपने पश्चात् संघ के लिए योग्यतासम्पन्न मुनिश्री नानालालजी म. को युवाचार्य पद प्रदान किया। जिसका बहुश्रुत श्री समर्थमलजी म. सा. जैसों ने समर्थन किया है। सम्मति देने के क्षणों में मैं उनके चरणों में ही उपस्थित था। प्रथम समय में सहज प्रकट किए गए सम्मति के विशिष्ट शब्दों को लिपिबद्ध नहीं किया जा सका। लिपिबद्ध करने के लिए दूसरे समय प्रकट किए गए शब्दों में प्रयत्न करने पर भी वह विशिष्टता नहीं आ सकी।

इस बार पूज्यश्री के अन्तिम दर्शनों का प्रयत्न करने पर भी हमें लाभ नहीं मिल सका। नागौर से देवगढ़ सात दिनों में लगभग 65 कोस पहुँचे। पहुँचने पर ज्योंही संथारे के समाचार मिले, वहाँ न ठहरते हुए आगे के लिए विहार कर दिया। किन्तु हम मार्ग में चलते ही रह गये और इधर पूज्यश्री काल कर गए। कुँआथल स्टेशन पर समाचार पाते ही हार्दिक खेद हुआ। अनन्तर चार लोगस्स का कायोत्सर्ग किया। दर्शनप्राप्ति में लगभग तीस कोस का अन्तर बाधक रह गया।

पूज्यश्री चैतन्य अवस्था में स्वयं संलेखनापूर्वक भत्त प्रत्याख्यान कर सके एवम् बहुत ही समाधिपूर्वक संथारा चला, यह उनकी लघुभूत आत्मा को प्रकट करने वाला हमारे लिए स्पृहणीय दृष्टान्त है। पण्डितमरण विरल आत्मा को प्राप्त होता है। जिन्हें वह प्राप्त होता है, वे ही चारित्र के आराधक बनते हैं। शासनदेव हमें भी ऐसे मरण को वरण करने का सौभाग्य दें।

हम कालधर्मप्राप्त आचार्यश्री के लिए शीघ्र ही मुक्तिलाभ की कामना करते हैं तथा वर्तमान आचार्यश्री द्वारा चतुर्विध श्रीसंघ के रत्नत्रय की रक्षा एवम् वृद्धि की कामना करते हैं।

महान् ज्योतिर्धर

पं. रत्न श्री चम्पकमुनिजी म.सा. (बरवाला सम्प्रदाय)

आज नी सभा शोकसभा छै। खरे-खरे समाचार शोकजनकज छै। भारतवर्षनो तेजस्वी चमकतो तारलो अस्त थई गयो। जिनेश्वर रूप सूर्य गयां बाद गणधरादि चंद्रमा प्रकाश मां शासन चमकतूँ हतूं। आज भारतवर्ष मां सूर्य-चन्द्र ना अभाव मां कई तारलाओं शासन नी शोभा में वृद्धि करी रैया छै।

पूज्य उपाचार्यश्री तेमांना एक शासन-प्रभावक, सम्यग्-ज्ञानवारिधि, अने चारित्र मां चूडामणि समाहतां। तेओश्री ना ज्ञानक्रिया नी प्रभा जैन, जैनेतर पर पूरा प्रमाण मां पड़ती हती। दृष्टि तेओ नी सामे जतांज मस्तक ने झुकवानुं मन थयं जतूं हतूं।

जगत मां सर्वकार्य मां प्रथम श्रीगणेश ना पूजन थाय छै। अमारा आराध्य गुरुदेव आ गणेश पण सर्व ना हृदय मां प्रथम स्थान लेतां हतां। चारित्र प्रत्ये अनन्य प्रेम हतो। संयम माटे तो पोते सदा जाकरूकज रहता हता।

आपश्री नी हृदय नी विशालता सादडी सम्मेलन वक्ते हरेक मुनिवरों ए अनुभवी हतीं। महान सन्मान नी त्याग करी, सरलतापूर्ण जीवन बनावी, "संत पुरुषों वज्र समान कठोर होवां छतां, पुष्प समान कोमल होय छै।" ए वाक्य ने सिद्ध करो वताव्यु अर्थात् सम्मेलन ने सफल बनावी दीधुं। चारित्र मां पूरे पूरा कट्टर होवा छतां संघ ऐक्य नी खातर तेओश्री ए सर्व मुनिवरों साथे प्रेममय वातावरण बनावी लीधुं, अने तेथ सर्व मुनिवरों ए पण पोतानां हृदयनां सिंहासन ऊपर आपश्री ने बेसाड़ी दीधां। अने तेओ श्री एकज सम्प्रदाय ना, मटी आखा भारतवर्ष ना बनी गया। सादड़ी सम्मेलन नूं अे अपूर्व दृश्य नयनोंथी अदृश्य थतुं नथीं। पंचायती नोहरा माथिं सर्व मुनिवरों गुरुकुल मां जवा निकले छै बे बाजू श्रावक श्राविकाओ नी लाइन लागी छै। आगले आपणा श्रीगणेश अने, पाच्छाल मुनिवरों नो समूह। अे शास्त्र मां श्री सुधर्मा स्वामी 500 शिष्य सह पधारिया नॅूं अपूर्व दृश्य दृष्टिगोचर थतूं हतूं, ते आज पण तरवरे छै।

बाल्यवयनी दीक्षा अनें पूज्य जवाहरलालजी म. सा. जेवां गुरुदेव ना सान्निध्य मां विनयपूर्वक रहीं। शास्त्रों नूं विशाल अध्ययन कर्युं। अने ध्यानाधि योगे मन्थन करी मेलवेल तत्त्व वितरण करवा प्रायः हरेक प्रदेश मां विचरण कुर्युं छै। पूज्य गुरुदेवश्री जवाहरलालजी म. सा. नी साथे पधारी अमारा गुर्जर देशने पण अमृतमय वाणी थी पावन करेल छै। जे फूल खिले छै, ते सर्व ने फरमावा नुं सरजए सूंझ होय छै। तेम जे-जे मानवी के प्राणी जनमें छै ते सर्व ने जवानुज होय छै। युवानि चपल छै, जीवन पाणी ना पर पोता जेवुं चंचल छै। विजली ना चमकारा जेटलाज समय मां, सोय परोंगी लेवा ना न्याये जे मानवी टूंका आयुष्य मां आत्मसाधन साधी ले छै। तेज जीवन खरेखर धन्यवान ने पात्र छै। महापुरुषों कदी मरताज नथी। तेओं पोताना सद्‌गुण थी सदा जीवितज छै। आजे आपने शोक शब्द वापरता होईं अे तो ते आपना स्वार्थ ने लीधेज छै। नगी राजरिषी इन्द्र महाराज ने फरमावे छै कि पशु, पक्षी के मानवी ए गम्भीर वड़ने नथी रोता पण कोईं नूं घर गयूं, कोईं नी छाया गईं, कोईं नी बैठक गईं। आप पोताना स्वार्थ ने ज रूअे छै। तेम आपने आपना तसरनो चमकतो तेजस्वी ताज गुमायु, तेनूँज आपण ने दुख छै। बाकी ते आत्मा तो आनन्दपूर्ण जीवन जीवी गया। मानव जीवन ने सार्थक करी गया। पोते आत्मसाधना नीं सफलता ना राह पर चढी अनेक आत्माओं ने अे राह ऊपर चढाव वानूं पुनीत कार्य करी गया। ऐटले तेओश्री माटे शोक ने स्थानज नथी। प्राण जाय पण प्रतिज्ञा न जाए, ऐ रीते महान पदवी नों पोते सहर्ष त्याग करी दीधो। कि

शासन मां शिथिलता ना द्वार समा माइक ने अपनाववा तैयार नज थया। आ तेओश्री नो भव्य आदर्श हतो। साथो-साथ पदवी छोड़या बाद पण पोते केटला शांत रया ? गमे तेवी तकोरों ने पण शान्त भावे सही लिधी प्रत्युत्तर बलवानी पण इच्छा करी नथी। आ हतु तेमनूं गांभीर्य, सागरवर गंभीरा ना पद थी तेवो विभूषित बनी गया। जीवन ना छेल्ला, छेड़ा सुधी समाज ने ऊँचो लावबानी हीज भावना राखी गया छै। तेओश्री ना सर्वगुणों ना वर्णन करवाने मारी शक्तिज नथी। मारा अनुभव मां जे काईं आयु तेमा थी यत्किंचित केयूं छै। समय पण वधारे थई गयो छै।

आंसू ने दूर करो, तेओश्री नो आदर्श ने याद करो, अने जीवन मां बनवा कमर कसो। प्रभो स्वर्गगामी ओ आत्मा ने चिरशान्ति अर्पो, ऐ अभ्यर्थना।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि

मुनिश्री शान्तिप्रियजी शास्त्री, प्रभाकर

जीवन वह पर्वतीय निर्झर है जो लघु किन्तु नित्य-निरन्तर प्रवहमान धारा में उमड़ता हुआ किशोर, बचपन और जवानी तक के भोलेपन, मस्ती, कार्यशीलता, विवेक, अनुशीलन एवं अनुभव आदि आत्मा के समस्त स्वाभाविक गुणों के साथ कतिपय दोषों को समेट कर विस्तृत-विशाल फैलाव करता हुआ अथाह, अनन्त की ओर उन्मुख होता है। वही जीवन है, जो जीवन तट पर क्षीर-नीर न्याय से दोषों के भार से एवं व्यर्थ के व्यामोह से स्वयं को मुक्त करले। ग्रहण का नहीं, त्याग का नाम जीवन है। उसी का नाम जीवन है जो शत-शत आँधियों और झंझावातों में भी अपने लक्ष्यबिन्दु की ओर अग्रसर रहे। संघर्ष में लडखड़ाने या पग-पग पर घुटने टेक कर दीन-हीन-कातर भयभरी आँखों से यश और प्रतिष्ठा की भीख माँगने वाला जीवन नहीं, मृत्यु है। भीख से पेट भर सकता है, सम्मान नहीं मिलता।

वह जीवन था या जादू, लेकिन उसमें वज्रहृदय भूमि में प्रेमांकुर उगाने की महान शक्ति थी। आकर्षण, महान आकर्षण। सैकडों नहीं, सहस्रों वर्षों तक हमारी भावी सन्तति को उस जाज्वल्यमान दीप-स्तम्भ से मार्गदर्शन मिलेगा। पगों की दृढ़ता, चेहरे का भोलापन और अन्तर्हृदय की गहन गम्भीरता उनके महान् व्यक्तित्व की परिचायक थी। उस नयनाभिराम के जिन-जिन नयनकोरों ने दर्शन किये, वे धन्य। जिस मस्तक ने चरण-स्पर्श किया, वह भी धन्य। उस तपःपूत आध्यात्मिक युगपुरुष की, बीकानेर-भीनासर वृहद् सम्मेलन में मेरे

आँखों-देखी जीवन-झांकी सदा-सदा को स्मृति-पटल पर अंकित रहेगी। वह कुछ भी थे, लेकिन समाज के आकर्षण का केन्द्र थे। मालूम नहीं क्यों ?

मैं गुजर रहा था। सैकडों साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविकाएँ बैठी थी। मुझे कर-संकेत किया। मैं चरणों में जा बैठा और बैठा ही रहा। सबके सामने, "शान्ति मुनि ! मेरे पास बैठने को आपके पास समय ही नहीं बन पड़ता ?" मैंने लजाकर सर नीचा कर लिया। वस्तुतः मुझे विश्वास नहीं था कि मैं भी उनकी दृष्टि में किसी गिनती में होऊँगा। मेरा नाम भी स्मरण है ? मेरे नाम का कैसे मालूम हुआ उन्हें, यह भी मेरे लिए आश्चर्य था। मधुर वर्षण के साथ फिर बोले, "समय बहुत भयंकर आने वाला है। न कोई किसी की सुनेगा और न कोई किसी की मानेगा। संन्यासाश्रम और गृहस्थाश्रम दोनों टूटे तटों के महानद की तरह बहेंगे। साधुता का वेश धारण कर रोटी खाने और विष-वमन करने वाले अधिक होंगे। सदा सावधान रहो। मुंह से अमृत लगे विष-कुम्भों से बचें। समाज के लिए वही दिन सौभाग्य का होगा जब उसे सच्चे और अच्छे रहबर मिलेंगे ?" कैसा अमृत ? कितना अपनत्व और कितना समत्व ?

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः।
परोपकाराय सतां विभूतयः।।

ऐसे ही व्याख्यान, सभाभवन तथा इतर चर्चावार्त्ता में विचार-सम्पदा को उडेलते हुए मुखरित होते तो लगता मानो मधुर गर्जन के साथ सावन का मेघ उमड पड़ा है, मरुभूमि को आप्लावित करने।

भीनासर सम्मेलन से पूर्व बीकानेर में एक दिन प्रातः साथ-साथ जंगल-दिशा को निकल पडे। बीकानेर के ऊबड-खाबड़ खड्डों में निपट कर हम एक छोटी-सी टेकरी पर बैठ कर जल वगैरह बर्तने लगे। चैत्र-वैसाख की खुली ऋतु, भोर का मन्द-मधुर समीर, एकान्त सुनसान में निर्भय-निश्शंक मनमयूर मचल उठे और देखते ही देखते मदीय अग्रज गुरुभाई पंडितरत्न श्री सुशीलकुमारजी म. यौगिक प्रक्रिया पर उतर आये। अभ्यास और रुचि के साथ योग पर पर्याप्त अधिकार है उनका। वह कहा करते हैं - "योग भी चमत्कारों से भरा है और इसका धीत अन्त में आध्यात्मिक महानद में ही प्रविष्ट होता है।" कुछ देर शीर्षासन कर सिंह, सिद्ध, मयूर आदि कितने ही योगासन लगा दिये। मैं भी मैदान में कूद पडा और आसन पै आसन जमाने लगा। मुझे देखकर एक-दो मुनि और आगे बढे तब हम सब समान थे। कौन विश्वास कर सकता है कि समस्त समाज की कमान संभालने वाली दिव्य विभूति भी बच्चों के खेल में भाग ले सकती है।

कहने लगे - "साधुओं को यौगिक प्रक्रिया अवश्य करनी चाहिए। योग से शरीर शुद्ध रहता है। शारीरिक शुद्धि और बल ही हमारी मानसिक, बौद्धिक और आध्यात्मिक प्रगति में सहायक होते हैं। बैठने वाले के लिए योगासन अनिवार्य है। प्रायः हम तो सामाजिक परिस्थितियों में उलझकर आध्यात्मिक ज्ञान तक ही रह गये हैं। न शरीर स्वस्थ है, न मन। आज मुनिवर्ग अनेकानेक व्याधियों का शिकार बन चला है।" फिर ऊपर की चादर नीचे बिछ गई और लगे हमारी ही तरह आसन जमाने। हम सब एक-दूसरे की ओर गद्‌गद झांक रहे थे और वह सम्राटों के सम्राट् योग की कठिनतम प्रक्रियाओं में देह को दुहरा-तिहरा, उलटा-पुलटा तोड़ते-मरोडते चले गये। बुद्धि, मन और विचारों पर जितना अधिकार था उतना ही, बल्कि उससे भी अधिक अधिकार देह आदि इन्द्रियों पर था। तमाम आसन उसी सहजता से कर गये जैसे एक बच्चा अथवा प्रतिदिन का अभ्यासी युवक अखाड़े में अपनी समस्त कलाबाजियां दिखा डालता है। योग में ही उलझे हुए बोले, "समाज की चिन्ताएँ देह को गला देती हैं। कोई-न-कोई बीमारी घुन की तरह लग जाती है और शरीर खा डालती है। हमारी ही भूल है जो पक्षी की तरह बडप्पन के मिथ्या व्यामोह जाल में सदा-सदा को फँसा डालते हैं।" फिर पद्म, सिद्ध, शीर्ष, सर्प आदि कितने ही आसन लगा डाले।

हम सब साथ-साथ आगे-पीछे चल रहे थे। रास्ते पर आगन्तुक दर्शनार्थियों के झुण्ड यत्र-तत्र उपाचार्यश्री के जयघोष से गगन गुंजा देते। वन्दन-पाठ के साथ शत-शत मस्तक एक साथ झुक जाते और मुझे कवि की वह उक्ति याद आ जाती-

फूल तो लाखों थे चमन में पर हमें तुम ही नजर आए

दार्शनिक की सूक्ष्मता, सम्राट् की उदारता, सैनिक की धैर्यता, तपस्वी और योगी की पवित्रता आपको विरासत में मिली थी वह कट्टर परम्परावादी थे किन्तु वर्तमान की कभी उपेक्षा नहीं की। वास्तव में जिस प्रस्तुत विषय का भविष्य समुज्ज्वल हो, उसे झुठलाया भी नहीं जाता। सत्य ही सिद्धान्त और संयम ही उनका जीवन था। अनाचार को आपने कभी आदर नहीं दिया। समाज ने आपको केवल न्यायरक्षा के लिए ही वरण किया था। जब-जब भी अन्याय और अविवेक ने सर उठाया, तब-तब वह उससे जूझे। शिथिलता को प्रश्रय देना आपने कभी सीखा ही नहीं था। व्यक्तिगत ममत्व और स्वार्थ के कारण भले किसी को शिकायत रही हो, किन्तु वास्तव में आप संपूर्ण समाज के थे और सब के थे। इसलिए आज समस्त स्थानकवासी समाज में सदा-सदा खलने वाला अभाव चिंता का विषय बन चला है। उनके वे शब्द आज भी मुझे स्मरण हैं - "शान्तिमुनिजी ! स्वयं संभल कर चलो, न कभी किसी पर विश्वास करो और न अविश्वास। जबान के सच्चे, ऑख के सुच्चे और लंगोट के पक्के रहो।" इन्हीं शब्दों से मैंने अन्दाज लगाया था कि बडे आदमी बहुत स्नेहशील और दयालु होते हैं।

संघर्ष से उन्हे संकोच नहीं था लेकिन वितण्डावाद से सदा परहेज करते थे। वास्तव में संसार के समस्त महारथी सिद्धान्तों के लिए लड़े हैं, सिद्धान्त ही उन का जीवन रहा है। सिद्धान्त ही हमारा आधार, नींवं और मूल है। सिद्धान्तों को त्याग कर हम जी नहीं सकते, यही उनका विश्वास था। इसीलिए वह कोमल, अतिकोमल होने पर भी वज्र- से कठोर बन जाते हैं। यही नहीं, संसार के समस्त महापुरुष स्वभाव से ऐसे ही हुए हैं। उन्हीं के लिए "वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि" की यह उक्ति चरितार्थ होती है। दिवंगत पवित्र आत्मा के पावन चरणों में अपनी भावभीनी श्रद्धा-सुमनांजलि समर्पण करता हूँ।

आकर्षक व्यक्तित्व

मुनिश्री देवेन्द्रमुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न

रात का प्रथम प्रहर समाप्त होने जा रहा था। एक सज्जन घबराते हुए आये और कुछ क्षण रुक कर बोले - मुनिजी ! मैं अभी रेडियो सुनकर आ रहा हूँ। उसमें समाचार है कि पूज्यश्री गणेशलालजी म. का स्वर्गवास हो गया है। "स्वर्गवास हो गया"- ये अत्यन्त कठोर व अप्रिय शब्द कर्ण श्रवण करना नहीं चाहते थे किन्तु उन्हें बालात् श्रवण करना पडा। वस्तुतः काल का कराल आघात विकराल है। उसकी क्रूरता दुर्दान्त और दारुण है।

श्रद्धेय श्री गणेशलालजी म. स्थानकवासी जैन समाज के मूर्धन्य मनीषी महाराज थे। मैं उन्हें कब से जानता हूँ, इस प्रश्न का उत्तर आज तक मेरे से नहीं बन पड़ा है। प्रश्न के साथ ही मेरी स्मृति अतीत के एक धूमिल पृष्ठ पर अंगुली रख देती है। जिस पर न वर्ष की रेखाएं हैं और न तिथियों के रंग ही, केवल परिस्थितियों का एक सुन्दर छायाचित्र उभर आता है।

मेरे सांसारिक परिवार वाले श्री जवाहराचार्य और आपके श्रद्धालु श्रावक रहे हैं, महीनों तक सांसारिक प्रवृत्तियों से निवृत्ति ग्रहण कर सेवा का लाभ लेते रहे हैं। एक बार पितामह के साथ मैं भी प्रवचन में गया था, पर प्रवचन में विलम्ब था। बालसुलभ चंचल प्रकृति होने के कारण मैं आचार्यश्री के विराजने के उच्च प्रवचन पट्ट पर आसीन हो गया। इधर से आपश्री पधार गये और मुझे पट्ट पर बैठे हुए देखकर पितामह से कहा - यदि यह दीक्षा ले तो इनकारी न करना। पितामह ने आपश्री के आदेश-निर्देश को शिरोधार्य किया। उस दिन से आपश्री की मेरे पर असीम अनुकंपा रही और जब-कभी भी किसी-न-किसी से मेरे सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करते रहे।

मैंने महास्थविर श्रद्धेय श्री ताराचन्दजी म. व मंत्री पं. प्रवर श्री पुष्करमुनिजी म. के पास जैनेन्द्री दीक्षा ग्रहण की। दीक्षान्तर सर्वप्रथम आपके दर्शनों का सौभाग्य सादड़ी सन्त-सम्मेलन में सम्प्राप्त हुआ। उन मधुर संस्मरणों की वह रसधारा आज भी अन्तर्मानस को आप्लावित कर रही है। मेरा अनुमान है कि उस जंगम तीर्थ के सभी यात्रियों को आनन्द का वैसा अनुभव सदा छकाये रहता था।

सादड़ी, सोजत, पुष्कर, अजमेर और उदयपुर प्रभृति स्थलों में जब-जब सन्निकट रहने का अवसर प्राप्त हुआ, तब-तब मैं आपके महान् व्यक्तित्व के गंभीर सरोवर में उमड़ते हुए स्नेह-सलिल से कृत-कृत्य होकर लौटा। आपके व्यक्तित्व में कितना माधुर्य, कितना उल्लास, कितनी सरलता, कितना स्नेह और कितना तेज है; इसका अनुभव जैसा प्रथम बार मैंने किया, वैसा ही बार-बार मुझे हुआ। आपका ओजस्वी और तेजस्वी व्यक्तित्व सूत्र-सविता की रश्मियों के समान जिस वितान का निर्माण करता था, उसका संस्पर्श शरद् ऋतु के उषाकालीन आतप के समान अतीव सुखकर प्रतीत होता था।

आपका जगमगाता जीवन सेवा का सतत स्रोत था, क्रिया का शान्त और अथाह प्रवाह था, निर्भयता का निकेतन था, श्रद्धा का आश्रय था, उदारता का निर्मल निर्झर था, सादगी का सुन्दर सदन था, स्नेह का सुहावना स्तम्भ था, सरलता का सरोवर था, पवित्रता का परिमल था और था "सकल गुण वरेण्यः पुण्य लावण्य राशि !" आपकी प्रवचन-शैली मधुर और आकर्षक थी। उसमें ओज था, प्रवाह था, और व्यावहारिकता की सरसता थी तथा जैन सिद्धान्त का स्पष्ट प्रतिपादन था, दया-दान के विरोधियों के सम्बन्ध में आपके तर्क त्रिशूल हो उठे थे, आपकी गंभीर गर्जना से वे तिलमिला उठते थे। प्रभु-प्रार्थना आपका प्रिय विषय था। उस पर आपके प्रवचन बडे ही कमाल के होते थे। प्रवचनों के प्रारम्भ में आचार्य देवचन्द्र, विनयचंद्र और आनन्दघन के अध्यात्मरस से छलछलाते हुए पद्यों को श्रवण कर भावुक भक्त झूम उठते थे। गंभीरता के वातावरण में भी हास्य के फूल खिलाने में आप गजब के कलाकार थे।

आज आपका पार्थिव शरीर हमारे सामने नहीं है, किन्तु जिसके लिए महाकवि भर्तृहरि ने कहा था कि "नास्ति येषां यशःशरीरे जरामरणम् भयम्" के रूप में आज भी विद्यमान है। आपकी क्रिया-निष्ठा की कीर्ति-कौमुदी आज भी जगमगा रही है। आपका प्रेरणाप्रद जीवन त्याग, वैराग्य के महामार्ग पर बढने की प्रेरणा दे रहा है। स्नेह और सौजन्य के अवतार उस महासन्त के चरणारविन्दों में मैं श्रद्धा के सुमन समर्पित करता हूँ और मैं अपने स्नेही साथी, सन्त, पंडितप्रवरश्री नानालालजी आदि से प्रबल प्रेरणा करता हूँ कि वे श्रमण संघ में पुनः पधारें और संगठन का सुहावना वातावरण निर्माण कर अपनी प्रकर्ष प्रतिभा का परिचय दें।

पूज्यश्रीजी के चरणों में दो सुमन

पं. मुनिश्री भानुऋषिजी म. 'जै. सि. आचार्य'

परम श्रद्धेय पूज्यश्री बहुत बड़े धार्मिक एवं समाजसुधारक महान् सन्त थे। उन्होंने जैन समाज की जीवन-भर सेवा की। समाज-उत्थान के लिए बडे-बडे कष्ट सहे। उनका जीवन त्यागमय एवं तपस्यामय था। संस्कृत, प्राकृत, उर्दू, फारसी, मराठी, हिन्दी, राजस्थानी आदि सभी भाषाओं का अच्छा अध्ययन किया और जैनागम एवं साहित्य के उच्च कोटि के विद्वान बन गये।

पूज्यश्रीजी आदि से सत्यप्रिय थे। सदा सत्य पर हिमालय की तरह अटल रहते थे। सत्य की रक्षा के लिए वे किसी की भी चिन्ता नहीं करते थे।

पूज्यश्रीजी बचपन से ही निडर थे। क्योंकि वे ऐसा कोई कार्य ही नहीं करते थे, जिससे उन्हें डरना पडे। अपने कर्तव्य की रक्षा के लिए बडी से बडी मुसीबत सह लेने को तैयार रहते थे। अपने इसी गुण के कारण उनकी सारे संसार में प्रतिष्ठा हुई और वे "आचार्य" कहलाये।

किसी भक्त ने पूछा - "गुरुदेव ! आपको अपने जीवन में कौनसी वस्तु प्रिय है ?"

पूज्यश्रीजी ने उत्तर दिया - "अपना कर्तव्य।" सचमुच पूज्यश्रीजी को अपने कर्तव्य का सदा ज्ञान रहता था। उन्होंने जीवन-भर अपने कर्तव्य का पालन किया। कभी कर्तव्यविमुख नहीं हुए।

इस लेखक को पूज्यश्रीजी की सेवा में रहने का अल्प लाभ अजमेर मे मिला था। इसके पूर्व सम्मेलन सादड़ी (मारवाड़), ब्यावर, आमेट, लावा सरदारगढ, सोजत सिटी, वेगूं आदि स्थानों पर भी दर्शनों का लाभ मिला। पूज्यश्री का हंसमुख, प्रतिभासम्पन्न चेहरा, ललाट की चमक, भव्य मूर्ति, सचमुच कृष्ण कन्हैया के समान श्यामवर्ण वाला शरीर स्मरण करते ही साकार हो उठता है।

ऐसे पूज्यश्रीजी ने अपना सारा जीवन समाजसेवा में व्यतीत किया। अन्त में पूज्यश्री का स्वास्थ्य बिगड़ता गया और जिस नगरी में जन्म लिया था, उसी उदयपुर नगरी में समाज के कर्णधार का स्वर्गवास हो गया।

पूज्यश्रीजी का विहार-क्षेत्र बहुत विशाल था। उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी से जनता का कल्याण किया। इसी कारण वे देवता के समान पूजे जाते थे। ऐसे ही व्यक्ति महान् होते

हैं और युग-युग तक उनके गुणगान गाये जाते हैं। पूज्यश्री अपने समय की महान् आत्मा थे। वे आज भी भारत की जनता के हृदय-सम्राट् हैं और भारत युग-युग तक उनका गुणगान करता रहेगा।

लेख को समाप्त करते हुए पूज्यश्रीजी के चरणों में श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

वे हमारे महापुरुष थे

श्री हीरामुनिजी महाराज

परम श्रद्धेय महास्थविर श्री गणेशलालजी म. का स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से बड़ा दुःख हुआ। उन दिवंगत महापुरुष की जीवनचर्या का मैंने ध्यान किया, उस निर्वाण-ध्यान में उनके आचार-पूत विचार-कण मेरे दिल की दीवारों पर क्रमशः आने लगे। क्षणिक समय के लिए मेरे हृदय में वही स्थिरता आई जो गुरु-वियोग होने पर जयपुर में आई थी।

मैंने सादड़ी सम्मेलन में आपश्री के प्रथम बार दर्शन किये थे। संध्या वेला में आप प्रतिक्रमण पूर्व दस-पांच मिनट बरामदे में विराजते थे तब दर्शनार्थियों का तांता लग जाता था। वह सुरम्य समा मुझे खूब याद आती रहती है। श्रमण संघ का निर्माण होने के पश्चात् सभी सन्त प्रतिक्रमण के लिए दीक्षा-क्रम से वन्दन करते थे और क्रमशः बैठ जाते थे। सादड़ी संत-सम्मेलन में सद्गुरुवरीय महास्थविर श्री ताराचंदजी म. दीक्षा में बड़े थे। उन्हें वंदन करते हुए आपने फरमाया था कि आज का कितना सुहावना दिन है कि संप्रदायवाद के कारण एक-दूसरे को चाहते हुए भी मर्यादा के कारण वंदन नहीं करते थे। मैंने गृहस्थाश्रम में आपश्री को वंदन किया था और आज फिर इतने लम्बे समय के बाद वंदना करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

उस समय का स्नेह-सम्मेलन अपूर्व था। आपश्री के मुखमण्डल पर सदा प्रसन्नता बनी रहती थी। स्नेहसिक्त मधुर वाणी सर्वमुनिमुण्डल को प्रभावित करती थी। वस्तुतः आपश्री का प्रभाव ही निराला था।

उसके पश्चात् फिर से मुझे सोजत, पुष्कर, अजमेर तथा उदयपुर मे आपश्री की सेवा में रहने का अवसर मिला। मुझे आपश्रीजी के प्रति अतीव निष्ठा थी, श्रद्धा थी, सेवा में रहने की अभिरुचि थी। आपश्री का दर्शनमात्र ही जीवन में नवजागृति पैदा कर देता था। आपश्री का आचार-विचार मुझे अतिप्रिय था और उससे भी बढ़कर था आपका स्नेह।

मैं समझता हूँ, सामाजिक वातावरण में विषमता आने पर परिस्थितियो ने उन पुनी महापुरुष के विचारों में भारी संघर्ष पैदा किया। पारस्परिक विरोधी आदेश-निर्देश प्रकट हो पर हमारी जैन जनता का मानस भी बडे दायरे में बिगड़ चुका था, जिससे चन्द व्यक्तियो व विचारों में आपके विचार बहुत कड़क अनुभव हुए। मगर जब मैंने आपश्री के समीप रह क देखा तो मुझे ठीक ढंग से अनुभव हुआ कि आप के विचार जितने कडक थे उनसे बढ़ क कोमल भी थे। महापुरुषों के ये स्वाभाविक लक्षण कहे गये हैं।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

वे हमारे समाज में एक ही रीति, एक ही आवाज कायम करना चाहते थे। यह उनक बहुत पवित्र विचारधारा थी। इसलिए एक शास्ता और एक आचार्य के नेश्रयित शिष्य-परम्पर बने– इसके लिए आपश्री ने अपनी बुलन्द आवाज में वक्तव्य दिया था। मगर बडे खेद क बात है कि विचार-विनिमय में कोई निर्णय नहीं हो पाया।

आपश्री की विद्या-वाणी और वपु मे भारी आकर्षण था, प्रभाव था, तेज था। आपश्री सभ में विराजते तब वह सिंहगर्जना सुन कर पर पाखण्डियों का मद ओले की तरह गल जाय करता था और श्रद्धालुओं का मन-मयूर नाच उठता था। प्रवचन शैली बहुत सुन्दर थी। सरल तथा प्रभावक थी। शास्त्रीय वांचन आपका प्रमुख विषय था। गम्भीर तथा गूढार्थ को सरल बनाने की अनूठी कला थी। जब आप हेतु-दृष्टांत तथा कथा फरमाते, तब जनता क एकाग्रता और अधिक बढ जाती थी। पांच वर्ष पूर्व बडी सादडी का प्रसंग है। शेष काल मे उदयपुर से विहार कर आपश्री के दर्शनार्थ हम तीन संत पहुँचे थे। आपश्री ने हमारे साथ बहुत स्नेहपूर्वक व्यवहार किया। उस समय आपश्री जसमा सती की चौपाई फरमा रहे थे-

राजा आलोके परलोके मारए पति रे
प्रीते परिण्या चौही मारा प्राण
एना शत्रु नु हू कदी मुखडू जोती नथी रे।

यह पद्य फरमाते हुए आपश्री ने हाथों का अभिनय किया था कि श्रोता चकित हो गए और हंसी के फव्वारे छूटने लगे। इसी प्रकार अंजना सती का पुनीत चरित्र भी आपश्री अतीव रोचक ढंग से फरमाया करते थे।

आपश्री का वह नश्वर शरीर भले ही वूढा हो गया था, मगर मन, वाणी और पुरुषार्थ से आप युवक प्रतीत होते थे।

न तेन वृद्धो भवति, येनास्य पलितं शिरः।

हैं और युग-युग तक उनके गुणगान गाये जाते हैं। पूज्यश्री अपने समय की महान् आत्मा थे। वे आज भी भारत की जनता के हृदय-सम्राट् हैं और भारत युग-युग तक उनका गुणगान करता रहेगा।

लेख को समाप्त करते हुए पूज्यश्रीजी के चरणों में श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

वे हमारे महापुरुष थे

श्री हीरामुनिजी महाराज

परम श्रद्धेय महास्थविर श्री गणेशलालजी म. का स्वर्गवास हो गया। इस समाचार से बड़ा दुःख हुआ। उन दिवंगत महापुरुष की जीवनचर्या का मैंने ध्यान किया, उस निर्वाण-ध्यान में उनके आचार-पूत विचार-कण मेरे दिल की दीवारों पर क्रमशः आने लगे। क्षणिक समय के लिए मेरे हृदय में वही स्थिरता आई जो गुरु-वियोग होने पर जयपुर में आई थी।

मैंने सादडी सम्मेलन में आपश्री के प्रथम बार दर्शन किये थे। संध्या वेला में आप प्रतिक्रमण पूर्व दस-पांच मिनट बरामदे में विराजते थे तब दर्शनार्थियों का तांता लग जाता था। वह सुरम्य सभा मुझे खूब याद आती रहती है। श्रमण संघ का निर्माण होने के पश्चात् सभी सन्त प्रतिक्रमण के लिए दीक्षा-क्रम से वन्दन करते थे और क्रमशः बैठ जाते थे। सादड़ी संत-सम्मेलन में सद्गुरुवरीय महास्थविर श्री ताराचंदजी म. दीक्षा में बड़े थे। उन्हें वंदन करते हुए आपने फरमाया था कि आज का कितना सुहावना दिन है कि संप्रदायवाद के कारण एक-दूसरे को चाहते हुए भी मर्यादा के कारण वंदन नहीं करते थे। मैंने गृहस्थाश्रम में आपश्री को वंदन किया था और आज फिर इतने लम्बे समय के बाद वंदना करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है।

उस समय का स्नेह-सम्मेलन अपूर्व था। आपश्री के मुखमण्डल पर सदा प्रसन्नता बनी रहती थी। स्नेहसिक्त मधुर वाणी सर्वमुनिमुण्डल को प्रभावित करती थी। वस्तुतः आपश्री का प्रभाव ही निराला था।

उसके पश्चात् फिर से मुझे सोजत, पुष्कर, अजमेर तथा उदयपुर मे आपश्री की सेवा में रहने का अवसर मिला। मुझे आपश्रीजी के प्रति अतीव निष्ठा थी, श्रद्धा थी, सेवा में रहने की अभिरुचि थी। आपश्री का दर्शनमात्र ही जीवन में नवजागृति पैदा कर देता था। आपश्री का आचार-विचार मुझे अतिप्रिय था और उससे भी बढकर था आपका स्नेह।

मैं समझता हूँ, सामाजिक वातावरण में विषमता आने पर परिस्थितियों ने उन पुनीत महापुरुष के विचारों में भारी संघर्ष पैदा किया। पारस्परिक विरोधी आदेश-निर्देश प्रकट होने पर हमारी जैन जनता का मानस भी बडे दायरे में बिगड चुका था, जिससे चन्द व्यक्तियो के विचारों में आपके विचार बहुत कड़क अनुभव हुए। मगर जब मैंने आपश्री के समीप रह कर देखा तो मुझे ठीक ढंग से अनुभव हुआ कि आप के विचार जितने कडक थे उनसे बढ कर कोमल भी थे। महापुरुषों के ये स्वाभाविक लक्षण कहे गये हैं।

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।

वे हमारे समाज में एक ही रीति, एक ही आवाज कायम करना चाहते थे। यह उनकी बहुत पवित्र विचारधारा थी। इसलिए एक शास्ता और एक आचार्य के नेश्रयित शिष्य-परम्परा बने– इसके लिए आपश्री ने अपनी बुलन्द आवाज में वक्तव्य दिया था। मगर बडे खेद की बात है कि विचार-विनिमय में कोई निर्णय नही हो पाया।

आपश्री की विद्या-वाणी और वपु में भारी आकर्षण था, प्रभाव था, तेज था। आपश्री सभा में विराजते तब वह सिंहगर्जना सुन कर पर पाखण्डियों का मद ओले की तरह गल जाया करता था और श्रद्धालुओं का मन-मयूर नाच उठता था। प्रवचन शैली बहुत सुन्दर थी। सरल तथा प्रभावक थी। शास्त्रीय वांचन आपका प्रमुख विषय था। गम्भीर तथा गूढार्थ को सरल बनाने की अनूठी कला थी। जब आप हेतु-दृष्टांत तथा कथा फरमाते, तब जनता की एकाग्रता और अधिक बढ जाती थी। पांच वर्ष पूर्व बडी सादडी का प्रसंग है। शेष काल में उदयपुर से विहार कर आपश्री के दर्शनार्थ हम तीन सत पहुँचे थे। आपश्री ने हमारे साथ बहुत स्नेहपूर्वक व्यवहार किया। उस समय आपश्री जसमा सती की चौपाई फरमा रहे थे-

राजा आलोके परलोके मारए पति रे
प्रीते परिण्या चौही मारा प्राण
एना शत्रु नु हू कदी मुखड़ू जोती नथी रे।

यह पद्य फरमाते हुए आपश्री ने हाथों का अभिनय किया था कि श्रोता चकित हो गए और हंसी के फव्वारे छूटने लगे। इसी प्रकार अंजना सती का पुनीत चरित्र भी आपश्री अतीव रोचक ढंग से फरमाया करते थे।

आपश्री का वह नश्वर शरीर भले ही बूढा हो गया था, मगर मन, वाणी और पुरुषार्थ से आप युवक प्रतीत होते थे।

न तेन वृद्धो भवति, येनास्य पलितं शिरः।

यह मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया। पांच वर्ष पूर्व आपश्री उदयपुर में विराजते थे। मन्त्री पुष्करमुनिजी ठाणा 5 से आपकी सेवा में विराज रहे थे। आहार-पानी साथ होता था। आहार में कोई पदार्थ न्यूनाधिक होता तो स्वयम् वितरण कर उसे बराबर कर देते। बहुत मुनिराज थे, जिससे समय लग जाता था। फिर भी आपश्री वहीं विराजे रहते, क्योंकि अपनी देखरेख में आहार का कार्यक्रम चलाते थे। उस समय की आपश्री की वात्सल्य-भावना दर्शनीय थी।

उसी वर्ष माघ, फाल्गुन, चैत्र मास में उदयपुर में वीरवाल जैनों की दीक्षा-शिक्षा हेतु लम्बे समय हमें रहना पड़ा। आपश्री शहर के बाहर विराज रहे थे। मैं यथासमय दर्शन करने के लिए गुरुभक्ति की श्रद्धा से बराबर जाता ही रहता था। महापुरुषों के स्नेह, सद्भावना, प्रेम देख मैं सेवा में बैठा करता था। एक बार चर्चा के प्रसंग में आपश्री ने फरमाया कि मेरा यह प्रेम-व्यवहार हीरामुनि ! जैसा तुम्हारे साथ में है वैसा ही मैं सभी मुनियों के साथ रखता हूँ। वे मौलिक वचनामृत आज हमारे जीवन के लिए सुनहरे अक्षरों में लिखने योग्य हैं। मेरा हृदय उस समय गद्गद हो जाया करता था।

वे दिवंगत महापुरुष हमारे बीच नहीं हैं, मगर आज भी उनके सद्गुणों की महक बढ़ रही है। मुझे उन गुणों को प्राप्त करना है जो क्षमा, दया, शील, सन्तोष-गुण उस भण्डार में भरे पड़े थे। आपश्री का शिष्य-परिवार सदा जयवन्त बना रहे। श्रमण संघ का अभिन्न अंग बन कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करे व दिवंगत पुनीत आत्मा, जिसको हमने अपने दिल का देवता बना रखा था, उन्हें भवोभव जैन धर्म की राह मिले। यही हमारी हार्दिक श्रद्धांजली है।

शांतमूर्ति आचार्य सम्राट्

विदुषी महासतीश्री इन्द्रकंवरजी म.

जैन धर्म दिवाकर शान्तमूर्ति आचार्य सम्राट् श्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. भारत की एक महान विभूति थे। आप सच्चे महात्मा, महान योगी, प्रखर तत्त्ववेत्ता, कुशलोपदेशक, धुरंधर विद्वान, महान त्यागी-तपस्वी और कठोर संयम-साधक थे। आपका हृदय अत्यन्त निर्मल और पवित्र था। इस प्रकार गुणसम्पन्न महानात्मा के जीवन के विषय में कुछ लिखना, मेरे जैसी अल्पज्ञ साध्वी के लिए जितना सद्भाग्यपूर्ण है, उतना ही मुश्किल है। उनकी गुण-गरिमा का व्याख्यान करना सूर्य के सामने दीपक दिखाने के तुल्य होगा।

मानव-जीवन के उत्थान के दो पहलू हैं, आचार और विचार। आचार के बिना विचार निष्प्राण रहता है और विचार के बिना आचार। इन दोनों का समतुलन सौभाग्य से ही पहुँची हुई आत्मा में दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की आचार सम्बन्धी कड़क काफी ख्यातिप्राप्त है। जब से आपश्री प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद चारित्रचूड़ामणी श्री 1008 श्री हुकमीचन्दजी म.सा. की परम्परा के सप्तम पाट पर आसीन हुए, तभी से आप कर्तव्य की ओर अधिक जागरूक रहे हैं। आगम में संयम-समाचारी, तप-समाचारी आदि जितनी भी समाचारियों का उल्लेख आया है, उन सबके महत्त्व को यथास्थान सुरक्षित रखा है।

अपनी शासन सम्बन्धी कठोर नीति के कारण आपश्री के मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएं उपस्थित हुईं, किन्तु आपश्री मेरु की भांति अटल रहे और सत्यता की कसौटी पर डटकर विरोधों का सामना किया। आप जिस प्रकार सत्य-सिद्धांत का प्रतिपादन करने में निर्भीक वक्ता थे, उसी प्रकार पालन करने में भी निर्भीक, कर्मठ थे।

पूज्य गुरुदेव की विद्वत्ता, व्याख्यान-गम्भीरता, विवेचनशक्ति की पटुता, सैद्धान्तिक तात्त्विक रहस्योद्घाटन की दक्षता मुख्य विशेषताएं थी। आपश्री के प्रवचनों में एक ऐसी चमत्कारन्विता शक्ति की प्रधानता रही हुई थी, जो कि जैन व जैनेतर, सभी, जनसमुदाय के हृदय-पटल पर समान रूप से अंकित रहती थी, क्योंकि आपश्री अत्यन्त सूक्ष्म तथा जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों को भी श्रोताओं के सामने बडी प्रांजल भाषा और सुगम शैली में ही रखते थे। जैन सिद्धांत के अनुसार "ज्ञानः क्रियाभ्यामोक्ष" आपका अतीव प्रिय वाक्य था, क्योंकि जैन वाङ्मय के गहरे अध्ययन के साथ-साथ आपश्री ने गीता, उपनिषद्, भागवत सरीखे ग्रन्थों से भी आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी, बाइबल और कुरान से भी आप अपरिचित नहीं थे।

इस प्रकार गुणसम्पन्नता के साथ-साथ शरीर-सम्पदा भी यथा-तथा रूप से प्राप्त थी। लम्बा कद, श्यामवर्ण, विशाल भाल, तेजोमय सुदीर्घ नेत्र, चमकता हुआ ललाट, दीर्घ मस्तक, मुखमण्डल की अपूर्व कांति– ये सब आचार्य सम्राट् के भौतिक शरीर की उत्कृष्टता को सूचित करते थे। स्नेहशीलता युक्त आपश्री की बुलन्द आवाज, मानव-मेदिनी को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहती थी। इसका प्रत्यक्षोदाहरण यह है कि सादडी सम्मेलन में विद्वज्जनों की दृष्टि अपना नायक चुनने के लिए आपश्री पर ही टिकी और एक विचार, एक पुकार, एक आवाज से भावभीनी प्रार्थना की। तब श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव ने अपनी वृद्धावस्था और रुग्णावस्था के कारण उस भावभीनी प्रार्थना को मान देते हुए फरमाया कि मैं अपना समय अधिक से अधिक आत्मसाधना में लगाना चाहता हूँ। आप मेरे अलावा किसी विद्वत् सन्त को अपना नायक बनावें। लेकिन श्रद्धाकेन्द्र, चारित्रचूडामणि की तरफ श्रमण वर्ग की भावना काम कर रही थी। उन्होंने पुनः अपने ओजस्वी शब्दों में कहा, इस विशाल संघ समूह का सारा

यह मैंने प्रत्यक्ष अनुभव किया। पांच वर्ष पूर्व आपश्री उदयपुर में विराजते थे। मन्त्री पुष्करमुनिजी ठाणा 5 से आपकी सेवा में विराज रहे थे। आहार-पानी साथ होता था। आहार में कोई पदार्थ न्यूनाधिक होता तो स्वयम् वितरण कर उसे बराबर कर देते। बहुत मुनिराज थे, जिससे समय लग जाता था। फिर भी आपश्री वहीं विराजे रहते, क्योंकि अपनी देखरेख में आहार का कार्यक्रम चलाते थे। उस समय की आपश्री की वात्सल्य-भावना दर्शनीय थी।

उसी वर्ष माघ, फाल्गुन, चैत्र मास में उदयपुर में वीरवाल जैनों की दीक्षा-शिक्षा हेतु लम्बे समय हमें रहना पड़ा। आपश्री शहर के बाहर विराज रहे थे। मैं यथासमय दर्शन करने के लिए गुरुभक्ति की श्रद्धा से बराबर जाता ही रहता था। महापुरुषों के स्नेह, सद्भावना, प्रेम देख मैं सेवा में बैठा करता था। एक बार चर्चा के प्रसंग में आपश्री ने फरमाया कि मेरा यह प्रेम-व्यवहार हीरामुनि ! जैसा तुम्हारे साथ में है वैसा ही मैं सभी मुनियों के साथ रखता हूँ। वे मौलिक वचनामृत आज हमारे जीवन के लिए सुनहरे अक्षरों में लिखने योग्य हैं। मेरा हृदय उस समय गद्‌गद हो जाया करता था।

वे दिवंगत महापुरुष हमारे बीच नहीं हैं, मगर आज भी उनके सद्‌गुणों की महक बढ़ रही है। मुझे उन गुणों को प्राप्त करना है जो क्षमा, दया, शील, सन्तोष-गुण उस भण्डार में भरे पडे थे। आपश्री का शिष्य-परिवार सदा जयवन्त बना रहे। श्रमण संघ का अभिन्न अंग बन कर ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना करे व दिवंगत पुनीत आत्मा, जिसको हमने अपने दिल का देवता बना रखा था, उन्हें भवोभव जैन धर्म की राह मिले। यही हमारी हार्दिक श्रद्धांजली है।

शांतमूर्ति आचार्य सम्राट्

विदुषी महासतीश्री इन्द्रकंवरजी म.

जैन धर्म दिवाकर शान्तमूर्ति आचार्य सम्राट् श्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. भारत की एक महान विभूति थे। आप सच्चे महात्मा, महान योगी, प्रखर तत्त्ववेत्ता, कुशलोपदेशक, धुरंधर विद्वान, महान त्यागी-तपस्वी और कठोर संयम-साधक थे। आपका हृदय अत्यन्त निर्मल और पवित्र था। इस प्रकार गुणसम्पन्न महानात्मा के जीवन के विषय में कुछ लिखना, मेरे जैसी अल्पज्ञ साध्वी के लिए जितना सद्भाग्यपूर्ण है, उतना ही मुश्किल है। उनकी गुण-गरिमा का व्याख्यान करना सूर्य के सामने दीपक दिखाने के तुल्य होगा।

मानव-जीवन के उत्थान के दो पहलू हैं, आचार और विचार। आचार के बिना विचार निष्प्राण रहता है और विचार के बिना आचार। इन दोनों का समतुलन सौभाग्य से ही पहुँची हुई आत्मा में दृष्टिगोचर होता है। आपश्री की आचार सम्बन्धी कड़क काफी ख्यातिप्राप्त है। जब से आपश्री प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद चारित्रचूड़ामणी श्री 1008 श्री हुकमीचन्दजी म.सा. की परम्परा के सप्तम पाट पर आसीन हुए, तभी से आप कर्तव्य की ओर अधिक जागरूक रहे हैं। आगम में संयम-समाचारी, तप-समाचारी आदि जितनी भी समाचारियों का उल्लेख आया है, उन सबके महत्त्व को यथास्थान सुरक्षित रखा है।

अपनी शासन सम्बन्धी कठोर नीति के कारण आपश्री के मार्ग में अनेक विघ्न-बाधाएं उपस्थित हुई, किन्तु आपश्री मेरु की भांति अटल रहे और सत्यता की कसौटी पर डटकर विरोधों का सामना किया। आप जिस प्रकार सत्य-सिद्धांत का प्रतिपादन करने में निर्भीक वक्ता थे, उसी प्रकार पालन करने में भी निर्भीक, कर्मठ थे।

पूज्य गुरुदेव की विद्वत्ता, व्याख्यान-गम्भीरता, विवेचनशक्ति की पटुता, सैद्धान्तिक तात्त्विक रहस्योद्घाटन की दक्षता मुख्य विशेषताएं थी। आपश्री के प्रवचनों में एक ऐसी चमत्कारन्विता शक्ति की प्रधानता रही हुई थी, जो कि जैन व जैनेतर, सभी, जनसमुदाय के हृदय-पटल पर समान रूप से अंकित रहती थी, क्योंकि आपश्री अत्यन्त सूक्ष्म तथा जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों को भी श्रोताओं के सामने बड़ी प्रांजल भाषा और सुगम शैली में ही रखते थे। जैन सिद्धांत के अनुसार "ज्ञानः क्रियाभ्यामोक्ष" आपका अतीव प्रिय वाक्य था, क्योंकि जैन वाङ्मय के गहरे अध्ययन के साथ-साथ आपश्री ने गीता, उपनिषद्, भागवत सरीखे ग्रन्थों से भी आध्यात्मिक प्रेरणा प्राप्त की थी, बाइबल और कुरान से भी आप अपरिचित नहीं थे।

इस प्रकार गुणसम्पन्नता के साथ-साथ शरीर-सम्पदा भी यथा-तथा रूप से प्राप्त थी। लम्बा कद, श्यामवर्ण, विशाल भाल, तेजोमय सुदीर्घ नेत्र, चमकता हुआ ललाट, दीर्घ मस्तक, मुखमण्डल की अपूर्व कांति– ये सब आचार्य सम्राट् के भौतिक शरीर की उत्कृष्टता को सूचित करते थे। स्नेहशीलता युक्त आपश्री की बुलन्द आवाज, मानव-मेदिनी को अपनी ओर आकर्षित किये बिना नहीं रहती थी। इसका प्रत्यक्षोदाहरण यह है कि सादडी सम्मेलन मे विद्वज्जनों की दृष्टि अपना नायक चुनने के लिए आपश्री पर ही टिकी और एक विचार, एक पुकार, एक आवाज से भावभीनी प्रार्थना की। तब श्रद्धेय पूज्य गुरुदेव ने अपनी वृद्धावस्था और रुग्णावस्था के कारण उस भावभीनी प्रार्थना को मान देते हुए फरमाया कि मैं अपना समय अधिक से अधिक आत्मसाधना में लगाना चाहता हूँ। आप मेरे अलावा किसी विद्वत् सन्त को अपना नायक बनावें। लेकिन श्रद्धाकेन्द्र, चारित्रचूडामणि की तरफ श्रमण वर्गों की भावना काम कर रही थी। उन्होंने पुनः अपने ओजस्वी शब्दों में कहा, इस विशाल संघ समूह का सारा

उत्तरदायित्व आपश्री जैसे महापुरुष के कन्धों पर ही रहेगा और हम श्रमण वर्ग यानी इस संघ का प्रत्येक सदस्य आपश्री का सहायक बनकर संघ शोभा के चार चांद लगायेंगे। श्रमण वर्ग के इस अनुरोध को मान देकर श्रमण संघ के कार्य-संचालन की सम्पूर्ण सत्ता के साथ आप उपाचार्य पद पर विभूषित हुए थे।

मानव-जीवन कुशा की नोक पर रखी हुई ओस की बूंद के समान है, जो क्षण-भर में अपने अस्तित्व से रहित हो जाती है। ऐसा जानकर जनजीवन के हृदय-सम्राट् ने अपनी काया के मोह को भी त्याग दिया। असह्य वेदना को कितनी दृढ़ता और धैर्य के साथ सहन किया ! कभी मुख पर म्लानता नहीं आई, कभी जिह्वा से सिसकियां नहीं सुनाई। उनकी कष्टसहिष्णुता को देखकर चिकित्सक वर्ग भी आश्चर्यचकित होकर कहा करता था कि हजार बिच्छुओं का डंक एक साथ लगे ऐसी अक्षप्त वेदना के समय में भी आप वीरभट्ट की भांति जागरूक बनकर रहते थे। इसे कहते हैं अनुपम सहनशीलता।

अन्तिम समय में आपके मुखमण्डल की आभा देदीप्यमान हो उठी, आप पूर्णतया स्वस्थ प्रतीत होने लगे। जैन सिद्धान्त के अनुसार पालथी आसन लगाकर अपने पर लगे दोषों की आलोचना करके, नये दीक्षांत बनकर मन, वचन और काया से प्राणीमात्र के साथ मैत्री-भावना को प्रकट करते हुए "खामेमि सव्वे जीवा" के पाठ का उच्चारण करके संथारा ग्रहण किया।

इस प्रकार लगभग 29 घंटा के संथारे के साथ अमरलोक की ओर प्रयाण किया, यानी पण्डितमरण को प्राप्त हुए। आपश्री ने जैन संस्कृति की रक्षा के लिए और अपने अनुयायियों के हित की तीव्र भावना से प्रेरित होकर भारतभूषण, प्रकांड पंडितरत्न श्री नानालालजी म. सा. रूपी मणी को आचार्य पदरूपी स्वर्ण में अंकित करके एक दक्ष जौहरी का परिचय दिया है। इन महान योगीराज, वर्तमान सन्तशिरोमणि आचार्य को प्राप्त करके चतुर्विध संघ अपने-आप को धन्य मानता है।

स्वर्गीय आचार्यश्री की आत्मा के प्रति मैं क्या मंगलकामना करूं, उनका महान उत्कृष्ट जीवन ही मंगलमय है, जिसके लिए श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने श्रीमद्भगवती सूत्र में श्रीमुख से फरमाया है :

आयरिया उवज्झाएणं भते ! सविसयं सिगणं
अगिलए सांगण्हमाणे,
अगिलाए उवगिण्ह माणे कतिहिं भवग गणेहि,
सिज्झति जाव अंत,
करेति ! गोयमा ! अत्थे गतिए तेणेव भवग्गहणेणं
सिज्झति अत्थे गतिए

दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झति, तच्चं पुण
भवग्गहणं गातिक्क मति

(भगवती, श. 5, उ. 6, सू. 211)

शुद्ध भावना से गच्छ की सार-संभार करने वाला आचार्य तीसरे भव से अवश्य ही मोक्ष प्राप्त करता है। इससे बढ़कर जीवन की सफलता के सम्बन्ध में और कौनसा मंगल प्रमाण हो सकता है। वे लोग भाग्यशाली हैं, जिन्होंने दिवंगत आत्मा के अन्तिम क्षणों मे दर्शन किये। मेरे जैसी महाअभागी कौन होगी जो पिछले 9 साल तक परिस्थितिवश मेवाड़ की पुण्यभूमि में विचरण करती रही, केवल गत वर्ष ही गुरु-आज्ञा से मरुभूमि मे आना पड़ा।

आचार्यदेव ! आप भौतिक देह से भले ही आंखों से ओझल हो गये हों, किन्तु आपका यश रूपी शरीर अमरता को धारण किये हुए सदा के लिए मेरा पथ-प्रदर्शन करता रहेगा और हम सब उस पथ पर आगे बढ कर आत्मकल्याण करें तब ही हमारा सही अर्थ में श्रद्धा-अर्पण करना है।

महानात्मा के प्रति

महासतीश्री रोशनकँवरजी म.सा.

महात्माओ का जीवन जनसाधारण के लिए देन है। उनके जीवन से हमें संसार रूपी सागर से विमुक्त होने की प्रेरणा मिलती है। ऐसे ही उच्च आत्मा जैनाचार्य पूज्यपाद चारित्रचूडामणि श्री गणेशलालजी महाराज हुए हैं, जिनके जीवन पर मैं प्रकाश डाल रही हूँ।

दीनबन्धु, महान् त्यागी, श्रद्धेय श्री 1008 श्री गणेशलालजी म. सा. का जन्म मेवाड़ के सुविख्यात नगर उदयपुर में शुभ सम्वत् 1947 की श्रावण कृष्णा तृतीया को ओसवंस के धर्मनिष्ठ श्री साहबलालजी मारू के घर हुआ। आपकी माता का नाम इन्द्रा था। मां-बाप का दुलारा यही होनहार बालक हमारा हृदय सम्राट् बन कर जैन धर्म का प्राण बना। छोटी ही उम्र में आपकी प्रतिभा जाग उठी। तीव्र बुद्धि के कारण ही आपमें 5 वर्ष की उम्र में ही विद्याध्ययन की उत्कृष्ट भावना जागरुक हो उठी। कुछ अवस्था आने पर आपका विवाह कर दिया गया। किन्तु आपकी रुचि संसार से अलग रहने की थी। हुआ भी ऐसा ही। छोटी उम्र मे उनके माता-पिता व पत्नी का शरीरान्त हो गया। अब उन्हें योगी मार्ग अपनाने में असुविधा

नहीं हुई। 16 वर्ष की अवस्था ही में आपने दीक्षा ग्रहण की। आपकी हार्दिक अभिलाषा पूर्ण हुई। साधना-मार्ग में प्रविष्ट होने पर आप जिज्ञासु बन कर ज्ञानोपार्जन करते हुए सौराष्ट्र पधारे। आपने अनेक भाषाओं का अध्ययन किया। संस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, उर्दू, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं का अध्ययन कर, पूर्ण शिक्षित बन कर जैन धर्म के व अन्य धर्मों के धर्मग्रन्थों का समुचित रूप से अध्ययन किया। तप और साधना आपके जीवन के प्रधान अंग थे। उग्र तपस्वी आचार्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की पाट-परंपरा के अनुसार आपश्री ने ज्योतिपुञ्ज जैनाचार्य, प्रखर विद्वान श्री जवाहरलालजी म.सा. के पश्चात् आचार्य पद को सुशोभित किया।

मैं अबोध आर्या उनके गुण रूपी महान् गौरव-गाथा का उल्लेख करने में असमर्थ हूँ फिर भी भक्ति-वश कहती हूँ। आपकी व्याख्यान-शैली रोचक थी। आपके अमृतमयी उपदेश जनमानस को आकर्षित कर लेते थे। आप सरल और शान्त थे। आपका अनुशासन कठोर था, नियम-उपनियम में किंचित् भी त्रुटि सहन नहीं कर सकते थे, तत्काल दण्ड प्रायश्चित देकर शुद्धि करवाते थे। स्वयम् भी निःसंदेह आत्मशुद्धि करने में सतत प्रयत्नशील थे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि आपका मुख्य लक्ष्य था। क्षमा से आपका जीवन ओत-प्रोत था। जैसे कहा भी है --"क्षमा वीरस्य भूषणम्।" कैसी भी भीषण बाधाएँ आतीं, उन्हें धैर्यपूर्वक सहन करने में तत्पर थे। आपका महान् व्यक्तित्व अनेक चमत्कारों से भरा पड़ा है। जैसे-

आचार्य गणेश गुरु गुण ज्ञान गम्भीर थे।
शान्तचित्त क्षमा विभूषित नम्र सज्जन धीर थे।।

इधर वेदनीय कर्मोदय से आपके शरीर में Cancer (केन्सर) का रोग उत्पन्न हो गया। शरीर शिथिल होता गया। किन्तु शान्ति के साथ अपने कर्मों का कर्ज चुका रहे थे। इसी बीच में भावी व्यवस्था के लिए चतुर्विध संघ ने भावभीनी प्रार्थना गुरुदेव के चरणों में की कि पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी म.सा. को आपश्री वरद हस्त द्वारा विधिवत् युवाचार्य पदवी प्रदान कर व्यवस्था को सम्पूर्णरूपेण दृढ बनाने की महती कृपा करें। पूज्यश्री ने प्रार्थनाओं पर ध्यान देकर पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी म.सा. को श्रमण संस्कृति की सुव्यवस्था के लिए संघ-संचालन का कार्य सौंप दिया। आपश्री आत्मरमण में विशेष तल्लीन रहते थे। आगमों का आदान-प्रदान करते हुए तप-संयम में सजग रहते थे, जैसे शास्त्र में है-

जह दीवो दीव सीयं पइप्पए जसो दीवो।
दीव समा आयरिया, दीव्वंति परं च दीवन्ति।।

अर्थात् आचार्य दीपक के समान होते हैं, जैसे दी[illegible]

स्वयम् भी प्रज्वलित होता है इसी तरह आचार्यदेव अपने ज्ञानादि गुणों से स्वयं दीपते हैं और प्रवचनादि से दूसरों को दिपाते हैं।

श्रद्धेय गुरुदेव अन्तिम समय तक दीपते रहे हैं और शारीरिक भयंकर पीडाओं को सरलता से धैर्यपूर्वक सहन करने में समर्थ हुए। असह्य वेदना में भी आचार-विचार की महान् पराकाष्ठा जगमगा रही थी। 29 घण्टे के संथारे के साथ समाधिपूर्ण पण्डितमरण से सं. 2029 की माघ कृष्णा द्वितीया को 73 वर्ष की आयु में स्वर्ग पधारे।

आज हमारे नेत्रों से उनका नश्वर शरीर ओझल हो गया है परंतु ज्ञानादि गुणो की अलौकिक सौरभ से पूज्यश्री हमारे सन्निकट हैं। हमारी हार्दिक प्रार्थना है कि प्रभु हमें आपके सद्उपदेशों पर और नवीनाचार्यश्री के आदेशों पर चलने की शक्ति प्रदान करें। मनसा, वाचा, कर्मणा आपके निर्धारित मार्ग पर चलेंगी तब ही हमारी श्रद्धांजलि सफल होगी।

साधना-पथ का समुज्ज्वल जीवन

महासती नानूकंवर

चारित्रचूडामणि श्रद्धेय मज्जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. इस प्रगतिशील युग के महान तत्त्ववेत्ता एवं आध्यात्मिक सन्त थे।

आचार्यश्री का जन्म मेवाड भूमि में हुआ था। आपको माता-पिता के द्वारा बाल्यावस्था में ही आध्यात्मिक संस्कार के अमृतमय रस का सिंचन मिला था।

पूज्यश्री का जीवन सर्वांगीण था। क्षमाशील तथा कठोर तप एवं सयमी जीवन वाले थे। आपके प्रवचन में कल्पनाशक्ति आदि सद्‌गुणों का माधुर्य था। शास्त्रो की टीकाओं का विवेचन सुन्दर ढंग से फरमाते थे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की अभिवृद्धि ही आपके जीवन का मुख्य लक्ष्य था। आप जब भी उपदेश फरमाते, सहसा आपश्री के मुखारविन्द से अमृतमयी वाणी के स्रोत का उद्‌गम होता था।

कतिपय वर्षों से आपके शरीर में व्याधि ने घेरा डाल रखा था। धीरे-धीरे केन्सर व्याधि ने उग्र रूप धारण कर लिया। आप समभावपूर्वक सहन करते थे, मुंह से उफ तक नहीं निकला। चिकित्सक वर्ग को भी आश्चर्य हो रहा था। लेकिन आचार्यश्री आत्मजागरण मे तल्लीन थे। उस तपोमयी, शांत मूर्ति के दर्शन कर हमारा हृदय आनन्दविभोर होकर खिल

उठा। अन्तिम समय में शास्त्रीय आधार से चढ़ते परिणामों से संलेखाना संथारा कर पंडितमरण को प्राप्त हुए।

आचार्यश्री क्षणभंगुर देह से हमारे समक्ष नहीं हैं, परन्तु आपके आध्यात्मिक जीवन की स्वर्णमयी सौरभ हमारे सन्निकट है। हम भी स्वर्गीय आचार्यश्री के साधना-पथ को अपनावें तब ही हमारा श्रद्धांजली देना सफल होगा।

आपश्री के उत्तराधिकारी श्रद्धेय परमप्रतापी आचार्यश्री नानालालजी म.सा. सूर्य की भांति *सुशोभित हों, यही मेरी हार्दिक मंगलकामना है।*

शिथिलाचार के कट्टर विरोधी

सेठ मनसाराम जैन, जींद (पंजाब)

आचार्यश्री के निधन से जो क्षति जैन संसार को पहुँची है वह महान है, उसकी पूर्ति सम्भव प्रतीत नहीं होती। इस प्रसंग पर हम हार्दिक वेदना प्रगट करते हैं और शासनदेव से आपश्री की आत्मशांति के लिये प्रार्थना करते हैं।

आचार्यश्री के प्रति श्रद्धा-भक्तिरूप कुछ अर्पित करने की तो हममें सामर्थ्य ही कहां है ! *वे महान थे। साधुता के परम रसिया थे। तो भी चुप्पी तो नहीं साधी जा सकती।*

महाराजश्री की संयम में अटल श्रद्धा, आगमों में दृढ़ विश्वास, परम्परागत धारणाओं में पूर्ण आस्था और अभावरहित प्ररूपणा हमें चिरस्मरणीय रहेंगी। आप बड़े साहसिक थे। श्रीसंघ सम्बन्धी, साध्वाचार संबंधी निर्णयों में बेजोड़ निर्भीकता से आगमसम्मत निर्णय दे डालते थे। *आपको साधुता, संयमाचार, त्यागपूर्ण और निवृत्तिमूलक जीवन ही प्रिय था। शिथिलाचार के* आप कट्टर विरोधी थे। मानव-जन्म सफल बनाना, साधु-जीवन सार्थक बिताना, आत्मज्योति को अधिकाधिक प्रकाशित करना ही आपश्री का ध्येय रहा है। आप जैन संस्कृति के भारी मर्मज्ञ थे, उच्च कोटि के विद्वान थे। यह तो आप को परम्परागत पाट से ही उत्तराधिकार में मिली थी। उच्च कोटि के वक्ता, स्फूर्ति उत्पादक लेखक, शंका-सामाधान करने में प्रवीण थे आप।

व्याख्यान वाचस्पति श्री स्वामी मदनलालजी महाराज के कारण आपश्री की हम पर भारी कृपादृष्टि रहती रही है जिसके लिये हम आपश्री के परम आभारी रहेंगे। हम विशुद्ध जैन

संस्कृति में विश्वास रखते हैं। जैनागमो में पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। आगमसम्मत धारणा, प्ररूपणा, श्रद्धान में ही आस्था रखते हैं। आज के मनमाने अर्थ, परमार्थ, शिथिलाचार, नये मोड़ दिये हुए आचार-विचार हमें अभीष्ट नहीं हैं। इन्हीं कारणों से आचार्यश्री के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा रखते रहे हैं। ठीक यही आशा हमें युवाचार्य म.सा. से भी है। हमे पूर्ण विश्वास है कि युवाचार्यश्री जैन संसार में आदर्श साध्वाचार की प्रतिष्ठा प्रसारित करने में पूर्ण सफल होंगे।

सच्ची श्रद्धांजली

हीरालाल नांदेचा, खाचरोद

इस संसार में अनन्त जीव जन्म लेते हैं और मरते हैं, लेकिन उन्हीं महापुरुषों की चिरस्मृति रहती है जो अपने जीवनकाल मे कुछ आदर्श रख जाते हैं। पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब एक आदर्श साधु थे जो हमेशा हंसमुख रहते थे और ज्ञान, दर्शन, चारित्र की तरफ लक्ष्य रखते हुए अपना शुद्ध संयम पालते थे। वे चाहते थे कि साधुमार्गी समाज की तरक्की हो। इसके लिए वे अपनी मर्यादा में रहकर वक्त-वक्त पर सुझाव भी देते थे। लेकिन समाज उनके विचारानुसार अमल नहीं कर सका। यदि समाज उनकी आज्ञा का पालन करता तो स्थानकमार्गी समाज का एक आदर्श संगठन होता। खैर, वे अपने विचार समाज को देते हुए अपनी आत्मसाधना मे लीन रहे। महाराजश्री के अनुयायी उनके विचारों को अपनाएंगे और सक्रिय कदम उठाने में कसर नहीं रखेंगे। यही महाराजश्री के प्रति श्रद्धांजली अर्पित है।

सच्ची श्रद्धांजलि

इन्द्रनाथ मोदी, जज, हाईकोर्ट (राजस्थान), जोधपुर

पूज्यश्री के देहावसान की खबर सुनकर मुझे व यहाँ के सभी लोगों को अत्यधिक दुःख पहुँचा है। महाराजश्री ने जैन धर्म की जो सेवा की है वह चिरस्मणीय रहेगी। वे ज्ञान, ध्यान, शान्ति, त्याग व समभाव के मूर्तरूप थे। उनके निधन से समूचे जैन समाज को ऐसी क्षति

पहुँची है जिसका निकट भविष्य में पूरा होना कठिन-सा प्रतीत होता है। वीर प्रभु से यही प्रार्थना है कि पूज्यश्री की आत्मा चिरशांति को प्राप्त हो।

सच्ची श्रद्धांजली

जवाहरलाल मूनोत, अमरावती

सारे जैन समाज और मुख्यतया स्थानकवासी जैन समाज के वर्तमान इतिहास में श्री गुरुदेव के कार्य और प्रतिभा का मूल्यांकन तो भविष्य ही करेगा। शायद मैं इस का अधिकारी भी नहीं, परन्तु उनके सम्पर्क और दर्शन से प्रेरणा पाने वाले साधारण श्रावक के नाते स्वयं मेरा शोक उनके हजारों श्रावक-श्राविकाओं के शोक के साथ आज एकरस हो गया है।

इस शोकाकुल समय में श्री गुरुदेव के प्रति सही श्रद्धांजली का प्रतीक भी यही होगा कि हम सब उन सब आदर्शों और विश्वासों के लिये जीयेंगे, जो श्री गुरुदेव को उनके इस जीव-योनि में संतोष और समाधान देते थे। इस अवसर पर मैं यह भी प्रार्थना दुहराता हूँ कि श्री गुरुदेव के उत्तराधिकारी व सभी अनुयायी श्रावक-श्राविकाएं उस दिन को पास लाने के लिए कृत-संकल्प रहें जब सारा स्थानकवासी समाज फिर से एक नेतृत्व और समाज-कल्याण की दृढ-निश्चयी प्रतिज्ञा में अधिकाधिक समाजोपयोगी और आत्म-कल्याण के मार्ग प्रशस्त करेगा।

सच्ची श्रद्धांजली

आनन्दराज सुराणा, प्रधानमंत्री, श्री अ. भा. स्था. जैन कांफ्रेंस, नई दिल्ली

महातेजस्वी परमप्रतापी पूज्य आचार्यश्री श्रीलालजी म.सा. तथा जैन समाज के ज्योतिपुन्ज पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. का मैं एक विनम्र सेवक, उपासक और भक्त रहा हूँ। पूज्य गणेशलालजी म.सा. भी उन्हीं के आज्ञानुवर्ती, आध्यात्मिक नेता और संयममूर्ति संत होने के कारण मैं उनका भी भक्त-शिष्य कहलाने में गौरव अनुभव करता रहा हूँ। व्यक्तिगत रूप से

विचारभेद होने पर भी मैं उनकी सरलता, सौम्यता और अहिंसा, संयम और तप की स
के प्रति जागरूकता की ओर हमेशा आकृष्ट और प्रभावित रहा हूँ। श्रमण संघ के निम
उनकी त्यागवृत्ति और एकनिष्ठता देख कर मेरी आत्मा उनके चरणों में सहज ही झुक
है। उनके निधन से मुझे कितना आघात पहुँचा है, यह मैं स्वयं ही जानता है
श्रमण-शिरोमणी थे, आध्यात्मिक थे, और थे साधुत्व और जैनत्व के प्रखर प्रहरी। वे भं
शरीर से हमारे बीच नही होने पर भी अहिंसा, संयम और तप की सजीव मूर्ति होने के
आज भी हमारे बीच में ही हैं। उनकी पुण्यात्मा की अमर वाणी आज भी हमें मार्गदर्शन
सचेत करती रहेगी, ऐसी मुझे पूर्ण आशा है। श्रमण संघ की एकता और अखण्डता के
उनके हृदय में जो अन्तर्भावना थी, उसको फलीभूत करने में उनके हम जैसे अनुयायी स
कदम उठाने में कसर नहीं रखेंगे, यही उनके प्रति सच्ची श्रद्धांजली होगी।

सच्ची श्रद्धांजली

शांतिलाल व. शेठ, संपादक, जैन प्रकाश, नई दि

पूज्यपाद श्री गणेशलालजी म.सा. का भौतिक शरीर अब नहीं रहा है। लेकिन उ
अहिंसा, संयम और तप की दीर्घकालीन जीवन-साधना की है। उनका गौरव-गरिम
यशःशरीर आज हमारे समक्ष है।

पूज्य गणेशलालजी म.सा. न केवल जैन समाज के, अपितु समस्त भारतवर्ष के त
संत थे। एक दृष्टि से कहा जाय तो वे श्रमण संस्कृति के प्रतिनिधि संत थे। उन्होंने
ही छोटी आयु में भागवती दीक्षा अंगीकार की और जीवन के अंतिम क्षणों तक अहिंसा,
और तप के परिपालन द्वारा अपनी जीवन-साधना को सफलीभूत किया। स्व. पू. आचा
जवाहरलालजी म.सा. जैन समाज के ज्योतिपुंज, प्रकाशमान नक्षत्र थे। पूज्य जवाहरला
म.सा. ने धर्म की, परम्परा की और समाज की रूढ़िगत भावनाओं को बदल कर धर्म की
व्याख्या को उपस्थित किया और उनकी जैनत्व की नूतन विचारधारा ने सारे देश और स
को प्रभावित किया।

आपश्री भी उसी प्रभावशाली, प्रतापी पू. श्री की पाट-परम्परा पर प्रतिष्ठित किए गये
उनके प्रतिनिधि बनकर समाज में आचार और विचार की उदात्त परम्परा को निभाये रखने
महान प्रयत्न किया। आपमें विचार की उदारता और आचार की सुदृढता थी।

पूज्यश्री के निधन से भारत ने एक आध्यात्मिक संत और जैन समाज ने अपना आध्यात्मिक नेता गंवा दिया है। समाज की जो क्षति हुई, उसकी निकट भविष्य में पूर्ति होना संभव नहीं है।

हम उनके अहिंसा, संयम और तप के गौरवपूर्ण व्यक्तित्व के प्रति विनम्र होकर श्रद्धांजली अर्पित करते हैं और आत्मा को शाश्वतिक शांति प्राप्त हो, यह कामना करते हैं।

सच्ची श्रद्धांजली

मेहता कन्हैयालाल हिम्मतलाल, मंदसौर

प्रातःस्मरणीय, परम श्रद्धेय, चारित्रचूड़ामणि श्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. ज्ञान, दर्शन, चारित्र तथा तप के प्रकाशपुञ्ज थे। आपका आत्मबल अद्वितीय था। आज जैन समाज को इस महापुरुष के नहीं होने से जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति होना असंभव है। शासनदेव से प्रार्थना है कि दिवंगत आत्मा को शांति प्रदान करें व उनके द्वारा दिये गये उपदेशों का हम सब सहृदय पालन कर सकें, ऐसी शक्ति प्रदान करें। इस प्रकार हम श्री व. स्था. जैन सेवा संघ की ओर से हृदयसम्राट् के प्रति अपनी श्रद्धा के पुष्प समर्पित करते हैं।

सच्ची श्रद्धांजली

पं. सूर्यभानु हारीत, अध्यापक, श्री जैन पाठशाला, बीकानेर

श्रीमान् परम पूजनीय, विद्वद्वर श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज बहुत ही तपस्वी महात्मा थे। उनकी वक्तृत्व कला अपूर्व थी। जिसे उन्होंने अपने गुरु महाराजश्री जवाहरलालजी से प्राप्त किया था। हम उनके गुणों का कहां तक वर्णन कर सकते हैं ? निम्नलिखित श्लोक ही उनकी प्रसंशा के लिये उपयुक्त हो सकता है :-

असित गिरि समंस्यात्कज्जलं सिन्धु पात्रे
सुरतरुवर शाखां लेखिनी पत्रमूर्वि,

लिखति यदि ग्रहीत्वा शारदा सर्वकालम्,
तदपि तव गुणानामीश पारं न याति।।

महाराजश्री नानालालजी से भी हम इस विकट समय में अधिक आशा रखते हैं।

सर्वे सन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदद्‌दुःख भाग्भवेत्।।

सच्ची श्रद्धांजली

जवाहरलाल लालचंद मुथा, गुलेदगुड़

पूज्य गुरुदेव उपाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के स्वर्गवास का सामाचार रेडियो द्वारा सुनकर अत्यन्त दुःख हुआ। श्रीसंघ में भी शोक छा गया। आप एक महान विभूति थे। आप ज्ञानवृद्ध सरल, प्रेममय थे। श्रमण संघ सम्बन्धी अपना कर्तव्य निष्पक्ष रूप से आपने बजाया। श्रमण संघ संगठन सुव्यवस्थित-सुदृढ बनाने के बारे में आपके विचार सही थे। हम एक महान् संत को खो बैठे जिससे समाज में बडी क्षति हुई है। उसकी पूर्ति निकट भविष्य में असम्भव-सी है। अंत में श्रद्धांजली अर्पित करता हुआ स्वर्गस्थ आत्मा को अक्षय शान्ति मिले, ऐसी कामना करता हूँ।

सच्ची श्रद्धांजली

कन्हैयालाल मुलावत, मंत्री, साधुमार्गी जैन संघ, भीलवाड़ा

प्रायः हमारी प्रवृत्ति-सी हो गई है कि महान आत्माओं के जीवनकाल में उनके महान व्यक्तित्व द्वारा सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्र को उज्ज्वल व उन्नत बनाने हेतु आदेशित उपदेशो की हम उपेक्षा करते रहते हैं। यही नहीं, प्रतिष्ठा का प्रश्न बनाकर विरोध करते हैं, कषाय वृत्ति बढ़ाकर घृणात्मक आलोचना करते हैं और जब वही महान् आत्मा स्वर्गारोहण कर जाती है तो हमें सद्‌बुद्धि आती है और उनके गुणानुवाद करते हैं।

इसको अज्ञानता कहें या और कुछ ! नि.संदेह ऐसी दुष्प्रवृत्तियों से हमारे परिवार, संघ, राष्ट्र का अध.पतन हुआ है। यदि उनके जीवनकाल में ही निर्देशानुसार चलने की सद्बुद्धि हमें आजावे तो कितना कल्याणप्रद हो सकता है– यही मननीय विषय है।

ठीक ऐसी कुप्रथा का दुष्परिणाम हमारा स्थानकवासी समाज भोग रहा है।

जैन संस्कृति के उन्नायक, स्थानकवासी जैन जगत् के सम्राट्, परम श्रद्धेय स्वर्गीय पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. के सर्वोच्च चारित्र, विद्वत्ता, दयालुता का आज भारत-भर का प्रत्येक वर्ग गुणगान कर महान शोक मना रहा है।

काश ! यह सद्बुद्धि हमें उनके जीवनकाल में आजाती तो आज जो दशा बनाई गई, वह नहीं बनती।

शान्त क्रांति के अग्रदूत, श्रमण संस्कृति के रक्षक, अहिंसा, संयम, तप की साक्षात् मूर्ति एवम् सुसंगठन के प्रवल हिमायती श्रद्धेय आचार्यश्रीजी का भौतिक शरीर यद्यपि आज नहीं है, फिर भी उनके प्रेरणात्मक संदेशो पर अमल कर हम अपना कल्याण कर सकते हैं और यही सच्ची श्रद्धांजली हो सकती है।

सच्ची श्रद्धांजली

चांदमल नाहर, छोटी सादड़ी

परम प्रतापी पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज सा. का स्वर्गवास होने की आकाशवाणी द्वारा सूचना सुनते ही सारा समाज शोकातुर हो गया।

श्रद्धेय पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज साहब अहिंसा, संयम व तप की साक्षात् मूर्ति एवं एक महान आध्यात्मिक संत थे।

आपश्री का स्वर्गवास हो जाने से जैन समाज ने एक महापुरुष खो दिया है। पूज्यश्री जैन संस्कृति के युगद्रष्टा एवं युगस्रष्टा थे। आपश्री की निकट भविष्य में कमीपूर्ति होना असंभव है। मैं श्रद्धेय पूज्यश्री को अपनी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करता हुआ स्वर्गस्थ आत्मा के लिये शांति की कामना करता हूँ।

सच्ची श्रद्धांजली

मनोहरलाल पोखरना, चित्तौड़गढ़ (राजस्थान)

इस विश्व में अनेक ऐसे त्यागी महापुरुष हुए हैं, जिनके सच्चे परोपकारितापूर्ण कार्य इस नाशवान सृष्टि के अज्ञान रूपी अन्धकार से पूर्ण पथ के लिए एक दिव्य प्रकाशमान और स्थिरदीपक की भाँति मानव-जाति के लिए अत्यंत प्रेरणात्मक रहे हैं। जिनके त्यागमय आचरण और सचोट साधुवादिता और परोपकार की प्रवृत्ति व पूर्ण अविराम लगन ने जन-जन के मस्तिष्क में धर्म-भावना को जागरूक कर आत्मबोध के द्वारा आत्मकल्याण की ओर ले जाने में आदर्श पथ-प्रदर्शन किया है। सच है, महापुरुषों का जीवन प्रेरणा और मार्गदर्शन का स्रोत होता है। ऐसे दिव्य महापुरुषों में स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब का सर्वोत्कृष्ट स्थान रहेगा। उन्होंने जीवनपर्यन्त समाज, राष्ट्र और जनमानस के मस्तिष्क में धर्म-भावना को जागरूक करने का अथक प्रयास किया। 11 जनवरी की रात्रि को जब आचार्यश्री के स्वर्गवास का सन्देश राष्ट्र-भर में पहुँचा तो शोक की लहर दौड़ गई। हमारा कर्तव्य है कि हम पूज्यश्री की प्रेरणाओं और उनके महान् कार्यों को मूर्तरूप दिए जाने हेतु 'संघ' का संगठन सुदृढ कर उनकी स्मृति में विशाल सामुदायिक योजनाएं बनाएं और उनके प्रति अपनी अनुपम श्रद्धांजली अर्पित करें। और पं. रत्न आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी महाराज साहब को स्वर्गीय आचार्यश्रीजी की कल्पनाओं को मूर्तरूप देने में पूर्ण सहयोग करें।

सच्ची श्रद्धांजली

मेहता बुधसिंह बैद, बीकानेर

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य गुरुदेवश्री श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज साहब के स्वर्गवास से केवल स्थानकवासी जैन समाज में ही नहीं, परन्तु तमाम जैन समाजों में अथवा यों कहा जाय तो भी अतिशयोक्ति नहीं होगी कि तमाम मजहबों की समाजों में बड़ी क्षति पहुँची है, जिसकी निकट भविष्य में पूर्ति होनी कठिन है। उन महात्मा में अनन्त गुण थे जो मेरी एक

जिह्वा से क्या, बल्कि अनेक जिह्वाओं से भी पूर्णतया वर्णित नहीं किये जा सकते। आचार्य महाराज की आठ सम्प्रदाय शास्त्र में चली हैं। वे प्रायः उन महात्मा में पाई जाती थी। इस समय उन महात्मा की तुलना रखने वाला मुझे तो पाया नहीं जाता। इस सम्बन्ध में प्रातःस्मरणीय श्रीमद् आचार्य गुरुदेव पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज, जो प्रातःस्मरणीय पूज्यश्री हुक्मीचंदजी महाराज साहब के पंचम पाट पर महाप्रतापी और प्रभावक आचार्य हो गये हैं, उनकी दीर्घदृष्टि की प्रशंसा किये बिना मेरी कलम नहीं रुकती। जब पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. संसार में बाल-अवस्था में ही थे उस समय पूज्य गुरुदेवश्री श्रीलालजी म.सा. उदयपुर पधारे तब उन्होंने श्री सायबलालजी, जो पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. के पिताश्री थे, उनको फरमाया कि यह आपका बालक संसार में रहने वाला नहीं, साधू होगा और जैन मार्ग को अच्छा दीपायगा। जब दीक्षा धारण करली तब पूज्य गुरुदेव श्री जवाहरलालजी म.सा. को फरमाया, "जवाहरलालजी यह अपनी सम्प्रदाय में बहुत योग्य साधू है, इनको जितना पढ़ाओगे उतना ही आपको आनन्ददायक होगा।" तात्पर्य यह है कि उन महात्मा पुरुष की भविष्यवाणी पूर्णतया सफलता को प्राप्त हुई। पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. केवल अपनी सम्प्रदाय के साधुओं से ही नहीं, परन्तु अन्य सम्प्रदाय के साधु-महात्माओं से भी, जिनका आचार-विचार सुन्दर होता उन सब से, पूर्ण प्रेम रखते थे।

पूज्यश्री पूर्ण वैरागी, त्यागी और दृढ़ प्रतिज्ञा वाले थे। यहां तक कि जब-कभी अपना हस्तदीक्षित शिष्य भी अपने दोषों का प्रायश्चित्त लेने में इनकार हो जाता तो फौरन सम्भोग से अलग करने में विलम्ब नहीं करते। उनका फरमाना रहता था कि मैं अच्छे चरित्र और विचार रखने वालों का साथी हूँ, चाहे मैं अकेला ही क्यों न रह जाऊं। उन महात्मा की मुझ पर भी परम कृपा थी। जब-कभी मैं उन महात्मा का चरण भेटने को जाता, तब बहुधा फरमाया करते थे कि किसी विषय में भी मेरी बाबत कोई सूचना हो तो करो, किसी किस्म का संकोच न करना इत्यादि। अतः मैं योग्य न होता हुआ भी उन महात्मा की कृपा का ऋणी हूँ और रहूँगा। पूज्यश्री की इस प्रकृति से स्पष्ट है कि वो महात्मा पूर्ण खटके वाले थे यानी मुझको अपनी गलती न मालूम पड़ती हो तो दूसरों के जरिये मालूम हो जाय। उन महात्मा के स्वर्गवास हो जाने से जितना अफसोस है, उसके साथ प्रसन्नता भी है, क्योंकि इन महात्मा का अपूर्व पंडितमरण हुआ, जिस अनुमान से पाया जाता है कि पूज्यश्री की आत्मा शीघ्र मोक्ष पहुँचने वाली है। अन्तिम वीर प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि स्वर्गवासी आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले यानी मोक्ष प्राप्त होवे और उनके उत्तराधिकारी आचार्य नानालालजी महाराज में, जो महाप्रभाविक साधुओं में से हैं, उनका पाट दीपाने की पूर्ण शक्ति पैदा हो। ॐ शान्ति शान्ति

सच्ची श्रद्धांजली

चम्पालाल कोचर, I.A.S., जिलाधीश, बीकानेर

आदरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज के स्वर्गवास से जैन समाज को भारी क्षति हुई है। यद्यपि मैं उनके निकट सम्पर्क में नहीं आ सका फिर भी उनके यशोगान को सुनने का काफी मौका मिला। उनके सौम्य स्वभाव व गुणों की बडी प्रशंसा है। आशा है, जैन समाज व अन्य श्रद्धालु सज्जन उनका यत्किञ्चित् अनुकरण करने का प्रयास करेंगे।

सच्ची श्रद्धांजली

डाक्टर मेघराज शर्मा, एच.एम.वी., रिटायर्ड ओनरेरी मजिस्ट्रेट, बीकानेर (राजस्थान)

परम श्रद्धेय आचार्यवर श्री गणेशलालजी महाराज महातपस्वी, त्यागमूर्ति, सर्वगुणसम्पन्न थे, आप दया-दान के प्रचारक थे। संस्कृत के प्रगाढ़ विद्वान, सरल प्रकृति के श्रीगणेशमूर्ति थे। आपके प्रवचनों से श्रोतागण सुन्दर भाषण श्रवण करके मुग्ध हो जाते थे। आप जैन के अतिरिक्त अन्य समाज वाले सज्जनों को भी समदृष्टि से देखते थे। आपकी क्रियापालना बडी कठिन थी। आप उग्र विहार करते थे। शीतकाल और ग्रीष्मकाल में भी ग्राम-ग्राम, देश-देश में जो दया-धर्म का डंका बजाया है, वह प्रशंसनीय है। मुझे भी आपके दर्शन तथा प्रवचनों से हार्दिक प्रेम था, क्योकि मैंने रुग्णता के समय कई बार चिकित्सा करके औषधि आदि द्वारा सच्चे हृदय से सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया है।

इन श्री पूज्यवरजी की जितनी महिमा करें उतनी ही थोडी है। वास्तव में आप उच्च कोटि के सद्बुद्धि के सागर, विद्या के भंडार, धर्म के मर्मज्ञ, परोपकारी, सच्चा मार्ग दिखलाने वाले महापुरुष थे। आपके स्वर्गवास के समाचार सुनते ही मन में बडी चिन्ता हुई। मैंने भी अपने औषधालय में पांच मिनट तक मौन धारण करके श्रद्धांजली अर्पण की और उसी रोज बंधी रखी और उपवास भी किया था। परमात्मा से मेरी यही नम्र प्रार्थना है कि उस आत्मा को सद्गति प्रदान करें।

जिह्वा से क्या, बल्कि अनेक जिह्वाओं से भी पूर्णतया वर्णित नहीं किये जा सकते। आचार्य महाराज की आठ सम्प्रदाय शास्त्र में चली हैं। वे प्रायः उन महात्मा में पाई जाती थी। इस समय उन महात्मा की तुलना रखने वाला मुझे तो पाया नहीं जाता। इस सम्बन्ध मे प्रात.स्मरणीय श्रीमद् आचार्य गुरुदेव पूज्यश्री 1008 श्री श्रीलालजी महाराज, जो प्रात.स्मरणीय पूज्यश्री हुक्मीचंदजी महाराज साहब के पंचम पाट पर महाप्रतापी और प्रभावक आचार्य हो गये हैं, उनकी दीर्घदृष्टि की प्रशंसा किये बिना मेरी कलम नहीं रुकती। जब पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. संसार में बाल-अवस्था में ही थे उस समय पूज्य गुरुदेवश्री श्रीलालजी म.सा. उदयुपर पधारे तब उन्होंने श्री सायबलालजी, जो पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. के पिताश्री थे, उनको फरमाया कि यह आपका बालक संसार में रहने वाला नहीं, साधू होगा और जैन मार्ग को अच्छा दीपायगा। जब दीक्षा धारण करली तब पूज्य गुरुदेव श्री जवाहरलालजी म.सा. को फरमाया, "जवाहरलालजी यह अपनी सम्प्रदाय में बहुत योग्य साधू है, इनको जितना पढ़ाओगे उतना ही आपको आनन्ददायक होगा।" तात्पर्य यह है कि उन महात्मा पुरुष की भविष्यवाणी पूर्णतया सफलता को प्राप्त हुई। पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. केवल अपनी सम्प्रदाय के साधुओं से ही नहीं, परन्तु अन्य सम्प्रदाय के साधु-महात्माओं से भी, जिनका आचार-विचार सुन्दर होता उन सब से, पूर्ण प्रेम रखते थे।

पूज्यश्री पूर्ण वैरागी, त्यागी और दृढ प्रतिज्ञा वाले थे। यहां तक कि जब-कभी अपना हस्तदीक्षित शिष्य भी अपने दोषों का प्रायश्चित्त लेने में इनकार हो जाता तो फौरन सम्भोग से अलग करने में विलम्ब नहीं करते। उनका फरमाना रहता था कि मैं अच्छे चरित्र और विचार रखने वालों का साथी हूँ, चाहे मैं अकेला ही क्यों न रह जाऊं। उन महात्मा की मुझ पर भी परम कृपा थी। जब-कभी मैं उन महात्मा का चरण भेटने को जाता, तब बहुधा फरमाया करते थे कि किसी विषय में भी मेरी बाबत कोई सूचना हो तो करो, किसी किस्म का संकोच न करना इत्यादि। अतः मैं योग्य न होता हुआ भी उन महात्मा की कृपा का ऋणी हूँ और रहूँगा। पूज्यश्री की इस प्रकृति से स्पष्ट है कि वो महात्मा पूर्ण खटके वाले थे यानी मुझको अपनी गलती न मालूम पड़ती हो तो दूसरों के जरिये मालूम हो जाय। उन महात्मा के स्वर्गवास हो जाने से जितना अफसोस है, उसके साथ प्रसन्नता भी है, क्योकि इन महात्मा का अपूर्व पंडितमरण हुआ, जिस अनुमान से पाया जाता है कि पूज्यश्री की आत्मा शीघ्र मोक्ष पहुँचने वाली है। अन्तिम वीर प्रभु से मेरी प्रार्थना है कि स्वर्गवासी आत्मा को पूर्ण शान्ति मिले यानी मोक्ष प्राप्त होवे और उनके उत्तराधिकारी आचार्य नानालालजी महाराज में, जो महाप्रभाविक साधुओं में से हैं, उनका पाट दीपाने की पूर्ण शक्ति पैदा हो। ॐ शान्ति शान्ति

सच्ची श्रद्धांजली

चम्पालाल कोचर, I.A.S., जिलाधीश, बीकानेर

आदरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज के स्वर्गवास से जैन समाज को भारी क्षति हुई है। यद्यपि मैं उनके निकट सम्पर्क में नहीं आ सका फिर भी उनके यशोगान को सुनने का काफी मौका मिला। उनके सौम्य स्वभाव व गुणों की बड़ी प्रशंसा है। आशा है, जैन समाज व अन्य श्रद्धालु सज्जन उनका यत्किञ्चित् अनुकरण करने का प्रयास करेंगे।

सच्ची श्रद्धांजली

डाक्टर मेघराज शर्मा, एच.एम.वी., रिटायर्ड ओनरेरी मजिस्ट्रेट, बीकानेर (राजस्थान)

परम श्रद्धेय आचार्यवर श्री गणेशलालजी महाराज महातपस्वी, त्यागमूर्ति, सर्वगुणसम्पन्न थे, आप दया-दान के प्रचारक थे। संस्कृत के प्रगाढ विद्वान, सरल प्रकृति के श्रीगणेशमूर्ति थे। आपके प्रवचनों से श्रोतागण सुन्दर भाषण श्रवण करके मुग्ध हो जाते थे। आप जैन के अतिरिक्त अन्य समाज वाले सज्जनों को भी समदृष्टि से देखते थे। आपकी क्रियापालना बड़ी कठिन थी। आप उग्र विहार करते थे। शीतकाल और ग्रीष्मकाल मे भी ग्राम-ग्राम, देश-देश में जो दया-धर्म का डंका बजाया है, वह प्रशंसनीय है। मुझे भी आपके दर्शन तथा प्रवचनों से हार्दिक प्रेम था, क्योंकि मैने रुग्णता के समय कई बार चिकित्सा करके औषधि आदि द्वारा सच्चे हृदय से सेवा का सौभाग्य प्राप्त किया है।

इन श्री पूज्यवरजी की जितनी महिमा करें उतनी ही थोडी है। वास्तव में आप उच्च कोटि के सद्बुद्धि के सागर, विद्या के भंडार, धर्म के मर्मज्ञ, परोपकारी, सच्चा मार्ग दिखलाने वाले महापुरुष थे। आपके स्वर्गवास के समाचार सुनते ही मन में बडी चिन्ता हुई। मैंने भी अपने औषधालय में पांच मिनट तक मौन धारण करके श्रद्धांजली अर्पण की और उसी रोज बंधी रखी और उपवास भी किया था। परमात्मा से मेरी यही नम्र प्रार्थना है कि उस आत्मा को सद्गति प्रदान करें।

सच्ची श्रद्धांजली

मुन्नालाल लोढ़ा 'मनन', वीर प्रिंटिंग प्रेस, पाली

श्रीमान् जैनाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के स्वर्गवास पर हम हार्दिक शोक प्रकट करते हैं। आप जैन संसार की एक महान विभूति, त्याग-तपस्या-क्रिया-उपासना के अग्रदूत थे। शिथिलाचार के विषय में तो आप कट्टर विरोधी थे जो समय पड़ने पर आपने बहुत बड़ी पदवी उपाचार्य पद छोडने में कोई परवा नहीं की और अपने कई शिष्यों का भी त्याग करने में हिचकिचाहट नही की जो कि स्थानकवासी जैन मुनियों व समाज के सामने उपासक का एक आदर्श उपस्थित किया है। आपके स्वर्गवास से जैन समाज में भारी कमी पड़ी है। हम शासनदेव से प्रार्थना करते हैं कि स्वर्गीय आत्मा को शान्ति प्रदान करें और इस महान विभूति की समाज में शीघ्र से शीघ्र पूर्ति हो, यही हमारी हार्दिक अभिलाषा है और इस शुभकामना के साथ हम श्रद्धांजली अर्पित करते हैं कि आचार्यश्री की ज्ञान-ध्यान तथा आचार-विचार की साधना सदैव हमारा मार्गदर्शन करती रहे।

सच्ची श्रद्धांजली

रामरतन कोचर, सदस्य अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी, बीकानेर

परम श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री गणेशलालजी महाराज के निधन से जैन समाज की ही नहीं, राष्ट्र की क्षति मानता हूँ। जब इस समय मे संसार हिंसा में लिप्त हो रहा है, वह इस समय अहिंसा का सन्देश ग्राम-ग्राम में फैला रहे थे। उन्होंने अपने गुरुवर आचार्यवर श्री जवाहरलालजी महाराज के चरणों में रहकर जो प्राप्त किया उसी के द्वारा समाज और देश की सेवा की। पूज्यवर श्री जवाहरलालजी महाराज की याद को भुला तो नहीं सके, लेकिन उनके द्वारा वतलाये हुए मार्ग पै अपने तपोबल द्वारा समाज और देश को पूर्ण सन्तोष दिलवाते रहे।

इन दोनों महापुरुषों को निकट से देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। पूज्यवर श्री गणेशलालजी की क्षति निकट में पूरी नहीं हो सकती। मैं अपनी श्रद्धांजली अर्पण करता हूँ।

सच्ची श्रद्धांजली

तोलाराम भूरा, देशनोक

सन्त शिरोमणी, जैन जगत् के भास्कर, परम प्रतापी धर्माचार्य पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. के निधन से जैन जगत् को जो अपूरणीय क्षति हुई, उसकी पूर्ति होनी निकट भविष्य में दुर्लभ है। आप महान् विभूति एवं सरलता के प्रतीक थे। आपका विचार था कि पवित्र और निर्मल संयम-पालन ही साधु-जीवन का परम और चरम लक्ष्य होना चाहिए। आज उनका भौतिक शरीर हमारे बीच में नहीं है, यह हमारा दुर्भाग्य है। परन्तु उनका आदर्शमय जीवन हमारे सामने है। महापुरुष अपने आदर्श जीवन द्वारा ही अमर रहते हैं। हमें अगर उनके प्रति सच्ची श्रद्धा प्रकट करनी है तो उनके दिखाये मार्ग पर चलने की कोशिश करें। उनके दिखाये मार्ग पर चलना और उनके आदर्श का सम्मान करना ही उनके प्रति सच्ची श्रद्धा करना है।

सच्ची श्रद्धांजली

उगमराज मेहता, जोधपुर

पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. के स्वर्गवास का समाचार सुनकर आत्मा को बड़ा अधिक दुख पहुँचा। महात्माजी के त्याग-तपस्या और उनकी सेवा हमारे हृदय में सदैव बनाई रखी गयी, क्योंकि वे महान् आत्मा थे। उनकी तुलना करने के लिए इस संसार में कोई व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता है। परन्तु उनका दिया हुआ उपदेश हम लोगों को हमेशा मार्ग दिखलाता रहेगा।

मेरी वीतराग प्रभु से यह प्रार्थना है कि पूज्यश्री की आत्मा को शांति प्रदान करें।

सच्ची श्रद्धांजली

पं. सुजानमल गोस्वामी, साहित्य सुधाकर, मंत्री,
श्री राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन, बीकानेर

परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, श्रद्धेयास्पद, तप-पुञ्ज, योगीश्वर श्री गणेशलालजी महाराज भारत भूमि के एक सुप्रसिद्ध महात्मा थे। आपके पुनीत प्रवचनों को सुनने का मुझे भी कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके प्रवचनों में जादू का-सा असर था। आप दया-धर्म के एकमात्र उपासक थे। जैन धर्म के तत्त्वों के ज्ञाता गण-मान्य विद्वान थे। आपकी भाषा सरल और भावपूर्ण थी। आपके ओजस्वी भाषण को सुनकर लोगों के हृदय में दया भाव का उद्रेक एवं जैन धर्म के प्रति श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी। यों तो बाईस सम्प्रदाय में अनेक विद्वान एवं महात्मा हुए हैं, किन्तु आप विलक्षण प्रतिभासम्पन्न थे। आपकी स्मृति सदा हृदय में बनी रहती है। जब आपके निधन का संवाद सुना तो जनसमुदाय का हृदय दुःख से भर गया। भगवान् आपकी दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति प्रदान करे, यही मेरी कामना है। श्री राजस्थान संस्कृत साहित्य सम्मेलन की ओर से हिन्दी विश्वभारती, बीकानेर में संस्कृत के विद्वानों की सभा हुई, उसमें समस्त विद्वानों ने आपको श्रद्धांजली समर्पित की। नागरी भंडार के सदस्य भी उसी सभा में सम्मिलित थे-

> जयन्ति ते सुकृतिनो, रससिद्धाः कवीश्वराः
> नास्ति येषां यशःकाये, जरा-मरणज भयम्

यद्यपि आप इस समय हम लोगों के साथ नहीं हैं, किन्तु आपकी यशरूपी काया सदा ही अमर है और रहेगी।

सच्ची श्रद्धांजली

मानिकचंद सुराना, सदस्य, राजस्थान विधानसभा, बीकानेर

आचार्यश्री गणेशलालजी जैन समाज व भारत की सांस्कृतिक परम्परा में हमेशा अमर

रहेंगे। उन्होने अपनी सेवाओं से धर्म का प्रसार किया व समाज को ऊँचा उठाया। उनका संदेश हमें अभी भी प्रेरणा देता है कि हम त्याग के रास्ते पर चलें। आचार्यश्री गणेशलालजी भारतवर्ष के इने-गिने व्यक्तियों में एक थे। ऐसे महान व्यक्तियों के स्मरण से भी मनुष्य ऊँचा उठता है।

सच्ची श्रद्धांजली

उत्तमचंदजी लुंकड़, पाली-मारवाड़

आचार्यश्रीजी म. सरल, शान्तस्वभावी गंभीर व निर्भीक सन्त थे। तप, संयम, चारित्रपालन करने मे आपका हृदय भी अधिक कठोर था। वहीं दूसरी तरफ आपका दिल सन्तों व श्रावकों के प्रति कमल से अधिक नरम था। आचार्यश्री का हसमुख चेहरा देखते व दर्शन करते ही कोई भी मनुष्य कितना ही दु.ख में क्यों न हो, एक बार उसे शांति का अनुभव हो ही जाता था। यह आचार्यश्रीजी म. के तप-संयम का ही प्रभाव था। आचार्यश्रीजी म. की सबसे पहले मैंने संवत् 1976 (चींचवड़-पूना) के चातुर्मास में चार महीने सेवा की थी। तब से लगाकर आज तक आचार्यश्री के प्रति मेरा हार्दिक धर्मप्रेम रहा है। प्रत्येक मनुष्य संसार मे आता है और चला जाता है। परंतु जीवन उसी का सार्थक बनता है जो अपने व दूसरों के लिए भी कठिनाइयाँ सहन कर अपने जीवन को आदर्शमय बनावे। आचार्यश्री ने भी अपने जीवन में खुद की आत्मा को उज्ज्वल बनाते हुए, जैन समाज की ही नहीं बल्कि सब समाजों को धर्म पर आरूढ रखने की कोशिश की व लाखो मनुष्यों को भगवान् की वाणी सुनाकर धर्ममार्ग पर लाये–ऐसे सन्तों का स्वर्गवास होना स्थानकवासी समाज के लिए ही नही वरन् सारे जैन समाज के लिए दुःख की बात है। आचार्यश्री म. की आत्मा को पूर्ण रूप से शान्ति मिले, यही मेरी मनोकामना है और हम सब आचार्यश्री द्वारा बताये हुए मार्ग पर चलेंगे, यही सबसे बडी आचार्यश्रीजी म. के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि है।

सच्ची श्रद्धांजली

ीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ हिज होलीनेस
ी 108 पूज्यपाद स्वामीजी श्री सोमेश्वरानन्द भारतीजी महाराज
अधिष्ठाता, श्री धनीनाथगिरिजी का पंचमंदिर, बीकानेर

जो अपना देव-दुर्लभ जीवन उत्कृष्ट भावों के प्रचार में ही अर्पित कर एक श्रेष्ठ माज के श्रद्धाजन रहे, उन महान जैनाचार्यश्री गणेशलालजी का भिन्न रूप से व्यक्त किन्तु त्त्वतः आत्मा के रूप में सदा अभिनन्दन किया और अव्यक्तावस्था में विश्वात्मा रूप में भिनन्दन करता हूँ तथा उनके श्रद्धालु वर्ग के लिए भी सत्प्रज्ञा की शुभकामना करता हूँ।

अनभ्र वज्रपात

चगनलाल वैद, अध्यक्ष, श्री अ.भा.साधुमार्गी जैन संघ

परम श्रद्धेय, पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के असामायिक निधन से स्थानकवासी समाज पर ही नहीं, अपितु समस्त जैन समाज पर अनभ्र वज्रपात हुआ है। आज उनको खोकर सम्पूर्ण समाज अपने को एकाकी अनुभव कर रहा है।

आचार्यश्री तप, संयम और त्याग की परम पावन त्रिवेणी थे जिसमें निमज्जन कर जनमानस अपने को धन्य समझते थे। उनकी वाणी से सत्य और अहिंसा की निर्मल स्रोतस्विनी निरन्तर प्रवाहित होती रहती थी। वे "सम्यग् ज्ञान", "सम्यग् दर्शन" और "सम्यग्-चारित्र" की ज्वलन्त ज्योति थे तो शील और सदाचार के साकार रूप थे।

उनका आकर्षक व्यक्तित्व और ओजपूर्ण उपदेश जन-जन को भावविभोर कर देते थे। उनकी कथनी और करनी में जो अद्भुत साम्य था वह इस नश्वर विश्व में विरल ही है। संघर्ष उनका जीवन था और एकता उनका लक्ष्य। संगठन को दृढ़ बनाने के लिए उन्होंने भगीरथ प्रयत्न किये। भौतिकता के घटाटोप अंधकार में उनके आध्यात्मिक ज्ञान की पुष्कल प्रकाश-रेखा हमारे हृदयों को आलोकित किये हुए थी। वे संतों के आदर्श थे तो श्रावकों के

श्रद्धेय। कृत्रिमता से वे सदैव दूर रहते थे। उनकी इस शालीनता और सारल्य के समक्ष बड़ों-बड़ों का मस्तक श्रद्धा से विनत हो जाता था।

मुझे उनके दर्शनों का सौभाग्य तीस वर्ष से प्राप्त होता रहता है। इसी दीर्घ अवधि की स्मृतियां जब मेरे मानसपटल पर उभरती हैं तो मन और मस्तिष्क पुलकित हो जाते हैं और उस प्रातःस्मरणीय महात्मा का साकार स्वरूप प्रतिफलित हो उठता है। लगता है, जैसे वे आज भी विद्यमान हैं और कर्तव्य-पथ का निर्देश कर रहे हैं। उनके अभाव में मेरा हृदय मर्मान्तक पीड़ा की अनुभूति कर रहा है। मैं स्वर्गस्थ आत्मा की चिर-शान्ति के लिए हार्दिक प्रार्थना करता हूँ और उस पवित्र मनीषी के प्रति श्रद्धापूर्वक श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

अडिग रक्षक

श्री कानमल नाहटा, जोधपुर

युग-युगान्तर में भी मानव-मात्र संत-महात्माओं का सदा ऋणी रहा और रहेगा कि जिन्होंने अपने गहरे आध्यात्मिक ज्ञान तथा तप और त्याग से अनेक परीषह तथा परेशानियों का दृढ़तापूर्वक सामना करते हुए हिमालय की भांति अटल और अचल रहकर विश्व को सही, सत्य और शाश्वत विचार प्रदान कर इस उक्ति को चरितार्थ किया कि "अध्यात्म तर्क का विषय नहीं है। वह हृदय की ध्वनि है। अध्यात्म के पास हृदय होता है इसलिए वह विवादों को समेट लेता है।"

कठोर तप और संयम के साधक सौम्यमूर्ति स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज भी उनमें से एक थे। युवावस्था ही में संसार की असारता का अनुभव कर, विरक्त बन, ज्ञान, दर्शन और चारित्र की आराधना करते हुए आपने यह सिद्ध किया कि "सामर्थ्य का विकास साधना से होता है और साधना तप के बिना नहीं होती। सतत साधना और कठिन परिश्रम से ही जीवन-निर्माण संभव है।" पार्थिव रूप में तो वे आज हमारे समक्ष नहीं हैं, मगर उनका अनुकरणीय चारित्र और अमर संदेश प्राणी-मात्र का मार्गदर्शन करता रहेगा।

स्वर्गीय आचार्यश्री के विशेष सम्पर्क में मैं उस समय आया जबकि श्रमण संघ के संगठन की योजना बन रही थी। निस्संकोच मैं यह कह सकता हूँ कि उन्होंने श्रमण संघ के संगठन हेतु अपने आचार्य पद तथा सम्प्रदाय का तनिक-मात्र भी मोह न कर समाज के समक्ष एक अनूठा उदाहरण रखा। एक सच्चे प्रहरी की भांति समाज व संघ के आग्रह से श्रमण संघ

के संगठन की बागडोर संभालते हुए वे आगे बढे। आपके मार्ग में अनेक कठिनाइयां आईं मगर यथानाम तथागुण के अनुसार उनका सामना करते हुए अपने लक्ष्य की ओर सतत बढ़ते ही रहे। आपका यह लक्ष्य था– "श्रमण संघ, जो कि समाज की आधार भित्ति है, उसमें शिथिलाचार का प्रवेश न हो तथा साधु और साध्वी अपनी साधु-समाचारी का पालन करते हुए अणगार धर्म के सही पालक बनें।" अंतिम समय तक आप इसके लिये प्रयत्नशील रहे।

एक ओर जबकि कैंसर जैसी भंयकर बीमारी आपको घेरे थी और दूसरी ओर समाज में भी विचारों का संघर्ष चल रहा था, उन क्षणों में भी निकट रह कर मैंने आपको अविचलित और अपनी साधना में सतत आगे बढ़ते हुए ही पाया एवं इस वातावरण का अंतिम क्षणों में भी आपकी साधना पर कोई असर अनुभव नहीं हुआ तथा आपके त्याग, प्रत्याख्यान, आलोचना, संथारा एवं साधु की अनेक क्रियाओं को सजग रहते हुए पूरी तरह से साधा एवं समाधि तथा पंडितमरण की प्राप्ति की। यह आपकी साधना की ही विशेषता थी।

आपका अंतिम उपदेश, जो कि अपने उत्तराधिकारियों को दिया, बडा ही मार्मिक और आपकी उदारता का द्योतक था। आपने फरमाया कि आगमोक्त साधु-समाचारी का कोई भी पोषक संत उसका पूर्णतया पालन करते हुए तुम से मिलना चाहे तो सहर्ष उसे अपने में सम्मिलित करना और तुम्हारे साधुओं में भी कहीं शिथिलता देखो तो उसे अविलम्ब दूर करने में किसी प्रकार की कसर न रखना। इसी से तुम वीतराग मार्ग में उन्नति करते हुए आगे बढ़ोगे और अपने ध्येय को प्राप्त करोगे। इस बात का भी विशेष ध्यान रखना कि सिद्धान्तानुसार श्रमण संघ का संगठन बनता हो तो अपने को सदा आगे रखना।

दु:ख है कि आज आचार्यश्री हमारे समक्ष नहीं हैं। मगर यह दृढ विश्वास है कि उनके उपदेश व आदेश का अनुकरण कर साधु व श्रावक समाज अवश्य ही संगठित एवं सुखी बन सकता है। इसमें कोई शंका नहीं और यही मेरी आचार्यश्री के प्रति सच्ची श्रद्धांजली है।

एक क्षति

बच्छराज संचेती, सम्पादक, जैन भारती, कोलकाता

उदयपुर में दिनांक 11 जनवरी, 63 को स्थानकवासी पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. के स्वर्गवास से जैन समाज की एक महान् क्षति हुई है। स्थानकवासी सम्प्रदाय की परम्परा

में स्वर्गीय आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के उत्तराधिकारी के रूप में व स्थानकवासी श्रमण संघ के उपाचार्य के रूप में आपसे जैन समाज, खास करके स्थानकवासी समाज को जो प्रेरणा प्रस्तुत होती रही है, वह स्तुत्य और स्मरणीय है।

आपकी अनुपस्थिति में आपके उत्तराधिकारी श्री नानालालजी महाराज आपकी तरह ही चतुर्विध संघ की प्रतिपालना करते रहेंगे तथा जैन समाज की प्रगति और एकता विषयक तथ्यों को भी दृष्टि में रखेंगे, ऐसी आपसे अपेक्षा है। मैं इन शब्दों के साथ उस दिवंगत महात्मा के मौलिक गुण और प्राकृतिक विशेषताओं के प्रति श्रद्धानत हूँ।

श्रमण संस्कृति के आधार स्तम्भ

पं. कृष्णचन्द्राचार्य, सम्पादक, 'श्रमण', वाराणसी

साधु-शिरोमणि, श्रमण संस्कृति के आधारस्तंभ आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज का इसी 11 जनवरी, 1963 को उदयपुर में समाधिपूर्वक पंडितमरण हुआ। आपका जन्म संवत् 1947 में उदयपुर में ही हुआ था। पिताश्री का नाम श्री साहबलाल ओसवाल और माताश्री का नाम श्रीमती इन्दिराबाई था। युगप्रभावक जैनाचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के चरणों मे सं. 1962 में 16 वर्ष की लघुवय में ही दीक्षा लेकर वे साधु बन गए थे। बाद में आचार्य भी बने और कुल आयु 72 वर्ष की पाई।

आपका जीवन त्याग-वैराग्य के रंग में रंगा हुआ था। भव्य भद्रात्मा थे। ज्ञान-चारित्र के आराधक-साधक थे। स्व-पर कल्याण के परम अभिलाषी थे। सारा जीवन इसी साधना में बीता। जीवन की कड़ी से कड़ी परीक्षाओं में साधुभाव बनाए रखा। पांडित्य और ज्ञान की गहराई होने पर भी जीवन-भर जिज्ञासु और भावनाशील बने रहे। गुणियों को देखकर प्रमुदित होते और उनकी सराहना करते। जीवन में सदा सावधान थे। चारित्र विशुद्ध और निष्कलंक था। साधुत्व की साक्षात् मूर्ति थे। दूसरों से भी इन्हीं गुणों की अपेक्षा रखते थे। इसलिए कुछ कड़े गिने जाते थे। संभवतः इसी कारण उन्हें कुछ लोग रूढ़िवादी तक कह डालते थे। उनके साधुत्व की यह पहचान थी कि किसी की परवाह न करते हुए चारित्रमार्ग का ही पक्ष लेते थे। श्रमण संस्कृति के परम प्रेमी और सच्चे प्रतिनिधि थे।

श्रमण संघ के निर्माण में उनका बहुत बड़ा प्रेरक हाथ था। इसके लिए उनने अपने आचार्य पद तक का त्याग कर दिया था। श्रमण संघ के निर्माण से वे चाहते थे कि साधुमार्ग

की रक्षा व वृद्धि हो। उनके हृदय की इस भावना को सहयोगी साधुओं तक ने नहीं पहचाना, वरना किसी तरह का विवाद ही खडा न होता। साधुसंघ उनके निर्देशों पर चलता, तो चारित्र-शुद्धि के साथ-साथ वह समुन्नत एवं गौरवशाली बनता, इसमें संदेह नहीं। खेद है, साधुमार्गी होने का दावा रखते हुए स्थानकवासी समाज ने भी उन्हें नहीं पहचाना। समाज या कान्फरेंस के कर्णधार अपना अन्तर्निरीक्षण करेंगे, तो उन्हें मालूम होगा कि स्थानकवासी जैन समाज का एकमात्र लक्ष्य ही सच्चा साधुमार्ग था। साधुओं की संख्या थोड़ी ही क्यों न हो, कोई हानि नहीं। भगवान् महावीर ने अकेले ही रहकर साधुमार्ग का आचरण किया था। धर्मप्राण लोंकाशाह का प्रयत्न भी लुप्त होते हुए साधुत्व को प्रकाश में लाने का था। साधुओं का संप्रदाय या पंथ चलाने का रंचमात्र भी उनका भाव न था। उनसे प्रेरणा लेकर कुछ सच्चे साधु बने, जिससे पुनः साधुमार्ग की प्रतिष्ठा हुई। उन्हीं का अनुयायी स्थानकवासी जैन समाज यदि साधुमार्ग की वस्तुतः प्रतिष्ठा करना चाहता है, तो उसे पहले साधुओं की संख्या का मोह छोड़ना होगा। सारे भारत में दस साधु भी सच्चे होंगे, तो साधुमार्ग की कोई क्षति नहीं होगी। स्थानकवासी जैन समाज के गौरव में भी कोई कमी नही आएगी।

जहां तक हम समझते हैं, दिवंगत आचार्यश्री साधुमार्ग की मर्यादाओं की पूरी रक्षा चाहते थे। उनका यह विश्वास था कि इसी से साधुमार्ग का उद्धार व सुधार भी होगा। श्रमण संघ के निर्माण से उन्हें आशाएँ बंधी थी। पर संप्रदाय एवं समाज के मोह में पड़कर स्थानकवासी जैन समाज के कर्णधारों और स्वयं साधुओं ने इस मूलभूत लक्ष्य को जब ओझल-सा कर दिया और उनकी एक नहीं सुनी, तो उन्हें निराश-हताश होना पडा। उनके पास कोई सैनिक शक्ति तो थी नहीं, जिसके बल पर वे समाज को रास्ते पर ला सकते। अन्ततोगत्वा उन्हें साधु-वृत्ति के अनुरूप अहिंसक असहयोग का मार्ग अपनाना पड़ा। यह घटना स्थानकवासी समाज और श्रमण संघ, दोनों, के लिए दुःख और पश्चात्ताप की है। प्रायश्चित्त दोनों को करना है। तभी भूल का सुधार हो सकेगा। और साधुमार्ग का दावा रखनेवाला स्थानकवासी जैन समाज दिवंगत आत्मा के प्रति तभी सच्ची श्रद्धांजली देने का अधिकारी बन सकेगा।

दूसरी ओर आचार्यश्री के उत्तराधिकारी शिष्यमंडल और भक्तों की भी यह कड़ी कसौटी का क्षण है। जिस श्रमण संघ के निर्माण से वे साधुमार्ग की अपेक्षा रखते थे, उसके लिए उन पर सबसे ज्यादा जिम्मेवारी आ गई। आचार्यश्री साधुमार्ग के संदेशवाहक थे, इतने मात्र से वे अपने-आप में फूल नहीं सकते। शरीर की असहाय अवस्था के कारण उनका जो अभीष्ट लक्ष्य अधूरा रह गया है, उसे अब उनके योग्य और उत्तराधिकारी शिष्यमंडल और श्रद्धालु भक्तों को पूरा करना है। तभी वे उनके योग्य और उत्तराधिकारी शिष्य कहला सकेंगे।

आचार्यश्री की हृदयंगत भावनाओं को मूर्तरूप देने का अब यह एक ही उपाय है कि शुद्ध चारित्र और ज्ञान के आधार पर श्रमण संघ की रचना का फिर से दृढ़ निश्चय किया जाय। इसके लिए आचार्यश्री के श्रद्धालुओं और कॉन्फरेंस के कर्णधारों को एक बार फिर जी-जान से प्रयत्न करना होगा। और इस बात का पूरा ध्यान रखना होगा कि श्रमण संघ में वे साधु-साध्वी ही सम्मिलित किये जाएं, जो साधुत्व की निश्चित मर्यादाओं पर चलने-चलाने को तैयार हों। तभी साधुत्व और साधुमार्ग की रक्षा हो सकेगी।

हम समझते हैं, स्वर्गीय आत्मा के प्रति साधुओं और साधुमार्ग के भक्तों की यही सच्ची श्रद्धांजली होगी।

शान्त क्रान्ति के जन्मदाता

पं. लालचन्द मुणोत

इस अनादि-अनन्त संसार-रूपी उद्यान में अनेक पुष्प खिलते हैं और समय पर अथवा समय के पहिले ही मुरझा जाते हैं, जिनमें बहुत-से अगणित पुष्प तो ऐसे होते हैं कि वे कब खिले और कब मुरझाये, उनकी कोई कीमत नहीं, लेकिन कुछ पुष्प ऐसे होते हैं जो विकसित होते ही अपने सुगंधमय वातावरण से सोये प्राणियों को अपनी ओर आकर्षित कर जाग्रत् कर देते हैं।

आचार्यप्रवर पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. ऐसी ही अहिंसा, संयम और तप-रूप एक महान् विभूति थे, जिन्होंने संसार में अवतरित होकर अनेकों को जाग्रत् किया है। आपश्री श्रमण संस्कृति की सुरक्षा के आधारभूत स्तम्भ थे, मुमुक्षु आत्माओं में अध्यात्म-रूप प्रकाश करने वाले देदीप्यमान सूर्य-स्वरूप थे। आपश्री के सामने सिद्धान्त और चारित्र मुख्य था। अन्य सब-कुछ गौण।

आचार्यप्रवर ने जब यह देखा और अनुभव किया कि श्रमण समाज के कतिपय सदस्यों द्वारा शिथिलाचार को प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में प्रश्रय मिल रहा है तथा समय के प्रवाह में प्रवाहित होकर सन्तजन भी अपने लक्ष्य से विचलित होते चले जा रहे हैं, तो आपश्रीजी ने अनन्त तीर्थंकरों से चली आई श्रमण संस्कृति की परम्परा को पवित्र एवं अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए एक शान्त क्रान्तिकारी कदम उठाया और शिथिलता का प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पोषण करने वालों के साथ अपना सम्बन्ध विच्छेद कर नवनिर्मित श्रमण संघ से पृथक् हो गये। बहुत

लम्बे समय की प्रतीक्षा के उपरान्त भी जब स्थिति में सुधार न देखा, बल्कि संयम एवं शास्त्र-विपरीत वातावरण ही विशेष रूप से सामने आया तो आपश्री ने शासन की सुव्यवस्था हेतु सुसंगठन का मार्ग प्रशस्त रखकर चतुर्विध संघ की सुव्यवस्था का सर्वाधिकारपूर्ण उत्तरदायित्व प. रत्न मुनिश्री नानालालजी म. के समर्थ कन्धों पर रखकर अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया।

आचार्यप्रवर का जन्म सं. 1947 की श्रावण कृष्णा 3 के दिन मेवाड़ की राजधानी उदयपुर में हुआ था और लगभग 16 वर्ष की अवस्था में सं. 1962 की मार्गशीर्ष कृष्णा 2 को आचार्यप्रवर पूज्यश्री 1008 श्री जवाहरलालजी म.सा. के सान्निध्य में आपश्री ने भागवती दीक्षा ग्रहण की। दीक्षित होकर लगभग 57 वर्ष प्रव्रज्या पाल 63वें वर्ष में संथारा संलेखनापूर्वक स्वर्ग सिधारे। 57 वर्ष के घोर साधना-काल में अनेक संकट उपस्थित हुए, लेकिन आपश्रीजी भगवान महावीर द्वारा प्रतिपादित सच्चे मार्ग से विचलित न होते हुए शान्ति एवं धैर्यपूर्वक साधना में संलग्न रहे।

आचार्यप्रवर सिद्धान्त और चारित्र की सुरक्षापूर्वक सुसंगठन के सदा हिमायती रहे। केवल नाम-मात्र के थोथे संगठन को वे आत्मोत्कर्ष में बाधक समझते थे। यही कारण था कि आपश्री ने अपने साधनाकाल में आत्मोत्कर्ष में बाधक आलोचनाओं पर तथा विरोधी कुकृत्यों पर कभी ध्यान न दिया। लेकिन संयमानुष्ठान में तल्लीन रहकर आत्मोत्कर्ष में सहायक श्रमण संस्कृति की सुरक्षा का सदा ध्यान रखा और आत्मशक्तिपूर्वक ईमानदारी के साथ अबाध गति से आगे बढ़ते ही रहे।

आचार्यश्रीजी म.सा. की सेवा में रहने का मुझे सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैंने अनुभव किया कि आचार्यश्रीजी म. जितने उदार एवं क्षमा के सागर थे, उस से कहीं अधिक संयम पालने व पलवाने में कठोर भी थे। आपश्री की रग-रग में सिद्धान्त और चारित्र की सुरक्षा समाई हुई थी। आपश्री का साधनाकाल इतनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था कि शारीरिक घोर वेदना के समय कभी मुंह से उफ तक नहीं किया और अन्त समय में जब आपश्री ने यह देखा कि अब यह शरीर ज्ञान, दर्शन, चारित्र में सहायक-रूप नहीं है, तो आलोचनापूर्वक पूर्ण जागरूक अवस्था में संथारा पचखा। 29 घंटे तक अलौकिक शान्ति एवं आत्मचिन्तन में संथारा चला और अन्त में जागरूक अवस्था में ही इस नश्वर शरीर को छोड़ दिनांक 11.1.63 को दिन के 3.21 बजे स्वर्ग सिधार गये।

आचार्यश्रीजी म. का भौतिक शरीर अब हमारे सामने नहीं है परन्तु आध्यात्मिक शरीर अब भी हमारे सामने जगमगा रहा है। आपश्री के सम्यक् आचार-विचार और उच्चार की प्रभा से हमारा मार्ग प्रकाशित है। आचार्यश्रीजी म. ने चतुर्विध संघ को यह आदेश दिया था कि :-

(1) शुद्ध सिद्धान्त व शुद्ध जीवन के आधार पर ही विश्वशान्ति संभवित है। इस आधार के बिना व्यक्ति, समाज, राष्ट्र एवं विश्व की स्थायी शान्ति सम्भावित नहीं।

(2) गुण और कर्म के अनुसार वर्ग-विभाग विकास और शान्ति के वातावरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

(3) भगवान महावीर की निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति को लक्ष्यानुरूप शुद्ध रखने के लिए सदा अप्रमत्त रहने की आवश्यकता है।

(4) वीतराग-प्ररूपित सिद्धान्तों का जहां हनन हो, परिवर्तन किया जाता हो, समय के नाम से महाव्रतधारी मुनि जीवन के लक्ष्य के प्रतिकूल प्रवृत्ति करते हों, वहां किंचिदपि सहयोग न दिया जाय।

(5) शुद्ध चारित्रनिष्ठ मुनिवरों के प्रति शुद्ध भक्ति रहे, शिथिलाचार मुनि-जीवन तो दूर, मानव-जीवन के लिए भी कलंक स्वरूप है। अतः कभी किसी भी प्रकार से शिथिलाचार को न छुपाना, न बचाव करना, न प्रश्रय देना और न पोषण ही करना।

(6) शुद्ध आत्मीय समता के चरम विकास का लक्ष्यबिन्दु अन्तःकरण में सदा बना रहे एवं तदनुरूप सम्यक् ज्ञान और शुद्ध श्रद्धा के साथ समता-साधन को यथाशक्ति जीवन में उतारना यानी कार्यान्वित करना।

(7) श्रमण वर्ग अपने लक्ष्यानुरूप स्वयं की भूमिका पर सरलतापूर्वक महाव्रतों का भलीभांति पालन करें और श्रावक के श्रावकोचित मार्ग का निर्भयता से प्रतिपादन करता रहे।

(8) श्रावक वर्ग भी अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र की आराधना में उत्तरोत्तर वृद्धि करता हुआ बाह्याडम्बरों से अपने-आप को दूर रखने में तथा प्रत्येक कार्य सादगी से सम्पन्न करने में अपना व समाज का हित समझे। साथ ही अपनी भूमिका व श्रमण वर्ग की भूमिका का पूरा-पूरा ज्ञान रखे। जिससे कि वह श्रावक और श्रमण का अन्तर अच्छी तरह समझ सके और श्रमण को अपने श्रमणोचित कर्तव्य पलवाने में तथा स्वयं अपने श्रावकोचित कर्तव्यपालन करने में भलीभांति सफल हो सके।

(9) निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति की महत्ता संख्या की विपुलता में नहीं, किन्तु चारित्र की उत्कृष्ट दिव्यता और त्याग की महानता में है। उच्च चारित्रनिष्ठ त्यागी श्रमण चाहे अल्प संख्या में भी क्यों न हों, उन्हीं से श्रमण संस्कृति का संरक्षण हो सकता है। अतः स्वगृहीत प्रतिज्ञाओं को भलीभांति सुरक्षित रखता हुआ निर्ग्रन्थ श्रमण वर्ग स्वकल्याण के साथ-साथ वीतराग प्रभु की वाणी का प्रसार जनकल्याणार्थ भी करता रहे।

स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी म.सा. के इन उपर्युक्त आदेशों का हम यथास्थान सदा ध्यान रखेंगे। साथ ही आचार्यश्रीजी म. ने चतुर्विध संघ की भावी सुव्यवस्था के लिए जिन

प्रतिभासम्पन्न, शान्त-दान्त-गांभीर्य आदि गुणों से संयुक्त चारित्रनिष्ठ परम श्रद्धेय पं. रत्न मुनिश्री नानालालजी म. को अपना युवाचार्य (भावी आचार्य) नियुक्त किया, उन वर्तमान आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी म.सा. की आज्ञाओं का यथार्थ रूप से पालन करने-कराने में तत्पर हैं और रहेंगे। मैं स्वर्गस्थ आचार्यश्रीजी के प्रति अपनी श्रद्धांजली अर्पण करता हूँ।

श्रद्धा के सुमन

सम्पतराज धाड़ीवाल

पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म. के सप्तम पट्टधर शान्तमूर्ति पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. एक विशुद्ध एवं सात्त्विक संगठन को लक्ष्य में रखकर श्रमण संघ के उपाचार्य बने। उनकी अभिलाषा अधूरी रही और लक्ष्य की पूर्ति हेतु भी अंतराय कर्मोदय से मैं उन महापुरुष की सेवा से वंचित रह गया।

वर्तमान आचार्यश्री दिवंगत आत्मा की अभिलाषा को पूर्ण करने में अग्रसर हों, यही शुभ कामना।

महान कलाकार के प्रति श्रद्धांजली

श्रीमती नगीनादेवी चोरड़िया, दिल्ली

जैनागम-रत्नाकर, चारित्रचूडामणि, श्री श्री 1008 प्रातःस्मरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के स्वर्गवास का दुखद समाचार आकाशवाणी दिल्ली से सुनकर हृदय सन्न रह गया।

समस्त संसार एक गहन अवसाद में डूब गया। चूंकि भारत-भूमि से संसार का एक महान कलाकार विदा हो गया था। मानव संस्कृति का सुनियोजित रूप उस कलाकार में प्रतिबिंबित था। भव्य प्राणियों के जीवन को संवार कर उनका अभ्युदय करने की उसमें अद्भुत क्षमता थी। जो भी उस महान कलाचार्य के संपर्क में आया, सदा-सदा को उसकी

जीवन-यात्रा प्रशस्त हो गई। आध्यात्मिक कला की अनुपम ज्योति आज हमारे बीच नहीं है, लेकिन उसकी शाश्वत आभा सदैव हमारे जीवन-पथ को आलोकिन करती रहेगी।

उस महान कलाकार के प्रति हमारी सच्ची श्रद्धांजली तभी होगी जबकि हम सब आज निश्चय करें कि उनकी अहिंसा, संयम व तप की मशाल को उसी सरगर्मी के साथ प्रज्वलित रखते हुए उनके बताये मार्ग पर सही रूप में आचारण करेंगे। ॐ शान्ति।

कर्मनिष्ठ महात्मा

श्री मोहननाथ मोदी, सेसन्स जज, उदयपुर

आचार्यप्रवर श्री गणेशलालजी महाराज साहब का भौतिक शरीर इस संसार मे नहीं रहा, परन्तु उनका दिव्य संदेश उनकी शिष्य-परम्परा में ही नहीं, वरन् उन सभी के हृदयों में, जो यदा-कदा उनके सम्पर्क में आये, व्याप रहा है।

आचार्यश्री महान योगी, प्रखर विद्वान, कर्मनिष्ठ महात्मा और चरित्रवान साधु थे। सम्प्रदाय से ऊंचा उठकर मानवता का इतिहास लिखने वाला यदि कभी भी उनके सम्पर्क मे आया होगा तो उनके व्यक्तित्व से प्रभावित होकर उन्हें विस्मरण करने का साहस नहीं कर सकेगा। अपने असीम धैर्य, अतुल शान्ति और विशाल दया की छाया से उन्होंने आने वाले जिज्ञासुओं को जो प्रेरणा दी, मुझे विश्वास है, वह सदैव उनको सत्यपथ पर अग्रसर करती रहेगी।

आचार्यश्री 'बहुजन हिताय' ही नहीं, वरन् 'सबजन हिताय' के अखण्ड प्रेरणास्रोत थे। उनके निधन ने समाज में जो क्षति पहुँचाई है, वह कालान्तर में पूर्ण होनी संभव नहीं।

भगवान से प्रार्थना है कि आचार्यश्रीजी का जीवन-संदेश हम सबको कर्तव्य, शान्ति और संयम का पाठ पढ़ाता रहे।

क्षमा के सागर

श्री हिम्मतसिंह सरूपरिया, सेल्स टैक्स ऑफिसर, श्रीगंगानगर

वीर प्रसविनी मेदपाट भूमि की राजधानी उदयपुर में आज से 73 वर्ष पूर्व संवत् 1947 की श्रावण कृष्णा 3 को ओसवाल वंश में एक महान् विभूति का आविर्भाव हुआ जो आगे चलकर भारत में जैन संस्कृति के जगमगाते सितारे श्री गणेशाचार्य के नाम से विख्यात हुए। आपश्री जब से युवाचार्य पद पर स्वर्गीय पूज्य जवाहराचार्य द्वारा स्थापित हुए तब ही से मैं संपर्क में रहा। आपश्री प्रकृति के भद्रिक, विनयशील, सरलस्वभावी व मधुरभाषी थे। ज्ञान, दर्शन, चारित्र की उत्तरोत्तर वृद्धि, शुद्धतम चारित्र व अक्षुण्ण निर्ग्रन्थ समाचारी पालने व पलवाने में आपका सर्वदा लक्ष्य रहा। इन्हीं असाधारण गुणों के कारण प्रभावित होकर सादड़ी सम्मेलन में आपको अखिल भारतवर्षीय निर्ग्रन्थ श्रमण संघ ने अपना कर्णधार निर्वाचित किया। आप जनसाधारण में लोकप्रिय व आदर्श महात्मा गिने जाते हैं। जीवन-रहस्य को आपने भलीभांति समझा, अपना व पर का जीवन सफल बनाया व भगवान महावीर स्वामी के सिद्धांत व शुद्ध श्रमण संस्कृति को आपने दिपाया और सत्य, न्याय व शिथिलाचार उन्मूलन के आप अडोल विजेता बने तथा क्षमा के सागर रहे। ऐसे अध्यात्म मार्ग के सद्रूप प्रदर्शक, शुद्ध ज्ञान-दर्शन-चारित्र के महान् पुजारी, अक्षुण्ण चारित्रपालन के सतत प्रहरी, निरपेक्ष परम कल्याण के निष्ठावान्, शांति के अग्रदूत, विश्वमैत्री के स्रोत, संघ-ऐक्य की भावना के द्योतक, भव्य प्राणियों के प्रबोधक स्वर्गीय पूज्यश्री 1008 श्री गणेशाचार्य के प्रति मैं अपनी विनीत एवं हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पण करता हुआ शासन देव से प्रार्थना करता हूं कि जो अध्यात्म ज्योति भगवान महावीर से परंपरागत भावानुभाव प्रवाहित हो स्वर्गीय पूज्य श्री 1008 हुक्मीचन्दजी महाराज ने अंकुरित की, स्वर्गीय पूज्यश्री 1003 श्री जवाहराचार्य ने प्रसारित व पल्लवित की। आपश्री द्वारा प्रतिष्ठित व पुष्ट की हुई वही ज्योति पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री नानालालजी महाराज को हस्तांतरित होने से दिन-प्रतिदिन वृद्धि करे। आपश्री के चरणचिह्न भवाटवी को पार करने में मार्ग-निदर्शन करते रहें।

संयम की शिथिलता आपको असह्य थी

श्री भीखणचन्द्र भन्साली, कोलकाता

पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने आगम ग्रन्थ, दर्शन, संस्कृत एवं व्याकरण जैसे गहन विषयों में अपने को आत्मसात् कर दिया। आपने गहरे पैठकर ज्ञान और संयम की साक्षात् मणियाँ ग्रहण कीं पर संग्रह न कर मुक्तहस्त से लुटाया ही।

आप उदार वृत्ति के सरल स्वभावी सन्त थे। आपने सबके साथ समभाव और हार्दिकता का व्यवहार किया। "किसी भी धर्म को किसी भी अपेक्षा से निम्न नहीं मानना चाहिए" - यह आपका विशाल दृष्टिकोण था। आपके व्याख्यान में सभी वर्ग, जाति एवं धर्म के व्यक्ति आकर अपने मन के विकारों को विस्मृत कर जाते थे।

आप हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, पाली, उर्दू एवं अरबी भाषाओं के पारंगत विद्वान थे। छोटे-से दृष्टान्त के माध्यम से आप गूढ एवं शास्त्रीय शिक्षा देने में निपुण थे। आपने दीक्षार्थियों की संख्या पर ही ध्यान नहीं दिया, वरन् दीक्षार्थी की योग्यता और सहनशीलता को संयम की कसौटी पर कस कर ही दीक्षा की अनुमति प्रदान करते थे।

आपने 57 वर्ष पर्यन्त संयमशील जीवन व्यतीत किया और करीब सारे भारत की पद-यात्रा कर भगवान महावीर की वाणी का प्रचार एवं प्रसार किया। आपने स्वभाव की सरलता और व्यवहार की मृदुलता से ही अपार जनसमूह के हृदयों पर शासन किया। संघैक्य आपको प्राण से भी अधिक प्रिय था। इसी कारण अपने श्रमण संघ की एकता एव सुगठन के हरसम्भव प्रयत्न किये। अपने सम्प्रदाय के विलीनीकरण में आपने सबसे प्रथम कदम उठाया।

संयम की शिथिलता आपको असह्य थी। अपने उपाचार्यकाल में स्वशासित मुनियो मे शिथिलाचार के उन्मूलन के लिए आपने कठोर कदम उठाये पर अपनी अवज्ञा होते देख आपने श्रमण संघ से पृथक् होना ही उपयुक्त समझा।

आपश्री प्राचीन परम्परा और जीवन के परिवर्तित मूल्यों के युग मे एक कडी-स्वरूप थे। मानव-मात्र के लिए आपने जो सेवा की है उसे विस्मरण नहीं किया जा सकेगा। वास्तव में आप एक युगपुरुष थे। चिन्तनशीलता के साथ-साथ आपने नैतिक सत्य और संयम की दृढ़ता पर जोर दिया। सन्तों की तनिक असावधानी पर आप उन्हें सस्नेह समझाते और उचित आदेश फरमाते। सेवावृत्ति में आपको सेवाभावी नन्दीषेण की उपमा से विभूषित किया-

जाय तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। आपने रुग्ण एवं अस्वस्थ सन्तों की सेवा करने में एक अनूठा आनन्द पाया है।

स्वास्थ्य-शुद्धि के लिए आपने प्राकृतिक चिकित्सा को सर्वोत्तम साधन माना। कहीं-कहीं तपस्याएँ करके आपने श्रमण-वर्ग के सम्मुख उच्च आदर्श स्थापित किया। आपके मुखमण्डल पर शान्ति और क्रान्ति का सम्मिश्रित आलोक दृष्टिगत होता था। आप समाज और श्रमण संघ के सजग प्रहरी थे।

आपका महान् जीवन हमें भी अपने जीवन को महान् बनाने की प्रेरणा देता है क्योंकि-

Lives of great men all remind us
we can make our lives sublime.

अर्थात् महान् व्यक्ति के जीवन हमें भी अपना जीवन उच्च बनाने का स्मरण दिलाते हैं।

आपकी वाणी युगों तक हमारे पथ में प्रकाश-स्तम्भ की तरह से रहेगी और हमारा मार्ग-प्रदर्शन करती रहेगी।

आपश्री अपनी परम्परा निभाने हेतु हमें एक सुयोग्य एवं विद्वान् संत श्री नानालालजी म.सा. को कार्यसंचालन के लिए प्रदान कर गये हैं। आपने पूर्वाचार्यश्री की सेवा पूर्ण लगन से की। आप आचार्यश्री के प्रधान एवं सेवाभावी शिष्य हैं।

समाज को आशा है कि हमारे वर्तमान आचार्यश्री हमें सूर्य की तरह प्रकाश देकर स्थानकवासी जैन समाज का मार्गदर्शन करेंगे जिससे हमारे पूर्वाचार्यों के नाम भी उद्योत होंगे।

सच्चा उपदेशक

पारसमल कांकरिया, कोलकाता

परम श्रद्धेय पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के देवगति प्राप्त होने पर समस्त जैन समाज को गहरा धक्का लगा है। जैन संतों की महान परम्परा में आचार्यश्री उस नक्षत्र की तरह थे जिसकी ज्योति देश के समस्त क्षेत्रों में फैली हुई थी।

त्याग और संयम की प्रतिमूर्ति इस महात्मा के प्रति लाखों पुरुषों की श्रद्धा थी। आपकी वैराग्यमयी वाणी में अद्भुत जादू था। जहां-जहां आप विचरते थे, उस पुण्यभूमि के असंख्य नर-नारी आपके भक्त हो जाते थे। लाखों पुरुषों ने आपके सदुपदेशों के प्रभाव में आकर

मांस, जुआ और शराब आदि का जीवनपर्यन्त परित्याग किया। जगह-जगह धर्म और दया-दान की आवृद्धि हुई। इन सब सत् कार्यो के पीछे एक वीर ह्रदय संत की पवित्र प्रेरणा थी जो लोगों को जीवन की सच्ची राह दिखाती थी।

आचार्यश्री में क्षमा, सहनशीलता, तपश्चर्या, ऐक्यभावना, नियमबद्धता आदि कतिपय ऐसे गुण थे जो आज विरले संतों में पाये जाते हैं। आपका चरित्र कसौटी का था। त्याग, तपस्या और संयम का ऐसा संगम अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

स्थानकवासी समाज के इतिहास में ऐसे सन्त का प्रादुर्भाव एक विशेष महत्त्व रखता है। जिनदेव की वाणी का सही रूप से पालन कर आपने आत्मकल्याण पर विशेष जोर दिया। कष्टसहिष्णु तो आप इतने थे कि कैन्सर जैसे भयानक रोग से ग्रस्त होने पर भी आप विचलित नहीं हुए।

अन्त में पुण्यभूमि उदयुपर में, जहां आप का जन्म हुआ वहीं, आप देवलोक सिधारे। आपके यहां निर्वाण से समस्त जैन समाज में शोक की लहर व्याप्त हो गई। आज आचार्यश्री नहीं रहे किन्तु उनकी पवित्र वाणी हमें युगों तक उनकी याद दिलायेगी।

मैं भी उस परम पूज्य महात्मा के प्रति अपनी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

महान् विभूति

श्री खेलशंकर, दुर्लभजीभाई झवेरी, जयपुर

पू. श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज अपने समस्त भक्तजनों को शोकाकुलित करके ता. 11.1.63 को इस नश्वर संसार को छोडकर चले गए। जिसने इस संसार में जन्म लिया है वह अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त होता है, यह एक शाश्वत सत्य है। किंतु एक व्यक्ति अपने जीवन को किस तरह व्यतीत करता है, यही बात हम मानवों के लिए महत्त्वपूर्ण है। पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज ने सांसारिक भोग-विलास को छोडकर अपने-आप को आध्यात्मिक व आत्मिक जीवन में लगाकर मानव-मात्र का आध्यात्मिक क्षेत्र में पथ-प्रदर्शन किया। आपके स्वर्गवास से स्थानकवासी श्वेताम्बर समाज ने एक महान् धार्मिक विचारक, मानवमात्र ने एक कल्याणकारी विभूति तथा उनके शिष्यों ने एक वास्तविक गुरु खो दिया है। महाराज साहब को यदि हम वास्तव में श्रद्धांजली अर्पित करना चाहें तो हमारा कर्तव्य होगा कि हम उनके संदेश को अधिक से अधिक फैलावें, उनके बताए हुए मार्ग का अनुसरण करें और उनके

उपदेशों को अपनी आत्मा में उतारें। उनका जीओ और जीने दो का सिद्धांत इस भूलोक पर रहने वाले प्रत्येक प्राणी में आत्मरत होना चाहिए।

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

सच्चे श्रमण

चंपालाल बांठिया, भीनासर,
भूतपूर्व अध्यक्ष, श्री अ. भा. श्वे. स्था. जैन कांफ्रेंस

पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. को मैंने जिस रूप में समझा, वे सरल हृदय, सच्चे श्रमण, अपने समझे हुए जैन सिद्धांतों पर पूर्ण श्रद्धा के साथ चलने वाले थे। अंदर और बाहर एक समान सुदृढ़ स्पष्टवक्ता थे। जमाने के अनुरूप चलना उन्होंने नहीं सीखा था। इसलिए उपाचार्य पद को छोडना पड़ा और श्रमण संघ से ही अलग होना पड़ा। नवम्बर, 1962 में उदयपुर जाकर मैंने अन्तिम दर्शन किये थे। काफी अस्वस्थ थे, फिर भी मेरे से कुछ वार्त्तालाप किया। और पं. मुनिश्री नानालालजी म. सा. से फरमाया कि सारी स्थिति इनको समझावो। फिर दूसरे दिन फरमाया कि आपकी राय में क्या करना था ? आप क्या चाहते थे ? मैंने तो यही अर्ज किया कि यों सारी स्थिति से मैं परिचित हूँ। मेरी भावना तो यह थी कि आप को श्रमण संघ के आचार्य के रूप में इस नश्वर देह को छोड़ते हुए देखता।

आज पूज्यश्री इस संसार में अपने बीच में नहीं रहे। मैं अपनी श्रद्धांजली समर्पित करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि महाराजश्री की आत्मा को स्वर्ग से मोक्ष पहुँचावे।

आचारहीनता उन्हें बिल्कुल नापसंद थी

श्री रत्नकुमार जैन 'रत्नेश', भू.पू. सम्पादक 'जैन प्रकाश'

जब कभी स्व. पूज्यश्री से मिलने का प्रसंग आया, मैंने उनमें दो बातें स्पष्ट देखीं:- आचार-दृढ़ता और संयमजन्य मधुरता।

बहुत पुराना प्रसंग याद आ रहा है। पूज्यश्री (उस समय के युवाचार्य) जवाहराचार्य की सेवा में बीकानेर मोहताजी की धर्मशाला में विराज रहे थे। मैं भी उन दिनों सेठियाजी के यहा अध्ययन कर रहा था। सेठिया जैन लायब्रेरी से जो भी नई जैन पत्र-पत्रिकाएं आती, उन्हें लेकर मैं सेठियाजी के पास उनके निवासस्थान ऊन प्रेस (Wollen Press) जाया करता था। मार्ग में ही मोहताजी की धर्मशाला आती थी जहां पूज्यश्री अपने आचार्य जवाहराचार्य की सेवा में ठहरे हुए थे। एक दिन की बात है, मैं जैन प्रकाश लेकर जा रहा था। पूज्यश्री अपने कमरे में टहल रहे थे। मैंने वंदना की और जैन प्रकाश सामने करते हुए कहा– अगर आप इसे देखना चाहें तो रखलें, शाम को मैं वापस लेता जाऊंगा। पूज्यश्री ने युवाचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. को बुलाया और कहा :- देखो ये जैन प्रकाश लाये हैं, देखना हो तो रखलो, शाम को ये आवेंगे तब वापस कर देना। युवाचार्यश्री ने कहा, 'आप फरमाओ तो मैं ले लूं, बाकी मुझे तो लेना कल्पे नहीं है।' मैंने अपनी सफाई पेश करते हुए कहा : 'महाराजश्री, मैं तो रोज इसी रास्ते से आता-जाता हूँ, आपके लिए तो मैं नहीं लाता हूँ।' युवाचार्यश्री ने फरमाया, 'ठीक है भाई, हम को अगर जरूरत होगी तो हम अपने सन्तों से मंगा सकते हैं। गलत परम्परा डालना उचित नहीं है।'

बात बहुत छोटी-सी है, परन्तु आचार के प्रति दृढ़ता की हृदय पर गहरी मोहर मार जाती है। जो व्यक्ति इतनी सामान्य बातों पर भी इतना गम्भीर बन सकता हो, वह कभी अपने सामने या परोक्ष में भी क्यों न हो, क्या कभी साध्वाचार के प्रति शिथिलाचार को सहन कर सकेगा ? कभी नहीं कर सकेगा। शिथिलाचार के प्रति वे प्रारम्भ से ही कठोर रहे। वज्र से भी कठोरहृदयी रहे। फिर चाहे अपना परमप्रिय शिष्य ही क्यों न हो ? आचारहीनता उन्हें बिल्कुल नापसन्द थी। अनुशासन में रहना और शुद्ध आचार का पालन करना उनका जीवन-ध्येय था। परिणाम चाहे कुछ भी क्यों न हो, वे अपने नियम के पक्के थे। श्रमण संघ के निर्माण में उनका योगदान, उपाचार्य पद निर्वाह और अन्त में श्रमण संघ से संघ-विच्छेद तक की सारी कार्यवाही उनकी आचार-दृढ़ता और अनुशासनप्रियता को लेकर ही की गई थी, जिसे आज मानने से कौन इनकार कर सकता है ? आचार के प्रति जहां वे इतने अधिक सजग और कठोर थे, स्वभाव से वे उतने ही मधुर और स्नेहिल थे। कोई भी व्यक्ति एक बार उनके पास आ जाता, जीवन-भर उनकी मधुरता विस्मृत नहीं कर पाता। श्रमण संघ के निर्माण के बाद कई वृद्ध संत-सतियों की सेवा में उन्होंने अपने सन्त-सतियों को भेज कर उनकी सेवा-सुश्रूषा ही नहीं कराई, कइयों का अकेलापन भी दूर किया। एक बार आपने कहा था:- श्रमण संघ के संयमशील साधु-साध्वियाँ मेरे ही एक अंग हैं। उनका मानापमान मेरा मानापमान है। उनका दुख-दर्द मेरा दुख-दर्द है। इसलिये संघ के प्रत्येक व्यक्ति का यह फर्ज है कि

वह मेरी तरह ही मेरे अंग-उपांगों (साधु-साध्वियों) का भी समुचित आदर करे, हिफाजत करे और देख-रेख रखे। उपेक्षावृत्ति से काम न ले। इस तरह उनकी मधुरता का कोई माप नहीं था। उनका संयमजन्य अनुराग असीम था, लेकिन अन्धअनुराग नहीं था।

बड़ी सादड़ी (राजस्थान) के चातुर्मासकाल में तो मुझे और भी निकट रहने का सौभाग्य मिला था। वह समय साम्प्रदायिक गठबन्धन का था, फिर भी मैं यह स्पष्ट रूप से लिखने की हिम्मत कर रहा हूँ कि पूज्यश्री की दृष्टि साम्प्रदायिकता से परे थी। परिग्रह के प्रति फण्ड-फाला करने-कराने के प्रति वे सदैव निर्लिप्त ही रहा करते थे। संयमजन्य नम्रता उनमें एकाकार हो गई थी। अपने से बड़े दीक्षा-स्थविर से वंदना करते हुए उनका हृदय उछालें मारने लगता था। वृद्ध या रोगी सन्त की सेवा में उन्हें अपूर्व आनन्द आता था। साधक जीवन के प्रति उनकी सजगता वस्तुतः आदर्श थी। अपने जीवन के अन्तराल में तो यह और भी अधिक खिल गई थी। वर्षों तक वे रुग्ण रहे, भयंकर बीमारियों ने उन पर हमला किया, परन्तु ऐसा लगता था जैसे कि उन्होंने अपने शरीर पर या शरीरजन्य वेदना पर अपूर्व काबू पा लिया हो। अन्तिम समय तक भी वे अपनी चर्या में ही सजग रहे। देहोत्सर्ग भी हुआ तो पण्डितमरण के साथ ही हुआ। सचमुच वे एक युगपुरुष आचार्य थे जिनका हृदय वज्र से भी कठोर और फूल से भी सुकोमल था। उनकी आचारदृढ़ता और संयमजन्य मधुरता स्था. जैन इतिहास में एक मशाल की तरह सदैव चमकती रहेगी।

स्पष्टवक्ता

हिम्मतसिंह बाबेल, उदयुपर

स्वर्गीय पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. उन महापुरुषों में से एक थे जिन्होंने अपने मान, सम्मान एवं शिष्यमोह को सदा ही सिद्धांतों की पालना हेतु बलि चढा दिया था। वे जीए तो भगवान महावीर की अक्षुण्ण परम्परा को निभाने के लिए और स्वर्गस्थ हुए तो भी उसी परम्परा को निभाते हुए। संक्षेप में, बस, यही उनके जीवन की पूर्ण झांकी रही थी। उनके साधुत्व की सफलता भी यही रही और आलोचकों की दृष्टि में उनका हठीपन भी यही रहा।

मुझे गत 25 वर्षों में विविध सम्प्रदायों के अनेक अग्रणी सन्तों के सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, किन्तु स्वर्गीय पूज्यश्री के आचार-विचार, कथनी और करनी में जितनी

समानता के दर्शन हुए, उतने अन्यत्र कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं हुए। यही कारण था कि पूज्यश्री ने समस्त आबाल-वृद्ध के हृदयोपासक का स्थान ले लिया। बहुधा देखा गया था कि उनके कट्टर आलोचक भी इस तथ्य को स्वीकार करते थे और उनकी साधुता एवं स्पष्टवादिता के आगे नतमस्तक हो जाया करते थे। संघ-हित के लिये उन्होंने अपनी अथवा अपनी सम्प्रदाय की मान्यता को सदैव गौण समझा था। उदाहरणार्थ, श्रावण अथवा भाद्र मास दो होने पर "संवत्सरी सम्यन्धी निर्णय"। पूज्यश्री श्रमण संघ को जो रूप देना चाहते थे उसमें यदि श्रमण संघ के एक-दो अग्रणी सन्तों का भी उन्हें हार्दिक सहयोग मिला होता तो आज श्रमण संघ अथवा समस्त स्थानकवासी सम्प्रदाय का रूप ही दूसरा होता।

पूज्य आचार्यश्री अपनी धुन व विचारों के पक्के थे। उनका हृदय यदि स्वीकार न करता तो वे अपने निकटतम सन्तों की प्रार्थनाओं को भी मान नहीं देते थे। उनका मत हमेशा निर्णायक होता था। श्रमण संघ से पृथक् होने एवम् पं. मुनिश्री नानालालजी म.सा. को युवाचार्य पद से विभूतिषत करने के प्रसंगों पर उनकी इसी दृढ निर्णायक शक्ति का परिचय मिलता है।

लगभग चार वर्ष के अन्तिम उदयपुर प्रवास में स्वर्गीय आचार्यश्री के चरणों में बैठकर विविध समस्याओं पर विचार-विमर्श करने का सौभाग्य मुझे मिलता ही रहा था। कई बार गम्भीर-मतभेद हो जाने पर भी उस समय केवल अटूट श्रद्धा एवम् भक्ति के कारण ही आचार्यश्री के मत को मैंने शिरोधार्य किया था किन्तु आगे जाकर मैंने बहुधा यही अनुभव किया कि आचार्यश्री का मत उचित, हितकर, समाज-व्यवस्था को टिकाये रखने वाला एवम् जैन संस्कृति को भौतिकता रूपी मृगमरीचिका से बचाने वाला होता था।

रुग्णावस्था के कारण उदयपुर के अंतिम प्रवास में आचार्यश्री में व्याख्यानों द्वारा उपदेश देने की क्षमता नहीं रह गई थी। फिर भी उनका दैनिक जीवन एवम् असीम धैर्यपूर्वक रोग का सामना करने की उनकी क्षमता ही उपदेश से भी अधिक असरकारक थी। जैन समाज का सौभाग्य ही होता यदि वे और कुछ वर्ष हमारे बीच होते और उनकी मूक चर्या ही आज के हमारे भौतिकता में बढ़ते विश्वास को चुनौती देती रहती। उनका स्वर्गवास हो जाने के कारण जैन समाज की जो हानि हुई है उसका अनुमान लगाना कठिन प्रतीत होता है।

स्वर्गीय पूज्य आचार्यश्री के जीवन की अनेक विशेषताओं में से एक-आध ही हमारे जीवन मे साकार हो जावे तो हमें अपना जीवन सफल समझना चाहिये। इन्हीं भावों के साथ मैं परम श्रद्धेय स्वर्गीय पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. के चरणों में अपनी श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

आध्यात्मिक विज्ञानी को श्रद्धांजली

डा. दौलतसिंह कोठारी, अध्यक्ष विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

आज का युग भौतिकवाद का युग है। इस युग में भौतिक विज्ञान ने अत्यधिक प्रगति की है। यदि इस भौतिक विज्ञान के साथ आध्यात्मिक विज्ञान की प्रगति नहीं हुई तो संभव है कि आज का विज्ञान विश्व के लिए वरदान होने की बजाय अभिशाप-रूप सिद्ध हो सकता है। यही बात आज सन्त विनोबाजी विश्व को सुना रहे हैं।

आज के भौतिक विज्ञान के युग में आध्यात्मिक विज्ञान के प्रसार की अत्यधिक आवश्यकता है तब एक आध्यात्मिक विज्ञानी का संसार में से उठ जाना न केवल जैन समाज की, अपितु सारे विश्व की एक महान क्षति है।

पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. एक महान आध्यात्मिक सन्त थे और आध्यात्मिक विज्ञान के प्रतिष्ठापक और प्रसारक थे। ऐसे आध्यात्मिक विज्ञान-वीर को मैं अपनी नम्र श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ। उन आध्यात्मिक विज्ञानी पुण्यात्मा को चिरशांति प्राप्त हो, यही मेरी प्रार्थना है।

ओजस्वी महापुरुष

गिरधरलाल के. झवेरी, मुम्बई

श्रमण-शिरोमणि परम श्रद्धेय जैनाचार्य पूज्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. का दिनांक 11 जनवरी, 1963 के दिन दोपहर 3-20 पर 73 वर्ष की आयु में उदयपुर मुकाम पर अत्यन्त शोकजनक स्वर्गवास होने से समस्त भारत के स्थानकवासी जैन समाज में गहन शोक की अनुभूति हुई है।

शान्तमूर्ति स्व. आचार्यश्री समस्त स्थानकवासी जैन समाज के बहुमूल्य आभूषण-रूप थे। आपश्री के देहावसान से एक पुरातन युग समाप्त हुआ हो, ऐसा लगता है। और इस महान् तेजस्वी महापुरुष की विदाई से जो क्षति हुई वह दीर्घकाल तक पूरी होना संभावित नहीं है। अर्द्ध शताब्दी से भी अधिक लम्बे समय के स्वर्गीय आचार्यश्रीजी आदर्श और चारित्रशील संयमी जीवन की जितनी प्रशंसा की जाय, उतनी कम है।

अन्तिम चार वर्ष में, कैन्सर जैसे भंयकर दुर्दान्त महारोग के सामने जीवन के अन्तिम क्षण तक अत्यन्त धैर्य, सहनशीलता और पूर्ण स्वस्थतापूर्वक आपश्री जूझते रहे और अन्त समय में 29 घन्टे का संथारा सम्पूर्ण शुद्धि और जाग्रत् अवस्था में पालते हुए स्वाध्याय मे लीन रहकर पंडितमरणपूर्वक स्थूल देह का त्याग कर अनंत में लीन हुए। इस दुःखद प्रसंग पर स्थानीय तथा बाहर गांव के हजारों की संख्या में एकत्रित भक्त, श्रावक-श्राविकाओ की आंखों में से अश्रुधारा बह निकली। वह हृदयविदारक दृश्य स्मृति-पटल से भूला जाय, ऐसा नहीं था। भयंकर असातावाले इस महादर्द को भी अत्यन्त समभाव से सहन कर इस आध्यात्मिक महापुरुष ने सेवा करने वाले उपचारकों को भी आश्चर्यचकित कर दिया। और ऐसा प्रतीत हुआ कि आपश्री के तपबल के सामने जैसे विज्ञान भी असफल होकर हार मान गया हो। निष्कामभाव से सेवा करने वाले स्थानीय डाक्टर शूरवीरसिंहजी, डाक्टर माथुर, डाक्टर न्याती, डाक्टर उडेरालाल तथा अन्य वैद्य डाक्टरों ने पूज्यश्री की लम्बी बीमारी के दरमियान अनन्य भक्तिपूर्वक एकनिष्ठा से जो सेवा की, वास्तव में वह प्रशंसनीय और स्मरणीय है, इसलिए स्थानकवासी जैन समाज उन सब महानुभावों का अत्यन्त ऋणी है।

उदयपुर श्रीसंघ का यह महान् सद्‌भाग्य था कि ऐसे महापुरुष की दीर्घकाल तक अलभ्य सेवा का सुअवसर उसको मिला। जिस श्रद्धा-भक्ति और हार्दिक उल्लास से उदयपुर श्रीसंघ ने, तन-मन और धन से स्वर्गीय पूज्यश्री की सेवा-सुश्रूषा की और दर्शनार्थी बन्धुओं और श्रीसंघों का भावभीना आथित्य-सत्कार किया, वह इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।

स्वर्गीय आचार्यश्रीजी की मुखमुद्रा सदैव प्रसन्न रहती थी और आपश्री प्रकृति से अत्यन्त सरल, निखालस गंभीर और उदार थे।

इस ओजस्वी महापुरुष के जीवन का एकांगी दृष्टि से अवलोकन करने वाला उनका यथायोग्य मूल्यांकन कर सके, यह संभव नहीं है। आपश्री श्रमण संस्कृति के संरक्षक महापुरुष थे। उनके विरले जीवन का और विशिष्ट जीवन-प्रसंगों का उचित मूल्यांकन तो भावी इतिहासकार ही करेंगे।

जैनाचार्य पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की पाट-परम्परा में आपश्री सप्तम पाट पर प्रतिष्ठित थे। अजमेर साधु-सम्मेलन में समस्त भारतवर्ष के संतों ने मिलकर एकमत से आपश्री को युवाचार्य तरीके घोषित किया था और स्व. पूज्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के शुभ हस्त द्वारा इन महापुरुष को चादर प्रदान की गई थी।

स्वर्गीय आचार्यश्री का जीवन, आपश्री के परमप्रतापी पूर्वजों के जीवन की तुलना में कई दृष्टि से भिन्न प्रकार का था। स्व. आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के

जीवनकाल में विभिन्न सम्प्रदायों में विभक्त समस्त भारत के स्थानकवासी जैन श्रमणों के बहुल भाग का संगठन हुआ और श्रमण संघ अस्तित्व में आया। ऐसे दुर्लभ संगठन के कार्य का बहुत महत्त्व का यश स्व. आचार्यश्री के भाग में जाता है। इन्होंने अपने हाथ से, इस श्रमण संघ में अपनी सम्प्रदाय का विलीनीकरण करके अपनी पूज्य पदवी का त्याग किया और इस प्रकार संगठन को पूर्णरूपेण दृढ़ बनाया। यह कदम समाज में अत्यन्त आदरणीय और अनुकरणीय बना और उस महासंघ के उपाचार्य पद पर आपश्री सुशोभित हुए।

उसके बाद जोधपुर का सम्मिलित चातुर्मास अभी अपनी स्मृति में ताजा ही है। उस ऐतिहासिक चातुर्मास में समाज की शोभास्पद अनेक विभूतियों के साथ मिलकर संगठन को दृढ़ बनाने का भरसक प्रयत्न किया। जो वह कार्य निर्विघ्न रूप से आगे बढ़ा होता तो इस में सन्देह नहीं कि जो-जो सम्प्रदाय श्रमण संघ में विलीन नहीं हुए थे, वे सम्प्रदाय भी श्रमण संघ में अवश्य सम्मिलित होते, ऐसी संभावना थी। परन्तु काल की विचित्र गति है। पिछले समय में कई-एक समस्याएं उठ खड़ी हुई जिन का अनेक प्रयत्नों के उपरान्त भी सर्वसम्मत निराकरण नहीं हो सका और मतभेद तीव्र बनते गये। परिणामस्वरूप स्व. आचार्यश्री अपने उपाचार्य पद से निवृत्त हुए और अन्ततः आपश्री ने श्रमण संघ का भी त्याग किया। स्थानकवासी जैन समाज का यह अतिदुर्भाग्य था।

स्व. आचार्यश्री, इतना होते हुए भी, अपने मधुर हृदय में अपने से भिन्न विचारधारा रखने वालों के प्रति भी अत्यन्त सहिष्णु रहे और सब के साथ समान आत्मीयता और आदर-भाव रखते थे। आपश्री से भिन्न विचार रखने वालों के लिये भी यह सौम्य मूर्ति आकर्षण का केन्द्र थी। स्व. पूज्यश्री अन्त समय तक समाज की गंभीर समस्याओं पर गंभीर विचारणा करते रहे और सब के साथ चर्चा-वार्ता द्वारा समस्याओं के समाधान का मार्ग निकालने में सदा प्रयत्नशील रहे। दुर्भाग्य कहें कि चर्चास्पद समस्याओं का सर्वमान्य निर्णय आपश्री के जीवनकाल में नहीं लाया जा सका।

स्था. जैन समाज के ये ज्योतिर्धर शिथिलाचार के कट्टर विरोधी थे। साथ ही अनुशासन का पूर्णरूपेण पालन होना ही चाहिये, ऐसा आप का आग्रह था। स्वयं कड़क आचार-पालनकर्ता महासन्त थे। यह उनके उज्ज्वल जीवन की महानता थी।

इन महान् प्रतिभाशाली संत के विशाल और उदार आदर्शों का प्रतिबिम्ब उनकी दिनांक 22.9.62 की घोषणा में परिलक्षित होता है। श्रमण संघ से पृथक् होने का आपश्री का पगला अल्पकालीन और उपचार-रूप था। उस निवेदन से यह स्पष्ट झलक मिलती है कि आपश्री इस महान संघ के समर्थक और दृढ बनाने के हिमायती थे। आपश्री ने फरमाया है कि उनकी भावनानुसार जब भी सुसंगठन की स्थिति का निर्माण हो, तब उनके अनुयायी पुनः

विलीनीकरण के लिये तैयार रहें और सुंसगठन बनाने में सदा प्रयत्नशील रहें। ऐसे महापुरुष को हमारी सच्ची श्रद्धाञ्जली हो सकती है कि उनके विशाल हृदय के उन उत्तम भावों को मूर्तरूप देने के लिये हम सब परस्पर सहकार और विचार-विनमय द्वारा समाज की वैसी स्थिति का निर्माण करने में भगीरथ प्रयत्न करें और उस ध्येय की सिद्धि करें।

श्रमण संघ के द्वितीय पाट पर विराजित वर्तमान आचार्यश्री आनन्दऋषिजी म.सा., स्व. आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. के अनुगामी पं. रत्न आचार्यश्री नानालालजी म.सा. पारस्परिक सहयोग द्वारा स्वर्गीय आचार्यश्रीजी की भावना अनुसार संघ-संगठन का महान् कार्य सिद्ध करने में प्रयत्नशील बनें, ऐसी हम सब मिलकर उनकी सेवा में प्रार्थना करें। साथ ही उनके ऐसे सद्प्रयत्नों में हम भी सहायकभूत बनें और प्रभु से प्रार्थना करें कि संघ-संगठन दृढ बनाने के इस महान् कार्य में हमको सिद्धि प्राप्त हो।

स्व. आचार्यश्री स्थूल देह से अब अपने बीच में नहीं हैं, मगर आपश्री का आदर्श जीवन हम सब को निरन्तर मार्गदर्शन और प्रेरणा देता रहेगा।

स्व. पूज्यश्री की भव्य श्मशान यात्रा, यह उदयपुर का एक अनुपम दृश्य था। उदयपुर की समस्त जातियों के लगभग 50 हजार से एक लाख की संख्या में नागरिकों ने उस महान् आत्मा की अन्तिम यात्रा में भाग लिया था। संथारा सीझने के बाद आपश्री की स्थूल देह को पौषधशाला में ध्यानस्थ मुद्रा में विराजमान कराया गया। उस रात्रि-भर और दूसरे दिन 10 बजे तक दर्शनार्थियों की लम्बी कतारें बराबर बनी रही। प्रातः 10 बजे स्वर्गस्थ के मृतदेह को सोना-चांदी से मढ़ित भव्य पालिका में विराजमान कर के जुलूस रवाना हुआ। श्मशान यात्रा का वह जुलूस अति दर्शनीय था। हाथी, घोड़े, बैंड और भजन मंडलियां-युक्त श्मशान यात्रा का वह जुलूस आहड गांव में दोपहर को करीब 3 बजे निश्चित स्थान पर पहुँचा। वहां सम्पूर्ण चन्दनकाष्ठ आदि से रचित रथी में इस निराले ज्योतिर्धर के स्थूल देह का अग्निसंस्कार किया गया। वह दृश्य भी हृदय-विदारक था। हजारों की संख्या में वहां उपस्थित शायद ही कोई ऐसा व्यक्ति था कि जिस ने नेत्रांबु द्वारा अपने आराध्य गुरुदेव की अन्तिम अर्चना नहीं की हो।

उदयपुर में हिन्दू, मुसमान, जैन आदि समस्त नागरिकों ने स्वर्गीय पूज्यश्री के प्रति भक्ति और सम्मान प्रदर्शन हेतु अपना समस्त कारोबार बन्द रखा। सारे शहर में पूर्ण हड़ताल रखी। कसाईखाने में भी उस दिन हिंसा बन्द रखी गई।

शासनदेव दिवंगत आत्मा को चिरशान्ति दें और उस महापुरुष के दिव्य जीवन के अपूर्ण रहे हुए कार्य को सिद्ध कर शासन का सुसंगठन बनाने में हम सब को शक्ति प्रदान करें, इस प्रार्थना के साथ स्वर्गीय आचार्यश्री को मेरे अन्तर् हृदय की भक्तिपूर्ण श्रद्धांजली अर्पण करता हूं।

पुनीत संस्मरण

ताजमल वोथरा, बीकानेर

पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के साथ मेरा सम्पर्क लगभग 30 वर्ष तक रहा। उनमें कई-एक ऐसी विशेषताएं थीं कि जिनसे मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। मैं ही क्यों, कोई भी व्यक्ति, जो उनके परिचय में आता, उनके गुणों से अवश्य प्रभावित होता।

उनकी गुरुभक्ति तो भगवान महावीर और गौतम स्वामी का पावन प्रसंग उपस्थित करती थी। उनका गाम्भीर्य गुण भी अनोखा था। सरदारशहर की बात है। उन दिनों साम्प्रदायिक संघर्ष जोरों पर था। सदर बाजार में जब आचार्यश्री प्रवचन फरमा रहे थे, एक अन्य सम्प्रदायी सज्जन ने उन पर कटु शब्दों से प्रहार किया। प्रत्युत्तर में जैसे अमृत की वर्षा हुई हो, आपने अत्यन्त मधुर स्वर द्वारा सम्बोधित किया, 'भले म्हारा श्रावकजी बोल्या तो सही' आदि-आदि। आज भी ये शब्द मेरे कानों में गूंजा करते हैं और सम्भवतः मैं उस प्रसंग को जीवन-भर नहीं भूलूंगा। कई आलोचनाओं के अवसरों पर देखा कि वे, उनकी शान्ति एवं धैर्य को भंग नहीं कर सकीं। इसी तरह आप सत्यप्रिय भी थे। साथ ही, प्रतीत होता था कि जैसे वे अत्यन्त धर्मभीरु हों। यही कारण था कि वे प्रायः विवाद से दूर रहना चाहते थे।

उनकी उल्लेखनीय महत्ताएं और सौम्य मुद्रा चिरस्मरणीय रहेंगी। ऐसे उनके विषय में बहुत-कुछ लिखा जा सकता है। संक्षेप में कहूँ तो वे बड़े ही भव्य, त्यागी, वैरागी एवं भद्रात्मा थे।

श्रद्धांजली

शांतिलाल भरद्वाज 'राकेश', प्रोफेसर, महाराणा भूपाल कॉलेज, सेक्रेटरी, भूपालपुरा समिति, उदयपुर

आज हम इस सभा में एक दिवंगत संत की अनुपस्थिति को पीडा के साथ महसूस कर रहे हैं। यह स्थिति पीड़ाजनक है कि महाराज सा. जो परसों तक हमारे साथ थे, आज हमारे साथ नहीं हैं।

मृत्यु सदैव से एक पहेली रही है, लेकिन हम जीवन को शाश्वत मानते है। व्यक्ति का मात्र भौतिक अस्तित्व ही नष्ट होता है। उसकी आत्मा अमर है।

महाराज सा. एक संत थे। वे सुलझे हुये विचारों के, भविष्य के प्रति आस्थावान और नैतिक तथा धार्मिक मर्यादाओं के पोषक थे। साध्य को ही नहीं, साधना को भी वे महत्त्व देते थे। उनका जीवन मानवता के कल्याण के लिए सदैव प्रवाहित रहा और आज हमारा यही कर्तव्य है कि महाराज सा. को अपने हृदयों में जीवित रखें। जो उनके संदेश थे, उनकी छाया में हम अपने जीवन को ढालें और इस प्रकार मानवता का पथ प्रशस्त करें।

संत किसी जाति या समाज की बपौती नहीं होता। महाराज सा. अकेले जैन समाज के नहीं, अपितु सम्पूर्ण मानव-समाज के प्रेरणास्रोत थे। आज हम यह महसूस करते हैं कि हमारे पथ को प्रशस्त करने वाला एक संत आज हमारे बीच नहीं रहा।

मैं भूपालपुरा समिति की ओर से, तथा व्यक्तिगत रूप मे स्वयं अपनी ओर से महाराज सा. श्री गणेशलालजी को हार्दिक श्रद्धांजली निवेदन करता हूँ।

साथ ही, आचार्यप्रवर (श्री नानालालजी) पंथ के नये आचार्य के रूप में आज पहली बार हमारे पड़ौस में पधारे हैं। मैं आपका हार्दिक अभिनन्दन करता हूँ।

सम्यग्दर्शन की श्रद्धांजली

रतनलाल डोशी, सम्पादक-सम्यग्दर्शन, सैलाना

जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब का स्वर्गवास स्था. जैन समाज की बड़ी भारी क्षति है। पूज्यश्री शान्त, गम्भीर और दृढ़निश्चयी आचार्य थे। श्रमण-परम्परा के पोषण और रक्षण में आप सक्रिय रहते थे। आपका आचार्य पद सदा संघर्षमय ही रहा और इस संघर्ष में आपका लक्ष्य चारित्ररक्षा और संयमशुद्धि के साथ संघ को शुद्ध एवं निर्दोष बनाने का रहा। आपने शांतिपूर्वक सुधार के प्रयत्न किये। कुछ बड़े विषयों में अधीनस्थ अधिकारी मुनिवरों की सलाह से निर्णय दिये, किन्तु जब वे निर्णय परिपालन नहीं होकर कागज मे ही रहने और कुत्सित प्रपञ्चों द्वारा व्यवस्था बिगाड़ने का प्रसंग आया तो आपने ऐसी स्थिति का विरोध किया और निर्णय की पूरी तरह रक्षा की। परिस्थिति ऐसी बनी कि आपके साथियों में से कोई प्रत्यक्ष रूप में तो कोई परोक्ष रूप में दोषी व्यक्ति के साथी बन गए। पक्ष बन गया। आचार्यश्री को पक्ष में करके आपश्री के विरुद्ध आदेश निकलवाया। एक ओर निर्णय में पालन में दृढता रही, तो दूसरी ओर दोषी के बचाव में शक्ति लगी।

निर्णय के परिपालन में आचारशुद्धि, दुराचार का नाश, न्याय की रक्षा और निर्ग्रंथ सस्कृति की प्रतिष्ठा का महत्त्वपूर्ण प्रश्न था। इससे हटना मानो धर्म से हटना था। इसकी उपेक्षा, श्रमण संघ के चारित्रधर्म की उपेक्षा थी। स्वर्गीय पूज्यश्री इस महत्त्वपूर्ण विषय के रक्षण में निर्ग्रंथ धर्म का उत्थान देखकर दृढ़तापूर्वक जमे रहे, किन्तु विपक्ष की दृष्टि में यह महत्त्वपूर्ण बात नहीं आई। उनके सामने तो केवल पक्ष ही रहा और साथ ही पूज्यश्री का महत्त्व गिराने की भावना भी, जिससे कि वे आगे कभी विकार हटाने का साहस ही नहीं कर सकें। स्थिति विषम बनती गई। निर्णय के साथी मौन दर्शक रह गये। कुछ तो साहस की कमी, कुछ साथियों की कमजोरी, कहीं खुद की कमजोरी और बड़े समूह से संमान के आकर्षण ने साथियों में उपेक्षा भर दी। वे अन्त तक दर्शक ही बने रहे। एक विषय में पड़ा हुआ मतभेद दूसरे विषयों में भी चालू रहा। गृहस्थ नेताओं के मन में पूज्यश्री को अपमानित करने के प्रयत्न हुए। किन्तु उपाचार्यश्री एकदम शान्त, धीर-गम्भीर होकर देखते रहे और न्याय-रक्षापूर्वक समाधान होने की प्रतीक्षा करते रहे। उत्तेजना का नाम नहीं। यदि दूसरा कोई तेज मिजाज होता तो इनके लम्बे समय तक आघातों को सहन करके शान्तिपूर्वक बैठा नहीं रहता। जब समाधान के लक्षण नहीं रहे और भेद-रेखा गहरी बनती गई, तब निरुपाय होकर अपने को इस सारे प्रपञ्च से पृथक् करके स्वतन्त्र कर लिया। सारे द्वंद्व मिट गये। इतना सब-कुछ होते हुए भी संघैक्य के प्रति आपकी रुचि बनी रही और आप उस समय की प्रतीक्षा करते रहे जब कि आचार-शुद्धि के धरातल पर सुदृढ़ एकता बने। किन्तु ऐसा नहीं हो सका। विकारग्रस्त बहुत-से व्यक्ति, वाणी-मात्र से या ठहराव-मात्र से अथवा चाहने-भर से शुद्ध हो जाँय - ऐसा होना तो असंभव ही नहीं, अशक्य है। बातें चाहे जितनी कर ली जायँ, ठहराव और नियम ऊँचे-से-ऊँचे बना लिये जायँ, किन्तु तदनुसार पालन सारा समूह, वह समूह कि जिसमें विकारी रुचिवाले प्रारम्भ से ही सम्मिलित हैं और संघैक्य के बाद जिसमें विशेष वृद्धि हुई - कर ले, यह कदापि नहीं हो सकता। कंकरों में से गेहूँ के दाने पृथक् होकर ही अपनी उपयोगिता बनाये रख सकते हैं, अन्यथा उनका नहीं तो उनके अन्तेवासियों का भी समूहवत् हो जाना संभव है। यह सब समझते हुए भी साहस के अभाव में प्रतिक्रमण की हिम्मत किसी की नहीं हुई। यह सुसाहस तो स्वर्गीय आचार्यश्रीजी का ही था - जो सारे समूह द्वारा प्राप्त सन्मान को लात मारकर पृथक् हो गए और उसके द्वारा वाक्-बाण का प्रहार सहने के लिए हँसते हुए अपना सीना खुला कर दिया। एक बहुरूपिया लेखक 'साणासपूत' के वेश में प्रचार पत्र के जरिये, मीठे विषघुझे शब्द-बाणों से इस खुले सीने पर लम्बे समय तक प्रहार करता रहा - जैसे कोई अपराधी, न्यायाधिकारी के सच्चे फैसले के विरुद्ध अपना रोष - कानूनी गिरफ्त से बचते हुए - मिसरी जैसे ढंग से उगलता हो। उस बहुरूपिये विदूषक ने छोटे मुँह

बड़ी बातों से, जैसे - 'ताणो मती सा, खेंचो मती सा, उकलतो मत पीओसा', आदि से अपने जैसो को भले ही खुश कर लिया हो, किन्तु वास्तव में उसकी धूल, सूर्य पर धूल फेकने की तरह उसी पर पडी। वे वाक्-प्रहार उस महापुरुष के हृदय तक नहीं पहुँच सके।

तटस्थ सुज्ञ विचारक जानते हैं कि पूज्यश्री का पृथक् होना साम्प्रदायिक भावना का परिणाम नहीं था। जब समूह में रहने से सारे समाज द्वारा सत्कार-सम्मान और प्रतिष्ठा मिल रही थी, तो पृथक् होकर थोड़े लोगों का ही आदर-पात्र बनना और विशाल समूह का अपमान सहना, कौन प्रतिष्ठाप्रिय व्यक्ति चाहेगा ? ऐसा साहस तो वही कर सकता है जिसमे सत्य, न्याय और सदाचार की रक्षा की भावना हो। ऐसे महापुरुष की निन्दा करने वाले और उस निन्दा का मौन समर्थन करने वाले दुर्लभबोधि नही बनें तो अच्छा ! विशेष खेद तो इस बात का है कि 'मुम्बई के महासंघ' ने आचार्यश्री के ऐसे धर्मानुकूल संस्कृति-रक्षण के कार्य को "महान कुसेवा" कहकर ठहराव किया। यह अनधिकार चेष्टा तो है ही, साथ ही अनन्त तीर्थंकर भगवंतों, और उनके निर्ग्रन्थ प्रवचन का घोर विरोध है। रत्नत्रय की सुदृढ़ आधार भूमिका से रहित, मोक्षमार्ग की उपेक्षा करके और लौकिक रुचि से बने हुए थोथे संगठन के लिए, आचार्यश्रीजी के विरुद्ध ऐसा ठहरा होना, और वह भी वर्तमान आचार्यश्री की उपस्थिति में - यह अछेरे (आश्चर्य) जैसी घटना है। मैं मानता हूँ कि इस ठहराव मे निर्माण में बदले की भावना वाले विशिष्ट व्यक्ति, या कुछ ही व्यक्तियों का हाथ है और शेष ने तो बिना सोचे-समझे सिर हिलाकर स्वीकृति दी होगी और विशेष व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों ने बदला पाने का संतोष मान लिया होगा। किन्तु मैं समझता हूँ, यह डबल पाप हुआ। खैर, महापुरुष ने तो उस प्रहार को वज्रमय सीने पर सहकर व्यर्थ कर दिया।

हमारी श्रद्धांजली न तो उनकी शरीर-सम्पत्ति के कारण है, न जनरञ्जक व्याख्यान के कारण अथवा न पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज की सम्प्रदाय के आचार्य होने के कारण है। हमारी श्रद्धांजली उनकी निर्ग्रन्थ प्रवचन की रुचि, उसके पालन और रक्षण के लिए लाखों उपासकों और सारे श्रमण संघ द्वारा प्रदत्त महान् प्रतिष्ठा को ठुकराकर पृथक् हो जाने और अपमान की परवाह नहीं करने वाले महावीर के शासन-रक्षक होने के कारण है। यदि वे ऐसा साहसिक कदम नहीं उठाते, तो श्रमण संघ की हीनावस्था पर यथार्थता की सर्वसम्मत मुहर लग जाती - जैसे अभी यन्त्र एवं छेद प्रायश्चित्त पर लगी है। यदि ऐसा होता तो हमारी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित नहीं होती।

X X X

कैन्सर की भंयकर बीमारी। डॉक्टरों ने आपरेशन खतरनाक बतलाते हुए भी आपरेशन की राय दी। आपने कहा - "यदि आपरेशन नहीं कराया तो क्या होगा, मौत ही न ? मैं मौत

से नहीं डरता"। डाक्टरों ने कहा - "कदाचित् आपके मस्तिष्क में रोग का प्रभाव होकर उन्माद की स्थिति उत्पन्न हो सकती है"। आचार्यश्री चकित होते हुए बोले - "उन्माद = पागलपन ? नहीं, नहीं, यह तो असंयमी स्थिति है। इससे तो आपरेशन कराना ठीक होगा"। उन्होंने आपरेशन की स्वीकृति दी, किंतु उनकी निर्ग्रन्थ आत्मा को इससे गहरी निराशा हुई। उन्होंने संतों से, शिष्यों से कहा, "अब मैं असंयम की स्थिति में जा रहा हूँ। अतएव तुम कोई भी मुझे वन्दना नहीं करना।" इन शब्दों के पीछे रहे हुए भावों में कितनी गहरी धर्मरुचि स्पष्ट हो रही थी ! वह हृदय, वे भाव सचमुच निर्ग्रन्थ आत्मा के ही हो सकते हैं। ऐसे भावों के प्रति तो विशेष आदर होता है। आज भी उन भावों का स्मरण कर हृदय और मस्तक अपने-आप झुक जाते हैं।

ऑपरेशन के लिए जाते समय फिर आज्ञा हुई, "संतो ! मुझे तुम्हीं उठाना और चादर आदि अपनी ही ओढ़ाना। हास्पिटल वाले मुझे नहीं उठावें और वहां की चादरें मुझे नहीं ओढ़ाई जायं"। यह सावधानी क्या बताती है ?

ऑपरेशन के समय तो प्रत्येक रोगी का शरीर डॉक्टरों के अर्पण होता है। वहां वे अपने ढंग से ऑपरेशन आदि किया करते हैं। बड़े आपरेशन में रोगी बेहोश रहता है, और बेहोश नहीं हो तो भी शरीर स्ववश नहीं रहता। शरीर सम्बन्धी व ऑपरेशन की सभी क्रिया सावद्य ही होती है। रोगी को यही मालूम नहीं होता कि क्या-क्या क्रिया की जा रही है। वह स्थिति तो पूर्ण विवशता की है। इसके बाद भी जब तक डॉक्टरों से टांके खोलने आदि कार्यों से छुट्टी नहीं मिल जाय, तब तक थोड़ा-बहुत दोष-सेवन चालू रहता है। इस सब की श्रीजी ने खुले दिन से आलोचना की, उस समय के उपाध्यायश्री आनन्दऋषिजी म. तथा बहुश्रुत गीतार्थ पं. मुनिश्री समर्थमलजी म.सा. के पास और दोनों की राय से अधिक से अधिक छःमाह का छेद देकर अपने को शुद्ध किया। आपने इस दोष और प्रायश्चित्त का जाहिर ऐलान करने में तनिक भी संकोच नहीं किया।

उदय के जोर से विकट स्थिति उत्पन्न हो सकती है और परिस्थितिवश रुक्षभाव से दोष सेवन भी किया जाता है, किन्तु दोष को दोष मानकर प्रायश्चित्त लेने पर ही साधुता की रुचि और निर्दोष संयम माना जाता है। आचार्यश्री ने दोष को दोष मानकर उसका परिमार्जन किया। यदि वे चाहते तो अपवाद को भी उत्सर्ग के समान, चरित्र के दो चरण बताकर और निशीथ भाष्यचूर्णि का आधार उपस्थित कर अपने को बचा लेते। उनके सामने ये ग्रन्थ उपस्थित थे। किन्तु उन्होंने इस कथित निर्दोपता का विचार ही नहीं किया और प्रायश्चित्त लेकर अपने को निर्दोष बना लिया। इस विकट स्थिति में भी उनके निर्ग्रन्थ मानस के दर्शन होते हैं।

x x x

जावरा चातुर्मास की बात है। व्याख्यान के बाद मुनिगण गोचरी के लिए पधार गये अवसर देखकर मैंने श्रमण संघ की दशा और कुछ सदस्यों की स्वच्छन्दता का उल्लेख स्थिति सुधारने का निवेदन किया, तो फरमाया -

"डोशीजी ! तुमने कहा वह सब ठीक है। ये बातें मुझे मालूम हैं। और भी कई बातें मालूम हुईं जिन्हें तुम नहीं जानते। मैं भी चाहता हूँ कि इन सारी बुराइयों को दूर करदूं, पक्षपात का भूत बाधक हो रहा है। तुम देख ही रहे हो, दुराचार के भीषण मामले में भी के पक्षकार मिल गये और अधिकारी मुनि ही बाधक बन रहे हैं। जब अधिकारी मुनियों सम्मति से किये हुए निर्णय की भी यह दशा है, तो नई बाते उठाकर विशेष झंझट में से सार ही क्या निकल सकता है ? पक्षपात का भूत तो सभी जगह और सभी विषयों में आयेगा। मैं अपना बल लगाकर देखता हूँ। यदि मेरे सारे प्रयत्न बेकार जायेंगे, तब मुझे दूसरा मार्ग तय करना पड़ेगा।"

वास्तव में आचार्यश्री शांत और गम्भीर थे। वे जो-कुछ करते, खूब सोच-समझ कर विपक्ष को पूरा अवकाश देकर। दूसरा कोई मार्ग नहीं होने पर, कठोर कदम उठाते।

रतलाम का झगड़ा तो व्यर्थ ही था। उसमें आधारभूत तथ्य कुछ भी नहीं था। आचा ने खुद ने सीधा मार्ग बता दिया था। यदि उस मार्ग का अनुसरण किया जाता, तो प्रश्न हल हो जाता, किन्तु पक्षपात एवं कषाय के भूत ने झगड़ा खड़ा करवा दिया और वातावरण ही अशांत बना दिया। आचार्यश्री शांत और गम्भीर होकर सभी आघात सहते वे स्वयं शांत रहे और उपासकों को भी शांत रहने का उपदेश दिया। खाली चना खन रहा और जयगणेश और उसके उपासक उपेक्षाभाव से खाली चने की फुदक का त देखकर मुस्कराते रहे।

जब लुधियाना से पद-निवृत्ति का पत्र रजिस्टर्ड डाक द्वारा उदयपुर पहुँचा, तब मैं वहीं था। व्याख्यान के समय ही वह पत्र पहुँचा। इस अनधिकार चेष्टा को देखते उपासकवर्ग तप्त हो गया। वह उसी समय उसका कठोर प्रत्याघात करना चाहता था, कि आचार्यश्री के चेहरे पर एक सल भी नहीं पड़ा। वे हँसते हुए उपासकों को शान्त करते उन्होंने जो भी निर्णय किया, वह आवेश में आकर अथवा शीघ्रता में नहीं किया, किन्तु सोच-समझकर किया, और अंत तक उस पर दृढ रहे।

श्रमण संघ में बुराइयों से टक्कर लेने वाले एकमात्र आप ही देखे गये। यदि दो-चार अधिकारी मुनिराज भी आपको सहयोग देते तो बुराइयां कम होती, बुरे सुधरते हटते और आपके पृथक् होने का प्रसंग ही नहीं आता।

श्रमण संघ के अधिकारियों की उस समय की उपेक्षा और बाद की अभूतपूर्व अवैधा

कार्यवाही से लगता है कि श्रमण संघ की दृष्टि मे जैसा-तैसा संगठन ही सब-कुछ है। निर्ग्रन्थ परम्परा और आगम इसके सामने गौण हैं, जो मात्र दो व्यक्तियों के सामने झुककर आगमिक विधान को तोड़ सकते हैं, उनसे संस्कृति-रक्षण की क्या आशा रखी जाय ?

स्वर्गीय आचार्यश्री का ध्येय भी संघैक्य का था, किन्तु निर्ग्रन्थ परमपरा की भित्ति पर। यह नही हो सकने के कारण ही उन्होंने अपने को पृथक् कर लिया। उनके इस धर्मप्रेम और कर्तव्यनिष्ठा के कारण ही हमारी श्रद्धांजली है।

तात्पर्य यह कि स्वर्गीय आचार्यश्री के चरणों में हमारी श्रद्धांजली उनकी साधुता, धर्मप्रियता और वीर-शासन के प्रति कर्तव्यपरायणता के कारण है। उन्होंने भगवान महावीर की परम्परा को कायम रखने के लिये अपनी मान-प्रतिष्ठा छोडी। वृहद् समूह के कोपभाजन बने, क्षुद्र प्रकृति के पक्षपातियों की भर्त्सना सही और चिरसाथियों के मीठे व्यंगबाण सहे, फिर भी अडिग रहे। उनके इस सत्साहस के प्रति हमारी श्रद्धांजली है। इस हीयमान समय में वे हमारे आदर्श रहेंगे। उनके इस वृद्ध एवं रोगी शरीर में रही हुई युवक योद्धा-सी अडिग शक्ति से श्रद्धालुवर्ग शिक्षा प्राप्त करेगा और धर्म के प्रति कर्तव्यपरायण रहेगा।

हम वर्तमान आचार्य पू. श्री नानालालजी म. के प्रति आशास्पद हैं। वे अपनी युवक-शक्ति को ज्ञान-दर्शन-चारित्र की निर्दोष साधना एवं रक्षा में लगा कर उत्तरदायित्व का द्विगुण उत्साह के साथ पालन करेंगे। हमारी भावना है कि आप निर्ग्रंथ-प्रवचन के जाग्रत् प्रहरी व सबल नायक बनकर हमारी - समस्त श्रद्धालु समाज की श्रद्धा को बल दें, उत्साह बढावें और स्वयं धर्मोत्थान में आगे कदम बढ़ाते रहें - "वड्ढमाणो भवाहिय"।

जाज्वल्यमान सितारा

लूणकरण हीरावत, देशनोक

ता. 11.1.63 रात्रि को रेडियो से परम श्रद्धेय आचार्य सम्राट् श्री गणेशलालजी म.सा. के देहावसान का समाचार सुनते ही हृदय कांपने लगा, आँखों में अंधियारा छा गया। ओह, आज जैन समाज का जाज्वल्यमान सितारा अस्त हो गया ! देश व समाज ने एक महान् विभूति खो दी, जिसकी पूर्ति होना निकट भविष्य में असंभव है। आचार्यश्री को श्रद्धांजली अर्पित करने हेतु उनके प्रशंसार्थ शब्द नहीं मिल रहे हैं। एक महान् आचार्य में जिन सद्गुणों की हम

कल्पना कर सकते है वे सबके सब इन सन्तशिरोमणि के जीवन में साकार होकर उभरे हैं।

सरलता, निष्कपटता, सहिष्णुता, निरभिमानता व मधुरता आदि महान् गुण आपके रोम-रोम में विकसित थे। पदलोलुपता का आपको तनिक भी मोह नही था। आप सुसंगठन को हृदय से चाहते थे, लेकिन शिथिलाचार व स्वच्छन्दाचार के कट्टर विरोधी थे। आपके जीवन की एक खास विशेषता यह थी कि आपकी कथनी-करनी मे तनिक भी अंतर नहीं था। यही कारण था कि आपने अपने प्रभावशाली अमृतमय वचनों से मानव-समाज को मुग्ध किया व उनके मानस-पटल पर एक अटल छाप छोड़ गये। आप विरोधियों को भी अपना परम हितैषी समझते थे। आपकी सहनशीलता व धैर्यता को देखकर लोग आश्चर्यचकित रह गये। यद्यपि आपकी देह में चिरकाल तक असह्य वेदना रही किन्तु आपके मुखारविन्द से 'उफ' तक नहीं निकला। अन्तिम समय तक चेतनावस्था में रहकर आपने पंडितमरण प्राप्त किया। यद्यपि आज वो दिव्यात्मा स्थूल शरीर के रूप में ओझल हो चुकी है। किन्तु गुण-गरिमा से हमारे हृदय-पटल पर चिरस्मरणीय रहेगी। साथ-साथ हमें इस बात का सन्तोष है कि आप अपने पीछे एक महान सन्त को अपना सुयोग्य उत्तराधिकारी छोड़कर गये हैं। हमारा कर्तव्य है कि हम वर्तमान आचार्यश्री नानालालजी म.सा. के आदेशों को शिरोधार्य करते हुए उनको सामाजिक कार्यों में पूर्ण सहयोग दें।

अन्त मे उस महान विभूति को अपनी आन्तरिक श्रद्धांजली अर्पित करता हुआ शासनदेव से प्रार्थना करता हूँ कि दिवंगत आत्मा को चिरस्थायी शान्ति प्राप्त हो।

दृढ़ व्रतीत्व

जोधराज सुराणा, देवदत्त शर्मा, बंगलौर

सांसारिक मायाजाल में फँसा मानव मशीन के पहिये की भांति अपने कृत्यों में उलझा रहता है तो धर्म एवं नैतिकता से दूर होता जाता है। ऐसे समय में सन्त और महात्मा, जो कि यम, नियम, तप व साधना के पुञ्ज होते है, का सत्संग मानव को धार्मिक आशा की ओर बनाये रखने के लिये आवश्यक होता है।

स्वर्गीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ऐसे ही सन्त-महात्माओं में से थे जिन्होंने त्याग और तप, विरक्त भावना एवं कठोर साधना के द्वारा न केवल जैन समाज का, अपितु मानव-प्राणी के हितार्थ अंतिम घडी तक अमर सन्देश देकर मार्ग-प्रदर्शन किया।

कराल-काल के कारण भौतिकरूप में आज वे हमारे समक्ष नहीं हैं, लेकिन उनकी कठोर साधना, दृढ़ व्रतीत्व का चारित्र तथा अमर वाणी का थोड़े अंशों में भी यदि हम पालन कर पाये तो हमारी सच्ची श्रद्धांजली होगी, ऐसी हमारी मान्यता है। स्वर्गीय आचार्यश्री के प्रति हम अपनी श्रद्धांजली अर्पित करते हैं।

श्रमण संस्कृति के रक्षक

डूंगरसिंह डूंगरपुरिया, उदयपुर

आचार्यश्री के सम्पर्क में गत चार वर्षों में मुझको निकटता से आने का सुअवसर मिला। पूज्यश्री अपने-आप में अत्यन्त ही सरल, शुद्ध एवं सादगीयुक्त किन्तु उत्कृष्ट विचार वाले, कठोर से कठोर क्रिया एवं शुद्ध आचार की पालना में रत उनका जीवन था। जहां उनके पास एक आचार्य के नाते कठोर अनुशासन था, तो मानव-समाज के लिए मातृत्व प्रेम एवं स्नेह भी था। प्रेम का ही अमोघ शस्त्र उनके पास था जिससे वे लोगों के मन पर अनायास ही विजय पा लेते थे। श्रीजी कठिन से कठिन क्षणों में भी हंसते हुए देखे जाते थे। अशांति के चिह्न कभी भी चेहरे पर दिखाई नहीं देते थे। जब-जब भी वार्तालाप करने का अवसर आया, तब-तब श्रमण संस्कृति की आराधना के लक्ष्य में दृढ़ आत्मविश्वास दिखाई दिया। युवा, बाल, वृद्ध सभी पर एक-सा प्रेम। उनमें सच्ची साधुता की साधना का अतिशय था। उनका मन बच्चे का-सा सरल किन्तु मस्तिष्क में परिपक्व विचार, उनकी साधना एवं कार्यप्रणाली अन्तरात्मा की आवाज पर ही चलती थी। उनके अनुकूल होने पर बच्चे की बात भी मान लेते परन्तु प्रतिकूल होने पर बड़े से बड़े व्यक्ति की बात भी ठुकराने में संकोच नहीं करते थे। श्रमण संस्कृति में आचार्यश्री का पूर्ण विश्वास था। उन महान् आचार्य का जीवन राजनीतिक दावपेंच से बिल्कुल ही मुक्त था। उनका एक ही विचार था, एक ही चाह थी कि श्रमण संस्कृति अक्षुण्ण बनी रहनी चाहिये। इस वेश में रहते हुए दुनिया के साथ कभी भी धोखेबाजी नहीं होनी चाहिये। इसके लिए कभी भी विचार नहीं किया कि मेरे पीछे कितना बल है या बहुमत मेरे प्रतिकूल है। उनका कहना था कि जो शुद्धता से साधु-जीवनयापन नहीं कर सकता वह इस पद से हट जाय। हट जाना उतना बुरा नहीं है जितना इस वेश में रहते हुए श्रमण संस्कृति के विपरीत कार्य करना है। यह बुरा ही नहीं, अपितु अपनी आत्मा को धोखा देना है। इसी पर उन्हें विशेष चिढ़ थी। जहां आज मानव को अपनी मान-बड़ाई में खुशी होती है, वहां उनको अपना अपमान होने पर भी कभी भी रंज भी नहीं हुआ। अपमान

करने वाले के प्रति कभी भी घृणा नहीं हुई। अपमान करने वाला भी जब सामने आया तो उसे भी वही शुद्ध एवं सरल अन्तरतम का प्रेम दिया जो उनके प्रति आदरभाव रखने वालों को मिलता था।

मैं आचार्यश्री के जीवन पर क्या लिखूं, कुछ भी लिखना सूर्य को दीपक दिखाना है। अन्त में यह लिखना चाहूँगा कि उन महामना आचार्य की आत्मा को शान्ति प्राप्त हो एवं मुझमें उनके बताये हुए मार्ग पर चलने की शक्ति प्राप्त हो।

हे महामना आचार्य ! कोटि-कोटि प्रणाम !!

श्रद्धा और प्रेममय जीवन

श्रीमती लक्ष्मीदेवी जैन

आचार्यवर पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने अपने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप के पुण्य प्रकाश से संसार को प्रकाशित किया। आपके उपदेश से प्रभावित हो अनेक सद्गृहस्थों ने उन पूज्यश्री के मार्ग पर अपने जीवन को लगा दिया जिनमें मेरे पिता-माता भी हैं, जिनके नाम क्रमशः श्री चौथमलजी कोठारी एवं श्रीमती राजकंवरीजी हैं। पूज्यवर तो असार संसार का परित्याग कर सारभूत आत्मोपलब्धि कर चुके हैं लेकिन उनका गुण-प्रकाश सदैव हमारा मार्ग-निर्देशन करता रहेगा। आपश्री के गुणानुवाद रूप श्रद्धांजली अर्पित कर अपने को कृतार्थ समझती हूँ।

जन्म धर्म हित कर्म धर्म हित, धर्म कर्म पर जो कुरबान।
जावो सन्त मां मार्ग पर, अमर रहेगा तेरा ज्ञान।

ओ महान् संत आपको शत-शत श्रद्धांजली

मोतीलाल बरड़िया, सरदारशहर निवासी, अहमदाबाद

माघ कृष्णा 1 का दिन था। चारित्रचूड़ामणी, त्यागी-वैरागी, संतशिरोमणि जैनाचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. ने आज के दिन 10 बजकर 20 मिनट पर आलोयणा करके

संथारा ले लिया। विद्युत की तरह भारत के समस्त नगरों व शहरों में खबर पहुँच गई। मुझे भी अहमदाबाद में शाम को 7 बजे महान् संत के संथारे का तार मिला। सहसा गुरुदेव, स्थानकवासी समाज के सूर्य, आचार्य प्रवर के दर्शनों की तमन्ना जाग उठी।

माघ कृष्णा 2, सुबह 8 बजे रोडवेज सर्विस से उदयपुर रवाना हो गया। शाम को 6 बजे उदयपुर पहुँचा। महान् तेजस्वी आत्मा का 3 बजकर 20 मिनट पर स्वर्गवास हो चुका था। संथारास्थित आत्मा का मुझे दर्शन नहीं हो सका। मेरे भाग्य की बात थी। पौषधशाला के प्रांगण में आपके पार्थिव शरीर का ही मुझे दर्शन हुआ। वही मुस्कराता हुआ चेहरा, मानो ऐसा लग रहा हो कि अभी प्रवचन शुरू करेंगे। दर्शनार्थियों का तांता लग रहा था। शहर की सभी जनता दर्शन करने आ रही थी।

माघ कृष्णा 3, शनिवार के सुबह दस बजे चांदी के भव्य सिंहासन में आपके शव को बैठाया गया। पौने ग्यारह बजे आपके शव का जूलूस शुरू हुआ। ऐसा भव्य दृश्य देखने का, उदयपुर के इतिहास में पहला मौका था। ऐसा मालूम पड़ता था कि सारा शहर ही उमड़ पड़ा है। बाजार सारा बन्द था। मकानों की छतों पर, बाजारों, सड़कों पर नर-नारियों के झुंड के झुंड आपके दर्शनों को लालायित थे। जूलूस ढाई घंटे से श्मशान भूमि में पहुँचा।

ओ महान् त्यागी, तपस्वी, सरलस्वभावी, चारित्र के हिमायती, आपने अपना प्रण पूरा निभाया ! श्रमण संघ के उपाचार्य पद को "सर्पकांचलीवत्" आपने छोड़ दिया। बड़े-बड़े नेता कहलाने वाले कहते रहे, इनको आचार्य पद का मोह है, ये श्रमण संघ में कांटे हैं। ऐसा कहने वालों को मैंने नजरों से देखा है और कानों से सुना है, परन्तु इस महान् सन्त ने कोई परवाह नहीं की। त्याग और चारित्र को रखने के लिए अपने सही रूप में आये। आपका दीक्षाकाल संघर्ष में बीता।

स्वर्गीय जैनाचार्यश्री जवाहरलालजी म.सा. के साथ में सं. 1984 में स्थलि प्रान्त में आये। वह तेरापंथियों का क्षेत्र था। आपको परीषह सहन करने पड़े। सं. 1985-1986 में दो चातुर्मास चूरू में किए। स्वर्गस्थ जवाहराचार्य के साथ सं. 1985 का स्वतन्त्र चातुर्मास चूरू किया था। ढाई वर्ष तक आप स्थलि में विचरे, वहां बहुत संघर्ष रहा। आपने डटकर दया-दान का प्रचार किया। बाद में सं. 1990 में अजमेर साधु-सम्मेलन में आये। पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. की सम्प्रदाय के पाट पर आपको युवाचार्य बनाया गया। फिर बहुत संघर्ष रहा। बाद में 1998 में फिर आपका युवाचार्य पद में सरदारशहर चातुर्मास हुआ। खूब दया-दान का प्रचार हुआ। दो-तीन दीक्षाएं हुईं। फिर मारवाड़, मेवाड़, मालवा प्रान्त में विचरे व चातुर्मास करते हुए जयपुर चातुर्मास हुआ। फिर दल्ली व अलवर के चातुर्मास के बाद में सम्मेलन हुआ। वहां आप सर्वसम्मति से श्रमण संघ के संचालन के संपूर्ण अधिकारों के साथ उपाचार्य बनाये गये।

आपने श्रमण संघ में रहते हुए संयम और चारित्र के लिए जो आदेश और उपदेश दिये, वे समाज के सामने खुली पुस्तक के रूप में मौजूद हैं। ओ महान् सन्त ! तेरा सत्य, तेरा त्याग, चारित्र जन-जन के अन्दर चन्द्र-सूर्य के प्रकाश की तरह लाखो वर्ष चमकता रहेगा। भगवान् श्री महावीर, भगवान् श्री गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी को दुनिया याद करती है, वैसे ही आपको भी करेगी। मैं आपका भक्त, आपके चरणों में, शत-शत श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ। आपकी आत्मा को शान्ति मिले और आपके बताए हुए मार्ग पर हम सब डट कर चलें।

दृढ़ संयमी

धनराज बेताला, भूतपूर्व अध्यक्ष, नगरपालिका, नोखा मंडी

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय श्रद्धेय आचार्य पूज्यश्री श्री 1008 श्री श्री गणेशलालजी म.सा. ने इस नश्वर संसार से पंडितमरण प्राप्त किया। आचार्य पूज्यश्री की एक आदर्श श्रमणोचित अभिलाषा थी कि मुझे पंडितमरण प्राप्त हो। इसे वे अपनी रुग्ण अवस्था के दौरान समय-समय पर प्रकट करते रहे। आचार्यश्री एक लम्बे समय से रुग्ण चले आ रहे थे। रुग्ण अवस्था मे भीषण उतार-चढ़ाव आते रहे, किन्तु पूज्यश्री अविचल भाव से एक कुशल रणवांकुरे योद्धा के सम रुग्णता से जूझते रहे। ऐसी शारीरिक अवस्था में भी आचार्यश्री श्रमणोचित आदर्श पर दृढ़ रहे।

श्रमण संघ की स्थापना, समय-समय पर हुए सम्मेलन समाज की एकता के लिए प्रयास थे। लेकिन श्रमणों की कॉन्फ्रेंस के वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा पक्षपात तथा कलुषित विचार के सामाजिक पत्रों द्वारा निरन्तर आचार्यश्री की रुग्ण शारीरिक स्थिति मे भी मानस को उत्तेजित करने वाली घटनाओं का क्रम जारी रहा। इन सारी परिस्थितियों के बावजूद भी आचार्यश्री अपने आत्मशक्ति के उद्देश्य की पूर्ति में लगे रहे। आदर्शो की रक्षा में वे हमेशा दृढनिश्चयी रहे। आचार्यश्री ने इस श्रमण संघीय विषैली परिस्थिति से अपने को अलग घोषित किया एवं श्रमण संस्कृति रक्षार्थ दी गई व्यवस्थाओं को पालन करने वालों के साथ ही अपना सम्बन्ध रखना फरमाया था। पूज्यश्री फरमाते थे कि उत्कृष्ट साधुता श्रमणों के जीवन का मुख्य लक्ष्य है, इसे किसी भी दृष्टि से गौण नहीं किया जा सकता है। श्रमणों में शिथिलाचार का होना श्रमणवर्ग के लिए संयम की साधना से गिराने वाला है। इसी प्रसंग पर जिज्ञासा के समाधान में आचार्यश्री ने फरमाया था कि श्रमणों में शिथिलाचार व उसका पोषण बिल्कुल नहीं होना चाहिए। प्रयास करने पर भी अगर यह नहीं रुकता हो तो इसके लिए आचार्यश्री ने एक

जलते हुए मकान का उदाहरण देते हुए फरमाया था कि जलते हुए मकान का जितना हिस्सा बचा सकते हो, बचालो ताकि उस अखंड बिना जलते हुए हिस्से से भविष्य में त्राण पाया जा सके। यदि समय रहते बचे हुए हिस्से को भी अलग नहीं किया, सारे मकान को बचाने में ही लगे रहे तो आग की लपटों से सारे भवन के नष्ट हो जाने का पूर्ण खतरा है। श्रमणसंस्कृति की रक्षार्थ जो दर्द पूज्यश्री के हृदय में था उसके स्मरण मात्र से ही आत्मा, स्वर्गीय आत्मा को कोटिशः नमस्कार करने लगी है।

स्व आचार्यश्री व्यवहार में सरल-हृदय, दया-मूर्ति व अधीनस्थ श्रमण वर्ग के लिए वात्सल्य भाव रखते थे व श्रमण-परम्परा को पालने में में वज्र के समान कठोर थे। दूसरों से भी इसी प्रकार की आशा रखते थे। नियम-विरुद्ध परिस्थिति उत्पन्न होने पर आचार्यश्री ने आदर्शों की रक्षार्थ अपने अंगों को भी त्यक्त दिया, किन्तु सिद्धान्तो पर अडिग रहे। साधु-आचार की भाषा के विपरीत लेखन पर अपने शिष्य का मोह भी उन्हें श्रमण संघीय स्थिति में सम्बन्ध-विच्छेद करने से न रोक सका। समस्त स्थानकवासी श्रमण संघ के आचार्य पद जैसे सम्मानित पद को भी सिद्धांतों व आदर्शों के सामने त्याज्य माना। त्याग की ऐसी मिसाल दुर्लभ है। ऐसे त्यागी, महान् आचार्यश्री को मेरे इन चन्द शब्दों द्वारा श्रद्धा के पुष्प अर्पित हैं।

उनका जीवन आदर्शमय था

माणकदेवी श्रीश्रीमाल

दिनांक 11.5.63 को दिन के 3.20 बजे जगत् के महान पुरुष, प्रात.स्मरणीय पूज्यश्री गणेशलालजी म.सा. का स्वर्गवास हो गया। यह समाचार सुनते ही सर्वत्र शोक छा गया, पूज्यश्री महान् आत्मा थे। आपके संपर्क में जो भी आया, आपके मधुर प्रवचनों को जिसने भी सुना उसके हृदय पर आप सदैव के लिए छा गये। उनका जीवन आदर्शमय जीवन था। उनकी कथनी और करनी मे कोई फर्क न था। आप करीबन 3-4 वर्ष से काफी अस्वस्थ थे, इधर कई दिनों से तकलीफ काफी बढ गई थी। उस समय मैं उदयपुर में ही थी जब आपश्री ने इस शरीर की असारता को जानकर संथारा कर के समाधिमरण प्राप्त किया। गुरुदेव में असीम धैर्य था, महान् शान्ति थी। ऐसे महान् आत्मा के प्रति मैं अपनी हार्दिक श्रद्धांजली अर्पित करती हूँ।

महान् त्यागी

बिमलचन्द भण्डारी, जोधपुर

हमने सूत्रों में भगवान महावीर के कर्मों से जूझने में कष्ट-सहन की बात सुनी है, किन्तु जिस प्रकार आचार्यश्री ने कैंसर रोग का सामना किया वह अत्यन्त प्रशसनीय था और इस भौतिकवादी विश्व में प्रत्येक के लिये सच्चे जैन साधु की कष्टो के प्रति उपेक्षावृत्ति और संवेदनाशक्ति का परिचायक है। मेरा यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि हमने उनमें एक महान् त्यागी एवं निर्भीक जैन सन्त के दर्शन किये। उनका जीवन पवित्रता, बलिदान और जैन सिद्धांतों के प्रति न.स्वार्थ आस्तिक्य का एक सुस्पष्ट अध्याय था।

यह महान् सन्त, न केवल अपनी परम्परा, वरन् आध्यात्मिकता के सिद्धांतों और अपने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उपयोगिता का उपदेश देकर मानवता को उत्कर्षोन्मुख बनाने हेतु जीवित रहा। इस अवसर पर हम सब यह प्रतिज्ञा लें कि जिन सिद्धांतों के लिए वे जीवित रहे, उनका प्रत्येक साधु दृढ़ता से पालन करे। उनकी आत्मा अनन्त शान्ति को प्राप्त करे। ॐ शांति, शांति, शांति।

दृढ़ सिद्धान्तवादी

छोगमल चोपड़ा, बी.ए.एल.एल.बी., गंगाशहर

जो जन्म लेता है उसको एक दिन अवश्य परलोक जाना ही पड़ता है। संसार में जन्म-मृत्यु का चक्र अनादिकाल से चला आता है। पर जन्म सार्थक उन्हीं का है जो अपने कार्यों से संसार को एक आदर्श दिखा जाते हैं। भौतिक वैज्ञानिक प्रगति के युग में संसार को असार समझ कर समस्त बन्धनों को छोड़ अलग होने वाले महापुरुष थोड़े ही होते हैं और उन थोड़ों में जो अपनी आचार-निष्ठा से च्युत नहीं होते, वे बहुत कम होते हैं। इस दृष्टि से स्वर्गीय श्री गणेशलालजी महाराज अपना अद्वितीय स्थान रखते हैं। स्थानकवासी समाज में उपाचार्य का पद पाकर भी उसे अपने सिद्धांत पर अटल रहते छोड़कर जो मानसिक बल

उन्होंने दिखाया, वैसा विरले ही दिखा सकते हैं। आज वे अपने बीच नहीं हैं, पर उनकी स्मृति सदा अमर रहेगी। उनके स्वर्गवास से जो स्थान स्थानकवासी समाज में रिक्त हुआ है वह शीघ्र पूरा होना असंभव है।

धन्य है उनकी सहनशीलता !

सूरजचन्द डांगी, बड़ी सादड़ी

परमपूज्य प्रातःस्मरणीय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब की ज्योति मेरे आन्त्य प्रदेशों में प्रकाशमान है। मुझे उनके दर्शन-स्पर्शन का सौभाग्य इन अंतिम दिवसों मे अधिक हुआ। बीमारी में उनकी आत्मा का प्रकाश अधिक से अधिक बढ़ गया था। सरलता और निपुणता, गंभीरता और स्फूर्ति, सत्य और शील, शौर्य, धैर्य, सभी गुणों का समन्वय उनमे अद्भुत पद्धति से हुआ था। अपनी भूल स्वीकार करने का अनुपम सामर्थ्य आप सरीखे विरले महात्माओं में ही देखा गया। आप सारे संघ को एक सूत्र में बंधा हुआ देखना चाहते थे। आगमानुसार सदाचार के वे मूर्तिमान प्रतीक थे। जब ऑपरेशन के लिये भक्तमंडल ने उन्हे मजबूर कर दिया तो आप बोले, 'जब तक मैं वापस ठीक होकर न आऊँ, कोई मुझे साधु न माने, न मुझे वंदना-व्यवहार करे। जब तक प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध न हो जाऊँ, मुझे एक साधारण मनुष्य समझे।' परगुणानुराग सरीखे दुर्लभ सद्गुण की आप साक्षात् प्रतिमा थे।

जब मैंने रामकृष्ण परमहंस के चरित्र की एक घटना सुनाई तब उनकी आंखों में अश्रुओं का संचार हो आया। प्रमोद भावना उमड़ पड़ी। मैंने अर्ज किया, जब परमहंस श्री रामकृष्णदेव को अंतिम समय कैंसर हो गया था तो भक्तों ने कहा, प्रभो, आप माताजी से ठीक करने की प्रार्थना करें। परमहंस बोले, भाई, अगर माताजी पूछेगी कि रामकृष्ण जीवन-भर तो तूने अपने लिये कुछ नहीं मांगा, अब मरने पर माँगने आया तो कैंसर अच्छे करने के सिवाय (शरीर के स्वास्थ्य के सिवाय) और कुछ भी वस्तु तेरे पास माँगने को नहीं है ? ऐसा मगर माँ पूछेगी तो क्या उत्तर दूंगा ? इसलिये हिम्मत नहीं होती कि यह तुच्छ मांग प्रभु की अनुपम शक्ति के सामने रखूँ। प्रभु की अनुपम शक्ति माताजी से तो दुःख मे धैर्य ही मांगना चाहिये। आचार्यश्री ने फरमाया, "धन्य है उनकी सहनशीलता ! मैं तो कमजोर हूँ।" परन्तु अपने-आप की कमजोरी ही देखने वाले इस महत्तम संत को प्रभु तीर्थंकर के प्रसाद से ऐसा धैर्य मिला कि अंत में सर्वस्व त्याग करके क्षमाश्रमण का आखिरी धर्म सम्पन्न किया। आशा ही नहीं, विश्वास

है कि पूज्यश्री नानालालजी महाराज उनकी आज्ञा का पालन करते, कराते हुए और अनुमोदित करते हुए आपकी आत्मा को स्वर्ग में भी शांति पहुँचाने में समर्थ हो सकेंगे। श्रमण संघ की मति भी राजमति के अनुसार रह नेमियों पर मुग्ध न होकर प्रभु का अनुकरण करेगी और सादडी के इस अद्भुत नेमजी की जान के वरराजा का मोक्ष मार्ग में भी साथ देगी।

अगणित वन्दन

नेमचन्द चौपड़ा, अजमेर

श्रमणशिरोमणि, जैन समाज के ज्योतिपुञ्ज, पूजनीय आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज साहब सत्य, न्याय, सिद्धान्त और जैनत्व के अडिग प्रहरी थे। उनका तप-पूत शरीर, वह क्षणभंगुर मानव-काया हमारे बीच में नहीं है। आपके धैर्य की क्रूर कर्मों ने काफी परीक्षा ली और असह्य वेदना को भी आप शान्त भाव से सहन करते रहे तथा अन्त समय में आपने स्वयं संथारा धारण कर अपने कर्मों पर विजय प्राप्त की। यह बड़ा आदर्श हमारे सामने हैं। संघ की एकता और अखण्डता के प्रति उनके हृदय में जो अन्तर्भावना थी, उसे साकार रूप देने में हम सब प्रयत्नशील रहेंगे। यही उन पूज्य पुरुषों के प्रति मेरी श्रद्धांजली है। ऐसे पूज्य पुरुष को मेरा अगणित वन्दन हो !

तेरे ध्यान में लीन रहे

कुन्दरसिंह खिमेसरा, अध्यक्ष, श्री व.स्था.जैन श्रावक संघ, उदयपुर

चारित्रचूड़ामणि, परम श्रद्धेय आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज साहब के निधन से मुझे ऐसा भास हो रहा है कि मेरे पास करने को कुछ कार्य ही नहीं रहा गया है। आचार्यश्री इतने सरल एवं भद्रपरिणामी थे कि चार वर्षों में मैं कई बार समय पर अपनी ड्यूटी पर नहीं पहुँचता, कभी देरी, कभी शीघ्रता हो ही होती थी, लेकिन पूज्य गुरुदेव ने कभी उपालम्भ नहीं दिया और जाने पर यही फरमाते - भाई गृहस्थी हो, देर हो गई, कोई बात नहीं है।

उपरोक्त शब्दों को सुनकर मैं स्वयं द्रवित हो जाया करता था और मन ही मन प्रण करता था कि भविष्य में समय पर ही उपस्थित होऊँगा, लेकिन वैसा फिर भी नहीं कर सका।

पूज्य गुरुदेव एक आध्यात्मिक नेता थे, संसारी झंझटों से ऊपर उठ चुके थे। सुख-दुःख को समान समझते थे। जब वे व्याधि-ग्रस्त हुए तब से मेरा सन्निकट-सा सम्बन्ध हो गया था, लेकिन इतने लम्बे अरसे में कभी भी मैंने श्रीमुख से उफ शब्द का उच्चारण तक नहीं सुना था।

आचार्यश्री शरीर छोड़ व्याधि से मुक्त हो गए। वात भी सच है कि स्वर्गीय सुखों को तिलांजली देकर इस दुःखी संसार में रहते भी कैसे (जहां अवर्तनीय आनन्द है, हजारो देवी देवता उनकी सेवा के लिए तरस रहे होंगे) ? उन्हें हमारी सेवा पसन्द आती भी कैसे ?

जाओ गुरुदेव ! कहीं भी जाओ। लेकिन मेरा मन तेरे ध्यान में सदैव लीन रहे, इस आशा के साथ मैं श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

साधुता के सच्चे प्रहरी

पं. पूर्णचन्द दक, संचालक, वीरवाल छात्रावास, उदयपुर

जिस शान्त-दान्त और भव्य मूर्ति के कल तक हम दर्शन किया करते थे आज उसे स्वर्गीय कहते हुए हृदय भर आता है। पूज्यश्रीजी ने अपना मानव-जीवन सफल कर लिया। हर व्यक्ति जीवन में वास्तविक सफलता नहीं प्राप्त कर सकता। विरल व्यक्ति ही सफल होते हैं। पूज्यश्रीजी की सफलता का कारण उनके द्वारा धर्म की जड़ का सिंचन करना है। संवत् 1984 मे जब मैं बीकानेर में अध्ययन करता था, पूज्यश्रीजी ने फरमाया, "मैं अपने गुरु के वचनों को भगवद्वचन मानकर उनका पालन करता हूँ।" आज्ञा पालन और विनय पूज्यश्रीजी में कूट-कूट कर भरे थे। *"आणाए धम्मो" और "धम्मस्स मूलं विणाओ" --इन शास्त्रीय वाक्यों* को श्रीजी ने जीवन में साकार कर लिया था। यही उनकी सफलता का मुख्य कारण है। जीवन में यश और लोकप्रियता विनीत व्यक्ति ही पाते हैं।

साधु-जीवन के वे सच्चे प्रहरी थे। स्वयं जैन साधु के बारीक से बारीक क्रियाकाण्ड का दिल से पालन करते थे तथा दूसरों से करवाते थे। न करने पर हृदय में दुःखित होते थे। साध्वाचार के संरक्षण के लिए उन्होंने मान-अपमान का खयाल नहीं किया। अगर डोर थोडी ढीली कर देते तो सन्मान अवश्य मिलता। परन्तु निर्गंथ संस्कृति और तीर्थंकरों की आज्ञा का पालन न कर पाते। पूज्यश्री ने साधु-जीवन की विशुद्धि पर विशेष ध्यान दिया है। उनके जैसे सजग प्रहरी के चले जाने से जैन समाज में एक महान् कमी हुई है।

परन्तु बन्धुओ ! चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। पूज्यश्रीजी अपने स्थान पर एक ऐसे योग्य शिष्य को प्रहरी के रूप में स्थापित कर गये हैं जो स्वयं सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र की विशुद्धि में सजग है। खूंटा मजबूत है। सत्य पर डटे रहने वालों की सदा जय-विजय होती है। मैं अपनी ओर से तथा कानौड श्रीसंघ की ओर से पूज्यश्रीजी के प्रति श्रद्धांजली अर्पित करता हूँ।

जैन समाज के सिरताज

पं. घेवरचन्द बांठिया 'वीरपुत्र'
न्याय व्याकरणतीर्थ, सिद्धांतशास्त्री

परमश्रद्धेय आचार्यप्रवर पं र. श्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. के स्वर्गवास के समाचार रेडियो द्वारा जानकर हार्दिक दुःख हुआ। वर्तमान समय में समस्त साधु-समाज में आपके समान प्रभावशाली कोई दूसरा साधु नजर में ही नहीं आता है। आप समस्त स्थानकवासी जैन समाज के सिरताज, वीर-शासन के वीर सेनानी, ज्ञान-क्रिया के अपूर्व भण्डार एवं त्याग-वैराग्य की साक्षात् मूर्ति थे। जिस प्रकार शुद्धाचार के आप पालक थे, वैसा ही शुद्धाचार आप समस्त साधु-समाज में देखना चाहते थे। इसके लिए अनेक विघ्न-बाधाओं का सामना करते हुए भी आप सदा प्रयत्नशील रहे, किन्तु जब परिस्थिति को प्रतिकूल देखा तो उस से पृथक् होने में सत्साहस का परिचय दिया। आपने वीर-शासन को उन्नत रखने का सदा प्रयत्न किया और भगवदाज्ञा-आराधना में अपने जीवन को लगाया। आपके स्वर्गवास से जैन समाज की अपूरणीय क्षति हुई है। किन्तु आपने अपने वरद हस्तों से पं. र. श्री नानालालजी म.सा. को युवाचार्य पद प्रदान कर समाज को एक योग्य नेता दिया है, जिसमें कि समस्त जैन समाज का पूर्ण विश्वास और श्रद्धा है। आप इस पद के सर्वथा योग्य हैं। आशा है कि आप स्वर्गीय पूज्यश्री के पदचिह्नों पर चलकर समाज को सदा उन्नति की ओर अग्रसर करते रहेंगे।

शोक, शोक, महाशोक

बागमल चौहान, महागढ़ (म.प्र.)

पूज्य गुरुदेव समाज की एक महान निधि थे। उनका एसे समय में उठ जाना समाज के लिए महान् दुःख का कारण है। आपश्री के गुणों के कारण आप प्रात.स्मरणीय पूज्यश्री हुक्मीचन्दजी म.सा. के पाटानुपाट पर आचार्य एवं जब श्रमण संघ का संगठन बना, आप उपाचार्यश्री चुने गये और आप द्वारा समाज को समय-समय पर योग्य मार्ग-दर्शन मिलता रहा।

आपश्री संगठन के पूर्ण हामी व शिथिलाचार के हमेशा विरोधी रहे हैं। आप स्वयं ने भी जब भी बीमारी वगैरह के समय लगे हुए दोष का प्रायश्चित्त समाज के सामने किया, जो भुलाया नहीं जा सकता है। ऐसा महापुरुष ही समाज को योग्य मार्ग प्रदर्शित कर सका है। इतनी लम्बी बीमारी के समय भी आप प्रसन्न मुद्रा में रहते थे और पूर्वसंचित कर्मों को खत्म करते रहते थे। आज जब भी गुरुदेव का स्मरण होता है, वह सौम्य मूर्ति व मुस्कराहट वाला चेहरा सामने नजर आता है। उस दिन जब नानालालजी म.सा. को युवाचार्य पद की चादर समर्पण करने राजमहल के प्रांगण में जिस समय उठाकर ले जाया गया, क्या प्रसन्न मुद्रा थी ! देखते ही बनता था। शरीर से कमजोर, परन्तु चेहरे से वे दिव्यमान, उस दिन के बाद दर्शनों की उत्कण्ठा लगी रही। परन्तु दुर्भाग्य थे कि दर्शन नहीं कर पाया और वो चमकता हुआ सूर्य सदा के लिये अस्ताचल की ओट में छिप गया। उदयपुर शहर एक तीर्थधाम बन गया था। वो यात्रा टूट गई। उदयपुर का संघ भी महान पुण्यशाली श्रीसंघ है जिसे गुरुदेव जैसे महापुरुष का वर्षो सेवा का लाभ मिला व उनने भी जो समाज की तन-मन-धन से सेवा की, वो चिरस्मरणीय रहेगी। उदयपुर का श्रीसंघ भी धन्यवाद का पात्र है।

वर्तमान पूज्यश्री नानालालजी म.सा. एवं पूज्यश्री के आज्ञानुवर्ती होनहार संत-महात्माओं से यही विनम्र प्रार्थना है कि पूज्य गुरुदेव, जो श्रमण संगठन के हामी थे, उसी प्रकार श्रमण संगठन को पूर्ण सहयोग देकर पूज्य गुरुदेव के अधूरे कार्य को पूर्ण कर समाज को गौरवान्वित करें।

अन्त में परमश्रद्धेय स्वर्गीय पूज्य गुरुदेव को विनम्र श्रद्धांजली अर्पित करता हुआ विराम लेता हूँ।

चमकता सितारा अस्त हो गया

धनराज शाहा बोथरा, तेजपुर

परमश्रद्धेय आचार्यवर श्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज के निधन से जैन समाज को ही नहीं, परन्तु सारे भारत को क्षति पहुँची है। आप सरल प्रकृति के, धीर, गम्भीर, त्यागमूर्ति, महातपस्वी, धर्म के मर्मज्ञ, संस्कृत के प्रगाढ विद्वान थे। मुझे भी अपने चाचाजी साहब श्री चतुरभुजजी शाहा बोथरा के संग आपके दर्शन तथा प्रवचनो का कई बार सौभाग्य प्राप्त हुआ। आपके ओजस्वी सुन्दर भाषण श्रवण करने से बड़ा आनन्द आया। सभी श्रोतागण आपकी अमृतमयी वाणी श्रवण करके मुग्ध हो जाते थे। आपने उग्र विहार करके राजस्थान के ग्राम-ग्राम में तथा भारत में दया-धर्म का प्रचार कर अपने सदुपदेश द्वारा उनका जीवन सुधारा है, यह प्रशंसनीय है। आपका नाम अमर हो गया है। जिससे मेरे हृदय में यह सद्भावना उत्पन्न हुई कि मैं भी अपनी छोटी बुद्धि से इन महातपस्वी के पावन चरणों में अपनी श्रद्धांजली अर्पण करूं।

स्मृतियां दिल में अंकित रहेगी

मानसिंह बैद, मंत्री, श्री जैन श्वे. तेरापंथी सभा, मुम्बई

आज की हमारी जनरल सभा वयोवृद्ध पूज्य आचार्यश्री 1008 श्री गणेशलालजी महाराज के देह-परित्याग पर संवेदना प्रकट करती है। आपके स्वर्गवास से न केवल स्थानकवासी समाज को, बल्कि सारे जैन समाज को बड़ी क्षति पहुँची है। आप बड़े विद्वान और योग्य आचार्य थे एवं जैन धर्म की ख्याति में आपने बहुत बड़ा योगदान किया। आपकी स्मृतियाँ हरेक जैनी के दिल में अंकित रहेंगी।

श्रद्धांजली

शिखरचन्द्र कोचर, बी.ए., एल.एल.बी. आर.एच., जे.एस., सिविल एंड एडीशनल सेशन्स जज, सीकर (राजस्थान)

प्रात.स्मरणीय परमपूज्य जैनाचार्यश्री गणेशलालजी महाराज जैन समाज के एक महान् नेता थे। उनकी वक्तृत्वशैली अत्यंत प्रभावशालिनी एवं युक्तिपूर्ण थी; जिसके कारण श्रोतागण के हृदय-पटल पर आपके सदुपदेशों की अमिट छाप अंकित हो जाती थी। इतने महान् पद पर प्रतिष्ठित होने पर भी आपका जीवन अत्यंत सात्त्विक एवं स्वभाव अत्यन्त सरल था, जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति आपके संपर्क में आते ही आनंदित एवं उल्लसित अनुभव करता था। मुझे आचार्यश्री के दर्शन करने तथा उनके निकट सम्पर्क में आने का सुअवसर अनेक बार प्राप्त हो चुका है, और मेरे मन में आचार्यश्री के प्रति अगाध श्रद्धा है। आचार्यश्री ने जैन समाज की उन्नति के लिए जो महान् कार्य किए, वे सर्वविदित हैं। मुझे आशा ही नहीं, अपितु पूर्ण विश्वास है कि जैन-समाज आचार्यश्री द्वारा प्रदर्शित पथ पर चल कर स्व-परहित-साधन मे समर्थ होगा। आचार्यश्री की पुनीत स्मृति में उनका विशाल शिष्य समुदाय पार्थिव स्मारक बनाएगा, परंतु उनका वास्तविक स्मारक तभी बनेगा, जब हम उनके अधूरे कार्य की पूर्ति में तन, मन तथा धन से योगदान करेंगे और उनके प्रेरणादायक सदुपदेशों का पालन कर अपने-आप को राष्ट्र का सच्चा नागरिक सिद्ध करेंगे।

❖ ❖ ❖

श्रद्धांजली खण्ड

पद्य
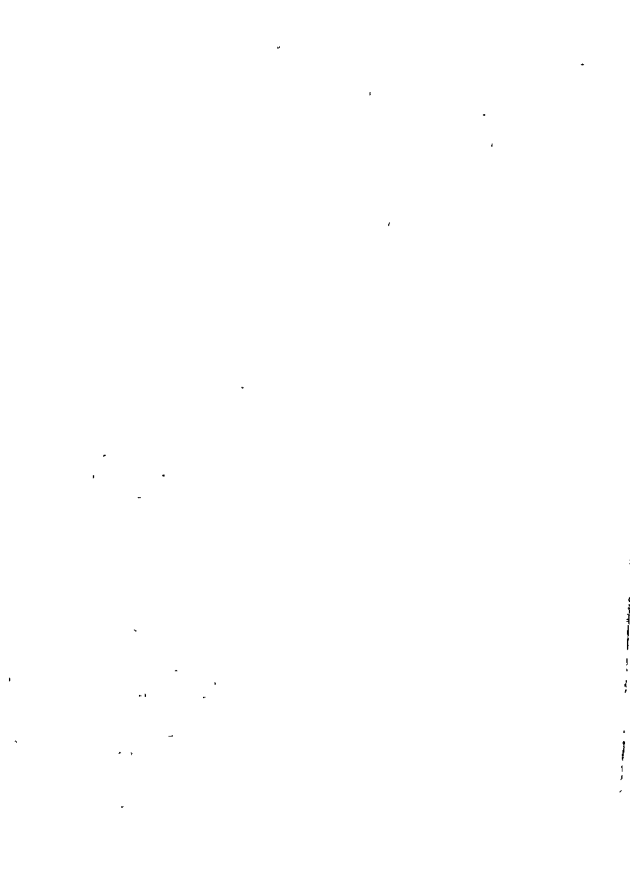
मन सहज तरलित बन गया

उपाध्यायश्री हस्तीमलजी म.सा.

पूर्ण संयम संगठन के, मार्गदर्शक सो गये।
जब सुना हमने गणेशलाल मुनि सुर हो गये।।
गत दिनों की याद से मन, सहज तरलित बन गया।
नेष्ट काल कराल ने हा, कार्य निन्दा का किया।।1।।

शील संयम के धनी, मुनिवर जगत से हर लिया।
लाभ क्या तुमको हुआ, नरलोक सूना कर दिया।।
लघु चाल से संचम प्रदेशों का नहीं तेरे कहा।
जीत तेरी है नहीं, अमरत्व चेतन में रहा।।2।।

अनजान बदला रूप लख, मन शोक करते मोह से।
मतिमंत जन उत्सव मनाते, ज्ञान के संदोह से।।
रज दूर करके कर्म की, निज रूप पाना इष्ट है।
हों अमर पूज्य गणेश, हार्दिक कामना यह श्रेष्ठ है।।3।।

ज्ञान संयम से सुशोभित संघ अविचल हो सदा,
सुरलोक से दो शक्ति हमको, ऐक्य चमके सर्वदा।
वीर-वाणी की विमल, गंगा हमें उज्ज्वल करे,
आचार सह प्रचार औ, सुविचार मन का मल हरे।
पूज्यवर तेरी सुजनता और दृढ़ विश्वास को,
संयम निरत होकर दीपावें संघ और समाज को।

त्यागमूर्ति

पं. श्री चंपकमुनिजी म.सा. (बरवाला सम्प्रदाय)

अमारा संघना नायक ! अमोने याद आवे छै।।
अमारा संघ संचालक ! अमोने याद आवे छै।।

मेवाड़नी वीर भूमि मां, उदयपुर शहर छै सुन्दर,
अमारा पूज्यश्री नो त्यां थयो छै जन्म शुभ सुखकर ।।1।।

लघुवय माहीं जाणी ने, स्वरूप अस्थिर संसार नों,
विषयों ने विष समा जाणी, लीधु शरणु जवाहर नो।।2।।

जगत ना बंधनो छोड़ी, मोहनी जाल ने तोड़ी,
विकट आ पंथ संयम नो, जीवन मांही लिधो जोड़ी।।3।।

गुरुनी सेवा मां रही ने, थया पंडित प्रखर ज्ञानी,
मधुरी स्नेहभरी वाणी, सुणी आवी नमे मानी।।4।।

हतो अमारा संघ माहीं एक, चमकतो तेज सर्वा अे तारो,
सांभल्यु अमें अचानक के झरी पड़यो दिव्य सतारो।।5।।

हृदय मां दुख थयु भारे, वियोगे आघात लाग्यो छे,
थही मां वेदना मन मां, अन्तर मां शोक छायो छै।।6।।

अरे क्यां गया पूज्य गणेश, तप अने त्यागनी मूर्ति,
शुभ संयमी ज्ञान नी ज्योति, हवे क्यां रे थसे पूर्ति।।7।।

विकट छै कालनी क्रीड़ा, करमनी छै गति न्यारी,
महाशक्तिशाली जीवों पण, ऐनी सामे गया हारी।।8।।

हवे तो धैर्य धारीने, जीवन मां त्याग अपनाओ,
महापुरुष ना मार्ग मां चाली, संयमनी भावना भाओ।।9।।

शिथिलिता ने भगावी ने, हृदय मां वीरता लावो,
आडम्बर थी, रहो डरता, प्रभु आज्ञा शिरे धारो।।10।।

'चंपक मुनि' गुण-गान करी, आजे श्रद्धांजली भाव थी आपे,
अमर छै आत्मा ते नो, प्रभु चिर शांति तो आपे ।।11।।

एक ज्योति बुझी

श्री सौभाग्यमुनि 'कुमुद'

आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।

जिसका उज्ज्वलतम प्रकाश,
चिर निविड़ तिमिर पाखण्ड पाप।

नित्य चीर-चीर करता विकास
अवरोध तोड़ रहा गतिमान।।

पा चोट कभी प्रगति न रुकी,
आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।

प्रखर तेज पर मृदुल, कान्ति
शुद्ध सत्य तथ्य युत मधुर गिरा।

मुस्कान कोष आनन कमल।
प्रतिक्षण विराजित अतुल शांति।।

जिन-पथ वहां एक ध्वजा झुकी
आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।

रहा धन्य-धन्य उज्ज्वल जीवन,
तपःपूत विमल कही विध प्रेरक,
शुभ भव में हो मंगल गमन,
क्रमशः निःश्रेयस का आलिंगन।

श्रद्धाभिसिक्त हृदय कली,
पूज्य चरण में ढली झुकी।
आचारनिष्ठ एक ज्योति बुझी।।

समाज के वो प्राण चले

श्री गणेशमुनिजी शास्त्री, साहित्यरत्न

महाप्रयाण का वज्र सन्देश
जव कानों मे सुन पाया,
गिर पडी लेखनी हाथों से
और दिल भी गद्‌गद हो आया।
यह वही कैसी प्रलय वायु
जो कर्णधार को ले चली,
तेरी इस छलना पर दुनिया,
रोती है, हे काल वली !
उदियापुर का गौरव नायक
गजानन्द था नाम अभिराम,
सकल जैन समाज को
देता आनन्द आठों याम।
कैसे छोड़ तुम चले गये।
हाय ! स्वप्न अधूरे रह गये,
कुछ आशा के मूक स्वर भी
झंकृत होने रह गये।
कोई जाकर कह दो उसे
जैन समाज गुहराती है,
यह अभाव आज तुम्हारा
सहन नहीं कर पाती है।
समाज के वो प्राण चले
भक्तों के अभिमान चले,
असहायों के भुजवल और
विज्ञों के अरमान चले।
अमर रहेगी अवनीतल पर
उज्ज्वल तेरी यश-गाथा,
आज श्रद्धांजली अर्पण हेतु
मैं चरणों मे शीश झुकाता।

मन में रह गई

महासती चम्पाकुंवरजी म.सा.

प्यारा पूज्यवर के दर्शन की म्हाँरे मन में रह गई रे।
मन में रह गई रे, म्हाँरे दिल में रह गई रे।।टेर।।

श्यामली सूरत मोहनगारी, लगती प्यारी रे।
कहाँ ढूंढू और कहाँ मैं पाऊं, सूरत तुमारी रे।।1।।

दर्शन की आशा में, मैं तो वर्षों गुजारी रे।
(पण) काल बली आगे जोर न चाले, गयो डकारी रे।।2।।

असह वेदना सही आपने, दृढ़ता समता धारी रे।
अद्‌भुत ज्योति जगा के बताई, लीला निराली रे।।3।।

रह-रह करके थांरी प्रभुजी, याद सतावे रे।
चरणों री चाकर चम्पाकुंवर, गुण प्रभु का गावे रे।।4।।

वन्दन हम करते मगलमय श्री गणेशस्वामी को

भंवरलाल सेठिया, भूतपूर्व मंत्री, बीकानेर संघ

वन्दन हम करते मंगलमय श्री गणेशस्वामी को।
संघ शिरोमणी शासन नायक, गुरुवर हितकामी को।।1।।

इन्दरा-नन्दन दुखः-निकन्दन, जीवन प्राण सहारे,
क्षेमंकर, निर्ग्रन्थ हितंकर, गुरुवर देव हमारे।
साहिब-सुत, गण-ईश गुरुवर, सकल श्रेयकामी को।।2।।

जिन चरणों में महामुनियों ने अपने पद (पदवी) बिसराये,
जिन चरणों में सब संघों ने (भक्तों ने) अपने शीश झुकाये।
उन चरणों पर बलि-बलि जाएं धन्य मोक्षगामी को।।3।।

सत्य-सरलता देख आपकी, दुर्जन भी चकराए।
दिव्य-भव्य मुनि, मानव गण सब फूले नहीं समाए।
मिल सबने माना निज अगुआ, रक्षक इस स्वामी को।।4।।

पंचमहाव्रत शुद्ध आराधक, जिन-वाणी के ज्ञानी,
अनुशासन, संयम-रक्षा हित, जब गूंजी तव वाणी।
लख आज्ञा हुए श्रमण स्तब्ध, तब गोपी निज हस्ती को।।5।।

भूलों को फिर पथ बतलाने, अपना "पद" बिसराया,
"कहेरी" जिस अतिशांत भाव से सच्चा मार्ग (मर्म) बताया।
सत्पथ पर रहे अटल मेरु सम, धन्य-धन्य स्वामी को।।6।।

युवाचार्य पद, समाचारी भी, जिन-वाणी हित दीने,
श्री कांति अरु तुलसी से भी, क्षमा-याचना कीने।
आलोचन अरु संथारायुत, पाये शिव पदवी को।।7।।

रहे कृपा गुरुदेव तुम्हारी, संघ सकल यह चाहे,
खमो-खमो अपराध हमारे, सादर शीश झुकाएं।
शरणागत हम होकर नमते, श्री गणेशस्वामी को।।8।।

ज्योतिर्मय

चंपालाल छल्लाणी

माघ कृष्णा दूज दिन, हुआ तुम्हारा महा-प्रस्थान,
जैसे मौसम की बांहों से, चली गई मधुमय मुस्कान।

तेरा कोटि-कोटि अभिवन्दन, हे ! जिन-सम्राट् यशस्वी,
हे ! प्रकाश-पुञ्ज ज्योतिर्मय, तू था वीर-तपस्वी।।

तुम गौरव-गरिमा के गायक, जिन-शासन के संन्यासी,
संयमी, ध्यानी, जिन-पथ-गामी, आराधन-अभ्यासी।
धवलवस्त्र में हिमगिरि सदृश, धवल-कीर्ति से मण्डित,
श्रेयस्कर मेधावी तुम थे, औ दर्शन के पण्डित।।

मेवाड़ भूमि के तपःपूत, ओ ! संस्कृति के नायक,
शिवपुर पथ परिचायक तुम थे, जिन-शासन उन्नायक।
तेरे चरण चिह्न पै चलकर, बनी धरा कल्याणी
अक्षय प्रेम सुधा-कण बाँटे, बनकर औघड़ दानी।।

जैन-जवाहर के परम शिष्य, तुम गुरु-भक्ति के धारक,
गुमराहों के लिए ज्योति बन, कहलाये तुम तारक।
तुम्हें नमन है आज देवते ! श्रद्धा-सुमन बिछा करके
सदा संघ यह नाज करेगा, आशा मन में भरके।।

श्रद्धांजली शत-शत प्रणाम

लक्ष्मीराम पुगलिया, कोलकाता

ओ गुरुदेव, ओ देवदूत,
निर्बन्ध मुक्त हे चिर महान् !
संपूर्ण देश में पावनतम।
फैला है तेरा यशोगान।
कर में तलवार सत्य की ले
औ ढाल अहिंसा की विशाल
चलते भीषण संघात वहन-

सामर्थ्य नहीं, हो स्वयं काल
कर वहन क्षमा का विकट धनुष
अमृतवाणी का ले तीक्ष्ण बाण
जिस पर आघात किया, तत्क्षण
पा गया सत्य वह अमर प्राण
तुम नवप्रभात के किरण पुरुष
अवलम्ब तुम्हारा अरिहंत नाम
जिसका क्षण-भर ही स्मरण-मात्र
पूरा कर देता मनोकाम।
तुम जन-हितैषु सच्चे साधक
हे देव तुम्हारे श्रीचरणों में
श्रद्धांजली शत-शत प्रणाम।

क्या गणेश गया सदा को आज हम विश्वास करलें

मुनीन्द्रकुमार जैन

क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें।
आज इतना रह गया कि याद में निश्वास भरलें।।

ज्ञान का वह सूर्य था, आलोक जिसने भर दिया था,
पूत पावन था कि जिसने विश्व पावन कर दिया था,
प्रेम की बंसी बजाई, विश्व मोहित कर दिया था,
तीर्थ था ऐसा निराला, पाप सब के हर लिया था।
आज भाग्याकाश को बिन सूर्य के आभास कर लें।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें।।

वह चला था छोड़कर जग, त्याग के पथ पर बढ़ा था,
धर्म के मेरु-शिखर पर, वह बढ़ा था - वह चढा था,
उसकी मुट्ठी में अरे ! चारित्र का झंडा गड़ा था,
सांच का वह पक्ष ले, अन्तिम समय तक वह लड़ा था,
आज सब मिल करके उसका याद हम इतिहास करलें।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें ?

हार था अनमोल जिससे हम सुशोभित हो रहे थे,
वह सजग प्रहरी था, हम निश्चिंत होकर सो रहे थे,
मेघ वृष्टि का था वह, हम बीज देखो बो रहे थे,
दीर्घजीवी वह बनेगा, बाट यह हम जो रहे थे,
यह न सोचा था कि उसको काल अपना ग्रास करले।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें ?

चारित्र के चूड़ामणि ने जो दिया सन्देश हमको,
सत्य है यह, वह गया, पर दे गया आदेश हमको,
मार्ग पर उसके चलें, संशय नहीं लवलेश हमको,
अपने विरोधी के लिये दिल में न लाना क्लेश हमको,
जो चिरंतन सत्य है, उस सत्य का सन्धान कर लें।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें ?

फूल जो बन कर खिला है, एक दिन मुरझायगा वह,
लालिमा लेकर उदित जो सूर्य भी ढल जायगा वह,
आज बचपन हो भले, कल वृद्ध भी बन जायगा वह,
यह हमारा आज जीवन मृत्यु कल बन जायगा वह,
पर बन सके यह मुक्त जीवन, ऐसा कुछ अभ्यास करलें।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें ?

तुम गणेश गये सदा को, पर दीप जो तुमने जलाया,
वह न बुझ सकता कभी, हो लाख झंझावात आया,
हम बढ़ेंगे मार्ग पर, जिस पर चरण तुमने बढाया,

याद वह हमको रहेगा, गीत जो तुमने सुनाया,
जो कभी बुझती नहीं, वह प्रेम-जल की प्यास भरलें,
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें ?

आज धूमिल बन गई, दूर की मंजिल हमारी,
आज सूनी बन गई है, जो रही महफिल हमारी,
आज कितनी बढ़ गई है, रे अरे, मुश्किल हमारी,
भावना के दीप की लौ, जल रही तिल-तिल हमारी,
आज पतझड़ आ गया जो, अब उसे मधुमास करलें।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास करलें ?

आज यह विश्वास हम, गुरुदेव। तुमको दे रहे हैं।
भावाभीनी अंजलि हम, देव ! तुमको दे रहे हैं।
जो हमारे पास वह, सर्वस्व तुमको दे रहे हैं।
भक्ति के दो बूंद अश्रु, देव ! तुमको दे रहे हैं।
भक्त हम आये चरण में, अब हमें भुजपाश भर ले।
क्या गणेश गया सदा को, आज हम विश्वास कर लें।
आज इतना रह गया कि याद में निश्वास भर लें।।

अपूर्व तपोधनी

कुम्भाराम शास्त्री, साहित्याचार्य

पलट गयी कर्तार की
जो बनी हुई थी यहां विधि।

था सौम्य विग्रह पुरुष का
समरसता उनकी अमूल्य निधि।
प्राणियों की बात ही क्या,
चकित रह गई वहां स्वयं विधि।

था न्योछावर संसार उन पर,
ओ इन्द्र भी कह दूँ यदि,
देवों का तो कथन छोड़ो
झुक गई वहां नवोनिधि।

कर तपस्या घोर जिसने
जीत लिया था भवोदधि,
भोगों की सत्ता नष्ट हुई
रोती रही यहां अष्टसिद्धि।

देख तपोबल अपूर्व जिसका
थी मौत भी आगे बढ़ी
बन मृत्युञ्जय चल पड़े
रह गई देखती खुद विधि।

किसी वाणी से तेरा गान करूं
'गुण इश' तुम्हारा अल्पबुद्धि,
बस त्रिलोक के पूजित हो तुम
यह जानता है सब युग सुधि।

हे ज्योतिर्मय अमर आत्मन् !
है तू ही खेवनहार जलधि,
कर समर्पित सत् श्रद्धांजलि
क्यों न होऊं पार पयोधि।।

अमर कहानी

जतनलाल हीरावत, कोलकाता

ओ जैन जगत प्रतिपाल, गणेशीलाल महात्मा ज्ञानी जिनकी है अमर कहानी।।टेर।।

अवतार उदयपुर में पाये, जहां, वीर अनेकों प्रगटाये
उस वीर भूमि की वह अनमोल निशानी। जिनकी है।।1।।

वे साहिबलालजी के नन्दन थे, दुनिया के दुख निकन्दन थे
इन्द्रा माता के लाल धर्म की शानी। जिनकी है।।2।।

व्याख्यान छटा कुछ न्यारी थी, बोली अमृत-सी प्यारी थी
सुनने वालों की सफल बनी जिन्दगानी। जिनकी है।।3।।

शेरों की गर्जना करते थे पुरजोश धर्म का भरते थे
कर दो कुर्बान तुम धर्म पे जोश-जवानी। जिनकी है।।4।।

कथनी-करनी को एक किया, दुर्जन जन से भी प्रेम कया
और क्षमाशीलता की दे गये अमर निशानी। जिनकी है।।5।।

पूर्वकर्म वेदनी उमड़ तब पड़े आत्मशक्ति से जूझ पड़े
असह्य वेदना सही शान्त रसलानी। जिनकी है।।6।।

रह-रह कर याद सताती है, मधुर वाणी मन भाती है
सब बिलख रहे हैं मन ही मन मुरझानी। जिनकी है।।7।।

स्वर्ण अक्षरों में है जीवनी अमर, जब तक पृथ्वी पर सूर्य और चन्द्र
गुण गौरव गाथा गावे है हिन्दुस्तानी। जिनकी है।।8।।

संघ सरताज

कविवर श्री गोपीचन्द गोरख, चितोड़गढ़

जवाहर की बदौलत है, कि परखा था गजानंद को,
कसौटी पर खरा उतरा कसा जब-जब गजानंद को।
जो सौंपा भार तुझको था निभाया शान से तूने,
श्रमन संघ का पसीना हो बहाया खून वहां तूने।

कि परखा तूने भी ऐसा गजानंद नाम कर जाये,
कि परखा जब श्रीसंघ ने टंच सौ पर नजर आये।
हमें भी गर्व है इस पर कि तू जन्मा उदयपुर में,
यही शादी यहीं दीक्षा स्वर्गवासी उदयपुर में।

नाना प्रकार से परखा तो नाना ही नजर आये,
तेरे हाथों से दी चादर कि युवाचार्य बनवाये।
आशीर्वाद तेरे से कि नाना खूब दीपेगा,
गादी प्रभाव ही ऐसा कि नाना मोटा दीखेगा।

रहेगा याद हम सबको संवत् 19 क्या निकला,
कि खतरा एक सीमा पर दूसरा फिर ये आ निकला।
फिकर मत करना तू पूज्यवर कि यह नाना हमारा है,
संघ सरताज है सबका कि वो पूज्यवर हमारा है।

शाबासी है उदयपुर को संघ कमाल का निकला,
तन-मन-धन सेवा करी, बैकुंठ भगवान का निकला।
मैं चरणों का सेवक हूँ, कि गढ़ चितौड़ रहता हूं,
बदौलत है गजानन्द की कि जो कुछ भी मैं कहता हूँ।

ज्ञान का दीपक जलाया

शंकर जैन,

आन को तूने हटाया,
ज्ञान का दीपक जलाया।

लक्ष्य से भटका जमाना,
निर्ग्रंथता के बोल भूला।
तब मंत्र सूत्रों का पुनः,
संसार को तूने सुनाया।।

हिंसा करके जीत जाना,
हार है सब से बड़ी।
लेकिन अहिंसा का नया,
फिर पाठ है तूने पढ़ाया।।

शिथिलता को दूर करना,
और इस पै कड़क रहना।
संयमी जीवन के लिए,
आदर्श यह तूने बताया।।

इतनी असह्य वेदना में भी,
वही सौम्यता थी झलकती।
कर एकाग्र चित्त को फिर,
ध्यान प्रभु लौ में लगाया।।

मौत से इनसान डरता,
पर न तू उससे डरा।
और उस पर विजय पाकर,
अन्त तक तू मुस्कराया।।

अल्प-बुद्धि वाला हूँ मैं,
पूज्यवर गुरुदेव मेरे।
ओर कुछ नहीं बन सका तो,
श्रद्धा के दो पुष्प लाया।।

गणेश हस्त युगले श्रद्धाञ्जलीरिहार्प्यते

राजविद्वान वेदान्ती पं. बंशीलाल, व्यास कानोड़

स्वागतं वो महाभागः जन भाग्यादिहागतः
गणेशाख्युपाचार्य श्रमणोघैकनायकः।
कानोड़ीयोत्सुकजनाः जाताः पूर्न मनोरथाः
जैन धर्मोपदेशाय चातुर्मासार्थमागता।।

साक्षान्महावीर जिनेन्द्र देवो गणेश रूपेण किमागतोऽत्र।
यो जैन धर्मं परिरक्षणाय करोति यत्नं मधुरोपदेशैः।

अवर्मो हि समेवेत लोलुपैश्च निरंकुशैः
उपाचार्य समोवक्ता नोपदेष्टं परिभ्रमेत।
परिवर्तनमालोक्य जैनधर्मे पुरातनै
पुनस्तच्छुद्धिकानोऽत्र करुणो मुनिरागतः।।

अनेक विद्याम्बुधिपारगो यो निरस्तरागादिमनोमलश्च।
कृपानिधियश्चि परोपकारी भजे गणेशंहृदितं निरंतरम्।
संशुद्धं सत्वैरुपगीय मानात्तापीपचात्करणमनोनुकूलात्
गणेश पीयूष समोपदेशात् कथं विरज्येत् नरस्सुपेयात्।।

प्रयागेण समंतीर्थं कानोड़ भारतोऽज्ज्वलं।
उपाचार्य गणेशेन सोपदेशात्रये कृतं।।

सत्प्रार्थना शास्त्र चरित्र युक्ताः सद्ज्ञान सद्दर्शनसच्चरित्रः।
ब्राह्मीन पुत्री त्रिपथा त्रिवेणी गणेशवाणी दुरितौघ हन्त्री।
धर्मोवटो धर्मं गुनं वृणोति समीरितो यो मुख पंकजेन
स्वात्मा श्रमं झंतति यत्रदृष्टः कानोड़ ग्रामो जयति प्रयागः।

पर्युषणे गणेशस्य चातुर्मासे च संगमः।
हर्षवर्धन राष्ट्रैव कृतः कानोड़ श्रावकैः।।

सत्प्रार्थना शास्त्र चरित्र सारे बाह्यादिरुपात्म परमात्मभेदैः
येत्वन्त रायाऽखिल कर्म भेदाः सुक्तावृताः वर्तन वर्तकाश्च।।

शास्त्राभ्यासवती रसादृरस विदां निष्कर्षिता या नवा।
दृष्टिर्या परिनिष्ठितार्थ विषयाः साक्षाच्च वैपश्चिति।
ते द्वेऽप्यपवलम्ब्य जैनमखिलं तत्त्वं परं श्रवितं।
तत्वज्ञाय गणेशलाल मुनये तस्मै नमस्कुर्म हे।।

योवाक्सुधा विमलवृष्टि वहैकरूपः
सानन्द सिन्धु परिपूर्ण रसैक पानः
श्री जैन धर्म निरतोऽखिल ताप हर्ता
सत्यव्रतो विजयतेऽत्र मुनि महेन्द्रः।।

यद्वाक्स्मृते श्रवणभक्ति पराभवन्ति रागादिदोषनिरताश्च विशुद्ध सत्त्वा।
यद ध्यानतो निज चिदात्म सुखास्तिऽसोजी व्याचिरम् मधुर वाक मुनिराट् गणेशः।।

(हिन्दी पद्य)

यदि जैन सकल समाज को आकाशमण्डल मान लो।
तो उपाचार्य गणराज को तुम ज्ञान सूरज जान लो।

दोहा

जो थे हिरदे लोह से कीने कनक अमोल
मुनि गणेश परमारथी पारसपरसि अतोल।।

अहो धन्य, तुम धन्य हो जैन संघ कानोर।
जो कीना उपकार सभी आभारी बहु और।।

मुनिवर चातुर्मास में श्रावक जन कानोर
तन-मन-धन-जन सेविके यश पायो चहुँ ओर ।

ज्ञान अपूर्व यज्ञ को कीनो जैन समाज।
धन्यवाद बहु देत हैं श्रोताजन मिलि आज।।

समर्पण

चतुर्दशाधिकेवर्षे द्वि सहस्रे च वैक्रमे
पूर्णिमायां कार्तिकस्य वंशीलालेन निर्मिता।
वेदान्ते राजविदुषा कथाव्यासेन श्रद्धया
गणेश हस्त युगले श्रद्धांजलीरिहार्प्यते।

एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई

विमलकुमार रांका, नीमाज (राजस्थान)

एक अच्छे-से मकान से मकान की छत ढह गई।
अब क्या रहा शेष, बात सब बह गई।।

पूज्य थे गणेशलालजी, जैन साधु संघ के।
ज्यों रंगों में एक काला, आप भी थे उसी अंग।।
यह बात सही, तर्क-वितर्क में थे आप एक रंग के।।
हंस ताल से उड़ा, चिड़ियां चहचहीं।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।1।।

गम्भीर वे थे, शूर थे, वीर थे वो बांकुरे।
नेह कैसा लगाया है, ऐ जैन जाति आंकरे।।
शीश चरणन में नत कर, "जय गणेश भाव रे"।।
प्रस्थान से चोट लगी, मही, सह गई।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।2।।

लापता होते-होते, पाठ हम सबको सिखाया।
लय रहो प्रभु में हमेशा सुधर जायगी काया।।
जीओ जीने दो, वीर का संदेश घर-घर जगाया।।
निर्दयी मोत क्यों, तू यही यह यम को कह गई।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।3।।

मानो न मानो, विनती यही ओ मोक्ष जाने वाले।
राह जिस पर तुम चले, हमें भी उस राह बुलाले।।
जगत के हम जैनी सब ही, जय संघ की गा लें।

खाक तन हुआ, बस सौरम रह गई।
एक अच्छे-से मकान की छत ढह गई।।4।।

गुरुदेव

मांगीलाल पिछोल्या, गंगापुर

ओ पूज्य गणेशीलाल गुरु तुम प्राणों से प्यारे थे।
जीवन की आकुल घड़ियों के बस तुम्हीं एक सहारे थे।।
हम देश-विदेश कहीं भी हों, पर होता तेरा ध्यान सदा।
तुम्हें गुरुदेव कहाने में होता था हमको अभिमान सदा।।
रग-रग में नाम तुम्हारा था बस हमको तो आधार तुही।
माता-सा निश्छल प्यार तुही पिता-सा विमल दुलार तुही।।
था राष्ट्रदूत था धर्मराज भारत का नयन-सितारा था।
शासन सिरताज हमारा था जैनों का एक सहारा था।।
तेरी समकित को धारणकर हमने सुख गाने गाये हैं।
बस, देख राख की ढेरी को आंखों से आंसू बहाये हैं।।
ऐ जवाहर के पट्टधर तुमने जाने के पूर्व सब सोच लिया।
गुरु नाना को गुरुतर देकर हम सब का दुख कुछ दूर किया।।
इनकी आज्ञा सिर धारेंगे है आन हुक्म की शासन की।।
स्वर्गस्थ आत्मा की शान्ति रहे जय-जय हो पूज्य गणेशी की।।
पूज्य नाना गंगापुर पर कृपा करें जैसी कृपा गुरुओं ने की।
मांगीलाल श्रद्धांजलि भेंट करे जय रहे आपके शासन की।।

गणेश गुण महिमा

तोलाराम हीरावत 'प्रकाश' देशनोक

मैं तो उन्हीं सुगुरु का दास,
जिन्होंने सद्ज्ञान दिया।।टेर।।
महावीर शासन में रहकर, जैन धर्म चमकाया।
नाम जिन्हों का गणेश गजानंद,
जवाहिर पाट दिपाया, जिन्होंने........।।1।।

गुरु गरिमा मैं कैसे गाऊं ये गुण के भंडार।
नेम ओ पारस सम शोभते,
जन-जीवन के हार, जिन्होंने........।।2।।

त्याग तपस्या नम्र गुणों से, निज जीवन चमकाया।
घोर वेदना सहकर तन पर,
अद्भुत रंग दिखाया, जिन्होंने........।।3।।

क्षमा श्रमण का नाम सुना पर, प्रत्यक्ष देख हम पाये।
चिकित्सक वर्ग तेरी माया को,
देख-देख चकराये, जिन्होंने........।।4।।

रणभूमि में कूद पड़े थे, बन केशरिया बनड़ा।
कर्मशत्रु से विजय प्राप्त कर,
लिया मुक्तगढ़ नेड़ा, जिन्होंने........।।5।।

कलिकाल में नाम आपका, प्रभुजी एक सहारा।
सदबुद्धि देना सदबुद्धि दाता,
बेड़ा हो पार हमारा, जिन्होंने........।।6।।

तेरे पुण्य प्रताप से गुरुवर, आनन्द छाया।
वर्तमान पूज्यवर "नाना" ने
जैन चमन चमकाया, जिन्होंने..........।।7।।
नये शिष्य मण्डली विच शोभे, जैसे चाँद अनोखा।
आपश्री के दर्शन करने का,
'इन्द्र' चाहे मौका, जिन्होंने...........।।8।।
जैसे कृपा रही "गणीवर" की, वैसी रहे तुम्हारी।
"हीरावत" हृदय में वसजो,
याही अर्ज गुजारी, जिन्होंने........।।9।।

श्रद्धाञ्जलियाँ : विभिन्न संघों, संस्थाओं द्वारा

1. श्री बीकानेर श्रावक संघ - चम्पालाल लोढा, उपमन्त्री
2. श्री अ. भै. सेठिया जैन पा. संस्था, बीकानेर - जेठमल सेठिया, मंत्री
3. शिक्षा भवन सोसाइटी, उदयपुर - बी.एल.नाहर, मंत्री
4. श्री स्था. जैन युवक संघ, इन्दौर, प्रसन्नचन्द छावड़, मंत्री
5. गोहाटी श्रावक संघ, गोहाटी - सागरमल लुंकड़, दुलीचंद बेताला
6. श्री जैन तेरापन्थी भिक्षु अनुयायी श्रावक संघ, सरदारशहर–मंत्री
7. श्री व.स्था.जैन श्रावक संघ, हिंगणघाट–हुकुमचंद जवरीलाल जैन, उपमंत्री
8. शिक्षा भवन हाई स्कूल, उदयपुर - प्रधानाध्यापक - हेमशंकर नागर
9. मीरां विद्यालय, उदयपुर - व्यवस्थापक
10. टैगोर सोसाइटी, उदयपुर - व्यवस्थापक
11. नगर जनसंघ, उदयपुर - भानुकुमार शास्त्री, मंत्री
12. श्री दिगम्बर जैन कन्या विद्यालय, उदयपुर - गुलजारीलाल चौधरी, व्यवस्थापक
13. गांधी अध्ययन केन्द्र, उदयपुर - कन्हैयालाल दक, व्यवस्थापक
14. शिक्षण संस्था, उदयपुर - यू.एस. भटनागर, प्रधानाध्यापक
15. हिन्दी विश्व भारती शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर - विद्याधर शास्त्री, डायरेक्टर
16. श्री श्वे.स्था.जैन.संघ, चैन्नई - मोहन मल चौरड़िया, अध्यक्ष
17. श्री व.श्वे.स्था.जैन श्रावक संघ, मेड़ता सिटी - मंत्री
18. श्री साधुमार्गी जैन संघ, मालेगांव (नासिक) - मंत्री
19. श्री श्वे. स्था. जैन श्रावक संघ, मनासा- भँवरलाल रूपावत
20. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, राजनान्दगाँव - भीखमचन्द टांटिया, मंत्री
21. श्री देव आनन्द जैन शिक्षण संघ, राजनान्दगाँव - कन्हैयालाल गोलछा, सहमंत्री
22. श्री ओसवाल समाज, रामपुरा - हस्तीमल कीमती, अध्यक्ष
23. श्री व. स्था. जैन. श्रावक संघ, सोजत रोड़ - दीपचद मूथा, अध्यक्ष
24. सोजत नगर - हरीभाई किंकर, नगर प्रमुख
25. श्री जैन मित्र मण्डल, ब्यावर - पारसमल चौरड़िया, मंत्री
26. श्री श्वे.स्था.जैन सभा, कोलकाता - मंत्री
27. श्री जैन रत्न पुस्तकालय, जोधपुर - सम्पतचन्द सिंगी, मंत्री
28. स्थानकवासी जैन समाज, खाचरोद - चाँदमल जैन एडवोकेट, सुजानमल बुबक्या
29. श्री जवाहर विद्यापीठ, कानौड़ - उदय जैन, अध्यक्ष

30. श्री जैन शिक्षण संघ, कानौड - व्यवस्थापक
31. श्री साधुमार्गी जैन संघ, कानौड़ - अध्यक्ष
32. श्री जैन जवाहर मण्डल, देशनोक- हुलास मल सुराना, मंत्री
33. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, नोखामण्डी - मूलचंद पारख, मंत्री
34. श्री श्वे. स्था. जैन संघ, रायपुर (म.प्र.) - पेणकरण जैन, मंत्री
35. जैन समाज, कोटा - राजेन्द्रसिंह मेहता, माणकचंद पालीवाल
36. श्री स्था. जैन संघ, आगरा - मंत्री
37. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, अलवर - अभयकुमार संचेती, मंत्री
38. श्री जैन युवक संघ, अलवर - नरेन्द्रकुमार पालावत
39. पूज्यश्री सोहनलाल जैन कन्या महाविद्यालय, अमृतसर - शारदा, प्रधानाध्यापिका
40. एस.एस. जैन सभा, अमृतसर - रोशनलाल जैन, मंत्री
41. व. स्था. जैन संघ, जैन महिला मण्डल, जैन युवक संघ, बुलढाणा
42. स्था. जैन श्रावक संघ, भूपालगंज, भीलवाड़ा
43. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, भीलवाडा - शॉतिलाल पोखरना
44. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, भाटखेड़ी
45. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, बनेड़ा - मोहनसिंह भण्डारी
46. श्री अ.भा.सा. जैन संस्कृति रक्षक संघ, धार - माणक लाल पोरवाड, अध्यक्ष
47. श्री स्था. जैन संघ - इन्दौर (म.प्र.), मंत्री
48. जैन संस्कृति रक्षक संघ, शाखा जोधपुर - सम्पतराज डोसी, मंत्री
49. व. स्था. जैन जवाहर संघ, जावरा (म.प्र.), फकीरचन्द पावेंचा, अध्यक्ष
50. श्री मध्य भारत-मेवाड प्रांतीय व. स्था. जैन संघ, जावरा
51. सागर जैन विद्यालय, किशनगढ (राज.) - बुधसिंह भण्डारी, मैनेजर
52. एस.एस.जैन बिरादरी, लुधियाना (पंजाब) - हंसराज जैन, मंत्री
53. व. स्था. जैन श्रावक संघ, सादडी घाणेराव - अनोपचंद पुनमीया
54. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, नमक मण्डी, उज्जैन - गोकुलचंद सूर्या, अध्यक्ष
55. श्री देहली गुजराती स्था. जैन संघ, दिल्ली - स.म. अजमेरा, मंत्री
56. श्री जैन संघ, हातोद (इन्दौर) - नथमल जैन, मंत्री
57. श्री स्था. जैन संघ (श्रमण संघ) - मंत्री
58. श्री जैन जवाहर मित्र मण्डल, ब्यावर - भंवरलाल बोरुदिया, मंत्री
59. महिला कला मन्दिर, इन्दौर - मोतीलाल सुराना, मंत्री
60. श्री व. स्था. जैन संघ अहमदनगर (महा.) - मा. कि. मुथा, मन्त्री
61. श्री व स्था. जैन श्रावक संघ, जलगॉव - नथमल लुंकड़, मंत्री

62. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, धारणगांव (पू.खा.) - अ.त. ओस्तवाल
63. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, सवाईमाधोपुर - मूलचंद श्रीश्रीमाल, अध्यक्ष
64. श्री व. स्था. जैन श्रावक संघ, अजमेर - सहमंत्री
65. ज्ञान भवन, भीलवाड़ा - यशवन्तसिंह नाहर, एडवोकेट, तेजमल बाफना एम.एल.ए. (एक्स)
66. श्री तिलोक रत्न स्था. जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी (अहमदनगर) - चन्द्रभूषणमणि त्रिपाठी, मंत्री
67. श्री चाँदकुंवरी जैन दातव्य औषधालय, बीकानेर - रघुनन्दन लाल शर्मा, प्रधान चिकित्सक
68. श्री महावीर जैन मण्डल, बीकानेर - रूपचन्द्र सुराना, अध्यक्ष
69. श्री गणेश विद्यालय, बीकानेर - बाबूलाल शर्मा, प्रधानाध्यापक
70. लक्ष्मी औषधालय, बीकानेर - वैद्य ज्वालादत्त शर्मा, भिषगाचार्य
71. मोहता आयुर्वेदिक संस्था, बीकानेर - शंकरदत्त वैद्य, अध्यक्ष
72. श्री जैन पाठशाला (प्राथमिक स्कूल), बीकानेर - करणीदान पाण्डेय प्रधानाध्यापक
73. श्री शाकद्वीपीय ब्राह्मण युवक संघ, बीकानेर -
74. श्री जैन कॉलेज, बीकानेर - जयचन्दलाल नाहटा (एडवोकेट), मंत्री
75. श्री सार्दूल संस्कृत विद्यापीठ, बीकानेर - गजाधरलाल त्रिवेदी, प्रधानाचार्य
76. हिन्दी विश्व भारती शोध प्रतिष्ठान, बीकानेर-विद्यावाचस्पति विद्याधर शास्त्री, डायरेक्टर
77. भारतीय विद्या मन्दिर, बीकानेर - नरोत्तमदास स्वामी, कुलपति
78. जैन समाज, करीमगंज- दीपचन्द भूरा, सम्पतलाल बोथरा

लो महान् !

अन्तिम प्रणाम

इन पृष्ठों में पूज्य आचार्यश्रीजी की जीवनी और संयम-तप-त्याग-साधना से पूत पवित्रता का संक्षिप्त दिग्दर्शन कराया है। किन्तु यह सिन्धु में विन्दु के तुल्य है और एक महान् व्यक्तित्व, ज्योतिपुंज महामना का सर्वांगीण जीवन-चित्रण इन थोड़े-से पृष्ठों में करना अथवा कुछ-एक घटनाओं का संकेत कर देना असीम को ससीम में बांधना है।

इन पृष्ठों में वही लिखा गया, जिसे दृष्टि देख सकी है। लेकिन जो देखा है, उसे व्यक्त करने में अपने श्रम का गोपन नहीं किया है। इस विश्वास के साथ कि महापुरुषों का नामस्मरण ही विवेकोपलब्धि में सहायक है। उनकी गंभीरता, विराटता, उदारता के प्रति शत-शत वंदन और अभिनंदन करते हुए श्रद्धावनत हूँ। उनके वरद उपदेश प्रबुद्ध और प्रगतिशील बनायेंगे, इस विश्वास के साथ पुनः-पुनः श्रद्धांजलि समर्पित है।

परिशिष्ट खण्ड

श्री वीतरागाय नमः।

दिल्ली चर्चा-समीक्षा

भूमिका

जैनाचार्य पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज, जिनका कि श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज में विशिष्ट स्थान है, ग्रामानुग्राम विचरते हुए स्वाभाविक ढंग से दिल्ली पधारे। पूज्यश्री का विहार के ग्रामों की तरफ विशेष लक्ष्य रहता है। जहाँ कहीं श्रावक का एक भी घर होता है, उस गाँव को स्पर्श किये बिना आगे नहीं बढ़ते। सं. 2007 का चातुर्मास अलवर करने का विचार निश्चित हो चुका था। कारणवश अन्यत्र करने का आगार रख कर ही संत लोग वचन दिया करते हैं। चातुर्मास्य लगने में चार मास जितना लम्बा काल था। इस बीच के समय मे ग्रामानुग्राम विचरते हुए पूज्यश्री अपने सात विद्यार्थी संतों के साथ, जिनका अध्ययन उनके सान्निध्य में होता है, दिल्ली पधारे। दिल्ली आने का अन्य कोई हेतु न था।

इधर दिल्ली में उन दिनों श्वे. तेरापंथ संप्रदाय के नवम आचार्यश्री तुलसी अपने दल-बल के साथ अपने सिद्धान्तों का प्रचार करते हुए विद्यमान थे। आचार्यश्री तुलसी बड़ी तैयारी के साथ राजधानी में पधारे थे। उनके साथ करीब पचास साधु-शिष्य और पचास साध्वी-शिष्याएं थीं। सैकड़ों की संख्या में सेठ व सेठानियां भी उपस्थित थीं। खास-करके थली-प्रदेश के सेठ अधिक थे, जिन का कोलकाता की ओर वाणिज्य है। इसके अलावा प्रचार के आधुनिक सारे साधन साथ में विद्यमान थे। कई लारियां, कारें, हिन्दी-अंग्रेजी के टाइपराइटर, लिथो प्रेस, लेखक मण्डल, प्रचारक समुदाय– जिसके कई विभाग थे। उनमें कुछ वेतनभोगी थे और कुछ धर्मप्रचार-रसिक सेठ-साहूकार भी। सेठ लोग अपनी कारों के साथ हाजिर रहते थे। एक विभाग दैनिक पत्रों के संपादकों से संपर्क साधने में व्यस्त था। दूसरा नेताओं और बड़े कहे जाने वाले व्यक्तियों से आग्रहपूर्वक विनतियां करके आचार्यश्री

की सेवा में उनको लाने के कार्य में जुटा हुआ था। एक विभाग साधारण जनता और शिक्षित समुदाय से आचार्यश्री तुलसी का संपर्क कराने के कार्य में नियुक्त था। हिन्दी व अंग्रेजी के अलग-अलग लेखक थे। पंडित मंडली में हिन्दी, अंग्रेजी और संस्कृत के विशिष्ट विद्वान् अपनी-अपनी ड्यूटी पर सचेष्ट थे। दिल्ली के कई दैनिक पत्रों के संपादकों और मालिकों से सम्बन्ध जोड लिया गया था, मतलब कि आचार्यश्री तुलसी बड़ी व्यवस्था और आधुनिक तरीके से अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे थे।

अणुव्रती संघ का उद्घाटन भी दिल्ली में ही होने वाला था। जिसके लिए बड़े जोरों से अखबारी प्रोपेगण्डा चल रहा था। आखिर एक दिन संघ का उद्घाटन भी आचार्यश्री के स्वहस्तकमलों द्वारा म्युनिसिपैलिटी भवन के बाहर वाले मैदान में संपन्न हो गया। उद्घाटन समारोह में सभा की शोभा बढ़ाने के लिए किसी बड़े नेता के आगमन के लिए बड़ी कोशिशें की गई, मगर कोई नेता अपना समय देकर उपस्थित न हो सका, इसका बडा खेद अनुभव किया गया। राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्रप्रसाद को लाने के लिए तो चार मील पैदल चल कर स्वयं आचार्यश्री तुलसी गवर्नमेण्ट हाउस पहुँचे थे, ऐसा सुना गया। किन्तु डा. राजेन्द्रप्रसाद सकारण न पधारे। इतने विशाल प्रचार के बावजूद भी दिल्ली की आम-जनता ने अणुव्रती संघ के उत्सव में कोई दिलचस्पी न ली, यह बात उपस्थिति से मालूम होती थी। आचार्यश्री के संघ के सिवा करीब एक सौ स्थानकवासी बतौर दर्शक के उपस्थित थे अथवा पच्चीस-तीस व्यक्ति वे थे जिनको कारों में बिठा कर लाया गया था। इनमें पाँच-सात अखबारनवीस और संवाददाता भी थे।

अणुव्रती संघ के जलसे के अलावा साहित्यिक गोष्ठी आदि कई उत्सवों के मिस से दिल्ली की शिक्षित और साधारण जनता से संपर्क साधने की प्रत्यक्ष चेष्टा की गई थी। किन्तु प्रोपेगण्डा में अखबारों के जरिये जितनी सफलता मिली उतनी अन्य साधनों से न मिली। बल्कि कहना चाहिये कि अन्य साधनों से नहींवत् ही सफलता मिली। दैनिक पत्रों में दिये हुए सत्य, असत्य और अर्द्धसत्य समाचारों से दूरस्थ जनता बड़ी-बड़ी कल्पनाएं करने लग गई थीं।

आचार्यश्री तुलसी की महत्त्वाकांक्षा को यहां बड़ा पोषण मिला। कितनी खुशी होती यदि जैन धर्म के नाम से किया जाने वाला यह प्रचार अहिंसा के शुद्ध रूप का होता। हम जैनों को बड़ा गर्व होता कि एक जैन आचार्य भारत की राजधानी मे अहिंसा के वास्तविक रूप का प्रचार कर रहे हैं। किन्तु खेद इस बात का है कि जैन धर्म का नाम लेकर एक ऐसी विचारधारा का प्रचार किया जा रहा है जिसका समर्थन दुनिया का कोई धर्म, मत, संप्रदाय और पंथ नहीं करता। पाठकों को आगे पता लगेगा कि आचार्यश्री तुलसी की जगत्-विलक्षण क्या-क्या मान्यताएँ हैं। दुनिया को आश्चर्य में डालने वाली अपनी मान्यताओं को छिपाकर

अणुव्रती संघ और ब्लैकमार्केटिंग के विरोध की आड लेकर आचार्यश्री तुलसी प्रचार मे सफल हुए।

ऐसी विचित्र मान्यताएँ अपने मन में रख कर आचार्यश्री तुलसी राजधानी के जरिये भारत व दुनिया को अपना संदेश सुनाना चाहते थे। कई भोले भक्तों ने तो यहाँ तक कल्पना कर ली थी कि महात्मा गांधी के बाद आचार्यश्री तुलसी ही उनका स्थान ग्रहण करके अहिसा का प्रचार कर सकते हैं। बेचारे भक्तों को क्या पता कि आचार्यश्री तुलसी की अहिंसा कैसी अजनबी, विकृत और अहिंसा का नाम धराने वाली हिंसा है। कल्पना की उडान में उडने वालों ने तो यह भी लिख मारा कि दिल्ली में गांधीजी के बाद आचार्य तुलसी ने नियमित प्रवचन जारी किया है आदि। मगर दुःख है कि दिल्ली की जनता और नेताओं ने उन प्रवचनों से लाभ नहीं उठाया।

यह सब-कुछ चल रहा था कि इन्हीं दिनों आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज दिल्ली में पधारे। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज तेरापंथ और आचार्यश्री तुलसी की असली मान्यताओं से पूर्ण परिचित थे। उन्होंने अपने दैनिक प्रवचनों में अपने श्रावकों और आम-जनता को सावध ान रहने की दृष्टि से तेरापंथ संप्रदाय के ग्रन्थों के उद्धरण बता कर उनकी असली मान्यताओं से परिचित कराना प्रारंभ किया। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के पास अपनी जबान के सिवा अन्य कोई साधन न था। कल्प मर्यादा में बंधे होने से इतर साधनो का उपयोग इष्ट न था। बिना आमंत्रण के जो लोग उनके भाषणों में उपस्थित हो जाते थे, उन को प्रसंगवश तुलनात्मक दृष्टि से दया-दान का परिचय करा दिया करते थे।

एक आक्षेप आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज पर उनकी भक्तमण्डली और तेरापंथ सम्प्रदाय की तरफ से यह किया जाता है कि वे अकेले ही तेरापंथ की मान्यताओं का खंडन क्यों किया करते हैं ? क्या जैन समाज में अन्य साधु, श्रावक, आचार्य या विद्वान् नही हैं ? अकेले यही क्यों इस मुद्दे पर इतना भार देते हैं ? बात सही है। इस वक्त आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ही तेरापंथ की कुमान्यताओं का अन्यों की अपेक्षा अधिक खंडन किया करते हैं। हमें कारण जानना चाहिये कि क्यो आचार्यश्री इस खण्डनात्मक प्रवृत्ति में भाग लेते हैं।

बात यह है कि जिस थली-प्रदेश और मेवाड़ में आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के अनुयायी हैं, उन्हीं प्रदेशो में आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी भी हैं। निकटवर्ती होने के कारण आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज इसकी वास्तविक मान्यताओं से परिचित हैं। जीव-रक्षा, सहयोग और सेवा में पाप मानते हुए भी किस कुशलता से ये अपना बचाव करते हुए प्रचार करते हैं, यह बात आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज खूब जानते हैं। इनके पूर्ववर्ती प्रसिद्ध से

जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज ने कई ग्रंथ लिखकर इस छिपी हुई विचारधारा को आम-जनता की नजरों में ला रखा है।

क्या कोई इनसान ऐसी कल्पना भी कर सकता है कि शुद्ध निस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर मोटर की झपट में आते हुए नादान बालक को हाथ से खींचकर बचा लेने वाला व्यक्ति अपनी इस चेष्टा से पाप-कर्म का बन्धन करता है ? वृद्ध माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा और भोजन-वस्त्रादि द्वारा सेवा करने वाला पापी है, हिंसक है ? किसी भूखे-प्यासे को अन्न और निर्दोष पानी पिलाने वाला पाप करता है ? भूकंप या अन्य प्रकृति-प्रकोप से पीडित की सहायता करना पाप है ? नहीं, ऐसी कष्टकल्पना हमारे तेरापंथी भाइयों के अतिरिक्त विद्यमान जगत् का कोई मनुष्य नहीं कर सकता। हमारे तेरापंथी भाई ही यह मानते हैं कि "जैन साधु के सिवा इस जगत् के सब प्राणी हिंसक हैं, पापी हैं। अतः हिंसकों या पापियों की रक्षा करना हिंसा और पाप की रक्षा करना है। जैन साधु भी वही है जो तीन अंगुल चौड़ी मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधता हो। वह एकमात्र अहिंसक है, उसकी सेवा, रक्षा और उसको दान देने से परमार्थ सिद्ध होता है। बाकी सब प्राणी असंयती हैं, अतः उनकी रक्षा करना या उनको किसी प्रकार का भौतिक सहयोग देना सर्वथा पाप है। भगवान् महावीर ने गोशालक की रक्षा करके भूल की है।" इत्यादि विचित्र मान्यताएँ हैं, जिनका स्पष्ट दर्शन इनके उद्धरण बताकर आगे कराया जायेगा। इन विचित्र धारणाओं को जानकर किस सहृदय व्यक्ति का दिल दुःख से न भर जायगा ! जब पवित्र जैन धर्म के नाम से इन निकृष्ट खयालात का प्रचार किया जाता है तब जानकार जैनी का दिल दुःख से भरे बिना नहीं रहता।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज जैन धर्म के नाम से होने वाले इस अधर्म-प्रचार से बडे दुःखी हैं। कई मूर्ख लोग यह भी आक्षेप करते हैं कि हमारी वृद्धि को देखकर ईर्ष्यावश आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज हम पर झूठा दोषरोपण करते हैं। जो लोग आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के निकटवर्ती हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि वे धर्म के नाम से प्रचलित होने वाली असत्य धारणाओं से कितने व्यथित हैं। अपनी व्यथा को वे कभी-कभी व्याख्यानों में व्यक्त किया करते हैं। यदि जैन समाज के इतर फिरकों के विद्वान् सन्त या श्रावक तेरापंथ-मान्यता की रीढ़ को पहचानते होते तो वे भी अवश्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के साथ होते। वे भी इसी उत्साह और लगन के साथ इन मिथ्या धारणाओं के खण्डन और प्रकटीकरण के कार्य में संलग्न होते।

महाराजश्री का तेरापंथी भाइयों पर वास्तविक प्रेम है। इसी कारण उनकी कुधारणाओं का उन्हें ज्ञान कराकर सच्ची श्रद्धा कराना चाहते हैं। व्यक्तिगत कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। छींटाकशी करने की कल्पना व्यर्थ ही की जाती है। महाराजश्री अपने भूले हुए भाइयों को

मार्ग पर लाना चाहते हैं। जो भाई, आचार्यश्री भीखणजी की कुशिक्षाओ के प्रभाव से उन्हीं के सम्प्रदाय से विलग होकर मार्गभ्रष्ट हो गये हैं, उन्हे सत्पथ पर लाना चाहते हैं। रोगी को कडवी दवा पसन्द नहीं होती, किन्तु भविष्य मे सुखकारी होने के कारण रोगी की पसन्दगी-नापसन्दगी का खयाल किये विना वैद्यराज दवा पिलाते ही रहते हैं। कभी-कभी रोगी वैद्य को गालियाँ तक सुना देते हैं। किन्तु परोपकर करना जिनका स्वभाव है, वे गालियो की परवाह नही करते। वे मन मे जानते हैं कि बीमारी मिटने पर रोगी की तरफ से धन्यवाद मिलने वाला है।

भारत के जैनेतर लोग भी तेरापंथ की असली मान्यताओं से कतई अनभिज्ञ हैं। कोई ऐसी कल्पना भी तो नहीं कर सकता कि विवेकपूर्वक जीवरक्षा या सेवादि कार्यों में पाप होता है। कई बार बड़ी अड़चन अनुभव की जाती है जब लोग यह कह देते हैं कि भला ऐसा भी कोई पंथ हो सकता है जो रक्षा और सहायता में पाप मानता हो ! तुम लोग दूसरो को गिराने के लिये द्वेषवश ऐसी मन-गढ़न्त बातें कर दिया करते हो। जब तेरापन्थ के मान्य ग्रंथों के उद्धरण बताकर समझाया जाता है तब लोग विश्वास करते हैं और बडे हैरान होते हैं।

इस कथन का यह अर्थ न लिया जाय कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के अतिरिक्त अन्य लोग इस पाप-मान्यता का खण्डन या विरोध नहीं करते। करते हैं, मगर कम।

पूज्यश्री के आगमन से पूर्व दिल्ली स्थित मुनिश्री सुदर्शनजी अपने दैनिक भाषणों मे तेरापन्थ का वास्तविक परिचय करा रहे थे तथा पं. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी समय-समय पर तेरापन्थ की मान्यताओं पर प्रकाश डालते रहे हैं।

पूज्यश्री के आगमन के अनन्तर आगरा की तरफ से पधारे हुए उपाध्याय कविवर पं. मुनिश्री अमरचन्दजी महाराज ने भी दिल्ली के प्रवचनों में तेरापन्थ की संकुचित और लोकहित-घातक मान्यताओं पर गहराई से प्रकाश डाला है। कविजी ने तो आगरा की तरफ भी इस विषय का अच्छा प्रचार किया था। कविश्री तेरापन्थ की नब्ज को पहचान चुके हैं। इतना ही क्यों, कविश्री ने राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू को भी अपनी मुलाकात मे इस लोकहित-नाशक विचारधारा से अवगत करा दिया है।

श्री बच्छराजजी सिंघी, सुजानगढ निवासी ने 'भीषण मान्यता' नामक टेक्स्ट लिखकर तेरापन्थ की मान्यताओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसी प्रकार समय-समय पर जैन तथा जैनेतर व्यक्तियों ने, जिनको तेरापन्थ की गुप्त मान्यताओं का पता लग चुका है, खंडन तथा विरोध किया है।

अभी पिछले दिनों पण्डित सुखलालजी का 'तेरापन्थी मित्रों के प्रति निवेदन' प्रकाशित हुआ था जिससे भारत की विद्वद्मण्डली परिचित है। पं. सुखलालजी समग्र जैन समाज में

जैनाचार्य श्री जवाहरलालजी महाराज ने कई ग्रंथ लिखकर इस छिपी हुई विचारधारा को आम-जनता की नजरों में ला रखा है।

क्या कोई इनसान ऐसी कल्पना भी कर सकता है कि शुद्ध निस्वार्थ भावना से प्रेरित होकर मोटर की झपट में आते हुए नादान बालक को हाथ से खींचकर बचा लेने वाला व्यक्ति अपनी इस चेष्टा से पाप-कर्म का बन्धन करता है ? वृद्ध माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा और भोजन-वस्त्रादि द्वारा सेवा करने वाला पापी है, हिंसक है ? किसी भूखे-प्यासे को अन्न और निर्दोष पानी पिलाने वाला पाप करता है ? भूकंप या अन्य प्रकृति-प्रकोप से पीड़ित की सहायता करना पाप है ? नहीं, ऐसी कष्टकल्पना हमारे तेरापंथी भाइयों के अतिरिक्त विद्यमान जगत् का कोई मनुष्य नहीं कर सकता। हमारे तेरापंथी भाई ही यह मानते हैं कि "जैन साधु के सिवा इस जगत् के सब प्राणी हिंसक हैं, पापी हैं। अतः हिंसकों या पापियों की रक्षा करना हिंसा और पाप की रक्षा करना है। जैन साधु भी वही है जो तीन अंगुल चौड़ी मुखवस्त्रिका मुख पर बाँधता हो। वह एकमात्र अहिंसक है, उसकी सेवा, रक्षा और उसको दान देने से परमार्थ सिद्ध होता है। बाकी सब प्राणी असंयती हैं, अतः उनकी रक्षा करना या उनको किसी प्रकार का भौतिक सहयोग देना सर्वथा पाप है। भगवान् महावीर ने गोशालक की रक्षा करके भूल की है।" इत्यादि विचित्र मान्यताएँ हैं, जिनका स्पष्ट दर्शन इनके उद्धरण बताकर आगे कराया जायेगा। इन विचित्र धारणाओं को जानकर किस सहृदय व्यक्ति का दिल दुःख से न भर जायगा ! जब पवित्र जैन धर्म के नाम से इन निकृष्ट खयालात का प्रचार किया जाता है तब जानकार जैनी का दिल दु.ख से भरे बिना नहीं रहता।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज जैन धर्म के नाम से होने वाले इस अधर्म-प्रचार से बड़े दुःखी हैं। कई मूर्ख लोग यह भी आक्षेप करते हैं कि हमारी वृद्धि को देखकर ईर्ष्यावश आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज हम पर झूठा दोषरोपण करते है। जो लोग आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के निकटवर्ती हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि वे धर्म के नाम से प्रचलित होने वाली असत्य धारणाओं से कितने व्यथित हैं। अपनी व्यथा को वे कभी-कभी व्याख्यानों में व्यक्त किया करते हैं। यदि जैन समाज के इतर फिरकों के विद्वान् सन्त या श्रावक तेरापंथ-मान्यता की रीढ़ को पहचानते होते तो वे भी अवश्य आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के साथ होते। वे भी इसी उत्साह और लगन के साथ इन मिथ्या धारणाओ के खण्डन और प्रकटीकरण के कार्य में संलग्न होते।

महाराजश्री का तेरापंथी भाइयों पर वास्तविक प्रेम है। इसी कारण उनकी कुधारणाओं का उन्हे ज्ञान कराकर सच्ची श्रद्धा कराना चाहते हैं। व्यक्तिगत कोई ईर्ष्या या द्वेष नहीं है। छींटाकशी करने की कल्पना व्यर्थ ही की जाती है। महाराजश्री अपने भूले हुए भाइयों को

मार्ग पर लाना चाहते हैं। जो भाई, आचार्यश्री भीखणजी की कुशिक्षाओं के प्रभाव से उन्हीं के सम्प्रदाय से विलग होकर मार्गभ्रष्ट हो गये हैं, उन्हे सत्पथ पर लाना चाहते हैं। रोगी को कड़वी दवा पसन्द नहीं होती, किन्तु भविष्य में सुखकारी होने के कारण रोगी की पसन्दगी-नापसन्दगी का खयाल किये विना वैद्यराज दवा पिलाते ही रहते हैं। कभी-कभी रोगी वैद्य को गालियाँ तक सुना देते हैं। किन्तु परोपकर करना जिनका स्वभाव है, वे गालियों की परवाह नही करते। वे मन में जानते हैं कि वीमारी मिटने पर रोगी की तरफ से धन्यवाद मिलने वाला है।

भारत के जैनेतर लोग भी तेरापंथ की असली मान्यताओं से कतई अनभिज्ञ है। कोई ऐसी कल्पना भी तो नहीं कर सकता कि विवेकपूर्वक जीवरक्षा या सेवादि कार्यो में पाप होता है। कई बार बड़ी अड़चन अनुभव की जाती है जब लोग यह कह देते हैं कि भला ऐसा भी कोई पंथ हो सकता है जो रक्षा और सहायता में पाप मानता हो ! तुम लोग दूसरों को गिराने के लिये द्वेषवश ऐसी मन-गढन्त बातें कर दिया करते हो। जब तेरापन्थ के मान्य ग्रंथों के उद्धरण बताकर समझाया जाता है तब लोग विश्वास करते हैं और बड़े हैरान होते हैं।

इस कथन का यह अर्थ न लिया जाय कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के अतिरिक्त अन्य लोग इस पाप-मान्यता का खण्डन या विरोध नहीं करते। करते हैं, मगर कम।

पूज्यश्री के आगमन से पूर्व दिल्ली स्थित मुनिश्री सुदर्शनजी अपने दैनिक भाषणों में तेरापन्थ का वास्तविक परिचय करा रहे थे तथा पं. मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी समय-समय पर तेरापन्थ की मान्यताओं पर प्रकाश डालते रहे हैं।

पूज्यश्री के आगमन के अनन्तर आगरा की तरफ से पधारे हुए उपाध्याय कविवर पं. मुनिश्री अमरचन्दजी महाराज ने भी दिल्ली के प्रवचनो में तेरापन्थ की संकुचित और लोकहित-घातक मान्यताओं पर गहराई से प्रकाश डाला है। कविजी ने तो आगरा की तरफ भी इस विषय का अच्छा प्रचार किया था। कविश्री तेरापन्थ की नब्ज को पहचान चुके हैं। इतना ही क्यों, कविश्री ने राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू को भी अपनी मुलाकात मे इस लोकहित-नाशक विचारधारा से अवगत करा दिया है।

श्री बच्छराजजी सिंघी, सुजानगढ़ निवासी ने 'भीषण मान्यता' नामक टेक्स्ट लिखकर तेरापन्थ की मान्यताओं पर अच्छा प्रकाश डाला है। इसी प्रकार समय-समय पर जैन तथा जैनेतर व्यक्तियों ने, जिनको तेरापन्थ की गुप्त मान्यताओ का पता लग चुका है, खंडन तथा विरोध किया है।

अभी पिछले दिनों पण्डित सुखलालजी का 'तेरापन्थी मित्रों के प्रति निवेदन' प्रकाशित हुआ था जिससे भारत की विद्वद्मण्डली परिचित है। पं. सुखलालजी समग्र जैन समाज मे

बड़े विद्वान, बुजुर्ग और स्पष्टवक्ता हैं। पंडितजी सत्य और अहिंसा का प्राणपण से पालन करने की चेष्टा किया करते है। उनके वचन जैन समाज बडी श्रद्धा की दृष्टि से पढता है। पंडितजी का प्रत्येक शब्द विचारपूर्वक लेखी-रूप धारण करता है। जिस हित-कामना से प्रेरित होकर आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज तेरापन्थी मित्रों की मान्यताओं का रहस्योद्घाटन करते हैं, उसी हित-कामना से पंडितजी ने भी तेरापन्थी मित्रों को सावधान किया है। कड़वी दवा से लाभ लेना-न लेना रोगी पर निर्भर है। दवा तो वही दी जाती है जो उस रोग पर लागू होती है। इस प्रकार की शुद्ध भावना या तत्त्वचर्चा में राग-द्वेष या ईर्ष्या का आरोप करना हृदय की क्षुद्रता ही कही जा सकती है। कौन आत्मार्थी पुरुष ऐसा होगा जो ईर्ष्या-द्वेष से अपने हृदय को कलुषित करके दूसरों का परमार्थ साधने की कोशिश करना पसन्द करता होगा ? मिथ्या कल्पना करने वाले स्वतंत्र हैं, उन्हें कौन रोक सकता है, मगर मिथ्या कल्पना से वे अपना ही अनिष्ट करते हैं।

हॉ, एक बात स्मरण में आती है कि तेरापंथ के नवम आचार्यश्री तुलसी के पूर्ववर्ती आद्य व चतुर्थ आचार्यश्री भीखणजी व जीतमलजी महाराज ने स्पष्ट शब्दों में अपनी मान्यताएँ जनता के समक्ष रखी थीं। वे खुले शब्दों में कहते थे कि साधु से इतर [illegible] और उनकी रक्षा या सहायता करना सर्वथा पाप है। रक्षा का अर्थ न [illegible] अर्थ धर्मोपदेश देना मात्र है। कष्टग्रस्त प्राणी को कष्ट से मु[illegible] भूखे को अन्न देकर सुख पहुँचाना या बचाना पाप है, अधर्म है। [illegible] भी अंतरंग में तो यही है, किन्तु चूंकि वे प्रकाश में आना [illegible] को भेद कर इस विस्तृत जगत् में प्रवेश करना चाहते हैं [illegible] बडी चतुराई से छिपाने की कोशिश करते हैं। रक्षा और [illegible] करार देकर व्यवहार में पुण्यफल की बात कहने लगे हैं। [illegible] है, यह साधारण जनता तो क्या समझे, मगर बडे-बड़े [illegible] हैं।

एक कुंआरी कन्या को गर्भ रह गया। वह अपने पा[illegible] थी। किन्तु पेट मे दर्द होने के कारण उसने एक दिन ए[illegible] दाई ने पेट के हाथ लगाते ही चट से कह दिया कि [illegible] तक तू इस पाप को छिपाने में सफल रह सकेगी [illegible] एक-न-एक दिन पाप का भण्डाफोड़ हुए बिना न [illegible] [illegible] को न समझ सकेंगे, किन्तु फल पकने पर जन[illegible] तुझे दुनिया को अपना मुख दिखाना बडा कठि[illegible]

अपनी कठिनाई रखी कि मैं बड़ी उलझन में हूं। इतने दिनों से धारण किये हुए गर्भ के प्रति भी बड़ा ममत्व है और लोक-लज्जा का भी बड़ा भय है। न गर्भ का मोह छूटता है और न लोक-निन्दा का भय। मैं बडी विचित्र गति में फंसी हुई हूँ। छिप-छिप कर रहना भी मेरे लिए मुश्किल है। और बड़े प्यार से पालित-पोषित गर्भ को गिराना भी सहज कार्य नहीं है।

दाई ने दिल को कठोर बनाकर उस कन्या को यह सलाह दी कि यदि तू दुनिया में इज्जत के साथ मुक्त विचरण करना चाहती है तो गर्भ को गिराये विना छुटकारा नहीं है। तू उस बंदर की तरह आचरण करके उलझन से मुक्त नहीं हो सकती जो छोटे मुख के घट में रखे लड्डू को हाथ से कड्डा पकड़ लेता है और घट से छुटकारा पाना चाहता है। घट का मुख इतना छोटा है कि बंदर का खुला हाथ उसमें प्रवेश कर सकता है, लड्डू से युक्त मुष्टिवद्ध हाथ उसमें से निकलना शक्य नहीं है। लड्डू का ममत्व छोड़े विना घट से छुटकारा नहीं हो सकता। लड्डू को भी ममत्वपूर्वक पकडे रहना और मुक्त विचरण की भी कामना करना एक उलझन ही है। अतः प्यारी वहिन ! मेरी सीखामण है कि या तो तू घर में छिप कर वैठी रह या अपने प्यारे गर्भ को गिराने की चेष्टा कर। दाई ने यह भी कहा कि वहिन ! तू अपने वैभव-वल के मद मे मत रहना कि दुनिया मेरा क्या विगाड़ सकती है ! दुनिया वड़ी विचित्र है। वह वड़ों-बडों की छोटी-सी भूल भी सहन नहीं कर सकती। फिर तेरी भूल तो बहुत बड़ी और सच्ची है।

आचार्यश्री तुलसी की विचित्र धारणाओं को आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज खूब समझते हैं। अच्छा हो, इनकी सलाह मान कर आचार्यश्री तुलसी अपना और दूसरों का भला करें।

इस प्रकार आचार्यश्री तुलसी अपने क्षेत्रों में जिस तौर-तरीके से दयादान का स्वरूप बताते थे, वह दिल्ली में प्रयुक्त न करके नवीन ढंग से नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की वातें करने लगे। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज बड़े हैरान थे कि जो आचार्य माता-पिता की सेवा करने में पाप मानते हैं, दीन-दुःखियों की सहायता करने मे पाप मानते हैं, एक मनुष्य द्वारा दूसरे की कष्ट में मदद करना पाप मानते हैं, वह दिल्ली मे नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की वाते कहते हैं, यह कैसी विचित्रता है ! माता-पिता को भूख लगने पर संथारा (यावज्जीवन अन्न-जल का त्याग) करा देने मे ही सच्ची सेवा मानने वाले अथवा उनको धर्मोपदेश सुनाने में ही वास्तविक सेवा मानने वाले और अन्न-वस्त्र-औषधादि द्वारा सेवा करने मे पाप होने की प्ररूपणा करने वाले आचार्यश्री तुलसी राजधानी में वड़ी चतुराई से पेश आ रहे हैं। एक तरह से इस रुख से आचार्य गणेशलालजी महाराज प्रसन्न थे कि अल्पकाल और सीमित क्षेत्र में

ही सही, आचार्यश्री तुलसी ने अपने तरीके में कुछ परिवर्तन तो किया है। किन्तु इस परिवर्तन का रहस्य नैतिक स्तर ऊँचा उठाना उतना नहीं, जितना अपने ग्रामीण भक्तों के दिलो पर यह रुआव बिठाना कि हमारे महाराजश्री दिल्ली में अपने सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं, यदि वे सिद्धान्त झूठे होते तो दिल्ली की समझदार जनता उन्हें कैसे सुनती ?

इस बात में तथा अखबारी प्रोपेगण्डा में आचार्यश्री तुलसी सफल हुए– यह सत्य स्वीकार करना पडता है।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज अपने प्रवचनों में इतर जनोपयोगी विषयों के उपरांत प्रसंगवश तेरापंथ की मान्यताओं का दिग्दर्शन करा दिया करते हैं। आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज भावों को छिपाने में चतुर नहीं हैं, न उनको इन्डाइरेक्ट तरीके से कोई बात कहना आता है। वे तो संतसुलभ सीधे-सादे तरीके से तेरापन्थ संप्रदाय का नाम लेकर उनके सिद्धान्त बता दिया करते हैं। सीधा और स्पष्ट तरीका, गूढ तरीके की अपेक्षा साधारण जनता के हृदय को अधिक छूता है। किन्तु वह तरीका विद्वान् कहे जाने वाले लोगों को अच्छा नहीं लगता। इस तरीके में वे ग्राम्यपन और राग-द्वेष होने की आशंका करते हैं।

कुछ विद्वान् या समझदार लोग धर्म सम्बन्धी मत-मतान्तर का खंडन-मण्डन करना या सुनना नापसंद करते हैं। धर्म बहुत पुरानी वस्तु हो गई है। उसके नाम पर गलत विचारधारा का विरोध करना या उस का निराकरण करना आधुनिक समझदार व्यक्ति अच्छा नहीं समझते। वे विद्वान् राजनीति के नाम से विचारों के खंडन-मंडन से आगे बढकर मुष्टा-मुष्टी तक पहुँच जाने में भी संकोच अनुभव नहीं करते। वह तो पवित्र कर्तव्य समझते हैं। आज भारत में कांग्रेस पार्टी सब से बड़ी और अनुशासनबद्ध है। देश के आला दिमाग उसमें शरीक हैं। क्या इस पार्टी के सदस्य अपनी बात की सत्यता सिद्ध करने के लिए एक-दूसरे की तर्कों को नहीं काटते ? अवश्य काटते हैं और जिसे असत्य समझें, उस विचारधारा को काटना ही चाहिये। हाँ, सामने पक्ष वाले के प्रति व्यक्तिगत द्वेष या अपमान करने की भावना न होनी चाहिये। इसी पवित्र भावना से आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज धर्म के नाम से होने वाले अधर्म के प्रचार को रोकने की दृष्टि से अपने सरल और सचोटे तरीके से दिल्ली में प्रवचन कर रहे थे। उनके भाषणों में तेरापंथ के प्रति न राग-द्वेष था और न अपमान की भावना। निखालिस सुधार की भावना उनके हृदय में निवास करती है।

उधर आचार्यश्री तुलसी अपने भाषणों में बिना किसी संप्रदाय या व्यक्ति का नाम लिये अपनी लाक्षणिक शैली में अपने मंतव्यों का विवेचन कर रहे थे। किसी संप्रदाय या व्यक्ति का नाम लिये बिना इस खूबी से वचन रूपी तीरों को चलाते थे कि जहाँ निशाना मारना होता, सीधा वहीं पहुँचता। भेषधारी और पाखंडी शब्दों का प्रयोग करके जिन तक अपना संदेश

पहुंचाना होता, पहुँचा देते। इस चतुरतापूर्ण तरीके को विद्वानों ने पसंद किया। वे चर्चा करने लगे कि आचार्यश्री तुलसी किसी संप्रदाय की निन्दा या खंडन-मंडन नही करते। वे अपनी बात का विवेचन करते हैं। किन्तु विद्वानों को क्या पता कि बीच-बीच में वे कैसा तीर चला जाते जो उनके विपक्षी को कितना घायल कर देता ! 'घायल की गत घायल जाने और न जाने कोय'। इस घातक शैली से तो खुले शब्दों में नाम लेकर किसी की कुधारणाओ का निराकरण करना ज्यादा बेहतरीन तरीका है। मगर यह तो स्वभाव या आदत का प्रश्न है। जिसकी जैसी आदत होती है, वह उसी तरीके से वर्ताव करता है। पाठक उस वक्त के समाचार पत्रों में प्रकाशित हुए भाषणों में यह बात पढकर सत्य तक पहुँच सकते हैं।

इन्हीं दिनो में 'अमर भारत' के ता. 11 मई, 1950 के अंक मे आचार्यश्री तुलसी के अनुयायी श्री शुभकरण सुराणा, चूरू का एक लेख प्रकाशित हुआ, जिसका कुछ अंश इस प्रकार है :-

"विश्वस्त सूत्र से यह जानकर खेद हुआ कि इतर जैन सम्प्रदाय के लोग आचार्यश्री तुलसी के प्रभावशाली भाषणों एवं उपदेशों को श्रवण कर प्रसन्न होने के बदले ईर्ष्या और डाह करते हैं।

जब से बाईस सम्प्रदाय के पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज दिल्ली पधारे हैं, उनके अनुयायी लोग आचार्यश्री तुलसी एवं उनकी सम्प्रदाय के प्रति पर्चेबाजी कर रहे हैं। किन्तु किसी पर्चे में यह बताने का कष्ट किसी ने भी नहीं किया कि पूज्यश्री हुकमीचन्दजी महाराज से लेकर वर्तमान पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज तक उन महानुभावों एवं उनके अनुयायी साधुओं ने :-

(1) कितने चूहे बिल्ली के मुंह से छुड़ाये ?

(2) कितने जलते हुए बाड़ों को खोलकर कितनी गायों की रक्षा की ?

(3) मोटर एवं गाड़ियों से दबते हुए कितने बच्चों के प्राणों की रक्षा की ? यदि नहीं, तो फिर दूसरों पर ऐसे आक्षेप क्यों किये जाते हैं ?

स्मरण रहे, तेरापंथ सम्प्रदाय की ओर से न तो कभी ऐसी पर्चेबाजी हुई और न भविष्य में होने की सम्भावना ही है। मिथ्या प्रचार से तेरापंथ सम्प्रदाय की गतकाल में उन्नति ही हुई है। जहाँ आचार्यश्री भिक्षु स्वामी के समय सिर्फ 13 साधु एवं 13 ही श्रावक थे, वहां आज आचार्यश्री तुलसी के अनुसंधान में करीब साढे छः सौ साधु एवं साध्वियां और लाखो की संख्या में श्रावक (उपासक) हैं। तथापि सभ्यता के नाते मैं पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज से नम्र निवेदन करूंगा कि राष्ट्रपति के कथनानुसार आप भी आचार्यश्री तुलसी द्वारा स्थापित

अणुव्रती संघ के नियमों का प्रचार कर इस शुभ कार्य में हाथ बटाएं, जिन्हें अपनाने से मनुष्य मनुष्यत्व को प्राप्त कर सकता है, और अपने अनुयायियों को मिथ्या प्रचार करने से फौरन रोक दें। यदि किसी बात में मतभेद भी हो तो आचार्यश्री तुलसी से मिलकर उनका समाधान करलें।

जब पाकिस्तान के प्रधानमन्त्री श्री लियाकतअलीखां कराची से दिल्ली आकर भारत के प्रधानमन्त्री पण्डित जवाहरलालजी नेहरू से विचार-विनिमय कर परस्पर के मनोमालिन्य को मिटा सकते हैं तो क्या पूज्यश्री गणेशलालजी महाराज दिल्ली में विद्यमान रहते हुए भी, आचार्यश्री तुलसी से मिलकर अपनी शंकाओं का समाधान नहीं कर सकते ? मैं तो कहूंगा– अवश्य कर सकते हैं।

स्मरण रहे, गन्दे प्रचार से तो परस्पर राग-द्वेष बढने एवं जैन धर्म की अवहेलना होने की सम्भावना है।

-शुभकरण सुराणा, चूरू"

इस लेख को पढ़कर स्थानकवासी जैनों के दिलो को गहरी चोट पहुँची। कई लोग बड़े क्षुभित और उत्तेजित हो गये जिनको आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने शान्ति रखने का उपदेश देकर शान्त किया। दिल्ली में स्था. जैनों के करीब एक हजार घर हैं। कई शरणार्थी बन्धुओं ने भी जैनी आबादी में वृद्धि की है। जोशीले पंजाबियों ने बड़ी कठिनाई से अपने जोश को काबू में रखा। लेख पढ़कर सबका यह अनुमान हो गया कि अवश्य इस लेख के पीछे आचार्यश्री तुलसी का हाथ है।

इस लेख में शुभकरण सुराणा ने यहाँ तक लिख डालने की हिमाकत की है कि क्यों न आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज इस एकता के जमाने में आचार्यश्री तुलसी की सेवा में उपस्थित होकर शंकाओं का निराकरण कर लेते। श्री सुराणा यह जानते हैं कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज की अवस्था 61 वर्ष की है और आचार्यश्री तुलसी की 34 वर्ष की। संवत् 1962 के साल मे जब आचार्यश्री गणेशीलालजी महाराज ने जैन दीक्षा धारण की थी, तब आचार्यश्री तुलसी का जन्म भी न हुआ था। दीक्षावृद्ध, ज्ञानवृद्ध, अनुभववृद्ध, और अवस्थावृद्ध आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज को आचार्य तुलसी की सेवा में उपस्थित होने का आह्वान एक धृष्टता नहीं तो क्या है ? जो तेरापंथी जैनी अपनी मिथ्या धारणाओ के कारण आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के समाज में से ही विलग होकर निकले हैं, वे आज इस प्रकार लिखने की उद्धतता करते हैं, यह उनका अविनय अक्षम्य है।

दूसरी बात, इस लेख में उन महान् आचार्यों की आशातना की गई है जिनका चारित्रमय जीवन, तपस्या और विशुद्ध जीवन प्रसिद्ध हैं। आचार्यश्री हुक्मीचन्दजी महाराज, जिन्होने 21 वर्ष तक निरन्तर बेले-बेले पारणा किया था, उनका नाम लेकर लेखक ने अपने हृदय की क्षुद्रता का परिचय दिया है। और आचार्यश्री जवाहर, जिन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखकर दया और दान की भरपूर पुष्टि की है, तथा जो तेरापन्थ की मान्यताओं की नाड के विशेषज्ञ और पूर्ण पारखी थे, जिन्होंने थली-प्रदेश में विचरकर जीवरक्षा और सेवा का जैन धर्म की मान्यतानुसार निधड़क होकर प्रचार किया था, उनसे पूछा जाता है कि आज तक कितने चूहों की बिल्ली से रक्षा की है ? लेखक ऐसा मान लेता है कि साधु जीवरक्षा नहीं कर सकता। उनके गुरुओं ने उनके दिमाग में यही बात ठसा रखी है कि साधु या श्रावक मरते जीव की रक्षा नहीं कर सकते, करने पर पाप लगता है। किन्तु जैन शास्त्रानुसार यह बात कतई गलत है, जैन शास्त्र ऐसा नहीं मानता। जैन शास्त्र तो कहता है कि अपने प्राणों की बलि देने का अवसर आये तो बलि देकर भी दूसरों की रक्षा करो। जैसी तुम्हारी आत्मा है वैसी दूसरे की भी है। तुम्हें अपने प्राण प्रिय हैं और कोई दयालु आकर तुम्हारी रक्षा करता है तो वह तुम्हे कितना भला लगता है ? वैसे ही दूसरे प्राणियों को भी अपने प्राण प्रिय हैं। यदि वे कष्ट में हों तो उन को कष्टमुक्त कर देना महान् अहिंसा है। इस कार्य को हिंसा कहना नितान्त अज्ञानता है। जैन धर्म के अतिरिक्त विश्व के सारे धर्म भी रक्षा और सेवाकार्य को हिंसा नहीं मानते। केवल तेरापंथ और उसके आचार्यश्री तुलसी की ही यह प्ररूपणा है कि रक्षा और सहायता पापकार्य हैं। पाप भी साधारण कोटि का नहीं, किन्तु चोरी, जारी और ठगाई जितना पाप। ऐसी पाप-मान्यताओं को हृदय में धारण कर कोई पन्थ कब तक टिक सकता है ? हाँ, यह अर्थ-युग है अतः अर्थबल से कुछ दिन और टिक जाय। किन्तु अर्थ-युग मिटकर जब साम्यवाद का युग आयेगा तब अर्थवाद के साथ यह पापवाद भी खत्म हो जायगा।

संभव है, कुछ पाठकों को ये वचन कठोर प्रतीत हों। किन्तु उनसे हमारी विनय है कि वे जरा गहरे उतरकर गहराई से इन मान्यताओं की छानबीन करें तो उन्हें पता लग जायगा कि ऐसी विचारधारा एक क्षण के लिए भी मानव-समाज के लिए उपयोगी नहीं है। संसार सहयोग पर आश्रित है। एक-दूसरे को सहयोग देना भी जो पाप बतावें, उनका अपराध अक्षम्य होना चाहिये।

कुतर्क करके वे लोग ऐसा पूछा करते हैं, क्योंजी तुम रक्षा करने मे धर्म मानते हो तो सिंह की रक्षा करने में भी मानते हो ? और भूखे की आत्मा को तृप्त करने मे धर्म-पुण्य मानते हो तो क्या मांस खिलाने में भी मानते हो ? सिंह और मांस की बात थोडी देर के लिए छोडकर ऐसे कुतर्की से उत्तर में यह पूछा जाय कि महात्मा गाँधी के हत्यारे नाथूराम गोडसे

की गोली चलाने के वक्त पिस्तौल छीन लेने वाले को क्या फल होता ? पाप या पुण्य ? और भूखे की भूख बुझाने के लिए रोटी खिलाने पर क्या होता ? पाप या पुण्य ? रक्षा और सहायता में पाप की प्ररूपणा करने के लिए सिंह और मांस के कुदृष्टान्त देकर जनता को भ्रम में डालने की व्यर्थ चेष्टा की जाती है। जो लोग रक्षा और सहायता में सर्वथा पाप मानते हैं, पुण्य का अंश भी नहीं मानते, वे लोग ऐसी कुतर्के करके लोगों के दिमाग खराव करते हैं। भाई शुभकरणजी का दिमाग भी ऐसी अनिष्ट धारणा के कारण विकृत बना हुआ था, अतः उन्होंने अपने लेख में पूछा है कि इन आचार्यों ने कितने जीवों की रक्षा की है। ये सव आचार्य रक्षा करना परम धर्म मानते थे और मानते हैं।

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने उसी दिन अपने व्याख्यान में इस लेख का स्पष्टीकरण किया। आचार्यश्री छापाबाजी के धंधे में नहीं पड़ते। उनके पास जो आता है, उसे समझा दिया करते हैं। आचार्यश्री ने प्रवचन में स्पष्टतया खुलासा किया कि जीव-रक्षा करना परम धर्म है। हां, उसमें विवेक परम आवश्यक है। हम साधु लोग भी प्राणी-रक्षा का कार्य कर सकते हैं और करते हैं। हमारे लिए शास्त्रों ने जो मर्यादाएं बांधी हैं उनका उल्लंघन न करते हुए निर्दोष साधनों से हम किसी भी कष्टग्रस्त प्राणी की कष्टमुक्ति में सहयोग दे सकते हैं। ध्यानस्थ व्यक्ति की नजर भी यदि किसी सताये जाते हुए प्राणी पर पड़ जाय तो ध्यान खोलकर उसका कष्ट छुड़ाकर वापस ध्यान में आकर बैठ जाय। इसमें किसी प्रकार का दोष नहीं है। यह तो हृदय की विशालता है। 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' का पदार्थपाठ है। जिन लोगों का हृदय पत्थर का बना हुआ है, वही यह कह सकते हैं कि 'रक्षा करना पाप है। मरने वाला अपने कर्मों को भुगत रहा है, अपना पूर्वजन्म का कर्जा चुका रहा है, तुम वीच में पड़ कर उसमें बाधा क्यों देते हो'। यह कथन शास्त्र और अनुभव-विरुद्ध है।

उसी दिन यह तय किया गया कि दोनों सम्प्रदायों के आचार्य दिल्ली में विद्यमान हैं, क्यों न दयादान सम्बन्धी प्रश्नों पर चर्चा कर ली जाय ? आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज के पूर्ववर्ती आचार्यश्री जवाहर, अनेक बार थलियों में, खासकर इनके गढ़ सरदारशहर में तथा श्री सुराणा के चूरू में भी दयादान सम्बन्धी प्रश्नों पर चर्चा करने के लिए चेलेंज दे चुके थे। किन्तु छिपे तौर से अपनी मान्यताओं का प्रचार करने वाले सामने आकर कब चर्चा कर सकते हैं ? चेलेंज का कभी उत्तर नहीं दिया गया। मौनधारण ही उत्तम अस्त्र माना गया।

उक्त निर्णय के अनुसार कुछ स्थानकवासी जैन भाई आचार्यश्री तुलसी के पास श्री रामकृष्ण डालमिया के बंगले पर पहुँचे, जहां वे भाषण कर रहे थे। कोलकाता के तेरापंथी भाइयों का श्री डालमिया से व्यापारिक सम्बन्ध है, इसी नाते इस बंगले पर आचार्यश्री तुलसी अपने दलवल के साथ आये हुए थे। सब आगन्तुक लोग व्याख्यान मे बैठ गये।

व्याख्यान मे श्रोताओं की उपस्थिति देखकर अखबारी दुनिया को वास्तविक ज्ञान हुआ। बेचारे अखबार वाले क्या जानें कि हम जो खबर प्रकाशित कर रहे हैं वह कितने अंशों में सत्य है। उनके पास जो-कुछ लिखकर भेज दिया जाता है, उसे प्रकाशित कर दिया करते हैं। यह उनके लिए शक्य भी तो नहीं है कि हर बात की असलियत का पता लगाकर खबर छापा करें। अखबारों में आचार्यश्री तुलसी के प्रवचनो की धूम के समाचार पढ़कर जिन लोगों को हैरानी हो रही थी, उनका मन प्रत्यक्ष में उपस्थिति देखकर संतुष्ट हो गया। उनके मन का समाधान हो गया कि वास्तव में कितनी उपस्थिति होती है और अखबारों में कितनी बढा-चढ़ाकर लिखी जाती है। उन्हें यह भी पता लग गया कि आचार्यश्री तुलसी के प्रचार विभाग के व्यक्ति बड़े चतुर, होशियार और एडवरटाइजिंग में महाकुशल हैं। तिल को ताड और ताड़ को तिल बना देना उनके बायें हाथ का खेल है। यह उसी प्रचार विभाग का कौशल है कि सारे भारत में दिल्ली के दैनिक पत्रों के द्वारा तेरापंथ का नाम खूब प्रसारित किया गया। दूर स्थित लोगों को क्या पता कि सचाई क्या है ? अखबार पढ़कर अन्दाजा लगाने वालो के लिए सचाई तक पहुँचना कठिन है।

उस दिन आचार्यश्री तुलसी के व्याख्यान में उनके भक्तों के अतिरिक्त श्री जैनेन्द्रकुमारजी जैन, पं. राजेन्द्रकुमारजी तथा श्री राजकृष्णजी उपस्थित थे, जिनको खासतौर पर बुलाया गया था। स्थानकवासी भाइयों के पहुँचने पर श्री डालमिया को भी बुला लिया गया था। इनके अतिरिक्त दिल्ली का कोई दीगर व्यक्ति व्याख्यान में न था। अखबारी खबरें पढ़कर मन में जो उपस्थिति का कल्पना-चित्र बना हुआ था वह विलीन हो गया। उपस्थिति से किसी को कोई प्रयोजन नहीं। प्रयोजन तो असत्य प्रकाशन से है। इससे आम-जनता में झूठा भ्रम फैलता है। जनता में कुछ भी भ्रम फैले, मगर अपने ग्रामीण भक्तों के दिलों पर तो इसका अच्छा प्रभाव पडता था। वे तो जाहोजलालीयुक्त समाचार पढ़कर अपने दायरे में मजबूत बंधे रहेंगे।

व्याख्यान समाप्त होने पर आचार्यश्री तुलसी की इजाजत लेकर एक स्थानकवासी जैन खड़ा हुआ जिसे वक्ता के रूप में पहले से ही चुन लिया हुआ था। उसने आचार्यश्री तुलसी को सम्बोधित करके स्पष्ट शब्दों में यह जाहिर किया कि महाराज ! आप भी दिल्ली में विद्यमान हो और आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज भी। अतः दोनों के दयादान के सम्बन्ध में चर्चा हो जानी चाहिये ताकि जनता का भ्रम दूर हो जाय। प्रसिद्ध उपन्यास लेखक श्री जैनेन्द्रकुमारजी और श्री डालमिया की उपस्थिति में उस व्याख्यान सभा में यह स्पष्ट कर दिया गया कि आचार्यश्री तुलसी जीव-रक्षा और सहायता कार्य में पाप मानते हैं। एक व्यक्ति, किसी दूसरे व्यक्ति पर तलवार से वार करने के लिए उद्यत है। एक तीसरा दयालु परोपकारी और निःस्वार्थ व्यक्ति वहाँ पहुँच जाता है। वह उपदेश देकर अथवा उसका हाथ पकड़कर उसे

हिंसा से रोक देता है और मारे जाने वाले की रक्षा कर देता है, तो इस रक्षारूप पवित्र और अहिंसक कार्य को आचार्यश्री तुलसी पापयुक्त और हिंसामय कार्य बताते हैं। रक्षा करने वाले को पापरूप फल होना बताते हैं। इसी प्रकार शरणार्थियों और रेल-दुर्घटनाग्रस्त व्यक्तियों की मरहम-पट्टी या भोजनादि द्वारा सहायता करने में पाप बताते हैं। साधु से इतर सब प्राणी असंयती हैं अतः उनकी रक्षा करना या उनको कुछ भी सहायता पहुँचाना पापकार्य है आदि आचार्यश्री तुलसी की प्ररूपणा और मान्यता है। जबकि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज इन कर्मों में धर्म-पुण्य मानते हैं। शुभ निष्ठा या शुभ योग तो हर काम में होना ही चाहिये। तभी वह धर्म-पुण्य की कोटि में गिना जाता है। किन्तु आचार्यश्री तुलसी तो शुभ निष्ठा या शुभ योगपूर्वक भी यदि ये कार्य किये जायं तो इनका फल पाप होना बताते हैं। इनकी राय में केवल साधु ही रक्षा और दान या सहायता का पात्र है, अन्य सब कुपात्र हैं। जबकि दोनों आचार्य एक ही शास्त्र को मानते हैं तब प्ररूपणा और आचरण में इतना भेद क्यों ? महाराज ! यह अच्छा अवसर है। संयोग से दोनों एक ही शहर में हैं। अतः चर्चा करके इस विवाद को मिटा दीजिये।"

स्थानकवासियों की ओर से जो कहना था वह कह दिया गया। हां, शुभकरण सुराणा के लेख का भी जिक्र किया गया और ऐसे भद्दे, निन्दात्मक और आक्षेपात्मक लेख से आपस में कड़वास और मनोमालिन्य उत्पन्न होते हैं, अतः ऐसे लेख प्रकाशित नहीं होने चाहिये आदि बातें भी कही गईं। आचार्यश्री तुलसी ने स्पष्टीकरण किया कि इस लेख के जिम्मेवार सुराणा ही हैं, हमारा इसमें कोई हाथ नहीं है (इस स्पष्टीकरण से स्थानकवासियों में मन को कुछ सन्तोष हुआ)। श्री सुराणा ने ऐसा लेख प्रकाशित करके हमारे खयाल से तेरापंथ की कुसेवा ही की है। जिसके लिए आचार्यश्री तुलसी को अफसोस जाहिर करना पडा। श्री शुभकरण सुराणा की उस वक्त खोज की गई, मगर वे सभा से नदारद थे। गये हुए सब लोग श्री सुराणा का चेहरा देखना चाहते थे। किन्तु श्री सुराणा वहां उपस्थित न थे।

आ. श्री तुलसी के पास जाने वाले सज्जनों को जाने के पूर्व आ. श्री गणेशलालजी म. और कविवर श्री अमरमुनि ने खूब शिक्षाएं दी थीं कि 'देखो, अपराधी पर भी दया की वर्षा करने के अपने गुण को न भूलना। जैन धर्म की यही शिक्षा है कि अपराधी के अपराध को भी क्षमा कर देना और उस पर दया की वर्षा करना। तथा यह भी सूचना कर दी थी कि बड़ी सभ्यता और शिष्टता से पेश आना। तुम जाने वाले अपने जोश को यहीं ठण्डा करके ठंडे दिमाग से बात करना। लडाई-झगड़ा या क्लेश बढ़ाने के लिए नहीं जा रहे हो, मगर विवाद का शमन करने की दवा करने जा रहे हो। ऐसा न हो कि विवाद और अधिक बढ़ जाय।'

उक्त मुनिराजो की शिक्षाओं से सबका मन शान्त था। केवल मानवसुलभ औत्सुक्य के कारण श्री सुराणा को देखना चाहते थे। मगर उनमें वह शौर्य कहाँ जो वहाँ उपस्थित रहते ! थे वह दिल्ली में ही, ऐसा सुना गया था। उत्सुकों की उत्सुकता बनी ही रही, वह पूर्ण न हुई। खैर !

स्थानकवासियों के वक्तव्य पर आचार्यश्री तुलसी कुछ भी नहीं बोले। उनकी तरफ से बोलने के लिए श्री जैनेन्द्रजी, राजेन्द्रजी और डालमियाजी उपस्थित थे ही। उनको इस आशंका से पहले ही बुला लिया गया था कि कहीं कुछ रगड़ा न हो जाय। जाने वालों के मन में रगड़े-झगडे की कोई भावना न थी। मगर श्री सुराणा के लेख से उन्हें आशंका हो गई थी जो कि निरी झूठी आशंका-मात्र थी। उक्त तीनों व्यक्तियों ने भी ऐसे खोटे लेख की निन्दा की और आपस में प्रेमपूर्वक बर्ताव की अपील की तथा चर्चा या एकत्र प्रवचन किस प्रकार हों, इसका निर्णय करने के लिए रात्रि को दोनों ओर के कुछ सज्जन श्री राजकृष्णजी के मकान पर इकट्ठा हों, यह तय हुआ। स्थानकवासी भाइयों की इच्छा यह थी कि दया-दान के सम्बन्ध में किसी मध्यस्थ की मध्यस्थता में लेखी या मौखिक चर्चा हो जाय और वे गये भी इसीलिए थे। किन्तु श्री जैनेन्द्रजी और राजेन्द्रजी की इच्छा दोनो आचार्यों का एक साथ भाषण कराने की थी। आचार्यश्री तुलसी एक शब्द भी नहीं बोले और चुपचाप बैठे रहे।

दिन के निश्चय के अनुसार रात्रि को निश्चित स्थान पर चुनिन्दा व्यक्ति इकट्ठे हुए। स्थानकवासी अपनी बात पर अड़े थे कि दया-दान के सम्बन्ध मे चर्चा हो जाय और तेरापथी इस बात पर अड़े हुए थे कि हमें किसी बात की शंका नहीं है। जिसे शका हो, वह हमारे आचार्य के पास आकर पूछ ले। बड़ी देर तक इस मुद्दे पर वार्त्तालाप होता रहा। कोई भी अपनी बात छोड़ना न चाहता था। तब रात करीब के बारह बजे श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने एक सुझाव रखा कि 'एक मध्यस्थ समिति बनाली जाय और उसके मार्फत, जिसे प्रश्न पूछना हो, वह पूछले। इससे चर्चा और शास्त्रार्थ में जो एक-दूसरे को विजित-पराजित करने की भावना रहती है, वह टल जाती है और शुद्ध सैद्धान्तिक चर्चा हो जायगी। दया-दान के सम्बन्ध मे किस आचार्य की क्या मान्यता है, यह जनता के सामने आ जायगा।' श्री जैनेन्द्रकुमारजी के इस प्रस्ताव को स्थानकवासी भाइयों ने मान लिया किन्तु तेरापन्थी भाई इस पर भी राजी न हुए। उनका तो एक ही कक्का था कि हमें कुछ शंका ही नहीं है और न कुछ पूछना ही है। अतः इस प्रकार की समिति की क्या आवश्यकता है ? जिसे शंका हो वह हमारे आचार्यजी के पास आकर पूछले। इस पर श्री जैनेन्द्रकुमारजी ने बडी नाराजगी जाहिर की और कहा कि 'मेरे प्रेम में अभी खामी है, अतः मेरा सुझाव पसन्द नहीं किया जाता है। अच्छा है, अब इस बात को यहीं पर खत्म किया जाय। आप लोगों को जिस प्रकार जँचे, करें।' जब मानते

तेरापन्थियों पर बात टूटने की नौबत आ गई तब बडी मुश्किल से समिति के निर्माण पर वे राजी हुये।

समिति के निर्माण की बात स्वीकार करके भी अपनी तरफ का एक सदस्य उसमें शामिल करने की बात पर अड़ गये। श्री जैनेन्द्रकुमारजी तथा श्री राजेन्द्रकुमारजी की सम्मत्यनुसार स्थानकवासी भाई अपनी ओर से एक सदस्य समिति में रखने पर बड़ी खुशी से सहमत हो गये। किन्तु तेरापन्थी भाई इस समिति से अलग रहना चाहते थे। वे किसी प्रकार की पकड में न आना चाहते थे। श्री जैनेन्द्रकुमारजी तथा स्थानकवासी भाइयों का यह निश्चित मत था कि बिना एक तेरापन्थी सदस्य के समिति का निर्माण पूर्ण और सर्वमान्य न होगा। एक तेरापन्थी सदस्य के उसमें शामिल होने से समिति द्वारा किया हुआ कार्य तेरापन्थियों के लिये भी बन्धनकारी होगा तथा इसमें सबका प्रतिनिधित्व सिद्ध हो जायगा।

अन्त में रात के डेढ़ बजे, जबकि बात टूटने की अणी पर थी, हमारे तेरापन्थी भाई अपना एक सदस्य समिति में देने के लिए राजी हुये। इस प्रकार बड़े मन्थन के बाद इस समिति का निर्माण हुआ। समिति की कार्यसीमा इतनी ही बांधी गई कि दोनों आचार्यो को ठीक रूप में प्रश्न पहुँचा दिये जायं तथा प्रश्नों की मर्यादा दया-दान तक सीमित रखी जाय। समिति अपनी मोहर-छाप लगाकर दयांदान सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर प्रकाशित करदे ताकि जनता निर्णय कर सके कि किस आचार्य के क्या मन्तव्य हैं। समिति के पास जिधर से भी प्रश्न आवें, वे समिति के प्रश्न गिने जायेंगे और उनका उत्तर दोनों आचार्यों को देना होगा। इस प्रकार समिति का निर्माण हो गया और कार्य आगे चला। अन्त में हमारे तेरापन्थी भाइयों का भी प्रश्न पूछने का मन हो गया और उन्होंने छः प्रश्न पूछे।

अब हम थोड़ा इस बात पर विचार करें कि क्यों हमारे तेरापंथी भाई समिति के निर्माण पर और उसमें अपना सदस्य शामिल न करने की बात पर इतना अड़े रहे ? इस में क्या रहस्य था ? पाठको को यह ज्ञात हो चुका है कि स्थानकवासी भाई आचार्यश्री तुलसी के पास चर्चा का निमंत्रण देने गये थे। इस पर श्री जैनेन्द्रजी आदि बीच में पड़े और वे चर्चा या शास्त्रार्थ में होने वाली जय-पराजय सम्बन्धी कड़वास को मिटा कर आपस में प्रेमपूर्ण चर्चा कराना चाहते थे, उनका तो यह भी खयाल था कि दोनों आचार्यो का एकसाथ जाहिर व्याख्यान कराया जाय और जनता के समक्ष अपना-अपना मन्तव्य रखा जाय। श्री जैनेन्द्रजी का मनोगत भाव चर्चा की अपेक्षा दोनों आचार्यों को निकट लाने की तरफ अधिक था। हमारा खयाल है, उस वक्त तक श्री जैनेन्द्रजी और प. राजेन्द्रजी तेरापंथ की मान्यता से अवगत न थे। वे इतना मात्र जानते थे कि तेरापंथ, श्वेताम्बर समाज का एक फिरका है। छोटी-मोटी बातों में कुछ अंतर होगा। उन्हें तब यह ज्ञात न था कि तेरापंथ, जैन धर्म के प्राणभूत अहिंसा

सिद्धान्त में मौलिक मतभेद रखता है। 'साधु से इतर प्राणी, जो कि असंयती हैं, उनके रक्षण-पोषण या किसी प्रकार की भौतिक सहायता करने में सर्वथा पाप का बंध होता है'- तेरापंथ की इस विचारधारा से वे कतई अपरिचित थे। अतः उनका यह विचार ठीक था कि छोटी-मोटी बातों को गौण करके निकट आने से आपसी सम्बन्ध अच्छे बनेंगे। मगर आपसी अच्छे-बुरे सम्बन्ध का यह प्रसंग ही न था। आपस में जो कडवास मालूम देती है वह वैयक्तिक कारणों को लेकर नहीं है, किन्तु सिद्धान्तों को लेकर है। स्थानकवासी और तेरापंथी आपस में एक ही हैं। दोनों की एक ही जाति हैं और एक ही घर में कोई स्थानकवासी है तो कोई तेरापन्थी। स्त्री तेरापन्थी है तो पुरुष स्थानकवासी। एक भाई तेरापन्थी तो दूसरा स्थानकवासी। इस प्रकार न केवल एक गांव में दोनों रहते हैं, किन्तु घर में भी साथ रहते हैं। प्रश्न तो मान्यता का है। तेरापन्थी जीव-दया में पाप मानते हैं। मुख्य वस्तु तो यहां है। यही बात एक-दूसरे को अलग करती है। जब तक इसका निर्णय न हो, तब तक निकट जाने से भी क्या लाभ हो सकता है ? आपस में दिलों को तोड़ने वाली जो वस्तु मौजूद है उसे मिटाये बिना वास्तविक एकता कैसे हो सकती है ? हमारे तेरापन्थी भाई रक्षा और सहायता में पाप मानते हैं, यह निश्चित बात है।

इस कथन में जहां-जहां रक्षा या सहायता शब्द का प्रयोग किया गया है या किया जायगा वहां-वहां इनका अर्थ यह समझा जाय– 1 रक्षा का अर्थ है साधु से भिन्न प्राणी के प्राण बचा लेना, अच्छी निष्ठा से और अच्छे साधन से, वह भी निःस्वार्थ भावना से, किसी बदले की इच्छा के बिना केवल आत्मवत् सर्वभूतेषु के सिद्धान्त से अनुप्राणित होकर। और 2 सहायता का मतलब है साधु से भिन्न मनुष्य, पशु-पक्षी आदि प्राणियों की कष्टमय अवस्था में भोजन, वस्त्र अथवा अन्य कोई प्रकार की मदद करके उनका कष्ट मिटा देना। जैसे कोई भूखा मनुष्य है तो उसे रोटी देकर शांति पहुँचाना, प्यासे की पानी द्वारा प्यास बुझाना, मार्ग भूले हुए को मार्ग बताकर सहायता करना। संसार में प्राणी की अनेक प्रकार की आवश्यकताएं हैं, उनमें से भली कही जाने वाली आवश्यकताओं की पूर्ति में मददगार बनना। बुरी इच्छाओं की पूर्ति में मददगार बनने की बात में पुण्य होने का प्रश्न ही खडा नहीं होता। उनमें तो पाप ही होता है, यह सर्वमान्य बात है। किन्तु जीवित रहना, पेट-भर भोजना करना, बदन पर लज्जा ढांकने के लिए वस्त्र होना, बीमारी में दवा होना और अक्षरज्ञान करना आदि साधारण आवश्यकताएं हैं। इनमें आवश्यकता पडने पर मददगार होना, सहायता का अर्थ है। धर्मकार्य में सहायता देने के फल में कोई मतभेद नहीं है। मतभेद तो सांसारिक कार्यों में मदद करने के फल में है। इसी प्रकार असंयती के प्राणरक्षण के फल मे मतभेद है।

हमारे तेरापन्थी भाई यह कह दिया करते हैं कि हम भी रक्षा और सहायता में धर्म-पुण्य

हैं। किन्तु इन शब्दों का अर्थ उनकी मान्यतानुसार इतना ही है कि किसी को अपनी तरफ से न मारना ही रक्षा है। किसी के द्वारा मारे जाते हुए को बचा लेना या बचाने की भावना करना हिंसा है, पाप है। बस, अपना पाप टालना चाहिये। दूसरे को बचाना धर्म नहीं है, यह पाप है। इसी प्रकार अन्न-वस्त्र-मकान आदि की सहायता करना भी पाप है। सहायता का अर्थ इनके अनुसार धर्म-मार्ग में लगा देना, भूखा हो या प्यासा हो तो उसे संथारा करा देना धर्म है। अन्न-पानी देना धर्म नहीं। यह तो भोग में सहायता है, योग में नहीं। इस प्रकार की भौतिक सहायता का फल कर्ता को पाप-रूप ही लगता है।

यह तेरापंथ की मान्यता है। इस मान्यता को ये बड़ी चतुराई से जनता के सामने रखते हैं। इनके पूर्वाचार्य स्पष्ट शब्दो में जीवरक्षा और सहायता में पाप बता गये हैं, किन्तु आचार्यश्री तुलसी तथा इनके एक-दो विद्वान साधु बड़ी कुशलता से इस विषय को पब्लिक के समक्ष उपस्थित करते हैं। एकाएक अपनी मान्यता को अपरिचित व्यक्ति के सामने नहीं रखते, न ही पूछने पर स्पष्ट शब्दों मे उत्तर देते हैं। कइयों को कह देते हैं, हम कहाँ जीवरक्षा या सहायता के कार्य में मना करते हैं। कइयों को कहते हैं, हम तो इनमें धर्म मानते हैं। कइयों को कहते हैं, यह लौकिक फर्ज है, कर्तव्य है, अतः जैसे विवाह-शादी करते हो और उसमें पुण्य-पाप की बात नहीं पूछते उसी प्रकार इन लौकिक कार्यों का फल क्यों पूछते हो ? तुम जानो, तुम्हारा काम जाने। कइयों को कहते हैं कि सांसारिक कार्यों का फल पाप ही होता है आदि। विविध प्रकार के लोगों के समक्ष रखने के लिए विविध प्रकार के उत्तर निश्चित किये हुए हैं। जैनों के समक्ष कहेंगे, क्या साधु ये कार्य कर सकता है ? यदि नहीं, तो गृहस्थ द्वारा करने में पुण्य कैसे होगा ? इत्यादि अनेक प्रकार के तरीकों से अपनी गूढ मान्यता को छिपाने की इनकी चेष्टा देखकर स्थानकवासी भाई इस बात पर राजी हो गये कि चलो, चर्चा न सही, हमारे प्रश्नों का उत्तर ही सही, कुछ-न-कुछ बात इसमें से भी निकल ही आयेगी।

श्री जैनेन्द्रजी जैसे प्रामाणिक और प्रख्यात व्यक्ति की दरमियानगिरी में आचार्यश्री तुलसी की मान्यता जनता की नजरों में आ जाय, यह भी कम लाभ नहीं है। विविध तरीकों से दया-दान सम्बन्धी उत्तर दिये जाते हैं, कम-से-कम लिखित रूप में एक प्रकार का उत्तर तो प्राप्त हो जायगा। और वह भी इन्हीं के एक जिम्मेवार प्रतिनिधि की सही के साथ। तथा स्थानकवासियों पर जो यह आक्षेप किया जाता है कि ये ईर्ष्या या द्वेषवश तेरापंथियों पर यह लांछन लगाते हैं कि वे जीवरक्षा और दान, सहायता आदि में पाप मानते हैं, कम-से-कम उनके दिये उत्तरों से ही यह आक्षेप स्वयं खण्डित हो जायगा, इत्यादि लाभ समझकर स्थानकवासी भाई समिति के निर्माण और उसकी कार्य-मर्यादा से सहमत हो गये।

किन्तु तेरापंथी भाई अपनी मान्यताओं को जगत् के सामने रखने में हिचकते थे। वे नहीं

चाहते थे कि हमारी ये पाप-मान्यताएं दुनिया की नजरों में आएं। वे संसार को धोखे में रखकर ऊपर से नैतिक स्तर ऊँचा उठाने की बातें करके अपनी मान्यताओं को छिपाये रखना चाहते थे। इसी कारण समिति के निर्माण और उसमें अपना एक सदस्य सम्मिलित करने की बात पर घंटों अड़े रहे। किन्तु श्री जैनेन्द्रजी की अडिग वृत्ति के सामने झुककर मजबूरन इस समिति में सम्मिलित होना पडा। जो लोग प्रथम दिवस की श्री राजकृष्णजी के मकान पर होने वाली मीटिंग में उपस्थित थे, वे सब इस हकीकत को भली प्रकार जानते हैं। श्री जैनेन्द्रजी तथा पं. राजेन्द्रजी की सहायता से दया-दान सम्बन्धी प्रश्नों के उत्तर आचार्यश्री तुलसी से प्राप्त हो गये, इससे एक दृष्टि से प्रसन्नता है। किन्तु वास्तविक प्रसन्नता तब होती यदि ये उत्तर स्पष्ट शब्दों में मिलते। ये उत्तर पहेलियों मे हैं, जिन्हे साधारण जनता नहीं समझ सकती।

स्थानकवासियों के द्वारा किये गये इतने प्रयत्नों के बावजूद भी आचार्यश्री तुलसी भावो को छिपाने की अपनी कला में सफल रहे। उत्तरों को पढकर स्थानकवासी बडे दंग रह गये थे कि परोपकार के इन कामो में सौ परसेण्ट पाप मानते हुए भी आचार्यश्री तुलसी उत्तर देने की कला में बड़े चतुर निकले। किस कौशल से, किस प्रकार की भाषा में, भावों को छिपाने में सफलता प्राप्त की है, यह सचमुच महान् आश्चर्य की बात है। उत्तरों के पूर्व एक छोटी-सी भूमिका लिखकर सफाई पेश की गई है। यह सफाई ही यह बताती है कि दाल में कुछ काला है। सफाई की क्या आवश्यकता थी ? यदि प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट होता तो पाप या पुण्य शब्द के द्वारा उत्तर मिलता। किन्तु पाप शब्द में उत्तर देना इष्ट न था, क्योकि लोक-भय सिर पर मंडरा रहा था और पुण्य शब्द मे फल मंजूर न था क्योकि पाप-फल होने की धारणा है। आचार्यश्री तुलसी के प्रत्येक उत्तर की इस पुस्तिका में समीक्षा की गई है। जिसे पढकर पाठक सत्यासत्य का निर्णय कर सकते हैं।

अब थोड़ा आचार्यश्री तुलसी की मान्यताओं का आभास कराया जाता है जिनकी रोशनी में उनके उत्तर पढ़ने से वास्तविकता तक पहुँचा जा सकेगा। उनके मान्य ग्रंथों के उद्धरण से उनकी मान्यताएं बताई जाती हैं जिससे कथन की प्रामाणिकता मे किसी प्रकार की शंका की गुंजायश न रहेगी।

चोरी, जारी, ठगाई, मदिरापान, वेश्यागमन, परपीडन, मांस-भक्षण, बेईमानी आदि बुरे कार्य माने जाते हैं और उक्त कार्य करने वाले को पापरूप फल होना माना जाता है। इस बात मे किसी का मतभेद नहीं है। चाहे धार्मिक दृष्टि से देखा जाय, चाहे नैतिक दृष्टि से, इन कामों को बुरा माना जाता है। धार्मिक दृष्टि से ऐसे कार्यो का कर्ता अपना परलोक भी बिगाड़ता है और इहलोक में भी निन्दा का पात्र होता है और दु:ख उठाता है। किन्तु जो लोग

धर्म या परलोक को नहीं मानते, वे उक्त कामों को लोक-व्यवस्था की दृष्टि से बुरा कहते हैं और उनका करना निषिद्ध ठहराते हैं। इसके विपरीत ईमानदारी से आजीविका चलाना, स्वस्त्री में संतोष धारण करना, ठगाई न करना, मदिरापान के बजाय दुग्धपान करना, परप्राणी को साता उपजाना, मांस-भक्षण के स्थान में निर्दोष अन्न ग्रहण करना, मार्ग भूले हुए को मार्ग बताना, माता-पिता की सेवा-शुश्रूषा और विनय करना, गृहस्थ अतिथि का सत्कार करना, भूखे को भोजन देना और प्यासे को पानी पिलाना, अतिथि का सत्कार, शरणार्थी की मदद करना, बीमार को दवा देना और अनपढ़ को अक्षरज्ञान कराना आदि भले कार्य माने जाते हैं। और इनका फल पुण्यरूप माना जाता है। इस लोक और परलोक में इनका फल सुखरूप होता है। यह सर्ववादीसम्मत सिद्धान्त है। किन्तु हमारे तेरापंथी भाइयों की तथा उनके गुरु आचार्यश्री तुलसी की मान्यता जगद्-विलक्षण है। पाठकों के आश्चर्य की सीमा न रहेगी जब वे यह जानेंगे कि उक्त दोनों प्रकार के भले-बुरे कार्यों का फल इनकी फिलासफी में एक ही प्रकार का है। चोरी करो तब भी पाप और ईमानदारी से पैसा पैदा करो तब भी पाप। परस्त्री-गमन करो तब भी पाप और स्वस्त्री-संतोष धारण करो तब भी पाप। मांस-भक्षण, मदिरापान में भी पाप और अन्न-ग्रहण और दुग्धपान में भी पाप। माता-पिता के पैर दबाने में भी पाप और उनको गालियाँ सुनाने में भी पाप। मतलब कि संसार के हर कार्य में पाप ही पाप है। सांसारिक किसी भी कार्य में पुण्य का अंश भी नहीं है। ऊपर जो भले कार्य गिनाये गये हैं उनका फल भी सोलह आना पाप है और जो बुरे कार्य गिनाये गये हैं उनका फल भी सोलह आना पाप। 'अन्धेर नगरी अनबूझ राजा, टके सेर भाजी टके सेर खाजा' वाली कहावत यहाँ सोलह आना लागू होती है। तेरापंथियों की यह निश्चित मान्यता है कि पंचमहाव्रतधारी साधु ही सुपात्र है। साधु के सिवा अन्य सब मनुष्य और प्राणी कुपात्र हैं। उनकी रक्षा और सहायता करना गोया कुपात्रपन में वृद्धि या सहायता करना है। संसार बढाना है। निवृत्ति में धर्म है। सांसारिक प्रवृत्ति में एकान्त (सर्वथा) पाप है। निष्काम बुद्धि से सांसारिक प्रवृत्ति में भी पाप है। जैसे परोपकार से प्रेरित होकर औषधालय, अनाथालय, अपंगशाला, पाठशाला आदि खुलवाना, माता-पिता की अन्न, वस्त्र देकर या हाथ-पैर दबाकर सेवा करना इत्यादि। इनकी मान्यता का स्वारस्य यह है कि लोक-यात्रा में सहायता करना सर्वथा पाप है, पुण्य का अंश भी नहीं। इन भले कार्यों का फल सौ परसेण्ट पापरूप है। एक परसेण्ट भी पुण्यफल नहीं होता। संसार के कामों में धर्म या पुण्य बताने वाले मूढ और गंवार हैं। ऐसी इनकी स्पष्ट मान्यता है।

बलात्कार से या एकेन्द्री जीव को मारकर पंचेन्द्रिय का रक्षण करने की बात तो केवल लोगों को भडकाने के लिए कहा करते हैं। मारने वाले को समझा-बुझाकर या शुद्ध साधन से

किसी प्राणी को बचा लेने में भी ये पाप मानते हैं। जबकि असंयती (साधु के सिवाय) का रक्षण करने में ये सर्वथा पाप मानते हैं तब बलात्कार या रक्षण के तरीके में किंचित् आरम्भ की आड लेकर अपना बचाव करने की व्यर्थ चेष्टा क्यों करते हैं ? केवल लोकभय से भयभीत होकर कहते हैं। क्यों जी, बलात्कार करके या एकेन्द्रिय जीव की हिंसा करके पंचेन्द्रिय जीवों का रक्षण करना कहाँ तक न्याय है ? जब उन से कहा जाता है कि अच्छा, बलात्कार न किया गया और समझा-बुझा कर किसी मनुष्य या गाय को बचा लिया गया तब क्या फल हुआ ? अथवा शुद्ध अहिंसात्मक साधन से किसी की प्राण-रक्षा और अन्न-वस्त्र आदि द्वारा सहायता की गई तब क्या फल हुआ ? तब कह देते हैं कि असंयती का रक्षण करना मात्र पाप है। फिर बलात्कार या एकेन्द्रिय की बात तो केवल चालाकीमात्र ही रही न ? इसी प्रकार यह भी कहते हैं कि हिंसक को उपदेश देकर पाप टालना चाहिये। यदि हिंसा करने वाला मनुष्य हुआ तब तो उसे समझा-बुझाकर हिसा से विरत कर दिया जा सकता है। किन्तु मोटर की झपट में आते बालक को छुडाने में या नदी के पूर में बहते हुए बालक की रक्षा तो हाथों द्वारा ही की जायगी। क्या यह बलात्कार है ? और क्या यह शक्य है कि मोटर और पूर को उपेदश दिया जाय कि बालक को मत मारो ? मगर इन सब थोथी बातों के पीछे हमारे तेरापन्थी भाइयों की यह मान्यता ही पोषण प्राप्त करती है कि असंयती जीव के जीवन की वांछा करना पाप है। हिसक का पाप छुड़ाने में ये धर्म मानते हैं, मगर हिसक के द्वारा मारे जाते हुए प्राणी की रक्षा करने की भावना में और कार्य में भी ये पाप मानते हैं।

दान के विषय मे भी यही बात है। साधु को अन्न-वस्त्र आदि देने में ये धर्म मानते हैं। और साधु के सिवाय अन्य सबको अन्न-वस्त्र-मकान आदि देने मे या इनके द्वारा सहायता करने में पाप मानते हैं। माता-पिता भी साधु न होने से कुपात्र हैं। और कुपात्र होने से अन्न-वस्त्रादि द्वारा या अन्य साधनों से उनकी सेवा-शुश्रूषा करने मे सर्वथा पाप मानते हैं।

दया और दान के विषय में ऐसी स्पष्ट और निश्चित मान्यता होने पर भी हमारे तेरापन्थी भाई और स्वयं आचार्यश्री तुलसी यह कहते हुये नहीं सकुचाते कि ईर्ष्या और द्वेष के कारण स्थानकवासी हम पर यह दोषारोपण करते हैं कि तेरापन्थी जीवरक्षा और सहायता में पाप मानते हैं। पाप स्वयं मानते हैं और इनके पुरातन और आधुनिक ग्रन्थों में पापफल होने की हजारों बातें अंकित हैं। यहां तक कि मिथ्या कल्पना इनको करनी पडी है कि पानी छानकर पीया जाता है, वह जीवरक्षा के लिये नहीं, किन्तु लिया हुआ व्रत पालने की दृष्टि से। इसी प्रकार सामायिक मे श्रावक पूंजनी रखता है वह जीवरक्षार्थ नहीं, किन्तु खाज खुजलाने के लिए। अहो ! इनको रक्षा से कितना द्वेष है ! फिर भी जब आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज या अन्य कोई जानकार व्यक्ति इनकी पोल खोलता है तब बडे चिढते

आरोप करते हैं। अभी दिल्ली में भी ईर्ष्या-द्वेष का दूसरों पर आरोप करके अथवा इस एकता के जमाने में ऐसी बातें क्यों की जाती हैं। आदि बड़ी भली बातें बनाकरके आचार्यश्री तुलसी अपना बचाव कर गये। बचाव का एक तरीका यह भी अख्तियार किया हुआ है कि विरोधी लोग हमारा विरोध करने के लिए हमारे नाम पर झूठी मान्यताएं लादते हैं आदि।

अब पाठक इनके ग्रन्थों के उद्धरण पढकर स्वयं इस बात का निर्णय करें कि इनको बदनाम इनके ग्रन्थ कर रहे हैं या कोई अन्य ? तथा यह भी निर्णय करलें कि आचार्यश्री तुलसी ने स्थानकवासी समाज के प्रश्नों का उत्तर देने में अपनी मनोगत मान्यताओं को किस चतुराई से छिपाने की कोशिश की है।

श्वे. तेरापंथ समाज में इस समय मुनिश्री नथमलजी और नगराजजी विद्वान् और दर्शनिक गिने जाते हैं। उक्त दोनों मुनियों ने तेरापंथ सिद्धांत पर प्रकाश डालने के लिये कई पुस्तिकाएं लिखी हैं। कुछ अरसे पहले तक तेरापंथी साधु इस प्रवृत्ति में छूट से भाग न लेते थे। किन्तु अब समयानुसार इतना परिवर्तन किया है।

आचार्यश्री तुलसी के चरणकमल चंचरीक टमकोर वाले मुनिश्री नथमलजी लिखित अहिंसा (जैन सिद्धांतानुमोदित विवेचन) नामक पुस्तिका में अहिंसा का स्वरूप बताते हुए कहा है-

"अहिंसा हिंसा से विरत होने वाले की अपनी आत्मा के हित के लिए है, न कि दूसरे जीवों की रक्षा के लिए। उससे दूसरे जीवों की रक्षा अवश्य होती है, परन्तु वह रक्षा अहिंसा नहीं है।" (पृ. 1)

"अहिंसा का उपदेश हिंसक को हिंसा के पाप से निवृत्त करने के लिए दिया जाता है, जीवों को बचाने के अभिप्राय से नहीं।" (पृ. 1)

"केवल जीव का बचना ही अहिंसा नहीं; चूंकि बलात्कार से प्रतिहिंसा जागरूक हो जाती है और परिग्रह से हिंसा का अविनाभाव सम्बन्ध है।" (पृ. 1)

"अहिंसा और दया एक ही है क्योंकि अभयदान ही अहिंसा है और वही दया है।" (पृ. 2)

"बडे जीवों के लिए छोटे जीवों का नाश करना दया नहीं।" (पृ. 2)

"एक बार फिर उसी बात को दोहराने की आवश्यकता है कि हिंसा तथा अहिंसा अपनी आत्मा की हैं, पर की नहीं। क्योंकि किसी को कष्ट देने से अपनी आत्मा का ही अवःपतन होता है, उसका नहीं; और कष्ट न देने से अपनी आत्मा का ही उत्थान एवं कल्याण होता है, किसी दूसरे का नहीं। हाँ, पर-दया भी है, किन्तु है वही, जिसमें दूसरे को हिंसा के पाप से बचाया जाता है। किसी ने हिंसा-प्रवृत्त मनुष्य को उपदेश देकर हिंसा से निवृत्त किया,

उसकी आत्मा हिंसा के पाप से बच गई, वह पर-दया है, किन्तु मरता हुआ जीव बच गया, वह पर-दया नहीं।" (पृ. 6)

"यद्यपि यह भी उल्लिखित है 'सब जीव जीने की इच्छा करते है, मरने के इच्छुक नहीं। इसलिए घोर प्राणीवध को भिक्षु वरजते हैं। परन्तु उक्त वाक्य से यह नहीं पाया जाता कि जीव मरने के इच्छुक नहीं। अतः हिंसा का परित्याग करना चाहिये। किन्तु यह तो हिंसा छुडाने का सरल तरीका है। इस उपदेश से हिंसा से घृणा और हृदय में कोमल भावों का संचार कराया जाता है।" (पृ. 7)

"बलात्कार में अहिंसा का अभाव है। अहिंसा में बलात्कार को स्थान नहीं है। बलात्कार केवल हिंसा का प्रतीक है। बलात्कार और अहिंसा का जातीय विरोध है। जैसे कोई पुरुष किसी निर्बल को मारने का प्रयत्न कर रहा है। उसी समय कोई निष्पक्ष दयालु पुरुष उधर चला आया। ऑखों के सामने होने वाली दुर्घटना को देखकर उसने अपने शक्ति-सम्पन्न प्रभुत्व से उसे रोक दिया और उस निर्बल की जान बचा दी। विचारकों का कर्तव्य है कि इस दिशा की ओर अपनी विचारधारा को दौड़कर सत्य की खोज करें कि उसके प्राण बच गये वह अहिंसा है या हिंसा की ही प्रबलता ? यदि इसे अहिंसा मानली जाय तो फिर अहिंसा का आत्मा से कोई सम्बन्ध ही नहीं रह जाता। मारने वाले की भावना चाहे द्वेष के समुद्र मे गोता लगाती ही क्यों न रहे, बस, केवल छूट जाना ही अहिंसा है। यह बात संगत नहीं है। अतः वह अहिंसा नहीं, हिंसा ही है।" (पृ. 8-9)

"हां, यदि इस प्रकार के कार्य को अहिसा नहीं कहकर दुनिया का व्यवहार या दुनियावादी कर्तव्य कहें तो हमें कोई ऐतराज नहीं, किन्तु उसको अहिंसा कहना सर्वथा असंगत एवं अक्षम्य है।" (पृ. 10)

"यह प्रश्न भी निरर्थक होगा कि यदि इसे अहिंसा नहीं मान ली जावेगी तो फिर सहयोग की भावना ही नहीं रह सकती। ध्यान रखो, सहयोग को कायम रखने के लिए अहिंसा का स्वरूप नहीं बदला जा सकता, अन्यथा असत्य से छुटकारा हो नहीं सकता।" (पृ. 10)

"पर-दया मे दूसरे की आत्मा को पाप से बचाने के प्रसंग में उपदेश ही एकमात्र साधन है। इसके सिवाय और कोई दूसरा साधन नहीं है।" (पृ. 19)

"अहिसा का दूसरा साधन मौन है।" (पृ. 21)

"लोक-दृष्टि जिसे दया कहती है, तत्त्व दृष्टि उसे हिंसा भी कहती है– जैसे किसी भूखे मरते हुए को खाने के लिए कुछ दिया। लोक-दृष्टि कहती है– उसकी आत्मा को शान्ति मिली, अतः यह दया है। तत्त्व दृष्टि कहती है– जिसको खाद्य पदार्थ दिया गया वह पूर्ण अहिंसक (नवकोटि से अहिंसा का पालन करने वाला) नहीं, बल्कि हिंसक है और छः प्रकार

हैं और ईर्ष्या-द्वेष का जीवों का शस्त्र है। हिंसक का पोषण करना अहिंसा नहीं हो सकती। प्रत्युत छ.-काय के शस्त्र को तीक्षण करना है। सवाल उठता है, वर्तमान में हिंसा नहीं करता है तो फिर वह हिंसक क्यों ? इसका उत्तर स्पष्ट ही है कि जब तक तीन करण एवं तीन योग से हिंसा का त्याग नहीं, तब तक वह अहिंसक नहीं बन सकता।" (पृ. 23)

"कहा जा सकता है, तत्त्व-दृष्टि का उक्त निर्णय साधारण जनता की दृष्टि में कर्णकटु एवं अप्रिय प्रतीत होता है, तो फिर इसके प्रचार से क्या लाभ ? ठीक, किन्तु तत्त्व-दृष्टि पदार्थों का विश्लेषण कर उनके सत्य-स्वरूप को सामने रख देती है। वह लोकप्रियता के लिए उसके स्वरूप का विपर्यास नहीं कर सकती। तो फिर सत्य-स्वरूप का प्रचार दोषयुक्त क्यों ? 'नहि भेषजमातुरेच्छानुकूलम्' - दवा रोगी की इच्छानुकूल नहीं होती, कटु होती है। किन्तु उसमें रोग मिटाने की क्षमता है तो क्या उसका प्रचार करना अन्याय है ? इससे परोपकार की भावना नष्ट हो जाती है, इत्यादि शंकाओं का निराकरण सहयोग भावना की भांति स्वतः कर लेना चाहिये। दीन एवं दुःखी के दुःख को दूर करने में गृहस्थ अपने गृहस्थपन का कर्तव्य समझता है, दया-धर्म नहीं।" (पृ. 23)

"भोजन के द्वारा किसी को सन्तुष्ट किया गया तो उसे अहिंसा-तत्त्ववेदी दया नहीं कह सकता। *वह भलीभाँति जानता है कि हिंसक शरीर की अशक्तता को दूर करने में अहिंसा* नहीं और जहाँ अहिंसा नहीं, वरन् हिंसा का अनुमोदन है, वहाँ दया कैसे हो सकती है ?" (पृ. 25)

"असंजती जीव को जीवणो वंछे ते राग, मर्यो वंछे ते द्वेष, तरयो वंछे ते श्री वीतराग देव को धर्म" (भिक्षुस्वामी) इस त्रिपदी में राग-द्वेष के स्वरूप का निरूपण है। असंजती वही है जो कि पूर्ण अहिंसक नहीं। उसके जीने की कामना करना और तत्सम्बन्धी खाद्य, पेय, परिधेय आदि जुटाना राग है।" (पृ. 27)

"द्वेष की भांति राग भी हिंसा है।" "स्वामीजी का अभिप्राय है कि द्वेष से भी राग अधिक हानिकार है।" (पृ. 27-28)

"चोरी करने वाला चोर है– वैसे चोरी कराने वाला भी चोर है। चूंकि उसके द्वारा उसे चोरी का प्रोत्साहन एवं अनुमोदन मिलता है। अपनी भांति अपने सजातीय हिंसक अन्य शरीरों का भी भरण-पोषण करना हिंसा है।" (पृ. 32)

"कतिपय लोगों का मन्तव्य है कि बड़े जीवों के लिए पृथ्वी, पानी आदि के जीवों का वध होने पर भी वह दया है, जैसे कोई आदमी प्यास से व्याकुल है उसे पानी पिलाने में। परन्तु कुशाग्रता से विचार करने पर ये भ्रममूलक विचार सत्य साबित नहीं हो सकते।" (पृ. 83)

इस 'अहिंसा' नामक पुस्तिका के मुखपृष्ठ पर 'जैन सिद्धान्तानुमोदित विवेचन' वाक्य भी लिखा है। जैन होने के नाते इस पुस्तिका मे लिखे विचार पढकर किस विचारवान् जैनी का दिल दुःख से न भर आयेगा। लेखक ने जैन धर्म के विरुद्ध विचारों को जैन सिद्धान्तानुमोदित वता कर अपने नाम के साथ-साथ जैन धर्म को भी वदनाम किया है। ये विचार जैन धर्म के नहीं हैं। जैन धर्म रक्षा, दया, सहयोग और परोपकार में धर्म-पुण्य मानता है। अपनी मनगढ़न्त और भ्रामक धारणाओं को जैन धर्म के नाम पर लादना बड़ा अन्याय है। इन विचारों की क्या आलोचना की जाय, ये स्वयं अपनी आलोचना हैं। लेखक ने अपने वुद्धिचातुर्य का उपयोग दया और परोपकार की भावना को नष्ट करने के लिए किस खूबी से किया है। इस प्रकार की लोकहितघातक विचारधारा से जैन धर्म लज्जित होता है, मानवता लज्जित होती है और जगत् में धर्म शब्द बदनाम होता है कि उसके नाम से कैसी-कैसी विचारधाराएं प्रचलित हैं !

ऊपर के उद्धरण पढ़कर पाठक अच्छी तरह समझ चुके होंगे के साधु के सिवा सव असंयती हैं, छः-काय के शस्त्र हैं, हिंसक हैं, अतः उनका रक्षण-पोषण आदि पाप है। जीव के बच जाने पर इनको कितना रोष है कि वलात्कार और छोटे जीवों की घात से वडे जीवों की बात वता कर मूल प्रश्न को भुलावे में डालने की चेष्टा की गई है। जवकि स्पष्ट लिख रहे हैं और मान रहे हैं कि जीव वचाना दया नहीं है। तव वलात्कार आदि का नाम लेकर वस्तुतत्त्व को उलझन में क्यों डाला जाता है ? बिना वलात्कार और विना छोटे जीवो की हिसा के भी जीवरक्षा में पाप मानते हैं, क्योकि असंयती जीव हिंसक हैं और उनकी रक्षा या सहायता करना पाप है; तव फिर वलात्कार आदि का नाम लेकर जनता में अपनी सफाई क्यों पेश करते हैं ? यदि समझा-बुझाकर या शुद्ध अहिंसक साधन से असंयती का रक्षण-पोषण और सहाय्य आदि को धर्म-पुण्य मानते होते तव तो बलात्कार का नाम लेना ठीक था। केवल जनता को गलत मार्ग में घसीटने के लिए वुद्धिरूपी शस्त्र का घातक उपयोग किया गया है। लोहे के शस्त्र से भी ये घातक सिद्धान्त बड़े विनाशकारी हैं।

जैन धर्म अन्न, वस्त्र और परिधेय आदि द्वारा सहायता करने में और मरते जीव की रक्षा में धर्म-पुण्य मानता है। तेरापंथी रक्षा और परोपकार को दुनियावी कर्तव्य मानते हैं और दुनियावी कर्तव्य के पालन का फल सर्वथा पापवंध होना मानते हैं।

माता-पिता, अध्यापक, देश-नेता, श्रावक, अणुव्रती संघ का सदस्य आदि सव असंयती हैं, अतः हिंसक हैं, छःकाय के शस्त्र हैं। भला ऐसे हिंसकों की शुश्रूषा और सहायता करना तेरापंथ के मत में धर्म कैसे हो सकता है ? इसी प्रकार गायो से भरे वाड़े में आग लगने पर द्वार खोल कर गायों की रक्षा करने में न तो किसी पर वलात्कार होता है और न छोटे जीवों का घात ही होता है, फिर भी चूंकि गायें असंयती हैं– साधु नहीं हैं अतः उनको वचाना सर्वथा

पाप है। मोटर की झपट या अन्य किसी प्राकृतिक कारण से मौत के मुख में फंसे हुए को शुद्ध साधन से रक्षा करने में भी पाप मानने वाले बलात्कार शब्द को क्यों लज्जित करते हैं ? बलात्कार के बिना रक्षा करने में भी पाप मानते हैं, फिर बलात्कार की आड़ में अपने पाप को क्यों छिपाया जाता है ?

इस प्रकार के घातक और अमानवीय विचारों को यदि ये लोग अपने तक ही सीमित रखते तब भी ठीक था। किन्तु बड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि "हमारे ये विचार कर्णकटु और अप्रिय प्रतीत होते हैं फिर भी इनका प्रचार दोषयुक्त क्यों ? दवा रोगी की इच्छानुकूल नहीं होती, तो क्या उसका प्रचार करना अन्याय है ?" 'इससे परोपकार की भावना नष्ट हो जाती है तो क्या किया जाय। हम अपनी व्याख्या नहीं बदल सकते।'

इन मिथ्या विचारों का जैन धर्म के नाम के साथ प्रचार किया जा रहा है। प्रचार भी बड़े व्यवस्थित ढंग से हो रहा है। कारण कि लक्ष्मी की कुछ कृपा इन भाइयों पर अधिक है। लक्ष्मी इन से बड़ी प्रसन्न है क्योंकि दूसरे की भलाई के लिए एक पाई खर्च करना भी वे लोग पाप मानते हैं। केवल अपने पंथ का प्रचार करने में लक्ष्मी का उपयोग जरूर करते हैं। इस उपयोग का फल पाप मानते हैं या क्या ? ज्ञानी जानें ! दीन-दुखियों के लिए लक्ष्मी का उपयोग करने में तो सर्वथा पाप मानते हैं, यह ऊपर के उद्धरणों से स्पष्ट है।

जबकि तेरापंथी अपने मिथ्या सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं तब आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज या अन्य कोई भावनाशील व्यक्ति इनकी कुधारणाओं से सावधान रहने के लिए जनता को आगाह करते हैं, तब क्या बुरा करते हैं ? हमारी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की विचारधारा के प्रचार से वे लोग किसका भला करना चाहते हैं ? हमारे खयाल से इस विचारधारा के प्रचार से देश का बड़ा अहित हो रहा है। भारत के करीब-करीब सब प्रांतों में इस विचारधारा का प्रचार किया जा रहा है कि संसार के सब कामों में पाप है। राजनीति, समाजनीति, लोक-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था आदि धर्म से सर्वथा भिन्न हैं और इन का पालन-पोषण करने वाला पाप करता है, हिंसा करता है आदि। समिति के प्रश्नों का उत्तर आचार्यश्री तुलसी ने व्यवहार की कोटि में पुण्य होना मान कर दिया है। किन्तु इस पुण्य का अर्थ पाप ही है। जिसे इन्होंने पुण्य कहा है उसका फल पाप प्रकृति के रूप में ही बंधना मानते हैं। छलपूर्वक पुण्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

जैन धर्म का दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। अगर किसी को मारना या सताना पाप है तो बचाना और सुख पहुँचाना पुण्य है, यह सामान्य नियम स्थूलपुरुष भी समझता है। यह अनुभवसम्मत है, इसमें शास्त्रीय प्रमाणों की आवश्यकता नहीं। यदि किसी को सताने से हमारी आत्मा मलिन होती है तो किसी को सुख पहुँचाने से उज्ज्वल होती है, यह सर्वसम्मत

है। दूसरो को सुख पहुँचाने से आत्मा का पतन होने की बात कहना शास्त्र व अनुभव-विरुद्ध है। हाँ, यदि सुख पहुँचाने में हमारा कोई स्वार्थ निहित हो या अशुद्ध साधनों से सुख पहुँचाया जाय तब तो आत्मपतन की बात समझ में आ सकती है। किन्तु.क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित भावना से, शुद्ध साधन से किसी प्राणी की प्राणरक्षा करना या भौतिक साधन से उसकी सहायता करना पाप-कार्य कैसे है ? और ऐसे काम से आत्मपतन कैसे होता है ? आत्मोत्थान के कार्यों को आत्मपतन के कार्य बताना विचित्र दार्शनिको का ही काम हो सकता है।

हमारे तेरापंथी भाइयो और 'अहिंसा' के लेखक मुनिश्री नथमलजी की यह धारणा है कि किसी जीव को बचाने की या उसकी मदद करने की मन में भावना लाना, राग-भावना है। जब किसी जीव के प्रति हमारे मन में राग होता है तभी उसकी रक्षा या सहायता करने की भावना उत्पन्न होती है। जिस प्रकार द्वेष बंधन का कारण है उसी प्रकार राग भी। जैसा कि ऊपर के उदाहरण में बताया गया है, राग रेशम की गाँठ है। इस से बचना बड़ा कठिन है। प्राण-रक्षा करना लोक-दृष्टि है। जीव के संसार-समुद्र से तैरने की कामना करना ही शुद्ध व तात्त्विक दृष्टि है।

बस, हमारे भाइयों की विचार-शक्ति इसी बात को समझने में कुण्ठित हो गई है। भीखणजी महाराज ने शुरू में इस वस्तु को समझने मे महान् भूल की, अपने गुरु आचार्यश्री रघुनाथजी महाराज के बहुत समझाने पर भी न माने और गुरु का अविनय और आज्ञा भंग करके इसी बिना पर अलग हुए। उनको यह मनोभ्रम हो गया था कि 'हिंसक को हिंसा से छुड़ाना तो धर्म है क्योंकि इससे वह हिंसा से बच जाता है। किन्तु हिंस्यमान (जिसकी हिंसा की जा रही है) को बचाने की कामना करना धर्म नहीं, पाप है। कारण कि जिसको बचाया जा रहा है वह अहिंसक अर्थात् साधु नहीं है। दूसरी बात बचाने या सहायता करने से उसके प्रति रागभाव आ जाता है। रागभाव पाप है।' इसी मनोभ्रम के आधार पर भीखणजी महाराज अपने गुरु से पृथक् हुए और अलग सम्प्रदाय कायम करने में जुट गये। धर्म के नाम पर भारतीय लोगों को गुमराह करना साधारण काम है। कैसी भी विचारधारा हो, धर्म के नाम से उसका प्रचार चल निकलता है। भोले-भाले, अपठित और व्यापार में निरत रहने वाले अनेक ग्रामीण लोग इनके बहकावे में फंस ही गये। जैसा कि सन्त भीखणजी के जीवन चरित मे उल्लिखित है, 'वह अंधकार युग था। लोगो को वास्तविक धर्म-प्रकाश का बोध न था' अतः इनके चंगुल में फंस गये।

अपने शरीर की विकार-पुष्टि के लिए रक्षण-पोषण और सार-संभाल करना रागभाव है और पाप भी। इसी प्रकार अपने शरीर के भावी सुख की कामना से कुटुम्बियों का पालन-पोषण और संरक्षण राग हो सकता है। किन्तु निःस्वार्थ भाव से, आत्मोपम्य के सिद्धान्त

पाप है। मोटर की झपट या अन्य किसी प्राकृतिक कारण से मौत के मुख में फंसे हुए की शुद्ध साधन से रक्षा करने में भी पाप मानने वाले बलात्कार शब्द को क्यों लज्जित करते हैं ? बलात्कार के विना रक्षा करने में भी पाप मानते हैं, फिर बलात्कार की आड़ में अपने पाप को क्यों छिपाया जाता है ?

इस प्रकार के घातक और अमानवीय विचारों को यदि ये लोग अपने तक ही सीमित रखते तब भी ठीक था। किन्तु वड़े अभिमान के साथ कहते हैं कि "हमारे ये विचार कर्णकटु और अप्रिय प्रतीत होते हैं फिर भी इनका प्रचार दोषयुक्त क्यों ? दवा रोगी की इच्छानुकूल नहीं होती, तो क्या उसका प्रचार करना अन्याय है ?" 'इससे परोपकार की भावना नष्ट हो जाती है तो क्या किया जाय। हम अपनी व्याख्या नहीं वदल सकते।'

इन मिथ्या विचारों का जैन धर्म के नाम के साथ प्रचार किया जा रहा है। प्रचार भी बड़े व्यवस्थित ढंग से हो रहा है। कारण कि लक्ष्मी की कुछ कृपा इन भाइयो पर अधिक है। लक्ष्मी इन से वड़ी प्रसन्न हैं क्योंकि दूसरे की भलाई के लिए एक पाई खर्च करना भी ये लोग पाप मानते हैं। केवल अपने पंथ का प्रचार करने में लक्ष्मी का उपयोग जरूर करते हैं। इस उपयोग का फल पाप मानते हैं या क्या ? ज्ञानी जानें ! दीन-दुखियों के लिए लक्ष्मी का उपयोग करने में तो सर्वथा पाप मानते हैं, यह ऊपर के उद्धरणों से सपष्ट है।

जवकि तेरापंथी अपने मिथ्या सिद्धान्तों का प्रचार कर रहे हैं तव आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज या अन्य कोई भावनाशील व्यक्ति इनकी कुधारणाओं से सावधान रहने के लिए जनता को आगाह करते हैं, तब क्या बुरा करते हैं ? हमारी समझ में नहीं आता कि इस प्रकार की विचारधारा के प्रचार से ये लोग किसका भला करना चाहते हैं ? हमारे खयाल से इस विचारधारा के प्रचार से देश का वड़ा अहित हो रहा है। भारत के करीब-करीब सब प्रांतों मे इस विचारधारा का प्रचार किया जा रहा है कि संसार के सब कामों में पाप है। राजनीति, समाजनीति, लोक-व्यवस्था, समाज-व्यवस्था आदि धर्म से सर्वथा भिन्न हैं और इन का पालन-पोषण करने वाला पाप करता है, हिंसा करता है आदि। समिति के प्रश्नों का उत्तर आचार्यश्री तुलसी ने व्यवहार की कोटि में पुण्य होना मान कर दिया है। किन्तु इस पुण्य का अर्थ पाप ही है। जिसे इन्होंने पुण्य कहा है उसका फल पाप प्रकृति के रूप में ही बंधना मानते हैं। छलपूर्वक पुण्य शब्द का प्रयोग किया गया है।

जैन धर्म का दृष्टिकोण इससे सर्वथा भिन्न है। अगर किसी को मारना या सताना पाप है तो बचाना और सुख पहुँचाना पुण्य है, यह सामान्य नियम रथ्यापुरुष भी समझता है। यह *अनुभवसम्मत है, इसमें शास्त्रीय प्रमाणों की आवश्यकता नहीं।* यदि किसी को सताने से हमारी आत्मा मलिन होती है तो किसी को सुख पहुँचाने से उज्ज्वल होती है, यह सर्वसम्मत

है। दूसरों को सुख पहुँचाने से आत्मा का पतन होने की बात कहना शास्त्र व अनुभव-विरुद्ध है। हॉ, यदि सुख पहुँचाने में हमारा कोई स्वार्थ निहित हो या अशुद्ध साधनो से सुख पहुँचाया जाय तब तो आत्मपतन की बात समझ में आ सकती है। किन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ से रहित भावना से, शुद्ध साधन से किसी प्राणी की प्राणरक्षा करना या भौतिक साधन से उसकी सहायता करना पाप-कार्य कैसे है ? और ऐसे काम से आत्मपतन कैसे होता है ? आत्मोत्थान के कार्यों को आत्मपतन के कार्य बताना विचित्र दार्शनिकों का ही काम हो सकता है।

हमारे तेरापंथी भाइयों और 'अहिंसा' के लेखक मुनिश्री नथमलजी की यह धारणा है कि 'किसी जीव को बचाने की या उसकी मदद करने की मन मे भावना लाना, राग-भावना है। जब किसी जीव के प्रति हमारे मन में राग होता है तभी उसकी रक्षा या सहायता करने की भावना उत्पन्न होती है। जिस प्रकार द्वेष बंधन का कारण है उसी प्रकार राग भी। जैसा कि ऊपर के उदाहरण में बताया गया है, राग रेशम की गाँठ है। इस से बचना बड़ा कठिन है। प्राण-रक्षा करना लोक-दृष्टि है। जीव के संसार-समुद्र से तैरने की कामना करना ही शुद्ध व तात्त्विक दृष्टि है।

बस, हमारे भाइयों की विचार-शक्ति इसी बात को समझने मे कुण्ठित हो गई है। भीखणजी महाराज ने शुरू में इस वस्तु को समझने में महान् भूल की, अपने गुरु आचार्यश्री रघुनाथजी महाराज के बहुत समझाने पर भी न माने और गुरु का अविनय और आज्ञा भंग करके इसी बिना पर अलग हुए। उनको यह मनोभ्रम हो गया था कि 'हिंसक को हिंसा से छुड़ाना तो धर्म है क्योंकि इससे वह हिंसा से बच जाता है। किन्तु हिंस्यमान (जिसकी हिंसा की जा रही है) को बचाने की कामना करना धर्म नहीं, पाप है। कारण कि जिसको बचाया जा रहा है वह अहिंसक अर्थात् साधु नही है। दूसरी बात बचाने या सहायता करने से उसके प्रति रागभाव आ जाता है। रागभाव पाप है।' इसी मनोभ्रम के आधार पर भीखणजी महाराज अपने गुरु से पृथक् हुए और अलग सम्प्रदाय कायम करने मे जुट गये। धर्म के नाम पर भारतीय लोगों को गुमराह करना साधारण काम है। कैसी भी विचारधारा हो, धर्म के नाम से उसका प्रचार चल निकलता है। भोले-भाले, अपठित और व्यापार में निरत रहने वाले अनेक ग्रामीण लोग इनके बहकावे में फंस ही गये। जैसा कि सन्त भीखणजी के जीवन चरित में उल्लिखित है, 'वह अंधकार युग था। लोगो को वास्तविक धर्म-प्रकाश का बोध न था' अतः इनके चंगुल में फंस गये।

अपने शरीर की विकार-पुष्टि के लिए रक्षण-पोषण और सार-संभाल करना रागभाव है और पाप भी। इसी प्रकार अपने शरीर के भावी सुख की कामना से कुटुम्बियों, पालन-पोषण और संरक्षण राग हो सकता है। किन्तु निःस्वार्थ भाव से, आत्मोपम्य के

से दूसरे जीवों का रक्षण या सहाय्य राग कैसे है ? राग तो निज स्वार्थ से ताल्लुक रखता है। जगत् को सुखी बनाने की भावना में राग कैसा ? यह तो अपनी संकुचित शरीर-भावना से ऊँचा उठ कर विशाल चैतन्य में तदाकार होने की उच्चतम भावना है। इसमें राग होने की मिथ्या कल्पना करना मनोभ्रम मात्र है। यह राग नहीं, किन्तु मैत्रीभाव और शुद्ध प्रेमभाव है। मान लीजिये हम किसी अपरिचित बालक को आपत्ति में से बचा रहे हैं या किसी गाय को आततायी के चंगुल से छुड़ा रहे हैं तो इसमें रागभाव कैसा ? क्या अपरिचित बालक और गाय हमारे रिश्तेदार है जो उनके प्रति राग होने की कल्पना की जाती है ? नहीं, उनके प्रति हमारी मैत्री-भावना है और इसीलिए हम इनका रक्षण और वक्त पर पोषण करना अपना धर्म समझते हैं। इसमें किसी प्रकार का पाप होने की गुंजायश नहीं है। शारीरिक रक्षण और पोषण होगा तब तो आगे उसको धर्ममार्ग पर लगाने का अवसर भी आ सकता है।

जैन धर्म की उक्तियाँ पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि 'सब जीव जीने की इच्छा रखते हैं'। इसका अर्थ यही हुआ कि जीने में मदद करना अच्छा काम है, धर्म है, पुण्य है। अब प्रश्न यह रहा कि जिसकी रक्षा की जा रही है वह संयमी नहीं है, असंयमी है या संसार के व्यवहार मे निरत है। तो इसकी जिम्मेवारी उस पर है। बचाने वाले की इसमें क्या जिम्मेवारी है ? उसकी जिम्मेवारी तो बचाने या सहाय्य करने तक सीमित थी। उस वक्त उसको मैत्रीभाव उत्पन्न हुआ और रक्षा या सहायता कर दी। इस पवित्र भावना से उसे लाभ हो चुका। हम किसी की रक्षा या सहायता करते हैं, वह इस भावना से नहीं करते कि भविष्य में यह प्राणी पाप या असंयम का सेवन करे। हमारी भावना उसको बचाने और मदद करने तक सीमित है। वह अपने जीवन से धर्म या पाप का सेवन करेगा, इसकी जिम्मेवारी उसी पर है। बचाने वाले पर नहीं। हमें दया या मैत्रीभाव पैदा हुआ और रक्षण तथा सहाय्य कार्य कर दिया। रक्षण और सहायता कार्य की भावना पापरूप कैसे हो सकती है ? कदाचित् गृहस्थ होने के नाते साधन के उपयोग में किंचित् आरम्भ सेवन हो सकता है। आरंभ को आरम्भ मानने मे और उससे लगने वाली क्रिया से किसी को कोई ऐतराज नहीं है किन्तु रक्षा की भावना तथा चेष्टा पापरूप कैसे ?

वर्तमान समय में जैन समाज मुख्य तीन फिरकों में बंटा हुआ है : 1 दिगम्बर, 2 श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और 3 श्वेताम्बर स्थानकवासी। उक्त तीनों फिरके दया और दान की जैन धर्म सम्बन्धी मान्यता में एकमत हैं। मूल आगमों में तथा पिछले साहित्य में कूट-कूट कर रक्षारूप दया तथा दीन-दु:खियों की सहायता करने के उदाहरण भरे पडे हैं। दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों के कथा-साहित्य में भी इस उदार धर्म की बडी पुष्टि की हुई मिलती है।

अहिंसा का विधिरूप और निषेधरूप, दोनों प्रकार का अर्थ जैन धर्म को मान्य है।

अहिसा की संसारप्रसिद्ध व्याख्या - किसी को अपनी ओर से न सताना तथा सताये जाते हुए का रक्षण करना– जैन धर्म को पूर्णतया सम्मत है। किन्तु जैन धर्म के एक फिरके में से निकला हुआ तेरापंथ नामक एक छोटा-सा टुकडा अहिसा की व्याख्या बडी विचित्र करता है, जिसका आचरण करने से संसार में निर्दयता और अनाचार फैल सकता है। जैसे मोटर की झपट मे आते हुए नादान बालक को दिल कठोर करके देखते रहना निर्दयता नहीं तो क्या है ? और माता-पिता जैसे महान् उपकारी पुरुषों की सेवा-शुश्रूषा करने में पाप मानने वाला और पाप मान कर सेवा से विरत होने वाला जगत् में अनाचार नहीं फैलाता तो क्या करता है ? यदि अनाचार शब्द इसके लिए उपयुक्त न लगता हो तो किसी दूसरे शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु इस सत्य को स्वीकार करना पड़ता है कि साधु से अतिरिक्त की रक्षा और सहायता में पाप की प्ररूपणा करने वाली विचारधारा से इस संसार में महान् अनर्थ होने की संभावना है।

अहिंसा की संसार-विलक्षण व्याख्या में से ही यह सारी अनर्थ-परम्परा उत्पन्न हुई है। तेरापंथ की अहिंसा की व्याख्या जगद्विलक्षण है, यह बात स्वयं उस समाज के सभापति स्वीकार करते हैं। देखिये -

अहिंसा पुस्तिका की भूमिका में श्री छोगमलजी चोपडा, सभापति, श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, 201 हरिसन रोड, कोलकाता लिखते हैं–

"जैन धर्म का मूल आधार अहिंसा है। यद्यपि अहिंसा को सभी धर्म किसी-न-किसी रूप में मानते हैं, किन्तु जैन धर्म की अहिंसा की परिभाषा सब से उच्च है। जैन सम्प्रदायों में भी श्री श्वेताम्बर तेरापंथी संप्रदाय की परिभाषा शुद्ध आम्नाय के अनुसार केवल भावों पर आश्रित है। अतः उक्त सम्प्रदाय की परिभाषा को देने के लिए इस ग्रंथ को पाठकों की भेंट किया जाता है।"

"आशा है विद्वान् लोग इस विषय में अपने भाव सार्वजनिक रूप से उदारतापूर्वक प्रगट करेंगे।"

ऊपर यह कहा गया है कि तेरापंथी सम्प्रदाय की परिभाषा शुद्ध आम्नाय के अनुसार केवल भावों पर आश्रित है। पाठक जरा गौर करें कि इस शुद्ध आम्नाय का आविष्कारक कौन है ? भीखणजी महाराज की बुद्धि में विकार उत्पन्न हुआ और इस शुद्ध आम्नाय का आविर्भाव हुआ। इससे पूर्व की दिगम्बर-श्वेताम्बर आम्नायें शुद्ध न थीं अतः भीखणजी महाराज को अहिंसा की व्याख्या बदलनी पड़ी। इसके बिना रक्षा और सहायता में पाप मानने की उनकी मिथ्या धारणा को कोई आधार न था। इस केवल भावों पर आश्रित मनगढन्त व्याख्या से जैन धर्म कितना बदनाम हुआ है और जैनेतर समाजों में कितना नीचा देखना पड़ता है, यह भुक्तभोगी ही जानता है।

से दूसरे जीवों का रक्षण या सहाय्य राग कैसे है ? राग तो निज स्वार्थ से ताल्लुक रखता है। जगत् को सुखी बनाने की भावना में राग कैसा ? यह तो अपनी संकुचित शरीर-भावना से ऊँचा उठ कर विशाल चैतन्य में तदाकार होने की उच्चतम भावना है। इसमें राग होने की मिथ्या कल्पना करना मनोभ्रम मात्र है। यह राग नहीं, किन्तु मैत्रीभाव और शुद्ध प्रेमभाव है। मान लीजिये हम किसी अपरिचित बालक को आपत्ति में से बचा रहे हैं या किसी गाय को आततायी के चंगुल से छुडा रहे हैं तो इसमें रागभाव कैसा ? क्या अपरिचित बालक और गाय हमारे रिश्तेदार हैं जो उनके प्रति राग होने की कल्पना की जाती है ? नहीं, उनके प्रति हमारी मैत्री-भावना है और इसीलिए हम इनका रक्षण और वक्त पर पोषण करना अपना धर्म समझते है। इसमे किसी प्रकार का पाप होने की गुंजायश नहीं है। शारीरिक रक्षण और पोषण होगा तब तो आगे उसको धर्ममार्ग पर लगाने का अवसर भी आ सकता है।

जैन धर्म की उक्तियाँ पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि 'सब जीव जीने की इच्छा रखते हैं'। इसका अर्थ यही हुआ कि जीने में मदद करना अच्छा काम है, धर्म है, पुण्य है। अब प्रश्न यह रहा कि जिसकी रक्षा की जा रही है वह संयमी नहीं है, असंयमी है या संसार के व्यवहार में निरत है। तो इसकी जिम्मेवारी उस पर है। बचाने वाले की इसमें क्या जिम्मेवारी है ? उसकी जिम्मेवारी तो बचाने या सहाय्य करने तक सीमित थी। उस वक्त उसको मैत्रीभाव उत्पन्न हुआ और रक्षा या सहायता कर दी। इस पवित्र भावना से उसे लाभ हो चुका। हम किसी की रक्षा या सहायता करते हैं, वह इस भावना से नहीं करते कि भविष्य में यह प्राणी पाप या असंयम का सेवन करे। हमारी भावना उसको बचाने और मदद करने तक सीमित है। वह अपने जीवन से धर्म या पाप का सेवन करेगा, इसकी जिम्मेवारी उसी पर है। बचाने वाले पर नहीं। हमें दया या मैत्रीभाव पैदा हुआ और रक्षण तथा सहाय्य कार्य कर दिया। रक्षण और सहायता कार्य की भावना पापरूप कैसे हो सकती है ? कदाचित् गृहस्थ होने के नाते साधन के उपयोग में किंचित् आरम्भ सेवन हो सकता है। आरंभ को आरम्भ मानने में और उससे लगने वाली क्रिया से किसी को कोई ऐतराज नहीं है किन्तु रक्षा की भावना तथा चेष्टा पापरूप कैसे ?

वर्तमान समय में जैन समाज मुख्य तीन फिरकों में बंटा हुआ है : 1 दिगम्बर, 2 श्वेताम्बर मूर्तिपूजक और 3 श्वेताम्बर स्थानकवासी। उक्त तीनों फिरके दया और दान की जैन धर्म सम्बन्धी मान्यता मे एकमत हैं। मूल आगमों में तथा पिछले साहित्य में कूट-कूट कर रक्षारूप दया तथा दीन-दुःखियों की सहायता करने के उदाहरण भरे पड़े हैं। दिगम्बर-श्वेताम्बर दोनों के कथा-साहित्य में भी इस उदार धर्म की बडी पुष्टि की हुई मिलती है।

अहिंसा का विधिरूप और निषेधरूप, दोनों प्रकार का अर्थ जैन धर्म को मान्य है।

अहिंसा की संसारप्रसिद्ध व्याख्या - किसी को अपनी ओर से न सताना तथा सताये जाते हुए का रक्षण करना-- जैन धर्म को पूर्णतया सम्मत है। किन्तु जैन धर्म के एक फिरके में से निकला हुआ तेरापंथ नामक एक छोटा-सा टुकडा अहिंसा की व्याख्या बडी विचित्र करता है, जिसका आचरण करने से संसार में निर्दयता और अनाचार फैल सकता है। जैसे मोटर की झपट में आते हुए नादान बालक को दिल कठोर करके देखते रहना निर्दयता नहीं तो क्या है ? और माता-पिता जैसे महान् उपकारी पुरुषों की सेवा-शुश्रूषा करने में पाप मानने वाला और पाप मान कर सेवा से विरत होने वाला जगत् में अनाचार नहीं फैलाता तो क्या करता है ? यदि अनाचार शब्द इसके लिए उपयुक्त न लगता हो तो किसी दूसरे शब्द का प्रयोग किया जा सकता है, किन्तु इस सत्य को स्वीकार करना पडता है कि साधु से अतिरिक्त की रक्षा और सहायता में पाप की प्ररूपणा करने वाली विचारधारा से इस संसार मे महान् अनर्थ होने की संभावना है।

अहिंसा की संसार-विलक्षण व्याख्या मे से ही यह सारी अनर्थ-परम्परा उत्पन्न हुई है। तेरापंथ की अहिंसा की व्याख्या जगद्विलक्षण है, यह बात स्वयं उस समाज के सभापति स्वीकार करते हैं। देखिये -

अहिंसा पुस्तिका की भूमिका में श्री छोगमलजी चोपड़ा, सभापति, श्री जैन श्वेताम्बर तेरापंथी सभा, 201 हरिसन रोड, कोलकाता लिखते हैं--

"जैन धर्म का मूल आधार अहिंसा है। यद्यपि अहिंसा को सभी धर्म किसी-न-किसी रूप में मानते हैं, किन्तु जैन धर्म की अहिंसा की परिभाषा सब से उच्च है। जैन सम्प्रदायों में भी श्री श्वेताम्बर तेरापंथी संप्रदाय की परिभाषा शुद्ध आम्नाय के अनुसार केवल भावों पर आश्रित है। अतः उक्त सम्प्रदाय की परिभाषा को देने के लिए इस ग्रंथ को पाठकों की भेंट किया जाता है।"

"आशा है विद्वान् लोग इस विषय में अपने भाव सार्वजनिक रूप से उदारतापूर्वक प्रगट करेंगे।"

ऊपर यह कहा गया है कि तेरापंथी सम्प्रदाय की परिभाषा शुद्ध आम्नाय के अनुसार केवल भावों पर आश्रित है। पाठक जरा गौर करें कि इस शुद्ध आम्नाय का आविष्कारक कौन है ? भीखणजी महाराज की बुद्धि में विकार उत्पन्न हुआ और इस शुद्ध आम्नाय का आविर्भाव हुआ। इससे पूर्व की दिगम्बर-श्वेताम्बर आम्नायें शुद्ध न थीं अतः भीखणजी महाराज को अहिंसा की व्याख्या बदलनी पड़ी। इसके बिना रक्षा और सहायता में पाप मानने की उनकी मिथ्या धारणा को कोई आधार न था। इस केवल भावों पर आश्रित मनगढन्त व्याख्या से जैन धर्म कितना बदनाम हुआ है और जैनेतर समाजों में कितना नीचा देखना पड़ता है, यह भुक्तभोगी ही जानता है।

जैन समाज के दिगम्बर और श्वेताम्बर साधु तथा गृहस्थ विद्वानों से हमारी हार्दिक अपील है कि वे इस मिथ्या विचारधारा की तरफ थोड़ा लक्ष्य करें। पॉच-सात वर्ष पूर्व तक यह विचारध ाारा थली की घनी रेत और मेवाड़ के घने पहाडों में दबी पड़ी थी। किन्तु अब आचार्यश्री तुलसी की महत्त्वाकांक्षा और आत्मप्रदर्शन की लालसा रेत और पहाड़ों को भेद कर भारत की राजधानी तक फैलने की कोशिश में है। जैन धर्म के नाम से अहिंसा को इस रूप में रखते देखकर जैन विद्वान चुप बैठे रहें, यह शोमनीय नहीं है। विद्वानों का ध्यान इस तरफ नहीं जाता है, यह बड़े खेद की बात है।

जब स्वामी दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में जैन धर्म की मान्यता विकृत रूप में उपस्थित की थी तब तो जैन विद्वानों ने उस ओर ध्यान दिया था। किन्तु जैन नामधारी व्यक्ति जैन धर्म के प्राणस्वरूप अहिंसा को विकृत, अधूरी और अनर्थकारी के रूप में जगत् के सामने उपस्थित करते हैं, तब हमारे विद्वान् चुप क्यों हैं ? जैन धर्म के नाम पर लगने वाले इस कलंक को मिटाने के लिए विद्वानों को आगे आना चाहिये। एक बात की तरफ विद्वानों का ध्यान आकर्षित करना उचित ज्ञात होता है कि वे तेरापन्थ की मान्यताओं को बारीकी से देखने की कोशिश करेगे तब इस कार्य में सफल होंगे।

मुनिश्री नथयलजी लिखित 'धर्म और लोक-व्यवहार' नामक ताजा पुस्तिका के नमूने भी ध्यान में लीजिये–

"असंयमी शरीर का खान-पान, पालन-पोषण करना आदि असंयम के पोषक हैं इसलिए अधर्म हैं।" (पृ. 7)

यहाँ स्पष्ट शब्दों में साधु से इतर को दया-बुद्धि से प्रेरित होकर या माता-पिता जैसों को उपकार-बुद्धि से प्रेरित होकर अन्न-जल-परिधेय आदि प्रदान करना या उनका पालन-पोषण और सेवा-शुश्रूषा करना, अधर्म - पाप बताया गया है। फिर भी जब स्थानकवासी आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज अपने व्याख्यानों में यह कहते हैं कि तेरापन्थी, साधु के सिवाय किसी प्राणी की रक्षा और सहायता में पाप मानते हैं, तब इस बात को यह कह कर उड़ा देने की चेष्टा की जाती है कि तेरापन्थियों के प्रचार और वृद्धि से ईर्ष्याभाव धारण करके उन पर यह झूठा दोषारोपण किया जाता है। 'धर्मरक्षक समिति' ने जयपुर में तेरापन्थ की मान्यताओं को जनता की नजर में लाने की दृष्टि से छपवा कर प्रकाशित किया था तब भी तेरापन्थ के आचार्यश्री तुलसी ने यह कहकर छुटकारा पाया था कि 'हमारी उन्नति से जलने वाले लोग हम पर झूठा दोषारोपण लगाते हैं।' किसी की उन्नति से कोई क्यों जलने लगे ? यह तो बचाव करने का एक तरीका है। निर्दयी विचारधारा का विरोध करना मानवीय कर्तव्य समझ कर समिति ने उस पर प्रकाश डाला था। रक्षा और सहायता में स्वयं पाप मानते हैं किन्तु

दूसरे जब यह बात कहते हैं तब इनको बड़ी चिढ छूटती है। इसका उपाय एकमात्र ऐसी गंदी और घातक मान्यता को तिलाञ्जलि देना ही है। दूसरों पर रोष करना नहीं। और थोड़ा नमूना देखिए–

"जैन मात्र, असंयती (गृहस्थ) के खाने-पीने को हिसा मानते हैं। एक गृहस्थ रोटी खाता है, पानी पीता है, वह धर्म नहीं, पुण्य नहीं, आत्म-साधना नहीं। तब फिर विपत्तिकाल में अनुकम्पा कर उसे कोई रोटी खिलाये, पानी पिलाये, वह धर्म कैसे होगा ? परिस्थिति में कोई अन्तर नहीं आया, वह आपत्ति दशा से पहले भी गृहस्थ था, असंयती था और अब भी वैसा ही है। पहले भी उसका खाना-पीना धर्म नहीं माना जाता था और अब भी नही; तब फिर खिलाने-पिलाने वाले को धर्म-पुण्य कैसे होगा ? महाव्रती साधु-सन्तों का खान-पान धर्म है इसीलिए उनको दान देने वाले को धर्म होता है। किन्तु जिसका खान-पान अधर्म है–हिंसा है, उसको देकर धर्म का लाभ कैसे लूटा जा सकता है ? शरीर के हित-चिन्तन में आत्महित की बात कैसी ? वह तो शरीर पर ममत्व है।" (पृ. 7 से 9)

यहाँ लेखक ने जैन मात्र शब्द का प्रयोग करके दिगम्बर और श्वेताम्बर और स्थानकवासियों को अपनी घातक और निर्दयी मान्यता से सहमत होने के लिए घसीटने की कोशिश की है। तेरापन्थियों के सिवा कोई जैनी गृहस्थ के खान-पान को सर्वथा पाप नहीं मानते और न दूसरों को खिलाने-पिलाने में। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, विकार-पुष्टि के लिए खाना-पीना अधर्म है, पाप है। किन्तु व्रत-नियम निभाने और शरीर को टिकाये रखने के लिए निर्दोष भोजन-पान पाप नहीं है। मोक्षाभिमुखी, सम्यग्दृष्टि, श्रावक और प्रतिमाधारियो का खान-पान अधर्म नहीं है। उनका लक्ष्य मुक्ति बन चुका है। अनुकम्पा लाकर दूसरों की प्राणरक्षा और आर्त-रौद्र ध्यान मिटाने के लिए खिलाने-पिलाने में अधर्म या पाप होने की बात शास्त्र और अनुभव-विरुद्ध है। भोग और स्वाद की पुष्टि के लिए खुद का खाना पाप है, मगर दया-बुद्धि से दूसरे को खिलाना पाप नहीं है। खाकर दूसरा क्या करेगा, इसकी जिम्मेवारी खाने वाले पर है, खिलाने वाले पर नही। उसे तो अनुकम्पा-बुद्धि उत्पन्न हुई और उसे कार्यरूप में परिणत कर दिया, इससे लाभ–पुण्य ही हुआ। जैसे कि नही मारने से आनुषंगिक रूप से बचे हुए प्राणी के भावी कार्यों की हम पर जिम्मेवारी नहीं है।

भारत-पाकिस्तान के बटवारे के वक्त अथवा भूकम्प आदि प्रकृति-प्रकोप के वक्त जब मानव-समाज महान् आपत्ति में पड़ जाता है, तब भोजन-पान आदि द्वारा सहायता करने में लेखक ने अधर्म बताया है। और साथ ही यह भी कहा है कि 'परिस्थिति में कोई अन्तर नहीं आया।' परिस्थिति में अन्तर आया अथवा नहीं, यह बात तो वे भुक्तभोगी शरणार्थी भाई जानते हैं। और उनको खिलाने-पिलाने से अधर्म - पाप होता है या धर्म - पुण्य, यह बात भी उनकी

अंतरात्मा बता सकती है। सेठ साहूकारों का बिना परिश्रम का अन्न-जल खाने वाला और दूसरों की पीड़ा का अनुभव नहीं करने वाला व्यक्ति इसका अंदाजा नहीं लगा सकता।

'शरीर के हित-चिन्तन में आत्महित की बात कैसी ? वह तो शरीर पर ममत्व है।'

लेखक खुद खाता है, पीता है और परिधान भी धारण करता है, फिर भी दूसरों को खिलाने-पिलाने के वक्त शरीर के हित-चिंतन की बात आगे कर देता है। पौद्गलिक शरीर के पोषण में पाप बताता है। क्या उनका खुद का खाना-पीना शरीर का—पौद्गलिक शरीर का—हित-चिंतन नहीं ? और क्या दूसरों को खिलाने-पिलाने वाले आत्मारहित मुर्दा पौद्गलिक शरीर को खिलाते-पिलाते हैं या आत्मायुक्त शरीर को ? जीवित प्राणी को खिलाते-पिलाते वक्त पौद्गलिक का नाम लेकर उस आत्मा में होने वाली तुष्टि को उडा देना निर्दयी व्यक्तियों का ही काम हो सकता है। दयावान् ऐसी बात नहीं कह सकते। निःस्वार्थ भाव से दूसरों को खिलाने-पिलाने में उनके शरीर पर ममत्व होने का प्रसंग ही नहीं है। मैत्रीभाव के विकास को ममत्व बताना अज्ञानता और दया पर द्वेष ही कहा जा सकता है। (पृ. 12-13)

"सामाजिक प्राणी मोह में फंसे हुए हैं।" "धर्म और मोह के रास्ते दो हैं।" "व्यक्तियों के सामूहिक आपत्तियों के अवसर पर यदि कोई समर्थ व्यक्ति सहायता करे, उसमें धर्म तो दूर, किन्तु वह सामाजिक विशेषता भी नहीं है।" "बराबर के सामाजिक व्यक्ति को कृपा का पात्र मान कर सहयोग करना अहंकार की पराकाष्ठा और ऐश्वर्य के मद से उत्पन्न हुए कुसंस्कार हैं।"

भूकम्प या गृहयुद्ध या इतर देश के आक्रमण जैसे अवसर पर किसी समर्थ व्यक्ति द्वारा अपने देश-भाइयो की सहायता करने में धर्म तो दूर, किन्तु सामाजिक विशेषता भी नहीं है—यह है हमारे तेरापंथी भाइयों की मान्यता ! बीच में बड़ी चालाकी से बराबरी के सामाजिक व्यक्ति को कृपापात्र मान कर सहयोग को कुसंस्कार बता दिया है, जिससे पढ़ने वाले के मन पर यह असर पड़ जाय कि बराबरी वाले को कृपापात्र मानना तो बुरी बात है। किंतु यह केवल शब्द- चातुरी है। यदि कोई बराबरी के व्यक्ति को कृपापात्र न मानकर आपत्तिग्रस्त समझ कर मैत्रीभाव से प्रेरित हो कर उसकी सहायता करता है तब क्या फल होता है ? अधर्म या धर्म-पुण्य ? असंयती की रक्षा में और सहायता में सर्वथा पाप मानने वाले लोगों को अपने पाप छिपाने के लिए कितने तरीके अख्तियार करने पड़े हैं ! कभी बलात्कार, कभी छोटा-बड़ा जीव, कभी दूसरों को कृपापात्र मानने की बात और कभी बराबरी के व्यक्ति का नाम लेकर लुका-छिपी की जाती है।

मुनि नथमलजी कृत 'उन्नीसवीं सदी या नया आविष्कार' नामक पुस्तिका में से -

"अनुमानतः चार वर्ष के गंभीर अनुशीलन, मनन और सर्वतोमुखी अन्वेषण के बाद

आचार्य भिक्षु ने 'धन-व्यय से की जाने वाली सार्वजनिक व्यवस्थाएँ सामाजिक या राष्ट्रीय कार्य हैं, आध्यात्मिक धर्म का इनसे कोई सम्बन्ध नहीं' – इस सिद्धान्त को जनता के सामने रखा। इस ने धार्मिक जगत् में बडी हलचल पैदा की। धार्मिक जगत् के लिए यह उन्नीसवीं सदी का सबसे बड़ा और नया आविष्कार था।" (पृ. 8)

यहाँ पर बेचारे धन को बीच में लाकर अपने पापभावों को छिपाने की चेष्टा की गई है। क्या धन-व्यय के बिना की जाने वाली सार्वजनिक व्यवस्थाएँ पुण्यरूप हैं ? यदि नहीं, तो धन का नाम लेकर बचने की कोशिश क्यों ? सार्वजनिक व्यवस्थाएँ सामाजिक और राष्ट्रीय हैं, यह तो ठीक है। और इनका आध्यात्मिक धर्म से कदाचित् सम्बन्ध भी न हो तो न सही, जो कि सामाजिक और राष्ट्रीय व्यवस्थाओं का भी आध्यात्मिकता से सम्बन्ध है तथापि 'तुष्यतु दुर्जन न्यायेन" यह मान लें कि आध्यात्मिकता से सार्वजनिक व्यवस्थाओं का कोई सम्बन्ध नहीं है, तथापि इनके कर्ता को पापरूप बंधन क्यों ? पुण्यरूप बंधन क्यों नहीं ? सामाजिक और राष्ट्रीय भले कामों का फल पापरूप मानना जगत् में अन्धाधुन्धी फैलाना है। सचमुच, भले कामों का फल पापरूप बता कर भीखणजी महाराज ने उन्नीसवीं सदी में सबसे बड़ा और नया आविष्कार ही किया है !

यह हुन्डावसर्पिणी है, इसमें जो-जो चमत्कार व आविष्कार न हों, वे कम हैं। इस पंचमकाल या कलियुग में धर्म के क्षेत्र में जो कमी थी वह इस आविष्कार ने पूरी कर दी। स्वभावतः ही अधिकांश व्यक्ति निज स्वार्थ में तल्लीन हैं, फिर धर्मगुरु यदि दूसरों की भलाई या परोपकार में पाप बताने लगें तब तो बेड़ा पार है ! जो ऊँचा उठने का साधन है, उसे नीचा गिरने का साधन बता कर भले कामों से बचते रहने का उपदेश देना, एक अजीबोगरीब बात है।

"यह कतई गलत है कि तेरापंथ के अनुयायी लौकिक कार्यों में बाधा डालते हैं या मना करते हैं।" ('धर्म और लोकव्यवहार,' पृ. 23)।

तेरापंथ के अनुयायियों द्वारा लौकिक कामों में बाधा नहीं डालने की बात ऊपर कही गई। किन्तु इस पद्य की तरफ पाठकों का ध्यान आकर्षित किया जाता है–

अव्रत में दान देवा तणो कोई त्याग करे मन शुद्ध जी।
त्यांरो पाप निरंतर टालियो त्यांरी वीर बखाणी बुद्ध जी।

अर्थात् यदि कोई व्यक्ति साधु के सिवाय अन्य किसी प्राणी को किसी प्रकार का दान देने का त्याग कर लेता है तो उसका सदा के लिए पाप टल जाता है। यदि इस पद्य का कर्ता तीन पाद तक रुक जाता, तब भी ठीक था, किन्तु आगे कहता है कि जो अव्रतदान का त्याग कर लेता है उसकी बुद्धि की भगवान् महावीर प्रशंसा करते हैं। महावीर स्वामी को

बीच में लाकर अपनी निकृष्ट मान्यता का समर्थन किया गया है। महावीर स्वामी ने दीन-हीन और दुखियों को दान देने का कभी निषेध नहीं किया है। न त्याग करने का उपदेश दिया है और न पापरूप फल ही बताया है। अव्रतदान का त्याग कराने वाले हीन, दीन और आपद्ग्रस्त व्यक्तियों की सहायता के कार्य में बाधा डालने वाले गिने जायेंगे, या नहीं? फिर भी कहते हैं कि तेरापन्थ के अनुयायी लौकिक कामों में बाधा नहीं डालते। अव्रतदान का त्याग करानेवाले तथा त्याग कर लेने का उपदेश देने वाले परोपकार में अवश्य बाधक हैं। वर्तमान में दान देते हुए को मना नहीं किया जाता है, यह बात ठीक है। किन्तु भूतकाल में दान दिया हो। उसका पश्चात्ताप करने और भविष्य में दान न देने का त्याग तो तेरापंथी साधु कराते हैं न! यह दान में बाधा नहीं तो क्या है? यह सच है कि तेरापंथी वर्तमान में मना नहीं करते। मगर मना न करने का यह तो अर्थ नहीं है कि वे लौकिक कामों का फल पापरूप नहीं मानते। लौकिक कार्यों का फल पापरूप सुन कर कौन उनमें प्रवृत्त होगा?

उक्त पद्य में उपलक्षण से दान के साथ-साथ दया, परोपकार आदि भी पापकार्य हैं। इनका त्याग कर लेने वाले का भी पाप सदा टल जाता है। ऐसा अर्थ इसके गर्भ में छिपा हुआ है।

कुछ वर्ष पहले तक आम-जनता और विद्वद्वर्ग इनकी इन मान्यताओं से अनभिज्ञ थे। किन्तु जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज ने 'सद्धर्ममंडन' और 'अनुकंपाविचार' नामक दो महान् ग्रंथ लिखकर सबको अभिज्ञ बनाया है। इसके उपरान्त पिछले पाँच-सात वर्षों में तेरापंथ समाज की तरफ से स्वमान्यता दर्शक छोटी-मोटी कई पुस्तकें राष्ट्रभाषा हिन्दी में प्रकाशित हुई हैं। इससे अब वे मान्यताएं छिपाई या ढकी नहीं जा सकतीं। फिर भी आचार्यश्री तुलसी ने प्रश्नों के उत्तर इस विलक्षण ढंग से दिये हैं कि जनसाधारण उन उत्तरों को पढ़कर यह अंदाजा नहीं लगा सकते कि वे परोपकार का फल पापरूप मानते हैं। मानते पापरूप ही फल हैं, किन्तु इसका नाम बदल दिया है। पाप को लोकदृष्टि से लौकिक पुण्य कह कर उत्तर दिया है। व्यवहार-पुण्य अर्थात् मूर्ख लोगों द्वारा नासमझी से पाप के कार्यों को पुण्य रूप मान लिया जाता है। वस्तुतः वह है पाप ही। आचार्यश्री तुलसी तो परोपकार के इन कार्यों का फल पापरूप ही मानते हैं किन्तु व्यवहार की कोटि में अर्थात् मूर्खजनसम्मत व्यवहार में इन कार्यों का फल पुण्यरूप माना जाता है। जैसे कि दीप जलाने को भी नासमझी से साधारण लोग पुण्य कार्य कह दिया करते हैं। वस्तुतः दीप जलाना पुण्य कार्य नहीं है। इसी प्रकार औषधालय, विद्यालय आदि कार्य पापमय हैं किन्तु लोग उन्हें पुण्यमय मानते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि आचार्यश्री तुलसी की निजी मान्यता इन कार्यों का फल स्पष्टतया पाप होने की है। लौकिक व्यवहार, पुण्य कार्य कहकर तो लोगों की धारणा बदली गई है।

वड़े आश्चर्य की वात है कि स्थानकवासी समाज द्वारा नौ प्रश्न आचार्यश्री तुलसी की निजी मान्यता जानने के लिए पूछे गये थे, न कि अन्य लोगों की मान्यता जानने के लिये। किन्तु लोकभय से निजी मान्यता को शब्दों की आड़ में छिपाकर अन्यथा प्रकार से उत्तर दिया गया है।

'आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता' —इस वाक्य में कितना अर्थछल है, यह समझ लेने की आवश्यकता है। यदि आध्यात्मिक धर्मकार्य के विना लौकिक कार्यों में भी पुण्य होना ये मानते होते तव तो यह वाक्य उच्चारण करना उचित गिना जाता। किन्तु आध्यात्मिक धर्म के विना ये पुण्य होना नहीं मानते। 'पुण्य' धर्म के साथ ही हो सकता है। जहाँ धर्म है वहां पुण्य है और जहां धर्म नहीं, वहां पुण्य भी नहीं होता। पाप ही पाप होता है - यह इनका निश्चित सिद्धान्त है। फिर भी लोगों को चक्कर में डालने के लिए यह लिखना कि आध्यात्मिक धर्मक्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता; मायाजाल मात्र है। इस वाक्य को पढ़कर कोई भी विद्वान् या साधारण व्यक्ति यही खयाल कर सकता है कि आचार्यश्री तुलसी परोपकार के कामों में आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाला पुण्य होना नहीं मानते किन्तु दूसरी क्रियाओं के साथ होने वाला पुण्य मानते हैं। जबकि वास्तव में आचार्यश्री तुलसी अध्यात्म के साथ ही पुण्य मानते हैं। अन्यत्र पाप ही पाप मानते हैं।

इसके विपरीत जैन सिद्धान्त की यह मान्यता है कि आध्यात्मिक धर्मक्रिया के साथ भी पुण्य होता है और आध्यात्मिकता रहित लौकिक भली क्रियाओं के साथ भी। जैसे मिथ्यादृष्टि जीव अध्यात्म क्रिया नहीं कर सकता, मगर पुण्य उपार्जन कर सकता है। मिथ्यात्वी द्वारा उपार्जित पुण्य अध्यात्मरहित है, फिर भी वह वास्तविक पुण्य है। यह व्यवहार कोटि का पुण्य नहीं है किन्तु नैश्चयिक पुण्य है। मिथ्यात्वियों में अध्यात्म क्रिया होना संभव नहीं है, क्योंकि आध्यात्मिक का मोक्षाभिमुख होना या आत्माभिमुख होने के साथ गहरा सम्बन्ध है, जो कि मिथ्यात्वी में नहीं पाये जा सकते। यदि मिथ्यात्वी जीव भी मोक्षाभिमुख या आत्माभिमुख गिना जायगा तो वह मिथ्यात्वी नहीं रहेगा, समकिती हो जायगा। पुण्य, एक प्रकार का बंधन है, किन्तु वह धर्ममार्ग के पथिक के लिए भी उपयोगी होता है, धर्ममार्ग में बाधक न होकर साधक भी होता है। इसी प्रकार जो धर्ममार्ग के पथिक नहीं हैं, वे भी पुण्योपार्जन कर के सद्गति और सांसारिक सुखमय सामग्री प्राप्त करते हैं। जैसे अभव्य जीव पुण्य द्वारा नव ग्रैवेयक तक पहुँच जाता है। यद्यपि वह धर्ममार्ग का पथिक नहीं है, उसका ध्येय मुक्ति नहीं है, फिर भी पुण्य द्वारा इतनी ऋद्धि और सुख प्रप्त कर सकता है।

इतना लिखने का सारांश यह है कि जब अज्ञानी और अभवी तक पुण्य उपार्जन कर सकते हैं तो समकिती द्वारा की गई परोपकार-रूप भली क्रियाओं का फल पापरूप कैसे हो

सकता है ? इन क्रियाओं का फल पुण्यरूप ही होता है। पुण्य बंधन अवश्य है, किन्तु पाप रूप बंधन जैसा अवःपतन में पहुँचाने वाला बंधन नहीं है। पुण्यरूप बंधन से प्राप्त मानव-शरीर में मुक्ति की जा सकती है। जो पुण्य का सदुपयोग करता है उसके लिए वह मोक्षमार्ग में भी सहायक हो सकता है। अतः पुण्य संसार अवस्था में सर्वथा त्याज्य नहीं है।

मुनिश्री नगराजजी लिखित 'युगधर्म तेरापंथ' के नमूने भी देखिये–

'बचाओ की अपेक्षा मत मारो का प्रचार विशेष व्यापक है अतः वही उपादेय है।''

'आत्मधर्म और समाजधर्म एक नहीं हो सकते।'

'तमाखू के स्थान पर तमाखू और घी के स्थान पर घी, दोनों का अलग-अलग महत्त्व है। पर दोनों को मिला देने से दोनों का महत्त्व नष्ट हो जाता है। ठीक इसी तरह सामाजिक और धार्मिक दोनों कार्यों का स्वतंत्र महत्त्व है। दोनों को एक मानने से दोनों महत्त्वशून्य हैं।" (पृ. 9)

"यदि तुम ने किसी व्यक्ति को उपदेश द्वारा मछली खाने का त्याग करा दिया, फलस्वरूप मछली बची, वह धर्म नहीं है।" (पृ. 10)

'पूर्ण संयमी को देना ही आध्यात्मिक दान है क्योंकि वह संयमवर्धक है। शेष दान सामाजिक कर्तव्य और अकर्तव्य में अन्तर्निहित हैं।' 'राजनीति और समाज नीति से धर्म सर्वदा पृथक् है।' (पृ. 10)

इन उद्धरणों में भी बड़ी सफाई से अपनी पाप-मान्यता छिपाई गई है। प्रश्न तो यह है कि बचाओ की भावना में तथा समाजनीति, राजनीति के पालन में पुण्यबंध हो सकता है या नहीं ? यह कौन जानना चाहता है कि ये आपस में भिन्न हैं या एक। धर्म और समाजनीति आदि का जैसा सम्बन्ध है वैसा रहे। अन्तर् में बचाओ की भावना में तथा समाज-व्यवस्था में पाप मानना और प्रकट में धर्म के साथ इनका सम्बन्ध बताकर पाप-फल होने की मान्यता छिपाना एकमात्र लक्ष्य है। सामाजिक और धार्मिक कार्यों का स्वतंत्र महत्त्व रहे, इस में कौन उलझन पैदा करता है। उलझन तो सामाजिक कर्तव्यपालन के फल के सम्बन्ध में है।

'आचार्य संत भीखणजी' लेखक श्रीचंद रामपुरिया के कुछ उद्धरण देखिये-

"अनुकंपा की ढालों में अहिंसा और दया का अपूर्व वर्णन है। अहिंसा और दया का आगम अनुसार, पर मौलिक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है और अहिंसा के एक अमर पुजारी (भीखणजी) की लेखनी से ही ग्रंथित हो सकता है।" (पृ. 62)

"चतुर विचारों की ढालों', 'दस दान की ढाल' और 'दान निचोड की ढाल' में दान विषय का अहिंसा ही की तरह सूक्ष्म विवेचन है।" (पृ. 63)

"स्वामीजी ने जैन धर्म के पुनरुद्धार का बीड़ा उठाया। आठ वर्ष के दीर्घ और गंभीर शास्त्रीय चिन्तन और मनन के बाद उन्होंने शुद्ध धर्म को प्राप्त कर उसे जनता के सम्मुख

रखा। सैंकड़ों वर्षों से एक खास प्रकार की विचारधारा की आदी जनता इस अद्‌भुत प्रकाश को कैसे सहन करती ?" (पृ. 84)

स्वामी भीखणजी ने आठ वर्ष के दीर्घ और गंभीर शास्त्रीय चिंतन और मनन के बाद जैन धर्म का जो शुद्ध रूप प्राप्त कर के जनता के समक्ष रखा वह यह है--

"जिन कार्यों में स्वामीजी ने जिन-आज्ञा को प्रमाणित सिद्ध किया है, उन में से एक भी कार्य आप को विचित्र या अजीव नहीं दिखाई देगा और न जिन कार्यों मे स्वामीजी ने आज्ञा का अभाव बताया है उन में कोई ग्रहणीय। स्वामीजी को अच्छी तरह समझा जा सके, इस लिए हम उस ढाल का भावार्थ यहां देते हैं-

1 संसार में कार्य दो हैं; एक अधर्मकार्य और दूसरा धर्मकार्य। धर्मकार्यों में जिन-भगवान की आज्ञा है। अधर्म कार्यों में नहीं। परमार्थ में जिन-आज्ञा है, अनर्थ में जिन-आज्ञा नहीं।

10 मन वचन और काया से त्रिविध हिंसा न करने को दया कहा है और सुपात्र को दान देना। दया और दान--मोक्ष के इन दो मार्गों में भगवान् की आज्ञा है। हिंसा और कुदान में नहीं।

11 उपकार दो प्रकार के हैं। एक आध्यात्मिक उपकार, दूसरा सांसारिक उपकार। आत्मिक उपकार में आज्ञा है। सांसारिक उपकार में नहीं।" (पृ. 93, 94)

ऊपर लिखी पंक्तियों में संत भीखणजी ने जनता को अद्‌भुत प्रकाश प्रदान किया, उसे वह सहन न कर सकी। कारण कि जनता सैकड़ों वर्षों से एक खास प्रकार की विचारधारा की आदी थी। यह बात लेखक ने वस्तुतः सत्य ही कही है। भारत की जनता, चाहे वह जैन धर्म को मानती रही हो, चाहे वैदिक या बौद्धधर्म को, अपने ऋषि-मुनियों के मुख से सदा यही सुनती और आचरण करती रही है कि जीवरक्षा करना और आपद्‌ग्रस्तों की आपत्ति दूर करने में सहायक होना महान् पुण्यकार्य हैं और उनका फल भी पुण्यरूप ही है। सैकडों वर्षों से नहीं, किन्तु हजारों-लाखों वर्षों से जनता परोपकार के कामों में पुण्यफल मानने वाली विचारधारा की आदी रही है और है। संत भीखणजी के पहले इस विश्व में जितने भी धर्मनेता, चाहे वे किसी भी मजहब में हुए हों, किसी ने परोपकार के कामों मे कभी पाप नहीं बताया। परोपकार के कामों का फल पापरूप होता है-- यह प्ररूपणा करके सचमुच संत भीखणजी ने जगत् को अद्‌भुत प्रकाश प्रदान किया है ! मगर यह अद्‌भुत प्रकाश तेरापंथियों को ही मुबारिक रहे। जगत् को इस प्रकाश की आवश्यकता नहीं है। उसका बड़ सद्‌भाग्य है कि वह इस प्रकाश को नहीं अपना सका है। सर्वथा नकली सोने को खरा सोना कह कर लोगों को जँचाने की कला में हमारे भाई कितने कुशल हैं !

'जिन कार्यों में स्वामीजी ने जिन-आज्ञा का अभाव बताया है उन में कोई ग्रहणीय नहीं

अर्थात् स्वामीजी ने अपनी बनाई ढालों में बड़े विस्तार से इस बात का वर्गीकरण किया है कि कौन-से कामों में जिन-आज्ञा है और कौन-से कामों में नहीं। माता-पिता की सेवा, जीव-रक्षा और इतर परोपकार के कार्य स्वामीजी की लिस्ट में जिन-आज्ञा-बाहर के कार्य हैं। ये कार्य ग्रहणीय नहीं हैं। इन का फल पापरूप होता है।

नं. 1 में धर्मकार्य और अधर्मकार्य, इस प्रकार दो प्रकार के कार्य बताये हैं। औषधालय, अनाथालय, विद्यालय खुलवाना, सेवा-सुश्रूषा करना, जीव-रक्षा करना आदि अधर्मकार्य में सम्मिलित हैं– ऐसी इनकी स्पष्ट मान्यता है। "ये लौकिक उपकार के काम हैं, धर्मकार्य नहीं हैं। धर्मकार्य न होने से इनका फल पाप है। सांसारिक उपकार में भगवान् की आज्ञा नहीं है। चूंकि धर्म आज्ञा में ही है अतः आज्ञा-बाहर के कामों में फल सर्वथा पाप है। आज्ञा-बाहर की करणी में पुण्य नहीं होता, पाप ही पाप होता है" –ऐसा इनका स्पष्ट मंतव्य है। पुण्य जिन-आज्ञा की करणी में ही होता है। आदि।

किन्तु यह सब प्ररूपणा भीखणजी की मनोकल्पित है और जैन धर्म से विपरीत है। जैन धर्म में परोपकार के कार्यों को अधर्मकार्य नहीं बतलाया गया है। तीन प्रकार के कार्य होते हैं : 1 मुनिजनोचित - निरांरमी कार्य 2 सज्जनोचित - किंचित् आरंभयुक्त कार्य 3 दुर्जनो-चित - सर्वथा त्याज्य कार्य।

निरारंमी कार्यों की भगवान् स्पष्ट शब्दों में आज्ञा देते हैं - जैसे किसी को मत सताओ, सब को सुख पहुँचाओ, सत्य बोलो आदि। औषधालय, अनाथालय आदि कामों में किंचित् आरंभ होता है अतः इन कामों में भगवान् मौन रहते हैं। न आज्ञा देते और न निषेध करते। आज्ञा देने से इन कामों में जो किंचित् आरंभ होता है उसका अनुमोदन होने की संभावना रहती है। निषेध न करके मौन रहने का कारण यही है कि निषेध करने से जिन जीवों की इन कामों से भलाई होने वाली होती है वह रुक जाती है। जो कार्य त्याज्य हैं - जैसे चोरी, जारी, ठगाई, आदि इन का भगवान् सर्वथा निषेध करते हैं क्योंकि इन से किसी का भला नहीं होता।

इससे हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं कि जिन कामों का भगवान् निषेध नहीं करते, बल्कि उनके सम्बन्ध में मौन रहते हैं, वे काम गृहस्थावस्था में त्याज्य नहीं हैं। और न उनका फल सर्वथा पाप ही होता है। भले कामों का फल पुण्यरूप होता है। इसलिए धर्मकार्य और अधर्मकार्य, ऐसे दो विभाग करना ही भूल है।

इसी प्रकार केवल आज्ञा और मौन, ये दो ही विकल्प मानना भी भूल है। एक और विकल्प है, निषेध। जिन कामों की आज्ञा है वे सर्वथा धर्मकार्य हैं और जिन का निषेध है वे सर्वथा पापकार्य हैं। बीच की श्रेणी के काम - जैसेकि अन्न-वस्त्रादि द्वारा दीन-हीन-दुखियों

की सहायता करना पुण्यकार्य हैं और इन का फल भी पुण्यरूप होता है। इसी कारण भगवान् हाँ-ना न कहकर मौन रहते हैं। संत भीखणजी भगवान् की मौन को न समझ सके इसी कारण जिन कामों में भगवान् मौन रहते हैं उनको सर्वथा पाप कार्य ठहरा दिया। इस वस्तु को न समझ सकने के कारण यह सारी अनर्थ परंपरा फैली है। मौन को, 'आज्ञा नहीं है', ऐसा संत भीखणजी द्वारा मान लिया गया है। हम कहते हैं कि मौन का अर्थ 'आज्ञा है' ऐसा क्यो न मान लिया जाय ? यदि आज्ञा नहीं है तो भगवान् निषेध क्यों नहीं कर देते ? अतः यही समझ ठीक है कि मौन को मौन मानो, निषेध मत मानो। जो तत्त्वज्ञ आज्ञा, मौन और निषेध को समझ लेंगे वे तेरापंथ की भूल को शीघ्र पकड लेंगे। मौन के कामों को निषिद्ध कार्य मान कर संत भीखणजी नै जैन धर्म पर कलंक लगाया है कि उसके नाम से मानव-समाज का एक टुकड़ा परोपकार के कामों में पाप मानने लग गया है।

आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के तत्त्वावधान में संपादित सूत्रकृतांग के मौन सम्बन्धी उद्धरण से भले कार्यों का फल पाप सिद्ध नहीं हो सकता। वहां तो साधु का आचार वताया गया है, न कि कार्यो का फल।

इसी प्रकार दूसरी भूल संत भीखणजी की यह हुई कि उन्होंने साधु से इतर की रक्षा, सहायता आदि में असंयम का पोषण मान कर उन्हें पापरूप करार दिया है। चोर को रोटी खिलाने से चोरी में सहायता तव गिनी जाती है जब खिलाने वाले की भावना उस से चोरी करवाने की या चोरी का धन लेने की हो। निष्काम भाव से दयाबुद्धि से प्रेरित होकर चोर को रोटी खिलाने वाला चोरी में सहायक नहीं होता। जुर्म भावना पर आश्रित होता है। 'साधु से इतर सव जीव असंयती हैं अतः उनका रक्षण-पोषण करना पाप है' —यह वात ऊपर के उदाहरण से कट जाती है। रक्षा और सहायता करने वाला व्यक्ति असंयम के पोषण के लिए रक्षा या सहायता नहीं करता, किन्तु उसका आर्त-रौद्र ध्यान मिटा कर उसे सुख-शांति पहुँचाने के लिए करता है। जबकि कर्ता की भावना शुद्ध है तब उसे इस क्रिया का फल पापरूप क्यों ? किसी क्रिया का फल उसके कर्ता के भावों पर आश्रित होता है न कि इतर बातों पर। जैसे हिंसक की क्रिया उस के भावों पर आश्रित है न कि मारे जाने वाले के कामों या परिणामों पर। इसी प्रकार रक्षा और सहायता का फल भी कर्ता के शुद्ध भावों पर आश्रित है। शुद्ध भाव से दान, सहायता आदि देने वाले को पुण्यरूप शुभ फल ही होगा। पात्रापात्र का विचार गौण और व्यावहारिक है।

यदि तेरापंथ की अहिसा केवल भावों पर आश्रित है जैसा कि अहिंसा की भूमिका में श्री छोगमलजी चोपड़ा ने लिखा है, तो निष्काम, निःस्वार्थ और शुद्धभाव से जीव-रक्षा करने

वाले और उन की इतर सहायता देने वाले को पापरूप फल कैसे हो सकता है ? शुद्ध भाव का अशुभ फल कैसे ? अहिंसा और हिंसा उसके कर्ता के भावों पर आश्रित है।

इसलिए असंयम पोपण की वात ठीक नहीं है। यह संत भीखणजी की दूसरी महान् भूल है जिसके परिणामस्वरूप उनको अनेक मिथ्या कल्पनाएं करनी पडी हैं। जीव-रक्षा राग भाव नहीं है। यदि है, तो भी प्रशस्त राग है, जो ग्राह्य है। जैसे धर्म पर राग, गुरु पर शिष्य का राग।

तीसरी महान् भूल तेरापंथ ने सुपात्र-कुपात्र का गलत वर्गीकरण करके की है। 'साधु के सिवा सब कुपात्र हैं' यह मानना जैन धर्म की अवहेलना है।

आचार्यश्री तुलसी के पूर्ववर्ती और वर्तमान साधुओं द्वारा रचित ग्रन्थों के अनेक उद्धरण देकर यह बात और अधिक स्पष्ट की जा सकती है कि उनके मत में परोपकार के कार्यों का फल एकान्त पापरूप होता है, किन्तु विस्तारभय से रुकना पड़ता है। आशा है, इतने विवेचन के बाद पाठकों को आचार्यश्री तुलसी की वास्तविक मान्यता समझ सकने में सरलता रहेगी।

लोकभय से मान्यता छिपाना कायरता है। जैसी भी मान्यता है उसे मंजूर करके उसे बदल लेना वीरता है। आशा है आचार्यश्री तुलसी तथा उनके अनुवर्ती इस कटु सत्य को गले उतारने की पूरी कोशिश करेंगे। इस कटु सत्य के पीछे हमारी मंगलकामना निहित है। आप हमारे भाई हैं, निकटतम हैं। हम ही लोगों में से निकले हुए हमारे भूले हुए बंधु हैं। निकटतम होने के कारण ही हम आपकी मान्यताओं से पूर्ण परिचित हैं। हम अपना आध्यात्मिक और नैतिक कर्तव्य समझते हैं कि आपको सन्मार्ग की ओर प्रेरित किया जाय। विश्वास है कि हमारे अंतरंग में रहे हुए मंगल भावों को आप समझने की कोशिश करेंगे और अपनी मिथ्या धारणाओं में परिवर्तन करके इह लोक और परलोक को सुधारेंगे, इस पवित्र भावना के साथ यह कथन समाप्त किया जाता है।

21.12.50 — निवेदक
सदर दिल्ली — पूर्णचन्द्र दक

समीक्षा

समीक्षक - पं. बसंतीलाल न. न्यायतीर्थ
(जैन संयोजना समिति के तीन सदस्यों द्वारा)

प्राक्कथन

(1) इसी अप्रैल मास में दिल्ली में जैन श्वेताम्बर तेरापंथी आचार्यश्री तुलसीजी का पदार्पण हुआ था। कुछ अनन्तर स्थानकवासी सम्प्रदाय के पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी का भी शुभागमन हुआ। इससे जैन सिद्धान्त की अच्छी प्रभावना हुई और सार्वजनिक रूप से नगरवासियों का उस ओर ध्यान गया।

(2) लेकिन इसी के साथ यह भी ज्ञात हुआ कि जैन सिद्धान्त के प्रतिपादन में, विशेषकर दया-दान सम्बन्धी मान्यता पर बीच में कुछ उलझन और असंतोष भी है। वह पत्रों और पर्चों में भी सामने आया और किंचित् क्षोभ का भी कारण बना।

(3) फलतः एक समिति का निर्माण हुआ जो एक-दूसरे की शंकाओं को लेकर उभयपक्षों से उनके मंतव्य प्राप्त करे और यदि आवश्यक हो, तो अपनी ओर से प्रतिप्रश्नों का निर्माण करके विवादस्थ विषय को और भी स्पष्ट कर ले।

(4) समिति को अत्यन्त प्रसन्नता है कि उपर्युक्त दोनों पूज्य आचार्यों और दोनों पक्षों के प्रतिनिधि सदस्य श्री मोहनलाल कठौतिया एवं श्री कुन्दनलाल पारख से उसे तत्पर और हार्दिक सहयोग मिला। समिति इस कृपा के लिए उनकी आभारी एवं कृतज्ञ है।

(4) इसके साथ सम्पूर्ण प्रश्न और दोनों ओर से प्राप्त उत्तर अविकल रूप से प्रकाशित किये जा रहे हैं, जिससे दोनों पक्षों की मान्यता स्पष्ट हो जाती है।

(6) समिति उन सब महानुभावों की ऋणी है जिन्होंने संयम और सहिष्णुता का वल देकर समिति को अपना काम सुचारु रूप से सफल करने में सहायता पहुँचाई है।

(ह:) राजेन्द्रकुमार जैन (ह:) राजकृष्ण जैन (ह:) जैनेन्द्रकुमार

भूमिका

11 मई 1950 के प्रातः कुछ स्थानकवासी जैन सज्जन तेरापंथ के आचार्यश्री तुलसीजी के पास शंका-समाधान की दृष्टि से उपस्थित हुए थे। वहाँ कुछ चर्चा के अनन्तर यह निश्चय हुआ कि कतिपय जैन बन्धु मिलकर निश्चय कर लें कि इसके लिए कौन-सी विधि सर्वोत्तम होगी। तदनुसार फिर दोनों ओर के आचार्यों अर्थात् आचार्यश्री तुलसीजी तथा आचार्यश्री गणेशलालजी से सहयोगपूर्वक प्रश्नों का निराकरण प्राप्त किया जाय।

उसी दिन संध्या को श्री राजकृष्णजी के निवासस्थान पर निम्नलिखित सज्जन एकत्र हुए :-

सर्वश्री आनन्दराज सुराणा, मोहनलाल कठौतिया, कुन्दनलाल पारख, जगन्नाथ नाहर, भीखनलाल, गिरधरलाल सेठ, पूर्णचन्द दक, बद्रीप्रसाद जैन, मोतीलाल रांका बगडीवाला, गंगाराम जैन, मोतीलाल वरड़िया, जयचन्दलाल दफ्तरी, रतनलाल पारख, राजकृष्ण जैन, राजेन्द्रकुमार, सोहनलाल, प्रेमचन्द भीमा तथा जैनेन्द्रकुमार आदि।

काफी चर्चा और विचार-विनिमय के बाद निर्णय हुआ कि एक समिति नियुक्त की जाय जो दोनों ओर के प्रश्नों को लेकर उन पर दोनों आचार्यों के मन्तव्य और स्पष्टीकरण प्राप्त करे और सर्वसाधारण के लाभ के लिए उन्हें एक साथ मुद्रित और विज्ञापित कर दे।

समिति के लिए तीन नाम उसी समय निश्चय हुए जिन पर स्थानकवासी और तेरापंथी समाज की ओर से क्रमशः एक-एक व्यक्ति चुन कर अपने में सम्मिलित कर लेने का भार छोडा गया। नाम यह हैं : सर्वश्री (1) जैनेन्द्रकुमार (2) राजेन्द्रकुमार तथा (3) राजकिशन। समिति के कार्य-संचालन का भार संयोजक श्री जैनेन्द्रकुमार पर रहा।

उल्लिखित दोनों समुदायों की ओर से क्रमशः श्री कुन्दनलाल पारख तथा श्री मोहनलाल कठौतिया यथाविधि समिति के सदस्य हुए।

उसी दिन यह निर्णय भी हुआ कि 18 मई तक दोनों ओर की प्रश्नावलियाँ प्राप्त हो जायं और उन्हें यथाशीघ्र दोनों ओर के आचार्यों के मन्तव्य प्राप्त करने के लिए भेज दिया जाय।

16 मई की संध्या को एक और बैठक श्री जैनेन्द्रकुमार के निवासस्थान पर हुई जिसमें समिति के कार्य के लिए अक्षयकुमार की नियुक्ति कार्यमन्त्री पद पर की गई।

उसी दिन समिति ने आशा व्यक्त की कि जब तक समिति का कार्य जारी है, किसी प्रकार के पर्चे या प्रश्न सार्वजनिक रूप से किसी ओर से न बाँटे जायेंगे और न प्रकाशित किये जायेंगे।

20 मई को पुनः संध्या समय श्री जैनेन्द्रकुमार के निवासस्थान पर समिति की बैठक हुई जिसमें दोनों ओर से प्राप्त 9 एवं 6 प्रश्नों को ज्यों-का-त्यों आचार्यों की सेवा में भेजना निश्चय हुआ और वे अगले दिन भेज दिए गए।

एक ही समय दोनों ओर भेजी प्रश्नावलियो के उत्तर प्राप्त हो गए।

28 मई को उन प्राप्त उत्तरो पर से 8 प्रतिप्रश्न श्री जैनेन्द्रकुमार (संयोजक) तथा पं. राजेन्द्रकुमार ने निर्माण किये और स्पष्टीकरण के लिए दोनों ओर पुनः भेज दिये गए।

तदुपरांत समिति के वक्तव्य सहित समस्त प्रश्नोत्तर प्रकाशित करने के लिए वक्तव्य लिखने का कार्यभार पं. राजेन्द्रकुमार को सौंपा गया। उन्होंन एक अन्तिम प्रश्न पूर्ण स्पष्टीकरण के अभिप्राय से 24 जुलाई को और किया जिसका उत्तर भी दोनो ओर से प्राप्त हो गया।

इस प्रकार समिति के प्राक्कथन सहित समिति को प्राप्त प्रश्नोत्तर तथा प्रतिप्रश्नोत्तर सर्वसाधारण की जानकारी के लिए इस पुस्तक में प्रकाशित किए जा रहे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन बहुत पहले अर्थात् जुलाई मास के अन्त में ही हो जाना चाहिए था किन्तु कुछ अपरिहार्य कारणो से इसमें काफी विलम्ब हो गया है। इसके लिए समिति को अति खेद है।

आशा है, जिस सद्भावना से प्रेरित होकर इस समिति का निर्माण हुआ था, वही भावना आगे बनी रहेगी और दोनों संप्रदायों का आपसी सम्बन्ध और व्यवहार मधुर होता जाएगा।

अक्षयकुमार
कार्यमंत्री
जैन संयोजना समिति

21 दरियागंज, दिल्ली,
10/10/1950

श्री श्वेताम्बर स्थानकवासी जैन समाज
दिल्ली की ओर से
श्री कुन्दनलाल पारख द्वारा प्रेषित प्रश्न

नोट- नीचे लिखे प्रश्नों का उत्तर हां या ना में अर्थात् यदि पुण्यफल हो तो पुण्य और पुण्यफल न हो तो पापफल के रूप में अपेक्षित है। टेढ़ी-मेढी भाषा में भावो को छिपाने की कोशिश न हो। 'पुण्य नहीं होता है' ऐसा लिखकर भाव न छिपाया जाय किन्तु 'पाप होता है' ऐसा स्पष्ट उत्तर होना चाहिए। कारण कि क्रिया का फल पुण्य न होने पर पाप होता है, दो में से कोई एक फल अवश्य होता है, जो फल हो वह विधिरूप भाषा में स्पष्ट शब्दों में अपेक्षित है। कर्ता को क्रिया का कोई फल अवश्य होता है। यदि रक्षारूप शुभ भाव से निर्जरा होती हो तो वह बतावें। पुण्य, पाप, निर्जरा, संवर, जो-कुछ हो, उत्तर मे दो टूक शब्द अपेक्षित हैं ताकि साधारण जनता बात समझ सके। धर्म-गुरुओ के मुख से भले-बुरे कार्यों का फलाफल सुनकर साधारण जनता कार्य में प्रवृत्ति या निवृत्ति करती है। पुण्य-पाप आदि शास्त्रीय शब्दों में उत्तर अपेक्षित है। लंबी व्याख्या में उत्तर देकर प्रश्न को कुचक्र में न डाला जाय, किन्तु जनसाधारण वस्तुस्थिति समझ सके, भुलावे में न पड़े, ऐसी सद्भावना से उत्तर अपेक्षित है।

(1)

औषधालय, विद्यालय, अनाथालय, शरणार्थी कैम्प आदि की अन्न, वस्त्र, औषध और मकानादि द्वारा शुभ भावना से सहायता करने वाले को पुण्य होता है या पाप ?

जैनाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज द्वारा प्रदत्त उत्तर

(1) औषधालय, विद्यालय, अनाथालय, शरणार्थी कैम्प आदि की अन्न, वस्त्र, मकान, औषध आदि द्वारा शुभ भावना में सहायता करने वाले को पुण्य होता है। पुण्य और पाप का बन्ध सहायता करने वाले की भावना पर मुख्य रूप से आश्रित है। शुभ भावना से देने वाले को पुण्य होता है।

जैनाचार्य श्री तुलसीजी महाराज द्वारा प्रदत्त उत्तर

प्राग्-वक्तव्य

प्रायः अधिकतर प्रश्नो में पुण्य और पाप-- इन दो शब्दों में उत्तरों की मांग है, इसलिए 'आध्यात्मिक दृष्टि में' इनका क्या अर्थ है, क्या स्थान है ? यह बताना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि साधारण लोग पुण्य शब्द का बहुत महत्त्व समझते हैं और पाप शब्द को बहुत घृणित मानते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि में स्थिति ऐसी नहीं है। इसमें पुण्य और पाप का अर्थ होता है - बन्धन। पुण्य शुभ पुद्गलों का बन्धन है - सोने की बेड़ी है और पाप अशुभ पुद्गलों का बन्धन है - लोहे की बेड़ी है, आखिर दोनों बेड़ियाँ हैं। आध्यात्मिक दृष्टि का ध्येय है - मोक्ष। वह इन दोनों के छूटने से होगा। जैन शास्त्रो मे अग्नि जलाना पाप बताया गया है। भगवान् महावीर का यह आशय आत्मसाधना की अपेक्षा से है। एक व्यक्ति मंगल-उत्सव के उपलक्ष्य में दीप जलाता है, यह लोकदृष्टि में प्रायः पुण्यकार्य माना जाता है किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से वह पुण्यकार्य नहीं माना जाता। लोकदृष्टि में पाप शब्द का व्यवहार बहुधा नृशंसता, चोरी, व्यभिचार आदि कार्यो के लिए ही होता है। इससे यह स्पष्ट है कि जहां आध्यात्मिक दृष्टि से तत्त्व-चिन्तन के रूप में पाप शब्द का प्रयोग किया जाता है, वहां लोकदृष्टि से या व्यावहारिक दृष्टि से प्राय. "पाप" नहीं भी कहा जाता। जैसे भगवान् महावीर ने अग्नि जलाने को पाप कहा, यह अध्यात्मदृष्टि का निर्णय है, सूक्ष्म तत्त्व-चिन्तन का निष्कर्ष है। अब कोई पूछे कि मांगलिक दीप जलाने में पुण्य है या पाप ? तो कहना होगा कि भाई ! लोकदृष्टि में यह पुण्यकार्य कहा जाता है, आध्यात्मिक दृष्टि में नहीं। आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार प्राणी का घात करना, वनस्पति को छूना पाप है और लोकदृष्टि से देश-रक्षा के लिए शत्रु से लड़ना, मान्य व्यक्तियों को पुष्प-मालाएं पहनाना आदि पुण्यकार्य माने जाते हैं। इसलिए प्रत्येक क्षेत्र में पुण्य और पाप शब्द का व्यवहार अपेक्षाकृत होता है। हमें उदारता के साथ प्ररूपक का दृष्टिकोण समझना चाहिए कि वह किस अपेक्षा से, किस अर्थ में, किस शब्द का प्रयोग कर रहा है। स्याद्वादी के लिए यह कोई समस्या नहीं है।

निम्न कतिपय प्रश्नों के उत्तरों का आशय समझने के लिए इस 'प्राग्वक्तव्य' का मनन करना अत्यन्त आवश्यक है।

(1) औषधालय, विद्यालय, अनाथालय, आदि लोकधर्म के कार्य हैं, इसलिए ये लौकिक पुण्यकार्य कह जाते हैं। कर्ता को आध्यात्मिक क्रिया से साथ होने वाला पुण्य नहीं होता।

समीक्षा

स्थानकवासी संघ दिल्ली की ओर से पूछे गये प्रश्नों के तेरापन्थी आचार्य ने जो उत्तर दिये, वे समिति ने स्थानकवासी संघ को नहीं बताये। इसी तरह समिति के वक्तव्य के अनुसार स्थानकवासी सम्प्रदाय के द्वारा दिये गये उत्तर तेरापन्थी संघ को नहीं बताये गये। दोनो ओर के प्रश्न और उत्तर अब जैन-संयोजना नामक पुस्तिका के द्वारा समिति की ओर से प्रकाशित किये गये हैं। उन्हें देखने से यह ज्ञात हुआ कि तेरापन्थी आचार्य ने स्थानकवासी संघ के द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर देते हुए अपनी हमेशा की परिपाटी के अनुसार अस्पष्ट और गोल-माल भाषा का प्रयोग किया है। उत्तर देने की उनकी यह गूढ़ शैली चिरअभ्यस्त है। अतः स्पष्ट शब्दों में उत्तर की मांग करने पर भी उन्होंने अपनी उसी शैली का अनुसरण कर साधारण जनता को भुलावे में डालने का एक और प्रयत्न किया है। समझ में नही आता कि वे अपने सिद्धान्तों को जनता के सामने रखने में स्पष्ट भाषा का प्रयोग न करते हुए अस्पष्ट और गोलमाल भाषा का व्यवहार क्यों करते हैं ? उनकी यह गूढ भाषा-शैली यह बताती है कि वे अपने सिद्धान्तों को उनके असली रूप में जनता के सामने रखते हुए शरमाते हैं। अतः भाषा के गूढ़ आवरण में उन सिद्धान्तों को छिपाने की चेष्टा करते हुए-से प्रतीत होते हैं। अस्तु, प्रयोजन इतना ही है कि उनके द्वारा दिये गये उत्तरों की भाषा और भाव इतने अस्पष्ट हैं कि सर्वसाधारण को उनकी मान्यता की स्पष्टता नहीं होती। अतः सर्वसाधारण की जानकारी के लिए स्पष्टीकरण की आवश्यकता है ताकि कोई भ्रम में न पड़े। इस आशय से उनके उत्तरों की समीक्षा की जाती है :—

आचार्यश्री तुलसी के उक्त रेखांकित वाक्य के दो अर्थ हो सकते हैं : (1) आध्यात्मिक क्रियाओं से अतिरिक्त क्रियाओं से भी पुण्य होता है; आध्यात्मिक क्रियाओ से होने वाला पुण्य एक प्रकार का है और औषधालय आदि उक्त कार्यों से होने वाला पुण्य दूसरी प्रकार का। अतः लोकधर्म के इन कार्यों में आध्यात्मिक क्रियाओं के साथ होने वाला पुण्य तो नहीं होता किन्तु दूसरी तरह का पुण्य अवश्य होता है। (2) पुण्य आध्यात्मिक क्रिया के साथ ही होता है; और उक्त क्रियाएँ लोकधर्म की हैं अतः इनके कर्ता को किसी तरह का पुण्य नहीं होता, पाप होता है।

उक्त दो अर्थो में से यदि आचार्य तुलसी का अभिप्राय पहले अर्थ से है तो बड़ी प्रसन्नता की बात है कि उन्होंने अपने सम्प्रदाय के पूर्वाचार्यों की इन कार्यों में एकान्त पाप मानने की मान्यता से ऊपर उठकर इन्हें पुण्यकार्य मानने का सुसाहस व्यक्त किया है। "आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता" यह वाक्य-रचना यही सूचित करती है कि आचार्य

तुलसी को प्रथम अर्थ ही अभिप्रेत है। यदि उन्हें दूसरा अर्थ इष्ट होता तो निस्संदेह शब्द-रचना इस प्रकार की होती "आध्यात्मिक क्रिया के साथ ही पुण्य होता है, इन क्रियाओं में पुण्य नहीं, किन्तु पाप होता है"। ऐसा होने पर भी यदि उनका भाव दूसरे अर्थ से है तो कहना पड़ेगा कि उन्हें इन कार्यों में पाप मानने की अपनी परम्परागत मान्यता को स्पष्ट रूप से जनता के सामने रखने का साहस नहीं हुआ है इसलिए "आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता" ऐसे गूढ़ शब्दों की ओट में जनता को भुलावे में डालने का प्रयास किया है। जब उनकी परम्परा इन लोकहित के कार्यों में पुण्य नहीं मानती तो स्पष्ट शब्दों में "पुण्य नहीं होता, पाप होता है" ऐसा कहने में क्यों हिचकिचाते हैं ?

अन्तरंग में पाप मानते हुए भी आचार्य तुलसी ऐसे कार्यों के फल के लिए 'लौकिक पुण्य' शब्द का प्रयोग करते हैं। यह शब्द द्रविड प्राणायाम की तरह निश्चित रूप से उनके शब्दकोष में पाप का ही पर्यायवाची है।

प्रश्न तो इतना ही है कि शुभ भाव से उक्त कार्य करने से पुण्यप्रकृति सातावेदनीय आदि का बन्ध होता है या असातावेदनीय आदि पापप्रकृतियों का। इस प्रश्न का कोई उत्तर न देकर "आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नहीं होता" यह गोलमाल उत्तर देकर मूल प्रश्न को वैसे ही छोड़ दिया गया है। तेरापंथ की मान्यतानुसार पुण्य एक ही प्रकार का है और वह आध्यात्मिक क्रिया के साथ ही होता है। योग सहित क्रिया, चाहे वह लौकिक हो या आध्यात्मिक, उसका पुण्य या पाप-बन्धन-रूप फल अवश्य होता है। कर्मफल-बन्धन में लौकिक या आध्यात्मिक भेद नहीं होता। अतः जनहित के इन कार्यों को लौकिक पुण्यकार्य कहने वालों से यह पूछना है कि इन क्रियाओं से जो बन्ध होता है वह पुण्य के शुभ पुद्गलों का होता है या पाप के अशुभ पुद्गलों का ? तब तो बचाव का कोई रास्ता न होने से उन्हें अपनी मान्यता के अनुसार कहना ही पडता है कि जीव बचाना, आदि जनहित के कार्यों से पाप के पुद्गलों का ही बंध होता है। यह है उनकी मान्यता का सच्चा रूप।

अनुकम्पा करना - दीन-दुखियों की सहायता करना जैन धर्म का प्राण है। यह अहिंसा का विधि रूप है। साथ ही मैत्री भावना का सूचक है। इन कार्यों में पाप मानना जैन धर्म के सत्य सिद्धान्तों के साथ खिलवाड़ करना है।

(2)

(1) अनुकम्पा-बुद्धि से प्रेरित होकर आग लगे मकान या बाड़े के द्वार खोल कर मनुष्य, गाय, भैंस आदि प्राणियों की प्राणरक्षा करना, ऊपर से गिरते हुए अथवा मोटर की झपट में

आते हुए बालक को बचा लेना और गौरक्षा के लिए कसाई को उपदेश देना पुण्य का कारण है या पाप का ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(2) अनुकम्पा-बुद्धि से प्रेरित होकर विपत्तिग्रस्त की रक्षा करना, आग, पानी या मोटर आदि किसी भी विपत्ति में फंसे हुए की रक्षा करना धर्म है, पुण्य है। रक्षा करने की बुद्धि होना उत्तम भावना है यदि उसमें किसी प्रकार का स्वार्थ निहित न हो। 'सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं' –जगत् के सब जीवों की रक्षारूप दया के लिये भगवान् ने प्रवचन फरमाया है। यहाँ दया शब्द के साथ रक्खण विशेषण विधिरूप अहिंसा का बोध कराने के लिये ही है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

आध्यात्मिक दृष्टि का मुख्य लक्ष्य आत्मशोधन है, जीवन-मृत्यु नहीं। लोकदृष्टि का मुख्य लक्ष्य है - प्राणरक्षा। वीतराग भावना से आत्मशोधन के लिए उपदेश या प्रवृत्ति की जाती है, वह आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। इसके अतिरिक्त केवल प्राणी को बचाने के लिए ही जो-कुछ किया जाता है वह लोकधर्म है अतः यह आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाले पुण्य का कारण नहीं, लौकिक पुण्यकार्य है। गौरक्षा को स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्यश्री जवाहरलालजी ने भी सांसारिक कार्य माना है। जैसे-"कृषि, गोरक्षा, वाणिज्य, संग्राम, कुशील......ये क्रियाएं, चाहे मिथ्यादृष्टि की हों या सम्यग्दृष्टि की हों, संसार के लिए ही होती हैं, इनसे मोक्षमार्ग की आराधना न होना प्रत्यक्षसिद्ध है। (सद्धर्म मण्डन, पृ. 55)

समीक्षा

इस प्रश्न के उत्तर में आचार्य तुलसी प्राणरक्षा - जीवरक्षा को लोकदृष्टि का मुख्य लक्ष्य कहते हैं। शास्त्रकार तो कहते हैं "सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए भगवया पावयणं सुकहियं" –सब जीवों की रक्षारूप दया के लिए भगवान् महावीर ने प्रवचन का प्रतिपादन किया है।" यहाँ शास्त्रकार तो जीवों की रक्षा को प्रवचन का हेतु - मूलाधार बता रहे हैं। क्या सकल जिन-प्रवचन का मूल हेतुरूप जीव-रक्षण भी आचार्य तुलसी की दृष्टि में केवल लोकदृष्टि का ही कार्य है ? यदि ऐसा है तो यह कहना होगा कि आचार्य तुलसी की आध्यात्मिक दृष्टि भगवान् महावीर और गणधरों की आध्यात्मिक दृष्टि से भी विशेष उच्च कोटि की है !! हन्त !

अफसोस ! महाअफसोस!! जीव-रक्षण के पुनीत कार्य को अन्तर् से पाप मानना और ऊपर से लौकिक पुण्यकार्य कहना अहिंसा की हिंसा करना नहीं तो और क्या है ? आध्यात्मिकता के नाम पर ऊपर से गिरते हुए व मोटर की झपट में आते हुए अबोध बालक को हाथ पकड कर बचा लेने में लौकिक पुण्य के सुनहले नाम से रूपान्तर में पाप मानना आध्यात्मिकता का अजीर्ण है और उसकी विडम्बना करना है। लौकिक कार्यों का फल इनके यहां पाप माना गया है।

अपने पक्ष के समर्थन में आचार्य तुलसी ने स्वर्गीय पूज्य आचार्यवर्य श्री जवाहरलालजी म. के वचनों को विकृत तथा अर्थान्तर कर के उद्धृत कर भ्रम पैदा करने का प्रयास किया है। पूज्य जवाहरलालजी म. ने अनुकम्पा करके मरती हुई गाय के प्राण बचाने के कार्य को सांसारिक कार्य कभी नहीं कहा। इस उत्तर में जो उनके वचनों का उद्धरण दिया गया है उसमें कृषि, वाणिज्य आदि की तरह व्यवसाय (धन्धा, जीविका-निर्वाह) के रूप में किये जाने वाले गोरक्षा-गोपालन को सांसारिक कार्य माना है, न कि मरती हुई गाय को अनुकम्पा-बुद्धि से बचाने के कार्य को। किसी के कथन को तोड़-मरोड कर अन्यथा रूप में बताना सामान्य शिष्टाचार के भी विपरीत है। ऐसा कार्य शिष्टसम्मत कार्य नहीं है। किसी काम को आर्थिक दृष्टि से करने में और परोपकार की दृष्टि से करने में कर्ता की बुद्धि में बडा अंतर रहता है।

आग से जलते हुए, ऊपर से गिरते हुए, मोटर की झपट में आते हुए बालक को, जो व्यक्ति प्राणरक्षा में पाप मान कर और अपनी मानवसुलभ सहृदयता एवं सदयता की अवहेलना कर चुपचाप देखा करता है वह पाषाणहृदय मानव कहलाने तक का अधिकारी नहीं हो सकता। इस पर भी यदि ऐसा व्यक्ति उस बालक को नहीं बचाने में अपनी अहिंसा की आराधना समझता है और अपने-आप को अहिंसक मानने की प्रगल्भता बताता है तो यह बालकों की-सी हठ नहीं तो और क्या है ?

तेरापन्थ समुदाय आध्यात्मिकता के नाम पर निर्दयता का पोषण और प्रचार करता है। इस पर भी वह दावा यह करता है कि ऐसा करने में ही अहिंसा की आदि से अन्त तक आराधना है। यह तो अहिंसा का उपहास है। अहिंसा का ढोल पीटने वाले शुद्ध हृदय से अहिंसा के मर्म को समझें, यही भावना है।

(3)

पितृभक्ति से प्रेरित होकर पुत्र द्वारा पिता के हाथ-पैर दबा देने और प्रणाम करने में पुण्यबंध होता है या पापबंध ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(3) पितृभक्ति से प्रेरित होकर पुत्र द्वारा पिता के हाथ-पैर दबा देने से और नमस्कार करने से पुण्य होता है– पुत्र द्वारा पिता की सेवा और नमस्कार करना पुण्य कर्तव्य है। इस कर्तव्यपालन से पुण्य होता है। पाप होने की बात कहना जैन धर्म की अनभिज्ञता प्रकट करना है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

(3) पारिवारिक जीवन बिताने वाला व्यक्ति पिता की भौतिक सेवा कर पितृ-ऋण चुकाता है, इसमें कौन-सी ऐसी विशेषता है, जिसे आध्यात्मिक कहा जाय ? आध्यात्मिक सेवा पिता की की जाए अथवा अन्य किसी की, वह धर्मानुगामी पुण्य है। और पितृ-सम्बन्ध के नाते की जाने वाली शारीरिक सेवा या प्रणाम लौकिक पुण्य कार्य हैं।

समीक्षा

ऊपर प्रश्न तो किया गया है पुण्यबंध और पापबंध का और आचार्य उत्तर देते हैं कि इसमें क्या विशेषता है कि इसे आध्यात्मिक कहा जाय ? आध्यात्मिक कहने या न कहने का तो प्रश्न ही नहीं किया गया है। पिता की सेवा करने और उन्हें प्रणाम करने को भी ये आचार्य उन्हीं पेटेण्ट शब्दों में लौकिक पुण्यकार्य कहते हैं। अर्थात् उनका मानना है कि इनमें पुण्य का बंध नहीं होता है। जहाँ पुण्य का बंध नहीं होता वहाँ या तो अबंध होता है या पाप का बंध होता है; गृहस्थ की अबंध अवस्था तो है नहीं अतः उनकी मान्यता है कि पाप का बंध होता है। कैसी विचित्र मान्यता है ! एक पुत्र पिता को दण्डों से मारता है, वचनों से अपमान करता है, उसे भी पाप होता है और एक विनयी पुत्र पिता की सेवा-शुश्रूषा करता है, उनका आदर करता है, उन्हें प्रणाम करता है, उसे भी पाप होता है। इस अंधेरी व्यवस्था का भी कोई ठिकाना है ? उववाई सूत्र में माता-पिता की सेवा करने से 14000 वर्ष की आयु का देव होना बताया गया है। परम उपकारी माता-पिता की सेवा-भक्ति करने और उन्हें प्रणाम करने मे पाप की प्ररूपणा करना अपनी अनभिज्ञता प्रकट करना है।

(4)

प्रतिमाधारी श्रावक को मासखमण (एक मास का उपवास) के पारणे में शुभ भावना से शुद्ध आहार-पानी देने से और अणुव्रती संघ के एक सदस्य द्वारा दूसरे सदस्य की अन्न, वस्त्र,

औषध और मकानादि द्वारा स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित होकर की गई सेवा से पुण्य होता है या पाप ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(4) प्रतिमाधारी श्रावक को मासखमण (एक मास का उपवास) के पारणे में शुभ भावना से शुद्ध आहार-पानी देने से धर्म भी होता है और पुण्य भी। शास्त्र में श्रावक को गुणरत्नों की खान कहा गया है और प्रतिमाधारी श्रावक के लिये श्रमणभूत जैसा उच्चतम विशेषण प्रयुक्त किया गया है। अतः श्रावक को कुपात्र बताकर उसे दिये जाने वाले आहार-पानी का फल पाप बताना शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा है।

एक श्रावक (अणुव्रती) द्वारा स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित होकर दूसरे श्रावक की अन्न, वस्त्र, औषध और मकानादि द्वारा सहायता करना पुण्य है, पाप नहीं। यह प्राणी जगत् पारस्परिक सहयोग पर आश्रित है। निष्काम भाव से सहायता या सेवा करना जैन धर्मानुसार पुण्यकार्य है और पुण्यबंध का कारण है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

(4) प्रतिमाधारी श्रावक और अणुव्रती संघ के सदस्य मोक्षार्थ दान के अधिकारी हैं ही नहीं। स्थानकवासी सम्प्रदाय के आचार्यश्री जवाहरलालजी ने भी यह माना है-- "जो जिस दान के लायक नहीं है वह उस दान का यहाँ अक्षेत्र समझा जाता है, जैसे मोक्षार्थ दान का साधु से भिन्न जीव अक्षेत्र है।" (सद्धर्ममण्डन, पृष्ठ 135)। इसलिए इन कार्यों में धर्मानुबंधी पुण्य नहीं होता।

समीक्षा

तेरापन्थी सम्प्रदाय के मत के अनुसार केवल साधु ही सुपात्र है, और सब कुपात्र हैं। प्रतिमाधारी श्रावक, अणुव्रती संघ का सदस्य, सब उसी तरह कुपात्र हैं जैसे चोर, जार, ठग आदि। इस अंधेरी नगरी जैसी व्यवस्था के लिए क्या कहा जाय ! कहाँ तो प्रतिमाधारी श्रावक, जिसकी शास्त्रकारों ने 'श्रमणभूत' (साधु-समान) कह कर प्रशंसा की है और कहाँ चोर, व्यभिचारी और ठग ? क्या दोनों कभी एकसमान हो सकते हैं ? 'अंधेरी नगरी अनबूझ राजा, टके सेर भाजी टेक सेर खाजा' वाली कहावत ठीक-ठीक ऐसा मानने वालों पर चरितार्थ होती है।

जैन सूत्रों में साधु-साध्वी, श्रावक और श्राविका को गुण-रत्नों का पात्र कहा गया है। ऐसी अवस्था में यह कहना कि "साधु थी अनेरो कुपात्र छे। अनेरा ने दीधां अनेरी प्रकृतिनो बंध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पाप नी छे" (भ्रमविध्वंसन, पृ. 7)।

"कुपात्रदान, मांसादिक सेवन, व्यसन, कुशीलादिक — ये तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर, जार, ठग, ये तीनों समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्रदान भी मांसादि सेवन, व्यसन, कुशीलादि की श्रेणी में गणना करने योग्य हैं" (भ्र.वि., पृ. 82)।

तेरापन्थ के प्रवर्तक भीखनजी के अनुगामी आचार्य जीतमलजी की कितनी भीषण प्ररूपणा है ! शास्त्रवर्णित गुणरत्नों के पात्र और श्रमणभूत विशेषण से अलंकृत प्रतिमाधारी श्रावक को चोर, जार और ठग की तरह दान की अपेक्षा कुपात्र की श्रेणी में रखकर उसे दान देने में मांस-भक्षण और वेश्यागमन जैसा भयंकर पाप मानना विवेकहीनता की पराकाष्ठा है। कोई भी, थोड़ी भी बुद्धि रखने वाला व्यक्ति उच्च गुणसम्पन्न प्रतिमाधारी श्रावक को कुपात्र नहीं मान सकता। अतः ऐसे श्रावक को कुपात्र बताकर उसे आहारादिक देने में पाप बताना शास्त्रविरुद्ध प्ररूपणा है।

इसी तरह एक अणुव्रती संघ का सदस्य स्वधर्मी वात्सल्य से प्रेरित होकर दूसरे अणुव्रती (श्रावक) को अन्न-वस्त्रादि द्वारा सहायता करता है तो जैन धर्म के अनुसार वह पुण्यकार्य है, पापकार्य कदापि नहीं। ऐसा करने से पुण्यप्रकृति का बंध होता है। पापप्रकृति का बंध नहीं होता।

आचार्य तुलसी कहते हैं कि श्रावक और अणुव्रती संघ के सदस्य मोक्षार्थ दान के अधिकारी ही नहीं। यद्यपि "तथा-रूप श्रमण-माहण को शुद्ध ऐषणिक दान देने से एकान्त निर्जरा होती है, इस भगवती सूत्र के पाठ में आये हुए 'माहण' शब्द (जिसका अर्थ है अहिंसा में विश्वास रखने वाला) से श्रावक का भी ग्रहण किया जा सकता है। तथापि थोड़ी देर के लिए श्रावक को मोक्षार्थ दान का अधिकारी नहीं भी मानें, तो भी प्रवचन-प्रभावना और स्वधर्मी-वत्सलता के नाते सहायता का अधिकारी है ही, ये समकित के लक्षण और आचार हैं। मैत्रीभाव और 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' के सिद्धान्त से भी श्रावक सहायता का पात्र है।

ठाणाङ्ग सूत्र में क्षेत्र-अक्षेत्रवर्षी मेघ की चौभंगी बताई गई है। एक मेघ क्षेत्र में बरसता है अक्षेत्र में नहीं, एक अक्षेत्र में बरसता है क्षेत्र में नहीं, एक क्षेत्र में भी बरसता है और अक्षेत्र में भी बरसता है और एक न क्षेत्र में बरसता है और न अक्षेत्र में। इसी तरह दाता पर यह चौभंगी लागू की गई है। इस चौभंगी के तीसरे अंग का स्वामी महान् उदारचेता बताया गया है। जो प्रवचन की प्रभावना के लिए उदार बनकर क्षेत्राक्षेत्र का भेद न करता हुआ मुक्तहस्त से दान देता है और ऐसे मुक्तदान के द्वारा कई अपात्रों को भी अपने दान से प्रभावित कर

शासन की प्रभावना करता है। चोर, ठग, वेश्या आदि को उनके पापकर्मों से छुड़ाने के आशय से दान देकर उन्हें पाप से बचा लेता है और अपने धर्म की प्रभावना करता है, ऐसा व्यक्ति शासन की प्रभावना की उत्कृष्ट भावना से तीथङ्कर गोत्र तक बांध सकता है। तीर्थकर गोत्र न बांधे तो अन्य पुण्यप्रकृतियां अवश्य बांधता है। जो जैन शास्त्र इस प्रकार से दान की प्ररूपणा करते हैं उनके नाम से ही साधु के सिवाय को कुपात्र मानना और उन्हें किसी भी भावना से देने में मांस-भक्षण, वेश्यागमन जैसा भंयकर पाप मानना कितनी असंगत मान्यता है !

(5)

नौ प्रकार का पुण्य केवल पंचमहाव्रतधारी साधु को देने से ही होता है या इनसे नीचे की भूमिका वाले गृहस्थादि को देने से भी ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(5) साधु जैसे उत्तम पात्र को शुभ भावना से अन्न-वस्त्रादि देने से तीर्थंकर नामकर्म जैसी विशिष्ट पुण्यप्रकृतियों का बंध होता है और साधु से इतर गृहस्थादि को भी शुभ भावना से देने से सातावेदनीयादि पुण्यप्रकृतियों का बंध होता है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(5) प्रश्न की शब्द-रचना त्रुटिपूर्ण है क्योंकि सब पुण्य दान से ही सम्बन्ध नहीं रखते। यहाँ दान सम्बन्धी जितने पुण्य बतलाये गये हैं, जैसे - अन्न, पानी, स्थान, वस्त्र, पाट-बाजोट, वे सब साधु-जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखने वाले ही हैं। अतः यह स्पष्ट जाना जाता है कि यहाँ शास्त्रकार का दृष्टिकोण साधुओं के लिए ही है।

समीक्षा

आचार्य तुलसी का कथन है कि अन्न, पानी, स्थान, वस्त्र, शयन आदि सामग्री साधु जीवन की आवश्यकताओं से सम्बन्ध रखने वाली है। परन्तु यह बात नहीं है। इनकी आवश्यकता तो गृहस्थ को भी होती है और श्रावक को भी होती है। इसलिये यह नहीं कहा जा सकता है कि ये साधु जीवन के लिए ही उपयोगी हैं, अतः साधुओं को ही देने से पुण्य होने का शास्त्रकार का दृष्टिकोण है। यहाँ यह कहा जा सकता है कि गृहस्थ को तो इनके अतिरिक्त भी रुपया, पैसा, स्त्री आदि की आवश्यकता होती है अतः रुपया पुण्य, गाय पुण्य

आदि की भी पुण्यों में गणना की जानी चाहिए थी। इसका उत्तर यह है कि ये पुण्य साधु के लिये ही मानने के पक्ष में भी यही बाधा आ सकती है। साधु को पात्र, औषध आदि देने से भी आप पुण्य मानते हैं, परन्तु इन नौ पुण्यों में पात्र पुण्य, औषध पुण्य तो नहीं गिनाया गया है। जैसे उपलक्षण से साधु की सामग्रियों का ग्रहण किया जाता है, इसी तरह उपलक्षण से गृहस्थ के लिए आवश्यक वस्तुओं का भी ग्रहण किया जाता है। अतः आचार्य तुलसी की यह युक्ति कि इसमें साधु जीवन के लिए उपयोगी पदार्थों की ही गणना है अतः उन्हें देना ही पुण्य है और साधु से इतर गृहस्थ या दीन-हीन आदि को देना पाप है; थोथी और निस्सार है। अतः यह मानना चाहिये कि साधु जैसे उत्तम पात्र को भी शुभ भावना से अन्न-वस्त्रादि देने से तीर्थंकरनाम जैसी विशिष्ट पुण्यप्रकृतियों का बंध होता है और गृहस्थादि को शुभ भावना से देने से सातावेदनीयादि पुण्यप्रकृतियों का बंध होता है।

इस प्रश्न के उत्तर में आ. श्री तुलसी स्पष्ट स्वीकार कर रहे हैं कि साधुओं को देने से ही पुण्य होता है, दूसरों को देने से पाप। अतः उत्तरों में प्रयुक्त लौकिक पुण्य शब्द का प्रयोग शब्द छल-मात्र है।

(6)

अहिंसा का अर्थ केवल न मारना ही है या मरते जीव को अनुकम्पा बुद्धि से बचा लेना भी ? क्या साधु के अतिरिक्त अन्य किसी प्राणी की प्राणरक्षा करना हिंसा है ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(6) अहिंसा का निवृत्तिरूप अर्थ किसी जीव की हिंसा न करना है और प्रवृत्तिरूप अर्थ मरते जीव की रक्षा करना है। जीवरक्षा की भावना अहिंसा है, हिंसा नहीं। चाहे साधु की रक्षा की जाय चाहे अन्य प्राणी की, जीवरक्षा हिंसा नहीं अपितु विधिरूप अहिंसा है। मारना हिंसा है तो रक्षा करना अहिंसा है। जैसे हिंसा में साधु-असाधु का भेद नहीं है वैसे ही रक्षा करने में भेद नहीं है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(6) न मारना अहिंसा है ही, इसके अतिरिक्त अनुकम्पा-बुद्धि से मरते जीव को बचा लेना भी अहिंसा है बशर्ते कि उसमें हिंसा और असंयम को पोषण न होता हो। अहिंसात्मक साधनों से होने वाली प्राणरक्षा हिंसा नहीं है, चाहे वह किसी की भी हो।

समीक्षा

इस उत्तर में आचार्य तुलसी अनुकम्पा-बुद्धि से मरते जीव को बचा लेने में अहिंसा तो मान लेते हैं परन्तु इसके साथ उनकी जो शर्त है वह यह सूचित करती है कि केवल साधु की प्राणरक्षा में ही अहिंसा होना मानते हैं, अन्य जीवों की प्राणरक्षा करने में तो वे हिंसा और असंयम का पोषण मानते हैं अतः उस प्राणरक्षा को भी पाप कहते हैं। साधु के सिवाय अन्य किसी भी जीव की प्राणरक्षा करना उनके मत में एकान्त पाप है। जैसा कि वे कहते हैं "असंयती (साधु से इतर) जीव हिंसक हैं। उन्हें बचाना छः काय के शस्त्र तीखा करना है।"

सत्य दृष्टि से तो अनुकम्पा की भावना से, निःस्वार्थ बुद्धि से मरते जीव को बचा लेना अहिंसा है। इसमें शर्त की अपेक्षा नहीं है। जिस प्रकार हिंसा चाहे साधु की की जाय या अन्य किसी दूसरे प्राणी की, वह हिंसा ही है; इसी प्रकार प्राणरक्षा करना अहिंसा ही है चाहे वह साधु की प्राणरक्षा हो चाहे वह अन्य किसी जीव की हो, वह अहिंसा ही है। हिंसा में साधु-असाधु का भेद नहीं है इसी तरह रक्षा में भी साधु-असाधु का भेद नहीं है।

आचार्य तुलसी स्वयं इसी प्रश्न का उत्तर देते हुए यह स्वीकार कर लेते हैं कि "अहिंसात्मक साधनों से होने वाली प्राणरक्षा हिंसा नहीं है चाहे वह किसी की भी हो।" इसका र्थ यह हुआ कि यदि कसाई गाय को मार रहा है तो उस कसाई को "मत मार" का उपदेश ने रूप अहिंसात्मक साधन से गाय की प्राणरक्षा करना हिंसा नहीं है। हिंसा नहीं है - अर्थात् अहिंसा है - धर्म है। इसी तरह किसी के पांव नीचे कोई कीड़ा दबकर मर रहा हो तो कीड़े के प्राण की रक्षा के लिए उसे बता देने में कोई हिंसा नहीं हैं क्योंकि प्राणी बता देना तो अहिंसात्मक साधन है।

इसी प्रकार किसी प्यास के मारे मरते हुए व्यक्ति को किसी अनुकंपाप्रेमी गृहस्थ ने निःस्वार्थ भाव से छाछ पिलाकर उसके प्राणों की रक्षा कर ली तो आचार्यश्री तुलसी के इस कथन के अनुसार वह प्राणरक्षा हिंसा नहीं होनी चाहिए अर्थात् वह अहिंसा होनी चाहिये। कारण कि पानी पिलाकर प्राण बचाने में तो पानी के एकेन्द्रिय जीवों का आरम्भ होता है जिससे वह हिंसात्मक साधन हो जाता हैं। किन्तु छाछ पिलाने में किसी प्रकार का आरम्भ नहीं होता क्योंकि छाछ प्रासुक है। तब भी आचार्यश्री तुलसी की व्याख्या इसे अहिंसा नहीं स्वीकार करती। क्योंकि जिसको छाछ पिलाकर बचाया जा रहा है वह संयती (साधु) नहीं है। साधु न होने से उसके प्राण बचाने में असंयम का पोषण होता है। अतः उनकी अहिंसा की पूरी व्याख्या उसमें लागू नहीं होती। कहने को तो आचार्यश्री तुलसी कह गये कि अहिंसात्मक साधन से किसी भी प्राणरक्षा करना हिंसा नहीं है किन्तु इस विश्व में केवल साधु ही ऐसा है जिसमें इनकी शर्तें पूरी हो सकती हैं।

'चाहे वह किसी की भी हो' कहकर आचार्यश्री तुलसी ने शब्दछल किया है। जबकि वे मान
हैं कि साधु से इतर की प्राणरक्षा करने में असंयम का पोषण ही होता है।

जैन शास्त्र ऐसा नहीं मानता। कर्ता की भावना यदि शुद्ध है, तो असंयती का रक्षण अ
पोषण करना हिंसा नहीं है। तेरापंथ की अहिंसा की व्याख्या मरते जीव को बचा लेने से कत
सम्बन्ध नहीं रखती। वह तो निज का पाप टालने से सम्बन्ध रखती है। अतः उक्त वच
निरर्थक हैं।

(7)

(7) ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म, समाजधर्म, लौकिक उपकार, सांसारिक कर्तव्य आ
का पालन करने से पुण्य-बंध होता है या पाप ? ये कार्य मोक्षमार्ग में बाधक हैं या साधक
हो सकते हैं ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(7) शुभ योग से ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म, समाजधर्म, लौकिक उपकार, सांसारि
कर्तव्य आदि लोकोपकार के काम करने से पुण्य होता है। कर्ता यदि विवेकपूर्वक उक्त काम
का सदुपयोग करे तो वे मोक्षमार्ग में साधक हो सकते हैं।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(7) ग्राम-धर्म आदि कार्यों में जो जहाँ अहिंसात्मक होते हैं वे वहाँ पुण्य के कारण हैं औ
जहाँ हिंसात्मक होते हैं वहाँ पाप के। अत. ये कार्य मोक्षमार्ग के साधक भी हो सकते हैं औ
बाधक भी।

समीक्षा

इस प्रश्न का उत्तर देते हुए भी आचार्यश्री तुलसी ने अपने असली भावों क
वाक्कौशल से छिपाया है। उनके मत के अनुसार ग्रामधर्म, नगरधर्म, राष्ट्रधर्म, समाजध
सांसारिक भले कार्य आदि लौकिक धर्म हैं, लोकोत्तर धर्म नहीं हैं। लौकिक धर्म के का
भगवान् की आज्ञा बाहर के कार्य हैं अतः उनके संपादन में पुण्य नहीं हो सकता, पाप ही होत
है। पुण्य तो लोकोत्तर धर्म-संपादन करने में है। आचार्यश्री तुलसी प्राणरक्षा आदि को लौकिव
पुण्यकार्य कहते हैं मगर उनका फल तो अशुभ कर्मवर्गणा का बंध अर्थात् पाप ही बताते हैं

फिर भी आचार्यश्री तुलसी कहते हैं कि 'ग्रामधर्म आदि में जो जहां अहिंसात्मक हैं, वे वहां पुण्य के कारण हैं और जो हिंसात्मक हैं वे पाप के कारण हैं'। यदि यह बात सत्य है तब तो नीचे दृष्टान्त में पापरूप फल न होना चाहिये।

जैसे किसी गृहस्थ के अनेक मकान खाली पडे हैं, उनमें कोई रहने वाला नहीं है। दूसरी तरफ भूकम्प या अन्य कारणो से कुछ लोग गृहहीन हो गये हैं, वे दण्ड से तडप रहे हैं, उनको मकान की परम आवश्यकता है। मकान मालिक गृहस्थ ने अनुकम्पा-बुद्धि से प्रेरित होकर अथवा ग्रामधर्म, नगरधर्म का पालन करने की दृष्टि से गृहहीन व्यक्तियो को रहने के लिए अपने मकान प्रदान कर दिये। इस कार्य में किसी प्रकार की हिंसा नहीं है। मकान बने-बनाये तय्यार हैं। आश्रितों के लिए नहीं बनवाये गये हैं। ऐसी हालत मे मकान प्रदान करने वाले गृहस्थ को पाप-फल क्यों होना चाहिए ? किसी भी हिंसात्मक साधन का उपयोग नहीं किया गया है, अतः पुण्य-फल होना चाहिये। यही बात वस्त्र के सम्बन्ध में भी है। मगर उक्त कार्य सांसारिक हैं, तथा यह तो शरीररक्षण है, आत्मरक्षण नही है, इसमें असंयम का पोषण होता है अतः आचार्यश्री तुलसी की मान्यतानुसार अधर्म कार्य हैं। तथापि अहिंसात्मकता का उल्लेख करते पुण्य का कारण होना बताया गया है, इसमे गूढ़ माया है। यह अहिसात्मकता अपना पाप टालने से सम्बन्ध रखती है, न कि उन जीवों की सहायता करने के कार्यों से, जिनको कि सहायता अपेक्षित है।

जबकि जैन धर्म की मान्यता अपने पाप टालने में भी अहिंसा मानती है और दूसरों की रक्षा या सहायता करने में भी।

(8)

क्या धर्म और राजनीति परस्पर बाधक हैं या एक-दूसरे के साधक भी ? क्या धर्मात्मा राजनीति मे भाग ले सकता है ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(8) राजनीति (लोक-व्यवस्था) और धर्म (श्रुत-चारित्र धर्म) जन-समाज में एक-दूसरे के पूरक हैं। सुन्दर लोक-व्यवस्था होने पर ही जनता द्वारा श्रुत-चारित्र धर्म का पालन हो सकता है। राजनीति और धर्म एक-दूसरे के बाधक नहीं किन्तु पोषक हैं। जिस राजनीति में धर्म न हो वह राजनीति न होकर राक्षसी नीति होगी। धर्मशून्य राजनीति दानवी नीति है। धार्मिक सज्जन राजनीति में भाग ले सकते हैं।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(8) राजनीति और धर्म दोनों परस्पर क्वचित् साधक भी हैं और क्वचित् बाधक भी धर्मात्मा राजनीति में भाग नहीं ले सके, इसका कोई कारण नहीं।

समीक्षा

इस उत्तर में भी आचार्यश्री तुलसी चतुराई कर गये। उत्तर को पढ़कर पाठक इस नतीजे पर पहुंच सकता है कि आचार्यश्री तुलसी राजनीति का धर्म से सम्बन्ध मानते हैं किन्तु दरअसल बात यह नहीं है।

'राजनीति से धर्म जुदा है' - आचार्यश्री तुलसी कृत में आचार्यश्री तुलसी राजनीति को भूखे भेड़ियों की खुराक मानते हैं, जिसे वे नोंच-नोंच कर खाते हैं। राजनीतिज्ञ लोगों को भी इन्होंने भूखे भेड़ियों की उपमा दी है। दिल्ली के पत्रकार सम्मेलन में दिया हुआ इनका वक्तव्य इस बात का साक्षी है।

स्वार्थी राजनीतिज्ञों की बात को आगे रखकर सामान्य राजनीति को पापमय बताना अज्ञानता है। पं. जवाहरलाल नेहरू की राजनीति, जिसमें दुनिया के करोड़ों मानवों पर आने वाली आपत्ति को रोककर उन जीवों की आत्मा को शान्ति पहुँचाने की पवित्र भावना निहित है, पापमय कैसे हो सकती है ?

आचार्यश्री तुलसी ने उस राजनीति को अपने मन में रखकर उत्तर दिया है जिस राजनीति में पाप टालने की ही बात है। जैसे दारू मत पीओ, चोरी मत करो, व्यभिचार मत करो आदि निषेधात्मक या त्याग रूप जितनी बातें हैं उनका प्रचार करने वाली राजनीति इनको अभीष्ट है और उसी राजनीति का ये धर्म से सम्बन्ध मानते हैं। किन्तु अन्न, वस्त्र, शिक्षा और औषधि आदि द्वारा जनहित के कार्य करने वाली राजनीति को ये पापमय मानते हैं। क्योंकि इसमें असंयम का पोषण होता है। इस राजनीति में धर्मात्मा व्यक्ति भाग नहीं ले सकते। इस राजनीति का ये धर्म से कोई सम्बन्ध नहीं मानते हैं। जिस राजनीति में पाप टालने की बात हो वह इन्हें अभीष्ट है। मगर जिसमें लोगों की रक्षा या सहायता (भौतिक साधनों द्वारा) की जाती है वह इन्हें इष्ट नहीं है, उसमें पाप ही पाप है। खुराक मंत्री, शिक्षा मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री आदि अपने विभागों का जो काम करते हैं, उनका फल सर्वथा पाप होता है, ऐसा आचार्यश्री तुलसी का मन्तव्य है। जिस मंत्री का काम 'अमुक काम मत करो' का प्रचार करना है उसमें ये पुण्य मानते हैं।

इस भीतरी भाव को छिपाकर कितने सुन्दर शब्दों में उत्तर दिया गया है।

(9)

"जैनमात्र, असंयती (गृहस्थ) के खान-पान को हिंसा मानते है" –इस बात से आप कहाँ तक सहमत हैं और क्यों ? तथा स्थानकवासी और तेरापंथियों में दयादान को लेकर क्या मतभेद हैं ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(9) जैन धर्म विवेकप्रधान धर्म है। अतः जो गृहस्थ सज्जन आत्मविकास के क्षेत्र में प्रगति करने के लिये भोजन-पान आदि का विवेकपूर्वक उपयोग करते हैं, उनका खान-पान हिंसा नहीं है। इसके विपरीत इन्द्रिय पोषण की भावना से अविवेकपूर्वक जो भोजनादि क्रिया की जाती है, वह हिंसा है।

अस्तु, यह मानना कि 'जैनमात्र, गृहस्थ के खान-पान को हिंसा मानते हैं', जैन संस्कृति की परम्परा के सर्वथा प्रतिकूल है। खाने-पीने की अपेक्षा खाने-पीने के पीछे रही हुई भावना में हिंसा, अहिसा अधिक आश्रित है।

स्थानकवासी और तेरापंथियों में दयादान को लेकर जो मतभेद है वह संक्षेप मे बताया जाता है :-

(क) स्थानकवासी समाज साधु, सदाचारी गृहस्थ तथा सम्यगदृष्टि साधक को सुपात्र मानता है। तथा इन सब की शुभ भाव से सेवा-सत्कार तथा सहायता करने में धर्म एवं पुण्य मानता है, पाप नहीं। साधु के अतिरिक्त अन्य किसी गृहस्थ या दूसरे प्राणी को संकटकाल में अनुकम्पा-बुद्धि से अन्न-वस्त्रादि देने एवं अन्य सुख-सुविधा पहुँचाने में पुण्य मानता है। जबकि तेरापंथ समाज एकमात्र साधु को ही सुपात्र मानता है और साधु के सिवा सबको कुपात्र मानता है। फलतः साधु को भोजन-वस्त्रादि देने-दिलाने में धर्म तथा पुण्य मानता है और साधु के सिवा, चाहे श्रावक, माता-पिता, शिक्षक, राष्ट्रनेता, समाज-उद्धारक, जन-सेवक कोई भी हो, उनकी सद्भावना से सेवा, सहायता या अन्न-वस्त्रादि द्वारा सुख पहुँचाने में पाप मानता है। वह पाप भी साधारण नहीं किन्तु मांस-भक्षण और वेश्यागमन जैसा भयंकर !

'साधु थी अनेरो कुपात्र छै। अनेरा ने दीधां अनेरी प्रकृति नो बध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पापनी छै। (भ्र.वि.पृ.79)

'कुपात्र रूप कुक्षेत्र में पुण्यरूप बीज किम उगे'। (भ्र.वि.पृ.80)

'कुपात्र-दान, मांसादिक सेवन, व्यसन-कुशीलादिक ये तीनो एक ही मार्ग के पथिक हैं, जैसे चोर, जार, ठग ये तीनों समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्र-दान भी मांसादि सेवन,

व्यसन, कुशीलादि की श्रेणी में गणना करने योग्य है। (भ्र.वि.पृ.82)

(ख) स्थानकवासी समाज मरते जीव को बचाने में विधिरूप अहिंसा मानता है। अहिंसा का विकास दूसरों को न मारने तक ही सीमित नहीं है किंतु अपने प्राण समर्पित करके भी दूसरे के दुःख दूर करने और उनका रक्षण करने तक भी है। रक्षा करना हिंसा नहीं है किंतु अहिंसा है। हाँ, रक्षा में विवेक आवश्यक है। जबकि तेरापंथ समाज मरते जीव को बचाने में पाप मानता है। किसी भी साधन से, चाहे उपदेश से, चाहे अन्य प्रयत्न से जीव बचाने में पाप मानता है। बचाने की भावना मोहराग है। असंयती (साधु से इतर) जीव हिंसक हैं। उनको बचाना छ:काय के शस्त्र तीखा करना है। बलात्कार आदि का नाम लेकर रक्षा को अनुचित बताने की चेष्टा करते हैं, किंतु यह सब भुलावे में डालने का प्रयत्न मात्र है। ये रक्षा-मात्र को पाप मानते हैं।

"साधु के अतिरिक्त सब प्राणी असंयती होते हैं। असंयती जीवों के जीने आदि की कामना करना एकान्त पाप है। (श्रीमदाचार्य भीखणजी के विचार रत्न, पृ. 53)

कुपात्र जीव ने बचावियां, कुपात्र ने दिया दान जी।
ओ सावद्य कर्तव्य संसार नो, भाख्यो छै भगवान् जी।
(अनुकम्पा ढाल 12, कड़ी 10)

आचार्य तुलसीरामजी महाराज

(9) जहाँ तक हमारा अनुभव है, इस विषय में प्रत्येक जैन सम्प्रदाय एकमत है। कारण कि असंयम के पोषण में अहिंसा नहीं होती।

तेरापन्थ के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण में सर्वत्र आत्मशुद्धि का लक्ष्य रहता है और स्थानकवासी सम्प्रदाय के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण में आत्मशुद्धि की अपेक्षा शरीर-पोषण और शरीर-रक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। तेरापंथ सम्प्रदाय की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओं में आदि से अन्त तक अहिंसा और संयम का पूर्णतः निर्वाह होता है किन्तु स्थानकवासी सम्प्रदाय की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओं में अहिंसा और संयम की मर्यादा की उपेक्षा भी देखी जाती है। एक ओर जहाँ लौकिक दान-दया का विधान किया जाता है वहाँ दूसरी ओर इनको हिंसात्मक माना जाता है। जैसे जलशाला बनाना अथवा अन्नशाला खोलना आदि दानों को बहुत जीवों का उपकारक मान कर इनकी प्रशंसा करते हैं, वे सच्ची बात नहीं जानते हैं, वे उक्त दानो की प्रशंसा के द्वारा बहुत प्राणियों का घात कराना चाहते हैं क्योंकि प्राणियों के घात के बिना जल-दान या अन्नदान नहीं हो सकता है। अन्नशाला, जलशाला

आदि दानों में पुण्य होता है, यह यदि साधु कहे तो अनन्त सूक्ष्म और बादर जीवों का सदा नाश हो और थोड़े जीवों की थोड़े काल तक तृप्ति हो, इसलिए उक्त दानों में पुण्य होता है, यह साधु न कहें। यदि इन दानों में पुण्य नहीं होता है, ऐसा साधु कहे तो दानार्थी जीवो के लाभ में अन्तराय हो, इसलिए मोक्षार्थी पुरुष उक्त दोनो में पुण्य या पाप होना नहीं कहते है किन्तु किसी के पूछने पर मौन धारण करते हैं। यदि कोई अधिक आग्रह करे तो साधु को कहना चाहिए कि "हम लोग 42 दोषों को वर्जित करके आहार लेते हैं अत. ऐसे विषय में मोक्षार्थी पुरुषों का अधिकार नही है।" (स्थानकवासी सम्पदाय के आचार्यश्री जवाहरलालजी महाराज के तत्त्वावधान में सम्पादित सूत्रकृतांग प्रथम श्रुत-स्कन्द, तृतीय खण्ड, पृ. 59, 60, 61)

समीक्षा

'जहाँ तक हमारा अनुभव है इस विषय में प्रत्येक जैन सम्प्रदाय एकमत है' —यह आचार्य तुलसी का अनुभव ठीक नहीं है। क्योंकि दिगम्बर, श्वेताम्बर जैन ऐसा नहीं मानते। जैन धर्म विवेक-प्रधान धर्म है। जो विवेक-सम्पन्न गृहस्थ आत्म-विकास के क्षेत्र में प्रगति करने के लिए भोजन-पान आदि का अनासक्त भाव से विवेकपूर्वक उपयोग करते हैं उनका खान-पान हिंसा नहीं है। इसके विपरीत इन्द्रिय-पोषण की भावना से अविवेकपूर्वक जो भोजनादि क्रियाएं की जाती हैं, वह हिंसा है, चाहे वह साधु द्वारा भी क्यों न हो। खाने-पीने की अपेक्षा खान-पान के पीछे रही हुई भावना में हिसा-अहिंसा अधिक आश्रित है।

आचार्य तुलसी और उनके सम्प्रदायानुयायी गृहस्थ-मात्र के खान-पान में असंयम का पोषण मानते हैं। इसीलिए प्रतिमाधारी श्रावक को मासमखण - एक मास के उपवास के पारणे में शुभ भावना से शुद्ध आहार देने में भी असंयम का पोषण मानते हैं और उसमें पापफल की प्ररूपणा करते हैं। इसी असंयम-पोषण का नाम लेकर वे शुभ भावना से, अनुकम्पा बुद्धि से भूखे को निरवद्य भोजन देने में और प्यासे की निरवद्य उपायों से प्यास बुझाने में भी सर्वथा पाप मानते हैं।

अहिंसा की आत्मा-रूप अनुकम्पा की हत्या करने पर भी अपनी अहिंसा और आत्मशुद्धि की प्रगल्भता प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि "तेरापन्थ के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण में सर्वत्र आत्मशुद्धि का लक्ष्य रहता है। और स्थानकवासी सम्प्रदाय के दान-दया सम्बन्धी दृष्टिकोण में आत्मशुद्धि की अपेक्षा शरीर-पोषण और शरीर-रक्षा पर अधिक बल दिया जाता है। तेरापन्थ की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओं में आदि से अन्त तक अहिंसा और संयम की पूर्णता का निर्वाह होता है किन्तु स्थानकवासी सम्प्रदाय की दया-दान सम्बन्धी परिभाषाओं मे अहिंसा और संयम की उपेक्षा भी देखी जाती है।"

सार्वजनिक दया-दान से द्वेष करने वाले समुदाय के आचार्य तुलसी जब दया-दान में पुण्य मानने वालों के दृष्टिकोण की गलत आलोचना करते हैं और मजे की बात तो यह कि सार्वजनिक दया-दान का निषेध (अपलाप) करते हुए भी अपने को तथा अपने पंथ के अनुयायियों को अधिक सच्चे दयालु और दानी सिद्ध करने का प्रयास करते हैं तो वे 'उलटा चोर कोतवाल को डांटे' वाली कहावत चरितार्थ करते हैं।

साधु के सिवाय अन्य जीव विषयक दया-दान में पाप बताने वाले सिद्धान्त तो आत्मशोधक हैं और सार्वजनिक दया-दान में पुण्य कहने वाले सिद्धान्त शरीर-पोषक हैं, आचार्य तुलसी की यह कैसी विचित्र परिभाषा है !

कष्ट से तड़पते हुए और मरते हुए जीव को बचाने की क्षमता होने पर भी पाषाण का हृदय बनाकर उन्हें न बचाना और चुपचाप देखते रहना– क्या इसे ही तेरापन्थी आचार्य आत्मशुद्धि मानते हैं ? क्या यही आत्मशुद्धि का परिचायक है ? आत्मविशुद्धि शब्द की कैसी घोर विडम्बना !

अपने कष्टों की परवाह न कर प्राणों की बाजी लगाकर भी निस्वार्थ भाव से दुःखी जीवों को दुःखमुक्त करने वालों और दूसरे के प्राणों की रक्षा करने वालों की आत्मशुद्धि विशेष होती है या अपने प्राणों की रक्षा करने का प्रयत्न करने वाले एवं दूसरों के कष्टों को चुपचाप देखने वाले व्यक्ति की आत्मशुद्धि विशेष होती है ? यह विचारक स्वयं विचारें।

तेरापन्थ सम्प्रदाय साधुओं के सिवाय संसार के अन्य किसी जीव को दया-दान का पात्र एवं अधिकारी ही नहीं समझता। दया-दान के व्यापक क्षेत्र को इतना संकुचित रूप देने का अपराध करने पर भी अपनी मान्यताओं में अहिंसा और संयम का आदि से अन्त तक निर्वाह होने की दाम्भिक डींग हाँकना कहाँ तक संगत है ?

मरते हुए जीव को चुपचाप देखते रहना, कष्ट से तड़पते हुए जीवों को देखकर पत्थर का दिल कर लेना और उन्हें दुःखमुक्त करने का प्रयत्न न करना, क्या इसी मे आचार्य तुलसी अहिंसा का निर्वाह मानते हैं ? यह अहिंसा का निर्वाह नहीं, उसकी हत्या है। विचारक विचारें।

स्थानकवासी सम्प्रदाय के दयादान के दृष्टिकोण में प्राणरक्षा का और शरीर-रक्षा का जितना ध्यान रखा जाता है, उससे कहीं अधिक उन मरते हुए एवं कष्ट पाते हुए जीवों को होने वाले, आर्त रौद्र रूप अशुभ ध्यान से हटाकर समाधि में स्थापित करने का लक्ष्य रहता है। आचारांग सूत्र में भगवान् ने कहा है कि सब जीव जीना चाहते हैं, मरना कोई नहीं चाहता, मरना सबको अप्रिय है अतः मरते हुए जीव को दुःख होता है। दुःखी जीव आर्त और रौद्र ध्यान करता है जिसके कारण कर्मो का बन्ध होता है। उन दुःखी जीवों को बचाने वाला व्यक्ति उनके प्राण और शरीर की रक्षा तो करता ही है परन्तु सबसे अधिक आर्त-रौद्र ध्यान

से बचाकर उसके आत्मा की रक्षा करता है। अतः यह कहना कि "स्थानकवासी सम्प्रदाय के दया-दान का दृष्टिकोण आत्म-शुद्धि की अपेक्षा शरीर-पोषण और शरीर-रक्षा पर अधिक भार दिया जाता है" मिथ्या है। आत्मौपम्य की भावना से प्रेरित होकर बचाने वाला मरते हुए जीव के प्राणों की रक्षा करता है। यह आत्मौपम्य की भावना आत्मा को शुद्ध बनाने वाली है। अतः प्राणरक्षा में आत्मशुद्धि का लक्ष्य रहता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय शुभ भावनामय दान-दया को हिसात्मक नहीं मानता। जिस प्रकार रेल, मोटर, बैलगाडी आदि वाहनों मे बैठकर मुनि-दर्शन के लिए आने वाले व्यक्ति का मुनि-दर्शन हिंसक नही माना जाता जो कि उक्त वाहनों के उपयोग में हिसा अवश्यंभावी है। उसी तरह दया-दान की भावना स्वयं हिंसात्मक नहीं है चाहे उसके व्यक्तीकरण के साधनों में आरम्भ हो। आरम्भ को आरम्भ मानना और शुभ दया-दान की भावना को निरवद्य मानना-यह स्थानकवासियों की सुसंगत मान्यता है।

स्थानकवासी और तेरापन्थी के दया-दान सम्बन्धी दृष्टिकोण में स्पष्ट रूप से यह भेद है :

स्थानकवासी सम्प्रदाय साधु की ही नहीं, संसार के सब जीवो की अनुकम्पा करने में, प्राणरक्षा करने में धर्म और पुण्य मानता है जबकि तेरापंथी सम्प्रदाय केवल साधु की प्राणरक्षा करने में ही धर्म एवं पुण्य मानता है और संसार के जीवो की प्राणरक्षा में, मरते हुए को बचाने में एकान्त पाप मानता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय दीन-हीन दुःखी प्राणियों को भी अनुकम्पा-दान का पात्र समझता है। उन्हें निःस्वार्थ और शुभ भाव से दान देने मे पुण्य मानता है जबकि तेरापन्थ सम्प्रदाय साधु के सिवाय सब जीवों को कुपात्र समझता है और दीन, अनाथ, गरीब, रोगी आदि को निस्वार्थ भाव से निरवद्य दान देने में भी असंयम का पोषण मानकर पाप की प्ररूपणा करता है।

इस स्पष्ट भेद को आचार्य तुलसी ने शब्दो के कैसे आवरण मे छिपाया है, यह पाठक अब स्वयं समझ सकेंगे। शब्दो के मोहक आवरण को चीर कर विचारक जब उनके भावों पर विचार करेंगे तो उनकी मान्यताओं का भीषण रूप अपने-आप प्रकट हो जावेगा। साधारण जनता इन भीषण मान्यताओं के चक्कर मे न फंसे, इसी आशय से यह समीक्षा की गई है।

श्वेताम्बर हो, दिगम्बर हो, बौद्ध हो या कोई भी सम्प्रदाय को मानने वाला हो, जो कोई

श्री श्वेताम्बर तेरापन्थ जैन समाज, दिल्ली की ओर से श्री मोहनलाल कठोतिया द्वारा प्रेषित प्रश्न

(1)

जैन सिद्धान्तों में विश्वास न रखने वाले व्यक्ति वैदिक, बौद्ध, ईसाई तथा इस्लाम सिद्धान्तों में विश्वास रखते हुए अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करते हैं तो उस क्रिया से उनकी आत्मशुद्धि होती है या नहीं ? अर्थात् उनकी यह क्रिया धर्म है या नहीं ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

1-यदि वैदिक, बौद्ध, ईसाई तथा मुसलमान आदि शुद्ध रूप से अहिंसा, सत्य तथा ब्रह्मचर्यादि का पालन करते हैं तो उस क्रिया से उनकी आत्मशुद्धि होती है अर्थात् उनकी यह क्रिया धर्म है। सम्यग्ज्ञानपूर्वक अहिंसा, सत्यादि का पालन धर्म है। जैन, बौद्ध, वैदिकादि साम्प्रदायिक दृष्टि से लिये जाने वाले नामों का कोई भी महत्त्व नहीं है। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई अहिसादि क्रिया धर्म है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

1-अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य की साधना से प्रत्येक व्यक्ति की आत्मशुद्धि होती है, उसकी वह साधना धर्म है, चाहे वह किसी भी धर्म-सम्प्रदाय में विश्वास रखनेवाला क्यों न हो।

समीक्षा

जैन धर्म का दृष्टिकोण अति उदार और व्यापक है। उसमें किसी तरह की संकीर्णता को अवकाश नहीं है। वह किसी सम्प्रदाय या जाति के माहात्म्य को स्वीकार नहीं करता। वह किसी भी सम्प्रदाय या जाति का आग्रह नहीं रखता। किसी भी धर्म-सम्प्रदाय का, किसी भी देश या जाति का और किसी भी श्रेणी का व्यक्ति धर्म एवं मोक्ष की आराधना कर सकता है। यह जैन धर्म की स्पष्ट उद्घोषणा है :-

सेयम्बरो य आसम्बरो य बुद्धो वा अण्णो वि कोवि।
सममावमावी-अप्पा लहई मोक्खं न संदेहो।।

श्वेताम्बर हो, दिगम्बर हो, बौद्ध हो या कोई भी सम्प्रदाय को मानने वाला हो, जो समभाव की आराधना करने वाला आत्मा है वह अवश्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। जैन धर्म मे 'अन्यलिंग सिद्धा' का कथन किया गया है। इस पर से भी जैन धर्म की उदारता प्रगट होती है। जैन दृष्टि के अनुसार जो कोई भी व्यक्ति विवेकपूर्वक (सम्यग्ज्ञान सहित) अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि का पालन करता है, वह धर्म और मोक्ष की आराधना करता है। इससे उसकी आत्मशुद्धि होती है। तात्पर्य यह है कि अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि की साधना यदि विवेकपूर्वक की जाती है तो ही वह धर्म हो सकती है, अन्यथा नहीं। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की जाने वाली क्रिया से ही आत्मशुद्धि हो सकती है।

"अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य की साधना से प्रत्येक व्यक्ति की आत्मशुद्धि होती है, उसकी यह साधना धर्म है" —यह आचार्य तुलसी का कथन जैन दृष्टि से विपरीत है। जैन दृष्टि से सत्यज्ञान के बिना जो क्रियाएँ की जाती हैं वे अन्ध क्रियाएँ हैं। उनसे आत्मशुद्धि नहीं हो सकती। मोक्षमार्ग में उनका कोई मूल्य नहीं है। जब तक साध्य और लक्ष्य का सही-सही निर्धारण नहीं हो जाता, वहां तक की लक्ष्यहीन प्रवृत्ति का कोई महत्त्व नहीं होता। जो व्यक्ति अपने गन्तव्य स्थल का ही निर्णय नहीं कर सका है, उसके इधर-उधर भ्रमण करने का जैसे कोई महत्त्व नहीं होता, इसी तरह लक्ष्यहीन क्रियाओं का भी कोई महत्त्व नहीं होता। क्रियाओं में महत्त्व नहीं है। महत्त्व, क्रिया के कर्ता की भावना मे है। कर्ता यदि अज्ञानी है तो उसकी क्रिया का क्या महत्त्व है ?

जिस व्यक्ति को आत्मस्वरूप की प्रतीति नही है, जिसने सच्चा विवेक नहीं प्राप्त किया है, जिसे आध्यात्मिकता और भौतिकता का भेद-ज्ञान नहीं हुआ है, जो धर्म के स्वरूप को नहीं जानता है तथा आत्माभिमुखी नहीं है, वह चाहे जितनी बाह्य क्रियाएँ कर ले, उनसे उसकी आत्मशुद्धि नहीं हो सकती है। उसकी वे क्रियाएँ सत्य लक्ष्य के अभिमुख नहीं होती, अतः उसकी विवेकहीन साधना को धर्म नहीं कहा जा सकता है, मोक्ष-दृष्टि में उनका कोई महत्त्व नहीं होता। वह पुण्य-बंध करके स्वर्गादि की प्राप्ति कर सकता है किन्तु भवछेद नहीं कर सकता। जो व्यक्ति आत्मा के स्वरूप को समझ कर आत्मशुद्धि की भावना से सम्यग्ज्ञानपूर्वक अहिसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि की साधना करता है तो उसकी साधना धर्म है, इसमें कोई संदेह नहीं है। परन्तु यदि वह आत्मस्वरूप को नहीं जानता है, उसमें सच्चा विवेक नहीं है, तो उसकी अहिंसादिक की साधना द्रव्य-साधना है। आत्माभिमुख साधना न होने से वह धर्म नहीं है। हॉ, देह-दमन आदि से पुण्य अवश्य हो सकता है। परन्तु एतावता उसे धर्म नहीं कहा जा सकता। विवेकहीन साधना को कभी धर्म नहीं माना जा सकत

वृक्ष पर लटक कर साधना करता था, कोई काँटों पर सोता था, कोई पंचाग्नि जला कर तप करता था और इनमें ही धर्म मान लिया जाता था। उस समय पार्श्वनाथ भगवान् ने स्पष्ट प्ररूपित किया कि विवेकहीन, सम्यग्ज्ञानरहित तपश्चर्या, साधना - धर्म नहीं है। वह देह-दण्ड मात्र है। उस से आत्मा का कुछ भी उत्थान नहीं हो सकता है। अतः पार्श्वनाथ भगवान् ने विवेकमय साधना को ही धर्म बतलाया था। इससे यही सिद्ध होता है कि अहिंसा, सत्य आदि की विवेकहीन साधना धर्म नहीं है और जो विवेकपूर्वक अहिंसा, सत्य आदि की आराधना की जाती है वह धर्म है। शास्त्रकार ने इसी भाव को इस रूप में व्यक्त किया है -

मासे मासे उ जो बालो कुसग्गोणेव भुंजए।
न सो सुअस्खायधम्मस्स कलमरहई सोलसिं।।

अज्ञानी (विवेकरहित) जीव मास-मास-भर तक निराहार रहे और पारणे में कुश के अग्रभाग पर आ सके इतना ही स्वल्प आहार लेकर पुनः मासमखण करे– ऐसी कठोर साधना करने पर भी वह सुआख्यात धर्म की सोलहवीं कला (अंश मात्र) को भी नहीं प्राप्त कर सकता है।

इसका तात्पर्य यह है कि विवेकरहित ऐसी कठोर साधना भी धर्म की श्रेणी में नहीं है। जब तक श्रद्धा शुद्ध नहीं है, आत्मस्वरूप की प्रतीति नहीं है, वहाँ तक उसकी प्रवृत्ति में धर्म नही हो सकता है। आगम में कहा गया है कि -

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न होन्ति चरणगुणा

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र– ये तीनों ही मोक्षमार्ग हैं अर्थात् धर्म हैं। जिसे आत्मस्वरूप की सच्ची श्रद्धा नहीं है वह सम्यग्दर्शन वाला ही नहीं है; सम्यग्दर्शन के बिना सम्यक् ज्ञान नहीं होता और सम्यग्ज्ञान के बिना क्रिया में सम्यक्त्वता नहीं आ सकती अर्थात् सम्यक् चारित्र नहीं हो सकता।

अज्ञानी जीव में सम्यग्दर्शन नहीं होता अतः सम्यग्ज्ञान भी नहीं होता और सम्यग्ज्ञान के अभाव में उसकी क्रियाएँ सम्यक् नहीं होती। अतः वह कैसी भी क्रिया करे, उसमें धर्म नहीं हो सकता। मिथ्यादृष्टि से क्रिया सम्यग्ज्ञान-दर्शन-चारित्र रूप मोक्षमार्ग से बाहर है अतः वह धर्म नहीं है। जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र के अन्तर्गत है वही धर्म है।

जैसे मिथ्यादृष्टि का जानना ज्ञान नहीं, बल्कि अज्ञान है, इसी तरह मिथ्यादृष्टि की अहिंसा आदि की साधना वस्तुतः अहिंसादि की साधना ही नहीं है, द्रव्यक्रिया मात्र है। जैसे विवेकहीन उन्मत्त मनुष्य कभी ठीक-ठीक बात भी कहता है तो भी उसका वह कथन

पागलपन ही गिना जाता है क्योंकि उसे सत्-असत् का विवेक नहीं है। इसी तरह मिथ्यादृष्टि (अज्ञानी) भी कभी अहिंसा आदि की साधना करता है तो भी वह धर्म नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उसमें आत्म-विवेक नहीं होता है। तत्त्वार्थ सूत्र में कहा गया है-

सदसतोरविशेषादयदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।

जैन धर्म के अतिरिक्त अन्य दर्शनकारों ने भी ज्ञानसहित क्रिया को ही धर्म माना है। कठोपनिषद् आदि के उद्धरण दिये जा सकते हैं परन्तु विस्तारभय से यहाँ उद्धृत नहीं किये गये हैं। विशेष जिज्ञासु 'सद्धर्ममण्डन' मे यह देख सकते हैं।

निष्कर्ष यह है कि आचार्य तुलसी बाह्य साधना मात्र से आत्मशुद्धि होना और धर्म होना मानते हैं, यह जैन शास्त्र से विपरीत है। तेरापन्थ की यह मान्यता है कि मिथ्यादृष्टि अज्ञानी भी अहिंसा, सत्य की आराधना करता है और उसकी यह आराधना धर्म है। यह मान्यता सर्वथा विपरीत है। जिसे सत्य-विवेक नहीं है वह सच्चे अर्थों में अहिंसादि की आराधना ही नहीं कर सकता है। अतः विवेकहीन साधना में धर्म मानना सर्वथा असंगत है।

सत्य यह है कि विवेकपूर्वक, सम्यग्ज्ञानपूर्वक अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य आदि की साधना की जाय तो उससे आत्मशुद्धि होती है और वह धर्म है जैसाकि पूज्य आचार्यश्री गणेशलालजी म. ने अपने उत्तर में स्पष्ट प्रकट किया है। आचार्यश्री द्वारा दिया गया उत्तर ही यथार्थ जैन दृष्टिबिन्दु को प्रकट करता है।

(2)

शुभ योग की प्रवृत्ति के बिना पुण्य हो सकता है या नहीं ? हो सकता तो वह किससे ? और उसका शास्त्रीय प्रमाण क्या है ? यदि नहीं हो सकता तो शुभ योग की प्रवृत्ति से केवल पुण्य होता है या केवल निर्जरा होती है, या ये दोनों साथ ही होती हैं ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(2) 'शुभयोग की प्रवृति के बिना' –इसके दो अर्थ हो सकते हैं। एक योगप्रवृत्ति का निरोध, दूसरा अशुभ योगप्रवृत्ति। योगप्रवृत्ति के निरोध को संवर कहते हैं। उसमें किसी प्रकार भी बंध नहीं होता। अशुभ योगप्रवृत्ति से अल्पमात्रा मे पुण्यबंध होता है और अधिक मात्रा में पापबंध। अतः वह पापबंध ही कहा जाता है। प्रथम गुणस्थानवर्ती जीवों में शुभ योग भी होता है अतः वे पुण्यबंध कर सकते हैं। पुण्यबंध के लिये यह नियम नहीं है कि वह धर्म के साथ ही हो। प्रत्येक संसारी जीव को प्रतिसमय अनन्तानन्त कर्मवर्गणा की अकाम निर्जरा होती

ही हो। प्रत्येक संसारी जीव को प्रतिसमय अनन्तान्त कर्मवर्गणा की अकाम निर्जरा होती है किन्तु मोक्षमार्ग मे उसकी कोई भी कीमत नहीं है। पुण्य और निर्जरा दोनों साथ होते हैं। किन्तु सम्यग्दृष्टि को पुण्यबंध के समय सकाम निर्जरा होती है और मिथ्यादृष्टि को अकाम निर्जरा। वीतराग दशा को छोड़कर केवल पुण्य का बंध नहीं हो सकता।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(2) शुभ योग की प्रवृत्ति के विना पुण्य नहीं होता, क्योंकि वह धर्म का अविनाभावी कार्य है। शैलेषी अवस्था में केवल निर्जरा ही होती है। अन्यत्र पुण्य और निर्जरा साथ ही होते हैं। अर्थात् जहाँ पुण्य होता है वहाँ निर्जरा अवश्य होती है।

समीक्षा

शुभ योग की प्रवृत्ति के विना पुण्य नहीं होता, प्रायः यह ठीक है परन्तु इसके लिए आचार्य तुलसी ने जो हेतु दिया है वह मिथ्या है। कहते हैं कि पुण्य धर्म का अविनाभावी कार्य है। यह कथन शास्त्र से असंगत है। शास्त्रकारों ने धर्म के दो रूप बताये हैं जैसा कि स्थानाङ्ग सूत्र में कहा गया है - दुविहे धम्मेपण्णत्ते तं जहा सुयधम्मे चेव चरित्तधम्मे चेव। श्रुत और चारित्र-रूप से धर्म के दो प्रकार हैं। जहाँ श्रुत और चारित्र है वहीं धर्म है। इसके अतिरिक्त धर्म नहीं रह सकता है। जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं उनमें श्रुत-चारित्र-रूप धर्म तो नहीं पाया जाता है परन्तु उन्हें पुण्य हो सकता है जिसके कारण वे नौ ग्रैवेयक तक जा सकते हैं। मिथ्यादृष्टि जीव में पुण्य तो होता है परन्तु श्रुत-चारित्रधर्म नहीं होता अतः पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य बताना मिथ्या है।

आचार्यश्री तुलसी ने समिति के प्रतिप्रश्न नं. 2 का उत्तर देते हुए कहा है कि शुभ योग के लिए मोहकर्म का क्षय, क्षयोपशम और उपशम होना चाहिए तो उनके कथनानुसार मिथ्यादृष्टि में शुभ योग नहीं पाया जा सकता। क्योंकि मिथ्यादृष्टि को मोह का क्षयादि नहीं होता। और शुभ योग के विना पुण्य नहीं होता है तो मिथ्यादृष्टियो को पुण्यवन्ध किस से होता है जिससे वे नौ ग्रैवेयक तक जा सकते हैं ? अतः आचार्य तुलसी के इन कथनों में परस्पर विरोध और असंगति है। आचार्य तुलसी की शुभ योग की व्याख्या भी असंगत है और पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य कहना भी युक्तिशून्य है।

तेरापन्थ सम्प्रदाय ने शास्त्रप्रसिद्ध श्रुत-चारित्र-रूप धर्म की उपेक्षा कर धर्म के दो नवीन भेदों की कल्पना की है। वे संवरधर्म और निर्जराधर्म से दो प्रकार का धर्म मानते हैं। धर्म के

ये भेद अपूर्ण और असंगत हैं। विवक्षाभेद से धर्म के विविध भेद किये जा सकते हैं परन्तु वे भेद ऐसे होने चाहिए जिनमें धर्म का समग्र स्वरूप समाविष्ट हो सके। संवर धर्म और निर्जरा रूप धर्म के दो भेद करने से धर्म का समग्र स्वरूप समाविष्ट हो सके। संवरधर्म और निर्जरा रूप धर्म के दो भेद करने से धर्म का समग्र रूप उनके अन्तर्गत नहीं आ सकता है। जैन सिद्धान्त में ज्ञान और क्रिया या सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यग् चारित्र को मोक्षमार्ग अर्थात् धर्म माना है। इस समग्र धर्मस्वरूप का संवर और निर्जरा के अन्दर समावेश नहीं होता है। क्योंकि सम्यग्ज्ञान या श्रुत रूप धर्म का निर्जरा मे समावेश नहीं होता। यदि यह कहा जाय कि संवरज्ञान दर्शनपूर्वक ही होता है अतः ज्ञान का समावेश सवर में हो जाता है तब तो मोक्षमार्ग का समग्र स्वरूप ज्ञान-दर्शन-चारित्र संवर में ही समाविष्ट हो जाता है, तो फिर संवर ही धर्म है ऐसा कहना भी पर्याप्त है। निर्जरा को अलग मानने की आवश्यकता नहीं। चारित्र में ही इसका समावेश हो जाता है और चारित्र का अन्तर्भाव संवर मे हो ही जाता है। फिर इन दो भेदों की सार्थकता क्या हुई ?

तेरापन्थ मिथ्यादृष्टियों की निर्जरा को धर्म मान लेता है और उसे धर्म मानकर पुण्य को उस निर्जरा धर्म का अविनाभावी कार्य बताता है। इस निर्जरा धर्म की अपेक्षा यदि पुण्य को धर्म का अविनाभावी अंग मान लिया जाय तब तो पाप को ही धर्म का अविनाभावी कार्य मानना पड़ेगा। क्योंकि निर्जरा तो शुभ कर्मों की भी होती है और अशुभ कर्मों की भी होती है। जब अशुभ कर्मो की निर्जरा होती है तब प्रायः पुण्यबंध होता है और जब शुभ कर्मो की निर्जरा होती है तब प्रायः पापबंध होता है। इस तरह निर्जरा के साथ जैसे पुण्य होता है वैसे ही पाप भी होता है। यदि निर्जरा की अपेक्षा पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य कहा जा सकता है तो उसी निर्जराधर्म की अपेक्षा पाप को भी धर्म का अविनाभावी कार्य क्यो नही कहा जा सकेगा ? इसलिए निर्जराधर्म की अपेक्षा से पुण्य को धर्म का अविनाभावी कार्य बतलाना सर्वथा मिथ्या है।

(3)

क्या साधु धर्मशाला, औषधालय, अनाथालय आदि बनवाने का, इनको बनाने के लिए धनराशि एकत्रित करने का, इन प्रवृत्तियों में दान देने का उपदेश कर सकते हैं ? यदि हॉं, तो इसका शास्त्रीय आधार क्या है ? यदि नहीं तो क्यों ?

(3) धर्मशाला, औषधालय, अनाथालय, जलाशयादि में जो मानवहित या प्राणिहित रहा हुआ है उसके लिये साधु उपदेश दे सकते हैं। इन कार्यों के लिये अमुक साधन-विशेष का ही अवलम्बन हो, ऐसा कोई आग्रह नहीं रहता। अल्प मात्रा में अनिवार्य आरम्भ होने पर भी गृहस्थ के लिये ऐसे कार्य वर्जित नहीं हैं। यदि गृहस्थ शुभ भावना से ऐसे कार्य करता है तो वह पुण्यबंध का भागी होता है। जिस प्रकार रेल, मोटर आदि वाहन में बैठकर मुनि-दर्शनार्थ जाने वाले व्यक्ति को साधु पुण्यफल बताते हैं, मुनि-दर्शन करने का साधु उपदेश देते हैं, वैसे ही हीन-दीन-अनाथ-भूखे-प्यासे आदि की सहायता व भलाई करने का उपदेश साधु दे सकते हैं।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(3) उक्त प्रवृत्तियाँ हिंसा और परिग्रह के बिना साध्य नहीं हैं और साधु के लिए हिंसा और परिग्रह कृत-कारित-अनुमति से त्याज्य हैं। इसलिए वे इस विषय का उपदेश नहीं कर सकते। इस विषय में स्थानकवासी आचार्यश्री जवाहरलालजी भी कहते हैं— "संघ की समुचित व्यवस्था न होने के कारण साधु अपनी जवाबदारी श्रावक पर और श्रावक अपनी जवाबदारी साधु पर डालते हैं। जैसे पाठशाला चलाना, गुरुकुल खोलना, कार्यालय की व्यवस्था करना, गोरक्षा अथवा अनाथरक्षा का प्रबन्ध करना आदि।______यदि साधु इस सम्बन्ध में पड़ें और कहें कि हमारा काम गुरुकुल खुलवाने का व चलाने का है तो यह ठीक नहीं है। ______जिनमें अनेक आरम्भ आदि क्रियाएं पड़ती हैं, एसे उपकार के कार्य यदि साधु ही करने लग जायेंगे तो श्रावक लोग क्या करेंगे ? जब श्रावकों की जिम्मेदारी का काम साधु ने ले लिया तो क्या साधु के पंचमहाव्रतों का पालन श्रावक करेगा ? (धर्म-व्याख्या, पृ. 51)

समीक्षा

"उक्त प्रवृत्तियाँ हिंसा और परिग्रह के बिना साध्य नहीं हैं और साधु के लिए हिंसा और परिग्रह कृत-कारित-अनुमति से त्याज्य हैं अतः वे इस विषय का उपदेश नहीं कर सकते"— आ. तुलसी का यह कथन ठीक नहीं है। साधु-उपदेष्टा के उपदेश का अभिप्राय वस्तु-स्वरूप-प्रतिपादन करने का होता है न कि किसी तरह की प्रेरणा करने का। उपदेष्टा अपने उपदेश में अनेक बातों की चर्चा करता है। वह अल्पारम्भ-महारम्भ पुण्य और पाप आस्रव और संवर, अणुव्रत और महाव्रत आदि की चर्चा करता है। उसका अभिप्राय तो विवेक कराना होता है। इसलिए तज्जन्य शुभाशुभ क्रिया से साधु-उपदेष्टा लिप्त नहीं होता। साधु-उपदेष्टा विवेक कराने के लिए उक्त कार्यों में रहे हुए मानवहित या प्राणिहित का उपदेश दे

सकते हैं। वे यह नहीं कहते कि इनके लिए तुम अमुक-अमुक साधनों का ही अवलम्बन लो। साधनों का आग्रह उपदेष्टा का नहीं होता। इन कार्यों में रहा हुआ प्राणिहित अलग है और उसके लिए होने वाला आरम्भ अलग है। जैसे मुनि-दर्शन की क्रिया अलग है और उसके लिए होने वाला आरम्भ अलग है। मुनि मुनि-दर्शन का उपदेश देते हैं इससे उन्हें आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता है। इसी तरह मुनि-उपदेष्टा यदि प्राणिहित का अलिप्त रह कर उपेदश करता है तो इससे उसे उन कार्यों में होने वाले आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता।

आचार्य तुलसी ने स्वर्गीय जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज के कथन का जो उद्धरण दिया है उसमें तो उक्त कार्यों में रहे हुए प्राणिहित का उपदेश देने का कतई निषेध नहीं किया गया है। उसमें तो उक्त कार्यों का मुनि द्वारा संचालन करने का, उनकी व्यवस्था करने का निषेध किया है। यह ठीक ही है कि साधु औषधालय का सचालन, गुरुकुल का संचालन, गोशाला का संचालन नहीं कर सकता है। इससे यह अभिप्राय नही निकाला जा सकता है कि साधु इनमें रही हुई हित-भावना का उपदश भी नहीं दे सकता है। अतः स्व. आचार्यश्री के कथन का उद्धरण दे कर आचार्य तुलसी ने जनता में भ्रम पैदा करने का प्रयास किया है। वह सर्वथा अनुचित है। इस विषय का विशेष स्पष्टीकरण समिति के प्रतिप्रश्न सं. 5 के उत्तर की समीक्षा में है, वहाँ देखे।

(4)

(4) धर्मशाला, कुआं, औषधालय, अनाथालय, विद्यालय आदि इसी प्रकार के अन्य सार्वजनिक कार्य करने तथा करवाने में आध्यात्मिक धर्म है या नहीं ? यदि इन कार्यों में धर्म या पुण्य है तो (स्थानकवासी पूज्य श्रीलालजी महाराज की स्मृतिस्वरूप) "आलोयणा" नामक पुस्तक के पृष्ठ 26 पर-- "कुआ, बावड़ी, सरदह, तालाव, निवाण, देहरा, उपासरा, महजीत, मुकरवा, तीर्थ, धाम, पादुका, छत्री, यात्रा, मैड़ी इत्यादिक ठाम-ठिकाना किया होय, कराया होय, करतां प्रते अनुमोद्या होय, अर्थे-अनर्थे, धर्म अर्थे, काम अर्थेइस भवे परभवे, अनेरे अनंत भवे तो अरिहंत सिद्ध केवली भगवन्त की साख से मन-वचन-काया करके त्रिविधे-त्रिविधे तस्स मिच्छामि दुक्कड़ं।" ऐसा लिखकर कूप, तालाब आदि के करने, कराने तथा अनुमोदन करने में "मिच्छामि दुक्कडं" नाम प्रायश्चित्त क्यों कहा ?

होता ही है। इसी तरह जहाँ (शैलेशी अवस्था को छोडकर) धर्म होता है वहाँ पुण्य अवश्य होता है, इसका अर्थ यह नहीं कि जहाँ पुण्य होता है वहाँ धर्म अवश्य होता ही है।

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(4) यदि आध्यात्मिक धर्म का मतलब मोक्षाभिमुखी होता है तो मोक्षाभिमुखी व्यक्ति द्वारा किये गये धर्मशाला, विद्यालय आदि मानवहित के कार्यों से भी आत्मोथान होता है। इसलिए उन्हें आध्यात्मिक धर्म मानने में कोई भी आपत्ति नहीं है।

आलोचना में जो 'मिच्छामि दुक्कडं' दिया जाता है वह उक्त कार्यों में होने वाले आरम्भ की अपेक्षा से दिया जाता है, न कि उन कामों के पीछे रहे हुए मानव-हित या प्राणी-हित के लिये। प्रतिक्रमण, स्वाध्यायादि में भी मिच्छामि दुक्कड़ं दिया जाता है परन्तु वह दोष का होता है, न कि गुणों का।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(4) इन कार्यों में आध्यात्मिक धर्म नहीं, लोक-धर्म है।

समीक्षा

आचार्य तुलसी सार्वजनिक कार्यों को 'लोक-धर्म' कहते हैं। साधारण जनता समझती है कि 'लोक-धर्म' का फल शुभरूप होता है परन्तु इन आचार्य और इनके सम्प्रदाय की दृष्टि में लोक-धर्म एकान्त पाप का कारण है। आचार्य तुलसी के पहले के आचार्य तो सार्वजनिक हितकार्यों में स्पष्ट रूप से पाप कहते थे परन्तु अब आचार्य तुलसी ने स्पष्ट रूप से पाप कहना तो बन्द किया और उसे लोक-धर्म का सुनहला नाम दिया । इस सुनहले आवरण के भीतर की वस्तु तो वही पुरानी ही है। अस्तु।

आचार्य तुलसी सार्वजनिक कार्यों को लोक-धर्म कहते हैं और लोक-धर्म को पाप का कारण मानते हैं। यदि लोक-धर्म, धर्म और पुण्य का कारण न होकर केवल पाप का ही कारण है तो लोक-धर्म मे और दुष्कर्म में क्या भेद है ? ज्ञान-प्रचार के लिए पुस्तकालय खोलना भी पाप है और ज्ञान के साधन रूप पुस्तकों को नष्ट करना भी पाप है। माता-पिता आदि गुरुजनों की सेवा करना भी पाप है और उनको दुःख देना भी पाप है। राष्ट्र की सेवा करना भी पाप है और राष्ट्र-द्रोह करना भी पाप हैं। क्या अजीब-सी इनकी व्यवस्था है ! लोक-धर्म को एकान्त पाप मानना जैन शास्त्रों से विपरीत है।

(5)

जिस क्रिया से पुण्य होता है, वह क्रिया धर्म है या नही ? यदि वह क्रिया धर्म नहीं है तो (पूज्य जवाहिरलालजी महाराज के तत्त्वावधान में की गई) दूसरे सूत्रकृतांग की हिन्दी टीका के पृष्ठ 152 पर "जिन कार्यो से पुण्य की उत्पत्ति होती है, उसे धर्म कहते हैं।" ऐसा क्यो लिखा गया ? यदि वह क्रिया धर्म है तो (पूज्य जवाहिरलालजी महाराजकृत) सद्धर्ममण्डन के पृष्ठ 134 पर "शास्त्र में साधु को दान देने से निर्जरा लिखी है और हीन-दीन जीवो को दान देने से पुण्यबंध कहा है" ऐसा लिखकर पुण्य और निर्जरा (धर्म) की भिन्नता क्यों वताई ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(5) जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है भी और नहीं भी। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म होता है और मिथ्याज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म नहीं होता है, किंतु पुण्य हो सकता है। धर्म और पुण्य की व्याप्ति नहीं है। धर्म के बिना भी पुण्य हो सकता है। अतः सद्धर्ममंडन और सूत्रकृतांग में दर्शित धर्म-पुण्य में कोई विरोध नहीं है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

5-जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है।

समीक्षा

'जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है-- आचार्य तुलसी का यह कथन असंगत है। प्रथम प्रश्न के उत्तर की समीक्षा में यह स्पष्ट दिखा दिया है कि पुण्य धर्म का अविनाभावी कार्य नहीं है। धर्म के विना भी पुण्य हो सकता है जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है भी और नहीं भी। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म होता है और मिथ्याज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म नहीं होता है किन्तु पुण्य हो सकता है। धर्म और पुण्य की व्याप्ति नहीं है। सूत्रकृतांग की हिन्दी टीका के पृ. 152 पर जो लिखा है, वह ठीक ही है।

'जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है, उन्हें धर्म कहते हैं' --इसका अर्थ यह है कि शैलेशी अवस्था को छोड़कर अन्यत्र जहाँ भी धर्म है वहाँ पुण्य की उत्पत्ति अवश्य होती है। इसलिए जिन कार्यो से पुण्य की उत्पत्ति होती है, उन्हें धर्म कहते हैं, यह कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ कहीं भी पुण्य होता है वहाँ धर्म होता ही है। जैसे जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ अग्नि होती है वहां धुआं

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(4) यदि आध्यात्मिक धर्म का मतलव मोक्षाभिमुखी होता है तो मोक्षाभिमुखी व्यक्ति द्वारा किये गये धर्मशाला, विद्यालय आदि मानवहित के कार्यों से भी आत्मोथान होता है। इसलिए उन्हें आध्यात्मिक धर्म मानने में कोई भी आपत्ति नहीं है।

आलोचना में जो 'मिच्छामि दुक्कडं' दिया जाता है वह उक्त कार्यों में होने वाले आरम्भ की अपेक्षा से दिया जाता है, न कि उन कामों के पीछे रहे हुए मानव-हित या प्राणी-हित के लिये। प्रतिक्रमण, स्वाध्यायादि में भी मिच्छामि दुक्कड़ं दिया जाता है परन्तु वह दोष का होता है, न कि गुणों का।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(4) इन कार्यों में आध्यात्मिक धर्म नहीं, लोक-धर्म है।

समीक्षा

आचार्य तुलसी सार्वजनिक कार्यों को 'लोक-धर्म' कहते हैं। साधारण जनता समझती है कि 'लोक-धर्म' का फल शुभरूप होता है परन्तु इन आचार्य और इनके सम्प्रदाय की दृष्टि में लोक-धर्म एकान्त पाप का कारण है। आचार्य तुलसी के पहले के आचार्य तो सार्वजनिक हितकार्यों में स्पष्ट रूप से पाप कहते थे परन्तु अब आचार्य तुलसी ने स्पष्ट रूप से पाप कहना तो बन्द किया और उसे लोक-धर्म का सुनहला नाम दिया । इस सुनहले आवरण के भीतर की वस्तु तो वही पुरानी ही है। अस्तु।

आचार्य तुलसी सार्वजनिक कार्यों को लोक-धर्म कहते हैं और लोक-धर्म को पाप का कारण मानते हैं। यदि लोक-धर्म, धर्म और पुण्य का कारण न होकर केवल पाप का ही कारण है तो लोक-धर्म मे और दुष्कर्म में क्या भेद है ? ज्ञान-प्रचार के लिए पुस्तकालय खोलना भी पाप है और ज्ञान के साधन रूप पुस्तकों को नष्ट करना भी पाप है। माता-पिता आदि गुरुजनों की सेवा करना भी पाप है और उनको दुःख देना भी पाप है। राष्ट्र की सेवा करना भी पाप है और राष्ट्र-द्रोह करना भी पाप है। क्या अजीब-सी इनकी व्यवस्था है ! लोक-धर्म को एकान्त पाप मानना जैन शास्त्रों से विपरीत है।

(5)

जिस क्रिया से पुण्य होता है, वह क्रिया धर्म है या नहीं ? यदि वह क्रिया धर्म नहीं है तो *(पूज्य जवाहिरलालजी महाराज के तत्त्वावधान में की गई)* दूसरे *सूत्रकृतांग की हिन्दी* टीका के पृष्ठ 152 पर "जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है, उसे धर्म कहते हैं।" ऐसा *क्यों लिखा गया ? यदि वह क्रिया धर्म है तो (पूज्य जवाहिरलालजी महाराजकृत) सद्धर्मंमण्डन* के पृष्ठ 134 पर "शास्त्र में साधु को दान देने से निर्जरा लिखी है और हीन-दीन जीवों को दान देने से पुण्यबंध कहा है" ऐसा लिखकर पुण्य और निर्जरा (धर्म) की भिन्नता क्यों बताई ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(5) जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है भी और नहीं भी। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म होता है और मिथ्याज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म नहीं होता है, किंतु पुण्य हो सकता है। धर्म और पुण्य की व्याप्ति नहीं है। धर्म के विना भी पुण्य हो सकता है। अतः सद्धर्ममंडन और सूत्रकृतांग में दर्शित धर्म-पुण्य मे कोई विरोध नहीं है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

5-जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है।

समीक्षा

'जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है– आचार्य तुलसी का यह कथन असगत है। प्रथम प्रश्न के उत्तर की समीक्षा में यह स्पष्ट दिखा दिया है कि पुण्य धर्म का अविनाभावी कार्य नहीं है। धर्म के बिना भी पुण्य हो सकता है जिस क्रिया से पुण्य होता है वह क्रिया धर्म है भी और नहीं भी। सम्यग्ज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म होता है और मिथ्याज्ञानपूर्वक की गई क्रिया से धर्म नहीं होता है किन्तु पुण्य हो सकता है। धर्म और पुण्य की व्याप्ति नहीं है। सूत्रकृतांग की हिन्दी टीका के पृ. 152 पर जो लिखा है, वह ठीक ही है।

'जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है, उन्हें धर्म कहते हैं' –इसका अर्थ यह है कि शैलेशी अवस्था को छोड़कर अन्यत्र जहाँ भी धर्म है वहाँ पुण्य की उत्पत्ति अवश्य होती है। इसलिए जिन कार्यों से पुण्य की उत्पत्ति होती है, उन्हें धर्म कहते हैं, यह कहा गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ कहीं भी पुण्य होता है वहाँ धर्म होता ही है। जैसे जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि अवश्य होती है इसका अर्थ यह नहीं है कि जहाँ अग्नि होती है वहां धुआं

पुण्य और धर्म अलग-अलग हैं। धर्म के साथ (शैलेशी अवस्था के अपवाद को छोडकर) पुण्य अवश्य होता है, परन्तु पुण्य के साथ धर्म होता ही है–यह एकान्त नियम नहीं है। अतः सद्धर्ममण्डन में जो लिखा है वह भी संगत है और सूत्रकृतांग में जो लिखा है वह भी संगत है। दोनों में कोई विरोध नहीं है।

धर्म और पुण्य में कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है और अविनाभाव सम्बन्ध भी नहीं है। हाँ, जहाँ धर्म होता है वहाँ शुभ योग होने से प्रायः पुण्य होता है। परन्तु पुण्य के साथ धर्म होता भी है और नहीं भी होता है। यहाँ धर्म शब्द का अर्थ श्रुत-चारित्र रूप धर्म है।

(6)

हीन, दीन, दुःखियों की सहायता की जाती है, उन्हें अनुकम्पा-दान दिया जाता है, वह श्रुतधर्म है या चारित्रधर्म ? अथवा संवरधर्म है या निर्जराधर्म ?

आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज

(6) दीन-हीन, दुखियों की सहायता की जाती है, उन्हे अनुकम्पा-दान दिया जाता है, उसका फल कर्ता या दाता की भावनानुसार धर्म भी हो सकता है और पुण्य भी। संवर निर्जरा तत्व है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी महाराज

(6) उक्त प्रवृत्तियॉ उक्त धर्मों में समाविष्ट नहीं होती किन्तु लौकिक धर्म हैं।

समीक्षा

"उक्त प्रवृत्तियॉ न श्रुतधर्म हैं, न चारित्रधर्म, न संवरधर्म हैं, न निर्जरा धर्म" –इसका अर्थ है कि ये प्रवृत्तियाँ पापमय हैं –ऐसा आचार्य तुलसी का अभिप्राय है। इस विषय में पहले पर्याप्त कहा जा चुका है। आचार्यश्री गणेशलालजी म. ने यथार्थ कहा है कि दीन-हीन-दुखियों की सहायता की जाती है, उन्हें अनुकम्पा-दान दिया जाता है, उसका फल कर्ता या दाता की भावनानुसार धर्म भी हो सकता है और पुण्य भी हो सकता है।

समिति की ओर से प्रेषित प्रतिप्रश्न

(1)

पुण्य तथा पाप के लक्षण क्या हैं ? (शास्त्राधार से)

जैनाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रतिप्रश्नों के उत्तर

(1) पुण्य और पाप शब्दों का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है। जब इन का प्रयोग कर्म-प्रकृतियों के साथ होता है तब अनुकूल प्रकृतियों को पुण्य कहा जाता है और प्रतिकूल प्रकृतियों को पाप। पुण्य प्रकृतियाँ 42 हैं और पाप प्रकृतियाँ 82 (प्रज्ञापना, पृ. 23)।

जब इनका प्रयोग क्रिया के साथ होता है तो आत्मा को अधोगति में ले जाने वाली क्रिया पाप कही जाती है और शुभ गति के साथ-साथ आत्मशुद्धि की ओर ले जाने वाली क्रिया को पुण्य कहा जाता है।

जैनाचार्य श्री तुलसीजी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रतिप्रश्नों के उत्तर

(1) सत्प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट कर्म-पुद्गलों को पुण्य कहते हैं। असत्यप्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट कर्म-पुद्गलों को पाप कहते हैं।

समीक्षा

समिति ने शास्त्राधार से पुण्य और पाप की स्पष्ट व्याख्या पूछी है ताकि उसके आधार से विवादास्पद विषयों का विचार किया जा सके। जैसे जीवरक्षा, प्राणरक्षा करना पाप हैं या पुण्य ? यह विवादास्पद विषय है। तेरापन्थ सम्प्रदाय प्राणरक्षा करने में एकान्त पाप कहता है। वह इसमें पुण्य होना नहीं मानता है जब कि स्थानकवासी सम्प्रदाय प्राणरक्षा को पुनीत कार्य समझ कर उसमें पुण्य होना मानता है। आचार्य तुलसी का यह उत्तर उस विषय का कुछ भी स्पष्ट निर्देश नहीं करता है। वे कहते हैं कि सत्प्रवृत्ति के द्वारा आकृष्ट कर्म-पुद्गलों को पुण्य कहते हैं ? यह तो ठीक है, परन्तु सत्प्रवृत्ति वे किसे मानते हैं ? मरते हुए जीव को

चा कर उसे आर्त-रौद्र ध्यान से बचाना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? मोटर की झपट मे आते हुए ालक को हाथ पकड कर बचा लेना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? गुण्डे के द्वारा धर्मभ्रष्ट की जाती ुई सती महिला को उसके शील की रक्षा के हेतु उसके पंजे छुडाना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? यास के मारे मरते हुए जीव को निरवद्य उपायों से बचा लेना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ? ीन-हीन प्राणियों को अनुकम्पा बुद्धि से दान देना सत्प्रवृत्ति है या नहीं ?

तेरापन्थी सम्प्रदाय इन सब को असत्प्रवृत्ति मानता है तभी तो इन कार्यों में वह एकान्त ाप की प्ररूपणा करता है। एकान्त पाप का फल नरकादि दुर्गति की प्राप्ति है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय उक्त कार्यों को सत्प्रवृत्ति मानता है। इन से पुण्य होना मानता ै। पुण्य का फल स्वर्गादि की प्राप्ति है।

(2)

शुभ योग, अशुभ योग, और शुद्धोपयोग के क्या लक्षण हैं ? (शास्त्राधार से)

आ. श्री गणेशलालजी म.

(2) मन, वचन और काया के जिस व्यापार से पुण्य-प्रकृतियों का बंध हो तथा आत्मा उत्थान की ओर जाय, उसे शुभ योग कहते हैं। जिस से पाप-प्रकृतियों का बंध हो तथा ात्मा अद्योगति की ओर जाय, उसे अशुभ योग कहते हैं। योग की शुभाशुभता भावना पर ी आश्रित है। शुद्धोपयोग की चर्चा का इनके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका सम्बन्ध ज्ञान-चेतना के साथ है।

आ. श्री तुलसीजी म.

(2) शरीर-नाम-कर्म के उदय, वीर्यान्तराय कर्म के क्षय, क्षयोपशम तथा मोहकर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से होने वाली आत्म-प्रवृत्ति को शुभ योग कहते हैं।

शरीर-नाम-कर्म के उदय, वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम तथा मोहकर्म के उदय से होने ाली आत्म-प्रवृत्ति को अशुभ योग कहते हैं।

आगम में 'शुद्धोपयोग' नामक कोई पृथक् तत्त्व नहीं बतलाया है। शुद्धोपयोग सत्प्रवृत्त्यात्मक ाना जाय तब तो वह अबंध हो, ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि जहाँ सत्प्रवृत्ति होती है, वहाँ ुण्य-बंध अवश्य होता है। शुद्धोपयोग यदि अबंध-अवस्था है तो वह संवर का ही दूसरा नाम है।

समीक्षा

शुभ योग की व्याख्या में आचार्य तुलसी ने शरीर-नाम-कर्म के उदय, वीर्यान्तराय कर्म के क्षय, क्षयोपशम के साथ मोह-कर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम को भी आवश्यक बताया है लेकिन यह व्याख्या शास्त्रों में या टीकाओं में कहीं नहीं की गई है। योग की व्याख्या मे सर्वत्र शरीर-नाम-कर्म का उदय और वीर्यान्तराय कर्म का क्षय, क्षयोपशम ही आवश्यक कहा गया है जैसा कि ठाणाङ्ग सूत्र की टीका में कहा गया है :-

वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितो जीवपरिणामविशेषो योगः

तथा च :-

मणसा वयसा काएण वा वि जुत्तस्स विरियपरिणामो।
जीवस्स अप्पणिज्जो स जो सन्नो जिणक्खाओ।।

शरीर-नाम-कर्म के उदय से द्रव्ययोग होता है और वीर्यान्तराय कर्म के क्षय, क्षयोपशम से होने वाली शक्ति को भाव योग कहते हैं। योग की शुभता के लिए सम्यक्त्व होना ही चाहिए– ऐसी कोई बात नहीं है। मिथ्यात्व गुणस्थान में भी शुभ योग हो सकता है। शुभ योग के बिना पुण्य नहीं होता, यह तेरापन्थी सम्प्रदाय मानता ही है। अभव्य जीव, जिनके सदा मिथ्यात्व ही रहता है वे भी, पुण्य बन्ध करते हैं जिसके कारण वे स्वर्ग में (नौ ग्रैवेयक तक) जा सकते हैं। अभव्य और मिथ्यात्वी का यह पुण्यबन्ध शुभ योग के बिना नहीं हो सकता। अतः मिथ्यात्वी में भी शुभ योग पाया जाता है। अतः आचार्य तुलसी के द्वारा की गई यह व्याख्या ठीक नहीं है। क्योंकि मिथ्यात्वी जीव के मोहकर्म का उपशम, क्षय और क्षयोपशम आदि नहीं हो सकता है।

मिथ्यात्वी के मोहकर्म का क्षय, क्षयोपशम या उपशम नही होता है, तदपि उसमें शुभ योग पाया जाता है अतः आचार्य तुलसी ने शुभ योग की जो व्याख्या की है वह गलत है। इसके लिए कोई शास्त्रीय आधार नहीं दिखाई देता।

योग की व्याख्या करते हुए तत्त्वार्थसूत्र में कहा गया है-

काय-वाङ्-मनः कर्म योगः। स आस्रवः।
शुभः पुण्यस्य। अशुभः पापस्य।

अर्थात्- मन, वचन और काया की प्रवृत्ति को योग कहते हैं। यह योग आस्रव है। शुभ योग पुण्य का कारण है और अशुभ योग पाप का कारण है।

इस पर से भी यह प्रतीत होता है कि पुण्य का कारण शुभ योग है। पुण्यबंध तो मिथ्यात्वी जीव भी कर सकता है अतः उसका कारण शुभ योग भी उसमें रहना चाहिए। जब मिथ्यात्वी में भी शुभ योग हो सकता है तो आचार्य तुलसी ने शुभ योग की व्याख्या करते हुए "मोहकर्म के उपशम, क्षय, क्षयोपशम से होने वाली आत्मप्रवृत्ति" कहा है, यह कैसे संगत हो सकता है ?

आचार्य तुलसी समिति की ओर से अन्तिम पूरक प्रश्न का उत्तर देते हुए स्वयं लिखते हैं - "किसी भी प्रवृत्ति में अशुभ योग माना जाता है वह हिंसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है। उसमें हिंसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है।"

इसका अर्थ यह है कि मिथ्यात्वी जीव में भी जो हिंसा-बचाव आदि की भावना या प्रवृत्ति है वह शुभ योग है, यह स्वयं आचार्य तुलसी स्वीकार कर लते हैं। मिथ्यात्वी जीव भी सदा चौबीस ही घण्टे हिंसा तो करता ही नहीं है। जब-जब वह हिंसा से बचता है तब-तब उसमें शुभ योग हो सकता है। यह आचार्य तुलसी के इस कथन से सिद्ध होता है। इस प्रकार आचार्य तुलसी के इन उत्तरों में परस्पर विरोध है। एक जगह वे शुभ योग में मिथ्यात्व का क्षय-क्षयोपशम-उपशम आवश्यक मानते हैं; दूसरी जगह वे जहाँ कहीं भी हिंसा-बचाव की भावना या प्रवृत्ति रहती है उसे शुभ योग मानते हैं। इस तरह मिथ्यात्वी में भी शुभ योग सिद्ध होता है।

आचार्य तुलसी के वचनों से ही उनके द्वारा की गई शुभ योग की व्याख्या गलत सिद्ध होती है। प्रश्न में शास्त्राधार से उत्तर की मांग की गई है। आचार्य तुलसी ने अपनी व्याख्या के लिए कोई शास्त्रीय आधार नहीं बताया है। सत्य तो यह है कि उसके लिए कोई शास्त्रीय आधार है ही नहीं।

(3)

क्या पुण्य तथा पाप का शुभ अथवा अशुभ योग के साथ कार्य-कारण सम्बन्ध है ? यदि है तो किस प्रकार से ? अर्थात् कौन-कौन कारण हैं और कौन-कौन कार्य हैं ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(3) साधारणतया अशुभ योग को पाप का कारण माना जाता है और शुभ योग को पुण्य का। किन्तु यह ऐकान्तिक नियम नहीं है। पुण्य के साथ पाप का और पाप के साथ पुण्य का भी बंध होता है। उपरोक्त व्यवहार का कारण आधिक्य है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(4) संसार की व्यवस्था चलाने के लिये जो प्रवृत्ति होती है, तद्विषयक दृष्टि लोक-दृष्टि है। *जिस प्रवृत्ति से आत्म-शुद्धि होती है - मोक्ष की आराधना होती है, तद्विषयक दृष्टि* अध्यात्म-दृष्टि है।

लोक-दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य जब अध्यात्म-दृष्टि में गिन लिये जाते हैं, तब दोनों दृष्टियाँ एक-दूसरे से पृथक् कही जाती हैं। किंतु जब उन कार्यों को लोक-दृष्टि में गिनकर कथन किया जाय तब वहाँ-वहाँ दोनों दृष्टियों की संगति भी हो सकती है। अतः इन दोनों दृष्टियों की संगति या असंगति, दोनों, दृष्टिकोणों पर ही अवलम्बित हैं।

समीक्षा

आचार्य तुलसी ने इस उत्तर में द्रोणाचार्य की तरह शब्द-व्यूहरचना का प्रदर्शन किया है। जिस प्रकार द्रोणाचार्य ने जयद्रथ को छिपाने के लिए विषम व्यूहरचना की थी इसी तरह अपने दया-दान में पाप मानने के भीषण मतरूपी जयद्रथ को छिपाने के लिए आचार्य तुलसी ने शब्द-व्यूह की रचना की है। *अपना अभिप्राय स्पष्ट और विस्तृत समझाना चाहिए, परन्तु* शायद ऐसा करना उनके स्वभाव के प्रतिकूल मालूम होता है। अस्तु !

प्रश्न में लोक-दृष्टि और आध्यात्मिक दृष्टि की परिभाषाएँ पूछी गई हैं और साथ ही यह स्पष्ट पूछा गया है कि क्या ये दोनों दृष्टियाँ पृथक्-पृथक् हैं या इनमें परस्पर अपेक्षा या संगति भी है। है तो क्या ? आचार्य तुलसी ने दोनों दृष्टियों की अपनी परिभाषाएँ तो दे दी हैं लेकिन यह स्पष्ट नहीं किया कि ये दोनों दृष्टियाँ परस्पर सापेक्ष हैं या नहीं ? इस प्रश्न को उन्होंने केवल शाब्दिक उलझन में डाल दिया है।

"लोक-दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य जब अध्यात्म-दृष्टि में गिन लिये जाते हैं तब दोनों दृष्टियाँ एक-दूसरे से पृथक् कहीं जाती हैं" —आचार्य तुलसी के इस कथन का अर्थ यह मालूम होता है कि मरते हुए जीव को दया लाकर बचाना, दुःखियों को दुःख से मुक्त करना, दीन-हीन व्यक्तियों को दया लाकर सहायता पहुँचाना आदि लोक-दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य हैं। *इन्हें जब आध्यात्मिक दृष्टि में गिन लेते हैं तब वे कहते हैं कि नहीं भाई, लोक-दृष्टि और* चीज है और आध्यात्मिक दृष्टि और चीज है ! इसका मतलब यही हुआ कि आचार्य तुलसी की दृष्टि में लोक-दृष्टि और अध्यात्म-दृष्टि में पूर्व-पश्चिम की तरह परस्पर विरोध है। इन दोनों में परस्पर कोई संगति या अपेक्षा नहीं हो सकती। उनकी दृष्टि में लोक-दृष्टि पाप का कारण है और अध्यात्म-दृष्टि पुण्य का कारण है। इसीलिए वे जीवरक्षा करने में, दुःखियों को

दुःख-मुक्त करने में, दीन-हीन की दया लाकर सहायता पहुँचाने में पाप की प्ररूपणा करते हैं। वे कहते हैं कि ये लोक-दृष्टि के कार्य हैं। उनके मत के अनुसार आध्यात्मिक दृष्टि के कार्य ही पुण्य के कार्य हैं और लोक-दृष्टि के कार्य पाप के कार्य हैं। अर्थ यह हुआ कि आध्यात्मिक दृष्टि और लोक-दृष्टि मे वही अन्तर है जो विष और अमृत में है। इन्होंने लोक-दृष्टि का अर्थ ही यह किया कि संसार की व्यवस्था चलाने के लिए जो प्रवृत्ति होती है तद्विषयक दृष्टि लोक-दृष्टि है। संसार की व्यवस्था चलाना उनके मत के अनुसार पाप का कारण है। संसार की व्यवस्था चलाना आध्यात्मिक कार्य नहीं है और जो आध्यात्मिक कार्य नहीं है उससे पुण्य नहीं हो सकता, ऐसी उनकी मान्यता है। तात्पर्य यह हुआ कि उनके मत से लोक-दृष्टि पाप है और आत्मा के लिए विष-रूप है। वे स्वयं कहते हैं कि लौकिक पुण्य में और धार्मिक पुण्य में इतना भेद है जितना आक-दूध और गाय-दूध में है। खैर।

आचार्य तुलसी जिन अनुकम्पा रूप दया-दान को लोक-दृष्टिगत अहिंसात्मक कार्य कहते हैं वस्तुतः वे केवल लोक-दृष्टिगत ही नहीं हैं बल्कि आध्यात्मिक भी हैं। जैन सिद्धान्त का यह आदर्श सूत्र है :

मिती में सव्वभूएसु वेरं मज्झ न केणइ
(मेरी सब जीवों के साथ मैत्री है किसी के साथ द्वेष नहीं है।)

सब जीवों के साथ मैत्रीभाव रखने के लिए जैन धर्म का स्पष्ट संदेश है। क्या कोई सच्चा मित्र अपने दूसरे मित्र को दुःखी देखकर चुपचाप रह सकता है ? यदि वह सामर्थ्य होते हुए चुपचाप उसके दुःख को देखता रहता है तो क्या वह उसका सच्चा मित्र है ? कदापि नहीं ! अतः मरते हुए जीव को बचाना, दूसरों के दुःखों को दूर करने के लिए प्रयत्न करना मैत्री और अनुकम्पा (दया) का सूचक है। मैत्री और अनुकम्पा की भावना आत्मा की विशुद्धि करने वाली है। अतः जीवरक्षा आदि के कार्य आध्यात्मिक भी हैं।

आगे चलकर आचार्य तुलसी कहते हैं कि "किन्तु जब उन कार्यों को लोक-दृष्टि में गिनकर कथन किया जाय तब वहाँ-वहाँ दोनों दृष्टियों की संगति भी हो सकती है।" आचार्य तुलसी के इस वाक्य का क्या अर्थ है, कुछ स्पष्ट नहीं होता। 'संगति' शब्द का अर्थ होता है साथ-साथ रह सकना या साथ-साथ चल सकना। इसी आशय से प्रश्न भी किया गया है कि क्या लोक-दृष्टि और आध्यात्मिक दृष्टि साथ-साथ रह सकती हैं ? क्या वे एक-दूसरे की अपेक्षा रखती हैं या सर्वथा पृथक् हैं। लोक-दृष्टि और अध्यात्म-दृष्टि परस्पर भिन्न हैं, यह तो वे पहले बता चुके हैं। यहाँ उन्होंने उनकी संगति बताने की कोशिश की है लेकिन उनका प्रयोजन हल नहीं हो सकता है। आचार्य तुलसी "वहाँ-वहाँ दोनों दृष्टियों की संगति भी हो

सकती है" —यह कहकर यह प्रकट कर रहे हैं कि लोक-दृष्टि के क्षेत्र में लोक-दृष्टि और अध्यात्म-दृष्टि के क्षेत्र में अध्यात्म-दृष्टि संगत है। इसका अर्थ तो यही हुआ कि दोनों दृष्टियाँ परस्पर पूर्व-पश्चिम की तरह विरोधिनी हैं। शीत-उष्ण की तरह इन में विरोध है। यह तो विसंगति हुई, संगति कैसे ? क्यों न आचार्य तुलसी ने स्पष्ट ही कह दिया कि "दोनों दृष्टियों में कोई संगति नहीं है। दोनों परस्पर विरोधिनी हैं। लोक-दृष्टि में पाप है। अध्यात्म-दृष्टि में धर्म है, पुण्य है। जीव-रक्षा, दया-दान लोक-दृष्टि मे हैं अतः इन में पाप है।"

अपना यह स्पष्ट अभिप्राय आचार्य तुलसी ने कैसे गूढ शब्दों की ओट में छिपाया है, यह स्पष्ट ही है।

'जीव-रक्षा करने में पाप है' —अपनी इस भीषण मान्यता को छिपाने के लिए ही आचार्य तुलसी ने यह शब्द-व्यूह रचा है। जैसे द्रोणाचार्य निर्मित व्यूह में छिपने पर भी किसी तरह अन्ततोगत्वा जयद्रथ को बाहर आना पड़ा और अर्जुन के गाण्डीव का शिकार बनना पड़ा। इसी तरह अन्ततोगत्त्वा आचार्य तुलसी का अभिप्राय तो किसी भी तरह प्रकट होगा ही और उसे सत्य सिद्धान्तों की युक्तियों से बाधित होना ही पड़ेगा।

(5)

क्या यह ठीक है कि उपदेश में तात्पर्य मात्र वस्तु के स्वरूप-प्रतिपादन से है एवं कृत, कारित और अनुमोदना आचरण के प्रकार हैं। अर्थात् जो जिस तत्त्व का प्रतिपादन करता है वह उस सम्बन्ध की क्रिया-विक्रिया आदि से अलिप्त ही रहता है ? तीर्थंकर अथवा शास्त्रकारों के उपदेशों में सभी प्रकार की चर्चाएँ पायी जाती हैं। उनका समन्वय अन्यथा कैसे होगा ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(5) उपदेश से तात्पर्य स्वरूप-वस्तु का प्रतिपादन है। मुनि वस्तुस्वरूप का वर्णन करके हेय, उपादेय और ज्ञेय का बोध कराता है। मुनि-दर्शन का उपदेश या समर्थन करके और शिष्य को आहारादि लाने की आज्ञा देकर साधु तज्जनित क्रिया का समर्थक नहीं बनता। महाव्रती साधु जब दानादि का उपदेश करता है तब उसकी भावना प्राणी-हित की ओर रहती है। दान से पूर्व होने वाली आरम्भादि क्रियाओं में उसकी अनुमोदना नहीं होती। दान की भूमिका और है और आरम्भ की भूमिका और। दोनों को एक मानकर प्राणिहित की उपेक्षा करना अथवा साधु से इतर को दानादि द्वारा सहायता करने का त्याग कराना जैन संस्कृति की परम्परा के सर्वथा विरुद्ध है। जो लोगः-

अव्रत में दान देवातणों कोई त्याग करे मन शुद्ध जी।
त्यारो पाप निरन्तर टालियो त्यारी वीर बखाणी बुद्ध जी।।

कहकर साधु से इतर जनों की अन्न-वस्त्रादि द्वारा होने वाली सहायता के मार्ग में बाधक बनते हैं वे सूत्रकृतांग सूत्र के 'जेय दाणं पसंसंति' पद के उत्तरार्द्ध 'जे य णं पडिसेहन्ति वित्ति छेमं करन्ति ते' अर्थात् जो दान का निषेध करते हैं वे वृत्ति - आजीविका का छेद करते हैं। क्या अव्रत में दान न देने का उपेदश करने वाले तथा अव्रत-दान का त्याग कराने वाले जीवों की वृत्ति का छेद नहीं करते हैं ? भगवान् महावीर के जन-कल्याण के महान् आदर्श का अपलाप नहीं करते हैं ?

'जे य दाणं पसंसन्ति वहमिच्छन्ति पाणिणो' का भावार्थ दान से होने वाले जनहित के सम्बन्ध में मौन होना नहीं है, अपितु उस से पूर्व दानशाला आदि बनाने मे होने वाली आरम्भिक क्रिया के सम्बन्ध में मौन रखने की ओर संकेत है।

यदि साधु से इतर को दान देने का निषेध करते समय आरम्भ को ही मुख्य रक्खा जाता है एवं जनहित के मार्ग में बाधाओं का पहाड़ खड़ा किया जाता है तो प्रश्न है कि कोई भी महाव्रती साधु मुनि-दर्शन के लिये न उपदेश दे सकता है और न समर्थन कर सकता है और न हर वर्ष दर्शन कराने का नियम ही दिला सकता है। क्योंकि मुनि-दर्शन के लिये उड़कर तो नहीं आया जा सकता ? रेल, मोटर, बैलगाड़ी आदि किसी साधन का उपयोग करना पड़ता है और उसमें आरम्भ होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। क्या इस दशा में मुनि-दर्शन की प्रेरणा देने वाले को गमनागमनादि क्रियाओं में होने वाले पाप का भागी होना पड़ता है ? क्या इस प्रकार के आरम्भ की भूमिका को लक्ष्य में लेकर मुनि-दर्शन की प्रेरणा से निवृत्त होने का कोई शास्त्रीय आधार उपस्थित है ? प्रस्तुत प्रसंग पर से उत्तर मिलता है कि मुनि-दर्शन की क्रिया अलग है और रेल-मोटर से आने-जाने वाली क्रिया अलग। साधु की अनुमोदना मुनि-दर्शन मे है किन्तु उसके लिये होने वाले आरम्भ मे नहीं है। इसी प्रकार दानशालादि बनवाने में होने वाले आरम्भ के लिये मुनि की अनुमोदना नहीं है। उसकी अनुमोदना केवल दानादि द्वारा होने वाले प्राणीहित में है।

मुनि-दर्शन और अनुकम्पा-दान में पुण्य-पाप की दृष्टि से कोई भेद नहीं है। यदि साधु मुनि-दर्शन की बात कह सकता है तो अनुकंपा-दान की बात भी कह सकता है। शास्त्र मे आग लगाने वाले को महारंभी और बुझाने वाले को अल्पारंभी कहा गया है। तथा महारंभ और अल्पारंभ के कार्यों का वर्णन है। श्रावक महारंभी कार्यों का त्यागी होता है और अल्पारंभ के कार्य करता है। उपदेष्टा या शास्त्र अल्पारंभी कार्यों के पाप के भागी नहीं हो सकते, उनका

काम विवेक कराना है। जो जितना आचरण कर सके, उतना अच्छा। अनासक्त वक्ता द्वारा प्रतिपादित वस्तुतत्त्व में आसक्त श्रोता फंस भी सकता है और निवृत्त भी हो सकता है। इस में वक्ता का क्या दोष है, वह तो वस्तुस्वरूप का वर्णन मात्र करता है।

हां, यदि वर्णन करते समय वह स्वयं उस में फंस जाय तब तो वह सच्चा उपदेष्टा नहीं रह जायगा। भले-बुरे का, अल्पारंभ के कामों का और महारंभ के कामों का तथा पुण्य और पाप का विवेक कराना साधु का कर्तव्य है। यदि साधु या शास्त्र यह कार्य न करेंगे तो कौन करेंगे ? एतावता विवेक कराने मात्र से तज्जनित क्रिया में होने वाले सूक्ष्म पाप के भागी वे नहीं बन जाते। दार्शनिक दृष्टि से विचार किया जाय तो भारतीय परम्परा में दोनों प्रकार की दृष्टियाँ मिलती हैं। मीमांसक वेद-वाक्य को क्रियापरक मानते हैं और वेदान्ती वस्तुस्वरूपपरक। जैन दृष्टि वेदान्त से मिलती-जुलती है।

आचार्यश्री तुलसीरामजी म.

(5) उपदेश का तात्पर्य स्वरूप-प्रतिपादन से भी होता है और प्रेरणात्मक योगदान से भी।

स्वरूप-प्रतिपादन करने से तो वह उस सम्बन्ध की क्रिया से अलिप्त रहता है किन्तु उपदेश से यदि क्रिया की प्रेरणा दी जाती हो तो प्रेरक अलिप्त नहीं रह सकता।

तीर्थंकरों के उपदेश में स्वरूप-प्रतिपादन तो प्रत्येक वस्तु का हो सकता है किन्तु असत् क्रिया की प्रेरणा नहीं होती अतः समन्वय कैसे हो, यह प्रश्न ही नहीं उठता।

समीक्षा

समिति ने यह प्रश्न इस अनुसन्धान में पूछा है कि तेरापन्थी आचार्य तुलसी ने श्वेताम्बर तेरापन्थ जैन समाज, दिल्ली की ओर से प्रेषित प्रश्न नं. 3 का उत्तर देते हुए यह कहा है कि "उक्त प्रवृत्तियाँ (धर्मशाला, औषधालय, अनाथालय आदि) हिंसा और परिग्रह के बिना साध्य नहीं हैं और साधु के लिए हिंसा और परिग्रह कृत-कारित-अनुमति से त्याज्य हैं [illegible]ए वे इस विषय का उपेदश नहीं कर सकते।"

तेरापन्थी आचार्य का अभिप्राय यह है कि [illegible] उपदेश देने [illegible] और परिग्रह का अनुमोदन लगता है। इस का [illegible] कि वे [illegible] विषयक क्रिया-विक्रिया आदि से [illegible] नहीं [illegible] से तो [illegible] ने [illegible] किया है - तीर्थंकर और [illegible] को अनु[illegible] [illegible] उपदेशों में सभी प्रकार की [illegible] हैं। [illegible] देते हैं [illegible]

उपेदश में स्वरूप-प्रतिपादन होता है अतः उन्हें अनुमोदना नहीं लगती है। इसी तरह साधु भी यदि केवल स्वरूप-प्रतिपादन करता है तो उसे तज्जन्य क्रिया-विक्रिया का अनुमोदन कैसे लग सकता है ?

आ . श्री तुलसी भी यह मान रहे हैं कि उपदेश का तात्पर्य स्वरूप-प्रतिपादन से भी होता है और प्रेरणात्मक योगदान से भी। इसका अर्थ यह हुआ कि यदि साधु अनाथालय, औपधालय, धर्मशाला आदि में रहे हुए प्राणिहित के स्वरूप का प्रतिपादन करता है तो वह ऐसा करता हुआ, ऐसा उपदेश देता हुआ तज्जन्य क्रिया-विक्रिया से लिप्त नहीं होता अर्थात् उसे अनुमोदना का पाप नहीं लगता। हाँ, यदि साधु स्वयं उसमें आसक्त हो जाय तो वह सच्चा उपदेष्टा ही नहीं रहता।

साधु के उपदेश का तात्पर्य प्रेरणात्मक योगदान से नहीं होता। जैसे किसी साधु ने किन्हीं अव्रती गृहस्थों को अणुव्रतों का उपेदश दिया। इसका अर्थ यह नहीं होता कि उस साधु को अणुव्रतों में खुले रहे हुए सावद्य कर्मों का अनुमोदन भी लगा। यदि साधु के उपेदश का अर्थ प्रेरणात्मक योगदान लिया जाय तव तो गृहस्थ को अणुव्रत और दूसरे व्रत-प्रत्याख्यान कराने पर साधु को उसके खुले रहे हुए सावद्यकर्मों का अनुमोदन भी लगेगा ही। इसलिए साधु के उपदेश का तात्पर्य केवल स्वरूप-प्रतिपादन होता है। अतः वे अल्पारम्भ-महारम्भ, पुण्य-पाप के कार्यों का प्रतिपादन कर सकते हैं। साधु रोगी की सेवा करने का, दुःखियें को दुःख से मुक्त करने का, अनाथों की रक्षा करने का, इधर-उधर भटकते हुए को शांति देने का उपदेश दे सकता है। साधु को इन कार्यो के साधनों से प्रयोजन नहीं होता। वह तो प्राणिहित का समुच्चय रूप से उपदेश दे सकता है। जिस प्रकार साधु मुनि-दर्शन का उपेदश दे सकता है उसी तरह प्राणिहित के लिए भी उपेदश दे सकता हैं। मुनि-दर्शन के लिए भी रेल, मोटर आदि साधन का उपयोग करना पड़ता है और उसमें आरम्भ होना प्रत्यक्ष सिद्ध है। ऐसा होते हुए भी मुनि जैसे मुनि-दर्शन का उपेदश दे सकता है वैसे ही प्राणिहित के लिए भी उपदेश दिया जा सकता है। जैसे मुनि-दर्शन की क्रिया अलग है और यातायात में होने वाला आरम्भ है, इसी तरह औपधालय, धर्मशाला, अनाथालय आदि में रहा हुआ प्राणिहित अलग है और उनमें होने वाला आरम्भ अलग है। मुनि-दर्शन के उपेदश देने वाले को जैसे यातायात के आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता, वैसे ही औपधालय आदि में रहे हुए प्राणिहित के लिए उपेदश देने से तज्जन्य आरम्भ का अनुमोदन नहीं लगता है।

अतः यह मानना चाहिए कि मुनि इन कार्यों में रहे हुए प्राणिहित का अनासक्त भाव से उपेदश दे सकता है।

उपेदशों में सभी प्रकार की चर्चाएँ पायी जाती हैं। तव तो वे कह देते हैं कि तीर्थंकरों के (6)

धार्मिक पुण्य एवं लौकिक पुण्य में क्या परस्पर विमुखता है ? यदि उनकी भूमिका में कुछ समानता है तो वह क्या ?

आ. श्री गणेशलालजी महाराज

(6) जैन शास्त्रों में धार्मिक पुण्य और लौकिक पुण्य नामक दो पुण्य हैं ही नहीं। कर्ता कोई भी क्रिया करता है, चाहे वह धार्मिक हो, चाहे लौकिक, यदि उसका फल पुण्य होगा तो आत्मा के साथ पुण्य रूप कर्मवर्गणा का बंध होगा। लौकिक पुण्य की कर्मवर्गणा अलग है और धार्मिक पुण्य की अलग, ऐसा विभाजन जैन शास्त्रों में है ही नहीं। पुण्य एक ही प्रकार का होता है। शास्त्र-प्रसिद्ध 42 पुण्य प्रकृतियाँ धार्मिक और लौकिक, दोनों प्रकार के मनुष्यों को बांधती हैं। यह नहीं कि साधु को एक प्रकार का पुण्य लगता है और श्रावक आदि को दूसरे प्रकार का। अतः पुण्य का यह विभाजन केवल भ्रम में डालने के लिये किया जाता है।

जो लोग दया-दान में पाप मानते हैं किंतु उसको स्पष्ट रूप में कहने का साहस नहीं कर सकते और प्रतिकूल जनमत से डरते हैं वे ही जनहित में होने वाले वास्तविक पुण्य को अन्दर में पाप मानते हुए भी बाहर से उसके लिये लौकिक पुण्य शब्द का प्रयोग करते हैं। वे लौकिक पुण्य में और धार्मिक पुण्य में इतना भेद मानते हैं जितना आक-दूध और गाय-दूध में है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके मत में लौकिक पुण्य पाप का ही दूसरा नाम है।

जिस प्रकार आक का दूध पीने से प्राण चले जाते हैं उसी प्रकार सावद्य अनुकम्पा करने से पापकर्म का बंध होता है। सावद्य अनुकम्पा का स्वरूप बताते हुए वे लिखते हैं - *श्रीकृष्ण भगवान् नेमीनाथ को वन्दन करने के लिये जा रहे थे। मार्ग में एक अति वृद्ध और अशक्त मनुष्य को ईंटें ढोते हुए देखा। उसे सहायता देने के लिये उन्होंने भी एक ईंट उठाई।* देखा-देखी उनके सेवकों ने भी वैसा ही किया और वृद्ध की सारी ईंटें घर पहुँच गयीं। श्रीकृष्ण का यह कार्य सावद्य अनुकम्पा है।

आक दूध पीता थका जुदा होवे जीव काय।
त्यो सावद्य अनुकम्पा किया, पापकर्म बंधाय।।

कृष्णजी नेमी वंदन ने जातां, एक पुरुष ने दुखियो जाणी।
सहाय दियो अनुकंपा कीधी, एक ईंट उठाए उनके घर आणी।।
या अनुकंपा सावद्य जाणो।।51।।

(तेरापन्थ के आद्य प्रवर्तक भिक्खुजीकृत अनुकम्पा ढाल)

परन्तु जैन शास्त्र उपर्युक्त सेवाकार्य को पुण्य मानता है, पाप नहीं। उसकी दृष्टि में वह आक-दूध न होकर गाय का दूध है। यहाँ पर कुछ लोग एक तर्क उठाते हैं कि यह सेवा शरीर-पोषण रूप है, आत्म-पोषण रूप नहीं। किंतु जैन शास्त्रानुसार इस प्रकार के रक्षारूप सेवा-कार्य का अर्थ केवल शरीर-पोषण नहीं, अपितु शारीरिक दुःख मिटाने के साथ उस पीड़ित आत्मा के आर्त-रौद्र ध्यान को हटाकर उसकी आध्यात्मिक सेवा करना भी है।

आ. श्री तुलसीरामजी महाराज

(6) पुण्य पौद्गलिक बन्धन है। वह न तो धार्मिक होता है, न लौकिक। धार्मिक या लौकिक क्रिया होती है। लौकिक पुण्यकार्य और धार्मिक कार्य में परस्पर विमुखता होती है और कहीं नहीं भी। अहिंसात्मकता ही दोनों की समानता का कारण है।

समीक्षा

"लौकिक पुण्यकार्य और धार्मिक कार्य में परस्पर विमुखता होती है और कहीं नहीं भी"— यह भी आचार्य तुलसी का अस्पष्ट उत्तर है। उन्हें यह बताना चाहिये था कि अमुक-अमुक रूप में तो इन दोनों में विमुखता होती है और अमुक अवस्था में विमुखता नहीं भी होती है।

प्रश्न का उत्तर इस ढंग से देना चाहिये ताकि उसका साफ-साफ स्पष्टीकरण हो जाय। लेकिन स्पष्ट उत्तर न देना ही शायद आचार्य तुलसी की लाक्षणिक विशेषता प्रतीत होती है, इसलिये उन्होंने किसी भी प्रश्न का उत्तर साफ-साफ शब्दों मे नहीं दिया।

आचार्य तुलसी के सम्प्रदाय की यह मान्यता है कि पुण्य धार्मिक कार्यों से ही होता है, लौकिक कार्यों से तो पाप ही होता है। फिर भी आचार्य तुलसी ने औषधालय, विद्यालय, अनाथालय आदि को लौकिक पुण्य-कार्य कहा है। उन्होने स्थानकवासी संघ के प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा है कि प्राणी को बचाने के लिए जो-कुछ किया जाता है वह लोक-धर्म है अतः यह आध्यात्मिक धर्म के साथ होने वाले पुण्य का कारण नहीं, लौकिक पुण्यकार्य है।

आचार्य तुलसी से यह पूछना है कि उन्होंने प्राणी की रक्षा को लौकिक पुण्य-कार्य कैसे माना है ? जबकि उनकी मान्यतानुसार प्राणरक्षा में पुण्य नहीं होता तब वे उसे लौकिक पुण्यकार्य भी कैसे कह सकते हैं ? लोक तो इन क्रियाओं में पुण्यबन्ध होना मानता है इसलिए वह इन्हें पुण्यकार्य कह सकता है। परन्तु वे तो इस में पाप मानते हैं तो वे लौकिक पुण्यकार्य क्योंकर कह सकते हैं ? उनकी मान्यता के अनुसार लौकिक पुण्यकार्य पाप के कारण हैं।

एक व्यक्ति प्राणी का घात करता है वह भी पाप करता है और एक व्यक्ति प्राणी को बचाता है, वह भी लौकिक कार्य करता है अर्थात् वह पाप का कार्य करता है।

एक व्यक्ति गरीबों का शोषण करता है वह भी पाप करता है और एक व्यक्ति गरीबों का पोषण करता है वह भी पाप करता है। एक व्यक्ति दुःखी जीवों को दुःख देता है, वह भी पाप करता है और एक व्यक्ति दुःखी जीवों को दुःख से छुड़ाता है, वह भी पाप करता है। यह है आचार्य तुलसी की विचित्र पाप-व्यवस्था।

(7)

धर्म क्या स्थितिबद्ध है ? फिर गति या विकास से उसका क्या सम्बन्ध है ?

आ. श्री गणेशलालजी म.

(7) सातवाँ प्रश्न स्पष्ट है। यदि स्थिति शब्द से अस्तित्त्व लिया जाता है तो उसका परिवर्तन के साथ कोई विरोध नहीं है। जैन दृष्टि के अनुसार उसी को सत् माना जाता है जिस में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य, तीनों तत्त्व विद्यमान् हैं।

यदि स्थिति का अर्थ मर्यादा है तो धर्म की कुछ मर्यादाएं त्रैकालिक और शाश्वत हैं और कुछ देश-कालादि की दृष्टि से परिवर्तनशील हैं।

आचार्यश्री तुलसीरामजी म.

(7) धर्म अपने-आप में पूर्ण है, गति और विकास अपूर्ण, सापेक्ष हैं। धर्म में गति या विकास कहा जाता है, वह धार्मिकों की अपेक्षा से अथवा यों भी कहा जा सकता है कि धर्म के मौलिक नियम स्थितिबद्ध हैं और औपचारिक नियमों में गति और विकास भी।

(8)

धर्म और कर्म को क्या परस्पर की अपेक्षा है ? है तो किस रूप में।

आ. श्री गणेशलालजी म.

(8) धर्म का अर्थ है मोक्षमार्ग। इसकी पूर्णता चौदहवें गुणस्थान में होती है। किन्तु इस स्तर तक पहुँचने के लिये सत्कर्म (शुभ क्रियाएं) भी उपयोगी हैं इसलिये उपादेय भी हैं जब तक कि अन्तिम ध्येय तक न पहुँचा जाय।

इस विषय में साधु और श्रावक का भेद नहीं है। जिस प्रकार साधु की शुभ क्रियाएं मोक्ष

के लिये उपकारक हैं उसी प्रकार गृहस्थ की शुभ क्रियाएं भी। अतएव शुभ भावना से की ज
वाली - अनुकंपा-दान, माता-पिता की सेवा, रोगी की परिचर्या, भूखे को भोजन, व्रत-पाल
आदि श्रावक की शुभ क्रियाएँ भी धर्म का अंग हैं। इस प्रकार जैन दर्शन धर्म और सत्कर्म
किसी प्रकार का विरोध एवं असंगति नहीं मानता, अपितु जीवन-यात्रा में एक-दूसरे
परस्पर पूरक एवं पोषक मानता है।

आ. श्री तुलसीरामजी म.

(8) धर्म और कर्म (क्रिया) परस्पर क्वचित् सापेक्ष, क्वचित् निरपेक्ष हैं। धर्म सत्प्रवृत्त्यात्म
कर्म-सापेक्ष है और कर्म अपनी विशुद्धता के लिये धर्म-सापेक्ष है।

समीक्षा

'धर्म सत्प्रवृत्त्यात्मक कर्म सापेक्ष है और कर्म अपनी विशुद्धता के लिए धर्म सापेक्ष है
मगर सत्प्रवृत्त्यात्मक कर्म किसे कहना चाहिए इसी में तो विवाद है। आचार्यश्री तुल
माता-पिता की सेवा और एक गृहस्थ की दूसरे गृहस्थ द्वारा सहायता आदि रूप प्रवृत्ति
सत्प्रवृत्ति नहीं मानते। भौतिक साधनों से जो सहायता की जाती है उसे आचार्यश्री तुल
असत्प्रवृत्ति मानते हैं। साधु द्वारा जो जो क्रियाएं की जाती हैं उन्हें सत्प्रवृत्ति मानते हैं। कि
गृहस्थ द्वारा की जाने वाली रक्षा, सहायतादि रचनात्मक प्रवृत्तियों को असत् मान कर उनक
फल पापरूप मानते हैं।

समिति की ओर से अन्तिम पूरक प्रश्न

1. औषधालय, विद्यालय और अनाथालय खोलना या संचालन करना तथा आग लगे मकान या बाड़े के द्वार खोलकर अनुकम्पा बुद्धि से मनुष्य, गाय आदि प्राणियों की रक्षा करना आदि कार्यों के द्वारा होने वाला लौकिक धर्म शुभ योग है या अशुभ योग ?

जैनाचार्य श्री गणेशलालजी महाराज का पूरक प्रश्न का उत्तर

आपके प्रश्न में प्रयुक्त किया गया "लौकिक धर्म" शब्द कुछ भ्रामक-सा है। यदि इसका अर्थ वही है जिसे तेरापंथ मानता है तो हम इन क्रियाओं के लिये इस शब्द का प्रयोग नहीं करना चाहते। तेरापन्थ के अनुसार लौकिक धर्म एकान्त पाप का कारण है। यदि उस शब्द को अलग रखकर पूछा जाता है तो हमारा उत्तर है कि अनुकम्पा-भाव से किये गये उपरोक्त कार्य शुभ योग हैं। हम यह पहले ही स्पष्ट कर चुके हैं कि पुण्य और पाप प्रकृतियों का एकान्त बंध नहीं होता (देखिये हमारे उत्तर नं. 2-3)। शुभ और अशुभ का व्यवहार पुण्य और पाप की अधिकता के कारण समझना चाहिए। इति।

जैनाचार्य श्री तुलसीरामजी महाराज का पूरक प्रश्न का उत्तर

आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार माना जाता है कि जहाँ-कहीं भी आरम्भ, हिंसा आदि प्रवृत्तियाँ हैं, वे शुभ योग नहीं होतीं, किंतु हाँ, प्रत्येक अशुभ योग की प्रवृत्ति में भी प्रसंगोपात्त शुभ योग हो सकता है। किसी भी प्रवृत्ति में अशुभ योग माना जाता है, वह हिंसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है। उस में हिंसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है। जहाँ व्यवहार का प्रश्न होता है, समाज की सुख-सुविधा की अपेक्षा होती है, वहाँ मानदण्ड होता है सामाजिक दृष्टिकोण। उसमें शुभ योग, अशुभ योग जैसी कोई व्यवस्था नहीं है। फिर भी यदि शाब्दिक अर्थ लें, जैसे शुभ योग यानी अच्छी प्रवृत्ति तो व्यवहार की भूमिका में ये सब शुभ योग माने जा सकते हैं।

(श्री मोनहलाल कठोतिया द्वारा प्राप्त)

पूरक प्रश्न की समीक्षा

आ. श्री तुलसी ने कहा है कि "किसी भी प्रवृत्ति में अशुभ योग माना जाता है वह हिंसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है। उसमें हिंसा-बचाव आदि की जितनी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है।"

इस कथन के द्वारा आचार्य तुलसी यह स्वीकार कर लेते हैं कि औषधालय, विद्यालय, अनाथालय खोलने या चलाने में और जीव को बचाने में जो आरम्भ होता है वह अशुभ योग है और उसमें हिंसा का बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है। जब इन कार्यों में शुभ योग मान लिया जाता है तो इन कार्यों में पुण्य होता है, यह स्वतःसिद्ध हो जाता है क्योंकि जहाँ शुभ योग है वहाँ पुण्य का बन्ध होता है।

स्थानकवासी सम्प्रदाय भी इन कार्यो में जो आरम्भ होता है उसे आरम्भ और पाप का कारण मानता है परन्तु इन से जो मानव-हित होता है उसे पुण्य का कारण मानता है। तेरापन्थी आचार्य तुलसी ने भी इन कार्यों में होने वाली आरम्भातिरिक्त प्रवृत्ति को शुभ योग स्वीकार कर लिया है। शुभ योग का अर्थ है पुण्य का कारण। अतः आचार्य तुलसी के वचनो से ही यह सिद्ध हो जाता है कि अनाथालय, विद्यालय, औषधालय, प्राण-रक्षा आदि कार्य पुण्यबन्ध के कारण हैं।

जिस प्रकार मुनि-दर्शन शुभ योग है और उसमें होने वाला यातायात का आरम्भ अशुभ योग है इसी तरह अनाथालय विद्यालय, प्राणिरक्षा आदि कार्यो में होने वाला आरम्भ अशुभ योग है और आरम्भातिरिक्त हित-प्रवृत्ति शुभ योग है। वह पुण्य का कारण है।

आचार्य तुलसी कहते हैं कि "जहाँ व्यवहार का प्रश्न है वहाँ मानदण्ड होता है सामाजिक दृष्टिकोण। उसमें शुभ योग, अशुभ योग जैसी व्यवस्था नहीं है।" आचार्य तुलसी का यह कथन जैन शास्त्रों से सर्वथा प्रतिकूल है क्योंकि जैन सिद्धान्त यह मानता है कि जब तक अयोगी अवस्था प्राप्त नहीं होती तब तक चाहे व्यवहार की क्रिया हो, चाहे धार्मिक क्रिया हो, वह या तो शुभ योग से होती है या अशुभ योग से होती है। इसके अतिरिक्त तीसरा विकल्प हो नहीं सकता। अतः "शुभ योग, अशुभ योग जैसी कोई व्यवस्था नहीं है" – यह कहना जैन सिद्धान्त से अनभिज्ञता प्रकट करना है।

आगे चलकर वे कहते हैं - "यदि शाब्दिक अर्थ लें, जैसे शुभ योग यानी अच्छी प्रवृत्ति, तो व्यवहार की भूमिका में ये सब शुभ योग माने जा सकते हैं"। इस कथन मे आचार्य तुलसी ने औषधालय, विद्यालय, प्राण-रक्षा आदि को अच्छी प्रवृत्ति - सत्प्रवृत्ति मान लिया है। और समिति के प्रतिप्रश्न नं. 1 का उत्तर देते हुए उन्होंने "सत्प्रवृत्ति से आकृष्ट कर्मपुदगलों को

पुण्य कहते हैं" —यह पुण्य की व्याख्या की है। इससे भी यह सिद्ध होता है कि विद्यालय, औषधालय, प्राण-रक्षा आदि सत्प्रवृत्ति रूप होने से पुण्य के कारण हैं।

आचार्य तुलसी व्यवहार की भूमिका में इन औषधालयादि प्रवृत्तियों को शुभ योग मान लेते हैं। बड़ी प्रसन्नता की बात है कि आचार्य तुलसी ने अपने पूर्वाचार्यों की मान्यता से विपरीत जाकर भी इस सत्य को स्वीकार कर लिया है।

जैन सिद्धान्त निश्चय और व्यवहार को परस्पर सापेक्ष मानता है। वह व्यवहार को मिथ्या नहीं कहता है। इसीलिए व्यवहार को असत्य से पृथक् माना है। जैसे सत्य मनोयोग, असत्य मनोयोग, मिश्र मनोयोग और व्यवहार मनोयोग; सत्य भाषा, असत्य भाषा, मिश्र भाषा, और व्यवहार भाषा आदि से स्पष्ट है कि व्यवहार मिथ्या नहीं है।

यदि वास्तविक दृष्टि से विचार करें तो लौकिक और धार्मिक, दोनों तरह की प्रवृत्ति का आधार व्यवहार-दृष्टि से ही है। निश्चय-दृष्टि से तो आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त सुखरूप है। वह निरञ्जन और निर्विकल्प है। वह अयोगी है। वह न पुण्य करता है और न पाप करता है। यह जो पुण्य, पाप, योग आदि की प्रवृत्ति है, वह सब व्यावहारिक ही है। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका आदि तीर्थ भी व्यवहार ही है। व्यवहार की भूमिका में ही सही, आचार्य तुलसी ने औषधालय, विद्यालय, अनाथालय, और प्राणरक्षा को शुभ योग में मानकर सत्य को अपनाया है। इसके लिए उन्हें धन्यवाद है।

स्पष्ट रूप में न सही, अस्पष्ट रूप में ही, प्रत्यक्ष में न सही, परोक्ष में ही, मन में न सही शब्दों में आचार्य तुलसी ने अपनी परम्परागत मान्यता में संशोधन किया है, यह स्थानकवासी सिद्धान्तों की विजय है। काश ! आचार्यश्री तुलसी स्पष्ट रूप में इस सत्य को स्वीकार करें।

समीक्षक : पं. वसंतीलाल न. व्याकरणतीर्थ

पूरक प्रश्न की समीक्षा

(समीक्षा-पं. पूर्णचन्द्र दक)

पूरक प्रश्न के उत्तर पर थोड़ा और विचार किया जाता है। जैन संयोजना समिति के विद्वान् और विचारक सदस्य पं. श्री राजेन्द्रकुमारजी ने पूर्ण स्पष्टीकरण के अभिप्राय से अन्तिम पूरक प्रश्न पूछा है। समिति के कार्यमन्त्री श्री अक्षयकुमार ने भूमिका में इस बात का जिक्र किया है। पं. राजेन्द्रकुमारजी जैन धर्म के मर्मज्ञ तथा शास्त्रार्थ या चर्चा करने में बड़े कुशल हैं। पं. जी ने आर्यसमाजियों के साथ शास्त्रार्थ करके उनको परास्त किया है। पण्डितजी इस बात का अन्तिम और स्पष्ट उत्तर प्राप्त करना चाहते थे कि लौकिक कार्यों का फल पुण्य रूप होता है या पाप रूप। इसी आशय से बड़ी बुद्धिमानीपूर्वक इस प्रश्न की रचना की गई थी।

यह प्रश्न और इसका उत्तर खास महत्त्व रखते हैं। किसी भी चर्चा में अन्तिम प्रश्न का बड़ा महत्त्व होता है। और उससे भी अधिक उसके उत्तर का। यदि आचार्यश्री गणेशलालजी म. तथा आचार्यश्री तुलसी के बीच दया-दान को लेकर शास्त्रार्थ होता और उसमें जय-पराजय का निर्णय देने का प्रसंग उपस्थित होता तो अन्तिम उत्तर का कितना महत्त्व होता !

जय-पराजय की भावना को मन में स्थान न देकर केवल सत्य-असत्य का निर्णय करने की भावना से भी अन्तिम पूरक प्रश्न के उत्तर का बडा महत्त्व है। प्रश्नोत्तर का सिलसिला इसलिए प्रारम्भ किया गया था कि जनता इस बात का निर्णय कर सके कि दया और दान के सम्बन्ध में आचार्यश्री गणेशलालजी म. तथा आचार्यश्री तुलसी के क्या विचार हैं।

समिति के मान्य सदस्यों ने भी इस बात का प्राक्कथन में इस प्रकार जिक्र किया है :-

'जैन सिद्धान्त के प्रतिपादन में, विशेषकर दया-दान सम्बन्धी मान्यताओं पर, बीच में (दोनों आचार्यों के बीच) कुछ उलझन और असन्तोष भी है। वह पत्रों और पर्चों में भी सामने आया और किंचित् क्षोभ का भी कारण बना। फलतः समिति का निर्माण हुआ जो एक-दूसरे की शंकाओं को लेकर उभयपक्षों (उभयपक्ष के आचार्यों से उत्तर प्राप्त कर) से उनके मन्तव्य प्राप्त करे और यदि आवश्यक हो तो अपनी ओर से प्रतिप्रश्नों का निर्माण करके विवादस्थ विषय को और भी स्पष्ट करले।'

आठ प्रतिप्रश्नों के पश्चात् पूरक प्रश्न इसलिए आवश्यक हो गया कि दया-दान के सम्बन्ध में पुण्य-पाप फल की मान्यता आचार्यश्री तुलसी के उत्तरों में स्पष्ट नहीं हुई। इस अंतिम प्रश्न की रचना ही यह बताती है कि वह आचार्यश्री तुलसी से सम्बन्ध रखता है। किन्तु इसका भी उत्तर आचार्यश्री तुलसी ने कितने छल से दिया है, यह स्पष्ट है। इस उत्तर को श्री जैनेन्द्रकुमारजी तक न समझ पाये और उन्होने यह मान लिया कि आचार्यश्री तुलसी विवादग्रस्त कार्यों का फल एकान्त पाप रूप नहीं मानते। उनमें कुछ पुण्य मानते हैं। किन्तु हमारी श्री जैनेन्द्रकुमारजी से सविनय प्रार्थना है कि वे बारीकी से तेरापंथ की मान्यता का अध्ययन करेंगे तो उन्हें असलियत का पता लग जायगा। रक्षा और सहायता के कामों में तेरापंथी न तो शुभ योग मानते हैं और न पुण्य।

इस प्रश्न का सीधा उत्तर 'शुभयोग है' अथवा 'अशुभ योग है' इन दोनों में से किसी एक विकल्प से देना चाहिए था, जैसा कि आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज ने 'हमारा उत्तर है कि अनुकंपा भाव से किये गये उपरोक्त कार्य शुभ योग हैं' दिया है।

आचार्यश्री तुलसी ने इन शब्दों में उत्तर दिया है-- 'आध्यात्मिक दृष्टि के अनुसार माना जाता है कि जहाँ कहीं भी आरंभ, हिंसा आदि प्रवृत्तियां हैं वे शुभ योग नहीं होती' तथा 'किसी भी प्रवृत्ति में अशुभ योग माना जाता है, वह हिंसा आदि की अपेक्षा से ही माना जाता है।

उसमें हिंसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है।' इस शब्द-रचना से जो भावार्थ निकल सकता है उसके अनुसार तो ऊपर समीक्षा की जा चुकी है।

किन्तु इस शब्द-रचना के अंतर में अनन्त आवरणों के भीतर जो बात छिपी हुई है, वह प्रकट की जाती है।

तेरापंथ की अहिंसा का अर्थ है 'अपने-आप को पाप से बचाना। तेरापंथी किसी जीव को अपनी ओर से नहीं मारता है, सो अपना पाप टालने के लिए, न कि सामने वाले जीव की रक्षा के लिए। सामने वाले जीव की रक्षा करना अहिंसा नहीं किन्तु इनके मत से हिंसा है। सामने वाला जीव असंयती है। असंयती की रक्षा से असंयम का पोषण होता है। असंयम हिंसा ही है। रक्षा का अर्थ अपनी ओर से किसी जीव को न मारना है। किसी मरते जीव को बचाना रक्षा नहीं, हिंसा है। किसी जीव को बचाने की भावना करने में भी तीसरे करण (अनुमोदन) में हिंसा लगती है। जीव बचाने की चेष्टा में तो प्रत्यक्ष हिंसा लगना मानते हैं। इनकी मान्यता का सारांश यह है कि निज से किसी को न मारना अहिंसा है। न मारने से अपने-आप ही जीव बच जाते हैं। बचाने की भावना से जीवरक्षा करने पर असंयम के पोषण में अनुमोदन व योगदान हो जाता है और जिसको बचाया जाता है उनके प्रति रागभाव भी आ जाता है। राग भी बंधन है। और इतना चिक्कना बंधन है कि द्वेष से भी अधिक घातक फल देने वाला है।'

इस मूलभूत बात को ध्यान में रखकर अब इनके 'उसमें हिंसा-बचाव आदि की जितनी भी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है' वाक्य पर मनन कीजिये।

साधारण विचारक यही सोच सकता है कि औषधालय, विद्यालय और अनाथालय खोलना या संचालन करना तथा आग लगे मकान या बाड़े के द्वार खोलकर अनुकंपा-बुद्धि से मनुष्य, गाय आदि प्राणियों की रक्षा करना रूप कार्य के लिए जो भावना या प्रवृत्ति की जाती है उसी को लक्ष्य करके आचार्यश्री तुलसी ने 'उसमें हिंसा-बचाव आदि की जितनी भावना या प्रवृत्ति रहती है वह शुभ योग ही है' वाक्य का प्रयोग किया होगा। किन्तु वस्तुतः यह बात नहीं है। अनुकंपा-बुद्धि से मनुष्य, गाय आदि प्राणियों की रक्षा करने की भावना या प्रवृत्ति करना तेरापंथ की मान्यता के विरुद्ध है। कारण कि मनुष्य और गाय आदि असंयमी हैं।

तब यह प्रश्न उठता है कि आखिर आचार्यश्री तुलसी ने इस वाक्य का प्रयोग किया है उसका कोई हेतु तो होना चाहिये। हिंसा-बचाव आदि की बात में शुभ योग बताया है, वह किस दृष्टि से है ?

अपना पाप टालने में हिंसा-बचाव की भावना या प्रवृत्ति होती है, उसी से इन का योजन है और उसी वस्तु को लक्ष्य में लेकर यह वाक्य लिखा गया है। किन्तु इस वाक्य ो पढ़ कर पाठक भ्रम में पड जाते हैं कि आचार्यश्री तुलसी मान तो रहे हैं कि औषधालय ादि कार्यों मे जितना हिंसा-बचाव है वह शुभ योग है और जितना आरम्भ है वह अशुभ योग ।

ये काम आज्ञा बाहर हैं। अतः अधर्म कार्य हैं। अधर्म कार्य के करने की भावना या प्रवृत्ति ये पडना ही नहीं चाहते। तब इन कार्यों में हिसा-बचाव आदि का प्रश्न ही नहीं उठता। तः पाठक हिसा-बचाव शब्द से यह न मान बैठे कि आचार्यश्री तुलसी उपरोक्त कामों में कुछ ण्य तो मानते हैं।

श्री जैनेन्द्रकुमारजी इसी बात को न समझ पाये, अतः उनका खयाल हो गया कि रापंथी भी इन कामों मे कुछ पुण्य तो मानते हैं। जबकि रक्षा और सहायता के कार्य या ावना मे वे किंचित् भी पुण्य नही मानते। सर्वथा पाप मानते हैं। अपनी आत्मा के द्वारा किसी ीव को न सताने में धर्म-पुण्य मानते हैं। सताये जाते हुए की रक्षा या सहायता करने में सौ रसेंट पाप मानते हैं— यह प्रकट सत्य है। इनके ग्रथ इस बात के साक्षी हैं। उनमें ये बातें स्तार से चर्ची हुई हैं। भौतिक साधनो से बचाने की बात चल रही है, यह ध्यान रहे।

हमें इस बात की बड़ी प्रसन्नता है कि पं. श्री राजेन्द्रकुमारजी इस बात को स्पष्ट रूप । समझ गये कि आचार्यश्री तुलसी विवादग्रस्त कार्यों का फल सर्वथा पाप मानते हैं तथा इन ार्यों में शुभ योग होना भी नही मानते।

इस बात को लेकर इन दोनों विद्वानों मे मतभेद हो गया। मतभेद का आभास इस बात भी मिलता है कि प्रश्नोत्तर प्रकाशित करने के लिए वक्तव्य लिखने का भार पं. राजेन्द्रकुमारजी ो सौंपा गया था। वह वक्तव्य जैन संयोजना मे प्रकाशित नही किया गया है। पं. ाजेन्द्रकुमारजी ने अपने वक्तव्य में यह जाहिर करना उचित समझा था कि आचार्यश्री तुलसी े उत्तरों से यह ज्ञात होता है कि इन की मान्यता विवादग्रस्त कार्यो का फल पापरूप होने ी हैं। किन्तु श्री जैनेन्द्रजी को यह बात अच्छी न लगी। समिति के सदस्य द्वारा ऐसा लिखा ाना किसी को राजी और किसी को नाराज करना है। श्री जैनेन्द्रकुमारजी किसी को ाजी-नाराजी न करना चाहते थे अतः श्री राजेन्द्रजी का वक्तव्य अप्रकाशित ही रहा। अथवा लिखा भी न गया हो और मन में पैदा होकर मन ही में विलीन हो गया हो। किन्तु ऊपर की कीकत सत्य है कि इस बात को लेकर दोनों में मतभेद था।

ऐसा भी सुनने में आया है कि श्री जैनेन्द्रजी ने संयोजक के नाते कुछ वक्तव्य लिखा ा जिसमे दोनों आचार्यों को प्रसन्न रखने की चेष्टा थी। मगर उसे श्री राजेन्द्रजी ने कतई

पसन्द नहीं किया। वे अपना विरोध नोट करवाना चाहते थे। अंत में बिना वक्तव्य के ही प्रश्नोत्तर प्रकाशित हुए हैं।

पूरक प्रश्न के उत्तर में आचार्य तुलसी ने शब्दान्तर से स्पष्ट रूप में यह मान लिया है कि विवादग्रस्त कार्य अशुभ योग हैं। आचार्य तुलसी के शब्द देखिये– 'फिर भी यदि शाब्दिक अर्थ लें जैसे शुभ योग यानी अच्छी प्रवृत्ति तो व्यवहार की भूमिका में ये शुभ योग माने जा सकते हैं।' इसका मतलब यह है कि वास्तव में - निश्चय से तो इन कामों में अशुभ योग होता है। फिर भी यदि शाब्दिक अर्थ लें तो शुभ योग माने जा सकते हैं। अर्थात् दुनिया अपनी अज्ञानता से इन कामो में शुभ योग और पुण्यफल मानती है, अतः कहा जा सकता है कि इन मे शुभ योग है। आचार्यश्री तुलसी की ऐसी मान्यता नहीं है।

'सामाजिक दृष्टिकोण में शुभ योग अशुभ योग जैसी कोई व्यवस्था नहीं है' लिखकर तो आचार्यश्री तुलसी ने हद कर दी है। अपनी पुरानी मिथ्या परंपरा का समर्थन करने के लिए कितने असत्य का सहारा लेना पडता है, इसका यह ज्वलन्त उदाहरण है। सामाजिक दृष्टिकोण में यदि शुभ योग और अशुभ की व्यवस्था नहीं है तो क्या सामाजिक कामों का कुछ फल ही नहीं होता ? क्या ये कार्य निष्फल है ? क्या समाजिक कार्य करने में मन, वचन और काया नहीं लगाने पड़ते ? सामाजिक कार्य किसी भावना से ही किये जाते हैं। कर्ता का व्यापार मन से, वचन से और काया से होता है। उस व्यापार के पीछे शुभ या अशुभ कुछ तो विचार रहता ही है। आचार्यश्री तुलसी ऐसी बात कह गये जिसे पढ कर विचारवान् व्यक्ति कठिनाई से अपनी हंसी रोक सकेगा।

एक सीढी चूकने पर मनुष्य का टिके रहना बड़ा कठिन है। परोपकार के कामो में असयम का पोषण और राग-भाव की कल्पना करके आचार्यश्री तुलसी बुरी तरह फंस गये हैं। अपने पूर्वाचार्यो की अपेक्षा तेरापंथ की मान्यता के व्यक्तिकरण के तरीके मे जिस प्रकार आचार्यश्री तुलसी ने परिवर्तन किया है, उसी प्रकार अर्थ में भी परिवर्तन करेगे तव वे विद्वत्समाज में सम्मानित हो सकेंगे।

आचार्यश्री ! आपके लक्ष्मीपति अनुयायियों के प्रभाव से प्रभावित होकर लोग आपके समक्ष कुछ नहीं कहते। मगर आप की मान्यताओ के कारण लोगों के भाव अच्छे नहीं हैं। जैन धर्म पर भी लोग इस कारण आपेक्ष करते हैं। आप साधु हैं, पंचमहाव्रतधारी हैं। इतनी स्पष्ट पाप-मान्यता को आप कब तक छिपाने मे सफल होते रह सकेंगे ? इसके लिए आप को मन की बातें छिपानी पडती हैं। मन में कुछ और होता है और शब्द कुछ और निकलते हैं।

जो मन में सोइ वैन में, जो वैनिन सोई कर्म।
कहिये ताको संतवर, जा को ऐसो धर्म।।

यह संत का लक्षण है। किन्तु अपनी पाप-मान्यता को छिपाने के लिए आपको इस दोहे के विरुद्ध आचरण करना पडता है। ठेठ भीखणजी महाराज से ही यह परिपाटी चली आ रही है कि कुयुक्तियों के जरिये अथवा शब्दछल और अर्थछल से अपनी मिथ्या धारणाओं को छिपाते भी रहना और पुष्ट भी करते रहना। आप युवक हैं, नई रोशनी में आये हैं, अतः आप से आशा है कि इस परिपाटी को खत्म कर देगे। इसमें आपका, तेरापंथी समाज का और दुनिया का भला है।

आचार्य महाराजश्री तुलसीरामजी के उत्तरों की समीक्षा

(समीक्षक-बच्छराज सिंघी, सुजानगढ़)

जैन संयोजना समिति दिल्ली द्वारा प्रकाशित जैन संयोजना नामक एक पुस्तिका से ज्ञात हुआ कि श्वेताम्बर जैन समाज के स्थानकवासी आचार्यश्री गणेशलालजी महाराज और तेरापंथ के आचार्यश्री तुलसीजी महाराज के दरमियान दया-दान के विषय पर दिल्ली में प्रश्नोत्तर चले। प्रश्नोत्तरो मे श्री तुलसीजी महाराज ने गृहस्थ के लिये निःस्वार्थ परोपकार और सेवा के कार्य करने में यानी दया-दान में एकान्त पाप और अधर्म मानने वाले अपने सिद्धान्तो को कैसी शब्द-चातुरी से जनसाधारण के समक्ष ढकने का प्रयन्त किया है। इस लेख में यही हमारे विचारने का प्रयोजन है।

सब से पहिली बात तो यह है कि स्थानकवासी समाज ने प्रश्नों के नीचे जो नोट दिया है, उस में यह स्पष्ट अनुरोध है कि उत्तर देने में टेढी-मेढ़ी भाषा में भावों को छिपाने की कोशिश न हो, पुण्य, पाप, निर्जरा, संवर जो-कुछ हो, उत्तर में दो-टूक शब्द अपेक्षित हैं। लम्बी व्याख्या में उत्तर देकर प्रश्न को कुचक्र में न डाला जाय आदि। परन्तु आचार्यश्री तुलसीजी महाराज ने समस्त प्रश्नों के उत्तर देने में स्थानकवासी समाज के अनुरोध की अवहेलना की है। असली भाव प्रकाश मे न आवे जैसे उत्तर देने का प्रयास किया है। तेरापंथ सम्प्रदाय के प्रथम आचार्यश्री भीखणजी महाराज से लगा कर आज तक जिन परोपकार कार्यों के करने में तेरापंथी एकान्त पाप होना मानते और कहते आये हैं - उनमें अब पाप शब्द के स्थान पर "लौकिक पुण्यकार्य" ऐसा एक नया शब्द रच कर जनसाधारण के समक्ष रखना यह एक भुलावे में डालने का प्रयास नहीं है तो क्या है ? मन में जिसको पाप समझते हैं उसको कहने में लौकिक पुण्यकार्य कहना कहाँ तक ठीक है ? वह पाठक स्वयम् समझें। आचार्य महाराज को यदि कोई पूछे कि पाप का फल क्या है ? तो अवश्य ही वे कहेंगे कि कष्टभोग और दुर्गति। परन्तु यदि कोई पूछे कि इस लौकिक पुण्यकार्य का क्या फल है तो यदि सच कहेंगे तो यही कहेंगे कि दुखभोग और दुर्गति। लौकिक पुण्य शब्द कहने मात्र से ही अपनी मान्यता के अनुसार वे ऐसा नही कह सकते कि इस लौकिक पुण्यकार्य का फल सुखभोग

और सद्गति होगा। तो फिर पाप शब्द के स्थान में पुण्य शब्द रख देने का अर्थ ही क्या हुआ ?

(1) पहिले प्रश्न मे लिखा है कि औषधालय, विद्यालय, अनाथालय आदि की अन्न, वस्त्र, औषध और मकानादि द्वारा शुभ भावना से (यानी गृहस्थ निःस्वार्थ भावना से) सहायता करे तो पुण्य होता है या पाप ? इस प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री तुलसीजी महाराज लिखते है कि "औषधालय, विद्यालय, आदि लोक-धर्म के कार्य हैं इसलिये लौकिक पुण्यकार्य कहे जाते हैं" इनके कर्ता को "आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य नही होता।" स्थानकवासी समाज के प्रश्न मे स्पष्ट मांग है कि ऐसे परोपकार के कार्यो को नि.स्वार्थ करने में गृहस्थ को पुण्य होता है या पाप ? उनकी मांग यह नहीं है कि इनके कर्ता को आध्यात्मिक क्रिया के साथ होने वाला पुण्य होता है या नहीं होता।

आचार्यश्री तुलसीजी महाराज को अपनी मान्यता के अनुसार स्पष्ट कहना चाहिये था कि पाप होता है, जैसा कि इनके पूर्वाचार्यो ने बराबर कहा है। तेरापंथ मजहब के प्रवर्तक प्रथम आचार्यश्री भीखणजी महाराज तथा चौथे पट्टधर आचार्यश्री जीतमलजी महाराज की रची हुई पुस्तकों और ढालों में अनेक स्थानों में परोपकार और सेवा के कामों के करने में गृहस्थ के लिये पाप होना बताया है। जिन में से कुछ प्रमाण यहाँ दिये जा रहे हैं।

"साधु थी अनेरा कुपात्र छै। अनेरा ने दीधा अनेरी प्रकृतिनो बन्ध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पापनी छै।"

(आचार्यश्री जीतमलजी कृत "भ्रम विध्वंसनम्", पृष्ठ 79)

अर्थात्- साधु के सिवाय बाकी सब मनुष्य कुपात्र हैं। उन्हे दान देने से पाप होता है।

"कुपात्रदान कुक्षैत्र कहया, कुपात्ररूप कुक्षैत्र ने पुण्य बीज किम उपजे ?"

(भ्रमविध्वंसनम्, पृ. 80)

अर्थात्- कुपात्र को दान देना तो खराब खेत में बीज बोना है। वहाँ पुण्य बीज कैसे उत्पन्न हो सकता है ? यानी नही होता।

"कुपात्रदान, मांसादिक सेवन, व्यसन कुशीलादिक यह तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं जैसे चोर, जार, ठग यह तीनों समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्र दान भी मांसादि सेवन, व्यसन कुशीलादि की श्रेणी में गणना करने योग्य है।"

(भ्रमविध्वंसनम्, पृष्ठ 82)

उपर्युक्त कथनों से यही सिद्ध होता है कि तेरापंथी साधुओं के सिवाय संसार के सब मनुष्य कुपात्र हैं और कुपात्रदान, मांसादिक सेवन, व्यसन कुशीलादि तीनों एक ही मार्ग के पथिक हैं, जैसे चोर, जार, ठग यह तीनों समान व्यवसायी हैं उसी तरह कुपात्रदान भी

मांसादि सेवन, व्यसन कुशीलादि की श्रेणी में गणना करने योग्य है।

"साधु के अतिरिक्त सब प्राणी असंयती होते हैं। असंयती जीवों के जीने आदि की कामना करना एकान्त पाप है।"

(श्रीमदाचार्य भीषणजी के विचार रत्न, पृष्ठ 23)

"जितरा उपकार संसार रा ते तो सगला ही सावध जाणो हो।" (आचार्यश्री भीषणजी रचित "अनुकम्पा" ढाल 4, कडी 19)

अर्थात्-संसार के जितने उपकार हैं वे सब सावद्य (हिंसायुक्त) पाप पूर्ण हैं।

नीचे संसार के उपकारों को बताते हैं :-

कोइ लाय सूं बलताने काढ बचायो, बले कुए पड़ताने बचायो।

बले तलाब में डूबताने बाहर काढे,

बले ऊंचाकी पड़ताने झेले तायो।।

ओ उपकार संसार तणोछे, संसार तणो उपकार करेछे।

तिणरे निश्चय ही संसार बधे ते जानो।

(अनुकम्पा ढाल 11, कड़ी 12)

अर्थात् अग्नि में जलते हुए जीवों को कोई बाहर निकाल कर बचावे, कुएं में गिरते हुए को बचावे। यह सब संसार के उपकार हैं। इनके करने से निश्चय ही भवभ्रमण की वृद्धि होती है। ऐसे पापकारी कार्यो से प्राणी दुर्गति में भटकता है।

कोई मात पितारी सेवा करे दिन रात,
मनमाना भोजन त्यांने कराई।
बले खांधे कावड़ लियां फिरे त्यांरी,
बले दोनों वक्ते स्नान कराई ताई।।
ओ उपकार संसार तणो छै।

(अनुकम्पा ढाल 11, कड़ी 188)

अर्थात् कोई गृहस्थ दिन रात माता-पिता की सेवा करता है। उन्हें रुचि के अनुसार भोजन कराता है, कावड में उठाये फिरता है, दोनों वक्त स्नान कराता है तो यह सब उपकार संसार के हैं, जो दुर्गतियों में भटकाने वाले हैं।

गृहस्थने औषध भेषज देईने, अनेक उपाय करी जीव बचावे।
यह संसार तणो उपकार कियां में मुक्तिरो मारग मूढ़ बतावे।।

(अनुकम्पा ढाल 8, कडी 5)

अर्थात् औषधादि देकर अथवा अन्य उपायों से गृहस्थ का जीवन बचाना संसार बढाने वाला पापकारी उपकार है। मूढ लोग इसको मुक्ति का मार्ग यानी धर्म बता रहे हैं।

दुखिया और दरिद्री देखी अनुकम्पा उणरी मन आणी।
गाजर मूलादिक सचित खुवावे, बले पावे उणे काचो पाणी।।
आ अनुकम्पा सावज जाणो।

(अनुकम्पा ढाल 1, कडी 16)

अर्थात् दरिद्री और दुखियों को देखकर उनकी अनुकम्पा करके गाजर आदि वनस्पति खिलावे और पानी पिलावे तो यह पापकारी दया है।

व्याधि अनेक कोढादिक सुणने, तिण उपर वैद चलाई न आवे।
अनुकम्पा आणी साझो दीधो, गोली चूरण दे रोग गमावे।।

(अनुकम्पा ढाल 1, कड़ी 24)

अर्थात् कुष्ठादिक कठिन रोग से पीडित रोगियो को सुनकर कोई वैद्य दयाभाव से उनको गोली-चूर्ण देकर रोग-रहित कर दे तो यह दया पापकारी दया है।

लाय लागी जो गृहस्थ देखे तो तुरत बुझावे छःकाय ने मारी।
यह सावद्य कर्तव्य लोक करे छे, तिण में धर्म कहे सांगधारी।।

(अनुकम्पा ढाल 8, कडी 52)

अर्थात् लाय (आग) लगी हुई गृहस्थ देखता है तो फौरन वह छःकाय पृथ्वी आदि के जीवो को मार कर उसे बुझाता है। ऐसे पापपूर्ण कार्य को स्वांगधारी साधु धर्म कहते हैं।

कुपात्रदान में पुण्य परूपे, तिणसूं लोक हणे जीवाने विशेषो।
कुगुरु एहवा चाला चलावे, ते भ्रष्ट हुआ लेई साधुरो भेषो।।

(अनुकम्पा ढाल 13, कडी 6)

अर्थात् कुपात्रदान में पुण्य वताने से लोग जीवों को विशेष मारते हैं। पुण्य बताकर यह लोग साधु के भेष में भ्रष्ट होते हैं।

कुपात्र जीवांने बचावियां, कुपात्र ने दियां दान जी।
ओ सावद्य कर्तव्य संसारो, भाख्यो छे भगवान्‌जी।।

(अनुकम्पा ढाल 12, कड़ी 10)

अर्थात् कुपात्र जीवों को मरने से बचाना, कुपात्र को दान देना, यह संसार का पापमय कार्य है।

असंजती जीवरो जीवणो, तो सावद्य जीतब्य साक्षातजी।
तिणने देवे ते सावद्य दान छे, तिणमें धर्म नहीं अंशमातजी।।

(अनुकम्पा ढाल 12, कड़ी 40)

अर्थात् असंयमी यानी तेरापंथी साधु से अन्य सबका जीवन पापमय है। उनको देना एकान्त पापमय दान है। उसमें धर्म का अंश मात्र नहीं है।

असंजती ने दान दियां में, धर्म पुण्य कांई थापो रे ?
श्री वीर कह्यो भगवती मांही निर्जरा नहीं एकान्त पापोरे।।

(चतुरविचार की ढाल 1, कड़ी 23)

अर्थात् हे लोको ! असंजती को दान देने में क्यों धर्म या पुण्य बता रहे हो ? भगवान् ने इसको एकान्त पाप कहा है।

असंजती रा जीवन मध्ये धर्म नहीं अंश मातजी।
दान देवे छे तेहने, ते पण सावद्य साक्षातजी।।

(अनुकम्पा ढाल 13, कड़ी 62)

संसार तणो उपकार कियां में केई मूढ मिथ्यात्वी धर्म बतावे।
श्री जिन मार्ग ओलखियां विन मन माने जूं गोल चलावे।।
संसारो उपकार कियां में जिन धर्मरो नहीं अंश लिगार।
संसार तणा उपकार कियां में धर्म कहे तो मूढ़ गंवार।।

(अनुकम्पा ढाल 11, कड़ी 37-39)

अर्थात् संसार का उपकार करने में धर्म बताने वाले व्यक्ति 'जिन' धर्म को नहीं जानते। वे मूढ मिथ्यात्वी, गंवार है।

श्रावक तो असंजती अव्रती छे ते रुड़ी रीति पहिचानो रे।
श्रावक ने दान दे तिणरी करे प्रशंसा ते परमार्थरा अजाणोरे।।

(चतुर विचार ढाल 3, कड़ी 38)

अर्थात् श्रावक (गृहस्थ) तो असंजती, अव्रती है; यह अच्छी तरह समझ लो - उनको दान देने की जो प्रशंसा करते हैं वे अज्ञानी हैं।

श्रावक (गृहस्थ) को जो भी द्रव्य साता पहुँचाई जायगी वह प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष में असंयम को ही उत्तेजना देने वाली होगी क्योंकि श्रावक का खाना-पीना, व्यापार-धन्धा करना, स्त्री-सेवन करना, बाल-बच्चो का पोषण करना, उपभोग-परिभोग की चीजों का सेवन करना, देना आदि सब प्रवृत्तियाँ उसके जीवन के अधर्म पक्ष - असयम पक्ष का ही सेवन हैं। (श्रीमदाचार्य भीषणजी के विचार रत्न, पृष्ठ 60)

केईएक अज्ञानी इम कहे छःकाया काजे हो देवां धर्म उपदेश।
एकण जीव ने समझावियां मिट जावे हो घणां जीवांरा क्लेश।।
छव काय घरे शान्ति हुवे एहवा भाषे हो अन्यतीर्थी धर्म।
त्यां भेद न पायो जिनधर्मरो ते तो भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म।

(अनुकम्पा ढाल 5, कड़ी 16-17)

अर्थात् किसी मरते हुए जीव को बचाने के लिये कोई उपदेश देवे तो उपदेशदाता मिथ्यात्वी, अज्ञानी और अशुभ कर्म बांधने वाला है।

गृहस्थ के पग हेटे जीव आवे तो साधुने बताणो कठे नहीं चाल्यो।
भारी करमा लोकांने भ्रष्ट करण ने, ओपिण घोचो कुगुरां घाल्यो।।

(अनुकम्पा ढाल 8, कड़ी 38)

गृहस्थ के पैर के नीचे कोई छोटा जीव दब कर मरता हो तो साधु को बताना नहीं चाहिए। जो बताते हैं वे कुगुरु हैं।

ऐकेन्द्री मारी ने पंचेन्द्री पोषे तो निश्चय ही बान्धे कर्मों रे।
मछ गलागल ते चोड़े मांडीयो पाखन्डियो रो धर्मों रे।।

(अनुकम्पा ढाल)

जो अनाज खिलाकर पशु-पक्षी, मनुष्य का रक्षण-पोषण करता है वह निश्चय ही पापकर्म बाँधता है। पाखण्डी इसमें धर्म मानते हैं।

रांकां ने मार धींगा ने पोषे आ तो बात दीसे घणी गहरी।
इण मांही दुष्टि धर्म परूपे तो रांक (गरीब) जीवों के शत्रु हैं भारी।।

(अनुकम्पा ढाल 13, कड़ी 4)

गरीब वनस्पति आदि स्थावर जीवों को मार कर शैतान पंचेन्द्रिय जीवों का जो पोषण करते हैं वे रांक (गरीब) जीवों के शत्रु हैं।

ज्यू छःकायना हिंसक भणी जे नर पोषे जाण।
ते बेरी षट कायनो प्रत्यक्ष हिय पिछाण।।8।।

हणणहार षट कायनो तसू पोषे किये सूर।
तिण कारण जीवां तणो बेरी ते भरपूर।।9।।

(भिक्षुजश रसायन, ढाल 18)

अर्थात् छःकाय के हिंसक का पोषण करके सबल बनाने वाला छहीं काय का शत्रु है।

जो आरंभ सहित जीवणो असंजतीरो अम्म।
जिण बांछयो एह जीवणो तिण बांछयो आरम्भ।।8।।

(भिक्षुजशरसायन, पृष्ठ 66)

अर्थात् असंजती का जीवन आरम्भ (18 पाप) सहित होता है इसलिए उसके जीवन की कामना करना आरम्भ का अनुमोदन करना है।

सावज दान सरधायवा दिया भिक्षू दृष्टान्त।
खेत बायो एक करसनी पाको खेत अत्यन्त।।1।।

इतले धनीरे बालो हुवो दुखणो आयो देख।
किणहिक औषध दे करी सांतरो कियो विशेष।।2।।

ताजो हुवो तिण अवसरे खेत काटयो धरी खन्त।
साज देने वालाने सही लागे पाप एकान्त।।3।।

कहे पापहुवे खेत काटियां तो काटण वाला ने सोय।
साझ देईनें साझो कियो तिणने पिण पाप जोय।।4।।

(भिक्षुजश रसायन, ढाल 18)

यह एक दृष्टान्त है जिसमे श्री भीषणजी ने यह कहा है कि इलाज करके जिसने किसान का फोड़ा (नेरू) ठीक किया, प्रकारान्तर से उसने किसान को एकेन्द्रिय काय (अनाज) के जीवों को काटने मे सहायता दी। इसलिये खेत काटने का पाप उस इलाज करने वाले को भी हुआ। 'साझ देहने साझो कियो तिणने पिण पाप जोय'। आश्चर्य तो इस बात का है कि किसी जीव को बचाने से वह बचा हुआ जीव भविष्य में जो पाप करेगा उस पाप का साझीदार तो बचाने वाले को यह लोग बनाते हैं परन्तु यदि बच जाने वाला बचकर

कोई धर्म करता है तो उसका साझीदार बचाने वाले को नहीं बनाते।

(2) दूसरे प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री तुलसीजी महाराज ने प्रश्न का सीधा उत्तर न देकर आध्यात्मिक दृष्टि और लोक-दृष्टि के बहाने लोक-धर्म और लौकिक पुण्यकार्य कहकर सही उत्तर टाल देने का प्रयास किया है। देते तो केवल यही कहते कि ऐसे समस्त कार्य तो पाप के कारण हैं या पुण्य के कारण हैं। तेरापन्थ सम्प्रदाय की यह निश्चित मान्यता है कि आध्यात्मिक क्रिया के अतिरिक्त कहीं भी पुण्य नहीं होता। ऐसी अवस्था में यह फिर लौकिक पुण्य कहाँ से आया ? यह पाठक स्वयं विचार ले।

(3) तीसरे प्रश्न का उत्तर भी वही पिता की भौतिक सेवा और आध्यात्मिक सेवा कहकर वही लौकिक पुण्यकार्य बताना, शब्दों का भुलावा है।

(4) चौथे और पाँचवें प्रश्न के उत्तर में भी वही बात है जैसी अन्य मे है।

(6) छठे प्रश्न के उत्तर में आचार्यश्री तुलसीजी महाराज लिखते हैं कि "अनुकम्पा बुद्धि से मरते जीव को बचा लेना भी अहिंसा है बशर्ते कि उसमें हिसा और असयम का पोषण न होता हो। अहिंसात्मक साधनों से होने वाली प्राणरक्षा हिंसा नहीं है चाहे वह किसी की भी हो।" कैसी भेदभरी चतुराई का उत्तर दिया है आचार्य महाराज ने। जो व्यक्ति तेरापन्थ के सिद्धान्तों को भलीभांति नहीं जानता वह लख ही नहीं सकता कि इसमें क्या चतुराई है। आचार्य महाराज ने जो शर्त रखी है कि "उसमें हिंसा और असंयम का पोषण न होता हो।" यही चतुराई है। तेरापन्थ की यह स्पष्ट मान्यता है कि मरते जीव (पशु, पक्षी और संसारी मनुष्य) को कोई भी व्यक्ति अहिंसात्मक साधनों से नही बचा सकता। तेरापन्थ की मान्यता में जीव बचाने में असंयम और हिंसा का पोषण होना निश्चित है। आचार्य महाराज से हमारा निवेदन है कि कृपा करके आप एक भी उदाहरण देकर बतावें कि अमुक प्रकार से अहिंसात्मक साधनों से मरता हुआ पशु, पक्षी और गृहस्थ मनुष्य बचाया जा सकता है।

(7) सातवे प्रश्न का उत्तर भी आचार्यश्री तुलसीजी महाराज ने वही भेदभरी चतुराई से दिया है कि "जो जहाँ अहिंसात्मक होते हैं वे वहाँ पुण्य के कारण हैं"। तेरापन्थ की मान्यता के अनुसार लौकिक उपकार और सांसारिक कर्तव्य आदि अहिंसात्मक हो ही नहीं सकते। यह उत्तर भी भुलावे में डालने वाला है। इसके लिये भी आचार्य महाराज से अनुरोध है कि कृपा करके उदाहरण देकर बतावें कि लौकिक उपकार और सांसारिक कर्तव्य अमुक तरह से अहिंसात्मक हो सकते हैं। भूख-प्यास से मरते हुए को अन्न-पानी की सहायता से बचाना, विपत्ति में पड़े हुए की सहायता करना, रुग्ण माता-पिता आदि पूज्यजनों की सेवा-सुश्रूषा करना, रोगियों की चिकित्सा का प्रबन्ध करना, शिक्षा के लिए पाठशाला का प्रबन्ध करना, सब के साथ कर्तव्य के अनुसार बरताव करना आदि कार्य ही लौकिक उपकार और सांसारिक

कर्तव्य हैं। इनमें से कौन-सा कार्य अहिंसात्मक हो सकता है ? आचार्य महाराज कृपया बतावें।

(8) आठवें प्रश्न के उत्तर में भी वही बात है। आचार्य महाराज का दृष्टिकोण समस्त उत्तरों में यह रहा प्रतीत होता है कि लोगों के समक्ष जो उत्तर दिया जाय वह ऐसे शब्दों मे दिया जाय जिसमें लोग यह भी न लख पावें कि तेरापन्थ की मान्यता ऐसे परोपकार और सेवा के कामों के करने में पाप मानने की है और उत्तर भी हो जावे। इसीलिये तो पाप शब्द के स्थान में लौकिक पुण्यकार्य शब्द की नई रचना की है और लोक-धर्म और आध्यात्मिक धर्म का भेद किया है।

(9) नौवें प्रश्न का उत्तर भी गलत दिया गया है। क्योंकि श्वेताम्बर जैन होने के नाते मैं कह सकता हूँ कि श्वे. जैनी गृहस्थ के खाने-पीने को सर्वथा पाप नहीं मानते। व्रत-नियम निभाने तथा लोक-कल्याण करने के लिए शरीर टिकाये रखने की भावना से खाने वाले गृहस्थ का खान-पान पाप का कारण नहीं है। उससे पुण्य हो सकता है। विकार-पुष्टि के लिए खाना-पीना पाप हो सकता है, उसमें किसी का विवाद नहीं है। तथा स्थानकवासियों का दृष्टिकोण बताने में भी आचार्य महाराज ने उनके साथ न्याय नहीं किया है। स्थानकवासी प्रकट रूप परोपकार के (दया-दान के) कामों में पुण्य मानते हैं और आप पाप। फिर भी उनके लिए शरीर-पोषण और शरीर-रक्षण की बात कहना सत्य से परे है। जहां तक मैं समझता हूँ, स्थानकवासियों का दया-दान सम्बन्धी दृष्टिकोण जैन धर्म के सर्वथा अनुकूल है। जबकि आप का जैन धर्म से सर्वथा विपरीत है।

समिति के सदस्यों से निवेदन

जैन संयोजना समिति दिल्ली के विद्वान सदस्यों ने आखिर इन प्रश्नोत्तरों से क्या निर्णय किया, यह इस "जैन संयोजना" पुस्तिका में बताया हुआ नहीं है। अतः अनुरोध है कि वे भी अपना निर्णय देकर जनसाधारण की जिज्ञासा को पूरा करें कि उनकी राय मे संसार के उक्त परोपकार और सेवा के कार्यो के करने में एक सद्गृहस्थ को क्या फल होता है ? धर्म, पुण्य या पाप !

1/11/50 द. बच्छराज सिंघी

निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति उपासक संघ के लिए पूज्य श्री 1008 श्री गणेशलालजी म.सा. द्वारा निर्दिष्ट आदेश के आधार पर बनाई गई योजना

पूर्व वचन

जन-समाज को मोक्षमार्ग में संस्थापित करने हेतु श्रमण भगवान महावीर ने दो प्रकार के धर्म का उपेदश देकर भव्य प्राणियों पर परम उपकार किया है। उस उपदेश के आधार पर आज इस पंचम काल में भी निर्ग्रन्थ श्रमण संघ बडे ही आनंद के साथ चल रहा हैं। इस संघ की साधना प्रणाली बडी ही कठिन होने से परम आत्मबली पुरुष ही इस साधना प्रणाली में प्रवेश कर सकता है।

इस संघ का मुख्य लक्ष्य आत्मसाधना करना है - वह अपनी साधना सुरक्षित रखते हुए जन-समाज में भी धर्म प्रचारार्थ कुछ प्रयत्न कर सकता है लेकिन अपनी मर्यादाओं के बाहर होकर धर्मोपदेश देने का इस संघ को अधिकार नहीं है परन्तु श्रावक धर्म की आराधना करने वाला श्रावक संघ का विशाल क्षेत्र है। वह अपने हर उपयुक्त साधन से धर्म प्रचार करने में स्वतन्त्र है।

वीतराग भगवान का धर्म सर्वत्र फले तथा जन-जन नैतिक आदर्श के साथ-साथ आध्यात्मिक क्षेत्र में भी कुशलतापूर्वक प्रवेश कर सके एतदर्थ परम प्रतापी चारित्र चूडामणि पूरुष आचार्यश्री गणेशलालजी म.सा. ने निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति के उपासक संघ में अलग-अलग वर्ग की रचना का अपनी मर्यादा में जो निर्देश दिया - उसके आधार पर श्रमण संस्कृति उपासक संघ ने विशेष रूप से निम्न वर्गों का निर्वाचन किया है :-

1. सामान्य वर्ग 2. नैष्ठिक उपासक वर्ग 3. सम्यक् शिक्षक वर्ग 4. प्रचारक वर्ग 5. ब्रह्मचारी वर्ग

कोई भी सदाचारी व्यक्ति इस संघ में प्रवेश पाकर उपर्युक्त वर्ग में से ऐच्छिक वर्ग को स्वीकार कर सकता है।

इस युग में चिन्तनशील विचारों के आधार पर पूज्यश्रीजी महाराज द्वारा दीर्घ दृष्टि से दिया गया यह मार्गदर्शन विश्व के लिए बड़ा ही हितप्रद सिद्ध होगा।

नाम - इस संघ का नाम निर्ग्रन्थ श्रमण संस्कृति उपासक धर्म दान संघ रहेगा।

उद्देश्य - इस संघ का उद्देश्य निम्न प्रकार होगा :-

1. स्थानकवासी समाज में श्रद्धा प्ररूपणा में जो अनैता दृष्टिगोचर हो रही है- उसमें एक समता लाना।
2. चारित्रशुद्धि के लिये शिथिलाचार एवं स्वच्छंदाचार को रोकना और शुद्धाचार की तरफ प्रवृत्ति करना तथा कराना।
3. धार्मिक शिक्षण में वृद्धि हेतु निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुसार प्रत्येक प्रान्त में अनुकूल स्थानों पर शिक्षा की व्यवस्था करना।
4. जैन धर्म का व्यापक प्रचार करना।
5. समान श्रद्धा श्रमण व समान आचार-विचार वालों में परस्पर ऐक्य बढ़ाने का यानी संगठित करने का प्रयत्न करना।

संघ प्रवेश का प्रतिज्ञा पत्र

पूज्य गुरुदेव आचार्यश्री के मर्यादा अनुसार निर्दिष्ट वर्ग में उत्कृष्ट सद्भावनाओं के साथ प्रवेश करता हुवा उसके निर्धारित प्रत्येक नियमों को पूर्ण रुप से बिना तर्क, बिना शर्त सहर्ष पालन करूंगा।

आज से यह जीवन आचार्यश्री के चरणों में समर्पण है। वे मेरे लिए अपनी सीमा में जैसा सोचेंगे व करेंगे उसी में मैं अपना सर्व हित समझूंगा। उनकी प्रत्येक आशा को मैं बिना किसी उज्र के शिरोधार्य करूंगा। मेरी त्रुटियों पर या संघ का धाराधोरण टूटने पर मैं आचार्यश्री के चरणों में आलोचना रखूंगा पर आचार्यश्रीजी जो भी प्रायश्चित्त आदि व्यवस्था देंगे, वे सब मुझे स्वीकार होगी।

मैं यह प्रतिज्ञा पत्र स्वस्थ चित्त से सोच-विचार कर बिना किसी दबाव के लिख रहा हूं।

नियम

1. इस संघ का एक प्रमुख होगा।
2. प्रमुख का चुनाव ब्रह्मचारी वर्ग में से होगा।

3. साधु मर्यादा के अनुसार निर्वद्य कार्य संचालन आचार्यश्री के अभिप्रायानुसार प्रमुख करेगा और शेष संघ प्रमुख के स्वयं के हाथ में रहेंगे।
4. प्रमुख का कार्यकाल पांच वर्ष तक रहेगा। किसी कारणवश पांच वर्ष के पूर्व पृथक् होना चाहे तो एक महीने के पूर्व सकारण त्याग पत्र पेश करना होगा तथा जब तक दूसरा प्रमुख न चुन लिया जाय तक तब अपने पद का कार्य करते रहना होगा।
5. विशेष परिस्थिति में पांच वर्ष के पूर्व तथा पांच वर्ष के बाद भी प्रमुख का चुनाव हो सकेगा।
6. प्रमुख द्वारा कोई गलती हो जाय तो उसकी शुद्धिकरण करने के लिए अपनी आलोचना आचार्यश्री के सामने रखना होगा और आचार्यश्री जो प्रायश्चित्त दें उसे स्वीकार करना होगा।
7. प्रमुख को विशिष्ट कारण के सिवाय प्रायः करके आचार्यश्री की सेवा मे रहना होगा।
8. आचरण संबंधी नियम, जो ब्रह्मचारी वर्ग के लिए हैं, वे नियम प्रमुख के लिये भी लागू होंगे।
9. धर्म प्रचार का प्रसंग उपस्थित होने पर विचारने के लिए जहां भी भेजा जावे, वहां जाना होगा।
10. समस्त वर्गों के नियमों मे परिवर्तन, परिवर्धन व संशोधन आदि करने का अधिकार यथास्थान प्रमुख को होगा।
11. इस संघ में प्रविष्ट होने वाले को सर्वप्रथम एक प्रतिज्ञा पत्र भरना होगा।

सामान्य वर्ग

1. आचार्यश्री की सम्यक्त्व ग्रहण करना व वीतराग के मार्गानुसार कोई भी ऐच्छिक नियम लेना।
2. आचार्यश्री के आदेश-उपदेश पर पूर्ण श्रद्धा रखना।
3. सद् से गुरु अर्थात् निर्गन्थ श्रमण वर्ग एवं श्रमणी वर्ग की मर्यादानुसार उत्कृष्ट भावों से सेवा करना।

अरिहंतो महदेवो, जावजीवाए सु साहुणे गुरुणो।
जिण पण्णतं ततं, इय सम्मतं मए गहियं।।

1. अरिहंत वीतराग सर्वज्ञ देव को धर्मदेव मानना।
2. अरिहंत कथित महाव्रत आदि पर चलने वाले कंचन-कामिनी के त्यागी आचार्य को मुख्य रूप से गुरु मानना और आचार्यश्री के आज्ञानुसार चलने वाले उपाध्याय एवं साधु-साध्वी का आचार्य पद में समावेश हो जाता है।
3. सर्वज्ञ प्ररूपित सम्यग् ज्ञान दर्शन चारित्र रूप मार्ग को सद्धर्म मानना।

नैष्ठिक वर्ग

1. सामान्य वर्ग के नियमो के पालनपूर्वक सात कुव्यसनों का त्याग करना होगा।
2. प्रतिदिन कम से कम 11 नवकार मंत्र का स्मरण करना।
3. प्रार्थना के रूप में नित्य कोई-न-कोई प्रार्थना अवश्य करना।
4. प्रतिमाह एक उपवास या एक आयंबिल अथवा दो एकासन या एक दया अवश्य करना।
5. यथाशक्य धार्मिक अध्ययन की रुचि बढ़ाना।
6. प्रतिदिन कम से कम मोटे रूप में हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्मचर्य, क्रोध, इर्ष्या, द्वेष, मान, लोभ इत्यादि अठारह पापों का त्याग करना।
7. रिश्वत, घूस, नहीं लेना। कालाबाजार, अनुचित लाभ, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से नही करना। खाद्य वस्तुओं में मिलावट नहीं करना। नाप तोल में कम नहीं देना और अधिक नहीं लेना। किसी भी वस्तु के गुणों को कम-ज्यादा नहीं बताना।
8. सट्टा, जुवा, फीचर आदि प्रवृत्तियां से दूर रहना। मादक द्रव्य का सेवन नहीं करना। पूर्ण शाकाहारी जीवन का पालन करना।
9. यथासम्भव स्वदेश निर्मित वस्तुओ से भिन्न वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना।
10. जिस कार्य से देश, जाति और धर्म का कल्याण को ऐसा कार्य नहीं करने का पूरा ध्यान रखना।
11. बाल विवाह, लडके की आयु 18 वर्ष और लडकी की आयु 14 वर्ष से कम हो। अनमेल विवाह, वर और कन्या की आयु में 14 वर्ष से अधिक अन्तर हो, में सम्मिलित नहीं होना।
12. बालक तथा बालिका का संबंध करने के लिए किसी भी प्रकार की मांगनी नहीं करना। विवाह में विशेष-आडम्बर नहीं करना। सादगी का ध्यान रखना।
13. मृत्युभोज में शामिल नहीं होना।

14. किसी भी भोज में जूठा नहीं छोडना।
15. स्नेही व कुटुम्बीजनों की मृत्यु होने पर मास से अधिक नहीं रखना।
16. मानव मात्र के साथ भ्रातृभाव रखना।
17. काम वंश खेल, तमाशे, नाटक आदि नहीं देखना।

सम्यक् शिक्षण वर्ग

1. सामान्य वर्ग और नैष्ठिक वर्ग के नियमों के पालनपूर्वक पांच अणुव्रतों का पालन करना।
2. तीन वर्ष तक ब्रह्मचर्य व्रत का अखण्ड पालन करना।
3. कालोका सामायिक करना। अधिक न बन सके तो पाक्षिक प्रतिक्रमण अवश्य करना।
4. रात्रि भोजन नहीं करना।
5. नाटक, सिनेमा नहीं देखना।
6. धार्मिक अध्ययन नियत समय पर करना।
7. मुनि व आचार्यजी की उपस्थिति में प्रतिदिन उनके दर्शन अवश्य करना।
8. अवकाश के दिन व्याख्यान सुनने व धर्मचर्चा आदि करने का प्रयत्न करना।
9. सोते समय व उठते समय व नवकार मंत्र व दो लोगस्स का ध्यान करना।
10. गन्दे व अपशब्द कभी किसी को न बोलना।
11. क्रोध व द्वेषवश किसी को ताडन-तर्जन नहीं करना।
12. धार्मिक अध्ययन-अध्यापन करते समय तथा गुरुओं के सन्मुख बोलते समय यतना का पूरा ध्यान रखकर उत्तरासन या मुंहपत्ति का अनिवार्य रूप से उपयोग करना।
13. सोलह वर्ष से कम उम्र वाले ब्रह्मचारी को महीने में दो एकासन और 16 वर्ष से अधिक उम्र वाले को महीने में दो उपवास या दो आयंबिल अथवा चार एकासन अवश्य करना।
14. संवत्सरी पर्व के दिन कम से कम उपवासयुक्त अथवा दशवां पाण अवश्य करना।
15. साल-भर में एक बार आचार्यश्री के दर्शन अवश्य करना।
16. नियत कोर्स की परीक्षा की तैयारी करके परीक्षा देना।
17. किसी पर झूठा आरोप नहीं लगाना। न झूठा मुकदमा करना। न झूठी साक्षी देना।
18. नियमभंगादि का दंड सहर्ष स्वीकार करना।

19. आचार्यश्री श्रावकोचित जो उपदेश दें उसका पूर्णतया पालन करना और विशिष्ट आदेश-उपदेश को भी जीवन में लाने का यथासाध्य प्रयत्न करना।
20. ब्रह्मचर्य अवस्था में धार्मिक अध्ययन-अध्यापन की तरफ विशेष लक्ष रखना।
21. साधु-साध्वियों के प्रति पूर्ण भक्तिभाव का व्यवहार रखना।

प्रचारक वर्ग

प्रचारक को यावज्जीवन निम्न नियमों का पालन करना होगा :-

1. सप्त कुव्यसनों का त्याग करना।
2. बने वहां तक रात्रि भोजन नहीं करना। यदि ऐसा न मिले तो तिथियों को तो अवश्य रात्रि भोजन का त्याग करना।
3. प्रत्येक मास में एक बार या दो बार आचार्यश्री के दर्शन करके धर्म तत्त्व का प्रशस्त पथप्रदर्शन पाना।
4. अपने ग्राम या शहर में साधु-साध्वी हो तो उनके नित्यप्रति दर्शन करना तथा समय पर प्रवचन व ज्ञानचर्चा आदि का लाभ लेना।
5. प्रतिदिन कम से कम एक सामायिक का काल धर्म-जागरण में लगाना।
6. सोते समय व उठते समय चार लोगस्स का अवश्य ध्यान करना तथा भोजन के समय नवकार अवश्य गिनना।
7. व्यापार की अनैतिकता से बचने की अवश्य कोशिश करना तथा गन्दे शब्दों का कभी प्रयोग न करना।
8. धार्मिक अध्ययन करते समय व गुरुजनों के सन्मुख बोलते समय मुखवस्त्रिका या उत्तरासन लगाये बिना नहीं बोलना।
9. बने वहां तक गरीबों पर मुकदमा नहीं करना तथा झूठी गवाही व झूठा आरोप नहीं देना।

प्रचारक वर्ग के प्रचारकालीन नियम

1. प्रचारकाल में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना।
2. जहां अन्य स्त्रियाँ निवास करती हों ऐसे मकान में नहीं रहना।
3. स्व-स्त्री से विकारोत्पादक कथा-वार्ता न करना।

4. चमडे के बन्द जूत यानि बूंट नहीं पहनना।
5. वो विहार का पालन करना व सचित वस्तु न रखना।
6. प्रतिदिन पांचों विगय साथ नहीं लगाना।
7. रंगीन वस्त्र नहीं पहनना। घडी के अलावा कोई जेवर न रखना और न पहिनना।
8. पर-स्त्री से बिना भाई-बहिन की साक्षी के धर्मोपदेश आदि कोई भी बात न करना।
9. कोई भी प्रकार का सुगन्धित तेल, इत्तर शरीर पर नहीं लगाना।
10. रोगादि विशेष कारण के बिना स्वस्त्री का भी स्पर्श न करना और न एक आसन पर ही बैठना।
11. व्यापार आदि सांसारिक प्रवृत्ति बिल्कुल नहीं करना।
12. सादी वेष-भूषा के अलावा कोट, पतलून, नेकर, टोप आदि का उपयोग न करना।
13. भोजन करते समय पूर्ण मौन रहना।
14. धर्म प्रचार में पुस्तकों आदि प्राप्त साधनों को प्रचारकाल पूर्ण हो जाने के बाद जहां से लिए हों, वहां पहुंचाने का ध्यान रखना।
15. शिक्षा व उपदेश देते समय तथा पठन-पाठन के समय व अन्य किसी भी समय किसी भी व्यक्ति को ताडन-तर्जन नहीं करना और न आक्षेपात्मक कठोर भाषा का उपयोग करना।
16. विकारोत्पादक कथा-वार्त्ता न करना व स्त्रियों के अंगोपांग आदि नहीं देखना अर्थात विकार पैदा हो, ऐसी शंकास्पद प्रवृत्ति से भी दूर रहना।
17. अपने स्थान पर सूर्यास्त तक मात्र को नहीं जाने देना।
18. नैतिक व धार्मिक उत्सव व मितिंठ के अलावा विवाह, ओसर, मोसर आदि के प्रसंग पर सम्मिलित नहीं होना।
19. प्रतिदिन कालोकाल सामायिक के साथ 14 नियमों को ध्यान में लेना। और सोते समय व उठते समय चार लोगस्स का ध्यान करना।
20. प्रतिदिन सायंकाल प्रतिक्रमण करना।
21. प्रचारकाल में एक साथ तीन से अधिक प्रचारक ब्रह्मचारों तहीं रहना।
22. साल-भर मे इच्छानुसार दो मास या एक मास अथवा 15 दिन या आठ दिन धर्म-प्रचार के लिये देना।

23. प्रत्येक साल में एक बार या दो बार आचार्यश्रीजी के दर्शन करना और धर्म तत्त्व का पथ-प्रदर्शन करना।
24. धार्मिक अध्ययन आदि करते समय व धर्मोपदेश देते समय तथा गुरुजनों के सन्मुख बोलते समय मुखवस्त्रिका या उत्तरासन अवश्य रखना।
25. किसी पर झूठा आरोप व आक्षेप नहीं लगाना। झूठी साक्षी नहीं देना।
26. सप्त कुव्यसनों का त्याग करना।
27. भोजन करते समय नवकार अवश्य गिनना।

ब्रह्मचारी वर्ग

1. आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करना।
2. पूर्ण ब्रह्मचारी को पांच मूलव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत के लिये निम्न विशिष्ट गुणों का पालन करना होगा।
3. स्त्री, पशु और नपुंसक जिस मकान में रहते हों उस मकान में न रहना। मकान के अभाव में कभी अपवाद रूप से रहना पड़े तो बात दूसरी।
4. विकारोत्पादक सांसारिक कथा-वार्ता न करना।
5. स्त्रियों के अंगोपांग न देखना।
6. पर्दा, टाटी, दीवार आदि के अन्तर से स्त्री पुरुष के रतिक्रीड़ा संबंधी वार्तालाप न सुनना।
7. पूर्व से तजे हुए विषय संबंधी विचारों का स्मरण न करना।
8. प्रतिदिन पांचों ही विगय न लगाना।
9. रंगीन व सीते हुए वस्त्र नहीं पहिनना।
10. जूते, बूंट आदि नहीं पहिनना।
11. चौविहार का पालन करना व सचित्त का त्याग करना।
12. बिना कारण गृहस्थ के घर न बैठना।
13. अकेली बाई के घर में बिना किसी भाई व बहिन की साक्षी के भोजनादि न करना तथा उपदेशादि न देना।
14. धर्म-प्रचार के बिना अपने स्थान को छोड़कर बिना कारण बाहर न जाना।
15. धर्म-स्थान में भी भाई की साक्षी के बिना केवल बहिन को उपदेशादि नहीं देना।

16. रात्रि को आम जनरल स्थान के सिवाय अन्यत्र व्यक्ति के घर धर्मच धर्मोपदेश के लिए नहीं जाना।
17. अपने स्थान पर सूर्योदय से सूर्योदय तक हरी मात्र को नहीं जाने देना।
18. केशों मे व शरीर में शृंगार के लिये तेल, इत्र आदि किसी भी प्रकार के त पदार्थो का उपयोग न करना।
19. केशों का साल मे एक बार यथाशक्ति लोच करना।
20. यदि लोच न हो सके तो महीने में एक बार से अधिक क्षुर मुंडन नहीं क
21. जटा व दाढी को अधिक न बढाना तथा केशों की छटनी संवारना आ करना।
22. अपने न्याती, गौती आदि संबंधियों के साथ सांसरिक कोई संबंध न रख
23. स्त्री मात्र का संघट्टा साक्षात् व परम्परा से भी न होने पावे, इसका पूरा रखना।
24. जिस पाल, जाजम आदि पर स्त्री बैठी हो उस पर कतई न बैठना।
25. लज्जा निवारणर्थ तथा शरीर रक्षार्थ चोल पट्टक अथवा खुली लांग की धे पछेवडी, गुत्थी बनियान के सिवाय अन्य सिले वस्त्र नही पहनना।
26. नैतिक व धार्मिक उत्सव व मितिंग के अतिरिक्त विवाह, ओसर, मोसर आ अवसर पर व राजनीतिक जलसों, पार्टियों आदि में सम्मिलित नहीं होना
27. धर्म-प्रचारार्थ व गुरु-दर्शनार्थ भी विशिष्ट परिस्थिति के बिना वाहन आ उपयोग नहीं करना।
28. 100 हाथ वस्त्र से अधिक वस्त्र न रखना।
29. किसी भी गृहस्थ की नेश्राय का यानी नित्य-प्रति गृहस्थ के काम में आने वस्त्र ओढ़ने-बिछौने आदि के काम में उपयोग न करना।
30. नित्य-प्रति नियत समय पर आगमिक वाचन, चिन्तन, मनन आदि रूप स्वा करना।
31. शास्त्रोक्त 20 प्रकार के धोवन में मर्यादाकाल मे जीवोत्पत्ति की शंका न क
32. विशिष्ट प्रसंग के बिना एक ग्राम में एक साथ तीन ब्रह्मचारी से अधिक रहना।
33. श्रावण और भाद्रपद को छोड़कर शेष दश महीनों में ज्यादा से ज्यादा एक में एक महिने से अधिक न रहना।

34. नमस्कार करने वाले को जयजिनेन्द्र आदि सुबोध शब्द के अलावा सावदय आशीर्वाद आदि न देना।
35. पूर्वदीक्षित ब्रह्मचारी, उत्तरदीक्षित ब्रह्मचारी से ज्येष्ठ समझा जायगा और छोटे यानी कम समय का ब्रह्मचारी बड़े यानी दीर्घकाल के ब्रह्मचारी को नमस्कार करे यानी चरण-स्पर्श, विनय-भक्ति करने का पूर्ण ध्यान रखे।
36. सर्वथा प्रकार से त्रस जीवों की हिंसा नहीं करना। बने जहां तक स्थावर जीवों की सप्रयोजन भी हिंसा न होवे, इसका खयाल रखना।
37. स्त्री-पुरुष व पशु जाति, धन-धान्य, वस्त्र, पात्र, खान-पान, जमीन जायदाद आदि समस्त भोग्य-उपभोग्य वस्तुओं के लिये कतई झूठ न बोलना और न चोरी करना।
38. अपने धन-धान्य, जमीन-जायदाद आदि से ममत्व हटाना और उस संपत्ति को ब्रह्मचारी वर्ग की व्यवस्था या तत्संबंधी संस्थाओ को दान देना।
39. पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण आदि दिशाओं में गमन करने के विषय में जनरल नियम के साथ नित्य-प्रति भी योग्य नियम लेना।
40. सर्वथा प्रकार से सावद्य व्यापार का त्याग करना।
41. प्रतिदिन प्रातःकाल सामायिक और सायंकाल प्रतिक्रमण करना।
42. प्रत्येक तिथि 2, 5, 8, 11, 14, 15 को पांचों ही आश्रवों का सर्वथा प्रकार से त्याग करना और आहार के लिये जो गृहस्थ कहे वहां संतोष वृत्ति के साथ भोजन के पूर्व पांच नमस्कार का ध्यान करना।
43. यथाशक्ति महीने में दो प्रतिपूर्ण पौषध करना।
44. विशेष परिस्थिति के बिना न स्वयं भोजन बनाना न बनवाना, बल्कि दाता के घर में जैसा उपलब्ध हो उसमें संतोष करना।
45. भोजन करते समय बिल्कुल मौन रखना।
46. यथासाध्य अपना कार्य अपने ब्रह्मचारी वर्ग के सदस्यों के अलावा दूसरों से न कराना।
47. परस्पर संभाषण में व प्रवचन में कटु व अशोभनीय तथा व्यक्तिगत आक्षेपात्मक भाषा का प्रयोग न करना।
48. दीक्षा महोत्सव, तपोमहोत्सव व चातुर्मासादि के लिये आमंत्रण पत्रिका आदि न छपवाना।

49 साधु-साध्वियों के प्रति विधियुक्त पूर्ण भक्तिभाव का व्यवहार रखना।

50 ब्रह्मचारी वर्ग का कोई भी सदस्य नियम भंग आदि की कोई भी त्रुटि कर बैठे तो उसे प्रेम से समझा कर सन्मार्ग पर लाना। अगर न समझे तो प्रमुख को सूचित कर देना होगा। परन्तु उसको अन्यत्र नीचा दिखाने हेतु अपवाद न करना।

51. नियमभंगादि का प्रायश्चित्त जो दिया जावे, वह स्वीकार करना।

52. एक साल में एक महीना सम्यक् शिक्षण वर्ग को शिक्षा के लिये देना। अगर प्रमुख की कोई विशेष आज्ञा हो जाय तो शिक्षण के लिये कम या ज्यादा समय दे सकेगा या नहीं भी दे सकेगा।

53. इस वर्ग के सदस्यों को अपने उपयोग के लिए स्वावलम्बी होने के निमित्त नियत समय पर सूत कातना, वस्त्र बुनना आदि कार्य भी प्रमुख की आज्ञा बिना नहीं किया जा सकेगा।

54. वीतरागदेव की कामना के साथ उपासना नहीं करना तथा अन्य देव की किसी भी प्रकार से उपासना नहीं करना और डोरा, तावीज, जन्त्र, मन्त्र, टाणा-टोणा नही करना।